Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and
पूर्ण संख्या—१६६ Central Provinces for use in Schools and Libraries. Reg. No. A.708

भाग २९ Vol. 29. | मेष १९८५ अप्रैल १९२९ | संख्या १ No. 1

प्रयागकी विज्ञानपरिषत्‌का मुखपत्र

Vijnana the Hindi Organ of the Vernacular Scientific Society, Allahabad.

अवैतनिक सम्पादक

ब्रजराज

एम. ए., बी. एस-सी., एल-एल, बी.

सत्यप्रकाश,

एम. एस-सी., विशारद.

प्रकाशक

वार्षिक मूल्य ३)] विज्ञान-परिषत्, प्रयाग [१ प्रतिका मूल्य ।)

विषय-सूची

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमान भूतानि जायन्ते
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै॰ उ॰ ।३।५॥

भाग २९ | मेष संवत् १९८५ | संख्या १

तन्तु-वर्णोदन या तन्तुओंका रंगना

[लेखक श्री ब्रजबिहारी लाल दीक्षित एम एस-सी. तथा श्री बलराम बहादुर जी भटनागर बी. एस-सी]

टिप्पणी
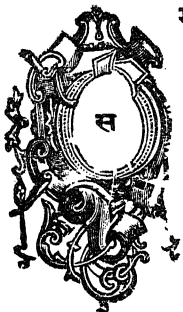
म्भव है कि इस विषयमें कहीं कहीं पर शब्दोंका अर्थ समझनेमें कठिनाई पड़े इस कारण यह प्रारम्भमें ही स्पष्ट हो जाना चाहिए कि जहां पर किसी रंग के नामके आगे 'अ' अक्षर दिया है उसका अर्थ है 'अरुण' है, अर्थात् इस रंगसे रंगनेमें प्रायः रंग कुछ कुछ लाल रंगका होता है यदि '२ अ' हो तो समझना चाहिए कि प्राप्त रंग कुछ अधिक लाल होगा तथा 'अ' से द्विगुण लाल होगा 'अ अ' से इसी प्रकार 'लालमय लाल' यानी इससे रंगके लाल गुणमें अधिक वृद्धिका बोध होता है। इसी प्रकार 'प' से पीत वर्ण 'न' से नीला, 'ह' से रंग हलके होने का 'ग' से गहरे होने का और 'स' से स्थाई होने का बोध होता है। '—नो=नो—' समुदायको अजीव समुदाय (Azo goup) कहते हैं। इसी से द्वयजीवकरण (Diazotization) तथा चतुरजीव करण (Tetra.azotization) समझना चाहिए। 'Flavones' को वनस्पतिन तथा (Anthocyanin) को पुष्पिन कहते हैं।

रंगना आजकल कोई साधारण बात नहीं है। सहस्त्रों रंग क्रय विक्रय होते हैं जो वस्त्रको एक ही रंगका रँगते हैं और यह निश्चित करना कि कौन सा पदार्थ लाभप्रद होगा और कौन हानिप्रद, बड़े बड़े अनुभवी मनुष्यों ही का काम है।

कुछ अधिक व्यय करके सुन्दर और स्थाई रंगनेसे न्यून मूल्यमें क्षणिक रंगनेकी अपेक्षा अवश्य ही लाभप्रद होगा, किन्तु इतनी ही बात से तो कार्य्य नहीं चलता। फिर द्विगुण-वर्ण-शक्तिका रंग लेने से उससे पौने दामोंमें एक शक्तिका रंग लेनेसे भी लाभ रहेगा और फिर वर्ण बेधकोंका प्रश्न भी अवश्य सोचना चाहिए। इन्हीं सब बातोंको सोच कर तथा मनुष्योंकी रुचिका विचार करके वर्णों के प्रयोग करने में महान् अनुभवकी आवश्यता है।

'क्षौम वर्णोदन' (रेशमके रंगने) का कार्य समझनेसे पहिले यह समझ लेना अत्यावश्यक है कि 'क्षौम' अर्थात् रेशम कहते किस वस्तुको हैं। आधुनिक सभ्यता की वृद्धिके साथ साथ अनेकानेक प्रकारके क्षौम आविष्कृत हो गए हैं और उनके जालमें फँसकर निकलना एक साधारण आदमीका काम नहीं है। पूर्ण परिचित क्षौम इतने प्रकारके होते हैं—विनाश्य क्षौम (waste silk), सिरकेत क्षौम, आलन्थ क्षौम (ailanthus silk), काष्ठ क्षौम (bast silk), बारेत क्षौम (Bourette silk) शाप क्षौम (chhape silk) शारडोनेट क्षौम, पिंडी मौम कलादिन क्षौम (collodian silk), सीप क्षौम (coral silk), कर्दनेत क्षौम (cordonnet), कृत क्षौम (cuite silk), अर्क क्षौम (Ecru silk) फग्र क्षौम (Fagara silk) कटक क्षौम (Flock silk) फ्लोरेत क्षौम (Flou rette silk) क्रांति क्षौम (lustre silk) गर्ग क्षौम (grege silk) अर्ध क्षौम, कृत्रिम क्षौम, लेहनर क्षौम लिन्कमर क्षौम (Linkmeyer silk) मर्बित क्षौम, (Marabout silk तूत क्षौम (Mulberry silk), घोंघा क्षौम, अरगंजीन क्षौम (organzine silk) पाली क्षौम. (Pauly silk) परित क्षौम, (Down silk), अपम्ब क्षौम (Raw silk), मिलित क्षौम (simile silk) सपिल क्षौम (souple silk) झौर क्षौम (Hank silk), त्राम क्षौम (Trame silk), टसा क्षौम (Tussah silk) स्निग्धी क्षौम, उर्णा क्षौम (wool silk), यमन क्षौम, इत्यादि, इत्यादि। इन सबमें तूत क्षौम अत्यन्त सुन्दर सूक्ष्म तथा मूल्यवान् होता है और इसी पर क्षौम व्यापार निर्धारित है। समस्त अन्य प्रकारके प्राकृतिक क्षौम 'प्राकृत क्षौम' कहलाते हैं और उनमें सबसे सुन्दर टसा तथा काष्ठ क्षौम होते हैं। घोंघा क्षौम वह प्राकृतिक वस्त्र तन्तु है जो कि विशेष प्रकारके घोंघो के बाइसस ग्रन्थि (Byssus gland) से बहिष्कृत होता है। वायुके संसर्गमें आनेसे यह द्रव पदार्थ तन्तु रूपमें ठोस होता जाता है। व्यापारिक कृत्रिम क्षौम वनस्पति-उद्गारके होते हैं। वह न तो प्राकृत्रिम क्षौमकी भांति सूक्ष्म होते हैं और न उतने शक्तिमय ही होते हैं रेशम और उनसे मिलकर बना हुआ पदार्थ उर्णा-क्षौम कहलाता है और मिश्रित तन्तुओंके समुदायमें से है। अर्ध क्षौम उस पदार्थका नाम है जो वनस्पति तंतु तथा प्राकृतिक क्षौम तन्तुको इस प्रकार बिननेसे प्राप्त होता है कि सन्मुखकी पृष्ठ तो रेशमकी प्रतीत हो और पीछेकी पृष्ठ रुईकी। यह भी मिश्रित तन्तुओं के समुदायमें से ही है।

वर्णोदनके रसायनिक व्यवसायका ज्ञान प्राप्त करनेसे प्रथम इस बातको जान लेना लाभप्रद होगा कि उसकी विधियां क्या क्या है और किन किन उपचारों (mechanical) से सफलता प्राप्त हो सकती है। बहुधा रेशम लच्छियोंमें ही रंगा जाता है किन्तु थोड़ा ही समय हुआ कि वस्त्र रंगनेकी विधि भी प्रचलित हो गई और अब यही विधि अग्रसर होती प्रतीत होती है। प्रथम अनेक लच्छोंको बलपूर्वक रुईके तागोंसे बांध देते हैं ताकि उलझ न जावें। वर्णाशयमें (dye-bath) लच्छियों को हाथसे लौटते रहते हैं और इस कार्यके निमित्त सुन्दर चिकनी काठकी कीलियां भी प्रयोगकी जा सकती हैं किन्तु उनका प्रयोग करोदक रसोंमें ही लाभप्रद होता है, आर जब कि कार्यकर्त्ता रबरकी दस्ताने पहिनना नहीं चाहते। इस आशयकी चौड़ाईके अनुसार प्रत्येक किल्ली पर चार पांच लच्छे टांग दिए जाते हैं। सूक्ष्म होनेके कारण लच्छों

के उलझ जानेका बड़ा भय रहता है और इसी कारण कार्यकर्त्ताको लच्छे पुनः पुनः उठाकर उन्हें खोलना तथा स्वच्छ करना पड़ता है। प्रत्येक तागको पृथक् पृथक् करके एक डंडेसे पीटकर उसे हाथ द्वारा ही जलसे धोते हैं । फिर यन्त्र द्वारा स्वच्छ किया जाता है। बेलनोंमें दबाकर निचोड़ डालते हैं, और फिर जल मुक्तक यन्त्रमें डालकर शुष्क कर लेते हैं। इस प्रकार वह जलके अधिक भागसे मुक्त हो जाते हैं। पूर्ण शुष्क करनेके प्रथम खींच तानकर लच्छों का संकुचन दूर किया जाता है। तत्पश्चात् समानान्तर रेखाओंमें शुष्क होनेको रख दिए जाते हैं।

कांति बढ़ाना अगली क्रिया है और यह तनावका ही दूसरा स्वरूप है किन्तु यन्त्र द्वारा की जाती है। किञ्चित्मात्र लम्बाई बढ़ जानेके अतिरिक्त रेशमकी कांति तथा चमकमें महान् परिवर्त्तन हो जाता है । पृष्ठ-तनाव पर तापका बड़ाभारी प्रभाव पड़ता है और कांति इसी तनावपर निर्धारित है। अधिक ताप देनेसे इस कांति के नष्ट होजाने की संभावना रहती है इस कारण शुष्क करते समय तापक्रम न बढ़ने देनेका विशेष ध्यान रखना चाहिये। सबसे अच्छा तो यह होगा कि वह ३५° श. से नीचे हीके ताप पर तप्त वायुके प्रवाहमें शुष्क किया जावे । भारतवर्षमें यह क्रिया केवल धूपमें फैलाकर शुष्क करनेसे भली भांति हो सकती है। शुष्क करनेके पश्चात् चिकनानेकी आवश्यकता पड़ती है और यह भी यन्त्र द्वारा ही किया जाता है।

वस्त्र-वर्णोदनमें सबसे प्रथम क्रिया वायु-प्रवाहन की होती है। इससे वस्त्रमें बाहरकी ओर निकले हुए जो नन्हें नन्हें तागोंके अग्र भाग रहते हैं वह दूर हो जाते हैं और वस्त्र चिकना पड़ जाता है। फिर लच्छोंकी ही भांति गरम तथा स्वच्छ किया जाता है। फिर उसे पूर्णतया सैन्धकक्षारके घोलसे, फिर गरम जलसे, पुनः किञ्चित् अम्लिक जलसे धोकर शुष्क कर लिया जाता है। एक बार पुनः वायु प्रवाहन करनेके पश्चात् वस्त्र बिलकुल चिकना पड़ जाता है और तब रंगा जाता है।

वर्णोदन यंत्र तथा उसकी आवश्यकताओंका भी कुछ हाल देना आवश्यक ही है। रेशमके रंगने में स्वच्छताका विशेष ध्यान रखना पड़ता है। इस कारणसे ताम्रपात्र तथा ताम्र जटित काष्ठ पात्र ही प्रयोग किए जाते हैं। आधुनिक वर्णालय पूर्ण वातायनिक, प्रकाशमय तथा स्वच्छ होना चाहिये। इसके अतिरिक्त उसमें वाष्प तापका भी पूर्ण प्रबन्ध होना चाहिए। कुछ ही शुष्क वर्णोदन क्रियाओंके अतिरिक्त जल सबसे अधिक महत्वपूर्ण तथा अनिवार्य्य वस्तु है। इस कारण यह पूर्णतया स्वच्छ तथा उसमें घुलित प्रत्येक लवणसे मुक्त होना चाहिये । इस कार्य्यमें हानिकारक लवण खटिकम्, मगनीसम्, लोह तथा मांगनीजके हैं।

रसायनिक पदार्थ जो अधिकतर प्रयोग किए जाते हैं तीन समुदायोंमें विभाजित हो सकते हैं। प्रथम तो स्वयम् वर्ण ही, दूसरे वर्ण वेधक, तीसरे वह रस जो स्वच्छ करण क्रियाओंमें प्रयोग होते हैं। वर्ण विनाशन भी स्वच्छकरण रसोंमें ही सम्मिलित हैं। वंग हरिद, लोह वर्णवेधक, स्फट वर्णवेधक, रांग वर्ण वेधक तथा माजूफलिकाम्ल सम्बन्धी पदार्थ द्वितीय समुदायमें से हैं। स्नानागारको अम्लित करनेके निमित्त साबुन, तथा रंगोंको चमकानेके लिए गन्धकाम्ल और वर्णविनाशनके लिए गन्धसाम्लका प्रयोग किया जाता है। वंगिक हरिद तथा अम्ल राज तैयार करनेके लिये, एवं द्वयजीवकरण (Diazotisation) में नोषसाम्ल निकालनेके लिए तथा हर्लौह उपलब्धित काले रंगोंको चमकाने के लिए उद्जन हरिद का प्रयोग किया जाता है। नोषिकम्ल भी वंगिक हरिद तथा अम्लराज के तैयार करनेमें प्रयोग होता है। यह अम्ल वंगिक हरिद तथा नर्म रेशमके वर्ण-विनाश में भी प्रयोग होता है। क्षौम वर्णोदन साबुन स्नानागारको अम्लित करने तथा क्षारमय वर्ण-पदार्थों के उपघोलनार्थ, वर्ण स्नानागारकी शक्ति

बढ़ाने तथा वर्णों के चमकाने में सिरकाम्लका भी प्रयोग होता है। साबुनको अम्लित करनेमें गन्धकाम्लके स्थानमें पिपीलिकाम्लका भी प्रयोग किया जा सकता है। रेशमके वर्णवेधनमें स्फट तथा राग वर्णवेधकोंकी शक्ति बढ़ानेके निमित्त काष्ठिकाम्ल प्रयोग किया जाता है। इमलिकाम्ल इयोसीन वर्ण तथा क्षारमय (Basic) वर्णों से रंगे हुए रंगों को चमकानेमें प्रयोग होता है और इसी भांति नीबूइकाम्ल भी प्रयोग होता है। हरिकाम्ल (Tannic acid) तथा हरिमिन (Tannin) मध्यम तथा गहरे वर्णों के साथ प्रयोग होते हैं। हरिमिन लोहमृके साथ नील यौगिक बनाता है किन्तु काले वर्णोंके लिए हरिमिकाम्ल भला समझा जाता है और यह लोहमृके साथ हरा रंग देता है। क्षौमभारण में लोह, वंग इत्यादि धात्वीय लवणोंके साथ साथ भी हरिमिकाम्लका प्रयोग होता है।

क्षौम वर्णोदन तंतु धोने तथा स्वच्छ करनेके निमित्त, क्षारिक पदार्थको धोकर मुक्त करनेके निमित्त तथा उसे निकालनेके लिए, अम्लोंको निशक्त करनेके लिए तथा स्फट तथा राग वर्णवेधकोंको शिथिल करनेके निमित्त अमोनियाका प्रयोग किया जाता है। इसी भांति भट्टी-वर्णों को उद्‌जन-गन्धिदोंसे धोनेमें आधार द्रवकी भांति सैन्धक उदौषिद प्रयोग होता है रेशम तथा टस्सा क्षौमके वर्णविनाशनार्थ सैन्धक पर-ओषिदका प्रयोग करते हैं। भट्टियोंको तैयार करनेके लिए दस्त-चूर्ण का भी प्रयोग करते हैं कभी कभी साबुन स्नानागारोंके स्थानमें अमोनियम सिरकेत भी प्रयोग करते हैं। वंग भरित क्षौममें भरण पदार्थके प्रकाशमें क्षौम तंतु पर हानिकारक प्रभावको दूर करनेके लिए अथवा कुछ कम करनेके लिए अमोनियम गन्धकाश्यमिद प्रयोग करते हैं। नीलिन्-कालेसे रेशमको रंगनेमें उसकी शक्तिवर्द्धनके लिए ओषदीकृत पदार्थ, पांशुज हरेत का प्रयोग करते हैं। टस्सा क्षौमके वर्णविनाशनार्थ पांशुज रागेत अनेक वर्णोंको ओषदीकृत तथा ऐसे रंगोंके शक्तिवर्द्धनमें जैसे कि लागवुड-श्याम, कत्थई इत्यादि तथा अनेक अम्लित वर्णोंको तंतुओं पर प्रतिकृत करनेमें प्रयोग किया जाता है। इस क्रियासे नीलमन् (emeraldine) पूर्णतयः ओषदीकृत होकर नीलिन् श्याम बन जाता है। नर्म क्षौमकी प्रतिक्रियाओंमें पांशुज इमलेत प्रयोग किए जाते हैं। पांशुज लोहश्यामिद क्षौम को श्याम वर्णोदनमें नीली चमक देनेमें महत्वपूर्ण कार्य्य करता है और नीलिन् श्यामकी उपलब्धिमें भी प्रयोग होता है।

सैन्धक लवण भी प्रयोगमें अधिक आते हैं। कर्बनेत तो रेशमके वर्णभरणमें, वंगिक हरिद्‌को शिथिल करनेमें तथा जलको गर्म करनेमें प्रयोग होता है। द्विगन्धित् नील-अनंथ्रीन (Indianthrene) तथा अन्य वर्णों के भट्टी करणमें प्रयोग किया जाता है। गन्धानिक वर्णों से रेशमको रंगनेमें सैन्धक हरिद का प्रयोग होता है और उसमें स्फट-तथा रागवर्ण-वेधकोंको स्थगित करनेमें द्विकर्बनेत प्रयोगमें आता है। सैन्धक स्फुरेत स्फुरभरणमें स्थापक पदार्थ का (Fixing agent) तथा भरित क्षौमोंको रंगनेमें साबुनके स्थानमें काम देता है। इसी भांति शैलेत स्थापक तथा भरण पदार्थका काम क्षौमकी स्फुर-शैल-भरण विधिमें देता है और सैन्धक टंकेत क्षार-नील की शक्ति बढ़ानेमें वर्णस्नानागारका कार्य्य देता है और पर टंकेत टस्सा क्षौमके वर्ण-विनाशका। सैन्धक दुग्धेत (Sodium lactate) दुग्धिकाम्लकी समता में मिलकर क्षौमको गन्धोनिक वर्णों से वर्णोदनमें सैन्धक गन्धिदके प्रति क्षौम तन्तुकी रक्षा करता है।

पांशुज तथा सैन्धक लवणके पश्चात् खटिक लवणोंकी गणना है। इसका सिरकेत लाल वर्ण-वेधनमें अथवा वर्ण स्नानागारके शक्तिवर्द्धनमें, जब जलमें इसकी विद्यमानता इच्छित होती है प्रयोग किया जाता है। उदाहरणार्थ तुर्कलाल, मंजिष्ठा, मांजूलिन (gallein) मांजूफ्लीन (galloflavine) तथा अन्य काष्ठ-वर्ण इत्यादि इत्यादि। मगनीस गन्धेत क्षौमको शर्करासे भरणमें तथा पांशुज उद्-

जन इमलेत द्वारा तंतु मुलायम करनेमें प्रयोग होता है। स्फट लवण अनेक वेधिक वर्णोंसे वर्णोदनमें प्रयोग किया जाता है। उदाहरणार्थ मंजिष्ठासे रंगनेमें रेशमको स्फटमूसे वर्णवेध्य करना चाहिए।

लोह लवण भी बहुधा क्षौम भारण तथा वर्णोदनमें प्रयोग होते हैं और कभी कभी मंजिष्ठा वर्णोंसे रंगनेमें वर्णवेधकोंका भी काम करते हैं (विशेषकर श्याम तथा सुर्खवार्कोंमें)। लोहस पाइरो लिगनाइट (Pyrolignite) भारण तथा श्यामवर्णोदनमें अधिक प्रयोग होता है। रेशमके वर्ण वेधन में राग लवणों काभी प्रयोग होता है और यह धातु सरलतासे पूर्ण मात्रामें तंतुपर स्थापित हो जाती है। वंग लवणभी भारणमें तो महत्वपूर्ण कार्य्य करते हैं परन्तु वर्ण वेधनमें उनका प्रयोग अत्यन्त ही न्यून है। अति प्रसिद्ध तो वग तुहरिद (व ह$_4$) है जिसका प्रयोग रेशमको कच्च-श्यामसे रगनेमें तथा नर्म रेशमको काला रंगनेमें तथा मंजिष्ठा अरुणमें स्फट वर्ण वेधककी शक्ति बढ़ाने निमित्त होना है। मंजिष्ठाके चमकदार वर्णोंके निमित्त प्रायः वंग सिरकेत स्फट सिरकेतमें मिश्रित किया जाता है। लगवुड-श्याम से रंगनेमें ताम्र लवण भी प्रयोग किए जाते हैं। नीलिन-श्यामसे रंगनेमें इसका गन्धिद ओषजनवाहक (oxygen carrier) का कार्य्य करता है। श्वेत क्षौमके भारणमें सीस लवणका भी प्रयोग होता है।

क्षौम का क्षारमय (Basic) वर्णोंसे वर्णोदन—इस प्रकारके रंग संसारके सबसे पुराने कृत्रिम वर्णोंमें से है। यह रंगकी गहराई तथा चमकके लिए प्रसिद्ध हैं। इनमें सबसे अग्रसर त्रिदिव्यील दारेन वर्ण पदार्थ है, विशेष कर 'दारील बैंजनी, 'नील हरा' (malachite green) कांतिहरा (Brilliant green) तथा फ्युशीन (fuschine) किन्तु इन वर्णोंकी एक बड़ी निर्बलता यह है कि वह प्रकाशसे नीरङ्ग हो जाते हैं और इस कारण यद्यपि यह बड़े ही सुन्दर और सस्ते भी होते हैं तथापि जिन वस्त्रोंमें वर्णको स्थाई होनेकी आवश्यकता होती है वहां अन्य वर्ण ही प्रयोग किए जाते हैं। इसी कारण यह क्षौम वर्णोदनमें केवल उन्हीं स्थानोंमें प्रयोग किए जाते हैं जहां रङ्गका उड़ जाना इतना हानिकारक नहीं होता अथवा उन रङ्गोंको रङ्गनेमें प्रयोग होते हैं जो दूसरी किसी विधिसे नहीं रंगें जा सकते, जैसे कि रोदामिन, फ्युशीन इत्यादि। कुछ क्षारमय वर्णोंमें सिरकाम्लसे मिश्रित करके वर्ण स्नानागार बनानेकी आवश्यकता पड़ती है जैसे कि ज्वलील- नील, ज्वलिलिन नील, रोदामिन रक्त (Rhodamine scarlet) तथा रोदुलेन नारंगी और स्वर्णिन (aurine)। यही अम्ल भरित-क्षौमोंके वर्णोदनमें भी प्रयोग किया जाता है जिन पर क्षारमय वर्णपदार्थोंसे अनभरित क्षौमोंकी अपेक्षा अधिक चमकदार तथा सुन्दररंग चढ़ते है। रंगोंकी गहराई ताप पर भी निर्भर रहती है। इस समुदायके वर्ण जलका प्रभाव सहन नहीं कर सकते। इस कारण छतरी इत्यादिमें प्रयोग होने वाले वस्त्रोंमें प्रयोग नहीं होते।

अम्ल वर्ण पदार्थोंसे वर्णोदन—इन वर्णोंसे यद्यपि रेशम शीतल जलमें भी रंगा जा सकता है, परन्तु बहुधा गरम जल ही प्रयोग होता है। इससे बहुत सा समय बच जाता है। शीतमें रेशम रंगको बहुत ही शनैः शनैः ही अधिशोषित करता है और यह शक्ति तापके अनुसार बढ़ती जाती है। अम्ल वर्ण दो समुदायोंमें विभाजित किए जा सकते हैं, एक तो वह जो शीघ्र तथा सरलतासे ही फैल जाते हैं और दूसरे वह जो ऐसा नहीं करते हैं। यह वर्ण भी जलका प्रभाव इत्यादि सहन नहीं कर सकते और इस कारण जब ऐसे वर्णों की आवश्यकता हो तब वर्ण तथा वर्ण वेधक प्रयोग करना उचित होगा। किन्तु यह वर्ण प्रकाशमें बड़े स्थाई होते हैं। सबसे अधिक क्षणिक वर्ण त्रिदिव्यील दारेन (tri phenylmethane) समूहके होते हैं। उसके बाद अम्ल अजीव समूह वर्ण (Azodyes) आते हैं जिनमें

प्रकाशमें स्थाई अनेक मूल्यवान् वर्ण सम्मिलित हैं। उदाहरणार्थ अजीव पुशीन, अजीव ऊषिन (Azo-eosine), पीतस्थाई (fast yellow) पीत ताम्रीन (cupramin yellow), स्थाई उर्णनील fast wool blue), विक्टोरिया-श्याम (victoria black) इत्यादि। इनके पश्चात् मंजिष्ठा वर्ण पदार्थ जो प्रकाशमें स्थाई रहते हैं—उदाहरणार्थ मंजिष्ठा रुबीनाल, मंजिष्ठा इरीसोल (alizarine irisol), मंजिष्ठा सफीरोल (Saphirol) मंजिष्ठानील इत्यादि। अम्ल अजीव वर्णों से जिन झलकोंके (shade) रंग रंगे जा सकते हैं उपयुक्त विधियोंके अनुसार वह नीचे संक्षिप्त रूपमें दिए जाते हैं।

लाल—क्षणिक लाल वर्णों में 'स्थाई' अरुण (fast red) अधिक प्रयोग होता है।

नारङ्गी—नारङ्गी २ (orange II) बहुधा एक विस्तृत वर्ण पदार्थ (distributing dye stuff) की भांति प्रयोग होता है। क्रोसीन-नारङ्गी-प (crocein orange G) तथा 'स्थाई नर्म नारङ्गी-प' भी अधिक प्रयोग होते हैं क्योंकि वह प्रकाशमें स्थाई रहते हैं।

पीला—भारत पीत (indian yellow) और चतुर अर्जाविन (Tetraazines) प्रत्यक्ष हरी झलकदार पीला रंगनेमें प्रयोग होते हैं। 'कुनोलिन-पीत' जिनमेंसे विशिष्टरूपमें KT चिह्नदार वर्ण भी अधिक प्रयोग होते हैं।

हरा—'कान्ति-अम्लहरा-६ न (Brilliant acid green 6 B) इस प्रकारके वर्णों में सबसे ही अधिक सुन्दर होता है। कान्ति अम्लनील (Brilliant Acid blue) अथवा वर्णनीलमें स्थाई नर्मपीत (fastx faint yellow) तथा कुनोलिन पीतके मिश्रणसे रेशम चमकदार हरे रंग का रंगा जा सकता है।

नील—इस रंगके लिए विक्टोरिया-नील प्रयोग होता है। इसके अतिरिक्त पूर्ण परिचित पदार्थ प्राचीन नील, क्षौमनील तथा रेशमके ज्वलील नील हैं और रुईके वस्त्रोंके लिए कपास नील (cotton blue), समुद्र नील (navy blue) प्रकाश नील शुद्ध नील इत्यादि इत्यादि हैं।

बैंजनी—ऐसे वर्णके लिए क्षारमय बैंजनी वर्ण भले समझे जाते हैं। अधिक अथवा अत्यन्त ही पक्के रंगोंके लिए बैंजनीन (violamine) तथा विक्टोरिया स्थाई-बैंजनी प्रयोग करते हैं।

काले—इस प्रकारके रंगके लिए अनेक वर्ण पदार्थ हैं किन्तु क्षौम-वर्णोदन में कोई भी भली भांति कार्यकुशल नहीं है। प्रायः सभी लागवुडसे उपलब्ध किए जाते हैं। बहुधा प्रयोगमें आने वाले 'नफ्थलीन-अम्लश्याम ४-न' भरित क्षौमके लिए और अनभरित क्षौमके लिए 'नफ्थिलामिन ४ न' हैं। एवम् गन्धोश्यामिन-श्याम (Sulphocyanine black) भरित अनभरित दोनोंमें ही पूर्ण रूपसे प्रयोग होता है।

निर्बल अम्ल वर्ण पदार्थ—ऐसे पदार्थोंका एक छोटा समुदाय है जो साबुन की किञ्चिद्-मात्रिक सिरकाम्लसे अम्लित वर्णस्नानागारसे रंगे जाते हैं। उनको ऊषिन (eosin) तथा थलीन (phthalein) वर्ण पदार्थ भी कहते हैं और इसमें ऊषिन, गुलाब खिलिन (Phloxine), प्रभिन, (pyronine) रोदामिन तथा गुलाब-विकसिन (Rose bengale) वर्ण पदार्थ भी सम्मिलित हैं। ४०० टंक जलमें १ टंक इमलिकाम्ल या २ टंक सिरकाम्लका मिश्रण कर देनेसे रङ्ग चमकदार हो जाता है।

वर्ण पदार्थों से वर्णोदन—यह ऐसे रङ्ग हैं जो वस्त्रको स्वयम् ही भली भाँति तथा पक्का रंग देते हैं और किसी वेधककी सहायता नहीं चाहते। फिर भी इनका प्रयोग उस मात्रा तक नहीं होता जितना कि होना चाहिए। यद्यपि वे अम्ल वर्ण पदार्थों से भले नहीं होते हैं किन्तु उनसे रंगकी झलकमें किसी भांति कम भी नहीं होते हैं। रेशममें इनके प्रति बड़ा आकर्षण होता है, शीघ्र भली भांति

और पूर्णतः अधिशोषित हो जाते हैं और अन्तमें प्राप्त रंग अन्य वर्णोंसे अधिक स्थाई होता है। भरित क्षौम पर यह रंग जलके प्रति भी अत्यन्त ही स्थाई होते हैं और यद्यपि अनभरित क्षौम पर इतने स्थाई नहीं होते हैं उनको अन्तमें हरिमिन (tannin) से प्रतिक्रिया कर देनेसे यह गुण और भी बढ़ जाता है। यह वर्ण प्रकाशके प्रति स्थाई होते हैं और उनमेंके अनेक स्वच्छन तथा चलन (Milling) के प्रति भी स्थाई होते हैं। इस प्रकार अधिक कठिन प्रतिक्रियाओंको सहन कर सकते हैं जो कि अम्लवर्ण नहीं कर सकते किन्तु इनमें एक दोष यह होता है और कमसे कम साधारण क्षौमके प्रति वह गन्धकाम्लसे अम्लित साबुन स्नानागारमें नहीं प्रयोग किए जा सकते क्योंकि इस प्रकार वह अति शीघ्र ही अधिशोषित हो जाते हैं और इस प्रकार रग एकसार नहीं आता। इन गुणोंके अतिरिक्त यह वर्ण सस्ते भी होते हैं और गहरे रंग देते हैं।

इनवर्णों से रंगनेमें सबसे अधिक लाभप्रद सिरकाम्लसे अम्लित वास्ट सोपका (bast soap) स्नानागार होता है जिसमें वर्णपदार्थके अनुकूल २-५°/० अम्ल पड़ता है। अधिक गहरे रंग लानेके लिए अम्ल की मात्रा १०°/० तक बढ़ाई जा सकती है। थोड़ी थोड़ी मात्राओंमें अम्लको डालनेसे वर्ण अधिशोषन शनैः शनैः तथा एकसार होगा अन्यथा नहीं। निर्बलक्षार इस समुदायके वर्णोंकी उपेक्षा करते हैं और उनका अधिशोषन घटा देते हैं और इसी कारणसे केवल बास्ट साबुन (bast soap) का ही स्नानागार काम नहीं देता क्योंकि वह तो सदैव ही क्षारीय रहता है। क्षारको शिथिल करके किञ्चिन्मात्र अम्लित कर लेते हैं। किन्तु उन वर्णोंमें यह क्रिया हानिप्रद रहेगी जो अम्लोंके प्रति अधिक तीव्र होते हैं, जैसे कांगो तथा बानजो-परप्यूरिन ४नं०। इस समुदायके लाल-वर्ण तो इतने अधिक हैं कि उनकी गिनती गिनाना भी असम्भव है और संसारमें अनेक लालरंग निकल आनेके कारण अधिक तीव्र वर्ण प्रयोगमें नहीं लाए जाते। जलके प्रति स्थाई वर्णों में यह हैं—बानजो स्थाई अरुण ए-ह, बानजो स्थाई रक्त ४ स-न, तथा ८ सन, बानजो अरुण १० न और प्रकाश प्रति स्थाई वर्ण में बानजो हलका अरुण (Benzo light red) बानजो हलका लाल (Benzo light ruby) बानजो हलका बोरद इत्यादि। भारित क्षौमके विषयमें बानजो परप्यूरिन नहीं होती। नारंगी रंगनेके लिए टोल्वीलिन-स्थाई-नारंगी प्रयोग किया जाता है जो जल तथा प्रकाश दोनों हीके प्रति स्थाई होता है। प्रकाशके प्रति स्थाई अन्य वर्ण इस रंग के बानजो हलका नारंगी, बानजो स्थाई नारंगी तथा प्लुतो नारंगी हैं। पीला रंगने के निमित्त सबसे प्रसिद्ध क्रिसो फेनिन है क्योंकि यह प्रकाशके प्रति और जलके प्रति विशिष्ट रूपसे स्थाई होता है। क्रिसामिन तथा हरिद्रामिन (Chloramine) भी जलके प्रति स्थाई होते हैं। हरा रंगने के निमित्त जलके प्रति स्थाई बानजो-गहरा-हरा (Benzo dark green), बानजो हरा (Benzo green) तथा बानजो जैतून हरा (Benzo olive green) है। अधिक चमकदार होने के कारण क्षार मय हरे वर्ण भले समझे जाते हैं या रेशम पर पहले स्थायी हरा से रंग कर ऊपरसे क्षार मय हरा से रंग देते हैं। नीले वर्ण बड़ा ही महत्व पूर्ण कार्य्य करते हैं, विशेष रूपसे अर्द्ध क्षौमके रंगनेमें। उनका अधिशोषन इतनी सरलता से नहीं होता है और उनमें अधिक मात्रा में सिरकाम्लकी आवश्यकता पड़ती है। जलके प्रति स्थाई वर्ण कांति, एज़ूरिन ५ ए कांति, स्थाई नीला न तथा ३ गन और प्रकाशके प्रति स्थाई बानजो स्थाई नीला तथा कांति स्थाई नीला हैं। रेशम को बैंजनी रंगनेमें स्थायी वर्णों का प्रयोग बहुत ही कम होता है। उनमें के प्रसिद्ध वर्ण जल तथा प्रकाश दोनों के प्रति स्थाई होते हैं जैसे कि कांति बानजो, स्थाई-बैंजनी ४ नह तथा ५ अह। खाकीके लिए भी इस समुदायके वर्ण अधिक

प्रयोग नहीं होते अधिक परिचित बानजो खाकी ३ प, बानजो चर्मखाकी न, प, तथा अ (Benzo chrom brown B, G, & R,) और टोलवीलिन स्थाई खाकी २ अ (Toluelene fat brown) हैं जो सब जल तथा प्रकाश दोनों ही के प्रति स्थाई रहते हैं। श्याम वर्ण में ऐसे स्थायी वर्ण केवल अर्द्ध क्षोममें ही प्रयोग होते हैं (अजीव श्यामके अतिरिक्त)

द्वयजीव वर्ण पदार्थों से वर्णोंदन (Diazotised dyestuffs):—इस प्रकारके सभी वर्ण पदार्थ हैं इसी कारण जो कुछ उनके विषयमें तथा उनके प्रयोग करने की विधि के विषयमें कहा जा चुका है इस विषयमें भी पूर्णतया सत्य है। बहुधा वेधक की सहायता बिना प्राप्त वर्ण अधिक स्थाई नहीं होते किन्तु वे अति स्थाई वर्णों में परिणत किए जा सकते हैं यदि उनमें केवल एक मुक्त अमिनो मूल हो। प्रथम इसका अजीव करण (diazotised) किया जावेगा तत्पश्चात् संयुक्त (couple)। इस प्रकारसे प्राप्त वर्ण अपने स्थाईपन में प्रसिद्ध होते हैं और यद्यपि प्रकाशके प्रति साधारण रूपसे ही स्थाई होते हैं जल तथा पुनर्वर्णोंदनमें इससे अधिक स्थाई वर्ण प्रायः कोई नहीं होगा।

गन्धोन वर्ण भी स्थायी वर्णों ही का एक अंग हैं और अन्य वर्णों से इस प्रकार विभिन्न हैं कि उनमें पशु तन्तु के प्रति वनस्पति तन्तुकी अपेक्षा अधिक आकर्षण होता है। अनभरित क्षौम पर के रंग प्रकाश तथा जल सभीके प्रति स्थाई होते हैं किन्तु भरितक्षौम परके उतने नहीं। सभीके प्रति स्थाई प्रसिद्ध वर्ण गन्धोन पीत ५ प तथा अ (sulphone yellows 5 G & R) गन्धोन श्यामिद वर्ण तथा गन्धोन श्यामिन-श्याम (sulpho-cyanine black) हैं। इस दूसरे वर्णसे रेशम सुन्दर काला रंग जाता है जो अम्ल वर्णों से प्राप्त नहीं हो सकता।

वेधित वर्णोंसे वर्णोंदन :—यदि जल, वायु, उबालना, ताप चक्रन (milling) इत्यादिके लिए अधिकसे अधिक स्थाई वर्णों की आवश्यकता हो तो ऐसे वर्णों की शरणमें जाना पड़ता है। ऐसे वर्ण छतरीके कपड़ोंमें, तम्बुओं, झंडों, खामों तथा चित्रित वस्त्रोंमें प्रयोग किए जाते हैं परन्तु यह वर्ण रेशमके गुणोंके विपरीत होते हैं अर्थात् ह उसकी कांतिमें बहुत हानिकारक हैं इनसे रङ्गने के लिए रेशमको प्रथम वर्ण वेधित कर लेना चाहिए। स्फट वर्ण वेधक प्रायः रेशममें कभी प्रयोग नहीं किए जाते किन्तु ऊनके लिए कभी कभी प्रयोग होते हैं। फिटकरी तथा गन्धेत प्रयोग किए जाते हैं। तन्तु में अम्लिक तथा क्षारिक दोनों ही गुण होते हैं और इस मिश्रणको विभाजित करके स्फटमूको अधिशोषित कर लेता है उबालनेसे प्रतिक्रिया अधिक पूर्ण हो जाती है परन्तु जब तक लवण तन्तुके अन्तः भागमें न घुस गए हों उन्हें विभाजित नहीं करना चाहिए। राग प्लविद, राग फिटकरी तथा द्विरागेत भी ऊनके साथ प्रयोग किए जाते हैं। फिटकरी द्वारा रागमूकी तो अधिक मात्रा तन्तुमें घुस जाती है परन्तु उसकी अपेक्षा द्विरागेत रंगनेमें लाभप्रद रहता है। राग प्लविद ऊनको भली भांति वेधित करता है क्योंकि वह धीरे धीरे सरलतासे विभाजित हो जाता है और इसमें इमलेतोंकी भी आवश्यकता नहीं पड़ती। किञ्चिदमात्र काष्ठिकाम्ल भी डाल दिया जाता है। इस प्रकार अधिशोषित रागिक अम्ल तंतुके स्पर्श गुण तथा बिनावटको हानि नहीं पहुँचाता और न उत्पादित उदप्लविकाम्लही हानिकारक होता है। सुन्दर चमकदार तथा पक्के रंग द्विरागेतसे ही आते हैं। इसके लिए ऊनके भारका २-४% पांशुज द्विरागेत ५०-१०० गुने जलमें घोलते हैं। इसमें ऊनको १-१½ घण्टा उबालकर निकालकर धो लेते हैं। बस ऊन रंगनेके लिए तैयार हो गई। बहुधा कुछ गन्धकाम्ल भी डाल देते हैं परन्तु काष्ठिकाम्ल अधिक लाभप्रद होता है। प्रायः द्विरागेत रागेत तथा रागिकाम्लमें विभाजित होता है। इस प्रकार उत्पादित रागिकाम्ल उनमें अधिशोषित

हो जाता है और रंगनेमें अवक्रत हो जाता है। कभी कभी भस्मिक राग लवणभी रेशम पर प्रयोग किए जाते हैं। रेशमके साथ बहुधा लोह लवण प्रयोग होते हैं। अवक्रत क्षौम को लोहेके (Pyroliginite) के घोलमें ६०°शके लगभग ताप (र मर्दित करते हैं। फिर थोड़ी देर तक वायु संचालन करके उसे धो डालते हैं। पुन: पुनः ऐसाही करनेसे क्षौम भार २०० से ३०० प्रतिशत तक बढ़ाया जा सकता है। कठोर जलसे इस क्रियामें सहायता मिलती है परन्तु रंग कुछ भद्दा पड़ जाता है। यह भद्दा पन उदहरिकाम्लके बहुतही हलके घोलमें कुछ जैतूनका तैल मिलाकर धोनेसे दूर हो जाता है। तापित क्षौममें भरने तथा रंगनेमें लोह नोषेत प्रयोग करते हैं। इसके घोलमें रेशमको मर्दन करके धो लेते हैं। फिर साबुनके घोलमें जिसमें ओलीन साबुन तथा सोड़ा पड़ा रहता है, डालदेते हैं। इस प्रकार लोह उदौषिद अवक्षेपित कर देनेके बाद कठोर जलसे धो डालते हैं। बार बार ऐसा ही करते हैं, यहां तक कि भार बहुत बढ़ जाता है। प्रत्येक क्रियामें भार लगभग ४°/. बढ़ता है, रंग कुछ खाकी पड़ जाता है परन्तु चमक बनी रहती है, फिर यह गाढ़े रंगोंसे रंग लिया जाता है। लोह से भरित तंतु पर फिर वंगस हरिदके साथ कुछ कत्था मिलाकर श्याम क्षौम को वर्ण वेधित करते हैं। हलके रङ्ग वालोंको वंगिक हरिदसे वर्ण वेधित करते हैं। तंतुको वंगिक लवणके घोलमें डालकर पूर्ण अधिशोषित हो जानेके बाद निकाल लेते हैं और फिर हलके सैन्धक उदौषिद तथा केवल जलसे ही धोकर वंगिक उदौषिदको स्थिर कर देते हैं। कठोर स्पर्शको दूर करनेके लिए साबुन-घोलमें उबालते हैं। भार प्रायः २५°/. बढ़ जाता है। अधिक तीव्र होनेसे वंगिक हरिद बड़ा हानिप्रद होता है। अति संकुचित कर देनेके अतिरिक्त यह अनेक वर्णोंको नाश ही कर डालता है यद्यपि वह फिर रंगे जा सकते हैं। इनके अतिरिक्त अनेकानेक पदार्थोंसे उत्पन्न हरिमिकाम्ल (टैनिकाम्ल), मांजूफलि काम्ल, हरिमिन (Tannin) इत्यादि भी प्रयोग होते हैं।

रेशमको मंजिष्ठा वर्णसे रंगनेमें असाधारण मात्रा लग जाती है जैसे कि अरुणमें २०—३०°/. मंजिष्ठा लेइके रूपमें प्रयोग होता है। केवल ऐसे ही वेधित वर्ण प्रयोग किए जाते हैं जो प्रकाशमें स्थाई रहते हैं। रेशमके साथ केवल नियमित मात्रा तक ही ऐसे वर्ण प्रयोग किए जाते हैं क्योंकि पुनर्पुनःता तथा वर्ण स्नानागार से उसकी चमक स्पर्श तथा लचक को हानि पहुँचता है। ऐसे वर्ण पदार्थोंसे रंगनेका वास्तविक अर्थ स्थाई वर्ण-झील (lake) उत्पादन ही होता है। इस मतलबका केवल राग, स्फट तथा लौह ही होते हैं और इनमें भी केवल रागम् ही सबसे अधिक स्थाई प्रत्येक विचारसे रहता है। चमकदार तथा ज्वाल अरुणके निमित्त और नारंगी रंगोंके लिए स्फट का प्रयोग होता है यद्यपि उनका प्रयोगिक लाभ केवल यहीं तक नियमित नहीं है। लोह वर्णवेधक केवल गहरे रंगोंके लिए प्रयोग होते हैं।

लाल रंगनेमें बहुधा मंजिष्ठा-अरुण तथा मंजिष्ठा बोरदका प्रयोग होता है जो स्फट, राग तथा लौह तीनों ही वर्ण वेधकोंके साथ प्रयोग होते हैं यद्यपि पूर्वके साथ चमकदार लाल, माध्यमिकसे गहरा लाल तथा अन्तिम से अत्यन्त ही गहरा बैंजनी रंग आता है। नारंगी रंगके लिए केवल मंजिष्ठा-नारंगी-अ ही विचारशील है। इससे राग वर्ण वेधकोंके साथ खाकी, स्फटके साथ नारंगी तथा लोहके साथ कुछ कुछ काला खाकी रंग आता है। खाकी तथा नारंगी तथा दोनों ही रंग साबुन को छोड़ कर प्रत्येक विचारसे स्थाई रहता है। लौहसे रंगे वस्त्र दूरसे सुन्दर न लगने के कारण उनका प्रयोग अब छोड़ सा दिया गया है। पीले रंगनेके साथ केवल राग वर्ण वेधक ही प्रयोग होता है। अधिकतर प्रयोग होने वाले वर्ण माजू-वनस्पतिन (Gallo-flavine), वेधित पीत (mordant yellow) तथा अंगारिन पीत इत्यादि

एवम् मंजिष्ठा पीत-अ, राग-पीत-ग-स हैं जो साबुन, क्षार, प्रकाश इत्यादि सभीमें स्थाई होते हैं। हरा रंगनेके लिए स्फट—वर्ण वेधकोंके साथ केवल सीरूलीन (coeruleines) और मंजिष्ठा-वीरीदिन ससा (viridine) काप्रयोग होता है किन्तु राग वर्ण वेधकोंके साथ इन दो के अतिरिक्त रागोषेन-हरा (chromoxane green) भी प्रयोग होता है और लोहेके साथ केवल सीरूलीन हीका प्रयोग होता है। नीले रंगनेके लिए मंजिष्ठा नील तथा आकाशिन नील (celestine blue) का प्रयोग स्फटाके साथ होता है। यह दोनों हो क्षार तथा प्रकाशके प्रति स्थाई रहते हैं। समस्त वर्ण वेधित वर्णों में वास्तव में एक वर्ण झोल बन जाती है जो जलमें अनघुल होती है और इस प्रकार रंगनेके साथ साथ तन्तु भारण भी होजाता है परन्तु यह भारण अनिच्छित, अत्यन्त ही न्यून और किञ्चिद्मात्र भी हानिप्रद नहीं होता है जो सबसे महत्व पूर्ण है।

गन्धक वर्ण पदार्थों से वर्णोदन—यह बात प्रारम्भ ही में स्पष्ट हो जानी चाहिए कि गन्धक वर्ण पदार्थों से किञ्चिदमात्र भी रंगने के लिए वर्णका अपने भारसे तिगुने अथवा चौगुने भार सैन्धक गन्धिदमें घोल करना पड़ता है, परन्तु यह एक तीव्र क्षार है और तीव्र क्षारोंका प्रभाव क्षौम तंतु पर हानिकारक होता है। इसी कारणसे अनेक दिनों तक इन रंगोंका प्रयोग रुका रहा, परन्तु अब ऐसे पदार्थ ढूंढ़ निकाले गए हैं जो इस हानिको पूर्ण कर देते हैं। उदाहरणार्थ जिलाटीन, हरिमित, दुग्धोनिकाम्ल तथा सैन्धक दुग्धेतके मिश्रण से उसका प्रभाव उतना हानिकारक नहीं रहता परन्तु बिलकुल दूर नहीं होता। यदि कोई ऐसा पदार्थ मिल जावे जिससे यह हानिकारक प्रभाव बिलकुल ही जा ा रहे तो क्षौम वर्णोदनमें एक महत्व पूर्ण वृद्धि हो जावे क्योंकि यह सब वर्ण प्रकाश, अमोनिया, धोने, उबालने, जल तथा अधिक रङ्गने इत्यादि सबके प्रति अत्यन्त स्थाई होते हैं।

भट्टी वर्ण पदार्थों से (vat-dyes) वर्णोदन—प्राचीन समयमें केवल नील इस समुदायका एक मात्र व्यक्ति था किन्तु अब तो अनेक वर्ण आविष्कृत होगए हैं और प्रसिद्ध भी होगए हैं। सबसे प्रथम बेडिशी अनं ग्रीन (Badische Indanthrene) तैयार हुआ जो अत्यन्त ही सुन्दर स्वच्छ नीला रङ्ग था। इसके बाद उसी समुदायका वनस्पंग्रीन (flavanthrene) और व्यालद्रिन (violanthrene) तैयार हुए। साथ ही साथ नीलके अपने कृत्रिम लवणजन (Halogen) यौगिक तैयार किये गए जो सब ही पक्के नीले रंगथे आजकल समस्त वर्ण संसार इन्ही वर्णों से रचा जा सकता है। प्राचीन समयमें एक मात्र नीलको अति उच्च स्थान पर वर्ण राजका आसन प्राप्त था किन्तु अब उसकी बराबरी करने वाले अनेक निकल आए हैं और कोई भी उसकी ओर उस दैविक श्रद्धा से नहीं देखता है। यह रंग जलमें अनघुल होते हैं किन्तु अवकृत पदार्थों से वह घुलनशील पदार्थोंमें परिणत कि.ए जाते हैं जो तीव्र क्षारकी विद्यमानतामें करना पड़ता है। इस प्रकार प्राप्त घोल भट्टीगार कहलाता है और इसमें रेशम तापकी सहायतासे या बि ा ही उसके रंग दिया जाता है। अंग्रीन तथा सेवारिक (Algol) वर्णके लिए तो उदगन्धिद या कभी २ दस्त चूर्ण और द्विगन्धित् की भट्टीका प्रयोग होता है। नए वर्ण पदार्थ जो पहिले केवल रुई पर ही प्रयोग किये जाते थे अब रेशम पर भी प्रयोग होने लगे हैं और उनसे असाधारणतया सुन्दर और चमकदार रंग आते हैं। किन्तु मूल्यवान् होनेके कारण उनका प्रयोग बहुतही नियमित है। परन्तु यद्यपि रुईके साथ ही मूल्यवान रहते हैं रेशमके विषयमें यह क्लिष्टता नहीं रहती है क्योंकि उसमें इतने मूल्यवान् वर्ण सरलतासे प्रयोग किए जा सकते हैं। प्रत्येक भट्टी वर्ण किसी न किसी नियमित तापक्रमही पर प्रयोग होता है जिस पर उस रंगका प्रभाव बहुत ही अच्छा रहता है और उस तापकी नीचाई या ऊंचाईके अनुसार यह

'शीतल' तथा 'तप्त' दो समुदायोंमें विभाजित किए जा सकते हैं। 'शीत' में तापक्रम साधारणतया २५-३०°श तक रखना पड़ता है और 'तप्त' में ६०-६५°श तक। इस अभिप्रायसे कि रंग समस्त वस्त्रमें पहुँच जावे और कहीं पर वायु के ओषजन द्वारा ओषदीकृत न हो जावे, वस्त्रको पौनसे लेकर एक घन्टे तक भिगोए रखना पड़ता है। अब बिना ही पानीमें फटकारे हुए वस्त्र निचोड़ कर ३०-४० मिनट तक वायुमें फैला दिए जाते हैं जिससे रंग ओषदीकृत हो जाता है। अब उनको पानीमें धोकर १००० भाग स्नानागार द्रवमें १—२ भाग व्यापारिक गन्धकाम्ल डालकर उसमें वस्त्रोंको अम्लित करते हैं। अन्ततोगत्वा वस्त्रको फिर जलमें खूब धोते हैं और गर्म तथा उबलते हुए जल द्वारा साबुनसे धोते हैं। यह रङ्ग ऐसे स्थाई होते हैं जैसे कि पहले कभी न थे और विशेषकर यह रंग हरिन्के प्रति भी स्थाई होनेके कारण इनमें विशिष्ट लाभ यह रहता है कि यह कच्चे रेशम तथा रुईके साथ ही अम्लित किए जाकर फिर $उ_2$ $ओ_2$ से वर्ण विनाश्य भी किए जा सकते हैं। बहुतसे ऐसे वर्ण ठीक ठीक एकसार नहीं फैलते हैं और मिश्रित वर्णों से तो एकसार रंगना असम्भव ही सा है। यह क्लिष्टता अब तक दूर नहीं की जा सकी।

प्राकृतिक वर्ण पदार्थोंसे वर्णोंदन:—कृत्रिम वर्ण पदार्थोंकी अपेक्षा ऐसे रंगोंका प्रयोग बहुत ही कम हो गया है। जहां कहीं देखा कृत्रिम वर्ण ही काममें आते हैं, न तो अब नील ही रह गया और न फस्टिक तथा फस्टिक उत्पादित अन्य वर्ण। हां अर्चिल (orchil) अभी प्रयोग किया जाता है। इसके रंग कृत्रिम वर्णोंसे किसी भांति भी कम सुन्दर नहीं होते और न उनसे कम स्थाई। साबुन तथा काष्ठ साबुनमें सिरकाम्ल तथा गन्धकाम्ल डालकर या बिना डाले ही यह रंग रंगा जा सकता है। प्राचीन रंगरेज़ कहीं कहीं कचनील भी प्रयोग करते हैं किन्तु अब इसका स्थान कचनील अरुण, कचनील रक्त, तथा अजीव-कचनील इत्यादि नामके अम्ल-वर्ण पदार्थों ने ले लिया है क्योंकि उनसे रंगनेमें सरलता पड़ती है। वेल्द (weld), तथा उससे उत्पादित अन्य वर्ण भी अभी क्षौम-वर्णोंदनमें यह महत्वपूर्ण कार्य्य करते हैं क्योंकि यह वर्ण साबुन तथा प्रकाश दोनों ही में स्थाई होते हैं। इसमें स्फटा वर्णवेधक प्रयोग किए जाते हैं और यदि शुद्ध पीले रंगकी इच्छा हो तो स्फटा लोहेके लवणोंसे मुक्त होना चाहिए। इस के स्थानमें अब गहरे पीले रंगके क्राइसो दिफ्यिन (chrysophenine) हालसे ही प्रयोग होने लगा है, और हलके पीले रंगके हरिदामिन पीत ए ए (chloramine yellow G G)। अन्तिम वर्ण अम्लोंके प्रति भी स्थाई रहता है जहां कि अन्य दोनों वर्ण स्थाई नहीं हैं। प्रकाशमें उड़ जानेके कारण नीलोरुण (Indigo carmine) भी अवहृत सा ही है और कुइरसीत्रान (Quercition) भी कभी कभी ही प्रयोग होता है।

काला रङ्ग—समस्त रंगोंमें इस रंगका रेशम पर अधिक प्रचार है और प्रायः अन्य सब रंग मिलकर भी इसकी समता नहीं कर सकते। इसी कारणसे श्याम वर्णोंदन तथा वर्ण-वर्णोंदन दो पृथक् पृथक् ही व्यापार हो गए हैं। अनेक कार्य्यालय ऐसे हैं जो केवल काला रेशम ही रंगते हैं और इस कारण सुन्दर पदार्थ तैयार करनेमें समर्थ हैं। इसके लिए दो विशेष पदार्थ लागवुड तथा लोह माजूटैनेत हैं (Iron Gallotannate)। दोनोंकी प्रयोग विधियां अनेक हैं। बहुधा मिश्रित रूपमें प्रयोग होते हैं। लागवुडसे रंगना एक ओषदीकरण क्रिया है। उसका वर्ण पदार्थलोह वर्णवेधक द्वारा ओषदीकृत होकर हीमटज़ाइलीनसे हीमैटीनमें परिणित हो जाता है। साथ ही साथ उत्पादित रूप (Nascent State) ही में हीमैटीन लौहसे मिलकर एक अनघुल काला पदार्थ बना देता है। इसीसे तंतु नीलाश्याम रंग जाता है परन्तु उसका भार नहीं बढ़ता।

लागवुडके स्थानमें कृत्रिम वर्ण प्रयोग करनेके सब उद्योग निष्फल ही रहे उनके स्थानमें प्रयोग होने लायक अम्ल श्याम वर्णों में इतनी रंगने की शक्ति नहीं और न श्याम-अजीव वर्ण पदार्थों में ही यह शक्ति है। किन्तु नीलिन-श्याममें काफी सफलता होती प्रतीत होती है। यह सस्ता रहता है। यद्यपि इससे रंगनेके उद्योग सन् १८६७ से पहिले से हा किए जा रहे हैं परन्तु उसमें बहुत ही कम उन्नति होसकी। अब भी रंग सुन्दर नहीं कहे जासकते और उनसे एकसार रंगना असम्भवसा है। वर्णत्रयोंदनमें अन्य समस्त रंग सम्मिलित हैं। एक ही रंग से रंगना तो अत्यन्त सरल है। हां मिश्रित रंगोंसे रंगना कुछ कठिन है। मिश्रित रंग तैयार करने में इस बातका विशेष ध्यान रखना पड़ता है कि रंग यथा सम्भव एक ही गुणों के हों उनका तन्तुके प्रति आकर्षण एक ही हो तथा एक ही तापक्रम पर रङ्गते हों। अन्यथा धब्बे पड़ जाने का भय बहुत रहता है। बहुत रंग तीन क्रमके होते हैं:—हलके, माध्यमिक तथा गहरे। यहां तीनों क्रम एक ही रंगकी भिन्न भिन्न मात्राएं प्रयोग करनेसे आ जाते हैं। प्रथममें श्वेत, आइवरी, मक्खन वर्ण, मांस वर्ण, गुलाबी, आकाशमय, धानी तथा गेंहुआ है। श्वेत वर्ण रेशम को वर्ण विनाश्य करनेसे ही आ जाता है। माध्यमिक तथा गहरे रंगमें साधारण रंगों से किञ्चिद्मात्र भी कठिनता नहीं होती किन्तु ऐसे रंगोंका मिश्रण जो कि किरण चित्र (Spectrum) में साथ साथ नहीं आते जैसे कि लाल, हरा, गुलाबी, नीला, पीला, बैंजनी इत्यादि व्यापारिक वर्ण पदार्थों से नहीं आ सकते। काष्ठवर्ण तथा मटील रंगका रंगनाभी एक कठिन कार्य्य है। बहुधा मटीले रंगसे वस्त्रको रंग के ऊपरसे इच्छित रंगसे फिर रंग देते हैं। भरित अनभरित सभी प्रकारके रेशम रंगे जाते हैं। भरितमें हलके तथा माध्यमिक वर्णमें केवल रंग ही प्रयोग किया जासकता है। गहराई में बढ़ाने पर लौह तथा कत्र (Cutch) से भी भारित किया जा सकता है।

शाप क्षौम वर्णोंदन—शाप क्षौमकी प्रथम आध आध पावकी लच्छियां बना ली जाती हैं और स्थान स्थान पर सूत से बांध दी जाती हैं। अब उसको स्वच्छ करनेके लिए २५°/० सैन्धक क्षारके स्नानागारमें डालकर उसे खूब मर्दित करते हैं। फिर वहां से निकाल कर धोकर उसे आध घंटे तक उबलते हुए मारसीलीज़ साबुनके २०°/० घोलमें धोनेके बाद निकाल कर जलसे भली भांति धो डालते हैं। अब यह निर्णय कर लेना चाहिए कि यह रेशम हाथसे बिना जानेको है अथवा मशीनसे क्योंकि हाथसे बिनने वाला एंठा सा रह सकता है और यंत्र वाला चिकना होना चाहिये अन्यथा उसमें सूजा न चलेगा। दोनोंके लिए उसी भाँति रंगना पड़ता है जैसे कि रेशम, परन्तु यंत्र वालेमें रंगे हुए लच्छे कांतिमय किये जानेके बाद स्वच्छ शीतल जलके स्ननागारमें जिसमें २०°/० सिरकाम्ल तथा ७०°/० नर्म करने वाला द्रव पड़ा रहता है पांच बार भली भांति धोये जाते हैं। तत्पश्चात् तान कर, कूट कर शुष्क करके फिर तान दिये जाते हैं। वर्णके विषयमें यह बात है कि हाथसे बुननेके लिए ऐसे वर्ण पदार्थ प्रयोग हो सकते हैं जो जलमें उतने स्थाई नहीं होते जैसे कि मशीन वालेमें। बहुधा सब अम्ल वर्ण समुदायके ही होते हैं और श्याम वर्णके लिए कच्च, लागवुड तथा फिटिक प्रयोग होते हैं।

अन्य तंतु तो रंगनेके बाद केवल धोकर सुखा लिए जाते है वरन् रेशममें रंगनेके बाद भी अनेक क्रियाएं करनी पड़ती हैं जिनमेंसे कुछ तो रसायनिक और कुछ केवल भौतिक ही हैं। काष्ठ साबुनके अम्लित स्नानागार से निकलने पर रेशममें कांति तथा स्पर्श गुण कुछ नहीं होता और रङ्ग भी भद्दा तथा मैला होता है। इसको कांतिमय करना पड़ता है और इसकी अनेक विधियां हैं। बहुधा गन्धकाम्ल या सिरकाम्लके घोलमें, और

विशेष पदार्थों के लिए इमलिकाम्ल तथा नीबूइ-काम्लके घोलमें धोनेसे यह बातें आ जाती हैं। यदि क्षोमको नर्म रखनेकी भी आवश्यकता हो तो भस्मित फिटकरी तथा भस्मित स्फट सिरकेत प्रयोग करना चाहिए। भरित श्याम-क्षौमको नर्म करने तथा कांति बढ़ानेके लिए तैलका प्रयोग किया जाता है। भौतिक क्रियाओंमें शुष्क करना, तानना, चिकनाना तथा पालिश करना है जो सब यन्त्र द्वारा ही हो जाते हैं।

समस्त प्राकृतिक क्षौमोंमेंसे केवल पांचही कुछ विस्तृत प्रयोगमें आते हैं जैसे पलंथस क्षौम, रिजीनस क्षौम, फग्र क्षौम, ओक तथा टस्सा-क्षौम, इनमें से ही अन्तिम पदार्थ ही ने व्यापारिक रणमें विजय प्राप्त की है और इसका व्यापारिक नाम 'काष्ठ-क्षौम' है। यह असली रेशमकी तरह दुहरा तारका ही होता है। असली क्षौम वायु नलियोंसे रहित, चिकना तथा एकसार होता है। इसमें वायु नलियां होती हैं और लम्बाईमें धारियां रहती हैं। इसका एक विशिष्ट गुण यह है कि जहां जहां पिंडी पर एक तार दूसरे तारको पार करता है वहां पर चपटा पड़ जाता है। तूत क्षौममें यह बात नहीं होती। धोने पर यह असली रेशमकी अपेक्षा अधिक चमकदार तथा कांतिमय निकलता है। इसका रंग खाकीसे मटमैला खाकी तक होता है किन्तु शुद्ध क्षौमका श्वेतसे लेकर पीला तक।

इसको रंगनेके विषयमें यह बात प्रचलित है कि इनमें वर्णके प्रति असली रेशमसे कम प्रेम होता है परन्तु वास्तवमें इसमें रंगोंके प्रति अधिक प्रेम देखागया है और तूत क्षौममें तो अत्यन्त अधिक प्रेम होता है। रेशम पर प्रयोग होनेवाले सब रङ्ग इसपर भी प्रयोग हो सकते हैं। हलके तथा सूक्ष्म रङ्गोंके लिए क्षारमय वर्ण अधिक भले रहते हैं। अम्ल वर्ण पदार्थों से भी यह भली भांति एक सार रङ्गा जाता है। स्थायी वर्णोंमें भी टस्साके प्रति विशिष्ट प्रेम होता है किन्तु वेधिक वर्ण इसमें प्रयोग नहीं हो सकते। भारण तथा श्याम वर्णोदनकी विधि शुद्ध क्षौमकी सी ही है। अम्लित माध्यममें रङ्गनेवाले अजीव वर्ण भी प्रयोग किए गए हैं किन्तु उससे पूर्ण श्याम रङ्ग नहीं आता है। रङ्गनेके बाद चमकाने, शुष्क करने, तानने तथा पालिश करने इत्यादिकी विधि उसी प्रकार है।

ऊर्ण—क्षौममें क्षारमय वर्ण पदार्थ एक नियमित मात्रा तक ही प्रयोग होते हैं। यदि प्रयोग भी होते हैं तो शिथिल (Neutral) द्रवमें या किञ्चित् मात्र सिरकाम्लित द्रवमें ८०° श पर रंगेजाते हैं। तापक्रम बढ़ जानेसे रङ्ग निर्बल पड़ जाता है। बहुधा क्षारमय वर्ण ऊनके अतिरिक्त रेशम पर अधिक तीव्र चढ़ते हैं उदाहरणार्थ साफ्रानिन, कांति हरा तथा दारीलिन नील (Methyleneblue)। ऊर्ण-क्षौमके प्रति अम्ल वर्ण प्रयोग होते हैं। नीचे तापक्रम पर और अधिक अम्लके साथ तो रङ्ग अधिकतर रेशममें घुस जाता है और अधिक तापक्रम पर इसके विपरीत ऊनमें अधिक रंग जाता है। इस प्रकार यह आवश्यकता कि ऊन अधिक रंगी होनी चाहिए, तापक्रमको ठीक रखनेसे तथा अम्ल की मात्रा उचित रखनेसे पूरी हो सकती है। यथा सम्भव अम्लकी अधिक मात्रा न रहनी चाहिए, विशेष कर हलके रंगोंमें उर्ण क्षौमको रंगनेमें स्थिति वर्ण भी उचित कार्य करते हैं। उनमेंके अनेक स्थाई होते हैं। वह भी शिथिल (neutral) तथा किञ्चिद् अम्लित माध्यममें प्रयोग किएजाते हैं। अम्लकी मात्रा वर्णके अम्लोंके प्रति स्थाई होनेपर निर्भर रहती है। अत्यन्त ही स्थाई रंग कांगो तथा बानजो-परप्यूरिन इत्यादि हैं।

अर्द्धक्षौम तन्तु रेशम तथा सूतके मिश्रणसे बनते हैं और इसीलिए उन्हें वस्त्र स्वरूपमें ही रंगना पड़ता है। आधुनिक प्रणालीमें केवल स्थायी वर्ण ही प्रयोग किए जाते हैं क्योंकि उनसे रेशम तथा सूत दोनों ही एक ही स्नानागारमें रंग जाते हैं। हल्के स्नानागारसे हलके रंगआते हैं। इन रंगों से इच्छित रंग प्राप्त होने पर बादको क्षारमय वर्ण पदार्थोंसे रंग कर दिया जाता है। जलका प्रभाव सहनेवाले पदार्थोंमें (जैसे कि छतरीके लिए)

अजीव वर्ण प्रयोग में आते हैं। भट्टी वर्णसे भी स्थाई रंग प्राप्त होते हैं और उसी भांति प्रयोग किए जाते हैं जैसे कि रेशमके प्रति। अर्द्धक्षौम पर श्याम रंग लाना सबसे कठिन है और बहुधा प्राचीन कचविधिसे ही रंगा जाता है। कचस्नानागारमें प्रथम तन्तुको दो तीन घण्टे तक ५०°श पर ताम्र गन्धेत एवम् लोहस गन्धेतके मिश्रणसे वर्ण वेधित करते हैं और फिर लागवुड फस्टिक तथा १५°/० साबुनके घोल द्वारा रंग देते हैं। श्याम नील रंगनेके लिए तन्तु प्रथम नीला रंग लिया जाता है। एक कठिनता दोनों तन्तुओं पर एकसार रंग लानेकी पड़ती है और इसको दूर करनेके लिए लागवुडकी स्फटा झील भली भांतिसे प्रयोगमें आ गई है।

कृत्रिम क्षौम रंगनेमें उन सब रंगोंका प्रयोग हो सकता है जो सूतके साथ प्रयोग होते हैं किन्तु सब प्रकारके कृत्रिम तन्तु इस विषयमें एकसे ही नहीं रहते। छिद्रोज, स्निग्धोद तथा शारदोनेत क्षौम अवश्य एक से ही रहते हैं और सबके निमित्त स्थायी वर्ण भले रहते हैं। गन्धक वर्ण भी सुन्दर कान्तिमय वर्ण देते हैं। क्षारमय वर्ण पदार्थोंके रङ्ग अधिक पूर्ण नहीं होते वरन् गहरे रङ्ग रेशम को हरिमिन तथा वमन-इमलिक-लवण (Tartar emetic) द्वारा वर्ण वेधित कर लेनेसे आजाते हैं। शुद्ध क्षौमकी ही तरह से भट्टी वर्ण भी प्रयोग किए जाते हैं और इस समुदायके सभी सदस्य छिद्रोज तथा स्निग्धोद क्षौम उचित रहते हैं परन्तु शारडोनेतमें केवल वही प्रयोग किए जा सकते हैं जो शीतल दशामें रङ्ग सकते हैं। इस प्रकारसे प्राप्त सभी रङ्ग सब प्रकार स्थायी रहते हैं।

dyeing	वर्णोदन
shade	झलक
Fast Red R	स्थाई अरुण अ
Bath	स्नानागार, आशय
Ventilated	वातायनिक
Orange II	नारङ्गी २
Tetra azines	चतुरजीविन्
Tannic acid	हरिमिकाम्ल
Diazotisation	द्वयजीव करण
Erythrosine	ऊषिन
Tannin	हरिमिन
neutralise	शिथिल
Eosine	प्रभिन
Stabilise	स्थिर करना
Phloxime	गुलाब खिचित
Emeraldine	नीलमन्
Aniline black	नीलिन्-श्याम
Rose Bengale	गुलाब विकसिन
Indanthrene	अनंग्रीन
Milling	चक्रन
Vatting	भट्टी करण
Bast Soap	काष्ट साबुन
Turkey Red	तुर्क लाल
Benzofast Red G L,	बानजो स्थाई अरुण ए ह
Gallein	माजूलिन
Gallo flavine	मांजू वनस्पतिन
chloramine	हरिद्‌ामिन
cutch-black	कच श्याम
Oxygen carrier	ओषजन वाहक
Basic dyes	क्षारमय वर्ण
Methyl violet	दारील बैंजनी
Rhodamine scarlet	रोदमिन रक्त
Rhoduline orange	रोडूलिन नारंगी
Auramine	स्वर्णिन
Triphenyl methane	द्विव्यील दारेन
Acid Azo dye stuffs	अम्ल अजीव वर्ण
Fast green	स्थायी हरा
Tannin	हरिमिन
Brilliant Azurine 5 G	कांति एज़ुरिन ४ प।
Centrifugal machine	केन्द्रगर्वित यन्त्र
chemicking	चूर्णित करना (in bleaching)

Couple	संयुक्त
Starched	माड़ीकृत करना
Gallic acid	मांजूफलिकाम्ल
Fiery Red	ज्वाल अरुण
Blued	नीलकृत
Ozone	ओषोन
Galloflavine मांजू	बनस्पतिन
dyestiff	वर्ण पदार्थ
chromic yellow D F	रागपीत गस
Pigment	रंग
Alizarine Viridine	मंजिष्ठा वीरीद्रिन
chromoxane green	रागोसेन हरा
celestine blue	आकाशी नील
vat	भट्टी
vat	भट्टीगार
segol	सेवारिक
orchil	अर्चिल
cochenial	कचनील
chloramine yellow g g	हरिद्रामिन पीत प प
Indigo crmine,	नीलोरुण
Quercitron	कुइरसीत्रान
Gallotannate	मांजू टैनेत
Nascent State	उत्पादित रुप
Aniline black	नीलिनश्याम
Tannic Acid	हरिमिकाम्ल
Gallic Acid	मांजूफलिकाम्ल

प्रकाशका परावर्तन

[ले० श्री सतीशचन्द्र सक्सेना, बी. एस-सी]

गताङ्क से आगे

इसी प्रकार जब दो दर्पण कोई कोण बनावें तो भी बिम्ब ऊपर ही की भांति बनते हैं और जैसे जैसे कोण छोटा होता जाता है बिम्बोंकी संख्या बढ़ती जाती है। चित्र नं० (५) में देखिए 'क ग' और 'क ख' दो दर्पण एक दूसरे से 'ग क ख' कोण बनाते हैं और 'प' एक वस्तु (Object) है जो उन
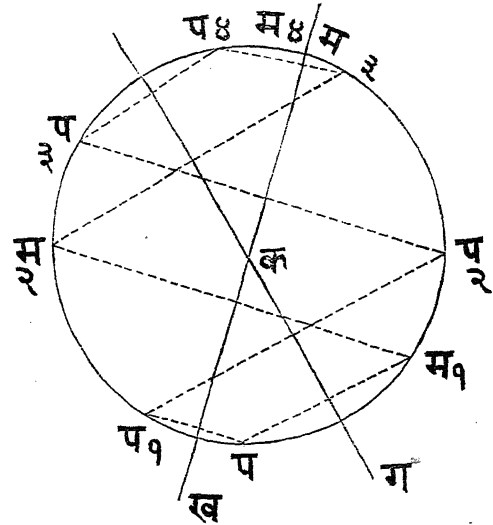
चित्र नं० (५)

दोनोंके बीचमें रक्खी है, प के बिम्बोंकी दो श्रेणियाँ (series) होंगी, एक $प_1$, $प_2$ $प_3$ और $प_4$ दूसरी $म_1$, $म_2$, $म_3$, $म_4$। $प_1$ वाली श्रेणी (serie) क ख दर्पणमें पहिला परिवर्तन होकर बनती है और $म_1$ वाली श्रणी (series) 'क ग' दर्पणमें पहिला परावर्तन होनेसे। 'प' का बिम्ब 'क ख' दर्पणमें $प_1$ पर बनता है और चूंकि 'क ख' 'प $प_1$' को दो हिस्सों में बराबर काटती है और प $प_1$ से समकोण (at right angles) भी बनाती है इसलिये

प क=प₁ क । अब प₁ का बिम्ब 'क ग' दर्पण में प₂ पर बनता है और ऊपर की भांति 'क ग' भी प₁ प₂ के समकोण (at right angles) है और दो बराबर हिस्सोंमें काटता है इसलिये प₂ क =प₁ क इसलिये प क=प₁ क=प₂ क इससे सिद्ध होता है कि बिम्ब उस वृत्त (circle) की परिधि (circumference) पर बनते हैं जिसका केन्द्र (centre) 'क' है और व्यासार्ध (radius) क प। चित्रमें सब बिम्ब जितने उस अवस्थामें बन सकते हैं बनाये गये हैं, प₄ आखीर बिम्ब होगा जो क ग दर्पणसे बनता है क्योंकि फिर प₄ से चली हुई किरणें दोनों दर्पणोंके पीछे पड़ेंगी और इसलिये फिर कोई बिम्ब नहीं बन सकेगा। इसी प्रकार म₄ भी आखीर बिम्ब है जो क ख दर्पणसे बनता है इससे भी चली हुई किरणें दोनों दर्पणोंके पीछे पड़ती हैं और इसलिये फिर आगे कोई बिम्ब नहीं बनाती।

कोण बनाते हुए दर्पणोंके बीचमें रक्खी हुई वस्तु (object) के बिम्बोंकी गिनती निम्न-लिखित रीति द्वारा मालूमकी जा सकती है। यदि कोण प° का हो और ३६० पूरा पूरा भाग देता हो तो बिम्बोंकी संख्या $=\frac{३६०}{प°}-१$ होगी। यदि प° ३६०° को पूरा पूरा न भाग दे यदि मान लीजिए कि ५$\frac{१}{२}$ हो तो संख्या=५ बिम्बों के।

इसी कोण बनाते हुए दर्पणों के ही सिद्धान्त पर बच्चोंका खिलौना कैलिडसकोप (kaleidoscope) बनाया गया है। उसमें तीन दर्पणोंके टुकड़े जो आपसमें ६०° का कोण बनाते हों एक नलीमें रक्खे जाते हैं और एक तरफ़ कुछ रंगीले कांचके टुकड़े एक छोटेसे कांच के सन्दूकमें बन्द करके रक्खे जाते हैं। नली की दूसरी ओर देखनेसे बहुत अच्छी अच्छी रंग-दार फूल पत्तोंकी तसवीरें दिखाई देती हैं बात यह है कि प्रकाश शीशेके सन्दूकमें जाकर कई बार कोण बनाते हुए दर्पणोंमें परावर्तित होता है और इसलिये तसवीर बन जाती हैं।
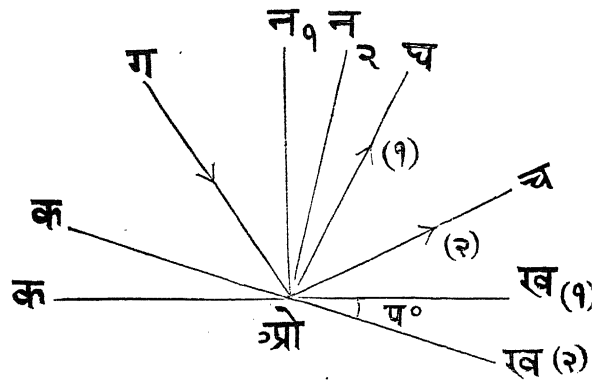
चित्र नं० ६

घूमता हुआ दर्पण [देखो चित्र नं० ६] क ख एक दर्पण है जिसकी पहली स्थिति चित्रमें १ से सूचित की है 'ग ओ' पतित किरण (incident ray) है और 'ओ घ' परावर्तित किरन न₁ क ख₁ पर लम्ब (normal) है तो ∠ ग ओ न₁ = ∠ घ ओ न₁

अब मान लीजिए कि यह दर्पण प° घूम कर क ख₂ स्थितिमें आगया और अब लम्ब (normal) 'न₂ ओ' हो गया और मानिए कि 'च ओ' अब नई परावर्तित किरण है तो चूंकि दर्पण प° घूमा है इसलिए न₁ लम्ब (normal) और न₂ लम्ब (normal) के बीच में प° का ही कोण होगा।

अथवा ∠ न₁ ओ न₂ = प°

और परावर्तनके नियमके अनुसार ∠ ग ओ न₁ = ∠ घ ओ न₁

और ∠ ग ओ न₂ = ∠ च ओ न₂

अब मान लीजिए कि ∠ ग ओ न₁ = ल°

तो ∠ ग ओ न₂ = ∠ ग ओ न₁ + ∠ न₁ ओ न₂ = ल° + प°

इसलिये ∠ च ओ न₂ भी = ल° + प°

इसलिये ∠ च ओ न, = ∠ च ओ न₂ + ∠ न₂ ओ न,

= ल° + प + प°

= ल° + २ प°

इसमें से ∠ न₂ ओ घ घटा दीजिए तो ∠ च ओ न, − ∠ न₂ ओ घ = ∠ च ओ घ

= ल° + २ प° − ल°

= २ प°

∠ च ओ घ = २ प°

पहिली और दूसरी परावर्तित किरणोंमें २ प° के बराबर कोण हुआ। यदि दर्पण प° घूमता है तो परावर्तित किरण दर्पणके मुकाबले दो चन्द घूमती है।

इस बातको हम प्रयोगों द्वाराभी सिद्धकर सक्ते हैं। दर्पण को क ख, की स्थितिमें रख कर 'ग ओ' सीधमें दो पिनें गाड़ दीजिए और इन दोनो पिनों के बिम्बों की सीध में दो और पिनें गाड़ दीजिये तो 'ओ घ' की दिशा मालूम हो जायगी। अब दर्पण को घुमा कर कख₂ स्थितिमें रख दीजिए और फिर 'ग ओ' की दिशा मालूम हो जायगी च ओ और घ ओ को मिला कर ∠ च ओ ड नापिए और क ख₂ और क ख₂ के बीच का भी कोण नापिये तो मालूम हो जायगा कि ∠ च ओ घ= २∠ख, ओ ख₂।

इसी सिद्धांत को काम में लाकर हम बहुत छोटे छोटे विचलन (Deflections) (जैसे कि धारा मापकोंके घूमने वाले भाग (Galvanometer needle का) नापते हैं।

घूमने वाले भागों में एक दर्पण 'क ख' चिपका दिया जाता है और उसके सामने एक रौशन माप (Well illuminated scale) लगभग एक मीटरकी दूरी पर लेटा हुआ रख दिया जाता है।

चित्र नं० (१०) इस मापके ऊपर एक दूरदर्शक (Telescope) है जो मापके अंशोंके किसी चिन्ह 'प' के बिम्ब को जो दर्पण 'क

चित्र नं० १०

ख' में बनती है देखता है। मानिए कि 'प' से चली हुई किरणें दर्पण पर लम्ब की दिशा में पड़ती हैं और परावर्तित होकर दूरदर्शक (Telescope) में आती हैं तो 'प' का बिम्ब दूरदर्शक (Teles cope) में दिखाई देगा। जब दर्पण स° घूमता है और क' ख' की दिशामें हो जाता है तो किसी दूसरे चिन्ह प, से चली हुई किरणें क' ख' में परावर्तित होकर दूरदर्शकमें आती है और इसलिये प, का बिम्ब दूरदर्शकमें दिखाई देने लगता है। ऊपरके सिद्धान्त अनुसार ∠ प ओ प,=२स° और प, की दूरी इस दूरदर्शक से मालूम ही हो गई और प ओ की दूरी भी नापने से मालूम हो सकती है। अब स्पर्श प ओ प,

= स्पर्श २ स° = $\frac{\text{प प,}}{\text{प ओ}}$ इसलिये स° मालूम हो जायगी और चूंकि दर्पण घूमनेवाले भागमें चिपका है इसलिये घूमनेवाले भागका विचलन भी स° हो गया।

प्रकाशके परावर्तनके लाभकारी उपयोग—जब कभी हमें किसी वस्तुसे आती हुई किरणोंकी दिशा बदलनी होती है तो परावर्तन ही की शरण लेना

पड़ती है मान लीजिये कि प्रकाशकी किरणों 'क ख' दिशामें जा रही हैं।
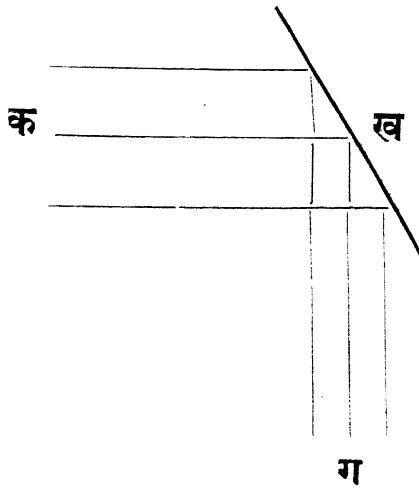
चित्र नं० (११)

और हमको उन्हें ख ग की दिशामें लाना है तो बस झट एक चपटा दर्पण उनकी राहमें रख दिया और उनको परावर्तित करके ख ग की दिशा में ले आये। सूर्य दर्पण (Heliostat) में जो एक चपटा दर्पण लगा रहता है उससे सूर्यकी किरणोंकी दिशा बदल दी जाती है। षष्ठांश (Sextant) में भी दो समानान्तर दर्पण इसी कारण लगे रहतेहैं कि उनसे किरणें परावर्तित होकर दूर दर्शक (telescope) में जावें। बहुतसे मोटरोंमें हांकने वालेके सामने बगलमें एक चपटा दर्पण लगा रहता है ताकि पीछेकी वस्तुओंका बिम्ब उसमें दिखाई दे और इस तरह पर पीछेका सब हाल मालूम होता रहे। सरकसों और थियेटरों में भी परावर्तनकी सहायतासे बहुत सी अद्भुत बातें दिखाई जाती हैं।

लोहम्, कोबल्टम् और नक़लम्

[Iron, Cobalt and Nickel.]

(ले० श्री सत्यप्रकाश, एम .एस-सी)

आवर्त्त संविभागका अष्टम समूह परिवर्त्तन-समूह या संयोजक समूह कहा जा सकता है। इस समूहके प्रथम और द्वितीय लघु खंडोंमें कोई तत्त्व नहीं है पर प्रथम और द्वितीय एवं चतुर्थ दीर्घ खंडोंकी समश्रेणियोंमें तीन तीन तत्व हैं। ये तत्त्व एक ओर तो उसी श्रेणीके छठे और सातवें समूहके तत्वोंसे मिलते जुलते हैं और दूसरी ओर आगेके विषम श्रेणीवाले प्रथम और द्वितीय समूहके तत्त्वोंसे भी कुछ कुछ समानता रखते हैं। इस प्रकार ये समश्रेणी और विषम श्रेणीके तत्वोंके संयोजक हैं। नीचेकी सारिणीमें यह सम्बन्ध दिखलाया गया है।

सम श्रेणी		संयोजक समूह			विषम श्रेणी	
६	७		८		१	२
रा	मा	लो	को	न	ता	द
सु	मै ?	थे	ड्र	पै	र	सं
—	—	—	—	—	—	—
वु	रै ?	वा	इ	प	स्व	पा

इस स्थान पर हम संयोजक समूहके केवल तीन तत्वोंका उल्लेख करेंगे। ये तत्व लोहम्, कोबल्टम् और नक़लम् हैं। नीचेकी सारिणीमें इनके भौतिक गुण दिये गये हैं।

तत्त्व	संकेत		परमाणुभार	द्रवांक	क्वथनांक	घनत्व	आपेक्षिक ताप
लोहम्	लो	Fe	५५.८४	१५०५	२४५०	७.८६	०.११९
कोबल्टम्	को	Co	५८.९७	१४६४	—	८.६	०.१०३
नक़लम्	न	Ni	५८.६८	१४५२	२३३० ?	८.९	०.१०९

यह बात ध्यानमें रखने योग्य है कि यद्यपि परमाणुभार की वृद्धिके हिसाबसे लोहम्के बाद नक़लम्, और नक़लम्के बाद कोबल्टम् होना चाहिये, पर ऐसा नहीं किया गया है। बात यह है कि नक़लम्की अपेक्षा कोबल्टम्के गुण लोहम्से अधिक मिलते जुलते हैं। यौगिकोंका वर्णन करते समय यह समानता भली प्रकार समझाई जा सकती है। इस प्रकार नक़लम्की स्थिति आवर्त-संविभागमें अपवादजनक है। इसी प्रकारकी अपवाद पूर्ण स्थिति थलम् तत्वके विषयमें भी थी। थलम्का परमाणुभार (१२७.५) नैलिन्के परमाणुभार (१२६.९२) से अधिक है। तिसपर भी नैलिन् षष्ठ समूहमें और थलम्को सप्तम समूहमें नहीं रखा गया है क्योंकि थलम्के गुण छठे समूहके गन्धक और शशिम्से अधिक मिलते जुलते हैं तथा नैलिन्के गुण हरिन् और अरुणिन्से मिलते हैं।

इस समूहके तत्वोंकी उच्चतम संयोग शक्ति ८ है, अतः इनके अनेक प्रकारके यौगिक संभव हैं। व्यापारिक दृष्टिसे लोहा जितने महत्व का है उतना कोई और धातु तत्व नहीं है।

मुख्य खनिज

लोहम्—लोहम्के खनिज पृथ्वी पर बहुत अधिक मात्रामें पाये जाते हैं। उल्कापातोंमें भी लोहम् विद्यमान रहता है। इसके मुख्य खनिज ओषिद, गन्धिद और कर्बनेत हैं। जैसे:—

१. मैग्नेटाइट या चुम्बकाइट—लोहोसो लोहिक ओषिद, लो$_3$ ओ$_4$। इसमें कुछ चुम्बकी गुण होते हैं और यह लैपलैण्ड, साइबेरिया, जर्मनी, स्वेडेन और उत्तरी अमरीकामें पाया जाता है।

२. हेमेटाइट—लोह-एकार्ध ओषिद-लो$_2$ ओ$_3$

३. लिमोनाइट—उदित लोह-एकार्ध ओषिद-२लो$_2$ ओ$_3$, ३ उ$_2$ ओ।

४. सिडेराइट—लोहस कर्बनेत, लो क ओ$_3$

५. लोह पाइराइट—लोह गन्धिद, लो ग$_2$।

कोबल्टम्—इसके खनिजोंमें बहुधा लोहम्, संक्षीणम् और गन्धक मिला रहता है। मुख्य खनिज ये हैं:—

१. स्पाइस कोबल्ट या स्मलटाइट-(लो, न, को) त्त$_2$।

२. कोबल्ट ग्लांस, या कोबल्टाइट-(को लो) ग त्त

३. कोबल्टब्लूम—को$_3$ (त्त ओ$_4$)$_2$ ८ उ$_2$ ओ।

नक़लम्—स्मलटाइट खनिज, (लो न, को)-त्त$_2$ में यह कोबल्टम्के साथ साथ पाया जाता है इसके अतिरिक्त निम्न खनिज हैं:—

१. श्वेत नकल खनिज—न त्त$_2$।

२. नकल-ग्लांस—न त्त ग।

३. कुप्फर निकल—न त्त।

४. गार्निराइट—नकल मगनीस शैलेत—२ (न म)$_4$ शै$_4$ ओ$_{11}$, ३ उ$_2$ ओ।

धातु उपलब्धि

लोहा

साधारणतः व्यापारमें जिस लोहेका व्यवहार किया जाता है वह पूर्णतः शुद्ध नहीं होता है। उसमें कर्बन, स्फुर, शैलम्, गन्धक, मांगनीज़ आदि की अशुद्धियां विद्यमान रहती हैं। इन अशुद्धियोंकी मात्राके ऊपर ही लोहेके मुख्य गुण हैं। व्यापारिक लोहा तीन प्रकार का होता है:—

(१) ढलवां लोहा, (cast iron)—इसमें १·५ से ४·५ % तक कर्बनकी मात्रा होती है। यह आसानी से गलाया जासकता है पर यह घनवर्धनीय नहीं है और पीटे जाने पर चूर चूर हो जाता है।

(२) पिटवां लोहा (wrought iron)—इसमें ढलवां लोहेकी अपेक्षा कर्बनकी मात्रा कम रहती है। यह जल्दी नहीं गलाया जा सकता है, पर यह घनवर्धनीय है और ठोंक पीट कर यथेच्छ स्वरूपमें परिणत किया जा सकता है। बिना पिघलाये ही यह लपसीके रूपमें तैयार होता है।

(३) इस्पात (steel)—इसमें भी ढलवां लोहेकी अपेक्षा कम कर्बन होता है और यह भी जल्दी नहीं गलता है। कर्बन और लोहेके उस घनवर्धनीय धातु संकरको इस्पात कहते हैं जो किसी न किसी समय अवश्य पिघला लिया गया हो। इसमें यह अति उपयोगी गुण है कि यह शीघ्र ही कठोर किया जा सकता है। अन्य लोहोंमें चुम्बकत्व स्थायी नहीं रह सकता है पर इस्पातमें चुम्बकत्व स्थायी बना रहता है।

इन तीनों प्रकारके लोहोंके बनानेकी अनेक विधियां प्रसिद्ध हैं। हम केवल कुछ मुख्य विधियों का ही उल्लेख करेंगे।

ढलवां लोहा—इसके बनानेके लिये मैग्नेटाइट या हेमेटाइट ओषिद-खनिजोंका उपयोग किया जाता है। किसी भी प्रकारका लोहा क्यों न बनाना हो, खनिजको पहले भूँजा जाता है जिससे उसका जल और कर्बनद्विओषिद निकल जावें और पदार्थ अधिक रन्ध्रमय हो जाय, जिससे आगे की अवकरण प्रक्रिया सरल हो जाय। भूंजनेसे खनिजकी गन्धक आदिकी अशुद्धियां उड़नशील ओषिद बनकर निकल जायंगी। यह काम भट्टियोंमें किया जाता है।

भूँजनेके उपरान्त खनिजको प्रवाह भट्टी में गरम किया जाता है जहाँ इसका अवकरण होता है। यहाँ खनिजमें कर्बन और चूना या चूने का पत्थर भी खनिजके साथ मिला देते हैं। कर्बनके कारण लोहओषिद्का अवकरण होता है और चूनेकी सहायतासे शैलम् अशुद्धियां खटिक शैलेतमें परिणत हो जाती हैं जो आसानीसे गलाया जा सकता है। इसे गलित (slag) कहते हैं।
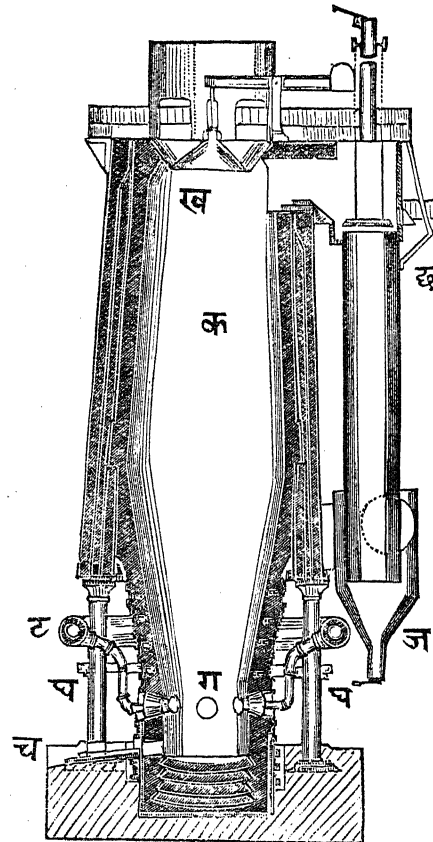
प्रवाह भट्टी

प्रवाह भट्टीका चित्र यहाँ दिया गया है। यह भट्टी (क) ५०-१०० फोट ऊँची होती है। इसके बीचका भाग अधिक चौड़ा (२० फुट व्यास) होता है और इसका गला (ख) १६ फुट व्यासका तथा इसकी पेंदी (ग) ११ फुट व्यास की है। इसका धड़ (क) पिटवां लोहेके पत्रोंका बनाया जाता है जिनके चारों ओर पकी हुई ईंटें चिनी होती हैं। इसके नीचे का भाग (ग) मेंसे आग लगती है।

भट्टीके गले (ख) को मूंदनेके लिये इस्पातके बने हुए शंकुकी सहायता ली जाती है जो यथेच्छ ऊँचा नीचा किया जा सकता है इसको ऊँचा करनेसे भट्टीका गला बन्द हो जाता है। भट्टीकी पेंदी (ग) के चारों ओर छिद्र हैं जिनमें होकर गरम वायुका प्रवाह फव्वारेके रूपमें भट्टीके अन्दर छूटता रहता है। यह वायु (ट) नलसे जो भट्टीके चारों ओर बनाया गया है मिलती है और यहीं यह शुष्क और गरमकी जाती है। च छिद्र द्वारा पिघला हुआ लोहा बाहर निकाला जा सकता है। इसीके ऊपर एक और छिद्र होता है। (यह चित्रमें नहीं दिखाया गया है)। जिसमें होकर हलका गलित पदार्थ पृथक् कर लिया जाता है। प्रक्रियामें जनित कर्बन एकौषिद, नोषजन आदि गैसें, छ, नलमें होकर, धूलरोधक, ज, में जाती हैं। इनका उपयोग वायुप्रवाहके गरम करनेके लिये किया जाता है।

खनिज, कोयला और चूनेके मिश्रणको गलेकी ओरसे भट्टीमें डालते हैं। कोयला गरम वायुके प्रवाहसे कर्बन एकौषिदमें परिणत हो जाता है जिसके द्वारा लोह ओषिद का निम्न प्रकार पूर्ण अवकरण हो जाता है और रन्ध्रमय लोहा बन जाता है:—

$$लो_2\ ओ_3 + ३\ कओ = लो_2 + ३\ कओ_2$$
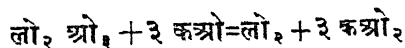
इस प्रकार गलेसे पेंदी तक आते आते सब खनिज धातुमें परिणत हो जाता है। पेंदीमें आकर अत्यन्त ताप पानेके कारण यह लोहा गल जाता है और ईन्धनके कर्बनकी कुछ अशुद्धियां भी यह ग्रहण कर लेता है। कर्बन एकौषिदके समान जलनशील गैसोंको जो गले तक अपरिवर्त्तित रूपमें पहुँच जाती हैं (छ) नली द्वारा अलग बाहर निकाला जाता है और इन्हें जला कर प्रवाहके लिये वायु गरम करनेके काममें लाया जाता है।

बालूमें बने हुए सांचोंमें पिघला हुआ लोहा उंडेला जाता है और यहाँ इसके लट्ठे जो एक ओर चौरस और दूसरी ओर गोल होते हैं, बना लिये जाते हैं। इन्हें 'पिग' (pig) कहते हैं।

इस पिग लोहेमें कर्बन, स्फुर, गन्धक, मांगनीज़ और शैलम् अशुद्धियाँ होती हैं। कर्बन या तो शुद्ध लेखनिकके रूपमें इसमें मिला रहता है या यह लोहेके साथ कर्बिद रूपमें संयुक्त रहता है। यदि लेखनिकके रूपमें हुआ तो ख़ाकी रंगका लोहा मिलेगा और यदि संयुक्त-रूपमें हुआ तो श्वेत लोहा मिलेगा। इन दोनों प्रकारके लोहेमें अशुद्धियाँ निम्न परिमाणमें मिली रहती हैः—

ख़ाकी लोहा	श्वेत लोहा
कर्बन—३·२ प्रतिशत	३·०५ (संयुक्त) प्रतिशत
(लेखनिक)	०·६७
शैलम्—३·५	०·४०
गन्धक—०.०५	१ ६०
स्फुर—१·६७	०·४२
मांगनीज—०·६८	

श्वेत लोहे की अपेक्षा ख़ाकी लोहे के लिये अधिक उच्च तापक्रमकी आवश्कता होती है।

पिटवां या घनवर्धनीय लोहा—पिटवां लोहा या तो एकदम खनिजसे बनाया जाता है या ढलवां लोहा ही इस रूपमें परिणत कर लेते हैं। हमारे देशमें यह भूरे हेमेटाइट या मैग्नेटाइट खनिजसे बनाते हैं। इस कामके लिये चिमनीके आकारकी २—४ फुट ऊँची छोटी छोटी भट्ठियां तैयार करते हैं जिनकी पेंदी १०-१५ इंच व्यासकी

तथा सिरा ६-१२ इंच व्यासका होता है। इसकी पेंदीमें दो छेद होते हैं, एकमें होकर तो चमड़ेकी बनी धोकनियोंसे हवाका प्रवाह अन्दर फूंकते हैं। दूसरे छेदमेंसे गलित शैलेत बाहर निकालते हैं और इसी छेदमेंसे लोहा भी बाहर निकाला जाता है। जब भट्ठी गरम हो जाती है तो खनिज और कोयलेकी तह बारी बारीसे जमा देते हैं और फिर ख़ूब गरम करते हैं। इस प्रकार लोहा बन जाता है जिसे बाहर निकाल लेते हैं।

यह कहा जा चुका है कि ढलवां लोहेमें कर्बन की अधिक मात्रा होती है और इसमें स्फुर, शैलम् तथा गन्धक भी होता है। यदि इसमें कर्बनका मात्रा कम कर दी जाय तो यह पिटवां लोहा बन जावेगा। इस कामके लिये ढलवां लोहेको गलाते हैं, और गले हुए पदार्थको लोहओषिदकी तहपर बिछा देते हैं। फिर इसे क्षेपण भट्ठी में गरम करते हैं। यहां लोहेके कर्बनमें और लोह-ओषिदमें निम्न प्रकार प्रक्रिया होती है:—

$$लो_2 ओ_3 + ३ क = २ लो + ३ क ओ$$

इस प्रकार कर्बनकी मात्रा कम हो जाती है और पिटवां लोहा मिल जाता है।

इस्पातका व्यवसाय—इस्पात बनानेकी कई विधियाँ हैं। इन विधियोंका मुख्य सिद्धान्त यह है कि इसमें कर्बनकी मात्रा पिटवां लोहेकी अपेक्षा कुछ अधिक होती है पर ढलवां लोहेसे कम, निम्न रीतियोंको उपयोगसे इस उद्देश्यकी पूर्ति हो सकती है:—

(क) खनिजसे एकदम इस्पात बनाना।

(ख) पिटवां (घनवर्धनीय) लोहेसे इस्पात बनाना।

(१) केवल गलाकर।

(२) कर्बन मिलाकर फिर गलाना।

(३) गलानेके साथ साथ अधिक कर्बन युक्त—धातुको (जैसे ढलवां लोहा) मिलाकर।

(ग) ढलवां लोहेसे इस्पात बनाना।

(१) कर्बन अलग करके

(२) कम कर्बन-युक्त धातु जैसे पिटवां लोहा मिलाकर।

इस कामके लिये जिन उपचारोंका उपयोग किया जाता है उनमेंसे केवल दोका उल्लेख किया जावेगा।

(१) बेसीमर विधि।

(२ सीमन्स-मार्टिन विधि।

बेसीमर विधि—सं० १९१३ वि० में बेसीमर ने इस विधिका आविष्कार किया था। इस विधिमें ढलवां लोहेके कर्बन, शैलम् और मांगनीज़को पिघले हुये धातुमें वायु-प्रवाह करके दूरकर देते हैं। इस ओषदीकरणमें इतना ताप उत्पन्न होता है कि एक बार पिघला ली गई धातुको फिर आंच देनेकी आवश्यकता नहीं होती है। कुछ समयके पश्चात् ढलवां लोहा इस्पातमें परिणत हो जाता है।
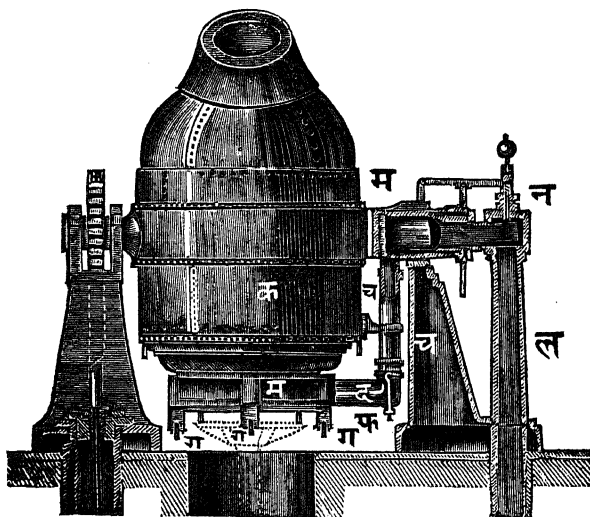
परिवर्त्तक

इस क्रियाके लिये घनवर्धनीय (पिटवां) लोहे का एक अण्डाकार बर्तन बनाया जाता है। यह

चित्रमें क से प्रदर्शित किया गया है। इस अण्डेकी पेंदी म में इस प्रकारका प्रबन्ध रहता है कि जब चाहें, एक पेंदी निकाल कर दूसरी पेंदी आसानीसे जोड़ सकते हैं। इस पेंदीसे वायु प्रवाहके लिये ल-न-द नल लगा रहता है। पिटवां लोहेके बने हुए इस बर्तनके चारों ओरकी तरफ़ न गलने वाले बालूके पत्थरके चूर्णको पानीके साथ मिलाकर लेप देते हैं। बर्तनका नाम 'परिवर्त्तक' (Converter) है क्योंकि यह ढलवां लोहेको इस्पातमें परिणत कर देता है।

ढलवां लोहेको स्फुर और गन्धकसे रहित करके गलाते हैं और गले हुए द्रवको इस परिवर्त्तकमें उण्डेल देते हैं। फिर ल-न-द नलोंसे जोरोंसे वायु प्रवाहित की जाती है। लोहेका कर्बन कर्बन-एकौषिदमें परिणत हो जाता है जो मुँहपर आकर जलने लगती है, ऐसा करनेके बाद इसमें थोड़ा सा 'स्पीगल' लोहा, छोड़ दिया जाता है। यह एक प्रकारका श्वेत ढलवां लोहा होता है और इसमें मांगनीज़ की अधिक मात्रा रहती है। इसकी उपयुक्त मात्रा डालकर, इतना कर्बन द्रव लोहेमें मिला दिया जाता है जितना कि इस्पात बनानेके लिये आवश्यक है। बस द्रव इस्पात बन जाता है जिसे परिवर्त्तकमेंसे बाहर निकाल लेते हैं और यथेच्छ सांचोंमें ठंडा कर लेते हैं।

सीमन्स-मार्टिन-विधि—इसके कारखानेका चित्र यहाँ दिया जाता है। इसमें ऐसा प्रबन्ध रहता है कि जलनशील गैसें (कर्बन एकौषिद और नोषजन) ग घ, और ग घ कमरोंमें एक ओरसे प्रवाहित की जाती हैं और च मार्गसे हवा प्रवेश करती है। प्रबन्ध द्वारा इस प्रकार नियंत्रित किया जाता है कि एकबार तो क से खींची गई बिन्दुदार रेखा क ख के बाईं ओर से हवा आ कर बायीं ओर के ग और घ कमरोंकी जलन-शील गैसोंके साथ मिलकर जलती है। इनकी ज्वालायें ग-भट्टी के ऊपर पड़ती हैं। ये जली हुई गैसें दाहिनी ओरके च नल से होकर दाहिनी ओरके ग और घ कमरों में पहुँचती हैं। इसका प्रभाव यह होता है कि थोड़ी देरके बाद
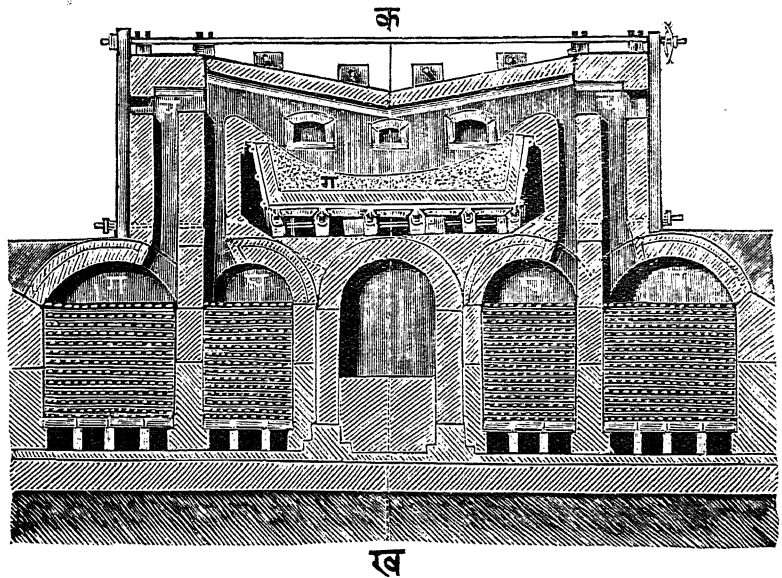
दाहिनी ओरका तापक्रम बायीं ओरकी अपेक्षा अधिक हो जाता है। ऐसा होने पर जलनशील गैसों का प्रवाह उलटा कर देते हैं। दाहिनी ओर के ग, घ कमरोंमें जलनशील गैस जलायी जाती हैं और जब ये गैसें बायीं ओरसे होकर निकलती हैं तो बायीं ओर का तापक्रम अधिक बढ़ जाता है। इस प्रकार अदला बदली होती रहती है। ऐसा करनेसे भट्टी का तापक्रम बहुत बढ़ जाता है। अतः यह आवश्यक है कि भट्टी शैल ओषिद, बालु, की ईंटोंकी बनायी जाय।

भट्टीमें पिटवाँ और ढलवाँ लोहेका मिश्रण उचित अनुपातमें मिलाकर रक्खा जाता है। जैसे

इस्पात की आवश्यकता हो वैसाही यह अनुपात निश्चित किया जाता है। जब मिश्रण गल जाता है तो इसमें स्पीगल (लोह-मांगनीज खनिज) डाल देते हैं। बस इस्पात तैयार हो जाता है।

इस्पातमें यह विशेष गुण है कि गरम करके एक दम ठंडा करनेसे यह भंजनशीलता ग्रहण कर लेता है और अत्यन्त कठोर हो जाता है। इसके बरछे, तलवार, कवच, चाकू, उस्तरे आदि बनाये जाते हैं।

नीचेकी सारिणीमें ढलवां, पिटवां और इस्पात लोहेकी अशुद्धियों का विवरण दिया गया है। यथा :—

	ढलवां लोहा		पिटवां लोहा	इस्पात
	खाकी	श्वेत		
लेखनिक	३.९	...	...	...
संयुक्त कर्बन	०.३९	४.१	०.१५	०.२३४
शैलम्	१ ०७	०.२३	०.१४	०.०३३
गन्धक	०.०८	०.१०	०.०४	—
स्फुर	०.०७	०.०७	०.४७	०.०४४
मांगनीज़	०.३०	०.३०	० १४	०.१३९
लोहम्	९४.१९	९५.२०	९९.०६	९९.५५०
	१००.००	१००.००	१००.००	१००.०००

शुद्ध लोहम्—अब तक हमने व्यापारिक लोहेका उल्लेख किया है ऊपरकी सारिणीसे यह विदित है कि व्यापारिक लोहे, पिटवां, ढलवां, और इस्पात तीनोंमें कुछ न कुछ अशुद्धियां विद्यमान रहती हैं। बहुधा लोह ओषिदको कर्बन द्वारा अवकृत करके लोहा बनाते हैं पर यह सर्वथा शुद्ध नहीं होता है क्योंकि इसमें कर्बनकी कुछ न कुछ मात्रा मिली ही रहती है। व्यापारिक लोहोंमें पिटवां लोहा ही अधिकतम शुद्ध होता है क्योंकि इसमें १ प्रतिशतसे अधिक अशुद्धि नहीं होती है। पियानोके तारके लिये जो पिटवां लोहा बनाया जाता है उसमें केवल ०.३ प्रतिशत ही अशुद्धियाँ होती हैं। लोह ओषिद या लोह काष्ठेतको उदजनके प्रवाहमें अवकृत करनेसे शुद्ध लोहा मिल सकता है। तापक्रम जितना कम हो सके उतना कम रखना चाहिये। इस प्रकार काले चूर्णके रूपमें लोहा मिलता है।

लोहस हरिद, लोह$_2$, को उदजन प्रवाहमें गरम करनेसे भी शुद्ध लोहा मिल सकता है। लोहस गन्धेत, नौसादर और मगनीस गन्धेतके मिश्रण-घोल का विद्युत् विश्लेषण करने से भी ख़ाकी पत्रोंके रूपमें शुद्ध लोहा मिल सकता है।

कोबल्टम्

कोबल्ट धातु बहुत कम उपयोगी है अतः लोहे या नक़लम्के समान अधिक मात्रामें यह तैयार नहीं की जाती है। कोबल्ट ओषिद या हरिदको शुष्क उदजनके प्रवाहमें भस्म करनेसे ख़ाकी चूर्णके रूपमें कोबल्ट धातु मिल जायगी। चूर्ण कांचकी तहके नीचे कोबल्ट काष्ठेत बिछाकर ज़ोरोंसे गरम करनेसे भी कोबल्ट धातु मिल सकती है। शुद्ध कोबल्ट गन्धेतके घोलको अमोनियम गन्धेत और अमोनियाकी विद्यमानता में परर्रौप्यम्-बिजलोदोंका उपयोग करके विद्युत् विश्लेषण करके शुद्ध कोबल्ट धातु मिल सकती है।

नक़लम्

यह कहा जा चुका है कि स्मलटाइट खनिजमें यह कोबल्टम्के साथ पाया जाता है। बहुधा यह गन्धक और संक्षीणम्से संयुक्त रहता है। खनिज से नकलम् धातु प्राप्त करनेकी २ श्रेणियाँ हैं:—

(१) खनिजमें नक़लम् की प्रतिशत मात्रा बढ़ाकर ४०-७०% कर लेते हैं। इस समय इसमें कोबल्ट, ताम्र, लोह, संज्ञीणम् तथा गन्धक मिले रहते हैं। इस पदार्थको स्पाइस या मैट (matt) कहते हैं। (२) दूसरी श्रेणीमें मैटमेंसे नक़लम् धातु उपलब्ध की जाती है।

जिन खनिजोंमें केवल ३-४ प्रतिशत ही नक़लम् होती है और लोहा और गन्धक अधिक मिला रहता है उन्हें पहले भूंजते हैं और फिर चूना डालकर गलाते हैं। इस प्रकार १५—३०% नक़लम् का पदार्थ मिल जाता है। इसे फिर इस्पात बनाने की बेसीमर विधिके समान 'परिवर्त्तकों' में वायु प्रवाह द्वारा संचालित करते हैं। इस प्रकार गन्धक संज्ञीणम् और लोहम् का अधिकांश भाग ओषिद बन कर निकल जाता है। अब इस 'मैट' में ७५-७७ प्रति शत नक़लम् रहता है।

इस मैट में अब भी लोहसलवण, ताम्रम् कोबल्टम् आदि अशुद्धियां रहती हैं। इनके दूर करने की दो विधियाँ हैं :—

१. घोल विधि—इसमें मैट को पहले वायुमें भूँजते हैं। इस प्रकार सब धातु ओषिद में परिणत हो जाते हैं। तत्पश्चात् इन ओषिदों को उदहरिकाम्ल या गन्धकाम्ल में खोलते हैं। लोहस लवणों को रंग-विनाशक-चूर्ण द्वारा ओषदी कृत कर लेते हैं। घोलमें फिर चूना या खड़िया डालकर लोहे और संज्ञीणम् को अवक्षेपित कर लेते हैं। तदुपरान्त घोलमें उदजन गन्धिद प्रवाहित करके ताम्रम् को अवक्षेपित करते है। इसके बाद घोलमें रंग विनाशक चूर्णकी उपयुक्त मात्रा डालकर ४०° श तापक्रमपर कोबल्टको अवक्षेपित करते हैं। अब छाननेके बाद घोलमें नक़लम् रह जाता है, जिसे खटिक उदौषिद या सैन्धक कर्बनेत द्वारा उदौषिद या कर्बनेतके रूपमें अवक्षेपित कर लेते हैं।

२ शुष्क विधि—इस विधिमें मैटको भूँजते हैं तत्पश्चात् भूँजे हुए पदार्थपर जिसमें बहुधा ४०% तांबा होता है, हरिन्का प्रभाव डाला जाता है। इस प्रकार ताम्र हरिद् बन जाता है जिसे अलग कर देते हैं। द्रावण भट्ठीमें फिर लोहा अलग कर दिया जाता है। और अन्तमें नक़ल गन्धिद प्राप्त होता है जिसको भूँजने से नक़ल-ओषिद मिल जाता है।

इस प्रकार शुष्क अथवा घोल विधि द्वारा शुद्ध नक़ल-ओषिद प्राप्त करते हैं। इसे फिर कर्बनके साथ ज़ोरों से तपाते हैं। ऐसा करने से नक़लम् धातु मिल जाती है। इस धातुमें भी कर्बन मिला रहता है और कोबल्ट, ताम्र, मांगनीज़, लोह और दस्तम् के भी सूक्ष्मांश विद्यमान रहते हैं।

मौण्ड-विधि—सं० १९५२ वि० में मौण्ड ने नक़लम् धातु प्राप्त करनेकी बहुत अच्छी विधि निकाली। इसी विधिमें मैटको भूँजते हैं। इस प्रकार अन्य ओषिदोंके साथ नक़ल ओषिद मिलता है। इसे फिर उदजन और कर्बन एकौषिद वायव्योंके मिश्रण-प्रवाह में गरम करते हैं, उदजन द्वारा नक़लओषिद का अवकरण हो जाता है, और यह अवकृत धातु कर्बन-एकौषिद से संयुक्त होकर एक उड़नशील यौगिक, नक़ल-कर्बनील, न (क ओ)$_4$, देती है। यह नक़ल कर्बनील उड़नशील विषैला पदार्थ है जिसका क्वथनांक ४३ श है। ६०° तक गरम करनेसे इसमें विस्फुटन होने लगता है। पर यदि उदजनके साथ इसे मिलाकर गरम नलीमें प्रवाहित किया जाय तो यह नक़लम् धातु और कर्बन एकौषिदमें विभाजित हो जाता है।

$$\text{न (क ओ)}_4 = \text{न} + 4 \text{ क ओ}$$

इस प्रकार शुद्ध नक़लम् प्राप्त हो सकता है क्योंकि इन्हीं परिस्थितियोंमें कोबल्ट, लोह, ताम्र आदि नक़ल कर्बनीलके समान कोई उड़नशील यौगिक नहीं देते हैं।

नक़ल गन्धेतके घोलको अमोनियम गन्धेत तथा अमोनियाकी विद्यमानतामें नक़लम् बिजलोदों का उपयोग करके विद्युत्-विश्लेषण करके शुद्ध नक़लम् प्राप्त हो सकता हैं।

धातुओं के गुण

लोहा—शुद्ध लोहेमें चाँदीके समान श्वेत चमक होती है पर नम वायुमें इसके ऊपर ओषिद की काली या भूरी तह जम जाती है। रक्ततप्त करनेपर यह नरम पड़ जाता है। शुद्ध लोहा पिटवां लोहेसे भी अधिक कठिनाईसे गलता है। लोहा का चुम्बकके प्रति आकर्षण है और यह स्वयं चुम्बकत्व ग्रहण कर सकता है, पर नरम लोहेमें से चुम्बकत्वका गुण शीघ्र निकल जाता है, इस्पात में यह गुण अधिक स्थायी रहता है।

लोहा हरिन्, अरुणिन् आदि से संयुक्त हो सकता है। यह ओषजनमें जलकर चुम्बकीय ओषिद, $लो_३ ओ_४$ होता है। रक्ततप्त करनेपर यह गन्धकके साथ भी जल सकता है। और लोह-गन्धिद बनता है। उच्चतापक्रम पर यह कर्बन से भी संयुक्त हो जाता है।

यह लगभग सभी हलके अम्लोंमें घुल जाता है। घुलनेपर उदजन निकलने लगता है। पर हलके नोषिकाम्लमें साधारण तापक्रम पर घुलनेसे कोई भी गैस नहीं निकलती है क्योंकि लोहस नोषित, $लो (नोओ_३)_२$ और अमोनियम नोषेत बन जाता है। पर यदि अधिक तीव्र नोषिकाम्लके साथ गरम किया जाय तो लोहिक नोषेत, $लो (नो ओ_३)_३$, बनेगा और नोषजन ओषिदोंकी वाष्पें निकलने लगेंगी।

यदि लोहेको तीव्र नोषिकाम्लमें डुबो दिया जाय और फिर निकाल कर धो डाला जाय तो शिथिल-लोहा (Passive) मिलेगा। यह अब हलके नोषिकाम्लमें भी नहीं घुलेगा। साधारण लोहेको यदि ताम्र गन्धेतके गरम घोलमें डुबोया जाय तो उसपर ताम्र-धातु अवक्षेपित हो जाती है पर इस शिथिल लोहेमेंसे यह गुण भी जाता रहता है। हरिकाम्ल, रागिकाम्ल आदिमें डुबोनेके भी लोहेमें इसी प्रकारकी शिथिलता आजाती है। कदाचित् इसके ऊपर ओषद-कारक रसोंमें डुबोनेसे ओषिद्की पतली तह जम जाती है।

कोबल्टम्—इसमें पालिश किये हुए लोहेकी सी चमक होती है। यह लोहेसे भी अधिक कठोर है। यह घनवर्धनीय है और इसमें भी चुम्बकीय गुण आसकते हैं। साधारण तापक्रमपर ओषजनके संसर्गसे इसपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। पर गरम करनेपर यह ओषदीकृत हो जाता है। १५०°श पर यह नोषिक ओषिद्के साथ जलने लगता है और कोबल्ट एकौषिद् बन जाता है। यह उदहरिकाम्ल, हलके गन्धकाम्ल और नोषिकाम्लमें घुलनशील है। तीव्र नोषिकाम्लके संसर्गसे इसमें शिथिलता नहीं आती है। रक्त-तप्त करके जल-वाष्प प्रवाहित करनेसे यह ओषिदमें परिणत हो जाता है।

नक़लम्—यह चांदीके समान चमकनेवाली धातु है। यह बहुत कठोर होती है। इसकी बहुत सुन्दर पालिश चढ़ाई जा सकती है। इसके तार खींचे जा सकते हैं और पत्र पीटे जा सकते हैं। यह गरम करनेपर भी कठिनतासे ओषदीकृत होता है। यह जलवाष्पको रक्त-तप्त करने पर धीरे धीरे विभाजित करता है और एकौषिद बनता है। नोषिक ओषिदमें जलानेसे भी यही एकौषिद मिल सकता है। यह हलके उदहरिकाम्ल एवं गन्ध-काम्लोंमें बहुत कम घुलनशील है, पर हलके नोषि-काम्लमें घुल जाता है। तीव्र नोषिकाम्लमें डुबोनेसे यह 'शिथिल' पड़ जाता है। नक़लम्के बहुतसे धातु संकर पाये जाते हैं। प्रयोग-शालाओंमें उपयोग करनेके लिये इसकी घरियायें भी बनाई जाती हैं। जर्मन सिलवर धातु संकरमें तीन भाग तांबा, १ भाग नक़लम् और एक भाग दस्तम् होता है। इसके सिक्के बनाये जाते हैं। नक़ल-इस्पातमें ३—१५°/० नक़लम् होता है।

वनस्पति जन्य पदार्थों का प्रकाश-संश्लेषण

(Photosynthesis)

(ले० श्री० विष्णु गनेश नाम जोशी एम० एस-सी.)
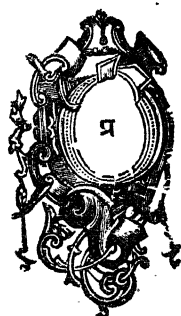
प्रकाश किरणोंके द्वारा भी रासायनिक क्रिया होती है, यह बात अब नई नहीं रही, और यह भी सिद्ध है कि वनस्पतिओंका विकास प्रकाश किरणों पर निर्भर है। ऐसा देखा गया है कि यदि किसी भी वनस्पतिको सूर्य-किरणोंसे पृथक् रखा जाय तो वे बिलकुल नहीं बढ़ेंगी और मर जायंगी। वनस्पतियोंकी परीक्षाकरने पर यह मालूम होता है कि वनस्पतियोंमें मुख्यतः कर्बोदेत (carbohydrate) और नोषजनक (nitrogenous) पदार्थ होते हैं। यह पदार्थ किस रीतिसे तैयार होते हैं इसीका हमको आज विचार करना है।

वनस्पति का मुख्य जीवन पानी, कर्बन द्विओषिद, नोषजन और कुछ लवण हैं। और इन्हीं पदार्थों से वनस्पतिमें कर्बोदेत, पर्णहरिन, (क्लोरोफिल) क्षारोद (अलकेलाइडस) इत्यादि तैयार होते हैं। हम प्रथमतः सिर्फ कर्बोदेतका विचार करेंगे।

कर्बोदेत पानी और कर्बन द्विओषिदके मिश्रण पर प्रकाश किरणों की क्रिया करनेसे तैयार होते हैं। रसायन शास्त्रज्ञोंका बहुमतसे यह कहना है कि वनस्पति कर्बनको पर्णहरिन्‌के द्वारा ग्रहण करती है जो के सूर्यकी किरणोंके प्रभावसे काम करता है। बायर (Baeyer) ने सन् १८७० ई में प्रथमतः यह सिद्ध किया था कि कर्बन द्विओषिद और पानीके ऊपर प्रकाश क्रियासे पहला पदार्थ पिपील-मद्यानार्द्र बनता है।

$$\text{क ओ}_2 + \text{उ}_2 \text{ ओ} = \text{उ क उ ओ} + \text{ओ}_2$$

पिपीलमद्यानार्द्र

और यह पिपील मद्यानार्द्र घनीभूत होकर षष्ठोज (hexose) ($\text{क}_6\text{उ}_{12}\text{ओ}_6$) देता है। इस कल्पनाके मालूम होने पर बहुतसे प्रयोग इस की सिद्धि में किये गये परंतु पत्तों में पिपील-मद्यानार्द्र होता है या नहीं इस प्रश्न पर जो उत्तर मिले वे आपसमें मिलते जुलते नहीं हैं।

पिपील-मद्यानार्द्र के षष्ठोज में घनीभूत होने के विषयमें जो प्रयोग किये गये हैं वे पिपील-मद्यानार्द्र सिद्धान्त के पक्ष मे हैं। परंतु इसके संबंध में यह ध्यान रखना होगा कि वनिस्पतियों द्वारा संश्लेषण किया हुआ प्रथम कर्बोदेत शर्करा—एक द्वि-शर्करोज (disaccharose) है। इस बातके पक्षमें जो युक्तियाँ हैं वे क़रीब क़रीब निर्भ्रान्त हैं।

दूसरे रसायनज्ञों का विचार है कि पिपीलिकाम्ल का तैयार होना अधिक संभव मालूम पड़ता है। यह बात प्रथम अर्लेनमायर (Erlenmeyer) ने सूचित की थी परन्तु बहुत दिनों तक इस बात का ख्याल नहीं किया गया था। स्पोर (Spoer) ने बतलाया है कि पानी और कर्बन द्विओषिद विकीर्ण-सामर्थ्य (radiant energy) से बहुत जल्दी पिपीलिकाम्ल देता है। और इससे शर्कराके समान एक पदार्थ बनता है जिसको कि वनस्पतियाँ खाद्य के काम में ला सकती हैं।

वनस्पति में पिपीलमद्यानार्द्र का अस्तित्व और पर्ण हरिन् (Chlorophyll) का व्यापारः— वनस्पति में पिपील मद्यानार्द्र होता है यह बात सब से पहिले रैंके (Reinke) ने बताई (१७७३)। उस समय से बहुत से शास्त्रज्ञोंने इसके अस्तित्व की घोषणा की और यह बातें बायर की कल्पना की सत्यता को सिद्ध करती हैं।

आधुनिक शास्त्रज्ञों ने यह सूचित किया है कि पिपील मद्यानार्द्र पर्णहरिन् का अवनत (degradation) पदार्थ है। श्रीवर (Schryver) और इवर्ट

(Ewart) कहते हैं कि पर्णहरिन्‌से पिपील मद्यानाद्र् संयुक्त रहता है। ओवर ने यह देखा कि तीव्र सूर्य प्रकाशमें रखे हुये पर्णहरिन् द्वारा मंद प्रकाश में रखे हुये पर्णहरिन् से ज्यादा पिपील मद्यानाद्र् मिलता है। पर्णहरिनसे आवृत कांचकी पट्टी पर अंधेरेमें रखनेसे यद्यपि उसके साथ नम कर्बन द्विओषिद था, कुछ भी पिपील मद्यानाद्र् तैयार नहीं हुआ। यदि ऐसी पट्टी कर्बन द्विओषिद रहित वायुमण्डल में सूर्य-प्रकाश में रखी जाय तो बहुत थोड़ा सा पिपील मद्यानाद्र् तैयार होता है, लेकिन नम कर्बन द्विओषिद के अस्तित्व से उसकी मात्रा बहुत ही बढ़ जाती है। इस प्रयोगसे ओवर ने यह परिणाम निकाला कि सूर्य्य-प्रकाश, पानी और कर्बन द्विओषिद के अस्तित्व में पिपील मद्यानाद्र् तैय्यार होता रहता है। और इसीके घनीभूत होने से शर्करा तैय्यार होती है। यदि यह प्रक्रिया शीघ्र न हो तो बचा हुआ पिपील मद्यानाद्र् पर्ण-हरिन् में मिल जाता है।

वैजर (Wager) ने ओषजन और पर्ण हरिन् के साथ जो क्रिया होती है उसपर सूर्य्य-प्रकाश और अंधेरे दोनों के प्रभाव का अध्ययन किया है। वह कहती है कि यह क्रिया उत्प्रेरणशील नहीं है। ओषजन शोषित हो कर मद्यानाद्र् तैयार होते हैं और जो शर्करा बनती है वह पानी और कर्बनद्विओषिद से एक दम नहीं बनती प्रत्युत मद्यानाद्र् के घनीभूत होने से बनती है। वार्नर (Warner) कहता है कि पर्णहरिन् पर सूर्य्य प्रकाश और हवा की क्रिया से पिपील मद्यानाद्र् बनता है। कर्बन द्विओषिद हो या न हो उसकी जरूरत बिलकुल होती ही नहीं। इससे वह कहता है कि वनस्पति के बाहर प्रकाश संश्लेषण से पिपील मद्यानाद्र् के बनने में कर्बनद्विओषिद का कुछ सम्बन्ध नहीं है और जो पिपील मद्यानाद्र् बनता है वह वस्तुतः पर्णहरिन् का ओषदी कृत (Oxidation product) पदार्थ है।

जार्गेन्सन (Gorgensen) और किड (Kidd) ने पर्णहरिन अ और ब के जलीय घोल को कांच के बर्त्तन में, बहुत से वायव्योंके साथ सूर्य्य प्रकाश में रखने पर यह देखा कि पिपील मद्यानाद्र् सिर्फ ओषजन की विद्यमानता में ही बनता है। कर्बन द्विओषिद की विद्यमानता में फाओफिटिन बनता (Phaeophytin) है और इसके बाद उसमें कुछ परिवर्तन नहीं होता है। ये व्यक्ति सूचित करते हैं कि पिपील मद्यानाद्र् मुख्यतः फाईटोल (Phytol) ※ से बनता है जोकि प्रकाश और ओषजनकी क्रिया द्वारापर्ण हरिन्‌से पृथक् होता है।

परन्तु इन विचारोंकी सिद्धता (Willstatter) विलस्टटर और स्टाल (Stahl) के प्रयोग से संशयित हो गई है। इन्होंने बतलाया है कि शुद्ध पर्णहरिन् का कलाद्र् घोल काम में लाने से कुछ भी पिपील मद्यानाद्र् नहीं बनता है। अगर अशुद्ध पर्णहरिन् हो तो उसकी अशुद्धियां ओषजन की क्रिया से पिपील मद्यानाद्र् उत्पन्न कर सकती हैं। शुद्ध पर्णहरिन् से पिपील मद्यानाद्र् न मिलने का कारण यह बतलाया गया है कि उसमें आवश्यक प्रेरक जीवों (enzymes) की कमी होती है। प्रयोग से मालूम होता है कि पर्णहरिन् के कलाद्र् घोल पर कर्बन द्विओषिद की क्रिया से अर्धकर्बनेत (bicarbonate) के समान एक पदार्थ मिलता है जिसकी रचना निम्न प्रकार है।
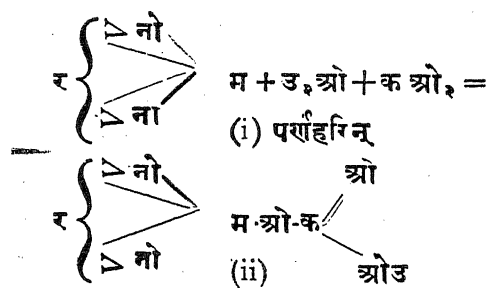
※फाओफिटिन और फाइटोल पर्णहरिन् के सम्बन्धी है =क₅₅उ₅₄ओ₅नो₄ फाइटोल=का₂₀उ₃₈ ओ उ

संख्या (ii) के यौगिक से यह प्रकट होता है कि उसमें से दो ओषजन के परमाणु निकल कर पर्णहरिन् का बनना सहज नहीं है। उसके लिये उसके अणु में आंतर रचना (internal rearranjement) की आवश्यकता है। और विलस्टेटर और स्टौल के कथनानुसार इस रचना के लिये कुछ सामर्थ्य (energy) शोषण की आवश्यकता है। यह शक्ति सूर्य प्रकाश द्वारा प्राप्त होती है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि आंतर रचना द्वारा एक पिपील मद्यानार्द्र-पर-ओषिद (peroxide) पदार्थ (iii) बनता है।

र { >नो, >नोउ } म—ओ—क(=ओ)(—ओउ)

र { >नो, >नोउ } म—ओकउ<(ओ, ओ)
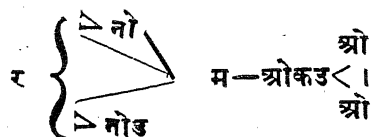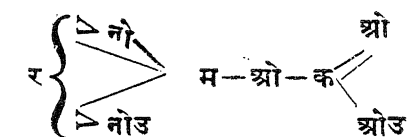
(iii)

यह पदार्थ बड़ी आसानी से ओषजन दे सकता है—एक दम दे दे, चाहे एक एक करके दो भागों में दे। और पर्णहरिन् और पिपील मद्यानार्द्र बन जाते हैं।

(१) र { >नो, >नोउ } म—ओ—कउ<(ओ, ओ)

=र { >नो, >नोउ } म—ओ—क(=ओ)(—उ) +ओ
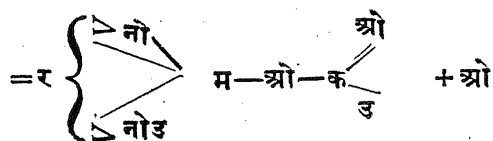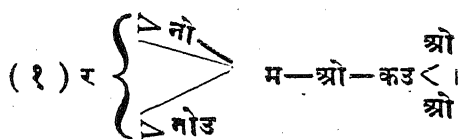
र. नो. नोउम—ओ—कउओ

=र. नो. नो म+ओ+उकउओ

कांचके बरतनमें किये हुये प्रयोगसे, ऊपर लिखा हुआ पर-ओषिद (iii) प्राप्त नहीं हुआ। परन्तु कांचके बर्तनमें किये हुए प्रयोग और प्रकृतिमें (nature) होनेवाली क्रियाओंके भेद पर विचार करनेसे यह ज्ञात होगा कि पर-ओषिद्का न बनना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। कर्बन द्विओषिद पर्ण हरिन् को (कलार्द्र घोलमें) विभाजित कर फाओफिटिन और मगनीस कर्बनेत देता है। परन्तु क्लोरोपास्ट (chlorcpast) पर कर्बनद्विओषिद्की क्रिया हो नहीं सकी। ऐसा विचार प्रकट किया गया है कि जीवित कोष्ठोंमें प्रेरक जीवोंके कारण पर-ओषिद-पिपील मद्यानार्द्र (iii) विभाजित होता है और पिपील मद्यानार्द्र बनता है।

स्पोर (Spoehr) ने बतलाया है कि कुछ वनस्पति-जन्य अम्ल, विशेषतः द्वि-भस्मिक (dibasic) अम्ल क्वार्ट्सके बरतनमें पराकासनी (ultraviolet) किरण की क्रियासे विभाजित हो कर सिरकाम्ल और सिरक मद्यानार्द्र देते हैं जोकि और भी विभाजित हो जाते हैं और पिपीलिकाम्ल और पिपील मद्यानार्द्र देते हैं।

कर्बनद्विओषिद और कर्बोदेतको जोड़नेवाली श्रृंखला पिपील मद्यानार्द्र है। इसके बारेमें सबसे संतोषजनक विचार विलस्टेटर और स्टौल ने प्रकट किये हैं। जितने भी प्राथमिक पदार्थ (primary product) बन सकते हैं उनमेंसे पिपील मद्यानार्द्र ही एक ऐसा है जिसके बननेमें शोषित हुये कर्बन द्विओषिद्का आयतन मुक्त ओषजनके आयतनके बराबर होता है।

यह बतलाना आवश्यक है कि यद्यपि डी॰ साशर (de Saussure) के समयसे (१८०४) यह माना गया है कि वनस्पति जन्य पदार्थोंके प्रकाश संश्लेषणमें पर्णहरिन् मुख्य सहायक है, तथापि इस॰ के माननेमें कोई आपत्ति न होनी चाहिये कि स्वयं पर्णहरिन् भी वनस्पतिओंमें प्रकाश संश्लेषणके द्वारा ही बनता है।

आकाशमें रखने पर पर्णहरिन् का काम क्लोरोप्लास्टका रक्षण करना है, अथवा जैसा प्रिन्गशाइम् (Pringsheim) का विचार है कि यह प्रकाश-परदे (light screen) का काम देता है, उसका सम्बन्ध संश्लेषणसे पिपील मद्यानार्द्र देनेके बाद घनीकरण करनेमें है। इसके सम्बन्धमें यह ध्यान रखने योग्य है कि सं० १८८२ में मालिश (Molisch) ने यह बतलाया कि सूर्य प्रकाश होने पर भी यदि लोहे की मात्रा कम पड़जाय तो हरी वनस्पतियाँ विहरित (chlorosis) होने लगती हैं और यद्यपि पर्णहरिन् के अणुमें लोहा नहीं होता है तोभी लोहेकी कमी दूर करने पर फिरसे पर्णहरिन्की प्रगति बढ़ने लगती है। अंधेरेमें रखनेसे सफेदी पाई हुई हरी पत्तियोंको प्रकाशमें लाने पर पर्णहरिन् फिरसे प्राप्त होता है। इससे यह कह सकते हैं कि पर्णहरिन् स्वयं भी प्रकाश संश्लेषणसे बननेवाला पदार्थ है।

प्रकाशोत्प्रेरण (Photocatalysis) कर्बन द्विओषिद और पानीसे पिपील मद्यनार्द्रका संश्लेषणः—

यह अच्छी तरहसे सिद्ध किया गया है कि कर्बन द्विओषिदका जलीय घोल दृष्ट-प्रकाश-किरण शोषित नहीं कर सकता है किन्तु यह अति छोटे लहर-लम्बाईके परा-कासनी किरणोंको शोषित करता है। इसीलिये संश्लेषणकी प्रथम-क्रियाके लिये जो सामर्थ्य (energy) चाहिये वह मिलनेके लिये कर्बन द्विओषिद और पानीको अति छोटी लहर-लम्बाईकी किरणोंमें रखना चाहिये। यह किरण सूर्य-प्रकाशमें अति थोड़े परिमाणमें होने से संश्लेषणको आरम्भ नहीं कर सकते हैं। अतः वनस्पतियाँ साधारण सूर्य प्रकाशमें ऐसा संश्लेषण किस रीतिसे कर सकती हैं इस बातका कारण हमें ढूँढ़ना चाहिये।

बेली (Baly) और हाइलब्रान (Heilbron) ने उद्जन और हरिन् (chlorine) से उद्जन हरिद तैयार होनेके निश्चयात्मक प्रयोगों से एक सिद्धान्त (theory) निकाला है। ऐसा देखागया था कि इस क्रियाका वेग (Velocity) प्रकाश की तीव्रताके समानुपाती (proportional) नहीं है, परन्तु तीव्रता की अपेक्षा बहुत ही अधिक परिमाणमें बढ़ जाता है; अर्थात् किसी प्रदत्त सामर्थ्य से (given amount of energy) जो उद्जन हरिद बनता है उसकी मात्रा स्थिर (constant) नहीं रहती है,परन्तु इतनी शीघ्रता से बढ़ती है कि अन्त में विस्फुटन होने लगता है। बेली और हाइल ब्रान का विचार है कि यह सिद्धान्त सब प्रकाश-रासायनिक क्रियाओं में व्यवहृत हो सकता है, और इसकी क्रिया के चालन (promotion) में भी प्रयुक्त हो सकता है, जब कि क्रिया करनेवाले अणु आवश्यकता से अधिक पराकासनी किरणों से प्रभावित हों। इस के लिये वह अणु एक "प्रकाशोत्प्रेरक (photocatalyst)" (अ) के साथ मिलाये जाते हैं। यह उन किरणों को शोषित करता है जो के क्रिया करनेवाले अणु के उपयुक्त न हो, परन्तु इस प्रकाशोत्प्रेरक की वही परालाल-झूलन संख्या (infra-red frequency) होती है जो कि क्रिया होने वाले अणु की होती है। जब ऐसा मिश्रण (अ) द्वारा शोषित की हुई किरणों के सामने रखा जावे तो शोषित की हुई सामर्थ्य अ के अनुकूल परालाल झूलन संख्या से विसर्जित होगी और यह झूलन संख्या क्रिया होने वाले अणु की झूलन संख्या के समान होने से क्रिया होने वाले अणु इस को शोषित करेंगे और क्रिया हो जायगी।

मूर (Moore) और वेब्स्टर (Webster) ने कहा है कि कर्बन द्विओषिद का संपृक्त (saturated) घोल कासनी किरणों की क्रिया से पिपील मद्यानार्द्र बिलकुल नहीं देता है, परन्तु किसी यथोचित अकार्बनिक प्रेरक जैसे कि कलार्द्र लोहउदौषिद, बेरील हरिद इत्यादि, के संसर्गसे कुछ पिपील मद्यानार्द्र बनता है। बेली और हाइलब्रान ने इस प्रयोगका समर्थन किया है और वे कहते हैं कि कर्बन द्विओषिद का जलीय घोल पराकासनी किरणों मे रख कर कर्बन द्विओषिद के प्रवाह (current) से संचालित करनेसे पिपील मद्यानार्द्र नाममात्र ही प्रकट होता है। इन व्यक्तियोंने इसके लिये दो कारण बतलाये हैं :—

(१) पराकासनी प्रकाश में मुक्त ओषजन पानी के साथ मिलकर उद्जन-परौषिद देगा। यह परओषिद पिपील मद्यानार्द्र का पिपीलिकाम्ल बना देगा।

(२) अगर घोल को संचालित किया जाय तो ओषद्वी करणसे बचा हुआ पिपील मद्यानार्द्र तुरंत घनी भूत हो जायगा; परंतु यदि संचालन किया जाय तो पिपील मद्यानार्द्र बर्तन की दीवारोंकी ओरसे फेका जायगा जहां कि प्रकाशकी रासायनिक क्रिया करने वाली (actinic) किरणों की तीव्रता कम होती है।

इन व्यक्तियों ने यह देखा कि पिपील मद्यानार्द्र लंबी-लहर की पराकासनी किरणों से (२६० $\mu\mu$) घनीभूत होता है, परंतु उसके संश्लेषण के लिये छोटी-लहर (200 $\mu\mu$) की किरणों की ज़रूरत पड़ती है। परमद्यानार्द्र और सैन्धक दिश्वेत लंबी लहर की पराकासनी किरण शोषित करते हैं, और इसी कारण इनको यदि घोल में छोड़ा जाय तो ये पिपील मद्यानार्द्र की घनीकरण से रक्षा करेंगे। और यह कहा गया है कि मूर और वेब्स्टर द्वारा प्रयुक्त अकार्बनिक उत्प्रेरक (inorganic catalysts) इसी तरह से बर्ताव करते हैं।

पराकासनी किरणोंमें एक प्रकाशसमता (equilibrium) स्थापित होती है :—

कर्बउदेत ⇌ कर्बन द्विओषिद और पानी
↑ पिपील मद्यानार्द्र ↓

प्रथम अवस्था (stage) का प्रकाशोत्प्रेरण होने के लिये ऐसा कोई पदार्थ काममें लाना चाहिये जिसकी कर्बन द्विओषिदके बराबर परालाल भूजनसंख्या हो। 'नीलहरा' या मैलेकाइट ग्रीन रंग, नारंगी दारील और प-नोषोसो द्वि दारील नीलिन् इस काम में आ सकते हैं। उपर्युक्त क्रियाके दूसरी अवस्था के योग्य ऐसा प्रकाशोत्प्रेरक अभी तक नहीं मिला है, परन्तु इन व्यक्तियें का कहना है कि पर्णहरिन् इस संश्लेषण की दोनों अवस्था के लिये एक आदर्श प्रकाशोत्प्रेरक है।

नोषेत और कर्बन द्विओषिद से नोषजन यैागिकोंका प्रकाश संश्लेषणः—वनस्पतियोंके लिये नोषजन का प्राप्ति स्थान पांशुज नोषेत है और संभव है कि अमोनियम लवण द्वारा भी वे नोषजन पाते हैं। परन्तु नोषेत इतने निष्क्रिय (inert) पदार्थ होते हैं कि उनमें रासायनिक परिवर्तन होना सरल नहीं है, लेकिन नोषित (nitrites) उनसे अधिक क्रियावान होते हैं।

स० १८६० में लारेन् (Laurent) ने देखा कि वनस्पतियां नोषेत को नोषित में परिणत कर सकती है और इस बात का शीघ्र ही दूसरे रसायनज्ञों ने समर्थन कर दिया। स० १८८३ में सिकम्पर (Schimper) ने देखा था कि हरे पत्तों के साथ नोषतको सूर्य प्रकाशमें रखनेपर नोषेत नष्ट होते हैं, परन्तु अँधेरेमें रखनेपर यह प्रक्रिया नहीं होती है। और अगर पत्ते सफेदी पाये हुये हों तो भी यह प्रक्रिया नहीं होती है।

पारद क्वार्टज़ प्रदीप (mercury quartz lamp) की किरणों से नोषेत का नोषित में परिवर्तन और साथ साथ ओषजन का निकलना सबसे प्रथम थीले (Thiele) ने प्रत्यक्ष किया।

बाडिस (Baudisch) ने पांशुज नोषित और दारील मद्यका मिश्रण जलीय-घोलमें दिन-प्रकाश (day light) और पराकासनी प्रकाश में रखने पर देखा कि दारील मद्य से पिपील मद्यानाद्र बन गया है और नोषित अवकृत होकर उपनोषित (hypo-nitrite) बन गया, और अन्त में यह उपनोषित पिपील मद्यानाद्रके साथ मिलकर पिपील उदौषामिकाम्ल (formhydroxamic) का पांशुज लवण बना (i) :—

पां नो ओ$_2$ + क उ$_3$ ओ उ
= पां नो ओ + उ क उ ओ + उ$_2$ ओ
पां नो ओ + उ क उ ओ = उ. क. ओ उ
॥
नो. ओ पां
(i)
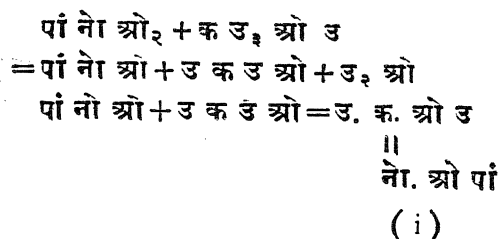
अँधेरेमें रखने से, उबालनेपर भी कुछ क्रिया नहीं हुई। इससे कह सकते हैं कि यह क्रिया स्पष्टतः प्रकाशरासायनिक है।

ऐसे अवकृत होनेवाले नोषेतके घोलमें, हरे पत्ते नोषितके संचित होनेमें बन्धन डालते हैं और इसी तरहसे वे अधिक क्रियावान् (active) यौगिकोंको शोषित करनेके प्रति अपनी शक्ति प्रदर्शित करते हैं, यह बात (Moor) मूर ने देखी। विकासके मार्गमें सबसे पहिले पैदा होने वाले एक ही कोष्ठमें जुड़े हुए जीवाणु कर्बन और नोषजन को हजम (assimilate) करनेका दुहरा काम (dual function) करते हैं। इस निश्चयके अनुसार मूरने एक कोष्ठी अलगाइ (algae) की परीक्षा की। उसने देखा कि नोषजनके वातावरणके अतिरिक्त अन्य पदार्थों की अनुपस्थितिमें और कर्बन द्विओषिद की विद्यमानतामें यह अलगाई नोषजनसे संयुक्त हो सकते हैं, बढ़ सकते हैं, और प्रकाश-शक्ति को काम में लाकर प्रत्यमिन (proteins) तैयार कर सकते हैं। अगर नोषित या नोषजन के ओषिद साथ हों तो यह वृद्धि बहुतही शीघ्र होती है।

थोड़े ही दिन हुए बेली, हाइल ब्रान और हडसन (Hudson) ने नोषेत और कर्बन द्विओषिदसे नोषजन यौगिकोंके प्रकाश संश्लेषणकी परीक्षा की है। कर्बन द्विओषिद को पराकासनी प्रकाशमें रखे हुए पांशुज नोषेत और नोषितके घोलमें से प्रवाह करनेपर नीचे लिखी हुई बातें उनके देखनेमें आईं :—

(१) प्रकाश-रासायनिक क्रियासे बननेवाला क्रियावान पिपील मद्यानाद्र पांशुज नोषित पर क्रिया करता है। यह क्रिया पिपील मद्यानाद्रके शर्करा बननेकी क्रियासे पहिले होती है।

(२) नोषितका जितना परिमाण लगता है उससे अधिक परिमाणमें यदि पिपील मद्यानाद्र तैयार हो तो अवकारक शर्करायें बनती हैं।

ऐसी परिस्थितिमें क्रियावान (activated) पिपील मद्यानाद्रकी रचना उ - क - ओ उ होती है ऐसा मान लिया गया है। क्रियावान होनेका कारण द्विशक्तिक कर्बन है। और आगे ऐसा माना गया है कि इस क्रिया का पहिला पदार्थ पिपील उदौषामिकाम्ल (i) होता है। इससे एक ओषजनका परमाणु अलग होता है। यह अणु दूसरे पिपीलमद्यानाद्रका पिपीलिकाम्ल बनाता है :—

उ — क — ओ उ + ओ : नो ओ पां
उ — क — ओ उ   उ — क — ओ उ + ओ
॥   ॥
ओः नो ओ पां   नो — ओ पां

(i)
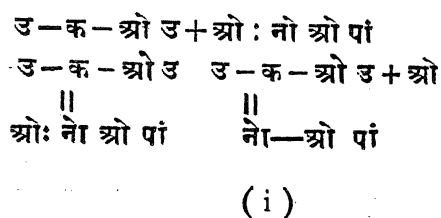
उ — क — ओ उ + ओ = उ — क ओ ओ उ

प्रयोग की परिस्थिति में पांशुज लवण सब उदविश्लेषित हो जाता है और अम्ल बनता है :—

उ – क – ओ उ
‖
नो – ओ उ

इसमें से ओषजन बड़ी जलदीसे निकलकर नीचे दिया हुआ यौगिक बनाता है :—

उ – क – ओ उ
‖
नो उ

जिसको उदश्यामिकाम्ल का उदौषेत समझ सकते हैं। यह पिपील मद्यानाद्रके साथ एक अस्थिर (labile) चाक्रिकयौगिक (ii) देता है। इसमें रचना परिवर्तन होकर मधुन (glycine) (iii) बन जाता है।

उ ओ. कउ—क उ ओ उ
नो. उ
(ii)

नो $उ_2$ क $उ_2$ क ओ ओ उ
मधुन
(iii)

दारील मद्यके घोलमें उदौषिलामिन और ज्वलील पिपीलेतसे बने हुये पिपील उदौषामिकाम्लके जलीय घोल और पिपील मद्यानाद्र पर पराकासनी किरण छोड़नेपर क्रिया एकदम आरम्भ हो जाती है। और दारील अमिन और क—अमिनो अम्ल का एक मिश्रण तैयार होता है। संभव है कि दारील अमिन जो बनता है वह अमोनिया और पिपील मद्यानाद्रसे ही एकदम बनता है। पिपील मद्यानाद्र यहाँ दारील-कारक रस (methylating agent) का काम करता है।

इसके साथ साथ क्षारोद (Alkaloids) भी बनते हैं। इसका स्पष्टीकरण देनेके लिये ऐसा मान लेते हैं के पिपील उदौषामिकाम्ल क्रियावान पिपील मद्यानाद्रके तीन या चार अणुओंके साथ मिलकर नं०(iv) और (v) के यौगिक देता है। यह यौगिक पानी और ओषजनका त्यागकर प्रभोल (pyrrole) और पिरीदिन (pyridine) (1) यौगिक देते हैं:—

उ. क. ओ उ—उ. क. ओ उ
|　　　　|
उ. क. ओउ　उ. क. ओ उ
नो उ
(iv)

उ. क. ओ उ
उ. क. ओ उ　उ. क. ओ उ
|　　　　|
उ. क. ओ उ　उ. क. ओ उ
नो उ
(v)

पिपील उदौषामिक अम्ल के दो अणु पिपील मद्यानाद्रके एक अणुके साथ मिलकर यौगिक (vi) देंगे औ इसमे से पानी और ओषजन निकलकर मधुओषलिन (glyoxaline) बनेगाः—

इन सब विचारोंको निम्न प्रकारसे संकलित किया जा सकता है :—

ऊपर लिखे हुए पदार्थों के बननेकी शीघ्रता का कारण यह है कि इन क्रियाओंके बीचमें जो पदार्थ बनते हैं वे बड़ी क्रियाशील अवस्थामें होते हैं।

थोड़ेही दिनों पहले (स० १९२३) बेली, हाइलब्रान और स्टर्न (Stern) ने प्रकृतिमें मिलनेवाले बहुतसे नोषजन यौगिक कर्बन द्विओषिद और अमोनियासे प्रकाश संश्लेषण द्वारा बनाये हैं। यद्यपि कार्बनिकाम्ल और अमोनियापर प्रकाशकी क्रियासे बनाये हुये पदार्थ, और कार्बनिकाम्ल और पांशुज नोषेत प्रकाशमें रखकर बने हुए पदार्थों में भेद होता है, तो भी संश्लेषणकी रीति दोनोंमें एक सी मालूम पड़ती है। परीक्षाके प्रथम भागमें कर्बन द्विओषिद्से संपृक्त अमोनियाके जलीय घोल अलग अलग देर तक कार्टज पारद प्रदीपके प्रकाशमें रखे थे। अन्तमें देखा गया कि जो पदार्थ मिले उसमें दारील अमिन ही मुख्यतः अधिक था। इसके अतिरिक्त नोषिक और नोषस वाष्पें बनीं। यह प्रकाश संश्लेषण दो श्रेणियोंमें होता है, ऐसा माना गया है। पहिले तो कार्बनिक अम्लपर प्रकाश क्रियासे पिपील मद्यानार्द्र बनता है:—

उ$_2$ क ओ$_3$ = उ क ओ उ + ओ$_2$;

और दूसरा, क्रियावान पिपील मद्यानार्द्र और अमोनियाकी आपसमें क्रिया होकर दारील अमिन का बनना—

नो उ$_3$ + उ. क. ओ उ = क उ$_3$ नो उ$_2$ + ओ$_2$

इन दोनों क्रियाओं में निकले हुये ओषजनसे अमोनियाका नोषिकाम्ल बन जाता है। इसी क्रियामें पिरीदीन और मिर्चौदिन भी बना हुआ देखा गया है।

२ सामान्य अमोनिया और पिपील मद्यानार्द्रपर पराकासनी प्रकाशकी बहुत देर तक क्रिया करनेपर एक क्षारोद मिला है जिसको कोनाइन (Conine) समझते हैं।

यह क्रिया दिनके उजेलेमें या पराकासनी किरण में की गई थी। परन्तु यह ध्यानमें रखना चाहिये कि प्रत्यमिनका संश्लेषण काफी कर्ब उदेत होने पर, अँधेरेमें और पर्णहरिन् रहित अङ्गोंमें भी हो सकता है। कदाचित् यह सच है कि नोषजनकोग्रहण करना प्रकाश रसायनिक क्रिया नहीं है।

उन पदार्थोंके गुण जो चुम्बकत्व और विद्युत्में काममें आते हैं

[लेखक:—श्री युधिष्ठिर भार्गव और श्री कृष्णकान्त भार्गव]

जो पदार्थ साधारण तथा विद्युत और चुम्बकत्व सम्बन्धी कार्योंमें काम आते हैं तीन भागोंमें विभाजित किये जा सकते हैं:—

(१) चालक

(२) विद्युत रोधक या माध्यम

(३) चुम्बकीय पदार्थ

इस लेखमें हम हर भागके कुछ मुख्य पदार्थों के गुणों का अध्ययन करेंगे।

चालक—सभी पदार्थ किसी न किसी सीमा-तक विद्युत् चालक होते हैं इसलिये चालकोंकी कोई परिभाषा ठीक-ठीक नहीं दी जा सकती। धातुओं जैसे पदार्थ साधारणतया चालक और शीशा, अबरक और रबर जैसे पदार्थ रोधक कहे जाते हैं। हम उन पदार्थोंको जो कि अधिकतर विद्युत् धारा के प्रवाहमें काममें लाए जाते हैं चालक कहेंगे और जिनका कि विद्युत्रोधनके लिये उपयोग होता है विद्युत् रोधक कहेंगे।

चांदी सब पदार्थों से अच्छा चालक है। इसकी विशिष्ट बाधा १.४६×१०^{-६} ओह्म (शतांशमीटर)^{१} ०° श. तापक्रमपर होती है अर्थात् यदि चांदीके एक घन शतांशमीटर (centimeter cube) के आमने-सामनेकी सतहोंमेंसे होकर विद्युत् धाराका प्रवाह हो तो बाधा १.४६×१०^{-६} ओह्म होगी परन्तु इसका मूल्य अत्यधिक होने से यह केवल ऐसी जगह काममें लाई जाती है जहां कि बाधा बहुतही कम रखनेकी आवश्यकता होती है। इसका उपयोग इसलिये कुछ घूमनेवाली चीज़ोंके लटकाने और घूमनेवाली बेठनोंके भीतर और बाहर धाराके जाने आनेके लिए होता है बलमापकों (dynamometer) की बेठनोंमें भी चांदीका रोधिततार काममें आता है क्योंकि तांबेकी अपेक्षा चांदीमेंसे चुम्बकीय अशुद्धियां अधिक आसानीसे दूरकी जा सकती हैं।

व्यवहारमें तांबाही सबसे अच्छा चालक माना जाता है। जबसे कि विद्युद्विश्लेषण द्वारा तांबे को शोधनेकी रीति निकली है तबसे अत्यन्त शुद्ध तांबा मिलने लगा है। शुद्ध तांबेकी विशिष्ट बाधा १.५८४×१०^{-६} ओह्म प्रति घन शतांशमीटर है परन्तु यह संख्या थोड़ा बहुत तांबे के इस्तेमाल किये जाने के ढंग पर निर्भर होती है। ढले हुए तांबे की तो बाधा तिगुनी हो जाती है किन्तु वेन्ट्राब (Weintraub) ने दिखा दिया है कि थोड़ा साही टंकणकार्धओषिद (boron-suboxide) डाल देनेसे इसकी चालकता बढ़ जाती है। १००० भाग तांबेमें १ भाग इस पदार्थके डालनेसे चालकता ६४°/० बढ़ जाती है। पिघले हुए तांबेमें मगनीसम् (magnesium) का एक टुकड़ा डालने सेभी चालकता बढ़ जाती है।

तांबा, जैसा कि यह पाया जाता है, कुछ द्विष चुम्बकीय (diamagnetic) होता है किन्तु इसके तार इत्यादि चुम्बकीय (para magnetic) होते हैं। इसका कारण यह है कि यह इस्पातकी जंतियोंमें खेंचे जाते हैं। इस चुम्बकत्व को हटाने के लिए यह तांबा पहले गरम हलके उदहरिकाम्ल और फिर पानीसे धोया जाता है। तत्पश्चात् यह सुखा दिया जाता है।

तांबेके तार अधिकतर रोधित रहते हैं इसलिए यहीं पर हम तारोंको रोधित करनेके जो पदार्थ काममें आते हैं उनकाभी कुछ अध्ययन करेंगे। ऐसे रोधक (१) रेशम (२) रुई (cotton) (३) या वार्निश (varnish) होते हैं।

रेशम इस कामके लिए सर्वोत्तम है क्योंकि इसमें रोएँ कम होते हैं, यह जगह कम लेता है और यह रोधकभी अच्छा है।

यद्यपि रुई अच्छा रोधक नहीं है तथापि सस्ता होनेके कारण भारी और मज़बूत यन्त्रोंमें काम में लाई जाती है। कभी-कभी इसे वार्निशमें डुबा कर सुखा लेते है।

आजकल एनामल (enamel) का भी रोधने के लिए उपयोग होने लगा है। हुचर्स ने दो भाग गिबसानाइट (gibsonite) और तीन भाग रेंड़ीका तेल इस्तेमाल किया है। इनको साथ-साथ गरम किया जाता है फिर तार इस मिश्रणके बीच मेंसे और गरम नलियोंके बीचमेंसे खींचे जाते हैं।

छिद्रोज के त्रिसिरकेत (tri acetate of cellulose) का भी उपयोग किया जाता है। इसको बनाने के लिए सिरक अनार्द्रिद (acetic anhydride) और उदित छिद्रोज (hydrated cellulose) को गंधक के तेज़ाब के साथमिलाया जाता है। फिर तेज़ाब पूर्णतया हटा दिया जाता

है। यह दृढ़ और लचीला होता है और मामूली गरमी सह सकता है।

वार्निश किए हुए तारोंको सावधानीसे काममें लाना चाहिए। उनको अधिक मोड़ना न चाहिए और यदि वे मोड़े जाँय तो मोड़पर नोक न निकलने देनी चाहिए। योरपमें कभी-कभी चौकोर (rectangular) तारोंका उपयोग किया जाता है। इनके उपयोगसे वही काम बनता है जो कि एक २१°/॰ अच्छे चालकके उपयोग से बनता। चौकोरतार देखनेमें अच्छे होते हैं और यह जगह भी कम लेते हैं।

चालकोंको काममें लानेमें विद्युत् धाराके घनत्व (density) का भी विचार रखना चाहिए। ताँबेके लिये १.५५ से २.० एम्पीयर प्रति वर्ग सहस्रांश मीटरकी धारा रखना ठीक होता है।

तारोंको गरम करके ठंढा (anneal) करनेकी रीतिका भी प्रभाव चालकतापर पड़ता है। ऐडिक्सने यह दिखा दिया है कि सर्वोत्तम चालकता लानेके लिए तारोंको इतना गरम करना चाहिए कि वे अँधेरेमें दीखने लगें। तब इनका तापक्रम ५००°—५५०° श होता है। फिर इनको ठंडा होने देना चाहिए।

अगर हलके चालककी आवश्यकता हो तो स्फटम् (aluminium) का उपयोग किया जाता है। इसकी विशिष्ट बाधा २.५६ × १०⁻⁶ ओह्म प्रति शतांशमीटर है और इसमें विद्युत धाराका घनत्व ०.९५ एम्पीयर प्रतिवर्ग सहस्रांश मीटरतक हो सकता है। जिन यंत्रोंमें तार बेठनोंकी संख्या अधिक होती है उनमें यह धातु अक्सर काम आती है। यह धातु भली भाँति ढाली जा सकती और इसके तार आसानीसे खींचे जा सकते हैं। किन्तु एक तारको दूसरे तार इस प्रकार जोड़ने में कि बाधा कमही रहेमें कठिनता पड़ती है क्योंकि इस धातुपर सदैव एक पारदर्शक ओषिद जम जाता है। इसकी बाधा अधिक होने से जोड़ों पर चौड़ी सतहकी आवश्यकता होती है।

कुछ वर्षोंसे स्फटम् रंगनेके (colorizing) के काममें आने लगा है। इसके कर देनेसे लोहे पर ज़ंग नहीं लगता। धातुओंके जिन हिस्सों पर यह क्रिया करनी होती है उनको एक बन्द भपके में रखते हैं जिसमें स्फटम् और स्फटम् ओषिदभी साथ ही रखे जाते हैं। भपका खूब गरम किया जाता है और साथ ही साथ उदजनकी एक धारा भी उसमें बहाई जाती है। इस रीति से लोहेपर स्फटम्की एक सतह जम जाती है।

साधारण लोहा विद्युत्चालनके लिए काम में लाया जाता है। इस रीतिसे हम ताँबेकी अधिक चालकता और लोहेकी मज़बूती इत्यादि सबसे लाभ उठा सकते हैं। इस पदार्थको पाने की एक रीति यह है :—

कोमल इस्पातके लट्ठेपर विद्युत् द्वारा एक तांबेकी पतली सतह जमा दी जाती है। एक तांबे-की नलीमें इसे रखकर दोनों सिरे बन्द किए जाते हैं। इन नलियों को फिर गरम किया जाता है और गरम हालत में इसकी छड़ें बना लेते हैं और ठंडे होनेपर इनके तार बना लिए जाते हैं।

स्फटम् और तांबेके धातु संकर अक्सर विद्युत्चालकों और बाधाओंके लिए लगाए जाते हैं। तांबेके साथ स्फुर (phosphorous) मांगनीज (manganese), शैलम् (silicon) और रागम् (chromium) मिलाकर जो धातुसंकर बनाए जाते हैं उनके आन्तरिक गुण अच्छे होते हैं किन्तु उनकी बाधा अधिक होनेके कारण उनका उपयोग अधिक नहीं होता।

धारा मापकोंके घूमनेवाले भागोंको लट-कानेके लिए बहुधा स्फुर कांसा काममें लाया जाता है। इसमें निम्नलिखित धातुएँ इस प्रकार मिली रहती हैं:—

तांबा ७९°/॰; रांगा, १०°/॰; सीसा १०°/॰ और स्फुर १°/॰। सीसे और स्फुरके परिमाण आवश्यकतानुसार बदले जा सकते हैं; कभी कभी

९°/₀ स्फुर भी डाला जाता है। यह धातु मेल बहुत कड़ा होता है, इसकी दृढ़ता (tenacity) अधिक होती है और गरम होनेपर इसकी लचक (elasticity) कम होती है—इस गुणके कारण ही इसका उपयोग धारा मापकोंके घूमनेवाले भाग-को लटकानेमें होता है क्योंकि लटके हुए चुम्बक धारामापकोंके चुम्बकोंका घूर्ण गरमीसे कम होता है। इससे प्रगट है कि धाराके मापक पर गरमीका या तो बिलकुल प्रभाव न पड़ेगा और यदि पड़ेगा भी तो बहुतही कम।

शैलम् कांसा और रागम् कांसामें स्फुरके बदले क्रमानुसार शैलम् और रागम् डाला जाता है। स्फुर कांसे की अपेक्षा इनकी चालकता अधिक और तापक्रम गुणक (temperature coefficient) कम है। इसपर हवा पानी इत्यादि का भी प्रभाव बहुत कम पड़ता है।

इन धातु संकरोंको बनानेमें थोड़ा बहुत लोहा जरासीही असावधानीसे मिल जाता है। इसके मेलसे कुछ चुम्बकीय गुण आ जाते हैं, क्योंकि यह लोहा किसी रसायनिक उपायसे हटाया नहीं जा सकता इसलिए ऐसा धातुसंकर बनानेके लिए, जिसमेंकि चुम्बकीय गुण न हों, बड़ी सावधानीकी आवश्यकता है।

स्फटम्के साथ अन्य धातुओंको मिलाकर अति उपयोगी धातु संकर बनाए गए हैं। इनमेंसे एक ड्यूरालुमिनम् है। विल्म ने यह दिखाया था कि मगनीसम् (magnesium) डालनेसे धातुसंकर में कड़ापन आ जाता है। तबसे ताँबे, और मांग-नीज (manganese) के धातुसंकरमें मगनीसम् डालकर धातुसंकर बनाये जाने लगे। यह धातु-संकर हल्के होते हैं और बहुत तनाव सह सकते हैं। हालमें डाक्टर रोजेनहेन ने स्फटम्, ताँबा जस्ता और मगनीसम्का एक धातुसंकर तैयार किया है। इसके गुण ड्यूरालुमिनम्से भी अधिक मार्के के हैं।

बाधक पदार्थोंका अध्ययन ठीक प्रकारसे पहले पहल डाक्टर मैथीसन ने (१८६१-६५) किया था। बाधक पदार्थोंमें मुख्य गुण यह होने चाहिए:—

१—अधिक विशिष्ट बाधा।

२—कम तापक्रम गुणक।

३—ताँबे के साथ जोड़ होनेपर कम ताप-विद्युत् संचालक शक्ति।

४—गरम होनेपर भी ज़ंग न लगना।

५—साधारण गुण जल्दी २ बदलें।

६—पतले तार और पत्तर बनाये जा सकें।

७—पारेमें घुलनशील न हो।

८—कारखानेमें सब क्रियायें आसानीसे हो सकें।

किसी भी शुद्ध पदार्थमें यह सब गुण नहीं पाये जाते, न किसी धातुसंकरमें यह सब गुण किसी न किसी सीमा तक पाये जाँयगे। इसलिए हम शुद्ध धातुओंको इस काममें लानेका विचार छोड़ देंगे।

मैथीसन ने यह देखा था कि किसी धातुसंकर की चालकता इसमें पड़ी हुई भिन्न-भिन्न धातुओं की चालकता से अधिकतर (किन्तु सदैव नहीं) कम होती है। अन्त में उन्होंने यह निश्चय किया कि यदि 'क' धातुसंकरका तापक्रमगुणक और 'ख' उसमें पड़ी हुई धातुओंका औसत ताप-क्रम गुणक हो और यदि 'ग' और धातुसंकर की चालकता और घ उसमें पड़ी हुई धातुओंकी औसत चालकता हो तो $\frac{क}{ख}=\frac{ग}{घ}$।

बाधाओं के बनानेमें कई धातुसंकरों का उपयोग किया जाता है। पहले जर्मन चांदी (german silver) काममें आती थी इसमें ताँबा ६०°/₀, जस्ता २५°/₀ और नकलम् १५°/₀ रहता है।

शीघ्र ही इस धातु संकरके स्थानपर और अच्छे पदार्थ काममें आने लगे। सन् १८८९ ई०

में डाक्टर वैस्टन ने यह मालूम किया कि तांबा और मांगनीजका धातु संकर (जिसको उन्होंने मांगनीन् (manganin) नाम दिया) का तापक्रम गुणक बहुत ही कम रहता है। इस विषयका अध्ययन करनेपर यह निश्चय किया गया कि परिमाणिक बाधाओंके बनानेमें इस धातु संकरका उपयोग करना सर्वोत्तम होगा।

नैशनल फ़िज़िकल लैबोरेटरी (national physical laboraotry) ने इस धातु संकरमें निम्न लिखित धातुओंके यह परिमाण निश्चित् किये हैं :—

तांबा ८६.७८°/。; ९.१०°/。; नकलम् ३.५५°/。 लोहा .१९°/。; शैलम् .१०°/。

यदि इस धातु मेलकी बाधा और तापक्रमके बीचका सम्बन्ध दिखाते हुए एक वक्र (curve) खींचा जाय तो यह पाया जायगा कि ताप क्रम गुणक नीचे तापक्रमों पर धन और ऊँचे तापक्रमों पर ऋण होती है। यह सम्बन्ध निम्न लिखित समी करण से सूचित किया जासकता है।

$$\text{बाधा}_{\text{ता.}} = \text{बाधा}_{\text{अधिकतम}} \left\{ १ - \text{क} \ (\text{ता} - \text{त}, ^२ \right\}$$

इस धातु संकर के सब गुणोंका विचार रखते हुए यह पदार्थ बहुत ठीक पड़ता है। ताँबेके साथ जोड़ होनेपर इसकी ताप विद्युत संचालक शक्ति १.९×१०⁻⁶ वोल्ट प्रति १° श है। स्फुर काँसे के साथ जोड़ होने पर यह संख्या (.२ से १.८) नियुतांश वोल्ट प्रति १°श अर्थात् और भी कम है। इसके साधारण यान्त्रिक गुण भी ठीक हैं। किन्तु गरम और फिर ठंडा होने देने में इसके कुछ भागों के ओषिद बन जाते हैं और तांबे की एक सतह ऊपर रह जाती है। इसलिए इसका तापक्रम गुणक ऊँचा और धन हो जाता है। इस कारण इसको गरम और फिर ठंडा बड़ी सावधानी से करना होता है। इस धातु संकरमें चुम्बकीय गुण भी हैं।

हालमें एक धातु संकर थर्लो (therlo) तैयार किया गया है इस धातु संकरके गुण और भी अच्छे हैं। इसका तापक्रम गुणक कम है। और तांबेके साथ तापविद्युत् संचालक शक्तिभी बहुत कम हैं। इस पदार्थमें एक यह अद्भुत गुण है कि भिन्न भिन्न नमूनोंमें तापक्रम गुणक धन या ऋण हो सकता है। इन दोनों प्रकारके नमूनोंके तारोंको ज़ंजीर और हारमें जोड़कर ऐसी बाधा बनायी जा सकती है कि जिसका तापक्रम गुणक शून्य हो, यदि बाधा और तापक्रमके संबन्ध दिखाते हुए वक्र (graphs) खींचे जांय तो यह प्रकट हो जायगा कि इस धातु संकरका उपयोग करना अच्छा पड़ेगा। इस पदार्थके एक नमूनेमें यह पदार्थ निम्न लिखित परिमाणोंमें पाए गए हैं :—

तांबा ७०.९९°/。; स्फटम १६.६६°/。; मांगनीज १०.५८°/。; लोहा १.९१°/。 शैलम् .९°/。

कांस्टेंटन (constantan) तांबा और नकलम्के धातु संकरोंमेंसे एक धातु संकर है। इनकी विशिष्ट बाधा (४७—४८)×१०⁻⁶ ओह्म प्रति घन शतांशमीटर है किन्तु तांबेके साथ इसका जोड़ होनेपर तापविद्युत् संचालक शक्ति ४०×१०⁻⁶ वोल्ट प्रति १°श अर्थात् अत्यधिक होती है।

यह पहलेही कह चुके हैं कि शुद्ध धातुएं बाधाओंमें बहुत कम काम आती हैं, तथापि ऊँचे तापक्रमोंको नापनेके लिए जो तापमापक होते हैं उनमें परारौप्यम (platinum) लगाया जाता है। सस्ता होनेके कारण लोहा उन बदलनेवाली बाधाओं (rheostats) में इस्तेमाल किया जाता है जिनमें कि विद्युतधारा तेज रहती है। इसका मुख्य दोष यह है कि इसका तापक्रमगुणक .००६ अर्थात् अत्यधिक है।

यहां उन पदार्थोंके बारेमें कुछ लिखना आवश्यक है जो कि फ़्युसतार (fuses) में लगाए जाते हैं। इन पदार्थों के द्रवांक भिन्न-भिन्न धातुओंको

भिन्न-भिन्न परिमाणोंमें मिलानेसे बदले जा सकते हैं। साधारणतया द्रवांक २०° और २००°श के बीचमें ही रहता है।

प्रीस (Priece) ने एक सूत्र उस धाराके बल को निकालने का दिया है जो कि फुसतारको गला देगा। वह यह है।

धारा = स्थिर संख्या × (व्यास) $^{\frac{3}{2}}$ स्थिर संख्या फुसतारके पदार्थ पर निर्भर है। तांबे, लोहे और सीसेके लिए क्रमानुसार यह संख्या १०.२४४; ३.१४८ और १.३७६ हैं।

एडिसनका जीवन चरित्र

(गतांक से आगे)

[ले०—श्री हरीलाल पञ्चौली]

न् १८७८ में एडिसन बहुत बड़े और आवश्यक आविष्कार की उधेड़ बुनमें लगे। इस समय तक लोगों को यह ज्ञात नहीं था कि विद्युत द्वारा जनताके लिये प्रकाश का प्रबन्ध किया जा सकता है। इनके समयके पहले रोशनी कई प्रकारसे की जा चुकी थी। मिट्टीका तेल, मोमबत्ती, भांति भांति के लैम्प और अन्तमें लोग कोयलम् गैस (coal gas) जलाने लगे। यह गैस एक जगह बनाई जाती थी और वहींसे बड़े बड़े नलोंसे धरती के अन्दर लेजाई जाकर छोटी छोटी नलियों द्वारा घरों में लेजाई जाती थी और सर्व साधारण इससे प्रकाश पाते थे। लोगों ने इस प्रकार विद्युत् को बांटने की भी कोशिश की परन्तु फलीभूत न हुए। एडिसन ने कहा कि बिजली कई मार्गोंमें विभक्त की जा सकती है। इस पर यूरुप के कई विद्वानों का मत था कि यह एडिसन का केवल भ्रम मात्र है। उन्होंने गणितसे इस बात को सिद्ध किया कि बिजली नहीं बांटी जा सकती। उस समय के बहुत से विद्वान इस बात की तरकीब २५ वर्षसे सोच रहे थे परन्तु किसीसे यह बात हल न होती थी। दूसरी बात बिजली के लैम्प बनाने की थी जिसके लिये बहुत से लोगों ने प्रयत्न किये परन्तु किसी को भी सफलता न हुई। लैम्प १० मिनिट तक जल कर खराब हो जाते थे। उन दिनों में तार हवा में जलने दिया जाता था। केवल इन्हीं बातों के हो जाने से उद्देश्य की पूर्ति नहीं हो सकती थी। इस बात का भी प्रबन्ध करना था कि चाहे जितने लैम्प जलें परन्तु बिजली की शक्ति कम न हो और हर एक लैम्प एक दूसरेसे बिलकुल स्वतन्त्र हों, नहीं तो एक लैम्प में ख़राबी होने से सब लैम्प बुझ जायेंगे। उस समय टिंडल (Tyndall) ने कहा था कि मैं समझता हूँ कि इस काममें कुछ पेच अवश्य है। इस कारण मैं इसको अपने हाथमें लेनेकी अपेक्षा एडिसनके हाथमें देना अधिक उचित समझता हूँ।

इससे भली प्रकार ज्ञात होता है कि बड़े बड़े विद्वान् भी एडिसन का लोहा मानते थे।

एडिसन ने इस कार्य्यमें १८७७ से ही हाथ लगा दिया था। उसने कहा कि बिजली दो समानान्तर तारोंमें विपरीत दिशामें चले और लैम्प हार की तरह दोनों तारोंके बीचमें लटकाये जायें तो बिजली बँट भी जायगी, लैम्प भी अनगिनती एक दूसरेसे स्वतन्त्र रह सकेंगे और बिजली की शक्ति भी नहीं घट सकेगी। लैम्प बनानेमें जितनी दृढ़ता, परिश्रम और मन लगा कर एडिसन ने कार्य्य किया उतना शायद ही किसी मनुष्य ने किया हो। एडिसन ने पहिले कर्बन के तारोंसे ही काम करना शुरू किया। वह कई प्रकारसे तार बनाते और बिजली उसमेंसे बहाते थे। कभी बिजली चलाने वाली शक्ति घटाते बढ़ाते और कभी कुछ और करते परन्तु वह लैम्प १० मिनटसे अधिक न ठहरता था। तार टूट जाता

और लैम्प बुझ जाता। जब इससे सफलता न हुई तब उन्होंने कठिनतासे पिघलने वाले धातुओंके तारसे काम करना शुरू किया परन्तु उसमें भी कोई सफलता न हुई। तब उन्होंने हवा निकाल कर तारमें से बिजली दौड़ाई। अबकी बार तार अधिक देर तक ठहरा और सफलता की आशा हुई। अब वे शून्य पैदा करने के यन्त्र बनानेमें लगे। उसके बाद उन्होंने फिर लैम्प का काम करना आरम्भ किया। अब वे फिर कर्बनसे काम करने लगे। अब उनको अधिक सफलता होने लगी और लैम्प कई घण्टों तक जलने लगा। उन्होंने एक धागेसे कोयला बनाकर (carbonize) के धारा चक्करमें रक्खा। इससे प्रकाश बहुत तेज़ होगया। फिर इन्होंने हर प्रकारके लकड़ीके रेशोंको, रेशमको, और जो भी चीज़ मिली, सबसे कोयला बनाकर (carbonize) अनुसंधान करना आरम्भ किया। मुटाई कम करनेसे प्रकाश अधिक होता था। इस कारण इन्होंने बहुत पतले पतले रेशे काम लाने शुरू किये। पहिले लोग रेशों को मोटा रखते थे। जिससे उनकी बाधा कम होजाती थी, शक्ति अधिक लगती थी और धातु भी अधिक लगता था। इनके इस अनुसन्धान से विज्ञान संसारमें हलचल मचगई। इन्होंने अनुसन्धान करनेमें हजारों लैम्प बना डाले। एक दिन एक बांसके रेशेसे कोयला बनाकर काम कर रहे थे इससे उनको सबसे अधिक सफलता हुई। बस फिर क्या था बांसकी तलाशमें दूर २ आदमी भेजे गये। जापान, चीन आदि देश छान डाले गये, वहांसे बराबर बांस आने लगे। बहुतसे आदमी अमेज़नकी तलेटीमें हज़ारों मील पैदल चल कर बांसकी तलाश करने लगे। इस प्रकार यह एक बड़ा भारी उद्यम होगया। अमेरिकामें लाखों कर्बन लैम्प बनाये गये और सड़क पर बिजली की रोशनी होने लगी। धीरे२ यूरूपमें भी इसका प्रचार होगया। यह सब एडिसनकी अध्यक्षता हीमें होता था। इस प्रकार एडिसनने बिजली की रोशनी का प्रचार किया, जिसके लिये संसार उनका कितना कृतज्ञ है। गैसकी रोशनीसे विषैले पदार्थ बनते थे परन्तु बिजलीमें ये सब कुछ बात नहीं थी। इनके कामोंसे प्रत्यक्ष प्रतीत होता है कि ये कितने पूर्ण रूपसे अनुसन्धान करते थे और उसमें कितने लिप्त हो जाते थे। कभी-कभी तो खाना भी न खाते; जिसमें उनका विश्वास हो जाता उसको मालूम करके ही मानते थे। ऐसी दृढ़तासे काम करने वाले भला क्यों न सफल मनोरथ हो।

१८७९ में एडिसनने एक डाइनमो (Dynamo) [धारा जनक] बनाया जोकि पहिलेके बने हुए धारा जनकोंसे कहीं अच्छा और अधिक शक्ति पैदा करने वाला था। अपने (motor) मोटर की सहायतासे उन्होंने बिजलीसे चलने वाली रेल बनाई। पहिले तो सिर्फ एक छोटी सी गाड़ी बनाई और उसकी परीक्षा मेन्टोपार्कमें की गई, जहां ये रहते थे। इसके बाद मशीन को अच्छा बनाकर गाड़ी की रफ़्तार बढ़ाने लगे। इस प्रकार जब इनको सफलता हो गई तो एक कंपनीके अनुरोधसे जनताके बैठनेके लिये डिब्बे इत्यादि बनाये और बिजलीसे चलने वाली गाड़ीका प्रचार कर दिया।

जिस समय एडिसन बिजलीके लैम्पके बारेमें अनुसन्धान कर रहे थे उसी समय अमेरिकामें एक जटिल प्रश्न लोगोंके समक्ष उपस्थित था कि पूर्वीय लोहेके व्यापारियोंको बराबर हानि हो रही थी और व्यापार उत्तरोत्तर पश्चिमकी ओर अग्रसर होता जाता था। कारण कि मिचिगन (Michigan) के पास उत्तम लौह राख पाई गई थी। इससे पूर्वीय मिलवाले बहुत हानि सहन कर रहे थे। पूर्वीय व्यापारी इस बातसे भिज्ञ थे कि उत्तम लौह राख बहुत शीघ्र निपट जायगी और फिर नीची श्रेणीकी राख पर ही निर्भर होना पड़ेगा, परन्तु इस राखमें रद्दी पदार्थ बहुत थे, इस कारण रेलका किराया इत्यादि कई प्रकारके व्यय बृथाको पड़ते थे। स्वाभाविक ही लोगोंके

मनमें लोह-राख पृथक् करनेके लिये चुम्बकका उपयोग उचित मालूम पड़ा परन्तु व्यापार रूपमें फलीभूत होने की समस्या को एडिसनके सिवाय बहुत कम लोग समझते थे। उन्होंने निश्चय किया कि नीची श्रेणीकी राखको ही चुम्बक द्वारा अलग कर उत्तम बनानेमें ही लाभ हो सकता है और कार्य्यको बड़े पैमाने पर करनेकी आवश्यकता है। यह निश्चय कर एडिसन पश्चिमकी ओर चले और कुछ समयके अनुसन्धानके पश्चात् उनको एक बड़े विस्तार की भूमि ऐसी मिली जिसमें २० या २५ प्रति शत लोह-राख मौजूद थी। एडिसनको सफलता प्राप्त करनेके लिये बड़ी भारी हिम्मतकी आवश्यकता थी। पहाड़को तोड़ना, पत्थरों के राई बराबर व उससे भी छोटे छोटे टुकड़े करना और उसमेंसे लोहको पृथक् करना कोई सहज कार्य्य न था। एडिसन इस बात को समझते थे कि जितना ही अधिक प्राकृतिक शक्तियोंको कार्य्यमें लायेंगे उतना ही लाभ होगा। इसीका उपाय करनेमें उन्होंने अपने को दत्तचित्त हो लगा दिया। उन्होंने इस कार्यके लिये खास तौरकी मशीनें बनाई जो प्रचलित मशीनोंसे कहीं बड़ी और सुदृढ़ थीं। चट्टानोंको चूर्ण करनेके लिए दीर्घाकार बेलन बनाये जैसे कि उस समय तक न बने थे। पत्थर खोदनेमें उन्होंने बड़ी चतुरता से काम लिया। पहले लोग बारूद (dynamite) से चट्टानोंको उड़ाते थे जिससे बहुत शक्ति व्यर्थ नष्ट होती थी, इन्होंने बारूद से सिर्फ़ चट्टानों को तोड़ने का निश्चय किया और पत्थरोंके तोड़ने को कोयलेसे शक्ति लेनेकी विधि निकाली, जिससे खर्च बहुत कम होगया। फिर उनको तोड़नेके लिये देव रूप बेलन लोहेके बनाये गये। दो ठोस लोहेके बने हुए बेलन ६ फ़ीट व्यासके और ५ फ़ीट लंबी धुरी पर घूमते थे और उनके बीचमें १४ फ़ीट का अन्तर था। सतहसे लोहेके मोटे-मोटे काँटे निकले हुये थे और पत्थर ऊपरसे डाले जाते थे तो १४ फ़ीटके टुकड़े बनकर नीचेके छोटे बेलनों पर पड़ते थे और इस प्रकार उनके छोटे-छोटे टुकड़े किये जाते थे। इन बेलनों को पट्टेसे चलाया जाता था जिस प्रकार आटा पीसनेकी चक्की चलती है। इन बेलनोंकी शक्तिका अनुमान करनेके लिये उदाहरणार्थ दो रेलगाड़ियोंको लीजिये जो ६० मील प्रति घण्टेके हिसाबसे विपरीत दिशामें जा रही हों। उनके बीचमें एक पत्थर रख देनेसे जो उसकी दशा होगी, वही दशा उन बेलनोंके बीचमें होती थी। इन टुकड़ोंको चूर्ण किया जाता था और सुखाकर चुम्बकीय विभाग किया जाता था। इसके लिये चूर्ण ऊपरसे डाला जाता था और कई चुम्बक बीचमें रक्खे जाते थे जोकि अपनी अपनी शक्ति अनुसार लोहकणों का मार्ग बदल देते थे और भिन्न भिन्न श्रेणीके कण भिन्नभिन्न खानोंमें पड़ते थे। इस प्रकार एडिसन ने अपने काममें सफलता प्राप्त की। जो वृथा पदार्थ निकलता था वह भी बाज़ारमें बिक जाता था क्योंकि मकान वगैरह बनानेके काममें आ जाता था।

इस कार्यसे एडिसनने जंगल को बस्ती बना दिया। सैकड़ोंकी संख्यामें मनुष्य जाने लगे, बड़े-बड़े घर बन गये, बिजलीसे प्रकाश इत्यादि मिलने लगा, यह सब होते हुए भी इनका सब परिश्रम अन्त में निष्फल गया क्योंकि उसी समय एक स्थानमें लोहेकी खान मिली जहाँसे लोहा बहुत सस्ता मिलता था। इस कारण एडिसनके कार्यमें सफलता न हुई, परन्तु उनके इस कार्यसे चरित्र-दृढ़ता का पता भली भाँति चलता है। उनमें कितना धैर्य, कितना आत्म विश्वास व कितनी विचार शक्ति थी इस बातको देखकर आश्चर्यचित्त हो जाना पड़ता है। जिस बात पर वे जो विचार करते वह सदा ठीक उतरता था। उनमें यह ख़ास आदत थी कि किसी कार्यमें भी पूर्णता प्राप्त किये बिना उसका पिण्ड नहीं छोड़ते थे, इस विषयमें एक उनकी कहानी बड़ी ही शिक्षाप्रद है। एडिसन कभी खेलते नहीं थे, उनका मनोरञ्जन काम करनेमें

ही होता था, एक दिन उन्होंने अपने एक मित्रसे बिलियर्डस (billiards) खेलने का आग्रह किया जिसको सुनकर उनके मित्रको बड़ा आश्चर्य हुआ क्योंकि एडिसनको खेलनेसे घृणा थी और खेलने को वे समय का वृथा नष्ट करना व दुरुपयोग समझते थे। खेलते समय जब एडिसनने गोटी मारी तो निशाना चूक गया, इस पर इन्होंने नये खिलाड़ी होने के कारण रिआयती तौर पर फिर निशाना मारने की अनुमति लेली लेकिन फिर भी चूक गये। फिर उन्होंने गोटी वहीं रखवाई और इस प्रकार पन्द्रह मिनिट तक बराबर निशाना लगाते रहे और जब उनका निशाना अचूक बैठने लगा तब उठ खड़े हुए और खेल बन्द होगया। यह घटना साधारण होते हुये भी कितनी महत्व पूर्ण है। उनकी दृढ़ता, उद्योग, परिश्रम, साहस और धैर्य का मूर्त्तिमय चित्र है। उनकी कार्य कुशलता का अन्त यहीं नहीं होता। इसी समयमें अमेरिकामें सीमेन्ट की आवश्यकता बहुत बढ़ रही थी। इसके कई कारण थे जैसे लकड़ी की न्यूनता और ईंटें व पत्थरके भावकी तेज़ी। सीमेन्ट का काम तो बहुत पुरातन से चला आ रहा था और यदि एडिसन पुराने ढङ्ग पर ही काम करते तो कभी अपने कार्य्यमें इतने सफल मनोरथ न होते, परन्तु उन्होंने तो अपनी आदतके अनुसार ही काम किया। उनका स्वभाव था कि वे कभी पुराने सिद्धान्तोंके सिवाय और कुछ बातों पर विश्वास नहीं करते थे। इस कार्यक्षेत्रमें उतरने के बहुत दिन पहिलेसे उनका पक्का विश्वास था कि इसमें बहुत उन्नति होगी। उन्होंने चौबीस घण्टोंके अन्दर ही सब इमारत व कारबार का नकशा ठीक-ठीक बनाकर तैयार कर लिया। उनका कार्य भली भाँति चलने लगा और ध्येय उनका उत्तम सीमेन्ट पैदा करने का रहा। साधारणतया सीमेन्ट की चट्टानको चूनेके पत्थरके साथ मिलाया जाता है फिर उसको महीन पीसा जाता है। इन सब कार्य्यों में अधिक सफलता का कारण एडिसन की नई नई मशीनों और तरीकों का काममें लाना ही था।

साधारण जनताके मनमें कोई विशेष भाव एडिसनके प्रति उठना ऊपरकी कही बातोंसे इतना सम्भव नहीं प्रतीत होता जितना कि नीचे लिखी बातोंसे अनुमान किया जा सकता है।

आजकल समस्त सभ्य संसारमें मनुष्योंका मनोरञ्जक सिनेमा-चलती फिरती तस्वीरों—से सबसे अधिक होता है। अमीर, गरीब, विद्वान, कुपढ़, हर प्रकार व विचारके मनुष्य सिनेमाको पसंद करते हैं। कारण मालूम करनेके लिये बहुत परिश्रम करनेकी आवश्यकता नहीं है। इससे थोड़ेही व्ययमें घर बैठे सहस्त्रों मीलके पुरुषोंके आचार व्यवहार, रहन सहन, उनका सामाजिक व्यवस्था, उनकी शासन करनेकी योग्यता, उनकी चतुरता अथवा देश प्रेम सब कुछ ही तो मूर्तिमय हो आँखोंके समक्ष आजाता है। बड़े बड़े शस्त्रोपाय—चीड़ फाड़की विधियाँ इत्यादि हर समय सन्मुख रक्खी जा सकती हैं और देश देशान्तरोंमें सबोंका मालूम हो सकती हैं। हालां कि शस्त्रोपाय सबके सामने नहीं किया जा सकता। और जो भी लाभ हैं उनको पाठक स्वयम् विचार सकते हैं, गिनती करनेसे लाभ नहीं। अब हम ऐसे उपयोगी और कौतूहलपूर्ण अविष्कारके बारेमें कुछ बतायेंगे जिसके लिये स्वाभाविक ही मन उद्विग्न होना चाहिये।

इस अविष्कारमें जीवित वस्तु को पर्देंपर पूर्ण रूपसे प्रदर्शित करदेना ही मुख्य है। मनुष्य की आँखोंका यह एक गुण है कि जो वस्तु उसके सामने होकर हट जाती है, उसका अनुभव (impression) हटनेके कुछ समय बाद तक रहता है, उदाहरणार्थ एक जलती हुई दियासलाई अपने सामने घुमानेसे पूरा वृत्त मालूम पड़ता है। यदि एकही तरह की कई तस्वीरे आंखोंके सामने इस प्रकारसे

लगातार निकाली जायँ कि एकके असरके समयमें दूसरी उसके सामने न आवें तो ऐसा प्रतीत होवेगा कि एकही तस्वीर उसके सामने है। इसी प्रकार यदि कई प्रकार की तस्वीरें जिनमें अंगोंके हिलनेमें शनैः शनैः अंतर पड़ा है, आंखोंके सामने निकाली जायँ तो मामूली तौरसे आदमी काम करता मालूम पड़ेगा। इस बात को मानकर अब यह आवश्यकता रह गई कि किस प्रकारसे ऐसी तस्वीरको बनाया जाय कि एक दूसरेमें बहुतही कम अंतर हो और फिर किस प्रकार उनको आँखोके सामनेसे निकाला जाय। एडिसनके पूर्व कई मनुष्य यूरपमें इसके ऊपर कार्य्य कर चुके थे परन्तु जल्दी २ फोटो लेनेका तरीका-सफल न होता था।

जिस समय एडिसन इस कार्य्यक्षेत्रमें उतरे, उस समय संसारको इतनाही मालूम था कि यदि चलती फिरती चीज़ों की तस्वीरें बहुत ही शीघ्र गतिसे ली जायँ, तो वे इस प्रकार परदे पर दिखलाई जा सकती हैं कि चलती फिरती चीज़ोंका बोध हो जाय। पूर्ण सफलता के लिये दो बड़ी बाधाओं का सामना करना था—एक तो किसी सूचक (sensitive) सतहकी आवश्यकता थी जो चलतो फिरती चीज़ोंके सामने शीघ्रता से लाई जाय (expose) और एक ऐसा केमेरा जिससे कि ऐसी तसवीरे ली जाँय। पहिले तो सतह कांच पर बनाई जाती थी और इतनी सूचक (sensitive) नहीं होती थीं इस कारण साफ़ तसवीरें नहीं आती थीं। अंतमें उन्होंने इस कठिनता को दूर कर लिया और सतह एक ख़ास तौर की चीज़ पर बनाई जाने लगी। फिर एक ऐसी मशीन बनाई जिससे कि एक सेकंडमें चालीस-पचास तस्वीरें खिच जाती थीं। पटल तस्वीर खेंचनेके (film exposure) समय खुली और स्थगित रहती थी और कपाट बंद करने पर नई सतह सामने आजाती थी। इस प्रकार एडिसन का केमेरा तैयार हो गया सन् १८८९ में एडिसन का पहिला केमेरा बना और तस्वीरें तैयार की गईं। तबसे आज तक उन्हीं का केमरा तसवीरें लेनेमें काम आता है। इनके सिवा और भी बहुत चीजें एडिसनने निकालीं जिनमें से एक परिवर्तीय बाटरी (secondary cell) भी है और इसकी उपयोगिता विज्ञानका हर विद्यार्थी भली भाँति समझता है। एडिसन ने वास्तवमें अपने परिश्रम और बुद्धिबल से संसार का बहुत उपकार किया है और ऐसेही मनुष्य का जीवन सफल है।

देश और काल

[पूर्वानुवृत्ति]

[ले०—श्री सुरेशचन्द्र देव, एम. एस-सी.]
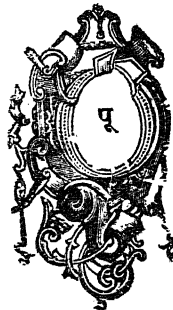
पूर्व लेखमें हम लोगोंने गतिके साथ-साथ लम्बाईके परिवर्तनके विषय में कुछ आलोचना की है। इस आलोचनाके द्वारा हम लोगोंने जो सिद्धान्त निश्चित किये हैं वे हमारे साधारण अनुभव के इतने विरुद्ध हैं कि उनको एकाएक मान लेनेमें हमें संकोच होता है। हमारे हाथमें एक लेखनी है—इसकी लम्बाई करीब आठ इञ्च की है। अगर कहा जाय कि इसको हिलानेसे इसके आकारका परिवर्त्तन होता है, तो आप लोग हमें अवश्य पागल समझेंगे।

गतिशील अवस्थामें पदार्थों की लम्बाई का परिवर्तन होने, पर चाहे जितनी भी युक्तियां दी जायँ हम लोग विश्वास नहीं करते। इसका कारण यह है कि हमने लंबाईके विषयमें एक विचित्र धारणा बनाली है। हममें यह धारणा केवल हमारे जीवन-के प्रारम्भसे ही शुरू नहीं हुई,—प्रत्युत हजारों

वर्षोंके ज्ञानसे धीरे-धीरे समर्थित होकर पितासे सन्तानको उत्तराधिकार स्वरूप मिलती चली आ रही है। क्योंकि हमारे मनमें प्रत्येक विचारके लिये धारणा होना भी एक स्वाभाविक नियम है और विकास-वादके मूल नियमोंसे ही इसका भी सम्बन्ध है।

अतएव ऐसी अति दृढ़ीभूत धारणा एक बातमें ही दूर हो जायगी ऐसी कल्पना हम नहीं सकते। प्रत्युत् यदि हम नवीन ज्ञानके प्रकाशसे इसको मूल पर्यन्त देखने की चेष्टा करें तो इसमें जहां-जहां कमियां हैं, वह प्रकट हो जायंगी। हममें जो जो परंपरागत धारणायें हैं उनका स्पष्ट स्वरूप और खुलेदिलसे विचार करनेमें और एक लाभ है। किसी मकानको और बढ़ाना चाहें तो इञ्जीनियर का प्रथम कर्त्तव्य है कि उसकी नींव की सामर्थ्यकी परीक्षा करे। उसी तरह जो इञ्जीनियर विज्ञानरूप महाप्रासादको बढ़ानेकी चेष्टा करता है उसको भी प्रथम उचित होगा कि जिस भित्ति पर वह खड़ा है उसकी सामर्थ्यकी परीक्षा करे। लम्बाईके सम्बन्धमें हमारी मूल धारणा को विचारके मानदण्डसे परीक्षा करनेके विषयमें भी हमारे मनमें इसी तरहका एक भाव है।

भौतिक-विज्ञान (physics) और तत्वज्ञान (metaphysics) में भेद यह है कि भौतिक विज्ञान ने अपने सब " मत ", " नियम ", " उपपत्ति " आदिकी सत्यताके सम्पूर्ण दायित्वको नाप-जोकपर छोड़ रखा है, और नापजोकके प्रयोग का सबसे अनुकूल क्षेत्र हैं—लम्बाई। सत्य बात यह है कि नापको छोड़कर भौतिक विज्ञानमें हम एक पद भी आगे नहीं चल सकते। अब नाप जोकके लिये सबसे आवश्यक है—यन्त्रकी सहायता। सब यन्त्र जड़ पदार्थ या प्रकाश तरङ्गके मूल तत्वके ऊपर निर्भर हैं। इसीलिये लम्बाई या पूरत्व कहनेसे भौतिक विज्ञानमें वही " वस्तु " समझी जायगी जो कि जड़ या प्रकाशके द्वारा नापजोक करके पाई जाती है।

सरलताके लिये, आइये, हम लोग लम्बाई नापनेके लिये जड़ पदार्थके यन्त्रका व्यवहार करें। इस यन्त्रको आप सब कोई पहचानते हैं—और पूर्वमें इसका व्यवहार भी कर चुके हैं। इसका नाम है " पैमाना "। यह स्मरण करा देना अति आवश्यक है कि " पैमाना " अगर रबरका बना हुआ हो तो उससे और जो काम हो या न हो—उससे नापनेका काम नहीं चल सकता। अर्थात् पैमाना किसी कठिन पदार्थका बना होना चाहिये। किन्तु फिर यह आपत्ति आती है जब यह प्रश्न करते हैं कि कठिन पदार्थ क्या वस्तु है। इसका उत्तर है—कठिन पदार्थ वही वस्तु है जोकि अपनी लम्बाई प्रत्येक समय अपरिवर्तित रखता है। ऐसा कहनेमें आपत्ति क्या हुई उसको इस प्रकार समझाया जा सकता है। हम लोग लम्बाई उसको कहते हैं जो कठिन पैमानेसे नापकर पाई जाती है फिर हमने यह कहा कि कठिन वस्तु वह है जो अपनी लम्बाई चिरकाल अपरिवर्तित रखती है। अर्थात् लम्बाई की परिभाषा करते समय हम " कठिन " पैमाने शब्द का व्यवहार करते हैं और कठिनता की व्याख्या करते समय "लम्बाई" शब्दका प्रयोग कर देते हैं जो कि न्याय विरुद्ध है—अँगरेजी तर्क शास्त्रमें इसीका नाम ' argumenting in a circle ' है।

इसी कारण यन्त्र द्वारा हम लम्बाईकी संज्ञा देनेकी चेष्टा करते हैं उसमें फिर लम्बाईकी परिवर्त्तन शीलताका भाव (idea) नहीं ला सकते। यह स्पष्ट है कि जिसको हम " आदर्श यन्त्र " कहते हैं वह कभी अपनी लम्बाईका परिवर्त्तन नहीं करेगा,—चाहे किसी भी वस्तुसे वह निर्मित क्यों न हो। अगर एक दण्डके अन्तर्गत दो रेखाओंके मध्यवर्ती स्थलकी लम्बाई को हम एक मीटर कहकर नामकरण करें तो वह एक मीटर छोड़कर और कुछ नहीं हो सकती। अगर फिर कहें कि दण्ड अपनी लम्बाईको परिवर्त्तन करता है तो इसका कारण यही होगा कि

लम्बाईके बारेमें हमने अपने मनोभावका परिवर्त्तन कर लिया है। इसीलिये जिस यन्त्र से हम लम्बाई का निर्द्धारण करेंगे उसमें ऐसा कोई दोष नहीं आरोपित करना चाहिये जिसको अन्तमें स्पष्ट न कर सकें। असंज्ञापित दोषका परित्याग करना ही न्याय का नियम है। अतएव जो आदर्श मान दण्ड है उसमें लम्बाईका परिवर्त्तन नहीं होता।

इस तरहसे लम्बाई की धारणा को न लाकर भी हम पहले आदर्शमान दण्डकी संज्ञा दे लेते हैं—और उत्तरमें कहते हैं कि देश सम्बन्धीय हमारा सम्पूर्ण ज्ञान जड़ पदार्थसे बने हुए नापनेके पैमानेके ऊपर निर्भर करता है।

उपर्युक्त बातोंको और भी साफ करनेके लिये और एक विषयके उल्लेखकी आवश्यकता समझते हैं। आप कह सकते हैं कि नापनेके पैमानेकी धारणाको एकदम न लाकर भी हम कह सकते हैं कि क ख=२ गघ। अर्थात् क और ख दो विन्दुओंका मध्यवर्ती स्थान ग और घ के मध्यवर्ती स्थानका दुगुना है। लेकिन यह कहनेके साथ-साथ यह भी कहना होगा कि कागज सर्वत्र एक प्रकारका है। अर्थात् कागज़ एकरस है। अब एक-रसताका अर्थ क्या होगा! एकरसताका अर्थ है—विशेष लम्बाईमें कागज़का परिमाण (amount) एकसा होना। हमको फिर 'लम्बाई' शब्दका व्यवहार करना पड़ेगा। व्यवहारिक भाषामें यह होगा कि पैमानेके एक इञ्च परिमाण लम्बाईमें कागज का परिमाण सर्वत्र समान रहता है। अर्थात् आपने अपने पैमाने को, देश को समान टुकड़ोंमें विभाजित करनेके काममें बिना जाने ही व्यवहार किया। अर्थात् आपको फिर "कठिन दण्ड" शब्द का प्रयोग करना पड़ा—जोकि पहले जैसा दिखाया गया है—सम्पूर्ण असम्भव है।

इस पैमाने की समस्या में एक और बातका सन्देह शायद रह जाता है। आप कह सकते हैं कि विभिन्न अवस्थामें रूलरकी लम्बाईका परिवर्त्तन होता है। हम इसको यदि ठीक करलें तो रूलरमें जो सब दोष अबतक दिखलाये गये हैं वह अन्तर्हित हो जायँगे। यह बात तो सर्वथा निर्मूल है, किन्तु प्रश्न यह है कि पैमानेकी लम्बाईको ठीक करनेपर हमको क्या मिलने की सम्भावना है? ठीक कर लेनेका प्रश्न वहींपर आता है जब कोई वस्तु अपने आदर्श स्थानसे च्युत होती है। उद्जन के तापमापक (thermometer) का हम लोग शोधन करते हैं—क्योंकि ऐसा करनेमें हम आदर्श वायव्य तापमापक को पाते हैं। हम जानते हैं कि उद्जनके अणुओंका आकार ससीम (finite) हैं और इसका एक अणु दूसरेको आकर्षित करता है—प्रत्युत आदर्श तापमापकमें यह दो दोष नहीं होने चाहिये। अर्थात् इस समस्यामें हमको सहायता करनेके लिये हमने आदर्श तापमापककी एक स्पष्टधारणा बनाली है; परन्तु कठिन पैमाने (rigid scale) से नापी हुई लम्बाईको ठीक करके हम किस आदर्श अवस्था को प्राप्त होंगे हमको उसका कोई ज्ञान नहीं है।

नापनेके यन्त्रके सम्बन्धमें जैसा पहले कहा गया है कि जिसके आचरणके ऊपर सारा भौतिक शास्त्र निर्भर है, इतनी भूमिकाके अनन्तर अब हमारा जो वास्तविक विषय है उसकी ओर हम आते हैं। लम्बाईके बारेमें हमारी साधारण धारणा क्या है उसको कहेंगे। आपेक्षिकत्वकी धारणाको भौतिक शास्त्रमें उपयोग करनेके पहले तक वैज्ञानिक लोग लम्बाईको इसी तरह समझते हैं। इस पुरानी धारणाको देनेके अनन्तर हम लोग नवीन ज्ञान की दृष्टिसे इसकी आलोचना करेंगे। इसी आलोचनाके भीतरसे ही नवीन मनोभाव क्या है वह भी स्पष्ट हो जायगा।

पुरानी धारणा क्या थी उसको हम इस तरह से लिख सकते हैं—हम "लम्बाई" नामसे किसी "वस्तु" को नापना चाहते हैं। प्रकृतिमें इसका एक कोई निरपेक्ष (absolute) अर्थ है, जो प्रकृति

सम्बन्धी नियमों के साथ अविच्छिन्न रूपसे संयुक्त है। यूकलिड ने अपनी रेखागणितमें जो मूल प्रतिज्ञायें स्वीकार की हैं वह लम्बाई भी उन प्रतिज्ञाओं को स्वीकार करती है। महाकर्षण की तरह जब कोई क्षेत्र नहीं रहता है तो कठिन पैमानेसे इसको निर्भ्रान्त रूपसे नापभी सकते हैं। और महाकर्षण रूप क्षेत्रमें इसको ठीक-ठीक नहीं नापा जा सकता है।

लम्बाई सम्बन्धी इस विचारकी आलोचनामें हम अब प्रवृत्त होंगे। ऊपर जो लिखा गया है उसमें तीन बातें कल्पना की गई हैं। (१) लम्बाई नामक प्रवृतिमें कोई निरपक्ष वस्तु वर्त्तमान है। (२) इन सब निरपेक्ष वस्तुओंका ज्यामितिक नियम युकलिडके नियमोंकी तरह है। और (३) प्रयोग द्वारा इनको ठीक-ठीक निकाला जा सकता है जब महाकर्षण रूप कोई शक्तिक्षेत्र वर्त्तमन न हो।

नवीन दृष्टिसे इन कल्पनाओंकी किसीको भी आवश्यकता नहीं है। विशेषतः इसकी दूसरी "कल्पना," विज्ञानकी मूल पद्धतिके विरुद्ध है। क्योंकि प्रकृतिको अपने मनमाने किसी नियमके अन्तर्गत कहना रीति विरुद्ध समझा जाता है। प्रकृतिका नियम प्रयोग द्वाराही गठन करना उचित है। इस विषयमें हमारा परीक्षित फल यह है कि नापी हुई लम्बाई कभी यूकलिडकी रेखा गणितका अनुसरण करती है और कभी नहीं भी करती। और पूर्व में हमने दिखलाया है कि नापी हुई "लम्बाई" और आदर्श (absolute) लम्बाई में क्या सम्बन्ध है यह हमारे ज्ञानके बाहर है। इसीलिये हम जब कहते हैं कि नापी हुई लम्बाई युकलिडके नियमोंके अधीन है तो हम ठीक नहीं कहते। और तीसरा कल्पनाके बारेमें अत्यन्त सूक्ष्मरूपके नापना भी दशमलवकी ४/५ संख्याके आगे सन्देह युक्त हो जाता है। अब यदि यह अन्तर इतना सूक्ष्म है कि दशमलव की ४/५ संख्याके बाद भी पता नहीं चलता है तो उसके लिये हमारा सब परिमाण भी विफल प्रतीत होगा। किन्तु इन कल्पनाओं (hypothesis) में सबसे भ्रान्तिपूर्ण है प्रथम, जब हम लम्बाईको नापते हैं तब हम क्या किसी निरपेक्ष वस्तुका परिमाण करते हैं? एक घन शतांशमीटरके अन्तर्गत स्थानमें कितने संख्यक अणु हैं उनको जब हम गणना करनेकी चेष्टा करते हैं तब हमलोग अनेक प्रकारका उपाय लगाते हैं। हो सकता है कि प्रत्येक उपाय एक घन शतांशमीटरमें अणुकी संख्या भिन्न-भिन्न देता हो। किन्तु अणुओंकी संख्या तो निर्दिष्ट है, और उसके लिये किसी प्रकार का सन्देह उठ नहीं सकता है। इसी लिये इस तरहके विषयमें अगर कहा जाय कि अमुक उपाय ठीक है और अमुक उपायमें इतना भ्रम है तो ऐसा कहनेमें कुछ सत्यता पाई जाती है। क्योंकि गणना एक निरपेक्ष absolute) क्रिया है। किन्तु अन्यान्य भौतिक विषय भिन्न भित्तियों पर खड़े हैं। क्योंकि यह सबको मालूम है कि लम्बाई, भार (mass) शक्ति (force) इत्यादि भौतिक विषय विशेष निर्दिष्ट नियमसे परिचालित प्रयोग से प्राप्त फलकी सहायतासे ही निश्चित किये जाते हैं।

इसीलिये किस उपायसे लम्बाई नापी गयी है वह जब तक निर्दिष्ट नहीं होता है तब तक हम "लम्बाई" का कोई अर्थ नहीं पाते हैं। ऐसा बिना किये अगर किसी तरहकी संज्ञा पायी जाय तो हम लोग उसको स्वीकार नहीं करेंगे क्योंकि परीक्षा और प्रयोग के विरुद्ध होगी। वैज्ञानिक अनुसन्धानमें बहुत स्थलोंमें यह पाया गया है कि कोई विषय प्रयोग द्वारा मुख्य रूपसे नहीं मिला है प्रत्युत बादको उस विषय पर गणित इत्यादिका उपयोग करके उसको निर्द्धारित किया गया है।

अगर ऐसा होता है तो किसी समयकी आवश्यकता नहीं क्योंकि वह ठीक समय पर स्वयं सैद्धान्तिक विचारमें आजावेगा किन्तु इस प्रकार की गणनाकी सत्यताको पहलेसे ही स्वीकार कर लेना भी तो न्याय संगत नहीं है।

इसीलिये लंबाईको निर्दिष्ट करनेके लिये हमारा जो प्रयोग है उसी पर सब उत्तरदायित्व छोड़ देना ही युक्तिका काम होगा। कठिन मानदण्ड लंबाईके विचारमें सबसे प्रधान अवलम्बन होगा। इस कठिन मानदण्डके आचरण पर प्राकृतिक रेखा-गणितकी मूल प्रतिज्ञायें निर्भर होंगी और वह मानदण्ड ही गणितको सब दोष एवं गुणोंके लिये दायी रहेगा किन्तु विशेष-विशेष अवस्थाओंमें इसमें भ्रान्ति आ सकती है ऐसा कहना कदापि उचित नहीं होगा क्योंकि उसमें अभ्रान्त अवस्था का एक आदर्श आवश्यक होगा—जिसका कोई अस्तित्व नहीं है।

अब तक शायद् स्पष्ट होगया होगा कि जड़ पदार्थसे बने हुए कठिन मानदण्ड परही भौतिक शास्त्र की सकल समस्यायें आकर ठहरती हैं। इसीके आचरणको अपनेमें केन्द्र रूपसे अन्तर्ग्रहण करके देश और लम्बाईकी सब धारणायें निर्भर रहती हैं। इसीलिये अगर हम देशको जड़के व्याप्ति रूपका अवकर्षण कहें तो अन्याय नहीं होगा। क्योंकि जब कभी परीक्षा और प्रयोग द्वारा देश का गुणागुण निर्णय करना चाहते हैं, यह व्याप्तिरूप सम्बन्धही हम लोगोंको मिलता है। इसीलिये हमारे समक्ष जो देश प्रकाशित है वह इन जड़रूप सम्बन्धों का अवकर्षण (abstraction) स्वरूप है।

देशके सम्बन्धमें हमें एक बात और कहनी है। कल्पना कीजिये कि आपके सामने दो विन्दु हैं। इनकी मध्यवर्त्ती दूरी (distance) को नापनेके लिये, जैसा पूर्वमें बता चुके हैं, कठिन पैमानेके व्यवहार की आवश्यकता होगी। इन दोनों विन्दुओंको दो पदार्थोंसे चिह्नित कर दिया क्योंकि जड़ पदार्थके बिना इनको हम पहचान नहीं सकते। सरलताके लिये समझा जाय कि दोनोंमें कोई आपेक्षिक गति नहीं है, इस कारण इनके बीचकी जो दूरी है वह सर्वदा अपरिवर्त्तित ही रहेगी। गत लेखमें जो कहा गया है उससे अब तो कोई सन्देह नहीं रह सकता है कि आदर्श (absolute) गति नाम की कोई वस्तु जड़ जगत्में नहीं हो सकती। इसीलिये जब पैमानेसे इनके बीचकी दूरी नापेंगे उसकी ऐसी कोई एक आदर्श अवस्था नहीं होगी जिसको हम स्थिर अवस्था कह सकें। चाहे कैसी भी विशिष्ट गति क्यों न हो इसमें मुझे कोई आपत्ति नही हैं। लेकिन अब विभिन्न गतिसे नापा हुआ फल अगर एकसा न हुआ तो इन विभिन्न फलोंमेंसे किसको हम वास्तविक लम्बाई कह कर स्वीकार करेंगे इसके लिये कोई उपाय नहीं है। इसके उपरान्त जब वे दो विन्दु पैमानेकी बगलसे भागे जा रहे थे उस समयके किस मुहूर्त्तमें हमविन्दुके बीचकी दूरीके लिये पाठ (reading) लेंगे इस समस्याके भी समाधानका कोई उपाय नहीं दीख पड़ता है।

प्रथम दृष्टिमें विन्दुकी गतिके समान गति पैमानेमें आरोपित करना इसका उत्तर प्रतीत होगा। किन्तु वास्तव क्षेत्रमें यह अत्यन्त असम्भव जान पड़ता है क्योंकि इसको स्वीकार करनेसे सेकण्डमें १०,००० मील गतिसे भागने वाले धन विद्युत्के कणोंको नापना केवल कठिन ही नहीं, असम्भव हो जाता है। इसीलिये भौतिकवेत्ता लोग सर्वदा अपने यन्त्रको पृथ्वीमें स्थिर है ऐसा स्वीकार करते हैं। लेकिन यह तो अन्य प्रसङ्ग है, किन्तु हमारा प्रयोजनीय विषय यह है कि लम्बाई को नापते समय केवल नापनेके यन्त्रका ही उल्लेख करनेसे सब कार्य समाप्त नहीं हो जायगा। साथ साथ यन्त्रकी गतिकी अवस्था क्या है उसके जाने बिना लम्बाईकी धारणा (idea) अपूर्ण रह जाती है।

हमारी जो दूसरी समस्या है, अर्थात् पैमानेको विन्दुके बगलसे भागनेके किस मुहूर्त्तमें लम्बाईके लिये पाठ लेंगे, उसकाभी उत्तर प्रथम दृष्टिसे दिया जा सकता है। वह उत्तर इस तरहका है—'चाहे जो मुहूर्त्तहो दोनों पाठ ठीक "एकही समय" पर लेंगे। जो दो विन्दु लेकर हम यह सब समस्या उठाते हैं वह देश (Space) के अन्दर अवस्थित है, क्योंकि उनके रहनेके लिये और कोई स्थान नहीं है। और

जब हम विन्दु दो हैं ऐसा कहते हैं तब यह कहना उचित है कि वे देशमें दो विभिन्न स्थानों पर उपस्थित हैं। देशके दो विभिन्न स्थानोंका "एकही समय" का क्या तात्पर्य है यह हम नहीं जानते।

दो स्थानोंमें एकही समय जाननेके लिये हमें सर्व प्रथम देश (या आकाश) के भीतरसे वस्तुकी निरपेक्ष गति जानना आवश्यक है जिसका हम समय जानना चाहते हैं किन्तु हम जानते हैं कि यह निरपेक्षगति हम किसी तरहसे नहीं जान सकते (विज्ञान-विभाग २८, संख्या ५, पृ० १६३)। काल्पनिक विन्दुको छोड़कर आप एक सत्य-वस्तु पर विचार करें। जिस पृथ्वीपर हमारा सब कुछ निर्भर है देशके भीतर (या आकाश) से उसकी गति हम स्थिर अवस्थासे लेकर प्रकाशकी गति तक सकल गतिको ही ठीक जानकर ले सकते हैं। गतिकी इससे अधिक संख्या हम नहीं लेते। उसका कारण यह है कि इससे अधिक होना असम्भव है। दो विभिन्न स्थानोंका दो विभिन्न मुहूर्त्तोंका समकालीन (simultaneous) होना क्या व्यापार है यह भी एक अनिर्वचनीय समस्या है।

वर्त्तमान लेखकी प्रथम अवस्थामें हमारी समस्या यह थी कि लम्बाईकी संज्ञाके लिये कठिन पैमानेका (rigid scale) व्यवहार करना पड़ता है, और कठिन पैमानेकी परिभाषाके लिये लम्बाई आवश्यक होती है। इस समस्याका किस तरह समाधान किया गया था आपको याद ही होगा। वर्त्तमान समस्या है—देशके दो विभिन्न स्थानोंका समय कब मिल जायगा। इसका भी समाधान होगा पूर्वही रूपसे। अर्थात् दो विभिन्न स्थानोंका समकालीन होना इस व्यापारको पूर्णतः अस्वीकार करके। अब जो समस्या और शंकायें इस समकालीनताकी भित्तिपर निर्भर हैं वहभी साथ-साथ अपने आपही अन्तर्हित हो जाती हैं।

इस दूसरी समस्या को उठानेका मुख्य तात्पर्य यह है कि सब परिमाणों (measurement) में देशके साथ साथ कालभी चला आता है। लम्बाई जो नापते हैं वह मूलतः केवल देश स्थित दो विन्दुओं का मध्यवर्ती व्यवधान ही नहीं है—परन्तु कालके मुहूर्त्तके सहित मिला हुआ देशके दो विन्दुओंका व्यवधान है। अर्थात् हमारे निकट जगतका जो दृश्य प्रकट होता है वह केवल देशमें ही निबद्ध नहीं है, उसके साथ कालभी ओतप्रोत रूपसे हमारे समक्ष आ जाता है। यद्यपि देशको जिस तरह हम अनुभव करते हैं—कालको ठीक उसी तरह नहीं करते। इसका कारण हमारी इन्द्रियोंकी अयोग्यता है—कालका देशसे मूलतः विलक्षण रहना जोकि साधारण सिद्धान्त है—वह नहीं।

हमारे अनुभवमें जो देश है उसकी व्याप्तिको हम तीन मानोंके द्वारा प्रकट करते हैं। ये व्याप्तिमान (dimension) लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाईके नाम से प्रसिद्ध हैं। अब हम देखते हैं कि यह तीन मान एक दूसरेसे पृथक् नहीं रह सकते। ठीक उसी तरह और एक विषय है जो इन तीनोंसे पृथक् होकर नहीं रह सकता। यद्यपि यह हमारे प्रत्यक्ष अनुभवमें नहीं आता, तथापि इसको लम्बाई चौड़ाई और ऊँचाई की तरह एक व्याप्तिमान (dimension) ही नाम देना उचित होगा। इस चतुर्थ मानका नाम है—काल।

हम समझते हैं कि जगतमें सकल घटनाओंका क्रम है एक अखण्ड चतुर्विध मानका क्रम। हम जैसे साधारण देशके क्रमको स्वेच्छानुसार लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाईमें विभाजित कर लेते हैं, ठीक उसीतरह इस चार मानोंके जगत्को भी देश और काल, इन दो विषयोंमें पृथक् करते हैं; इन दोनों क्रियाओंमें भेद यही है कि एकको तो हम अखण्ड जान कर—अपनी सुविधाके लिये जान बूझकर पृथक् कर लेते हैं, किन्तु दूसरेके समयभी हम पृथक् कर लेते हैं परन्तु जान बूझकर नहीं, अपनेमें किसी एक रहस्यमय प्रक्रियासे, इसलिये परिदृश्यमान देश केवल सतहसेही (surface) बना हुआ कहना जैसा भ्रान्तिपूर्ण है, उसी तरह जगतको कालसे असम्बद्ध कहनाभी भ्रान्तिपूर्ण होगा।

मुद्रक—सूरजप्रसाद खन्ना, हिन्दी-साहित्य प्रेस, प्रयाग

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces for use in Schools and Libraries. Reg. No. A.708

पूर्ण संख्या—१६४

भाग २९ Vol. 29. वृष संवत् १९८६ संख्या २ No 2

मई १९२९

प्रयागकी विज्ञानपरिषत्‌का मुखपत्र

Vijnana the Hindi Organ of the Vernacular Scientific Society, Allahabad

अवैतनिक सम्पादक

ब्रजराज

एम. ए., बी. एस-सी., एल-एल, बी.

सत्यप्रकाश,

एम एस-सी., विशारद.

प्रकाशक

विज्ञान-परिषत्, प्रयाग

वार्षिक मूल्य ३)] [१ प्रतिका मूल्य ।)

विषय-सूची

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५।

भाग २६ | वृष संवत् १९८६ | संख्या २

त्रिलोक

[ले०—श्री तत्त्ववेत्ता जी]

हले की दुनियां कुछ और थी, और आज-कलकी कुछ और है। आजकल पढ़ने वाले छोटे-छोटे विद्यार्थियोंको भी यह सिखाया जाता है कि हमारी पृथ्वी नारंगीके समान गोल है। लड़कोंको इस भूमिके रूपका आभास देनेके लिये फुटबाल के समान बड़े और गोल ग्लोब प्रत्येक स्कूलमें दिखाये जाते हैं। इन गोलोंको घुमाकर घुमाकर अध्यापक यह बताता है कि देखो, किस प्रकार एशियासे यूरोप, यूरोपसे अमरीका, और अमरीका से जापान चीन होते हुए हम फिर एशियाके जिस स्थानसे चले थे लौट आते हैं। हमारी एक परिक्रमा पूरी हो जाती है। इस प्रकार पृथ्वीका गोल होना बताया जाता है। एक समय वह भी था जब यूरोप के पढ़े लिखे भी इस भूमिको चपटा मानते थे। कुछ लोग ऐसे भी थे जो समुद्रोंको भूमण्डल से अलग मानते थे। फ्रान्स या आयर्लैण्डके समुद्र तट पर खड़े होकर वे अपनी दृष्टि डालते तो जहां तक उनको दिखाई देता, वे एक मात्र जलका ही साम्राज्य पाते थे। इस विस्तृत जल समूहके आगे क्या है, इसकी कल्पना भी वे न कर सकते थे। वे अपनी छोटी-छोटी नौकाओंसे जहांतक हो सकता था आगे बढ़ते पर उन्हें इस अगाध समुद्रका पार नहीं मिलता था।

यही नहीं, एक और भी बात थी। यह तो समुद्रके आरपार जानेकी बात हुई। कुछ समुद्रकी गहराईके विषयमें भी सुनिये। समुद्रमें किसी

मल्लाहने बीस फ़ीट नीची डुबकी लगाई, उसे इसकी कुछ थाह न मिली। किसीने और साहस किया—तीस चालीस फीट, पचास साठ फीट नीचे गया पर उसे पैर रखने के लिये धरती न मिली। कुछ चतुर व्यक्तियोंने लम्बे-लम्बे बांस नीचे छोड़े पर अथाह समुद्रकी गहराईका भी उन्हें अनुमान न हो सका। उन्हें यह पता न चलसका कि समुद्रके नीचे भी पृथ्वी ही है।

पृथ्वीके नीचे क्या है—यह भी रहस्यमय प्रश्न हैं। बड़े-बड़े कुंए खोदे गये, मिट्टीको अलग करते करते खोदने वाले एक ऐसे स्थान पर पहुंच गये जहां उन्हें जल मिला। जलके मिलनेसे उन्हें पता चल गया कि पृथ्वीके नीचे जल-लोक है। लोगोंने पाताल-लोककी कल्पनाकी। कथा कहानियोंमें पाताल लोकमें असुरोंका वास बतलाया गया जो अवसर पाकर भूमि लोकको आते और यहांके देवोंको अनेक यातनायें पहुँचाया करते थे और फिर पाताल लोक जाकर छिप जाते थे।

कुछ लोगोंने यह प्रश्न उठाये कि यह पृथ्वी अधर लोकमें किस प्रकार ठहरी हुई है। यह गिर क्यों नहीं पड़ती है? अगर यह दैवयोगसे कभी गिर भी पड़े तो गिरकर कहां जायगी? हिन्दुओंने शेषनाग रूपी एक सर्पकी कल्पनाकी जिसके फन पर यह भूमि आश्रय पारही है, उन्होंने दिशाओंको संभालने वाले दिग्गजोंके रूपमें विशेष हाथियोंकी कल्पनाकी। शेष-नागको भी कोल और कच्छुकी सवारी दी। जिसकी जितनी बुद्धि थी, उसने उसके अनुसार इस रहस्यके समाधान करनेका यत्न किया। न्यूटनने आकर्षण शक्तिके सिद्धान्त द्वारा इस उलझनको दूर किया।

भूमिके नीचेकी बात छोड़कर, चलिये, अब ऊपर बढ़ें। जलमें सर्वदा विहार करने वाली मछलियाँ समुद्रके वास्तविक रहस्यको हमारी अपेक्षा अधिक जानती होंगी। भूमि पर मनुष्य और पशुओंका राज्य है, पर आकाशमें तो बेचारे दो परके पक्षियोंकी ही पहुँच है। अगर कोई उनकी भाषा समझ सकता है तो उनसे पूछले कि भूमिके ऊपरका हाल क्या है? पर यदि हम ऐसा नहीं कर सकते हैं तो आइये, हम भी पक्षी बनकर ऊपर उड़ें और वहांके कुछ समाचार प्राप्त करें। पर ऊपरका कुछ वृत्तान्त तो हम भूमि पर बैठे हुए भी जान सकते हैं।

हम सब मनुष्य सांस लेने वाले प्राणी हैं। यह प्राण अथवा श्वास क्या है? सभी लोग यह कहेंगे कि हमारे चारों ओर वायुका एक मण्डल है और इस वायुका कुछ अंश हम श्वास लेते समय अन्दर ले जाते हैं, और यह पूछा जाय कि जो वायु हमने बाहर निकाली है वह उस वायुसे जो हम श्वास द्वारा अन्दर ले गये थे किस किस गुणमें भिन्न है, तो आज भी हममेंसे बहुतसे इस साधारणसी बातको न जानते होंगे? श्वास लेने की आवश्यकता ही क्या है, यह प्रश्न तो योरुपके आदि-वैज्ञानिकोंको भी पता न था। लवाशिये नामक फ्रान्सके एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक ही ने सबसे पहले यह बताया कि श्वास-निःश्वासकी प्रक्रिया साधारण लकड़ी आदि पदार्थोंके जलनेके समान है। आग जलानेके लिये जिस प्रकार वायु आवश्यक है, ठीक उसी प्रकार भोजनके पचानेके लिये भी वायुकी आवश्यकता होती है, आग जलने पर जो कार्बनिक गैस पैदा होती है वही गैस निःश्वास द्वारा हम शरीरसे बाहर निकालते हैं। लवाशियेका यह कथन हमें साधारणसी बात मालूम होती है पर एक समय ऐसा भी था जब हम इस साधारणसी बातको भी नहीं जानते थे।

हमारे इस भू-मण्डलके ऊपर एक वायु-मण्डल भी है। पतंग उड़ाने वाले जानते हैं कि यह मण्डल पृथ्वी के ऊपर तक फैला हुआ है, यहां तक कि इतनी दूर तक कि उनकी पतंग इस दूरीका पता नहीं लगा सकती है। चलिये किसी पर्वतके ऊपर चढ़ें।

हिमालयकी चोटियों पर चढ़िये। एवरस्ट-पर्वतके शिखर पर पहुँचनेके लिये कई बार वीर लोगोंने यत्न किया। पर्वत पर जितने ऊँचे आप बढ़ते जाइयेगा आपको उतनी ही अधिक सर्दी अनुभव होने लगेगी। पर सर्दीके साथ-साथ एक और बात है। सर्दी तो पृथ्वी पर भी इंगलैण्ड, ग्रीनलैण्ड आदि देशोंमें कड़ाकेकी पड़ती है। पर उन जगहोंके रहने वाले जानते हैं कि श्वास लेनेमें उन्हें कोई विशेष कठिनाई नहीं होती है। पर्वतके शिखर पर यदि हम बहुत ऊपर चढ़ जायँ तो सर्दी तो लगेगी ही, पर सांस लेनेमें भी बड़ी कठिनाई होगी। आपको यह पता चलेगा कि यद्यपि आप बड़ी जल्दी जल्दी सांस ले रहे हैं पर तो भी आपका दम घुटा जा रहाहै। यदि आपके पास श्वासवर्धक यंत्र नहीं है तो आपका रहना कठिन हो जायगा। यह सब क्यों है! बात यह है कि जितना ही ऊपर आप चढ़ते जायंगे, हवाका दबाव कम होता जायगा। बहुत ऊपर पहुँचने पर अत्यन्त कम हवा रह जायगी। एक ऊंचाई ऐसी भी आयगी जहां फिर आपको हवा मिलेगी ही नहीं। ४०—४५ मील ऊपर यदि आप चढ़े सकें तो फिर आपको हवा बिल्कुल ही न मिलेगी। पर आपका तो इतनी ऊँचाई तक भी पहुँचना कठिन है क्योंकि कुछ हज़ार फुटके ऊपर ही वायु इतनी कम रह जाती है कि वहां न तो आपके वायुयान ही चल सकते हैं और न आपके उड़ाये हुए कबूतर ही वहांका कुछ समाचार ला सकते हैं।

पर यह हवा है क्या वस्तु? यह बात बहुत दिन तक लोगोंको मालूम ही न हो सकी। वे उसे एक-रस-तत्व मानते रहे। उन्हें यह पता न चल सका कि यह हवा कोई एक चीज़ नहीं है, वरन् ४ भाग नोषजन और एक भाग ओषजन नामक दो गैसोंका मिश्रण है। यही नहीं, इसमें कार्बनिक गैस और पानीकी भापके अतिरिक्त चार-पांच और भी वायव्य पदार्थ मिले हुए हैं जिन्हें सर विलियम रैमज़ेने अपने कुशल प्रयोगों द्वारा जनताके सम्मुख प्रदर्शित किया था।

यह तो सभी जानते हैं कि गरम करने पर पानी भाप बन कर हवाके समान हो जाता है और यह भाप ठंडा करने पर फिर पानी बन जाती है। पर क्या हवा भी पानीकासा द्रव रूप ग्रहण कर सकती है, इसका किसीको विश्वास भी न था। चालीस-पचास वर्ष पहले तक यत्न करने पर भी कोई हवाको पिघला न सका था। २२ दिसम्बर सन् १८७७ ई० को जेनेवाके एक वैज्ञानिक पिक्टेने हवाके ओषजनके द्रवीभूत होनेका संवाद सुनाया। फिर क्या था, अन्य वैज्ञानिकों ने भी अनेक प्रयोग आरम्भ कर दिये। केमरलिंघ ओन्स ने हवाके समान स्थायी गैसोंके पिघलानेमें बड़ा चातुर्य दिखाया। अब तो बाज़ारोंमें भी आपको पानीके समान द्रव वायुसे भरी हुई बोतलें देखनेको मिल सकती हैं। इस प्रकार पहलेकी बातें आजकी बातोंसे सर्वथा भिन्न हो गई हैं।

यह तो वायुकी बात हुई। मान लीजिये पृथ्वीके ऊपर ४०-५० मील तक आपको वायु मिलती जायगी। पर इसके आगे क्या है? आप सभी कहदेंगे कि कुछ नहीं है। पर कुछ तो होगा ही क्योंकि 'कुछ नहीं' का अर्थ भी तो कुछ नहीं ही हो सकता है। हममें से जो अधिक चतुर हैं वे कहेंगे कि वायुके आगे आकाश है पर फिर हम पूछेंगे कि यह आकाश क्याहै? और इसका होना न होना आपको कैसे ज्ञात हुआ? क्या यह आकाश हमारी पृथ्वी पर नहीं है?

बहुत दिनकी बात नहीं है, केवल तीस चालीस बरसकी ही बात है—जब लोगोंको इस आकाशके विषयमें कुछ भी नहीं मालूम था। वे इसे केवल शून्य-मात्र गुण रहित समझते थे। पर आज हम जानते हैं कि यह आकाश जिसे वैज्ञानिक ईथर कहते हैं, बड़ी ही आश्चर्य-जनक वस्तु है। यह भी वायुके

समान बहता है। इसके चमत्कार तो तभी पता चल सकेंगे जब इसके अन्दरसे बिजलीकी प्रबल शक्ति प्रवाहित की जायगी। यहां इतना ही समझ लीजिये कि यदि आकाश न होता तो न हम सूरजके समान चमकनेवाली वस्तुको ही देख सकते और न घर बैठे बेतारके तार द्वारा कलकत्ता और बम्बईके गाने ही सुन सकते।

पर ये सब वार्त्तायें जिन्हें हम आज अति साधारण समझते हैं, पहले एक दो शताब्दि पूर्व केवल कथा कहानियोंमें ही मिल सकती थीं। हमने देख लिया कि पहलेके सिद्धान्तों और आजकलके सिद्धान्तोंमें कितना भेद हो गया है। आकाश, पाताल और भूमि, तीनोंके सम्बन्धमें पहले हम जो कुछ समझते थे उसमें बहुतसे दोष थे। विज्ञानके कारण हमने अब बहुत कुछ जान लिया है। पर इस त्रय-लोककी अनेक वार्त्तायें प्रकृतिके गर्भमें अब भी लुप्त हैं जिन्हें केवल त्रिलोकीनाथके अतिरिक्त और कोई अभी तक नहीं जानता है। सहस्रों वैज्ञानिक संसारको प्रयोग शालाओंमें इस रहस्यके उद्घाटन के लिये अनवरत परिश्रम कर रहे हैं। पर यह बात तो निस्सन्देह है कि थोड़ी थोड़ी बातोंको जान कर ही हमने संसार का रूप परिवर्तित कर दिया है। अट्ठारहवीं शताब्दीकी जो सृष्टि थी वह १६ वीं शताब्दीमें बिलकुल ही बदल गई। बीसवीं शताब्दीका अभी आरम्भ ही है। देखें, इस शताब्दिके अन्त तक संसारमें कितने कितने परिवर्तन हो जाँयगे। संसारमें अनुसन्धानका कार्य बड़े वेगसे हो रहा है। इस दौड़की गति बढ़ती ही जा रही है।

वनस्पति विज्ञानके कुछ पारिभाषिक शब्द

[ले०—श्री पं० शङ्करराव जोशी]

अवयव	Organ
अक्ष	Axis
अजैव [अकार्बनिक]	In-organic
अक्षकोणीय	Axillary
अन्तिम कलिका	Terminal bud
अनियमित	Adventitious
अधोमूलनी	Sucker
अधो विरोही-तना	Rhizome
अनुभवशील अंग	Sensitive organ
अपरिमित	Racemose or monopodial
अन्न-रस	Food material
अन्तर छाल	Bast
अवृन्त-पत्र	Sessile leaf
अधोवलम्बी	Decurrent
अण्डाकार	Elliptical
अस्त्राणाकार	Peltate
अभिमुख पत्र	Opposite leaf
अन्तर वक्राक्ष	Helicoid cyme
अधोवर्ती	Inferier
अन्तराच्छादन	Endocarp
अस्थिल	Drupe
आगन्तुक	Adventitious
आँख	Bud
आरोही	Climbing
आहार-रस	Organised food
आधार	Base
आयताकार	Oblong
आत्मसेचन	Self-pollination
ओषधि	Herb

उपरिजात मूल	Epiphytes
उद्दल	Ascending axis
उपमंडलाकृति	Elliptical
उत्तेजना	Stimulus
उच्चवर्ती	Superior
उच्चस्थानीय	Superior
उच्च	Superior
उभय लिंगी	Hermaphrodite
उभयेन्द्रिय	Hermaphrodite
उभयस्फोटी	Legume
ऊर्णायित	Woolly
एक पत्रक	Monocotyledon
एक दल	Monocotyledon
एकान्तर क्रम	Alternate
एकाकी	Solitory
एक-लिंगी	Uni-sexual
एक बीजक-फल	Achene
एक-स्फोटी	Follicle
कन्दल-सम	Tuberous
कलिका	Bud
कठीला	Woody
कंदल	Tuber
कंद	Bulb
करतलाकृति	Palmate
कर्णिक	Eared, auricled
कर्ण	Sagment, lobe
कशेरुकाग्र	Mucronate
करतल-कटाव	Palmatipartrite
कशेरुका	Rachis
कार्णश	Spike
कटोरी	Corolla
कलल	Ovule
काला धब्बा	Scar, Hilum
काँटे	Spines
काण्ड-पत्र	Cladodes
कुण्ठित कलम	Mucronate

कुण्ठित	Obtuse
कुसुमायित पत्र	Floral leaf
केसर	Crocus
केशाकार	Capilllary
कोश-रस	Cell-sap
कोश-भीत्तिका	Cell-wall
कोश	Cell
कोष	Sheath
कोणित	Angular
कंटकित रोमश	Hispid
खड्गाकार	Ensiform
गर्भ	Embryo
गर्भद्वार	Microphyle
गर्भभोज्य	Endosperm
गलितपत्र	Deciduous
गर्भकेसर	Pistil
गर्भाशय	Ovary
गर्भाशय कोष्ठ	Cell or chamber in ovary
गर्भझिल्ली	Placenta
गर्भ-कोष	Embryo sae
गल	Throat
गांठ	Node
ग्रंथि	Node
ग्रंथि कंद	Tuber
ग्रथित तूल	Tomentose or cottony
गुदाज़	Fleshy
गुठली	Stone
गोस्तनी	Raceme
गोपुच्छाकृति	Aeropetal succession
गोपुच्छाकार मूल	Conical root
गौण जड़	Secondary root
गंधेत	Sulphate
घूर्ण	Whorl
घण्टिकाकार	Bell-shaped

चमसाकार	Spathulate
चक्र	Whorl
चक्रित	Involucre
चक्राकार	Rotate
चतुर्शूल	Crusiform
चाप-दन्तुर	Crenate
चिकना	Glabrous
छत्रक दंडी	Umbel
छिलका	Pericarp
जालनाड़ीक्रम	Reticulate venation
जीवन-रस	Protoplasm
जीवनमूल [कललरस]	Protaplasm
जीवाणु	Sperm
जैव [कार्बनिक]	Organic
जोड़ रेखा	Ventral suture
झाड़ी	Shrub
झालरदार	Ciliated
झांखरा जड़	Fibrous root
टंकाकार	Cuncate
डोडा	Capsule
तनासक्त	Amplexicaul
त्वचा	Epicarp
तृण	Herb
तृण-लोमश	Hirsute
ताम्बुलाकार	Cordate
तिरछी	Obliqually
तिर्यगक्ष	Scorpioid cyme
तीक्ष्ण शिताग्र	Acute
तुन्दिल	Saccate
तुरमाकार	Campanulate
तुलीन [छिद्रोज]	Cellulose
तूल रोमश	Downy or Pubescent
दल	Petal
दल-पत्र	Corolla
दात्राकार	Falcate

द्राक्षशर्करा	Glucose
द्विदल	Dicotyledon
द्विवर्षायु	Biennual
द्विभक्त शाखाक्रम	Dichotomus
द्विदन्तुर	Biserrate
दिगन्तसम	Horizontal
दीर्घ-तीक्ष्ण	Acuminate
धार	Margin
नसदार	Ridged
नवीनकाष्ठ	Alburnum
नताग्र	Emarginate
नलिकाकार	Tubular
नलिका	Tube
नालचिह्न	Cicatrix
नाल-लग्न	Adnate
नाड़ी	Venation
निर्ष्ठिल	Berry
नोषेत	Nitrate
परोपजीवी	Parasite
पर्व	Inter-node
पत्र-कंद	Bull
पत्रारोही	Leaf climber
पत्रनाल	Petiole
पत्रीभूततना	Cladodes
परिमित	Cymose, Definite
पत्र गुच्छक	Rosette
पत्र-दल	Lamina, leaf-blade
पट्टाकृति	Ligule
पक्षाकृति	Pinnate
परिकांड	Perfoliate
पत्रक	Leaf-let
पत्र-संगठन, पत्रावलि	Phylotaxis
पर्णहरित्	Chlorophyll
पर्यायक्रम	Alternate
पत्ररंध्र	Stomata

परिमित छत्रक	Cymose umbel
परसेचन	Cross-pollination
प्रसर्पी	Creeping
प्रतान	Tendril
पृष्ठज	Ligule
पार्श्वस्थकलिका	Axillary bud
पालक	Host
पार्श्वशाखाक्रम	Lateral branching
पात्राकृति	Falioceous
पाचन क्रिया	Asslmilation
प्रारम्भिक मूल	Radicle
प्रारम्भिक तना	Plumule
प्रारंभिक कलिका	Primary bud
प्रांकुर	Shoot
प्रामाणिकपत्र	Foliage leaf
पिच्छाकृति	Pinnate
पिच्छाकारकटाव	Pinnatifid
पिहितगल	Personate
पुच्छपत्र	Stipule
पुष्पत्र	Bact leaf
पुष्पनाल	Flower stalk
पुच्छपत्री	Stipulate
पुश्तैनी	Inherited
पुष्प-संगठन, पुष्पव्यूह, पुष्प-रचना	Inflorescence
पुष्पनाल, पुष्पाक्ष	Peduncle
पुष्पदण्डिका, पुष्प-वृन्तिका	Pedicel
पुष्पदंड	Rachis
पुष्प-पेंडी, पुष्पध्वज	Scape
पुष्प शेखर	Capitulam or head
पुट	Bract
पुटचक्र	Calyx
पुट-पत्र	Sepal
पुलिङ्गचक्र, पुष्पेन्द्रिय	Androecium
पुङ्केसर	Stamen
पूर्णधार	Entire blade
पूर्वपाती	Caducous
पूंगीफल	Nut or glan
पोषक	Nutritive
पोम	Pome
फलक	Lamina or leaf blade
फलसंघ	Aggregate
फलाकृति	Hastate
फली	Pod
बहुवर्षायु	Perennial
बहिर्जात	Exagenous
वाह्यावरण	Testa
बाह्यतन्तु	Superficial tissue
बाणमुखाकृति	Sagittate
बाह्यप्रान्त	Margin
बाह्याच्छादन	Epicarp
बिंदुस्फोटी	Siliqua
बीजदल, बीज-पत्र	Cotyledon
बीजमूल	Germ
भालाकार	Lanceolate
भौमिकतना	Under-ground-stem
मसृण	Glabrous
मज्जातन्तु	Cambium
मध्यनिम्न	Emarginate
मध्याच्छादन	Mesocarp
मधु-कोष	Negtaries
मंड,मांडीया नशास्ता	Starch
मृदुपौधे	Herbaccous plants
मांसल वल्कीकंद	Tunicated bulb
मांडी	Starch
मांसल	Fleshy
मुख्यजड़	Primary root

मुख	Limb
मूलावरण	Coleorhiza
मूसला जड़	Tap root
मूलकाकारमूल	Fusiform root
मूलरोम	Root hair
मूलनी	Stolon
मूलस्कंध	Rhizome
युग्मपत्ताकार	Paripinnate
योनिछत्र	Stigma
योनि नलिका	Carpel
योनिसूत्र	Style
रज पात्र	Stigma
रजकोष	Stigma
रजबिन्दु / रजोबिन्दु	Ovule
रेतकोष / रेतपात्र	Anther
रेखाकार	Linear
रोमश	Hairy
रोम	Hair, or trichomes
लघुमूलनी	Off set
लघुसूक्ष्मनाल	Peltate
लट्वाकार	Ovate
लहरी	Sinuous
लम्बित	Catkin
लम्बोष्ट	Labiate
लिंगछत्र	Filament
वर्षायु	Annual
वल्क पत्र	Scale-leaf
वल्की	Scally
वज्रकंद	Corm
वयन	Texture
वर्तुल	Verticillate
वायवीय	Aerial
वाष्पीभवन	Transpiration
विरत कलिका	Resting-bud
विलीनकलिका	Latent bud

विनम्र	Prostrate
विसर्पी	Creeping
विनाल	Sessile
विच्छेद	Sagment or lobe
विदन्तुर	Dentate
विसमकोणित	Decussate
विवर्तुल	Whorl
विदण्डिक	Spadix
विषक्तयोनिनलिका	Apocarpous
वीर्य पात्र	Anther
वेष्टन	Vernation, or Prefoliation
वृन्त	Petiole
वृन्तानुबंध	Stipules
वृन्त-पाद	Base
वृन्तपत्र	Bract
व्यस्तलट्वाकार	Obovate
व्यस्तशल्याकृति	Ob-lanceolate
व्यस्तहृदयाकृति	Ob-cardate
वृक्काकृति	Reniform
शलजमाकारमूल	Napiform root
शल्याकृति	Lanceolate
श्वासोच्छ्वासक्रिया	Respiration
शिराजाल	Reticulate venation
शीर्षक	Capitulate, or head
शुण्डाकृति	Acuminal
शूल	Spine
श्लेषीजड़	Clinging root
सहायक जड़	Tertiary root
स्तंब	Shrub
सम्मूलनीशाखा	Runner
ससारकंद / सगाभकंद	Corm
समानान्तर	Parallel
सनालपत्र / सवृन्तपत्र	Peliolate
सहजातपत्र	Connate

सदन्तुर	Serrate
सकंटक	Spiny.
सदापत्री	Ever green
स्पर्शशील	Sensitive
सदण्डिक	Receme
समशिख	Corymb
सचूड़	Umbel
संयोगरेखा	Line of Insertion
सम्पुट	Vagina
स्फुरेत	Phosphate
संयुक्तसदण्डिक	Panicle
स्तंभक	Thalamus, Receptacle
स्त्रीकेसर	Pistil
स्त्रीलिंगचक्र	Gynaecium
सुप्तकलिका	Dormant bud
सूत्रारोही	Tendril climber
सूच्याकार	Acicular
सूत्रकाकार	Subulate
सूत्राकृति	Filiform
स्वेदनक्रिया	Transpiration
हरिन्	Chlorine
हरित या पर्ण हरिन्	Chlorophyll
हरितक पौधे	Herbaceous plant or Herb
हृदयाकृति	Cordate
हीर भाग	Pith

सृष्टिकी कथा*

सृष्टि-सौन्दर्य्य

[ले०—श्री सत्यप्रकाश एम० एस-सी]
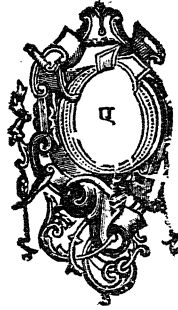
एक ऐसे स्थलकी कल्पना कीजिये जिसमें प्रकृतिराशिकी प्रचुर सम्पत्ति विद्यमान हो, जहाँ सरिता हों, सरोवर हों, और कहीं कहीं पर छोटे-छोटे मनोहर पर्वतोंके दृश्योंका भी आनन्द मिल सके। इस स्थलके समीपवर्ती प्रदेशमें सघन वनोंका समूह हो तो और भी अच्छा है। नैसर्गिक उपवनोंमें विहार करनेवाले चतुष्पदी पशु और उपवनकी सुगन्धित परागको गगनस्थलमें विकीर्ण करने वाले विहंगवृन्दभी जहाँ विलोलें कर रहे हों। यही नहीं, इस स्थलकी उस चित्ताकर्षक कान्तिका भी स्मरण कीजिये जब यहाँकी अनिर्वचनीय अतुल सम्पत्तिको देखकर प्रभात कालमें भगवान सूर्य्यदेव मन्द २ मुसकानसे हँस रहे हों और रश्मि-करों द्वारा अपने अतुल वैभवको इस प्रान्तकी शोभा पर निछावर कर रहे हों। इस समय सभी आनन्दमें हैं, छोटे-छोटे फूलभी हँस रहे हैं, मञ्जुल लताएँभी नवजीवन प्राप्त कर रही हैं, मदोन्मत्त नदियाँभी उमड़ी चली आ रही हैं, पक्षियोंके कण्ठमें भी उन्माद राग उत्पन्न हो गया है और वे भी प्रसन्नचित्त रसीले गान गा रहे हैं। सूर्य्योदयमें वह चमत्कृत शक्ति है जो जड़ पदार्थमें जीवन और जीवित पदार्थोंमें उन्माद उत्पन्न कर देती है।

सूर्य्योदयके पश्चात् सम्पूर्ण जगती अपने कार्य्य सञ्चालनमें व्यग्र हो जाती है, प्रभातकालका अरुण बालसूर्य्य धीरे-धीरे अपना तेज बढ़ाने लगता है। एक ऐसी अवस्था आती है जब इस धराके किसीभी प्राणीकी इतनी शक्ति नहीं है कि

*लेखककी अप्रकाशित पुस्तकसे

इस आकाशके अधिपतिकी ओर खुले नेत्रोंसे देख भी सके। उसके प्रचण्ड तेजका आतप सर्वत्र छा जाता है। प्रातःकालके विकसित सुमन अब खिन्न हृदय दिखाई पड़ने लगते हैं, लताओंके वदनभी उदासीन होजाते हैं, बेचारे पशु पक्षी किसी विशाल वृक्षकी छायामें अथवा शान्तिदायिनी सरिताके अङ्कमें बैठे हुए कुछ निरुत्साहित दिखाई पड़ते हैं। शीतल भूमिभी अब तप्तहो जाती है। सरिताके समीप रहनेवाली सिकता भी अब इतनी गरम हो जाती है कि उस पर नंगे पैर चलना दुष्कर हो जाता है।

मध्याह्नकालके उपरान्त फिर परिवर्त्तन होता है, सूर्य्यका तेज अब मन्द पड़ता जाता है। सायंकाल तक वह फिर अपनी पूर्वावस्थामें आ जाता है। प्रातःके सूर्य्यमें जीवन था पर इस समय वह व्यथित दिखाई पड़ता है। उसे अब विश्राम लेनेकी आवश्यकता होती है। इस सृष्टिके चराचर प्राणी अप्राणी सभी अब विश्रामके लिये लालायित दिखाई पड़ते हैं। चिड़ियां थकी मांदी अपने घोंसलोंको लौटने लगती हैं, अपने छोटे-छोटे बच्चों को वे सस्नेह चुगाती हैं और तदुपरान्त थपथपियां देकर सुलानेका प्रयत्न करती हैं। गायें इस गोधूली बेलामें अपने घरको लौट आती हैं, अन्य पशुभी अब व्यथित दिखाई पड़ते हैं। और वेभी सुखकी नींद सोना चाहते हैं। इस समय आकाश भी तरह-तरहके रंग बदलता है। कहीं लाली छा जाती है तो कहीं कहीं हरी, नीली, पीली और नारंगी रंगकी किनारियोंसे विभूषित पटल द्वारा आकाश अपने शरीरको सजाता प्रतीत होता है। पर उसके ये रंग बहुत शीघ्रही परिवर्तित होते रहते हैं। धीरे धीरे सूर्य्यास्तके साथ साथ सम्पूर्ण व्योम मण्डलमें निस्तब्धता छा जाती है। बस दिनकी लीला समाप्त होती है।

चारों ओर अँधेरा छा जाता है। सम्पूर्ण पृथ्वी काले वस्त्र धारण कर लेती है। वृक्षके पत्ते सो जाते हैं, चिड़ियोंका मधुर गान बन्द हो जाता है, पशुओंका बिहार करना भी शिथिल पड़ जाता है। सर्वत्र निद्राका साम्राज्य छा जाता है। सरिता अबभी पूर्वोन्मादमें बहती चली जाती है पर उसके प्रवाहमें प्रेमके स्थानमें अब भयकी मात्रा अधिक दृष्टि गत होती है। उसके तट पर मण्डूकोंकी तुमुल ध्वनि चित्तको और भी डरा देती है। सरिता का प्रत्येक तरंगोत्पात हृदय पर वज्रके समान पड़ता प्रतीत होता है। यह तो नदीकी अवस्था है। वायुभी मन्द मन्द मस्त चला जारहा है। उसका स्पर्श कितना सुखदायी है। मध्याह्न कालके उत्तापसे व्यग्र प्राणी इस समीरके शान्त प्रवाह द्वारा पुनः आश्वासन प्राप्त करते हैं।

पर रात्रिकी रमणीकता पृथ्वीमें नहीं है। चारों ओर गूढ़ तमिस्रा का व्याप्तिमान होना हमारे विश्रामका अवश्य कारण होता है पर शय्या पर लेटे हुए यदि कहीं हमारी आँखें व्योम वितानकी ओर चली जायँ तो फिर क्या कहना है। नीले निस्तब्ध आकाशमें दीपावली का दृश्य चित्तको आनन्दकी हिलोरोंसे परिप्लावित कर देता है। नक्षत्र गणोंकी अतुल राशि धराके वैभवको परास्त कर देती है। जिस प्रकार प्रातःकालमें हमारे उपवनके स्वर्ण मय फूल हँसते थे, उसी प्रकार इस गगनोपवनमें ये आलोक मय पुष्प मन्द मन्द मुसका रहे हैं। नीले पटल पर जटित सहस्रों नहीं, ये लाखों रत्न कितने मनोमोहक प्रतीत होते हैं, इसका अनुमानभी लगाना सम्भव नहीं है।

आकाशके ये तारे भी विचित्र हैं। कुछ तो हमारे बहुत निकट प्रतीत होते हैं और कुछ हमसे बहुत दूर। चमचमाते हुए नक्षत्र अपनी विभिन्न ज्योति से धराकी अन्ध तमिस्राको विच्छिन्न करने का सतत प्रयत्न कर रहे हैं, पर यह कृत्य इनकी शक्ति के बाहर है। धीरे-धीरे इन्हीं तारोंमें होती हुई एक तेज-राशि सम्मुख आती है। इस राशिका नामही चन्द्रमा है, इसेही रजनीपति या राकेश कहते हैं। कल्पना कीजिये कि यह पूर्णिमा की रात्रि है।

चन्द्रोदयके साथही निशाकी सम्पूर्ण कालिमा अकस्मात् विलीन हो जाती है। नभोमण्डल देदीप्यमान हो उठता है, भूमि पर दूधके समान श्वेत ज्योत्स्ना फैल जाती है।

इस रजतवर्ण चन्द्रिका से जगती सुसज्जित हो जाती है। इसके शीतल आवरणमें संसार की समस्त व्यथाएँ लुप्त हो जाती हैं। किसी सरोवरके तट पर खड़े होकर इस चांदनीके दृश्यका अनुभव कीजिये, निर्मल जलके अन्दर नील आकाशका बिम्ब और उसमें चमकते हुए तारोंकी असंख्य ज्योतियां एवं प्रत्येक तरंगके उत्थान-पतनके साथ जलान्तर्गत अनेक चन्द्रमाओं की झिलमिलाती हुई मनोमोहक कान्ति सृष्टि के प्रासादमें विचित्र कौतूहल उत्पन्न करती है। यह पूर्णिमाकी रात्रि व्यथित हृदय में शान्ति, आलोक और समता उत्पन्न करती है। सायंकाल से प्रातः काल तक भूमि भी इस रात्रिमें क्षीर सागर बन जाती है।

पूर्णिमा के पश्चात् चन्द्रमा की कला प्रतिदिवस क्षीण होती जाती है, धीरे धीरे चन्द्रोदय में विलम्ब होने लगता है। पूर्ण चन्द्र से अर्धचन्द्र रह जाता है और यह अर्धचन्द्र भी केवल नखकी वक्र परिधिके समान तीन चार दिन तक ही रहता है। तत् पश्चात् अमावस्या के दिन भूलोक का अन्धकार चन्द्रराशि पर पूर्णविजय प्राप्तकर लेता है। अब बेचारे रजनी पति का कहीं पता भी नहीं चलता है। चारों ओर अंधेरा छा जाता है। गगनांगणमें चमचमाते हुए तारे इस अमावस्यामें पूर्णिमाके दिनसे भी अधिक निर्मल,निर्भ्रान्त एवं कान्तिमय प्रतीत होते हैं। अमावस्याकी रात्रिमें भी अगाध सौन्दर्य है, पर यह पूर्णिमाके सौन्दर्य-से भिन्न है। अस्तु, धीरे धीरे रात्रिके व्यतीत हो जाने पर ब्रह्ममुहूर्त आता है। दिनमें सूर्य्यकी प्रखर रश्मियों द्वारा उत्तप्त धरा रात्रिमें शीतल पड़ जाती है। प्रातःकाल फिर शीतल मन्द सुगन्ध समीर का प्रवाह आरम्भ हो जाता है। कुछ समय पश्चात् फिर उषाकाल आता है और सम्पूर्ण दिशाओंका फिर विरंजित शृंगार आरम्भ होता है। फिर दिन होता है और दिन के बाद रात आती है और रातके बाद फिर दिन आता है। इस प्रकार सृष्टिमें दिवस-रात्रिका यह चक्र निरन्तर चलता रहता है।

सृष्टिके जिस सौन्दर्य्यका उल्लेख ऊपर किया गया है वह केवल एक दिन रातका सौन्दर्य्य है। पर इसके अतिरिक्त सृष्टिका रंग प्रति दिन बदलता रहता है। उस वसन्त ऋतु-का स्मरण कीजिये जब सर्वत्र हरियाली छायी हुई थी। सुन्दर सुन्दर पीले फूल छोटे छोटे पौधों पर शोभा दे रहे थे। रसाल के वृक्ष मञ्जरी-से लदे हुए थे, कोयल अपने मधुर कण्ठसे पञ्चम स्वर आलाप रही थी। यह सृष्टिका यौवन था। प्रत्येक व्यक्ति मस्त था, खेतोंमें अन्न की स्वर्ण राशि फैली हुई थी। पर दो मासके वसन्तके उपरान्त ही ग्रीष्मका उत्ताप पृथ्वीपर प्रचण्ड रौद्र रूपमें अवतरित होने लगता है। दग्ध लूकें पशु पक्षियों और प्राणियोंको झुलसाने-के लिये चलने लगती हैं। नदी, नाले और तालाब सूख जाते हैं। प्रबल सरिताओंका वेग भी कम हो जाता है। ग्रीष्म ऋतु भी दो मास-के पश्चात् ही विलुप्त हो जाती है। धीरे धीरे आकाश मण्डल काले काले मेघोंसे आच्छादित होने लगता है। सूर्य्यके दर्शन भी होने दुर्लभ हो जाते हैं। इस जलद पटलमें घोर गर्जना आरम्भ हो जाती है। इनकी कड़कड़ाहट और गड़गड़ाहट हृदय विदीर्ण करने लगती है। आकाशमें घोर युद्ध आरम्भ हो जाता है। बिजली कड़कती है, और मूसलाधार पानीकी अनवरत वर्षा आरम्भ हो जाती है। प्रत्येक स्थान जल से परिपूर्ण हो जाता है। नदी और नाले उमड़ उमड़ कर चलने लगते हैं। नदियोंकी भूमिके किनारे

कटकट कर चकना चूर हो जाते हैं। यदि कभी वर्षा बन्द हुई और सूर्य्य ने अपने दर्शन दिये तो फिर आकाशमें नील वर्ण छा जाता है और ऐसे ही अवसर पर कभी कभी अकस्मात् इन्द्र धनुष का रंगबिरंगे रूपमें प्रकट होना अत्यन्त भावुक प्रतीत होता है। यही नहीं, वर्षा ऋतुमें पौधों और वृक्षोंमें नया जीवन आ जाता है। सर्वत्र हरियालीका फिर साम्राज्य छा जाता है। वनोपवनोंमें अनेक छोटे मोटे कीड़े मकोड़ोंका जन्म होता है। इन क्षण भंगुर जीवोंकी सृष्टि ही विचित्र है। ऐसा प्रतीत होता है कि ये जीव केवल मरनेके लिये ही जन्म लेते हैं। नित्य असंख्य जीवोंका पैदा होना और क्षणमें ही मर जाना—यह एक विचित्र पहेली है।

दो मासकी वर्षा भी एक दिन समाप्त हो ही जाती है। आकाश फिर निर्मल हो जाता है। शरद ऋतुके सौन्दर्य्यमें भी फिर परिवर्तन होता है और धीरे धीरे शीतकाल अपने आने का संदेश भेजने लगता है। हेमन्त ऋतुसे जाड़ा आरम्भ हो जाता है और शिशिर ऋतुमें हिमका प्रकोप उच्चतम सीमातक पहुँच जाता है। प्रातः और सायंकालमें कोहरा संसारको अदृश्य बना देता है। ये छोटे छोटे हिमकण भी सृष्टि सौन्दर्य्यमें एक विशेष स्थान रखते हैं। शीतकाल शान्तिका समय है। इस समयके जीवनमें न तो उन्माद होता है और न उदासीनता। ऋतुओं का इस प्रकार एक चक्र पूर्ण हो जाता है और फिर दूसरा चक्र आरम्भ होता है। इस अनन्त सृष्टिमें इस प्रकारके अनन्त चक्र अनन्तकालतक होते रहेंगे। संसारके इस चक्रमें विशेष रहस्य है।

सृष्टिके जिस सौन्दर्य्यका उल्लेख ऊपर किया गया है उसका अनुभव प्रत्येक व्यक्तिको नित्य प्रति होता रहता है। इसके लिये न किसी प्रयासकी आवश्यकता है और न किसी साधन विशेष की। यदि आप काशी या कानपुरमें रहते हैं तो भागीरथी गंगाके तटपर प्रातः सायं विहार करके इस प्रकृति-सौन्दर्य्यका आनन्द लूट सकते हैं। प्रयागमें गंगा-यमुनाके श्वेत-श्याम-संगमपर प्रातः अरुणोदयके समय इस नैसर्गिक दृश्यकी मनोमोहकताका अनुमान लगाया जा सकता है। हरे भरे खेतोंमें कार्य्य करने वाले ग्रामीण कृषक छोटे-छोटे पादपों और पौधोंके विकासकी उत्तरोत्तर शृंखलाओंका अध्ययन करते हुए सृष्टिके अलौकिक सौन्दर्य्यका अनुभव करते हैं।

पर हमारी सम्पूर्ण सृष्टिका अन्त इन उपवनों, सरिताओं और खेतोंमें ही नहीं हो जाता है। प्रकृतिके गूढ़ रहस्य अज्ञात् स्थलोंमें छिपे रहते हैं। इन स्थानोंके सौन्दर्य्यका अनुमान लगानेके लिये हमें हिम प्रदेशके उच्चतम शिखरों पर पहुँचना होगा। हमको कल्पना शक्ति द्वारा इस भूगोलके उत्तरीय और दक्षिणीय ध्रुवों षड्मासिक दिवस एवं रात्रियोंका अनुमान करना होगा। यही नहीं, ध्रुवप्रदेशकी उस अलौकिक मेरुज्योतिकी कौतूहलकारिणी चित्ताकर्षिणी कान्तिका भी रसास्वादन करना होगा। हमारे लिये यह भी आवश्यक है होगा कि निरन्तर हिमाच्छादित ग्रीन लैण्ड आदिके समान प्रदेशोंके सौन्दर्य्यका भी दिग्दर्शन करें। इसी प्रकार सहारा और अरबकी नीरस रेणुमयी मरुभूमियोंमें भी सृष्टिका दूसरा रूप हमको देखनेमें मिलेगा।

पर अज्ञेय सृष्टिके परिज्ञानके हेतु महासागरोंकी उत्ताल तरंगोंकी स्तुति भी हमको करनी पड़ेगी। इस विस्तृत जल राशिके गर्भमें डुबकियाँ लगाकर जल लोक एवं पाताल लोकके निवासियोंके वृत्तान्त हमें लाने होंगे। सुन्दर छोटी-छोटी मछलियोंसे लेकर बड़े बड़े दीर्घकाय विशाल जलजीवों तकसे प्रबल प्रतियोगिता करनी होगी। महोदधिमें छिपे हुए रत्नोंकी प्राप्तिके हेतु हमें उन वीरोंका स्मरण करना होगा, जिन्होंने इस धीरोचित

प्रयासमें अपना सर्वस्व आत्म समर्पण कर दिया और सदाके लिये विलीन होगये।

इधर हमें पृथ्वीका आन्तरिक सौन्दर्य्य अनुभव करनेके लिये इसके केन्द्रतक पहुँचना होगा। भिन्न भिन्न प्रकारके दृढ़ प्रस्तरों और कठोर शिलाओं एवं अभेद्य चट्टानोंको चकनाचूर करके इस रत्न-गर्भाभूमिका परीक्षण करना होगा। सृष्टिके इस सौन्दर्य्यका अन्त फिरभी हम न पा सकेंगे? भीषण काननोंके द्रुम, पादप और लताओं की कहानियाँ, सागरोंकी तरंगोंके भयंकर नाद, पर्वतोंके शिखरासीन हिमके पत्रालेख और भूमिके आन्तरिक चित्र—ये सब महती सृष्टिके थोड़ेसे अंश हैं। पर हमारी प्यारी सृष्टिमें अगाध सौन्दर्य्य है। इसमें किसीको भी सन्देह नहीं हो सकता है।

भू-लोक

सम्पूर्ण सृष्टिको सुविधाके लिये तीन भागोंमें विभाजित किया जा सकता है—भू-लोक, जल-लोक, और आकाश-लोक,। इन तीनों लोकोंके सौन्दर्य्यका कुछ दिग्दर्शन अभी कराया जा चुका है। भूगोलसे परिचित पाठक भूलोकके विषयमें बहुत कुछ जानते हैं। इस बातमें भी अब किसीको सन्देह नहीं है कि हमारी यह पृथ्वी गेंदके समान गोल है और इसके ध्रुवोंके निकटके भाग कुछ चपटे हो गये हैं। यह भी सबको ज्ञात है कि इस पृथ्वीमें दो प्रकारकी गतियाँ होती हैं। एक प्रकारकी गतिसे पृथ्वी अपनी कीली पर लट्टूके समान घूमती है और इस प्रकार दिन और रातका दृश्य संघटित होता है। २४ घण्टेमें सम्पूर्ण पृथ्वी एक बार अपनी कीली पर घूम जाती है। पृथ्वीका जो भाग सूर्य्यकी ओर होता है, उधरके प्रदेशमें दिन होता है और जो भाग सूर्य्यके दूसरी ओर होता है उधर रात होती है। यदि गेंदको दीपकके सम्मुख रखें तो इस गेंदका जो भाग दीपक की ओर है उधर ही प्रकाश पड़ेगा और इसके पीछेका भाग अँधेरेमें रहेगा। अब यदि इस गेंदको घुमा दिया जाय तो यह अँधेरा भाग प्रकाशकी ओर आ जावेगा और उजियारे भागमें अँधेरा छा जायगा। ठीक इसी प्रकार हमारी गोल पृथ्वीमें भी दिन और रात होते हैं।

लट्टू नचाने वाले जानते हैं कि बहुधा लट्टू कीली पर सीधा नाचता है। पर हमारी पृथ्वी अपनी कीली पर सीधी नहीं नाचती है। पृथ्वीकी कीलीको अक्ष या धुरी कहते हैं। यह धुरी एक ओर थोड़ी सी झुकी रहती है। इस प्रकार पृथ्वी झुकी हुई धुरी पर नाचती है। यदि धुरी झुकी न होती तो प्रत्येक ऋतुमें दिन और रात बराबर होते। पर हम जानते हैं कि हमारे देशमें गरमीमें दिन बड़ा हो जाता है और रात छोटी हो जाती है। जाड़ेमें रात बड़ी हो जाती है और दिन छोटा हो जाता है। इस झुके हुए अक्षके ही कारण ध्रुव प्रदेशोंमें लगातार छः छः महीने दिन रहता है और उसके बाद छः छः महीने बिलकुल अंधेरी रात रहती है। इतनी लम्बी चौड़ी रातें और इतने लम्बे दिन कितने विचित्र होते होंगे, इसका अनुमान लगाना कठिन है। पर यह इसी कारण है कि हमारी पृथ्वी झुके हुए अक्षपर घूमती है और इसीलिये इस के सिरे (उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव के प्रदेश) चक्कर पूरा हो जाने पर भी सूर्य्यके सामने या अंधेरेमें छः मासतक रहते हैं। उत्तरी ध्रुव में जब ६ मास का दिन होता है तो दक्षिणी ध्रुवमें ६ मास की रात होती है। भूमध्य रेखाके

निकटके प्रान्तोंमें दिन और रात लगभग बराबर ही होते हैं।

कभी कभी आप ने देखा होगा कि लट्टू अपनी कीली पर नाचता हुआ टेढ़ी मेंढ़ी इधर उधर परिक्रमा भी करता है। हमारी पृथ्वी अपने अक्षपर घूमती हुई भी सूर्य्यके चारों ओर परिक्रमा लगाती फिरती है। यह इस पृथ्वी की दूसरी प्रकारकी गति है। सूर्य्यके चारों ओर यह एक अण्डवृत्ताकार परिधिमें घूमती है। इस अण्डवृत्तकी परिधिका दीर्घ व्यास १८ करोड़ ५८ लाख मील लम्बा है। पृथ्वी एक परिक्रमा को ३६५. २५६४ दिनोंमें पूर्ण कर लेती है, इसी लिये एक वर्षमें ३६५¼ दिन होते हैं। अँग्रेजी कैलेण्डरमें वर्षमें ३६५ दिन माने जाते हैं और प्रतिचार वर्ष पर फर्वरी मासमें एक दिन बढ़ा दिया जाता है। सन् १६२८ में फर्वरी २६ दिनकी थी और सन् १६३२ में फिर फर्वरी २६ दिनकी होगी। सूर्य्यके चारों ओर परिक्रमा करनेके कारणही ऋतुएँ संघटित होती हैं। गरमीके दिनोंमें सूर्य्य की किरणें हमारे प्रदेशपर बिलकुल लम्ब रूपमें सीधी पड़ती है और जाड़ेके दिनोंमें किरणें टेढ़ी आती हैं। सीधी किरणोंमें तापकी सामर्थ्य अधिक होती है और टेढ़ी किरणोंमें कम। इस प्रकार सूर्यके चारों ओर परिक्रमा लगानेसे पृथ्वीमें तरह तरहकी ऋतुएँ दिखाई पड़ती हैं। भूमध्यरेखा पर बहुधा सूर्य की किरणें सीधी पड़ती हैं अतः यहाँ सदा ही ग्रीष्म ऋतु रहती है। इस रेखासे उत्तर या दक्षिणकी ओर जितना ही हम बढ़ते जायंगे उतनी ही सीधी किरणोंकी सम्भावना कम होती जायगी। इसी लिये उत्तरी और दक्षिणी हिम-प्रदेशोंमें गरमीके दिनोंमें उतनी भी गरमी नहीं पड़ती है जितनी हमारे देशमें जाड़ेके दिनोंमें। हमारे देशका सा जाड़ा इन देशोंमें सदा ही विद्यमान रहता है। शीतकालमें तो वहाँ इतना जाड़ा पड़ता है कि कभी कभी तो नदियाँ भी जम कर बरफ बन जाती हैं और जहाँ देखिये वहीं बरफके ढेर दिखाई पड़ते हैं।

इस प्रकार पृथ्वीकी दोनों प्रकारकी गतियाँ बड़े महत्वकी हैं। अब हम इस विषयको यहीं छोड़कर भूलोकके विषयकी अन्य उपयोगी वार्त्ताओं पर विचार करेंगे। हमारी सम्पूर्ण पृथ्वी मण्डलों या कोषोंके अनुसार निम्न ७ भागोंमें विभाजित की जा सकती है:—

१—केन्द्रस्थ कोष – Centrosphere
२—धातु कोष – Barysphere
३—उष्म कोष – Pyrosphere
४—शिला कोष – Lithosphere
५—जल कोष – Hydrosphere
६—प्राणिकोष – Biosphere.
७—वायु कोष – Atmosphere

पृथ्वीका केन्द्रस्थ कोष किसी अज्ञात दृढ़ पदार्थका बना हुआ है। पृथ्वीकी गहराई इतनी अधिक है कि इसके केन्द्रतक किसी साधन द्वारा भी अभी तक पहुँच नहीं हो सकी है। पृथ्वीके इस केन्द्रकी अवस्थाका अनुमान लगाना भी सरल नहीं है। केवल इतना ही कहा जा सकता है कि यह किसी अत्यन्त प्रबल एवं दृढ़ पदार्थका बना होगा। ऐसा भी वैज्ञानिकोंका अनुमान है कि पृथ्वीके केन्द्रसे होता हुआ एक चुम्बक शक्तिसे युक्त लम्बाकार प्रस्तर है। इस चुम्बकका उत्तरी ध्रुव हमारी पृथ्वीके दक्षिणी ध्रुवकी ओर है और इसका दक्षिणी ध्रुव पृथ्वीके उत्तरी ध्रुवकी ओर। यह तो चुम्बकीय शक्तिकी बात हुई। अब गुरुत्व-शक्तिके विषयमें भी कुछ अनुमान लगाइये। यदि हिमालयके समान भारी पर्वत पृथ्वीके इस केन्द्र पर ले जाकर तौला जाय तो भी भार कुछ न होगा। भार क्या चीज़ है — वस्तुतः यह पृथ्वीकी गुरुत्वाकर्षण शक्तिकी माप है।

यदि किसी लोहेकी गेंदको आप अपनी छत परसे छोड़ते हैं तो वह आँगनमें आकर गिर पड़ती है। यह क्यों है? इसीलिये कि पृथ्वीकी शक्ति गेंदको अपनी ओर खींच रही है। यह आकर्षण शक्ति जितनी ही अधिक होगी उतना ही गेंदका भार अधिक होगा। पदार्थ पृथ्वीसे जितना ही दूर हटता जायगा, यह आकर्षण शक्ति कम होती जायगी। यदि पर्वतके शिखरपर किसी वस्तुका भार निकाला जाय तो पर्वतके शिखर पर लिया गया भार धरातल परके भारसे बहुत ही कम होगा। पर क्या आप अपनी तराजूसे इस भारकी कमीका अनुभव कर सकते हैं? मान लीजिये कि आपने धरातल पर अपने तराजू और बाटोंसे सेर भर आलू तौले, और फिर आप इन आलुओं और तराजू एवं बाटोंको पर्वतके शिखर पर ले गये, और वहाँ तौला। ऐसा करनेसे तो आपको आलू फिर भी सेर भर ही मिलेंगे। आप कहेंगे कि भारमें कुछ भी कमी नहीं हुई है। पर यह ठीक नहीं है क्योंकि जब आप पर्वतके शिखर पर गये तो आलुओंका भार तो कम हो ही गया पर साथ ही साथ आपके बाटोंका भी भार तो कम हो गया है। इसीलिये आपको कमीका कोई भी अनुभव इन तराजू और बाटोंसे नहीं हो सकता है। इस कामके लिये कमानीदार तराजू (स्प्रिङ्ग बैलन्स) बनाई गई है। इसमें धातुके तारोंकी सर्पाकार कमानी है और नीचे एक कांटा लगा हुआ है। इस कांटेमें एक पलड़ा लगा दिया है। पलड़े पर किसी वस्तुको रखनेसे कमानी उसके भारके अनुसार खिंच जावेगी और तराजूमें लगी हुई सुई इस भारको सूचित कर देगी। इसी तराजूसे हम भारकी कमी बढ़तीका अनुमान लगा सकते हैं।

अस्तु अभी हमने कहा है कि पृथ्वीसे जितनी दूर हम पदार्थ लेते जायंगे उतनी ही पारस्परिक आकर्षण शक्ति कम होती जायगी। पृथ्वीकी यह आकर्षण शक्ति पृथ्वीके केन्द्र पर संचित है। पदार्थ जितने ही इसके केन्द्रसे दूर होंगे उतना ही उनका भार कम होता जायगा। और जितने ही इसके निकट होंगे उतना ही भार अधिक होता जायगा। पर जब पदार्थ पृथ्वीके केन्द्र पर पहुँच जायगा तो पृथ्वी और उस पदार्थके बीचकी सम्पूर्ण आकर्षण शक्तिका ही लोप हो जायगा। क्योंकि पदार्थका केन्द्रपर होनेके कारण आकर्षण शक्तिका प्रश्न ही उठाना निर्मूल है। इसीलिये कहा जाता है कि पृथ्वीके केन्द्र पर किसी भी पदार्थका कोई भार नहीं है। पर यह बात केवल अनुमानसे ही कह सकते हैं क्योंकि अभी तक पृथ्वीके केन्द्र पर कोई नहीं पहुँच सका है।

पृथ्वीका दूसरा कोष धातुकोष (barysphere) कहलाता है। पृथ्वी उल्काओंके घनीकरण द्वारा बनी है। इसका विस्तृत उल्लेख आगे किया जावेगा। जब किसी खनिज पदार्थको गरम करते हैं तो उसकी धातु तो पिघल जाती है और शेष पथरीले पदार्थ वैसेही ठोस रहजाते हैं। यदि पिघलाकर खनिजको अब ठंडा होने दिया जाय तो पिघली हुई धातु नीचे जम जावेगी और पथरीले पदार्थ ऊपर रह जावेंगे। यही अवस्था इस पृथ्वीके विषयमें भी है। इसका जन्म उल्काओं से हुआ है। कल्पना कीजिये कि इन उल्काओंमें कुछ पथरीला अंश है और कुछ धातु अंश। धीरे धीरे ये तप्त उल्का ठंडे पड़ने लगे। ठंडे होनेसे धातु अंश तो नीचे रह गया और पथरीला भाग ऊपर आगया। इसी प्रकार इस पृथ्वीमें केन्द्र कोष के पश्चात् धातु कोष है और धातु कोषके बाद शिलाकोष है।

धातु और शिलाकोषोंके बीचमें एक दूसरा कोष है जिसे उष्मकोष (pyrosphere) कहते हैं। इस कोषमें गरम-गरम द्रवके समान पिघले हुए पदार्थ पाये जाते हैं। ज्वालामुखी पर्वतोंमेंसे जो

गरम गरम पिघला हुआ गन्धक आदि लावाके रूपमें बाहर निकलकर आता है वह इसी उष्म कोषका पदार्थ है। शिलाकोष (lithoosphere) में मुख्यतः भिन्न-भिन्न पत्थरोंकी चट्टानोंका समावेश है। ये दृढ़ पत्थर इस भूमिका मुख्य अंश है। इन शिला प्रस्तरोंकी विस्तृत व्याख्या आगे दी जावेगी।

शिलाकोषके पश्चात् जलकोष (hydrosphere) है। यह सभी जानते हैं कि पृथ्वीके धरातल पर भूमिकी अपेक्षा जलका भाग अधिक है। बड़े बड़े महासागर पृथ्वीका तीन चौथाई भाग घेरे हुए हैं। पर यह स्मरण रखना चाहिये कि इन सागरोंके नीचे भी ज़मीन है। इन सागरोंका वर्णन आगे दिया जावेगा।

जलकोषके पश्चात् प्राणिकोष (biosphere) है। प्राणिकोषसे हमारा तात्पर्य पशु, पक्षियों, मनुष्यों तथा वनस्पति जगत्से है। इस पृथ्वीके ऊपर विस्तृत जंगल हैं जिनमें तरह तरहके पशु विहार करते हुए पाये जाते हैं। पहाड़ोंके शिखरों परभी घने जंगल हैं। इनकोभी पृथ्वीका एक कोष समझना चाहिये।

पृथ्वीका अन्तिम कोष वायु कोष (atmosphere) है जिसे वायुमण्डल या अन्तरिक्षभी कहते हैं। यह वायुमण्डल पृथ्वीकी आकर्षण शक्तिके सहारे स्थिर है। पृथ्वीके घूमनेके साथ-साथ यह कोष भी निरन्तर उसी गतिसे घूमता रहता है। यह कई मील ऊपर तक फैला हुआ है। वायुमण्डलका एक विशेष दबाव होता है, और इसी दबावके कारण हमारा जीवन सम्भव हो सका है। यह वायु मण्डल ताप और शीतको हमारे जीवनके अनुकूल बनाये रखता है। यदि यह न होता तो दिनमें हम सूर्य्यकी गरमीसे झुलस कर मर जाते और रातके समय ठंडके मारे हम बिलकुल गलकर नष्ट हो जाते। इस वायुमंडलका उल्लेख विस्तार पूर्वक किया जावेगा।

वस्तुतः जिस कोषके ऊपर हम रहते हैं वह शिलाकोष है और साधारणतः इस शिलाकोष तकही पृथ्वी समझी जाती है। यह कहा जा चुका है कि पृथ्वी गोल है पर ध्रुवों पर थोड़ीसी चपटी हुई है। इस पृथ्वीका धुरी व्यास ७८९९'९८४ मील है अर्थात् यदि इसके उत्तरी ध्रुवसे एक रेखा पृथ्वीके केन्द्रमें होती हुई दक्षिणी ध्रुव तक खींची तो इसकी लम्बाई सात हज़ार नौसौ मीलके लगभग होगी। यह तो पृथ्वीका उत्तर दक्षिण या ध्रुवी व्यास हुआ। अब यदि भूमध्य रेखा पर पूर्व से पश्चिम तक केन्द्रसे होती हुई कोई सीधी रेखा खींची जाय तो उसकी लम्बाई ७९२६·६७८ मील होगी। इसे पृथ्वीका निरक्षीय व्यास (equatorial diameter) कहते हैं। यह व्यास ध्रुवीय व्याससे २६·७ मीलके लगभग अधिक है। इस व्यासका अधिक होना ही यह बताता है कि पृथ्वी ध्रुवों के निकट कुछ चपटी हो गई है। व्यास मालूम हो जाने पर परिधिका अनुमान लगाना कोई कठिन काम नहीं है। गणित वाले विद्यार्थी जानते हैं कि वृत्तके व्यास को ३·१४ से गुणा कर देने से परिधि की लम्बाई आ जाती है। पृथ्वी की ध्रुवीय परिधि २४८६०·२२ मील है और सम्पूर्ण भूमध्यरेखा की लम्बाई (निरक्षीय परिधि) २४८८९ मीलके लगभग है।

पृथ्वीका सम्पूर्ण पृष्ठतल १९६९४०००० वर्गमील है। इसमें १३७०००००० वर्गमील अर्थात् ६९६ प्रतिशतक पानी है और शेष ५९८७०००० वर्गमील अर्थात् ३०.४ प्रतिशतक ज़मीन है।

सम्पूर्ण पृथ्वी दो भागोंमें विभक्त है। एक तो उत्तरी गोलार्ध जिसका अधिकांश भाग भूमि है। भूमध्यरेखाके उत्तरकी ओर स्थित पृथ्वीके भागको उत्तरी गोलार्ध कहते हैं। उत्तरी गोलार्धमें समुद्र तलसे ऊपर ४११९२००० वर्गमीलके लगभग भूमि है। दक्षिणी गोलार्धमें अधिकांश भाग जल है अतः इस भागको मुख्यतः पृथ्वीका जलकोष कह

सकते हैं। इस कोषमें समुद्रतलसे ऊपर केवल १६१४२००० वर्गमीलके लगभग भूमि है।

सम्पूर्ण पृथ्वीका पृष्ठ सर्वत्र समतल नहीं है। कहीं कहीं तो ऊंचे ऊंचे पर्वत हज़ारों मील तक चले गये हैं और कहीं कहीं मैदान हैं। इन पर्वतों एवमैदानोंकी ऊंचाई समुद्रके जल पृष्ठसे नापी जाती है। नीचेकी सारिणी में इस बातका विवरण दिया जाता है कि पृथ्वीका कितना प्रतिशतक भाग समुद्रतलसे कितनी ऊँचाई पर है:—

ऊँचाई	प्रतिशत	
हिमालयकी सबसे ऊँची चोटी एवरेस्ट है जो समुद्र पृष्ठसे २९००० फुट ऊँचा है।		
समुद्र पृष्ठसे ६००० फुटसे अधिक ऊपर	२·३%	सम्पूर्ण ३०·४२ भूमि भाग
समुद्र पृष्ठ और ६००० फुट ऊँचाईके बीचमें।	२८·१%	

यह कहा जा चुका है कि पृथ्वीका भूमि भाग ३०·४१० है और शेष ६९·६ प्रति शतक जल भाग है। इस जल भागके नीचे भी ज़मीन है। इसकी गहराई भी समुद्रके पृष्ठ तलसे नापी जाती है। नीचेकी सारिणीसे समुद्रोंकी गहराईका कुछ अनुमान हो सकता है:—

गहराई	प्रतिशत	
समुद्र पृष्ठसे ६०० फुट नीचे तक	५·१%	
समुद्र पृष्ठके ६०० फुट से ६००० फुट नीचे तक	७·०%	
समुद्र पृष्ठके ६००० फुटसे १२००० फुट नीचे तक	१४·८%	सम्पूर्ण ६९·६% जल विभाग
समुद्र पृष्ठके १२००० फुटसे १८००० फुट नीचे तक	३९·६%	
समुद्र पृष्ठके १८००० फुटसे २४००० फुट नीचे तक	३·१%	
ग्वामके निकट समुद्रकी सबसे अधिक गहराई ३१६०० फुट है।		

महासागरोंका अधिक उल्लेख आगेके किसी अध्यायमें किया जावेगा। संपूर्ण भूलोकको ६ भौगोलिक विभागोंमें विभाजित किया गया है—१ यूरेशिया, जिसमें यूरोप और एशिया सम्मिलित हैं। २ अफ्रिका, ३. उत्तर अमरीका, ४ दक्षिण अमरीका ५ ओशनिका जिसमें अस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैंड, फीजी-द्वीप आदि सम्मिलित हैं और ६. एएटार्टिका जिसमें दक्षिणी शीत कटिबन्धके ध्रुवीय प्रदेश सम्मिलित हैं। भूगोलसे परिचित पाठक इन प्रदेशोंके विषयमें बहुत कुछ जानते होंगे। महाद्वीपोंके नामसे भूमिका विभाग बहुधा इस प्रकार किया जाता है—एशिया, यूरोप, अफ्रीका, उत्तरी अमरीका, दक्षिणी

अमरीका और अस्ट्रेलिया। इन महाद्वीपोंके निकट अन्य बहुतसे छोटे छोटे द्वीप हैं। महाद्वीपोंका क्षेत्र फल और समुद्र तलसे औसत ऊँचाई नीचे दी जाती है :—

महाद्वीप	औसत ऊंचाई	क्षेत्र फल
एशिया	३३०० फुट	१६,४००,००० वर्ग मील
यूरोप	१०३० ,,	३,७००,००० ,,
अफ्रीका	२१०० ,,	११,०००,००० ,,
उत्तरी अमरीका	२१०० ,,	७,६००,००० ,,
दक्षिणी अमरीका	२१०० ,,	६,८००,००० ,,

इन महाद्वीपों और महासागरोंके विषयमें एक बात याद रखनी चाहिये। ये महाद्वीप और महासागर भूलोककी स्थायी सम्पत्ति हैं। सृष्टिके इतिहासमें ऐसा कोई समय प्रतीत नहीं होता है जब जिस स्थानमें आज कल महाद्वीप हैं, उस स्थानमें पूर्व किसी समयमें महासागर हों। इसी प्रकार यह कहना भी भ्रम है कि जिस स्थानमें आज कल महासागर हैं वहाँ पहले कभी भूमि थी। सृष्टि के आरम्भसे आज तक महासागर और महाद्वीप अधिकांशतः अपने स्थान पर अचल हैं। यह संभव है कि छोटे २ द्वीप किसी समय जलमें विलीन होगये हों या कहीं पर छिछले समुद्रोंका जल हट गया हो और नया भूमि भाग निकल आया हो पर बड़े बड़े महासागरों और महाद्वीपोंके लिये ऐसी कल्पना करना ठीक नहीं है। यद्यपि पहले भूगर्भ वेत्ताओं का ऐसा विचार अवश्य था। सर चार्ल्स लायल नामक प्रसिद्ध व्यक्तिका भी यही विचार था कि जहाँपर आज कल समुद्र हैं वहाँ पहले किसी समय ज़मीन थी, पर जेम्सड्वाइट डाना (१८१३-१८९५) ने इस बातको भली भाँति प्रदर्शित कर दिया है कि पृथ्वीके आदि कालसे अबतक जलप्रदेशका थल प्रदेशमें और थल प्रदेशका जलप्रदेशमें पूर्णतः परिवर्तन कभी नहीं हुआ है।

जल और थल प्रदेशके विषयमें एक बात और जानने योग्य है। सागर प्रति दिवस गहरे होते जा रहे हैं। साथ-साथ यह भी बात है कि समुद्रोंकी तह अत्यन्त दृढ़ प्रस्तरोंसे बनी हुई है जिनके टूटने या घिसनेकी कोई सम्भावना नहीं है अतः समुद्रके अधिक गहरे होते जानेका अर्थ यह है कि प्रति दिवस इनका पानी ऊपर बढ़ता आ रहा है। पानीके ऊपर बढ़नेका प्रभाव स्थलप्रान्त पर पड़ता है और जो प्रदेश समुद्रसे बहुत ऊँचाई पर नहीं हैं वे कालान्तरमें डूबते जाते हैं। भारत वर्षके दक्षिणी तट पर लंका नामका एक प्रसिद्ध द्वीप है। इस द्वीपकी परिस्थितिका निरीक्षण करनेसे पता चलता है कि यहांकी जलवायु, पशुपक्षी, एवं खनिज आदि दक्षिणी भारतके समान ही हैं। अतः भूगर्भ वेत्ताओंका यह विचार है कि यह द्वीप किसी समयमें दक्षिणी भारतसे मिला हुआ था और समुद्रके बढ़नेके कारण बादको इसका कुछ नीचा भाग जलमें विलीन होगया। यही अवस्था जावा, सुमात्रा, बोर्नियो आदि द्वीपोंकी हुई। ऐसा

अनुमान किया जा सकता है कि ये सब द्वीप किसी समय एशियाके महाद्वीपसे बिलकुल मिले हुए थे। इसी प्रकार अफ्रीकाके पूर्वी तट पर मैडागास्कर आदि कई द्वीप ऐसे हैं जो पहले अफ्रीकासे मिले हुए थे पर अब अलग हो गये हैं।

भूगर्भ वेत्ताओंका यह भी अनुमान है कि दक्षिणी अमरीकामें स्थित ब्रेज़िल प्रदेश उत्तर पश्चिमी अफ्रीकासे जुड़ा हुआ था और जहाँ पर आजकल गहरा अटलाण्टिक महासागर है वहाँ पहले एक महाद्वीप था जिसका नाम गोंडवाना रखा गया है। इसी प्रकार पूर्वकालमें अफ्रीका भी भारतवर्षसे संयुक्त था। तात्पर्य यह है कि एक काल वह था जब दक्षिणी अमरीका, अफ्रीका और भारतवर्ष मिले हुए थे।

जो कुछ ऊपर कहा गया है उसका तात्पर्य यह है कि यद्यपि महासागरों और महाद्वीपोंमें कभी पूर्णतः परिवर्त्तन नहीं हुआ है पर समुद्रके उत्तरोत्तर बढ़ने (अधिक गहरे होने) के कारण बहुतसे प्रान्त जो किसी समयमें स्थल थे आजकल समुद्रके गर्भमें विलुप्त हो गये हैं।

सुगन्धित तैलोंका बनाना और इत्रोंका निकालना

(विज्ञान भाग २८, सं० ६ के आगे)

[ले०—श्री० राधानाथ टण्डन]
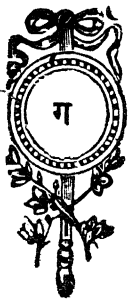
गत लेखमें यह कहा जा चुका है कि सुगन्धित तैलोंके बनाने और इत्रोंके निकालने की तीन विधियाँ हैं :—

(१) मशीन द्वारा दबाकर।

(२) भभकेसे स्रवण करके।

(३) चरबी व तैलमें बास खींच कर और फिर मद्य या अन्य द्रव पदार्थमें घोल बनाकर। पहली विधि का विस्तृत उल्लेख भी उस लेखमें दिया जा चुका है। अब हम दूसरी और तीसरी विधियों का वर्णन देंगे।

(२) भभकेसे उड़ाकर (by distillation):—बहुतसे सुगन्धित तेल (essential oils) ऐसे हैं जो पानी की भापके साथ निकल आते हैं यद्यपि उन तेलोंके क्वथनांक पानीके क्वथनांकसे कहीं अधिक होते हैं। इसी कारण उन तेलोंको उनके वानस्पतिक पदार्थोंसे भभके द्वारा निकाल सकते हैं। बहुतसे पदार्थोंके लिये भभके के रीति काममें लाई जा सकती है जैसे जीरा, सौंफ, लवेण्डर, जायफल, जावित्री इत्यादिके सुगन्धित तेल केवल इसी रीतिसे निकाले जाते हैं। इस रीतिसे सुगन्ध (odour) खींचनेके लिए तरह-तरहके भभके काममें आते हैं जिनका कुछ वर्णन नीचे लिखा जायगा। उन व्यापारियोंके लिए जो भट्टीसे काम लेना चाहें यहाँ तस्वीरमें दिया हुआ यन्त्र अधिक लाभदायक होगा।
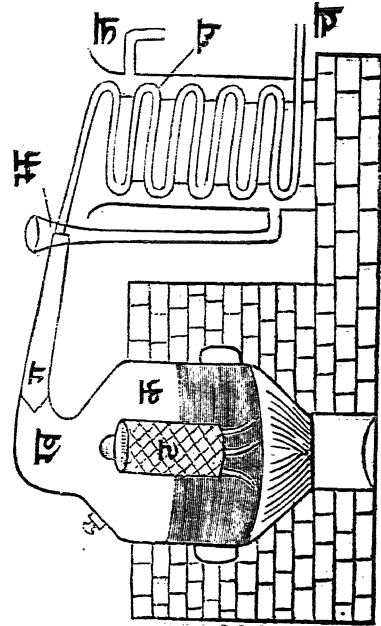
(चित्र १)

इस भभकेके यन्त्रका वह पात्र 'क' जिसमें पानी उबाला जाता है तांबेका बना होता है।

और ईंटकी भट्टीमें इस तरह रक्खा जाता है कि आग की लौ न केवल पेंदे पर ही वरन् चारों ओर भी पड़े जैसा चित्र १ में दिखलाया है। इस पात्रके ऊपरी भागमें छिद्र होता है जो पेंच (screw) से इस तरह बन्द रहता है कि वायु भी प्रवेश न कर सके। इसके द्वारा पात्रमें पानी भरा जाता है। पानी कम हो जाने पर इसी छिद्रसे पानी फिर भर सकते हैं। इस पात्रके ऊपरी भागमें तांबेका या रांगेका पानी चढ़ा हुआ लोहेके ढक्कनकी तरह का पात्र 'ख' लगा दिया जाता है जो इस तरह कसा रहता है कि भापका लेशमात्र भी न निकल सके इसीसे लगी हुई एक लम्बी नली 'ग' होती है जो फिर टीनकी चद्दरके बने हुए घुमेरदार नलिका 'घ' (worm) से जुड़ी रहती है। इस घुमेरदार नलिका (worm) का आन्तरिक भाग 'च' बाहर निकला रहता है जिससे तेल दूसरे पात्रमें एकत्रित होता जाता है।

यह घुमेरदार नलिका एक लोहे या लकड़ीके बने हुए पात्र में रखी रहती है' जिसे द्रावक यन्त्र (condenser) कहते हैं। यह सदैव ठण्डे पानीसे भरा रहता है। जो पानी घुमेरदार नलिकामें भाप आनेसे गरम हो जाता है वह द्रावक यन्त्रके ऊपरी भाग वाली नली 'ज' से निकलता रहता है और ठण्डा पानी 'झ' कीपके द्वारा बराबर द्रावक यन्त्रमें आता रहता है। जिस वानस्पतिक पदार्थसे तेल खींचना हो उसे पात्र 'क' में रख देते हैं और किसी चालक (stirrer) से चलाते जाते हैं जिससे वह पदार्थ जलने न पावे। पात्रकी पेंदी गरम हो जानेके कारण पदार्थके नष्ट हो जाने का भय रहता है। इस कारण पदार्थ बहुधा एक लोहेके जालीदार पिंजड़े 'ट' (basket) में रखकर तब उसको 'क' पात्रमें रखते हैं। बहुधा ऐसी घटना को बचानेके लिए उसी पात्रमें पींजड़ेकी जगह काम करनेके लिए एक पात्र और लगा रहता है जैसा दाहिनी ओरके चित्र २ से ज्ञात होगा। भाप 'क' पात्रमें बन कर 'ख' पात्रमें प्रवेश करती है और जो वानस्पतिक पदार्थ 'ख' पात्रके छिद्रदार सतह पर रक्खा रहता है उसमें से सुगन्धित तेलको वायव्य रूप
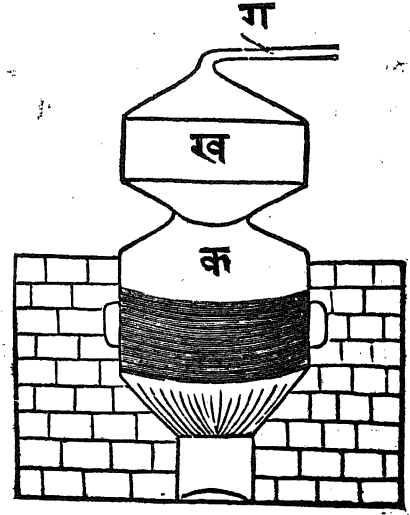
(चित्र २)

में लेकर 'ग' नलीमें प्रवेश करती है और फिर द्रावक यन्त्रमें जाती है जिसका वर्णन पहले किया जा चुका है। बड़े बड़े
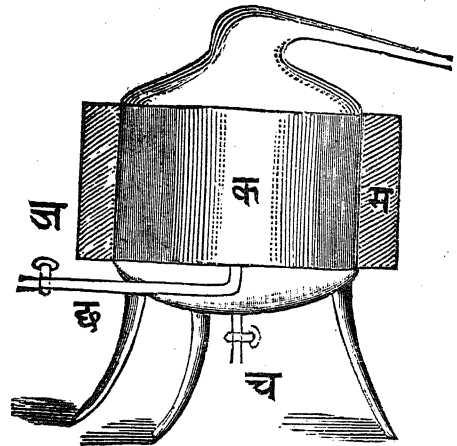
(चित्र ३)

कारखानोंमें भापकी आवश्यकताके लिए बोआएलर (boiler) काममें लाते हैं और इससे लाभ

भी अधिक है। भापसे काम लेने के लिए चित्र ३ में दिया हुआ पात्र काममें लाते हैं। इसमें 'क' पात्रके नीचेके पेंदेमें एक नली 'च' लगी होती है और दूसरा नली 'छ' भी पेंदेसे होकर भीतर जाती है। यह नली बोआयलर (boiler) से जुड़ी रहती है। 'ज' टोंटी खोलनेसे भाप पात्रकी पेंदीसे कुछ ऊपर रक्खे हुए छिद्रदार प्लेटसे होकर ऊपर जाती है और जो वानस्पतिक पदार्थ उस पर रक्खा रहता है उसमें से तेलके अंशको साथ ले जाती है। जो पानी अन्तमें रह जाता है वह 'च' द्वारा निकाल लिया जाता है। यह पात्र भी लकड़ीके घेर (jacket) से घिरा रहता है जिसमें गरमी बिखरने न पावे।

ऊपर लिखी हुई भभकेकी रीति उन पदार्थोंके लिए काममें लाई जाती है जिनमें सुगन्धित तेल (essential oil) अधिकांशमें पाया जाता है जैसे लौंग, जाविञी, जायफल, दालचीनी इत्यादि।

बहुमूल्य सुगन्धके लिए छोटे भभके काममें लाए जाते हैं जो पहले कहे हुए यन्त्रकी तरह होते हैं पर लोहे व तांबेकी अपेक्षा कांचके बने होते हैं जिनका वर्णन नीचे दिया जायगा।

ऊपरी सिरे से एक न्यूनकोणबनी हुई शंकु नली (conical tube) लगी रहती है, रखते हैं। इसके ऊपरी भाग पर एक छिद्र होता है जिसमें डाट लगी रहती है। इससे पानी व पदार्थ भीतर डाल सकते हैं। इस बर्तन को एक दूसरे बर्तनमें जिसमें पानी उबालते हैं रखते हैं। यदि कांचका बरतन सीधे जलते हुए दग्धक (gas burner) पर रख दिया जाय तो टूट जानेका भय है और पदार्थ भी जलकर नष्ट हो जाएगा। इसीसे कांचके गोलाकार भागको गरम पानीसे गरम करते हैं। भभकेका मुँह एक लम्बी वाहक नलीसे जोड़ दिया जाता है। वाहक नलीके चारों ओर ठंडा पानी प्रवाहित होता रहता है। एक कांच रहता है जिससे भभकेसे (retort) निकलती हुई पानीकी भाप वानस्पतिक पदार्थमेंसे इत्र अथवा सुगन्धित तेलको लिये हुए वाहक नलीमें आकर ठण्डसे द्रवमें परिवर्तित हो जाती है। इत्र और पानी वाहक नलीके बाहिरी सिरेमें लगे हुए कांचके संचकमें भर जाता है। तेल वा इत्र और जलका मिश्रण आकर भर जाता है। इसमें पानी भारी होता है और तैल हलका। इस प्रकार दोनों की सतहोंको पृथक्कारी कीप द्वारा अलग अलग
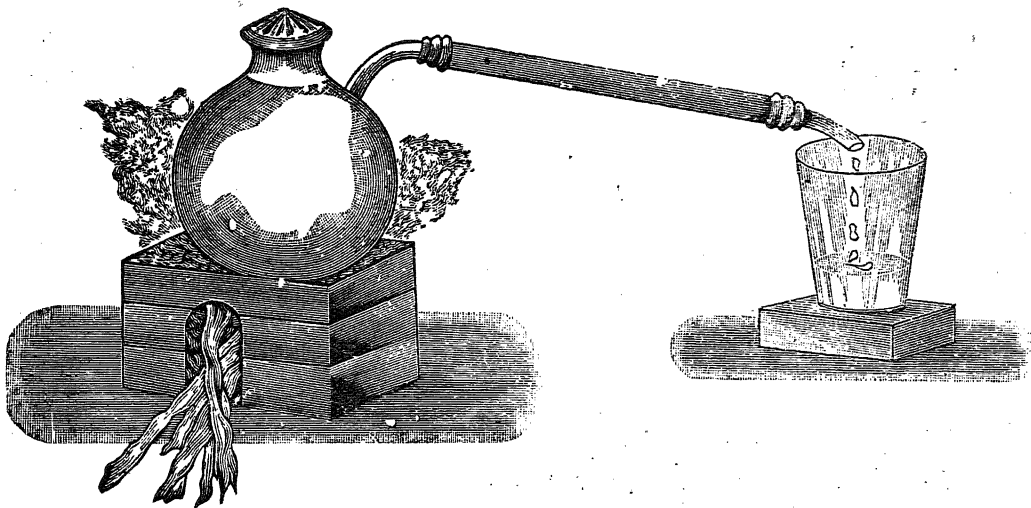
(चित्र सं० ४)

बहुमूल्य सुगन्धके लिए वानस्पतिक पदार्थको एक कांचके गोलाकार बर्तन (retort) में जिसके

कर सकते हैं। एक विशेष प्रकारकी फ्लोरेन्टाइन फ्लास्क (Florentine flask) का भी उपयोग इस

कामके लिये किया जाता है। यह फनास्क एक प्रकारकी कांचकी कुप्पी हैं जिसकी पेंदीमें होकर एक पार्श्व टोंटी लगी होती है। जब बोतल सुगन्धित पदार्थ (essential oil) से भर जाता है तब उसको कांचके कीपदार पात्रमें भर कर जलका बचा हुआ अन्श भी पृथक कर लेते हैं। जल नीचे होकर निकल जाएगा और इत्र व तेल (essential oil) जो ऊपर तैरता रहता है बिलकुल स्वच्छ निकल आएगा। देखो एक साधारण भभकेका चित्र (सं० १)।

३—इत्र खींचनेकी तीसरी विधि

किसी तेल या चरबीमें फूलोंमें वर्तमान सुगन्धित अन्श (odourous substance) को खींच कर (by infusion)

यह क्रिया चरबी व तैलके इत्रको फूलोंमें से खींच लेने और सोख लेनेके गुण और उसको फिर तीव्र मद्य (strong alcohol) को सौंप देनेके गुण पर अवलम्बित है। पहली लिखी हुई क्रियाओंसे फूलोंमें वर्तमान इत्र व सुगन्धका पूरा अन्श प्राप्त नहीं होता। बहुत सा अन्श उसीमें रह जाता है और इसके अतिरिक्त गुलाब, चमेली जैसे फूलोंसे खींचे हुए तेल उतने सुगन्धित भी नहीं होते जितने इस क्रियासे। यह वही क्रिया है जिसमें फूलोंकी बास तिल्ली व अन्य तेलोंमें बसाई जाती है। बढ़िया इत्र इसी क्रिया द्वारा बनाया जाता है। यदि गुलाब व चमेली, मोतिया, नरगिस इत्यादिके फूल किसी तारके बने हुए बास्कट (sieve basket) में रखकर किसी बोतलमें भरे हुए चरबी व तेलमें लटकाकर और बन्द करके कुछ दिनों तक एक कोने रख दिया जाय और कुछ-कुछ देर पश्चात हिला दिया जाया करे तो देखोगे कि तेल फूलोंके बासको खींचकर सुगन्धित हो जायगा। जितना ही अधिक फूलोंका व्यवहार होगा उतनाही अधिक सुगन्धित तेल बनेगा। पुराने फूलोंको निकाल कर नए ताज़े फूल लिए जा सकते हैं और इस तरह किसी नम्बर का तेल व पोमेड (pomade) तय्यार किया जा सकता है। यदि गन्ध युक्त तेल (scented oil or pomade) के अन्श को लेकर ९९ फी सैकड़े वाले मद्यके साथ हिलाया जाए तो तेलमें बसा हुआ इत्र (essence) मद्यमें आ जावेगा। मद्यके अतिरिक्त बहुधा क्लोरोफार्म (हरोपिपील) पेट्रोलियम ज्वलक (petroleum ether) कर्बन द्विगन्धिद (carbon di sulphide) का भी व्यवहार किया जाता है। यदि ज्वलील मद्य (ethyl alcohol) को अब पहले के हुए कांचदार भभके (retort) से उड़ाएँ तो यह भाप (vapour) बनकर सचक पात्र (recevier) में ७०°श तापक्रम पर उबल कर आ जावेगा और इत्र खालिस भभकेके पात्रमें रह जाएगा। और एक बात यहां कह देना आवश्यक है कि मद्य और चरबी अमिलनसार (immiscible) हैं अर्थात् दोनों आपसमें एक दूसरेको घुला नहीं सकते हैं। दोनोंकी सतह पृथक् २ रहेगी और पृथक्कारी कीप (separating funnel) द्वारा पृथक पृथक की जा सकती हैं।

ज्वलक (ether) से भी बहुधा मद्यका काम लेते हैं पर यह बेहोशी लानेवाली पदार्थ है और शीघ्र उड़ने लगता है। इसको गन्धकाम्ल और मद्यको भभका देकर बनाते हैं। इसका क्वथनांक (B. P.) भी मद्यकी अपेक्षा बहुत कम होता है।

सबसे अच्छी रीति चरबी द्वारा फूलोंकी सुगन्ध खींचनेकी आगे दिए हुए चित्रसे ज्ञात होगी। इसमें एक पांच कमरेका तांबेका पात्र इस तरह बना होता है कि हर एकके भीतर तारका एक पींजड़ा होता है जिसमें फूल भर दिया जाता है और तेल व चरबी ऊपर और नीचेके छिद्रोंसे होता हुआ सब कमरोंमें पहुँचता है। यदि दाहिनी ओर दिए हुए चित्र संख्या ५ के 'छ' नली द्वारा तेल डाला जाए तो सब कमरोंमें से होकर 'ज' नली द्वारा बाहर निकल आएगा, अर्थात् वही तेल पांच पींजड़ों के फूलोंकी सुगन्ध खींचकर निकलेगा। जब फूलकी सुगन्ध निकल जाए तो 'क' का फूल निकाल

कर 'ख' का फूल 'क' में, 'ग' का फूल 'ख' में, 'घ' का फूल 'ग' और 'च' का फूल 'घ'
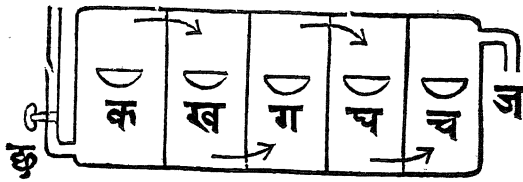
(चित्र सं० ५)

में बन्दकर 'च' को ताज़े फूलोंसे भर सकते हैं इस तरह एकमें से दूसरेमें से तीसरेमें करनेसे वही फल पांच बार उसी तेलके साथ काममें आ जावेगा और सब सुगन्ध उसकी तेल खींच लेगा। इस क्रियासे बनाया हुआ तेल बड़ा सुगन्धित होता है और फूलोंका पूरा इत्र उतर आता है। अब इसी पोमेड (pomade) या सुगन्धयुक्त तेलमें से इत्र मद्य या सबसे अच्छा पेट्रोलियम ज्वलक द्वारा सहजमें अलग कियाजा सकता है। पेट्रोलियम ज्वलकको खूब पोमेड या गन्धयुक्त तेलके साथ हिलानेसे इत्र पेट्रोलियम ज्वलकमें आ जावेगा और फिर भभके द्वारा इत्र उसमेंसे अलग किया जा सकता है जिसका वर्णन हम पहले ही कर चुके हैं।

लोहम्, कोबल्टम् और नकलम्

(क्रमागत)

[ले०—श्री सत्यप्रकाश, एम० एस-सी०]

यह कहा जा चुका है कि लोहम्, कोबल्टम् और नकलम् नामक तीनों तत्त्व अष्टम समूहके हैं अतः इनकी उच्चतम संयोग शक्ति ८ है। संयोग शक्ति इतनी अधिक होनेके कारण इनके अनेक प्रकारके यौगिक सम्भव हैं। सामान्यतः लोहम् के लोहिक और लोहस दोनों श्रेणियोंके यौगिक होते हैं, पर कोबल्टम् और नकलमके कोबल्टस और नकलस यौगिक ही मुख्यतः स्थायी हैं। इन यौगिकोंमें धातुओंकी संयोग-शक्ति दो है। इनके इक-यौगिक जिनमें संयोग शक्ति तीन हो, उल्लेखनीय नहीं हैं।

ओषिद् और उदौषिद्

लोहेके मुख्यतः तीन प्रकारके ओषिद होते हैं :—

लोहस ओषिद, या लोह-एकौषिद, लो ओ

लोहेका चुम्बकी ओषिद, या लोहोसोलोहिक ओषिद, $लो_3 ओ_4$ ।

लोहिक ओषिद, या लोह एकार्ध ओषिद, $लो_2 ओ_3$ ।

इन ओषिदोंमेंसे लोहोसोलोहिक और लोहिक ओषिद तो खनिज रूपमें प्रकृतिमें पाये जाते हैं जैसा कि पहले कहा जा चुका है।

लोहस ओषिद— लोओ — ३००° श तक तप्त लोहिक ओषिद पर उदजनका प्रवाह करनेसे लोहस ओषिद काले चूर्णके रूपमें मिलता है। पर यह हवामें खुला छोड़ने पर फिर लोहिक ओषिदमें परिणत हो जाता है। लोहेको २००° तक गरम करके नोषस ओषिद द्वारा प्रभावित करनेसे भी यह मिल सकता है। लोहस काष्ठेत, $लो\ क_2\ ओ_4$, को वायुकी अनुपस्थितिमें १५०° से १६०° तक गरम करनेसे लोहस ओषिद और लोहेका मिश्रण मिलता है।

लोहस उदौषिद— $लो\ (ओउ)_2$— किसी शुद्ध लोहम् लवणमें वायुरहित सैन्धक क्षारके घोलको डालनेसे लोहस उदौषिद का श्वेत अवक्षेप आता है। इसे वायुकी अनुपस्थितिमें गरम पानी और ज्वलक द्वारा धोकर उदजनकी परिस्थितिमें सुरक्षित रखा जा सकता है। वायुकी विद्यमानतामें यह शीघ्र ही लोहिक उदौषिदमें परिणत हो जाता है।

लोहेका चुम्बकी ओषिद या लोहसो लोहिक ओषिद:—लो$_3$ओ$_4$— यह मैग्नेटाइट खनिजके रूपमें पाया जाता है और जैसा कि इसके नाम प्रकट है, यह लोहस ओषिद, लोओ, और लोहिक ओषिद का मिश्रण है। इसमें लोहेको आकर्षित करनेके गुण होते हैं। लोहेको वायुमें गरम करनेसे अथवा ओषजनमें शीघ्र जलानेसे जो ओषिद मिलता है वह लोहस और लोहिक ओषिदका मिश्रण होता है जिसे लोहासोलोहिक ओषिद समझा जा सकता है। रक्त-तप्त लोहे पर भाप प्रवाहित करनेसे भी लोहोसो लोहिक ओषिद बनता है और उदजन निकलने लगता है:-

३ लो + ४उ$_2$ओ = लो$_3$ओ$_4$ + ४उ$_2$
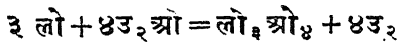
इस ओषिदको उदहरिकाम्लमें घोल कर सैन्धक उदौषिदके साथ अवक्षेपित करनेसे काला अवक्षेप आता है जो लो (ओउ)$_2$ लो$_2$ओ$_3$ का माना जाता है।

लोहिक ओषिद या लोह एकार्ध ओषिद, लो$_2$ओ$_3$— किसी लोहिक लवणमें अमोनिया या कोई दाहक क्षार डालनेसे लोहिक उदौषिद, लो (ओउ)$_3$का भूरा अवक्षेप आता है। इस अवक्षेपको छान कर ५००°श तक गरम करनेसे लोहिक ओषिद बनता है। यह भूरे-लाल रंगका चूर्ण है जिसका घनत्व ५·१७ है। खनिजोंके रूपमें भी यह पाया जाता है। लोहेके ऊपर जो जंग लग जाता है उसका सूत्र लो$_2$ओ$_3$, २ लो (ओउ)$_3$ है। लोहे पर जंग जलकी विद्यमानतामें वायुके ओषजन द्वारा लगता है। जल इस प्रक्रियामें उत्प्रेरक का काम करता है। बहुतसे पानीमें थोड़ा सा लोहिक हरिद डालकर उबालनेसे गहरे लाल रंगका घोल मिलता है जिसे कलार्द्र लोहिक उदौषिदका घोल कहते हैं। यह लोहिक हरिदके उदविश्लेषण द्वारा बनता है:—

लोह$_3$ + ३ उ$_2$ओ = लो (ओउ)$_3$ + ३ उह
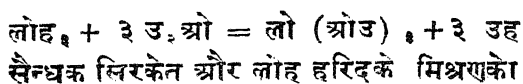
सैन्धक सिरकेत और लोह हरिदके मिश्रणको पार्चमैण्टके थैलेमें निःश्लेषण (dialysis) करनेसे भी कलार्द्र लोह उदौषिद मिलता है।

लोहित— ६६·५ भाग चूनेको १६० भाग लोहिक ओषिदके साथ परर्रौप्यमके बर्तनमें श्वेत ताप तक गरम करनेसे खटिक लोहित, लो$_2$ओ$_3$ख ओ, मिलता है। इसी प्रकार दस्तलोहित, लो$_2$ओ$_3$ द ओ और मगनीस लोहित, लो$_2$ओ$_3$ म ओ, भी बनाये जा सकते हैं।

कोबल्ट ओषिद

कोबल्टम्के भी तीन प्रकारके ओषिद पाये जाते हैं जिन्हें लोहम्के ओषिदके समान समझा जा सकता है।—

१ कोबल्ट एकौषिद, को ओ

२ कोबल्ट एकार्ध ओषिद, को$_2$ ओ$_3$

३ त्रिकोबल्ट चतुरोषिद, को$_3$ ओ$_4$

इन ओषिदोंके अतिरिक्त अन्यभी अनेक ओषिद होते हैं जो अधिक उपयोगी नहीं है।

कोबल्ट एकौषिद, को ओ — कोबल्ट एकार्ध ओषिद या अन्य किसी भी ओषिद को ३५०° के नीचे तापक्रम तक उदजन प्रवाहमें गरम करनेसे यह मिल सकता है। कर्बन द्विओषिद्के प्रवाहमें एकार्ध ओषिद को रक्ततप्त करनेसे भी यह मिल सकता है।

कोबल्टस उदौषिद; को (ओउ)$_2$— किसी कोबल्टस लवणको वायुकी अनुपस्थितिमें दाहक क्षार द्वारा अवक्षेपित करनेसे यह मिलता है। यह पहले नीले रंगका होता है पर गरम करने पर गुलाबी रंगका हो जाता है।

कोबल्टिक ओषिद—को$_2$ओ$_3$—कोबल्ट नोषेतको धीरे धीरे तप्त करनेसे यह काले-भूरे चूर्णके रूपमें प्राप्त होता है। कोबल्ट लवणको क्षारीय उपहरितके घोलसे अवक्षेपित करने पर कोबल्टिक उदौषिद, को (ओउ)$_3$ मिलता है।

त्रिकोबल्ट चतुरौषिद या कोबल्टो कोबल्टिक ओषिद, $को_३ओ_४$—किसी अन्य कोबल्ट ओषिद या कोबल्ट नोषेतको वायुमें गरम करनेसे यह मिलता है। इसके काले चूर्णका घनत्व ६·० के लगभग है।

कोबल्ट एकार्ध ओषिदको भार ओषिद और भार हरिदके साथ गलानेसे भार कोबल्टित, $भओ$·$को ओ_२$, बनता है। इसी प्रकार मगनिसिया के साथ गलानेसे मगनीस कोबल्टित, $मओ$·$कोओ_२$ मिलता है।

नकल-ओषिद

नकलमके दो ही ओषिद मुख्यतः पाये जाते हैं :—

नकल एकौषिद, न ओ

नकल-एकार्ध ओषिद, $न_२ओ_३$

अन्य भी ओषिद पाये जाते हैं पर वे उपयोगी नहीं हैं।

नकल एकौषिद, न ओ—यह नकल एकार्ध ओषिद, अथवा नकल कर्बनेत या नोषेत को ज़ोरोंसे गरम करनेसे हरे रवेदार चूर्णके रूपमें मिलता है। गरम करने पर इसका रंग गहरा पीला हो जाता है। २२०° श तक उदजनके प्रवाहमें गरम करनेसे इसका अवकरण हो जाता है और नकलम् धातु रह जाती है।

नकल उदौषिद, $न (ओउ)_२$ — न किसी नकल-लवणके घोलमें दाहक भारका घोल डालकर गरम करनेसे सेबके हरे रंगके समान इसका अवक्षेप प्राप्त होता है। यह अमोनियामें घुलकर नीला रंग देता है।

नकल एकार्ध ओषिद, $न_२ओ_३$—यह नकल नोषेत या कर्बनेतको वायुमें धीरे धीरे तप्त करनेसे मिलता है। इस ओषिदको गन्धकाम्ल या नोषिकाम्लमें घोलनेसे ओषजन निकलने लगता है। उदहरिकाम्लमें घोलनेसे हरिन् निकलता है :—

$$न_२ओ_३ + ६ उह = २ नह_२ + ३उ_२ओ + ह_२$$
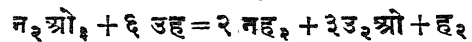
इसी प्रकार अमोनिया द्वारा प्रभावित होने पर नोषजन निकलता है :—

$$३ न_२ओ_३ + २ नो उ_३ + ३ उ_२ ओ = ६ न (ओउ)_२ + नो_२$$
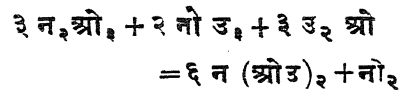
नकल एकार्ध ओषिदको भार कर्बनेतके साथ विद्युत् भट्टीमें ख़ूब गरम करनेसे भार नकलित, $भओ, २ न ओ_२$, बनता है।

हरिद, अरुणिद और नैलिद

लोहम हरिद— $लोह_२$ — तप्त लोह चूर्णके ऊपर हरिन् अथवा उदहरिकाम्ल वायव्य प्रवाहित करनेसे लोहस हरिद बनता है। लोहिक हरिदको उदजनके प्रवाहमें गरम करनेसे भी यह बन सकता है। इसकी नीरंग चमकीली पपड़ी होती है। यह पसीजने वाला पदार्थ है और जल तथा मद्यमें घुल जाता है। इसका घनत्व २·५२८ है। वायुमें गरम करने पर यह लोहिक हरिदमें परिणत हो जाता है और साथमें लोह एकार्ध ओषिद भी बनता है

$$१२ लोह_२ + ३ ओ_२ = ८ लोह_३ + २ लो_२ ओ_३$$
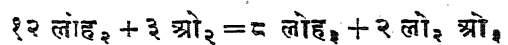
पर जलवाष्पके प्रवाहमें गरम करनेसे लोहोसो-लोहिक ओषिद बनता है :—

$$३ लोह_२ + ४ उ_२ ओ = लो_३ ओ_४ + ६ उह + उ_२$$
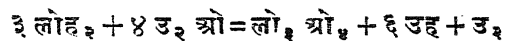
लोहेको उदहरिकाम्लमें घोलकर वायुकी अनुपस्थितिमें स्फटिकीकरण करनेसे लोहस हरिद, $लोह_२ ४ उ_२ ओ$, के नीले पारदर्शक रवे प्राप्त होते हैं। यह हवामें हरे पड़ जाते हैं। इनका घनत्व १·९३ है।

लोहोसो लोहिक हरिद, $लो_३ ह_८$. $१८ उ_२ ओ$—चुम्बकी लोह ओषिद, $लो_३ ओ_४$, को तीव्र उदहरिकाम्लमें घोलनेसे पीला द्रव प्राप्त होता है जिसे गन्धकाम्लके ऊपर सुखानेसे लोहोसो लोहिक हरिदकी पीली पपड़ी प्राप्त होगी।

लोहिक हरिद, लोह$_{३}$—लोहेके तारको शुद्ध हरिन के प्रवाहमें साधारण रक्ततप्त करनेसे लोहिक हरिद बनता है। तप्त लोहिक ओषिद पर उदहरिकाम्ल वायव्य प्रवाहित करनेसे भी यह बन सकता है। लोहिकहरिद श्याम-लाल रंगका होता है। यह शीघ्र पसीजने लगता है। यह पानी, मद्य और ज्वलकमें घुलनशील है। यह ४४८° पर ही उड़ने लगता है। और उच्चतापक्रम तक गरम करनेसे यह लोहस हरिद और हरिन्‌में विभाजित हो जाता है।

लोहिक हरिद अमोनियाके साथ लोह$_{३}$, ४ नो उ$_{३}$ यौगिक और नोषो सील हरिदके साथ लोह$_{३}$ नो उ ह यौगिक देता है भापके प्रवाहमें गरम करनेसे लोहिक ओषिद और उदहरिकाम्लमें परिणत हो जाता है। लोहिक हरिदमें स्फटिकीकरणके अनेक जलाणु होते हैं। इसके कई उदेत पाये जाते हैं :—

लोह$_{३}$. ६ उ$_{२}$ ओ—द्रवांक ३७° श
२लोह$_{३}$. ७ उ$_{२}$ ओ— " ३२°·५ श
लोह$_{३}$. २ उ$_{२}$ ओ " ७३°·५ श

इसके घोलोंका दवाइयोंमें उपयोग होता है।

कोबल्ट हरिद—कोह$_{२}$—धातु कोबल्टका चूर्ण हरिन्‌के प्रवाहमें गरम करने पर जल उठता है और कोबल्टहरिदके अनार्द्र नीले रवे प्राप्त होते हैं। ये मद्यमें घुलकर नीले रंगका घोल देते हैं। इनमें पानी छोड़ने पर पहले बैंजनी रंग आता है जो बादको गुलाबी रंगका हो जाता है। कोबल्टओषिद या कर्बनेतको उदहरिकाम्लमें घोलनेसे भी कोबल्ट हरिदका घोल मिलता है जिसको वाष्पीभूत करनेसे लाल रवे, कोह$_{२}$ ६ उ$_{२}$ ओ के प्राप्त होते हैं जिनका घनत्व १·८४ है। इन्हें ११०°–१२०° तक गरम करनेसे अनार्द्र नीला हरिद मिलता है।

कोबल्ट हरिदके हलके घोलसे यदि कागज़ पर कुछ लिखा जाय तो सूखने पर अक्षर नहीं दिखाई देंगे पर यदि कागज़को कुछ गरम किया जाय तो चमकदार नीले रंगके अक्षर निकल आवेंगे। थोड़ी देर ठण्डा करने पर ये अक्षर फिर मिट जाते हैं और गरम करने पर फिर निकल आते हैं। इस प्रकार धोखा देनेकी रोशनाई (sympathetic ink) बनाई जा सकती है।

नकल हरिद, नह$_{२}$—यह भी कोबल्ट हरिदके समान बनाया जाता है। यदि नक़लम् चूर्णको तीव्र प्रकाशमें शुष्क हरिन्‌के साथ थोड़ासा गरम किया जाय तो नक़ल हरिदके पीले पत्र प्राप्त होते हैं। नक़ल ओषिद या कर्बनेतको उदहरिकाम्लमें घोल कर वाष्पीभूत करनेसे अनार्द्र नक़ल हरिद मिल जावेगा। नक़ल हरिदको वायुमें गरम करने से हरिन् निकल जाता है और नकल ओषिद बच रहता है। नक़ल हरिद जलमें घुलकर हरा घोल देता है। यह मद्यमें भी घुलनशील है। इसके रवोंमें ६ जलाणु होते हैं। अनार्द्र नक़ल हरिद साधारण तापक्रम पर ही अमोनिया शोषित कर लेता है। और बैंजनीपन लिया हुआ नह$_{२}$ ६ नो उ$_{३}$ का श्वेत पदार्थ मिलता है।

लोहस अरुणिद, लोरु$_{२}$—साधारणतः रक्ततप्त लोहे पर अरुणिन्‌की वाष्पें प्रवाहित करनेसे यह पीले रवोंके रूपमें मिलता है। लोहेको उदअरुणिकाम्लमें घोलने पर भी इसका घोल मिल सकता है जिसको वाष्पीभूत करनेसे लोरु$_{२}$, ६ उ$_{२}$ ओ के नील-हरे रवे प्राप्त होते हैं।

लोहिक अरुणिद, लोरु$_{३}$—अरुणिन्‌की अधिक मात्रामें लोहेको गरम करनेसे यह लाल रंगका मिलता है। वायुकी अनुपस्थितिमें गरम करने पर यह लोहस अरुणिद और अरुणिन्‌में विभाजित हो जाता है।

कोबल्ट अरुणिद, कोरु$_{२}$—रक्ततप्त कोबल्ट धातु पर अरुणिन्‌की वाष्पें प्रवाहित करनेसे कोबल्ट अरुणिद हरे रंगका प्राप्त होता है। कोबल्टम्, अरुणिन् और जलके संसर्गसे भी इसका घोल प्राप्त

होता है। इसको गन्धकाम्ल पर सुखाने से कोरु, $\cdot$ ६ उ₂ ओ के लाल रवे प्राप्त होते हैं।

नकल अरुणिद, न रु₂—नकलम् चूर्णको अरुणिन्में तप्त करनेसे यह सुनहरे रंगका प्राप्त होता है। अरुणिन्, नकलम् और जलके संसर्ग से जो घोल प्राप्त होता है उसको वाष्पीभूत करने से न रु₂, ३ उ₂ ओ के पसीजने वाले रवे प्राप्त होते हैं।

लोहस नैलिद, लो नै₂—लोह चूर्णको नैलिन्के साथ बन्द घरियामें गरम करनेसे यह बनता है। नैलिन् और लोह चूर्णको जलके संसर्गमें गरम करनेसे ताप जनित होता है और लोहस अरुणिद का घोल मिलता है। वायुमें खुला छोड़ने पर इस घोलका ओषदीकरण हो जाता है और नैलिन् पृथक् हो जाता है। कदाचित् लोहिक नैलिद नहीं पाया जाता है।

कोबल्ट नैलिद, को नै₂—कोबल्टम्को जल एवं नैलिन्के साथ गरम करने से ताप जनित होता है और कोबल्ट नैलिदका घोल मिलता है।

नकल नैलिद, न नै₂—यदि उदजन प्रवाहमें अवकृत नकलम् चूर्ण नैलिन्के साथ गरम किया जाय तो नकलनैलिद मिलता है। नकल उदौषिदमें उदनैलिकाम्ल घोलकर घोलको वाष्पीभूत करने से जो पदार्थ मिले उसे वायु की अनुपस्थितिमें शुद्ध करनेसे नकल नैलिदकी काली पपड़ी मिलेगी।

लोहेको उदप्लविकाम्लमें घोलनेसे लोहस प्लविद, लोप्ल₂, ८ उ₂ ओ, प्राप्त होता है और लोहिक उदौषिदको उदप्लविकाम्लमें घोलनेसे लोहिक प्लविद, २ लोप्ल₃ ९ उ₂ ओ, मिलता है। इसी प्रकार कोबल्ट ओषिद या कर्बनेत और उदप्लविकाम्लके संसर्गसे, कोबल्ट प्लविद, कोप्ल₂, २ उ₂ ओ मिलता है। इसी प्रकार नकल प्लविद, नप्ल₂ ३ उ₂ ओ भी बनाया जा सकता है।

गन्धिद और गन्धेत

लोहस गन्धिद—३ भाग लोह चूर्ण और २ भाग गन्धकके मिश्रणको रक्ततप्त घरियामें डाल देनेसे लोहस गन्धिदका काला चूर्ण मिलता है। लोहस लवणोंके घोलमें अमोनियम गन्धिदका घोल डालनेसे लोहस गन्धिदका काला अवक्षेप आता है। यदि लोहिक लवणोंके घोलमें अमोनियम गन्धिद डाला जाय तो लोहस गन्धिद और गन्धक का मिश्रण मिलता है :—

२ लोह₃ + ३ (नो उ₄)₂ ग

= २ लोग + ग + ६ नो उ₄ ह

लोहिक गन्धिद, लो₂ ग₃—यह भी लोहे और गन्धकको साथ साथ गरम करनेसे मिलता है। लोहिक ओषिद और उदजन गन्धिदके प्रवाहसे १००° श के नीचे ही यह मिल सकता है।

लोह चूर्ण, गन्धक और पांशुज कर्बनेतको गरम करनेसे पांशुज-लोहिक-गन्धिद, पां₂ लो₂ ग₄ बनता है। इसके घोलमें रजत नोषितका घोल डालने से रजत लोहिक गन्धिद, र₃ लो₂ ग₄ मिलेगा।

लोह द्विगन्धिद, लोग₂—यह लोह पाइरायटीज़के रूपमें प्रकृतिमें पाया जाता है। यह अत्यन्त कठोर पदार्थ है जिसका घनत्व ५.१८५ होता है।

कोबल्ट गन्धिद, को ग₄—किसी कोबल्ट लवण के घोलमें अमोनिया डालकर उदजन गन्धिद प्रवाहित करनेसे इसका काला अवक्षेप प्राप्त होगा जो अम्लोंमें घुलनशील है। हलके सिरकाम्लमें यह अनघुल है। इस गन्धिदमें गन्धक मिलाकर मिश्रणको उदजनके प्रवाहमें गरम करनेसे कई अन्य गन्धिद, को ग₂, को₂ ग₃, आदि मिलते हैं।

नकल गन्धिद, न ग—नकलम् और गन्धकके मिश्रणको गरम करनेसे यह पीले भङ्गनशील पदार्थके रूपमें मिलता है। नकलम्के किसी लवणके घोलमें अमोनियम गन्धिद डालनेसे या अमोनिया डाल कर उदजन गन्धिद प्रवाहित करनेसे इसका

काला अवक्षेप आता है। यह अवक्षेप उदहरिकाम्लमें तीव्रतासे घुलता है। यह अमोनियामें कुछ घुल जाता है। पीत अमोनियम गन्धिदमें भी घुल जाता है। नकृलम् लवणके घोलको सैन्धक गन्धको-गन्धेतके साथ गरम करनेसे भी नकल गन्धिदका काला अवक्षेप प्राप्त होता है।

लोहस गन्धित, लो ग ओ$_3$—गन्धकाम्लके जलीय घोलमें वायुकी अनुपस्थितिमें लोहेके चूर्णको डालनेसे कोई गैस नहीं निकलती है प्रत्युत लोहस गन्धित और लोहस गन्धको गन्धेतका मिश्रण मिलता है।

२ लो + ३ उ$_2$ ग ओ$_3$ = लो ग ओ$_3$ + लो ग$_2$ ओ$_3$ + ३ उ$_2$ ओ।

गन्धको गन्धेनतो बहुत घुलनशील है पर लोहस गन्धित कम घुलनशील है अतः थोड़ी देर रखने पर मिश्रणमें से गन्धित पृथक् हो जाता है। कोबल्टस गन्धित, को ग ओ$_3$ ५ उ$_2$ ओ पीला रवेदार पदार्थ है।

लोहस गन्धेत, लो ग ओ$_4$ ७ उ$_2$ ओ—इसे हरा कसीस भी कहते हैं। लोहेको गन्धकाम्लमें घोलनेसे यह मिल सकता है। ताम्र—पाइरायटीज़, ता लो ग$_2$, में ताम्रम् और लोहम् दोनों होता है। इन पाइराइटाज़को वायुमें भूँजनेसे ताम्रगन्धेत बनाया जाता है। इसके साथ साथ कुछ लोहस गन्धेत या लोहओषिद भी बन जाता है। इस प्रकार तूतिया (ताम्र गन्धेत) के बनानेकी विधिमें लोहस गन्धेत भी उपद्रव्य (by-product) के रूपमें बन जाता है। इसके हरे रवोंमें स्फटिकीकरणके सात जलाणु होते हैं। हवामें रखा रखा सूख कर यह सफ़ेद हो जाता है। लोहस गन्धेत तीव्रगन्धकाम्ल, और निरपेक्ष मद्यमें अनघुल है।

लोहस गन्धेत अन्य धातुओंके गन्धेतोंके साथ द्विगुण लवण देता है। लोहस अमोनियम गन्धेत, लो ग ओ$_4$, (नो उ$_4$)$_2$ ग ओ$_4$ ६ उ$_2$ ओ, इनमें बड़ा प्रसिद्ध है। अमोनियम गन्धेत और लोहस गन्धेत की उपयुक्त मात्रायें न्यूनतम गरम जल में घोली जाती हैं, और घोलका स्फटिकीकरण किया जाता है। इस प्रकार लोहस अमोनियम गन्धेत मिल जाता है जिसके रवोंका नील-हरित् रंग होता है। ३०°श तापक्रम पर यह १०० भाग जलमें २८ भाग घुलनशील है।

लोहिक गन्धेत लो$_2$ (ग ओ$_4$)$_3$—लोहस गन्धेनके घोलमें गन्धकाम्लकी उपयुक्त मात्रा डालकर नोषिकाम्लके साथ गरम करनेसे लोहिक गन्धेनका पीत भूरा घोल प्राप्त होगा जिसका स्फटिकीकरण करनेसे लोहिक गन्धेतके नीरंग रवे प्राप्त होते हैं :—

६ लो ग ओ$_4$ + ३ उ$_2$ ग ओ$_4$ + २ उ नो ओ$_3$
= ३ लो$_2$ (ग ओ$_4$)$_3$ + २ नो ओ + ४ उ$_2$ ओ

इसको गरम करनेसे या तीव्र घोलमें तीव्र गन्धकाम्लके डालनेसे श्वेत अनार्द्र लोहिक गन्धेत मिलता है। लोहस गन्धेत और गन्धकाम्लके मिश्रणको उबालने से भी लोहिक गन्धेत बनता है :—

२ लो ग ओ$_4$ + २ उ$_2$ ग ओ$_4$
= लो$_2$ (ग ओ$_4$)$_3$ + ग ओ$_2$ + २ उ$_2$ ओ

लोह फिटकरी या लोहिक पांशुज गन्धेत—लोहिक गन्धेत और पांशुज गन्धेनकी उपयुक्त मात्रा लेकर गाढ़ा घोल बनानेसे लोह फिटकरी मिलती है। घोलका स्फटिकीकरण ०°श पर कई दिनों तक करना चाहिये। इसके घुलनशील अष्टतलीय बैंजनी रवे होते हैं। इसका सूत्र यह है :—

लो$_2$ (ग ओ$_4$)$_3$ पां$_2$ ग ओ$_4$, २४ उ$_2$ ओ

कोबल्टस गन्धेत, को ग ओ$_4$, ७ उ$_2$ ओ—इसे लोहस गन्धेतके समान समझना चाहिये। कोबल्ट ओषिद या कर्बनेतको हलके गन्धकाम्लमें घोलनेसे यह मिल सकता है। उसका घनत्व १.९२४ है और २०° श पर १०० भाग जलमें ३६.४ भाग घुलनशील है।

कोबल्टिक गन्धेत, $को_2 (ग ओ_4)_3 १८उ_2 ओ$—कोबल्टस गन्धेतके अम्लीय घोलको ठंडाकर विशेष बाटरियोंमें विद्युत् विश्लेषण करनेसे यह मिलता है। जलमें घुलकर यह नीला घोल देता है। जो अस्थायी है और इसमेंसे शीघ्रही ओषजन निकल जाता है।

कोबल्टस गन्धेतके अम्लीय घोलमें अमोनियम गन्धेत डालकर धीमी विद्युत् धारा प्रवाहित करनेसे कोबल्टिक-अमोनियम फिटकरी, ($नो उ_4)_2 ग ओ_4$-$को_2 (ग ओ_4)_3 २४ उ_2 ओ$, प्राप्त होती है।

नकल गन्धेत, $न ग ओ_4$—नक़लम्, या नक़ल ओषिद अथवा कर्बनेतको हलके गन्धकाम्लमें घोलनेसे यह मिल सकता है। इसके नील हरे रवे होते हैं। अनार्द्र नक़लगन्धेत अमोनिया शोषित कर सकता है और $न ग ओ_4 ६ नो उ_3$ का बैंजनी श्वेत यौगिक प्राप्त होता है।

नकल अमोनियम गन्धेत—$(नो उ_4)_2 ग ओ_4 न ग ओ_4 ६ उ_2 ओ$—नक़लम्को गन्धकाम्लमें घोल कर गाढ़े घोलमें अमोनियम गन्धेत डालनेसे यह बन जाता है। नक़लम्की कलई चढ़ानेमें इसका उपयोग होता है।

नोषिद, नोषित और नोषेत

लोह नोषिद, $लो_2 नो$—तप्त लोहस या लोहिक हरिद पर शुष्क अमोनिया प्रवाहित करनेसे यह बनता है। यह भञ्जनशील, चांदीके समान श्वेत पदार्थ है। यह चाकूसे काटा जा सकता है। इसमें चुम्बकीय गुण होते हैं।

पांशुज कोबल्टी नोषित—$२ पां_3 को (नो ओ_2)_6 ३उ_2ओ$—यद्यपि न तो कोबल्टस नोषित पाया जाता है, न कोबल्टिक नोषित, पर पांशुज कोबल्टी नोषित नामक एक यौगिक पाया जाता है। इस यौगिकमें सामान्य नोषितोंके अधिकांश गुण नहीं पाये जाते हैं। सिरकाम्लसे अम्लित कोबल्टस लवणके घोलमें पांशुज नोषितका घोल डालनेसे पीला अवक्षेप प्राप्त होता है जो पांशुज कोबल्टी नोषित है :—

$$को ह_2 + ५ पां नो ओ_2 + २ उ नो ओ_2$$
$$= २ पां_3 को (नो ओ_2)_6 + २ पां ह + नो ओ + उ_2 ओ$$

यह जलमें कुछ घुलनशील है।

नकल नोषित, $न (नो ओ_2)_2$—नकल गन्धेतको भार नोषितसे प्रभावित करनेसे यह बनता है। यह स्थाई यौगिक है। पांशुज लवणके साथ एक द्विगुण लवण, $४ पां नो ओ_2 + न (नो ओ_2)_2$, प्राप्त होता है।

लोहस नोषेत, $लो (नो ओ_3)_2 - ६उ_2 ओ$—लोहस गन्धेतके घोलमें भार-नोषेतका घोलडालनेसे अनघुल भार गन्धेत एवं घुलनशील लोहस नोषेत बनता है। छन्य द्रवको शून्यमें गन्धकाम्लके ऊपर सुखाकर इसके रवे प्राप्त हो सकते हैं। यह अस्थायी पदार्थ है।

लोहिक नोषेत—$लो (नो ओ_3)_3$—लोहेको नोषिकाम्लमें घोलनेसे यह बनता है। इसके रवे शीघ्र पसीजने लगते हैं। पानीमें घुलकर यह भूरा घोल देते हैं पर यदि घोलमें तीव्र नोषिकाम्ल डाल दिया जाय तो घोल नीरंग हो जाता है।

कोबल्ट नोषेत—$को (नो ओ_3)_2 ३ उ_2 ओ$—कोबल्ट कर्बनेतको नोषिकाम्लमें घोलनेसे यह प्राप्त होता है। इसको गरम करनेसे ओषिद प्राप्त होते हैं।

नकल नोषेत, $न (नो ओ_3)_2$—यह भी कोबल्ट नोषेतके समान बनाया जा सकता है। यह हरा घुलनशील पदार्थ है।

कर्बनेत

लोहस कर्बनेत, $लो क ओ_3$—यह खनिज रूपमें पाया जाता है। लोहस गन्धेतके घोलमें सैन्धक कर्बनेतका घोल डालनेसे लोहस कर्बनेतका श्वेत अवक्षेप मिलता है। यह शीघ्र ही ओषजन ग्रहण करके मटमैला हरा हो जाता है।

कोबल्ट कर्बनेत, को क ओ$_3$—कोबल्ट हरिद और सैन्धक अर्ध कर्बनेतके घोलको १४०° तक गरम करनेसे यह मिलता है।

नकल कर्बनेत, न क ओ$_3$—नकल हरिदके घोलको खटिक कर्बनेतके साथ १५०° तक गरम करनेसे यह मिलता है।

अन्य यौगिक

लोहस स्फुरेत, लो$_3$ (स्फु ओ$_4$)$_2$ ८ उ$_2$ ओ—लोहस गन्धेतको सैन्धक स्फुरेतमें अवक्षेपित करने पर यह मिलता है। यह अवक्षेप श्वेत होता है।

लोहिक स्फुरेत, लो स्फुओ$_4$, २ उ$_2$ ओ—लोहिक हरिदके घोलमें सैन्धक स्फुरेतका घोल डालनेसे इसका पीत श्वेत अवक्षेप प्राप्त होता है। सैन्धक स्फुरेतके स्थानमें सैन्धक संक्षीणेत डालनेसे लोहिक संक्षीणेतका पीला अवक्षेप मिलता है। ये अवक्षेप उदहरिकाम्ल तथा लोहिक हरिदकी अधिक मात्रामें घुलनशील हैं। कोबल्ट हरिदके घोलसे भी स्फुरेत और संक्षीणेत प्राप्त हो सकते हैं।

नकल कर्बनील—न (क ओ)$_4$—इसका उल्लेख नकलम् धातुकी मौण्ड विधिका उल्लेख करते समय किया जा चुका है। ३५०°—४००°श तापक्रम पर उदजन द्वारा अवकृत नकलम् धातु पर ठंडा करके कर्बन एकौषद प्रवाहित करनेसे यह प्राप्त हो सकता है। यह नीरंग द्रव है जिसका क्वथनांक ४३° है। —२५°श पर यह ठोस हो जाता है। १७°श तापक्रम पर इसका घनत्व १·३१८। है। १८०°श तक गरम की हुई नलीमें प्रवाहित करनेसे इसका विभाजन हो जाता है और नकलम् धातु प्राप्त हो जाती है—

न (क ओ)$_4$ = न + ४ क ओ
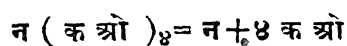
यह द्रव मद्य, बानजावीन और हरोपिपीलमें घुलनशील है।

श्यामजन यौगिक

रजतम् और स्वर्णम्का वर्णन करते समय कहा गया था कि यदि इनके घुलनशील लवणोंमें पांशुज श्यामिदका घोल डाला जाय तो पहले रजतश्यामिद या स्वर्ण श्यामिदका अवक्षेप आवेगा। पर यदि इस अवक्षेपमें पांशुज श्यामिदकी और अधिक मात्रा डाली जावे तो यह अवक्षेप घुल जाता है और घोलको वाष्पीभूत करने पर संकीर्ण यौगिक (complex compound) पां र (क नो)$_2$ और पां स्व (क नो)$_2$ बनते हैं। इसी प्रकारके संकीर्ण यौगिक ताम्रम्, लोहम् और कोबल्टम्के भी पाये जाते हैं।

पांशुज लोहोश्यामिद पां$_4$ लो (क नो)$_6$—यदि लोहस गन्धेतके घोलमें पांशुज श्यामिदका घोल डाला जाय तो पहले लोहस श्यामिद, लो (क नो)$_2$ का अवक्षेप आवेगा। इसमें और अधिक पांशुज श्यामिद डालनेसे यह अवक्षेप घुल जावेगा और घोलमें पांशुज लोहो श्यामिद बन जावेगा।

लो (क नो)$_2$ + ४ पां क नो
= पां$_4$ लो (न को)$_6$
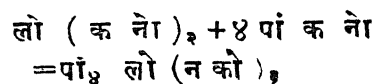
घोलको वाष्पीभूत करनेसे पांशुज लोहो श्यामिदके पीत श्वेत रवे प्राप्त होंगे।

पहले इसकी व्यापारिक विधि पांशुज कर्बनेत को लोहेके गोलार्धमें अनेक कार्बनिक पदार्थोंसे जैसे बाल, सींग, पंख, रुधिर, चमड़ा इत्यादि मिश्रित करके गरम करते थे। इस गोलार्धके मुँह पर एक छोटा सा छेद रहता था जिसमें होकर लोह चूर्ण डालते थे। कार्बनिक पदार्थों का कर्बन और नोषजन ग्रहण करके पांशुज कर्बनेत पांशुज श्यामिदमें परिणत हो जाता था। उपयुक्त कार्बनिक पदार्थोंमें थोड़ासा गन्धक भी होता था जिससे लोहा लोह गन्धिदमें परिणत हो जाता है। निम्न समीकरणके अनुसार सम्भवतः लोह गन्धिद और पांशुज श्यामिद द्वारा पांशुज लोहो श्यामिद बन जाता है :—

१३ पांक नो + लो$_{२}$ग$_{३}$

= २ पां$_{४}$ लो (कनो $_{६}$ + २पां$_{२}$ग + पांक नोग

आजकल व्यापारिक विधिमें कोलगैससे पांशुज लोहो श्यामिद बनाते हैं। साधारण कोल-गैसमें उदश्यामिकाम्लकी थोड़ी सी वाष्प मिली रहती है। इन्हें पांशुज क्षारके घोलमें शोषित करते हैं। घोलमें थोड़ा सा लोहस उदौषिद भी छितरा देते हैं। इस प्रकार पांशुजक्षार और उदश्यामिकाम्ल के संसर्गसे पांशुज श्यामिद बनता है जो लोहस उदौषिदके साथ पांशुज लोहो श्यामिद दे देता है।

पांशुज लोहो श्यामिदके रवोंमें स्फटिकीकरणके तीन जलाणु होते हैं। इस लोहो श्यामिदके अति-रिक्त अन्य लोहो श्यामिद भी बनाये गये हैं जैसे :—

सैन्धक लोहोश्यामिद—सै$_{४}$ लो (क नो $_{६}$

अमोनियम लोहो श्यामिद—(नो उ$_{४}$)$_{४}$ लो (क नो)$_{६}$ [३ उ$_{२}$ओ]

खटिक लोहो श्यामिद—ख$_{२}$ लो (क नो)$_{६}$ [१२ उ$_{२}$ओ]

पांशुज खटिक लोहो श्यामिद—पां$_{२}$ ख लो (क नो)$_{६}$ [३ उ$_{२}$ ओ]

लोहो श्यामिकाम्ल, उ$_{४}$ लो (क नो)$_{६}$—पांशुज श्यामिदके ठंडे संपृक्त घोलमें शुद्ध उदहरिकाम्ल डालनेसे लोहो श्यामिकाम्लका अवक्षेप आता है। यह श्वेत चूर्ण है जिसके सूच्याकार रवे बन सकते हैं। हवामें रखनेसे इसका ओषदीकरण हो जाता है और उदश्यामिकाम्ल तथा लोहिक लोहो श्यामिद बन जाता है।

७ उ$_{४}$ लो (क नो)$_{६}$ + ओ$_{२}$

= २४ उ क नो + लो$_{७}$ (क नो)$_{१८}$ + २ उ$_{२}$ ओ

पांशुज लोही श्यामिद—पां$_{३}$ लो (क नो)$_{६}$—पांशुज लोहो श्यामिदका लोहो श्यामिद मूल—[लो (क नो)$_{६}$] iv चतुशक्तिक पर पांशुज लोही श्यामिदमें लोही श्यामिद मूल—[लो (क नो)$_{६}$]iii त्रिशक्तिक है। पांशुज लोहो श्यामिदके घोलमें हरिन् गैस प्रवाहित करनेसे लोहो श्यामिदका ओषदीकरण हो जाता है और पांशुज लोही श्यामिद बन जाता है।

२ पां$_{४}$ लो (क नो)$_{६}$ + ह$_{२}$

= पां$_{३}$ लो (क नो)$_{६}$ + २ पां ह

प्रक्रियामें जनित पांशुज हरिदसे यह स्फटिकी-करण द्वारा पृथक् कर लिया जाता है। इसके बड़े बड़े लाल रवे होते हैं। यह पानीमें घुलकर पीत भूरा रंग देता है पर हलके घोलका रंग नीबूके समान पीला होता है। इसमें प्रबल ओषदकारक गुण होते हैं। क्षारीय घोलोंमें यह गुण और प्रबल हो जाता है। राग एकाध ओषिदको दाहक पांशुज क्षारके घोलमें पांशुज रागेतमें परिणत कर देता है :—

रा$_{२}$ ओ$_{३}$ + ६ पां$_{२}$ लो (क नो)$_{६}$ + १० पां ओ उ

= ६ पां$_{४}$ लो (क नो)$_{६}$ + २ पां$_{२}$ रा ओ$_{४}$ + ५ उ$_{२}$ ओ

समस्त लोहम लवण जैसे लोहस गन्धेत पांशुज लोही श्यामिदके साथ नीला रंग देते हैं पर सब लोहिक लवण पांशुज लोहो श्यामिदके साथ नीला रंग देते हैं। प्रक्रियामें लोहो लोहिक श्यामिद बनता है।

(१) पां$_{३}$ लो (क नो)$_{६}$ + लो ग ओ$_{४}$

= पां लो [लो (क नो)$_{६}$] + पां$_{२}$ ग ओ$_{४}$

(२) पां$_{४}$ लो (क नो)$_{६}$ + लो ह$_{२}$

= लो पां [लो (क नो)$_{६}$] + ३ पां ह

इस प्रकार दोनों अवस्थाओं पांशुज लोहिक लोहो श्यामिद नामक यौगिक बनता है। संगठनके हिसाब से पहले समीकरण द्वारा प्राप्त यौगिकको पांशुज लोहो लोहिक श्यामिद और दूसरे समीकरण द्वारा प्राप्त यौगिकको पांशुज लोहिक लोहो श्यामिद कहना चाहिये। पर वास्तवमें दोनों यौगिक एक ही हैं। दोनोंके रूपको चित्र द्वारा इस प्रकार

समझाया जा सकता है। पांशुज लोहो श्यामिदमें लोहम् द्विशक्तिक है और पांशुज लोहो श्यामिदमें यह एक शक्तिक है—

यदि लोहिक हरिद्की अधिक मात्रा विद्यमान हो तो अनघुल प्रशियन नील (prussian blue) नामक पदार्थ मिलता है—
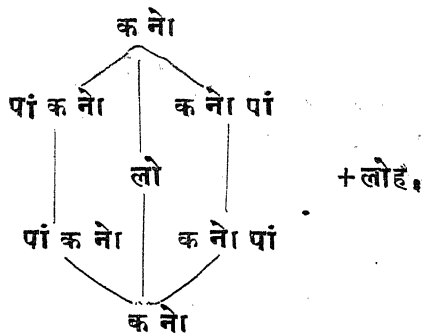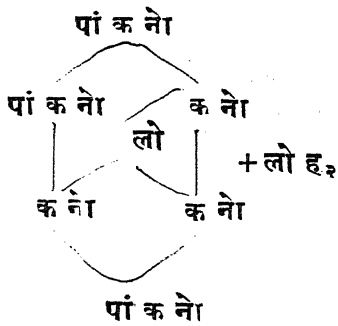
लो ह$_3$ + ३ लो पां लो (क नो)$_6$ = ३ पां ह + लो$_4$ [लो (क नो)$_6$]$_3$ प्रशियननील

पांशुज लोहो श्यामिदके समान सैन्धक लोहो श्यामिद, सै$_4$ लो (क नो)$_6$ भी बनाया गया है।

सैन्धक नोषो प्रूशिद—सै$_2$ लो (न ओ) (क नो)$_5$—पांशुज लोहो श्यामिदको ५० प्रतिशत नोषिकाम्लके साथ गरम करनेसे भूरा घोल प्राप्त होता है। थोड़ी देर गरम करनेके बाद जब घोल लोहस गन्धेतसे स्लेटके रंगका अवक्षेप देने लगे, द्रवको ठंडा करते हैं। प्रक्रियामें जनित पांशुज नोषेतके रवे पृथक् करलेते हैं। तत्पश्चात् घोलको सैन्धक कर्बनेतसे शिथिल करते हैं। छने हुए घोलको वाष्पीभूत करने से लाल रवे सैन्धक नोषो प्रूषिद के प्राप्त होते हैं। इसे सैन्धक लोही श्यामिद समझना चाहिये जिसका एक सैन्धक श्यामिद, सैकनो, मूल नोषोसो मूल, नो ओ से स्थापित हो गया है।
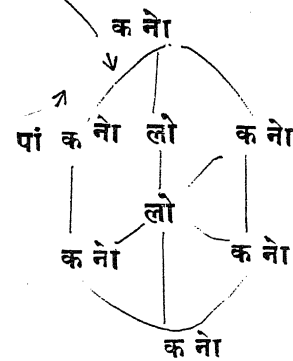
पांशुज कोबल्टो श्यामिद—पां$_4$ को (क नो)$_6$—किसी कोबल्ट-लवणके घोलमें पांशुज श्यामिदका घोल डालनेसे भूरा—श्वेत अवक्षेप आता है। पांशुज श्यामिद्की अधिक मात्रा डालनेसे यह अवक्षेप घुल जाता है। घोलमें मद्य डालनेसे

पांशुज कोबल्टो श्यामिद अवक्षेपित किया जा सकता है। यदि इसके घोलमें थोड़ासा सिरकाम्ल या उदहरिकाम्ल डाल कर किसी प्यालीमें उबाला जाय तो इसका ओषदीकरण हो जाता है। इस प्रकार पांशुज कोबल्टी श्यामिद पां₃ को (क नो)₆ बन जाता है।

$$२\ पां_४\ को\ (क\ नो)_६ + उ_२\ ओ + ओ = २\ पां_३\ को\ (क\ नो)_६ + २\ पां\ ओ\ उ$$
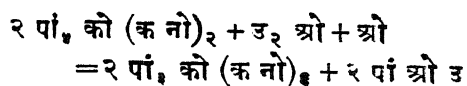
कोबल्टी श्यामिदके पीले स्थायी रवे होते हैं जो पांशुज लोहो श्यामिदके समरूपी हैं। इसमें ताम्रगन्धेत डालनेसे ताम्रकोबल्टी श्यामिद, ता₃ [को (क नो)₆]₂ का नीला अवक्षेप तथा रजत नोषेत डालनेसे रजतकोबल्टी श्यामिदका श्वेत अवक्षेप आता है। इसमें उदजन गन्धिद प्रवाहित करनेसे रवेदार कोबल्टीश्यामिकाम्ल, उ₃ को (क नो)₆ मिल जावेगा।

पांशुज कोबल्टी नोषित – पां₃ को (नो ओ₂)₆— कोबल्टस गन्धेतके घोलको सिरकाम्लसे अम्लित करके पांशुज नोषित डालनेसे पांशुज कोबल्टी नोषित का पीला अवक्षेप प्राप्त होता है जो जलमें थोड़ा सा घुलनशील है।

पांशुज नकल-श्यामिद—लोहम् और कोबल्टम्की अपेक्षा नकलम्का प्रवृत्ति संकीर्ण यौगिक बनानेकी बहुत ही कम है। नकलम् लवणके घोलमें पांशुज श्यामिद डालनेसे लाल रंगका एक द्विगुण लवण बनता है जो अम्लों द्वारा शीघ्र विभाजित हो जाता है। इसका सूत्र न (क नो)₂.२ पां क नो अथवा पां₂ न (क नो)₄ माना जा सकता है। पांशुज नोषित के साथ भी एक द्विगुण लवण न (नो ओ₂)₂, ४ पां-नो ओ₂ बनता है।

नकलम्के किसी लवणमें अमोनिया डाल कर द्विदारीलमधुओषिम (Dimethyl glyoxime) का घोल डालनेसे लाल रंग या अवक्षेप आता है। इस विधिसे सूक्ष्मसे सूक्ष्म नकलम्की मात्राकी पहिचानकी जा सकती है।

कोबल्टामिन (cobaltammines)

कोबल्टम्के लवण अमोनियाके संसर्गसे भिन्न भिन्न परिस्थितियोंमें अनेक प्रकारके संकीर्ण यौगिक देते हैं जिन्हें कोबल्टामिन कहा जाता है। ऐसे यौगिक ताम्रम्, रजतम्, परोप्यम आदि तत्वों के भी पाये जाते हैं। ताम्र गन्धेतके घोलमें अमोनिया डालने पर पहले तो ताम्र उदौषिदका अवक्षेप आता है पर और अधिक अमोनिया डालनेसे यह अवक्षेप घुल जाता है और चटकीला नीला घोल प्राप्त होता है जिसमें मद्य डालनेसे ताम्र-अमोनियम-गन्धेत, ता ग ओ₄, ४ नो उ₃ उ₂ ओ के रवे प्राप्त होते हैं। इस प्रकार ताम्र अमोनियम हरिद ता ह₂ ४ नो उ₃ उ₂ ओ भी पाया जाता है। रजतहरिदका अवक्षेप अमोनिया डालनेसे घुल जाता है और घोलमें रजत अमोनियम हरिद, र नो उ₃ ह बन जाता है।

कोबल्टम् अमोनियाके साथ अनेक प्रकारके यौगिक देता है जिनमें निम्न मुख्य हैं। इन यौगिकों को कोबल्टामिन कहते हैं।

पीत कोबल्टिक हरिद (luteocobaltic chloride) (नो उ₃)₆ को ह₃ – कोबल्टस हरिदके घोलमें अमोनियम हरिद और अमोनिया डालकर वायुमें खुला छोड़ने पर या अरुणन् अथवा सीस पर्औषद से प्रभावित करनेसे इसके लाली लिये हुए पीले रवे प्राप्त होते हैं।

गुलाबी कोबल्टिक हरिद (roseo cobaltic chloride) – उ₂ ओ (नो उ₃)₅ को ह₃, यदि कोबल्टस हरिदमें केवल अमोनिया छोड़ा जाय, और घोलको उदहरिकाम्ल द्वारा अवक्षेपित किया जाय तो गुलाबी-कोबल्टिक हरिद मिलेगा।

लाल-कोबल्टिक हरिद (purpureo cobaltic chloride) – (नो उ₃)₅ को ह₃ – गुलाबी कोबल्टिक हरिदके अम्लीय घोलको उबाला जाय

तो लाल रंगका अवक्षेप आता है जो लाल कोबल्टिक हरिद्का है।

इस यौगिक पर नोषकाम्लका प्रभाव डालनेमें कोबल्टिक हरिद्के कुछ हरिन् नोषो मूलों—नो ओ₂—से स्थापित हो जाते हैं और निम्न दो यौगिक बनते हैं।

केशर कोबल्टिक हरिद्—Croceo cobaltic chloride—(नो उ₃)₄ को ह₂ नो ओ₂

पलाश कोबल्टिक हरिद्—Xantho cobaltic chloride—(नो उ₃)₄ कोह (नो ओ₂)₂

इनके अतिरिक्त अन्य बहुतसे कोबल्टामिन हैं :—

१. षष्ठामिन कोबल्टिक हरिद्—

[को (नो उ₃)₆] ह₃

जलो पंचामिन कोबल्टिक हरिद्—

[उ₂ ओ को (नो उ₃)₅] ह₃

त्रिजलो पंचामिन कोबल्टिक हरिद्—

[(उ₂ ओ)₃ को (नो उ₃)₃] ह₃

इन यौगिकोंमें धनमूल त्रिशक्तिक है और कोबल्ट सदा ६ मूलोंसे संयुक्त है।

२. हरो पंचामिन कोबल्टिक हरिद्—

[ह. को (नो उ₃)₅] ह₂

हरो जलो चतुरामिन कोबल्टिक हरिद्—

[ह, उ₂ ओ, को (नो उ₃)₄] ह₂

हरो त्रिजलो द्वि-अमिन कोबल्टिक हरिद्—

[ह, (उ₂ ओ)₃ को (नो उ₃)₂] ह₂

इन यौगिकमें धनमूल द्विशक्तिक है।

३. १.६ द्विहरो चतुरामिन कोबल्टिक लवण
१.२ ... ...

(पीत) (नील) } [ह₂ को (नो उ₃)₄] ह

इनमें धनमूल एक शक्तिक है।

४. १.२.४ त्रिनोषो त्रिअमिन कोबल्टम् }
१.२.३ ... ... }

[(नो ओ₂)₃ को (नो उ₃)₃]

इनमें धनमूल अशक्तिक है।

इन यौगिकोंके विषयमें वर्नरका सिद्धान्त महत्वका माना जाता है।

चिकित्सा शास्त्रकी रासायनिक उन्नति

[ले० श्री जटाशंकर मिश्र एम. एस-सी]

प्रारम्भिक काल

ज्ञानके सभी विभाग एक दूसरे पर निर्भर हैं और उनकी उन्नति साथ ही साथ होगी। मनुष्यका शरीर रासायनिक और भौतिक प्रहेलिका है और रोगों पर विजय प्राप्त करनेके पहिले इन विद्याओंकी वृद्धि होना परमावश्यक है।

—राउलैन्ड

चिरकालसे ही मनुष्यमें दूसरोंके दुख दर्द को मिटानेकी उत्कट इच्छा रही है। इसी भावना ने उसे दवाइयोंकी खोज करनेको प्रेरित किया है। रणक्षेत्रके घावोंने पहिले पहिल इस कौशलकी सहायता मांगी। पुरातन जङ्गली लोगोंको बड़े ही विषैले वाण बनानेकी वस्तुएं जैसे क्यूरेर (curare) ओवाबेन (ovabain) वेराट्रिन (veratrin) और उनकी औषधियां अफ़ीम, पटुआ, सिंकोना यूकेलिप्टस इत्यादि मालूम थीं।

नशीली चीज़ें बहुत पुराने समयसे बेहोशी पैदा करनेके काममें लाई जाती रही हैं ......

खुदाने आदमको बड़ी गहरी नींदमें डाल दिया, वे सो गये। खुदाने उनकी एक पसलीकी हड्डी

निकाली और चमड़ी फिर बन्द कर दी। धुँआ, मधु, शोरा, मदिरा इत्यादि प्राकृतिक पदार्थ कीटाणुनाशक के काममें लाये जाते थे।

साहित्यमें ओडिसीको आराम देने वाला मिश्री रस (Egyptian nepenthe), अरेबियन नाइटकी भंग, शेक्सपीयरका निद्रोत्पादक रस (drowsy syrups), भारतकी अफ़ीम और पटुआ इत्यादिका वर्णन (orientals) पूर्वी और यूनानी लोगोंके चातुर्य्यका प्रमाण है। कहा जाता है कि मिश्र देश वासियोंने ही पहिले पहल चिकित्सा शास्त्रको रचा। अत्तारी की भी उन्हीं लोगोंने नींव डाली और द्रव-लेप, (liniments) बलकारक शर्बत (tonic potions) अर्धठोस लेप (plaster) घुट्टी (laxatives) और अनीमा का (पिचकारी) का प्रयोग आरंभ किया। आंजनम् और हंसका चर्बीका महीन मिश्रण आंखके अंजन काममें आता था। घावकी मरहम पट्टी करनेके निमित्त सभी पुराने लोगोंकी भांति वे लोग भी तैल, मदिरा और शोषक मरहमका सेवन करते थे। वास्तवमें रसायन शास्त्रकी जन्म भूमि वे ही मिश्र देशके मन्दिर हैं जिनमें पुजारी लोग दवा बनानेके लिये साधारण यौगिकों पर प्रयोग किया करते थे।

भारतवर्षका निदान-शास्त्र भी बड़ा विस्तृत था। सुश्रुतमें सात सौ सात रोगहरी पौदोंका वर्णन है जिनमें जटामासी, दारचीनी, मिर्च, इलायची, मसाले, शक्कर इत्यादि यहां होकी पैदा होनेवाली वस्तुएं हैं। विषैली वस्तुओं और विशेष कर साँप इत्यादि विषैले जीवोंके डंक पर अधिक ध्यान दिया जाता था। बहुत सी औषधियां पशु-उत्पादित वस्तुओंमें से भी ली जाती थीं—हाथीका दांत leucorrhoea के लिये, दूध ताक़त बढ़ानेके लिये, (गरल) सांपका विष जलन्धरके लिये, सांपकी छोड़ी हुई केचुल कीट नाशके निमित्त, मधु घुट्टीके काममें, (मेदस्) लकड़बग्घाकी चरबी गांठके दर्दके लिये, (पुच्छ) मोरका पंख हिचकीके लिये। हिन्दू लोग अनेकों खनिज-पदार्थ भी औषधिके काममें लाते थे। इनके पांच प्रधान विभाग हैं। धातु, रस, लवण, बहुमूल्य रत्न और पिण्डोल। धातुका प्रयोग करनेके पूर्व उसे बहुत रीतियोंसे शुद्ध करके औषदीकृत कर लेते थे। ऐसा माना जाता था कि सोनेका भस्म लगभग सभी रोगोंको अच्छा कर देता। है। परन्तु क्षीण स्मृति, स्वर, शरीरका वर्ण और साधारण दुर्बलता इत्यादिके लिये विशेष करके गुणकारक है। चांदीका भस्म स्थूलता इत्यादि रोगोंमें अधिकतर सेवन किया जाता था। तांबेका भस्म कलेजे और तिल्लीकी अनावश्यक वृद्धि, गठिया और वात रोगके लिये; वंगमका भस्म पांडु रोगके लिये; सीसेका भस्म पुरानी संग्रहणीके लिये; जस्ताभस्म नसउपकारकके काममें; और लोहेका भस्म पैदायशी अथवा क्षया ज्वर, जलन्धर और मस्तिष्कके रोगोंके लिये प्रयोग किया जाता था। परन्तु सब धातुओंमें पारा सबसे श्रेष्ठ माना जाता था क्योंकि यह कोढ़ जैसे हठी रोगोंका भी अच्छा कर सकता था।

वैद्य-राज नागार्जुनका यह कथन था कि इसमें आयुवृद्धिकी भी शक्ति है। सभी औषधियोंमें यह अद्वितीय समझा जाता था। उड़नशील वस्तु होनेके कारण इसको शुद्ध करने व 'मारने' में बड़ी बड़ी आपत्तियां उपस्थित हुईं; परन्तु इन पर विजय प्राप्त करनेके लिये बड़े ही निपुण यंत्र निकाले गये थे जड़ी बूटियों और धातुओंके मिश्रणसे अनेक कार्बनिक यौगिक भी बनाये गये थे। हीरा, पद्म राग, नील, गरुतमत, मौक्तिका इत्यादि बहुमूल्य रत्न औषधिके काममें लाये जाते थे। पिण्डालमें खटिक कर्बनेत, करद (स्फटमका उदित शैलेत) गोरोचन्दन (स्फट शैलेत) का प्रायः उपयोग किया जाता था। हिन्दु-चिकित्साके प्रधान लवण नौसादर (अमोनियम हरिद), सैन्धव (सैन्धक हरिद)

पांशुज क्षार, (पांशुज कर्बनेत) यवक्षार (सैन्धकक्षार) और सूर्यक्षार हैं। जगन (ताम्र उपसिरकेत) मंडूर (लोह ओषिद) पाषाणभेद (लोह-खटिक कर्बनेत) पराग-पुष्प(दस्त ओषिद), रससिन्दूर (पारद गन्धिद) रसकर्पूर (पारद हरिद) शंखविष (संक्षीणसाम्ल) इत्यादिका भी सेवन होता था। इतनी वस्तुओंके उपयोगी प्रयोग और इतने भस्मों और रसोंकी तैयारी इस बातका स्पष्ट प्रमाण है कि इन यौगिकोंको रसायनिक विद्याका ज्ञान हिन्दुओंको अवश्य था। इन सब औषधियोंके गुणों और शरीरमें उनके रसायनिक परिवर्तनका विस्तार-पूर्वक वर्णन करते हुए पूर्वजोंने यह साफ साफ दर्शा दिया है कि उन यौगिकोंकी सृष्टिमें गगन समीर, पावक, जल और क्षिति इन पंचतत्वोंमें से किसका प्रधानता है।

यूनानी लोगोंकी अपनी और ही संस्थिति थी। हिप्पोक्रेटिज़ने अपने संग्रहमें अनेक बातोंके अतिरिक्त दलदलदार स्थानोंसे निकली हुई वायु द्वारा उत्पन्न होने वाले रोगों और समुद्र-जल और सिरके की सड़न-विरोधक गुणोंकी चर्चाकी है। भोजन-विज्ञानका उस समय बड़ा ज़ोर था परन्तु उनके पश्चात् इस विद्याका प्रभाव घट गया। प्राचीन-कालमें फिर इसकी ओर विटेमिनके रूपमें ध्यान आकर्षित हुआ है। इफीसस निवासी रयूफसने यूनान और रोमके निदान-शास्त्र (Graeco-Roman materia medica) में बहुतसे नये यौगिक बढ़ाये जिनमेंसे एक हियरा (Hiera) नामक रेचक पदार्थ है। बाइज़ैण्टाइनकालमें गैलेनने चिकित्सा विज्ञानको थोड़ा सुधारना आरंभ किया, नहीं तो यह केवल कल्पनाके क्षेत्रमें बढ़ता चला जा रहा था। उन्होंने अपने नुसख़ोंमें अफ़ीम (hioscyamu) नौसादर, तारपीन, मदिरा, मधु, अँगूर, रस, जईजन इत्यादि का बड़ी बुद्धिमतासे प्रयोग किया है। इन्होंने तीन प्रकृतिओं (कफ़, पित्त, वायु) का मत फैलाया।

गैलेनके पश्चात् रोग-चिकित्साकी अवनति होने लगी। एक ओर उन लोगोंका ज़ोर था जो केवल मंत्रों तंत्रोंसे ही रोगको दूर भगा देनेका दावा करते थे और दूसरी ओर वे जो रोगीको साल भरके लिये तीन सौ साठ कवच बता कर रख देते थे। मूर्खताकी ऐसी घोर अंधियारी रात्रिमें अरबमें ही विद्याका दीपक टिमटिमाता हुआ दीख पड़ता था। कहा जाता है कि बगदाद निवासी इब्न-सिनाने सर्व प्रथम गंधकका तेजाब और निर्मल मदिरा तैयार करनेकी रीति बताई थी। उन्होंने मधुमेह तथा बहुमूत्र-रोग वाले मूत्रके मीठे स्वादका भी वर्णन किया और अपने नुसख़ोंमें पारदकहरिद, ताज़ा रक्त इत्यादि अनेक चीज़ोंका सेवन किया। अरबके सन्देशवाहक सदा विदेशों और विदेशियोंसे मिलते जुलते रहे। फलस्वरूप वे यदि मौलिक संचालक नहीं तो अनेकों औषधियोंके खोज—निकालने वाले तो अवश्य ही कहे जा सकते हैं; विशेषतया सनाय कर्पूर, चन्दन, खेन्दचीनी, कस्तूरी लोबान, तेजपात, इमली और जायफल इत्यादिक। बहुत निश्चित रूपसे यह कहा जा सकता है कि इसलामी हकीमोंने अपनी कला कौशलको इस उन्नत शिखर पर पहुँचा दिया था कि आज इस विद्याको फिर उसी कुशलता तक पहुँचानेके हेतु अर्वाचीन कार्बनिक और अकार्बनिक रसायन शास्त्रके अनुसंधानकी सहायता लेनी पड़ी। सच पूछिये तो अरबी चिकित्सा-शास्त्र ही कीमियागीरीकी जड़ है। इस विद्याके स्थापक जेबर थे जिन्होंने नोषिकाम्ल, शोरेका तेजाब और अम्लराजकी खोजकी थी। धातुओंके द्रव्यान्तर परिवर्तनकी प्रबल कामनाके साथ साथ सर्वोपयोगी अमृत जीवन—बिन्दु (elixir of life) की कल्पना भी लगी रही। बेहोशी पैदा करनेके निमित्त संमूर्च्छण रस और भंगका सेवन भली भाँति मालूम था। बादशाह उमरने राजकुमारी अब्रिज़ाको ऐसी कड़ी भंगसे गहरी नींदमें डाल दिया कि यदि कोई हाथी उसे केवल सूँघ लेता तो वर्ष भर सोता रहता. इस बातसे यह स्पष्ट विदित होता है कि सूँघ कर बेहोशी आ जानेकी संभावना अरबके लोगोंको भी ज्ञात

थी। बहुत संभव है कि यह विद्या भारतवर्षसे आई हो।

मध्यकाल में राजर्स (Rogers) गठियेके लिये समुद्र-सवार और समुद्र सोख (sponge) की राख का, और परोपजीवी कृमियोंके प्रभावको दूर करनेके लिये पारदीय मरहमका सेवन कराते थे। विलानोवा निवासी अर्नल्ड (१२३५—१३१२) ने जो अरबी रसायनिकोंके शिष्य थे, काढ़ा और राखकी उग्र मदिरा जैसी औषधियोंके संचालनका यश कमाया। सन् १३६५ आते आते अम्ल फल और पेय पदार्थ विशेषतया सिरका तत्काल प्रचलित रोग श्याम काल (black death) में प्रयोग किये जाने लगे। कमरेकी वायु शुद्ध करने के लिये जलते कोयलों पर जुनीपर (juniper) की शाखायें फेंकदी जाती थीं जिसके धुयेंको रोगी सूंघे और समय व्यतीत होने पर सिरका प्रधान कीटाणु नाशकोंमें गिना जाने लगा। जर्संड्राफ (११४०) रुधिर प्रवाह (hemorhage) रोकनेके लिये एक स्वय रचित औषधिका प्रयोग करते थे। यह चूना, तूतिया, फिटकिरी, घीकुआर और माजूफलसे बनती थी। बेसिल वैलयनटाइनने अपने 'Triumphal chariot of antimony' (अन्टीमनी विजय-रथ) नामक ग्रंथ द्वारा चिकित्सामें इस धातुकी जड़ बड़ी गहरी जमा दी। फलस्वरूप इसकी प्रभुता शताब्दियों तक जमी रही।

चिकित्सा प्रणाली बहुत जीर्ण और शिथिल हो ही रही थी कि महानुभाव पारसेलसस (१४९३—१५४१) का अविर्भाव हुआ। वास्तवमें ये चिकित्सासंबंधी रसायनशास्त्रके जन्मदाता थे। इन्होंने जेबर के तीनों रसायनिक तत्वोंको लिया जलनशील गंधक, उड़नशील पारद, शेष लवण और उसमें थोड़ी जन्त्रों, मंत्रोंकी मात्रा मिलाकर चलता किया? इन्होंने बताया कि गठिया और पथरी (stone) शरीरसे नित्यप्रति निकाली हुई वस्तुओंके जमते रहनेसे पैदा हो जाते हैं। रोगोंकी उत्पत्तिको रसायनिक विधिसे समझानेका यह पहला प्रयत्न था। उन्होंने तीन प्रकृत (पित्त, वायु, कफ) वाले मत का तिरस्कार किया और वैद्योंको समझाया कि वे अब कीमियाई (alchemy) को छोड़ कर रसायनिक चिकित्साका प्रयोग करें। उन्होंने यह घोषित कर दिया कि रसायन शास्त्रका अर्थ सोना बनाने का नहीं बल्कि औषधियां बनानेका है। उन्होंने सोतोंसे निकले हुए जल में स्नान करनेकी प्रथा का खनिज जल संचालन किया और ऐसे जलको सोखने वालोंमें वे ही सर्व-प्रथम थे। उन्होंने अफीम पारद, सीसा, गंधक, लोह, संखिया, तूतिया और पांशुज गंधेनका औषधियोंमें सेवन कराया। उन्होंने माजूफलिकाम्ल द्वारा जलमें लोहकी मात्रा का अनुमान किया और काढ़ों और मदिरिक सत्वों को सर्व-प्रिय बनाया। औषधियोंसे क्षणिक प्रभावका चिनगारीके साथ उपमा देते हुए उन्होंने उत्प्रेरण क्रियाका बोध कराया। सोलहवीं शताब्दीकी एक विशेष बात यह रही कि सिफलिसके लिये वनस्पति-रसोंसेभी अच्छी औषधियां निकाली गई। पारद अब शरीरके बाहरी भीतरी सभी रोगों पर आधुनिक रीतिसे सेवन किया जाने लगा। इसी समय वैलेरियस कारडस ने गन्धिक-ज्वलककी भी खोज करली।

जीन बैपटिस्टे वान हेलमान्ट (१५७७—१६४४) ने रसायनिक चिकित्साका एक मत फैलाया। उन्होंने पहले पहिल खमीरों (ferments) और वायव्योंकी प्राणिधर्म गुण विद्या सबन्धी उपयोगिताको पहचाना, विशेषकर 'सिलवस्टर वायु' (कर्बनद्विओषिद) की पित्त, पेटके रस (gastric juice) और आमाशयके अम्लोंका भी उन्हें अच्छा ज्ञान था। उन्होंने मूत्र परीक्षा की बात सुझाई।

जीव रसायन अब धीरे धीरे कल्पनाओं और विडम्बनाओंके जालमें फंसने लग गई थी, प्रोफेसर सिलवियसने उसको इस फन्देसे बचानेका प्रयत्न किया। उन्होंने पाचन क्रिया को रासायनिक

खमीरण बताया और राल (saliva) और पेटके रस (gastric juice) की उपयोगिताकी ओर ध्यान आकर्षित किया उनकी सबसे श्रेष्ठ कीर्ति यह है कि उन्होंने द्रढ़ता पूर्वक कार्बनिक और अकार्बनिक रसायनिक क्रियाओंकी समानताकी घोषणाकी।

पेरिसमें वीयस्यन्सने पहिले पहिल रक्तकी रसायनिक जाँच की।

मेओने यह भली भांति जान लिया कि सांस लेनेका मूल अर्थ है वायुमंडल और रक्तके बीच वायुओंका हेर फेर। ऐसे सरल रासायनिक विचारकी सहायतासे भी सांस लेनेकी क्रिया अधिक नहीं तो कुछ कुछ अवश्य समझमें आने लगी।

अठारहवीं शताब्दीमें ज्ञानका और भी चमत्कार होने लगा। ह्युब्यनहाइक सर्वप्रथम आहार वेत्ता हुए और निकोलस लेमेरी (१६४५ – ७५) ने रक्तमें लोहेकी खोजकी। फ्रेडरिक हाफ़मैनने सोतों के जलमें नहाने पर फिर ध्यान दिया।

रीमरने अपने प्रयोगों द्वारा पाचनकी जीव-रसायनकी बड़ी उन्नति की। उन्होंने पेटके रस को अलग कर पाया और दिखा दिया कि यह रस शरीरके बाहर रहने पर भी अपनी शक्ति दिखा सकता है यह किसी पदार्थका सड़नेसे केवल बचा ही नहीं सकता परन्तु यदि उस पदार्थमें सड़नेकी क्रिया आरंभ हो गई हो तो उसे भी रोक सकता है क्रूइकशैन्कने अधिशोषण (adsosption) के शरीर विज्ञान पर बहुत खोजकी और आपने मानव शरीर के अचेत पसेव 'Insensible perspiration of the Human body' संबन्धी प्रयोग द्वारा यह दिखाया कि चमड़ा (skin) और फेफड़े दोनोंही कर्बन द्विओषिद बाहर निकालते हैं। सांस लेनेकी क्रिया तभी स्पष्ट रूपसे समझमें आई जब कि जासेफ़ ब्लैकने कर्बनद्विओषिद और लवाशियेने ओषजन अलग किया। लाप्लेस (१७८०—८५) ने दिखाया कि साँस लेनेकी क्रिया और किसी वस्तु के जलनेकी क्रियामें बड़ी समानता है। लाँग्रेजने और सफ़ाईसे समझाया। उनका कथन था कि साँस ली हुई वायु शरीरकी त्वचासे (जिनके भीतर रक्त दौड़ता रहता है) कर्बन और उदजन लेकर धीरे धीरे उन्हें कर्बनद्विओषिद और जलमें परिवर्तित कर देती है!

अभी तक चिकित्सा शास्त्रका वृतान्त केवल अनेकों नुसख़ों और असंम्बन्धित निरीक्षणोंका वर्णन रहा है। इस अन्धकारके मध्य किसी एक विधान अथवा प्रणालीकी खोज नहीं दीख पड़ती। औषधियोंकी विद्या केवल अनेक जड़ी बूटियोंका ज्ञान ही रही। प्राकृतिक दवाइयाँ संसारके हर एक कोनेसे मंगाई जाती थीं और लगभग सभीमें क्रियावान तत्व (active principle) पौदा जैसी धरती पर पैदा हुआ हो जिस ऋतुमें और जिस ऊँचाई पर पैदा हुआ हो, जिस समय एकत्रित किया गया हो और कभी कभी दिनके जिस भागमें पौदा तोड़ा गया हो उस पर निर्भर होता था। सुश्रुत में ऐसी बातें लिखी हैं। उन्नीसवीं शताब्दीमें विद्वानोंके मस्तिष्क पर वैज्ञानिक ज्योति पड़ी। रसायन विद्याने सर्व-प्रथम सेवा जो चिकित्सा शास्त्रकी की वह है जंगली नई निराली वस्तुओं का संाधना, क्रियावान तत्वके निचोड़नेकी विधियों की देखरेख और निकाली हुई वस्तुकी जाँच। लाभ यह हुआ कि अब किसी औषधिको हलकी वा गाढ़ी करके इच्छित शक्तिको बना सकते हैं। प्राकृतिक वस्तुओंमें प्रायः कुछ अनुपयोगी अथवा अनावश्यक अंश भी रहता था जिसका स्वयं कुछ न कुछ बुरा ही प्रभाव पड़ता था, उदाहरणतः कोकेन! ऐसा पाया गयाकि कोकेन अणु बहुतही सकीर्ण है जिसका थोड़ाही अंश वास्तवमें लाभदायक है और शेष विषैला है। प्रधान रसायनिकोंके तीन चार आक्रमणके पश्चात् ४३ परमाणुओंका एक भाग अलग हो पाया और इसीमें बेहोशी पैदा करने

की शक्ति थी। शेष भाग कोनीन और निकोटीनकी भाँति विषका काम करता था। इस खोजके फल-स्वरूप और बहुतसे नशीले पदार्थ निकले जिनमेंसे प्रोकेन सर्वोत्तम और कोकेनके सभी दोषोंसे रहित है। रसायनिक परीक्षाकी ही सहायतासे औषधियों की मात्रा और उनकी शारीरिक प्रभावके परस्पर संबन्धका पता लग सका। बहुत दिनोंसे प्राकृतिक वस्तु चालमुगरा तैल भारतवर्षमें कोढ़के लिये सेवन होती चली आरही थी परन्तु इसका प्रभाव अस्थायी था और इसके परपराने और लगनेके कारण अनिच्छा भी हो जाती थी। रसायनिकोंने क्रियावान तत्वकी खोज करते करते अम्लोंको अलग कर लिया और इनका एक मद्यघुलक यौगिक तैयार कर दिया जो कि अब बड़ी सरलतासे सूई द्वारा शरीरके भीतर पहुँचाया जा सकता है। इसी प्रकार अब रसायनिकोंका वैद्योंसे अधिक सहानुभूति होने लगी। उनके लिये ये लोग अब शुद्धताकी छाप लगी हुई कृत्रिम औषधियाँ तैयार करने लगे। शरीरके अनेक त्याग मलों और पेटके रसोंकी भी परीक्षा होने लगी जिसकी सहायतासे वैद्योंकी चिकित्साकी नींव पुष्ट होगई।

क्रमशः

रंग और रासायनिक संगठन

[ले० श्री विष्णु गणेश नामजोशी, एम. एस-सी०]

जबसे कार्बनिक रसायन शास्त्रका जन्म हुआ है तभी से बहुतसे तेज़दार रंग देने वाले कार्बनिक यौगिक बनाये गये हैं। उनके बनने पर रसायन शास्त्रज्ञों का लक्ष्य स्वाभाविक ही रंगके कारण जाननेकी ओर आकर्षित हुआ, और वे इस की खोज करने लगे कि रंगका रासायनिक सगठनसे क्या संबन्ध है। इसके विषयमें बहुतसे सिद्धान्त स्थापित किये गये हैं जिनमेंसे ओ. एन. विट (O.N.Witt), बायर (Baeyer), वाटसन् (Watson) और डा० शिखिभूषण दत्त के वाद महत्वके हैं। दूसरे शास्त्रज्ञोंके वादका महत्व सिर्फ ऐतिहासिक दृष्टिसे है।

विट (Witt) का वाद

(१८७६):—विटने रंगका मुख्य कारण असंपृक्तता (unsaturation) बतलाया क्योंकि असंपृक्तता दूर करने पर रंग नष्ट होता है। उसको अनेक असंपृक्त पदार्थोंकी जांच करने पर मालूम हुआ कि रंग देनेके लिये असम्पृक्तताके साथ कुछ विवक्षित समूहोंका होना भी ज़रूरी है। इन समूहोंका रंग-सूचक (chromophore) नाम दिया गया। विटने निम्न लिखित रंगसूचक निश्चित किये क=क, क=ओ, क=ग, क=नो, नो=नो, नो=ओ, और नो ⟨ ओ / ओ

इस सूचीमें नीट्स्की (Nietjki) ने (१८८८) बादमें यह दो समूह मिलाये।

=<☰>= , =<☰>

पर-कुनोद   पूर्वकुनोद

विटने कहाकि रंग-सूचक जिस कर्बन समूहका भाग होता है उसे रंग-जन (chromogen) कहते हैं। रंग-जन चाहे रंगीन हो या रंगरहित हो, रंगीन पदार्थका यह मुख्य भाग होता है। अगर रंग-जन रंगरहित हो तो उसके साथ किसी लवण बनाने वाले समूहका जोड़ना जरूरी होता है। इन समूहोंको, जिनमें मुख्यतः नो $उ_2$ और ओउ होते हैं, रंग सहायक (auxochromes) कहते हैं। उदाहरणतः बानजावो दिव्योन $क_6 उ_5$ क ओ. $क_6 उ_5$ जो स्वयं रंगरहित है, क=ओ समूह होनेसे यह एक रंग देता है। इसी तरहसे नो ⟨ ओ / ओ नोषाबानजाविन रंग-जन का रंग-सूचक है और नोषो नीलिन रंग है।

की शक्ति थी। शेष भाग कोनीन और निकोटीनकी भाँति विषका काम करता था। इस खोजके फलस्वरूप और बहुतसे नशाले पदार्थ निकले जिनमेंसे प्रोकेन सर्वोत्तम और कोकेनके सभी दोषोंसे रहित है। रसायनिक परीक्षाकी ही सहायतासे औषधियों की मात्रा और उनकी शारीरिक प्रभावके परस्पर संबन्धका पता लग सका। बहुत दिनोंसे प्राकृतिक वस्तु चालमुगरा तेल भारतवर्षमें कोढ़के लिये सेवन होती चली आरही थी परन्तु इसका प्रभाव अस्थायी था और इसके पचपाने और लगनेके कारण अनिच्छा भी हो जाती थी। रसायनिकोंने क्रियावान तत्वकी खोज करते करते अम्लोंका अलग कर लिया और इनका एक मद्यघुलक यौगिक तैयार कर दिया जो कि अब बड़ी सरलतासे सूई द्वारा शरीरके भीतर पहुँचाया जा सकता है। इसी प्रकार अब रसायनिकोंका वैद्योंसे अधिक सहानुभूति हाने लगी। उनके लिये ये लोग अब शुद्धताकी छाप लगी हुई कृत्रिम औषधियाँ तैयार करने लगे। शरीरके अनेक त्याग मलों और पेटके रसोंकी भी परीक्षा होने लगी जिसकी सहायतासे वैद्योंकी चिकित्साकी नींव पुष्ट होगई।

क्रमशः

रंग और रासायनिक संगठन

[ले० श्री विष्णु गणेश नामजोशी, एम. एस-सी०]

बसे कार्बनिक रसायन शास्त्रका जन्म हुआ है तभी से बहुतसे तेज़दार रंग देने वाले कार्बनिक यौगिक बनाये गये हैं। उनके बनने पर रसायन शास्त्रज्ञों का लक्ष्य स्वाभाविक ही रंगके कारण जाननेकी ओर आकर्षित हुआ, और वे इस की खोज करने लगे कि रंगका रासायनिक संगठनसे क्या संबन्ध है। इसके विषयमें बहुतसे सिद्धान्त स्थापित किये गये हैं जिनमेंसे ओ. एन. विट (O.N.Witt), बायर (Baeyer), वाटसन् (Watson) और डा० शिखिभूषण दत्त के वाद महत्वके हैं। दूसरे शास्त्रज्ञोंके वादका महत्व सिर्फ ऐतिहासिक दृष्टिसे है।

विट (Witt) का वाद

(१८७६):—विटने रंगका मुख्य कारण असंपृक्तता (unsaturation) बतलाया क्योंकि असंपृक्तता दूर करने पर रंग नष्ट होता है। उसको अनेक असंपृक्त पदार्थोंकी जांच करने पर मालूम हुआ कि रंग देनेके लिये असम्पृक्तताके साथ कुछ विवक्षित समूहोंका होना भी ज़रूरी है। इन समूहोंको रंग-सूचक (chromophore) नाम दिया गया। विटने निम्न लिखित रंगसूचक निश्चित किये क=क, क=ओ, क=ग, क=नो, नो=नो, नो=ओ, और नो $\langle$ ओ / ओ

इस सूचीमें नीट्स्की (Nietjki) ने (१८८८) बादमें यह दो समूह मिलाये।

=<⊟>= , =<⊏>
||

पर-कुनोद पूर्वकुनोद

विटने कहाकि रंग-सूचक जिस कर्बन समूहका भाग होता है उसे रंग-जन (chromogen) कहते हैं। रंग-जन चाहे रंगीन हो या रंगरहित हो, रंगीन पदार्थका यह मुख्य भाग होता है। अगर रंग-जन रंगरहित हो तो उसके साथ किसी लवण बनाने वाले समूहका जोड़ना जरूरी होता है। इन समूहोंको, जिनमें मुख्यतः नो उ₂ और ओउ होते हैं, रंग सहायक (auxochromes) कहते हैं। उदाहरणतः बानजावो दिव्योन क$_6$ उ$_5$ क ओ. क$_6$ उ$_5$ जो स्वयं रंगरहित है, क=ओ समूह होनेसे यह एक रंग देता है। इसी तरहसे नो $\langle$ ओ / ओ नोषाबानजाविन रंग-जन का रंग-सूचक है और नोषो-नीलिन रंग है।

अजीव बानजावीन, जिसमें रंग सूचक नो = नो हैं, एक रंगीन रंग-जन है और उदौष और अमिनो-अजाव बानजावीन वस्तुनः रंग है। रंग उसे कहते हैं जो दूसरे पदार्थकोभी रंगदार बना सकता है।

रंगसूचकोंके समूहों कुनोनके सम्मिलित कर लेने पर रंगके सिद्धान्तमें बहुतही प्रसिद्धि हुई। बहुतसे पदार्थोंके, उदाहरणार्थ परान्त-नफथा कुनोन (Amphinaphthaquinone), फुक्सोन (Fuchsone), स्वर्णिन (Aurin)—रंगका कारण

ओ =(वलय)(वलय)= ओ
परान्त नफ्थाकुनोन

ओ = (वलय) = क $<$ क$_6$उ$_5$ क$_6$उ$_5$ — फुक्सोन

ओ = (वलय) = क $<$ उ ओ. क$_6$उ$_4$ क$_6$ उ$_4$ ओ उ — स्वर्णिन
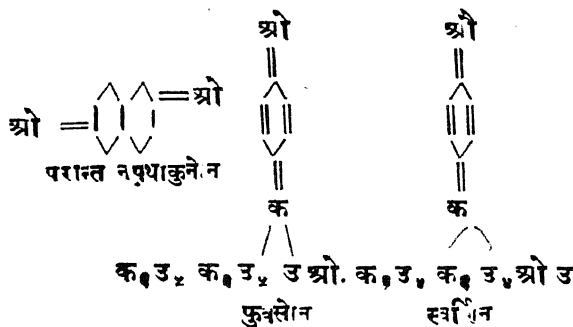
देना सुलभ हुआ। इसको नीटश्कीका कुनोद-सिद्धान्तभी कहते हैं। इस कुनोद सिद्धान्त को कार्बनिक पदार्थोंके रंगका सामान्य कारण (Basis) समझ कर बढ़ाने का प्रयत्न किया गया। परन्तु यह सफल नहीं हुआ, क्योंकि ऐसेभी पदार्थ निकले जो कुनोन संगठनके होकरभी रंग रहित होते हैं। उदाहरणत: और फुलवीन (Fulvenes)

उनो = $<$ ‿ $>$ = नोउ ; ओ = $<$ ‿ $>$ = नो उ
कुनोन द्विअमिन   कुनोन
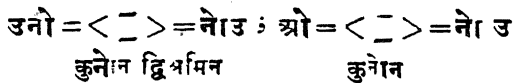
जिनमें कुनोन संगठन नहीं है परन्तु तबभी यह यह रंगीन (नारंगी) है।

आर्मस्ट्रौंग (Armstrong) के कहने पर, काफमन (Kauffmann) के विरोधमें ऐसा एक वाद हान्श (Hantzsch) ने (१९०९) प्रस्तुत किया जिसको रंग समरूपता (chromoisomerism) का सिद्धान्त कहते हैं। रंगीन नोषो-दिव्योल ज्वलकोंके साथ रंगरहित नोषो दिव्योल ज्वलकोंका अन्तर प्रदर्शित करने का श्रेय इस वादको है। १९०९ में हान्श और गोरके (Gorke) ने देखा कि नोषो दिव्योलके रजत लवणमें पर मद्यील नैलिदकी क्रिया करनेसे लाल रंगके नोषो दिव्योल ज्वलक मिलते हैं। इनका संगठन इस प्रकार दिखलाया गया:—

र $<$ नो ओ$_2$ / ओ क उ$_3$ र $<$ नो ओ ओ क उ$_3$ / ओ   [र=बानजावीं केंद्र]

वास्तविक नोषो ज्वलक (रंगरहित)   काल्पनिक नोष ज्वलक (रंगीन)
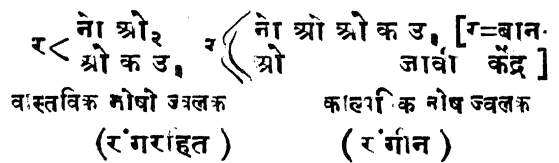
विट के वाद के अनुसार रंग-सूचक समूह नो ओ$_2$ अकेला रंग देने के लिए शक्तिहीन है। रंग-सहायक, ओ उ, की सहायतासे ही तो यह रङ्गदार बन सकता है। यह रङ्ग लवण बनने पर और भी गहरा होता है, इस आधार पर हान्शने नीचे लिखा हुआ नियम स्थापित किया। रंगरहित धातुके साथ लवण बनने पर रंगके दृश्यमान होने का या बदलनेका कारण 'समरूपक परिवर्तन' है। इस प्रकार की समरूपताको रंग समरूपता (chromoisomerism) और इस समरूपताओं के परिवर्तनका रीतिको रंग परिणन (chromotropism) कहते है। इस वादके बढ़ानेके प्रयत्नसे सुलभता तो दूर ही रही किन्तु जटिलता आने लगी।

बायर (Baeyer) **का सिद्धान्त :**—इस विषय का अभ्यास करके बायर और विलजिर (Villiger) ने दूसरा ही विवरण दिया है। अगर ऐसा समझा जाय कि त्रिदिव्यील दारील (triphenyl methyl) के रंगीन लवणोंका कुनोद संगठन होता है तो पर हरोयौगिक का संगठन:

$$(\text{ह क}_6\text{उ}_4)_2 = < _ > < {}^{\text{ह}}_{\text{ओ. ग ओ}_3\text{उ}}$$
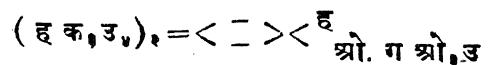
यह होना चाहिये। इसमें कुनोद हरिन् दूसरे हरिन्से अलग अवस्थामें मालूम पड़ता है। ऐसी अवस्थामें हरिन्को आसानीसे मुक्त हो कर रजतम्के साथ लवण देना चाहिये। परन्तु ऐसा बिलकुल नहीं होता है। इससे यह अनुमान होता है कि यह हरिन् और दूसरे हरिदों को स्थापित

(stability) में कोई भेद नहीं है। तो फिर इसमें कुनोद संगठन नहीं लग सकता है। ऐसे दूसरे भी उदाहरण हैं। इससे बायर कहता है कि रंगीन पदार्थ में कुनोद संगठन नहीं है और इसमेंका कर्बन अमोनियम या स्फुरोनियम लवणमें के नोषजन या स्फुरके समान बर्ताव करता है। अर्थात् जबकि यह आधार-मूलसे संपृक्त हो तो यह कर्बनके समान बर्ताव करता है। और धातुलवणके समान गुण धर्म और संगठन होने वाले लवण देता है। रंगीन और रंगरहित लवणों का और रंगरहित लवणोंके यापन (ionisatlion) का भेद दिखलानेके लिये बायर नीचे प्रकार रचना बतलाता है :—

$(क_6\ उ_5)_2$ क——ह, व $ह_4$

$(क_6\ उ_5)_2$ क——ओ, ग ओ$_2$ उ
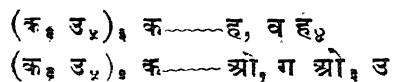
जिनमेंका जोड़ कंपित रेखा (wavy line) से बतलाया गया है। नामकरण (notation) पद्धतिके भेद के अतिरिक्त और इसमें कुछ भेद नहीं है।

इसमें मुख्य बात यह है कि इन पदार्थोंके रङ्गका कारण कुनोद संगठन है, यह हार्टले (Hartely) के अनुसार बायर नहीं मानता है। परन्तु इसके साथ कुनोद वादका वह बिलकुलही त्याग नहीं करता है। क्योंकि दिव्योलथलीन और रोजनीलिनके विषयमें वह कुनोद संगठन ही बतलाता है।

दिव्योल थलीन (साधारणरंग रहित) कर्बिनोल संगठन कुनोद संगठन (रंगीन-लाल)
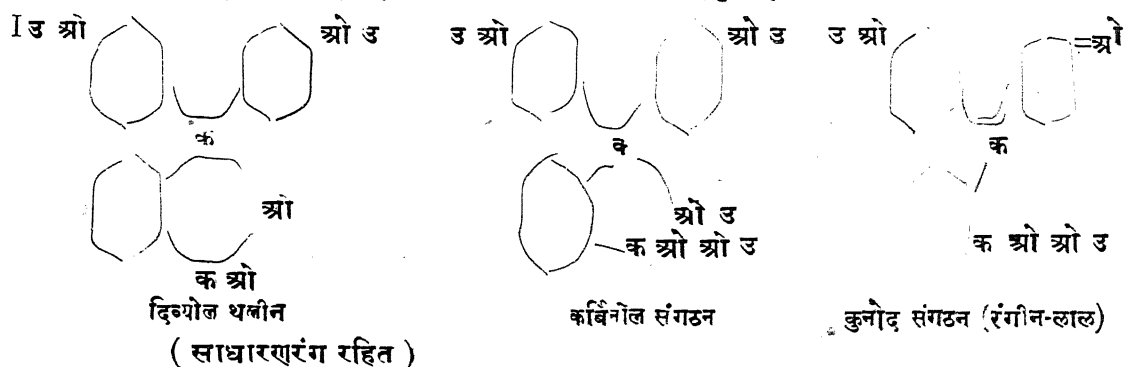
कर्बिनोल पदार्थोंका रङ्ग पानी का अणु निकल जाने पर ही दृष्यमान होता है।

II

क उ — < = > नो $उ_2$ (×३) (रंगरहित) रोजनीलिन

क — < = > नोउ$_2$ (×३), ओउ कार्बिनोलरूप

क — < = > नोउ$_2$, < = > नोउ$_2$, < = > =नोउ उह (रंगीन) कुनोद
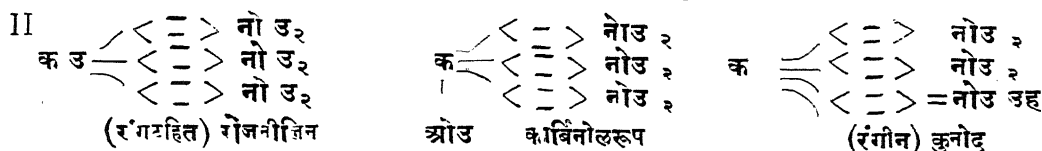
इस तरह से रङ्ग का कारण दुहरा (twofold) हो जाता है।

फुक्सोन और फुक्सोनियम हरिदका संगठन यह है।

ओ = <= > = क — $क_6\ उ_5$, $क_6\ उ_5$ फुक्सोन

नो उ. उ ह = <= > = क — $क_6\ उ_5$, $क_6\ उ_5$ फक्सोनियम हरिद
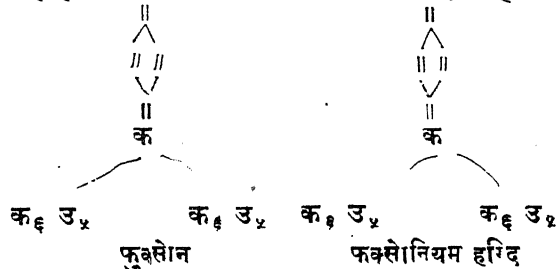
यह दोनों पदार्थ नारङ्गी रंगके हैं। परन्तु इन त्रिदिव्यील दारेन रंगोंकी गहराई (depth) और इनका आदान पट्टी चित्र (absorptionband-spectrum) कमसे कम दो अमिनो या दो उदौषिल समूह कुनोद कर्बनके पर- जगह (para positoin) में रखे बिना, पूरा नहीं उठता है। गेब्नरको बानजाव स्वर्णिनके सैन्धक लवणके किरणचित्र (spetrum) की बायोलेटके उदहरिदके किरण-चित्रसे तुलना (comparison) करने पर दोनोंकी आदान पट्टीमें पूरी साम्यता दिखाई पड़ी। इससे यह बात निकलती

है कि इन पदार्थोंका सामान्य संगठन इनका सत्य (true) संगठन नहीं है, इससे दोनोंका लवण पृथक पृथक रूपमें बनता है:—

ओ ‖ ⋀ ‖ ‖ ⋁ ‖ क — नो उ उ ह ‖ ⋀ ‖ ‖ ⋁ ‖ क

क$_6$उ$_5$ क$_6$उ$_4$ ओ सै — क$_6$ उ$_5$ क$_6$उ$_4$ नो उ$_2$

सैन्धक बानजाव स्वर्णिन — डोबूनर का 'वायोलेट'

बायर का कहना है कि इस प्रकारके पदार्थोंमें दोलनकी शिथिलता (damping) और इनके जनक (parent) उद्कर्बनकी पट्टियों (bands) का किरण-चित्रके द्रष्य विभागकी ओर सरकना, रंगका कारण नहीं है। रङ्गका कारण दोलनके स्वभाव (charactor) पर निर्भर है, जोकि अणुके संगठन द्वारा दिये गये आवर्त झूलनके अनुसार होता है।

यह आवर्त्त झूलन धातुके या लवणजन परमाणुके दो ओषजन या नोषजन परमाणुके बीचमें हुये दोलनों से होता है। उदाहरणः—

यही विचार बेली (Baly) डेश (Desch) स्टिवर्ट (Stewart) और विलस्टेटर (Willstatter) के रंग वादोंमें है।

दो तरहके विचार होनेसे बायरके वादका क्षेत्र यद्यपि बढ़ गया है तोभी इसका उपयोग सर्वमान्य नहीं है। क्योंकि यह वाद मद्यमज्जिक (aliphatic) यौगिकोंमें नहीं लगता है। मद्यमज्जिक यौगिकोंमें कुनोद संगठन नहीं होता है परन्तु उनमें बहुतसे रंगीन पदार्थ होते हैं। उदाहरणः—

क उ$_3$, क उ$_3$, क उ$_3$ > क-नो ओ, — कउ$_3$, कउ$_3$ > क-कउ$_2$ कओ-कउ$_3$, | नोओ

नीला — नीला

नो ‖ नो > कउ$_2$, कउ$_2$: कओ,

गहरा पीला — पीला

कुछ अजीव-यौगिकोंके रंगका भी विवरण बायरके वादसे नहीं हो सकता है। उदाहरणतः—

<═>-नो═नो-<═>-ओ उ

बायर कहता है कि इस संगठनमें कुछ परिवर्तन के साथ लिखनेसे उसमें कुनोद संगठन आ सकता है।

<═>नो उ – नो = <═> = ओ

और वस्तुतः बायरको ऐसे एक दो उदाहरण मिले भी। क-नफ्थील अमिनको ओषदीकृत करने पर नफ्थाकुनोन (i) मिलता है। इस पर द्विव्यील उदाजीविनकी क्रियासे एक दारील उदाजीविन (ii) मिलता है।

ओ ‖ ⋀⋀ ||| ⋁⋁ ‖ (i) ओ ——→

(ii) का कुनोद संगठन है इसमें कोई सन्देह नहीं। क-नफ्थोलको द्वयजीव बानजावीन हरिद्के साथ मिलाने पर पर-बानजावीन-अजीव-क-नफ्थोल (iii) मिलता है।

नो: नो. क$_6$ उ$_5$

क$_6$ उ$_5$ नो: नो ह + उ ... = ... ओ उ ... ओ उ
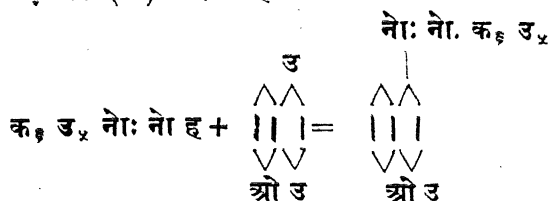
परन्तु आश्चर्यकी बात यह है कि (ii) और (iii) मेंबिलकुल भेद नहीं है। इससे यह सिद्ध है कि कुनोद परिवर्तनमें उद्जन का परिवर्तन होता है। यह बात बायर के वादकी पुष्टि कर देती है। दूसरा उदाहरण: सेबोनिक सम्मेल द्वयजीव बानजावीन हरिद्के साथ अजीव-सम्मेल (iv) देता है। और सेबोनिक सम्मेल पर पहिले नोषसाम्ल और बादको दिव्यील उदाजीविनकी क्रिया नीचे लिखे अनुसार होती है।

(II) उ नो ओ$_2$ + उ$_2$क< क ओ ओ क$_2$उ$_5$ / क ओ ओ क$_2$उ$_5$

= ओक< क ओ ओ क$_2$ उ$_5$ / क ओ ओ क$_2$ उ$_5$

+ क$_6$ उ$_5$नो उ नो उ$_2$

= क$_6$ उ$_5$ नोउ नो:क< क ओ ओ क$_2$ उ$_5$ / क ओ ओ क$_2$ उ$_5$

(I) (v)

क$_6$उ$_5$ नो: नो ह + उ$_2$ क< क ओ ओक$_2$ उ$_5$ / क ओ ओक$_2$ उ$_5$

= क$_6$ उ$_5$ नो: नो उ क< क ओ ओ क$_2$ उ$_5$ / क ओ ओ क$_2$ उ$_5$
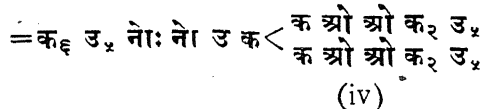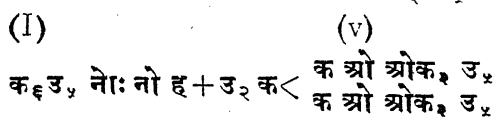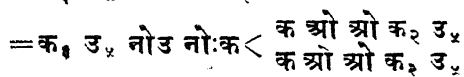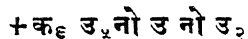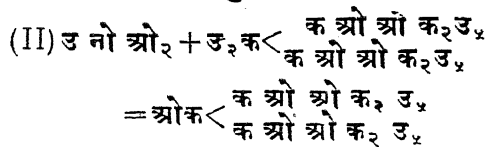
(iv)

(iv) और (v) यद्यपि अलग अलग मालूम पड़ते हैं पर दोनों बिलकुल एक हैं।

वाटसन (Watson) **का वाद** (१९१२): वाटसनका वाद बायरके वादका सुधार किया हुआ रूप है। वह कहता है कि जो रंग उनके सब भ्रमण-रूपों (tautomeric) में कुनोद संगठनमें रहते हैं वे बड़े गहरे रंगके होते हैं। गहराईका माप नीचे दिये समान हैं।

[पीला, नारंगी, लाल, कासनी, नीला, हरा, काला] पीला सबसे फीका और काला सबसे गहरा माना जाता है।

उदाहरण: (१) प-उदौष अजीव बानजावीनके दो भ्रमण रूप होते हैं। परन्तु एकही रूपमें कुनोद संगठन होता है।

(i) <⎯>नो=नो-<⎯>ओ उ—(मामूली)

(ii) <⎯>नोउ-नो=<⎯>=ओ—(कुनोद)

इस लिये यह रंगमें फीका होता है।

(२) रोडामिन (rhodamine) सभी रूपोंमें कुनोद रूपका होता है इस लिये यह बड़ा गहरा होता है।

(क$_2$उ$_5$)$_2$नो ... = नो (क$_2$ उ$_5$)$_2$ ह

क

क ओ ओ उ

रोडामिन

(३)

उ$_2$नो ... = ओ → उ नो = ... ओ उ

नो नो
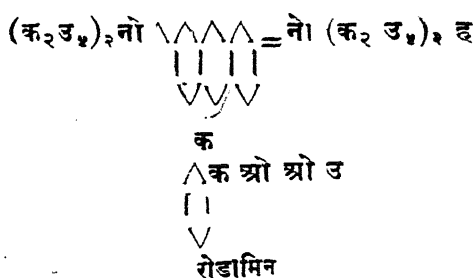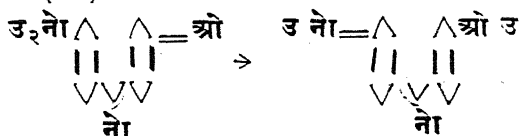
यह भी बड़ा गहरा है।

जिन पदार्थोंमें कुनोदरूप अचल (permanent) होता है वे फीके रङ्ग के होते हैं जैसे कुनोन स्वयं।

नील (indigo) में कुनोद रूप होता ही नहीं परन्तु यह बड़ा गहरा रङ्ग है। इसका विवरण वाटसन नहीं कर सका। यद्यपि उसका वाद बड़ा महत्व पूर्ण है, परन्तु यह भी सर्वमान्य नहीं हो सकता है।

जे. मोइर (J. Moirs) **का वाद** (१९२१) साधारणतः बायर केही वाद का सुधार किया है

हुआ रूप है। उसने तीन कुनोद रूप सूचित किये :
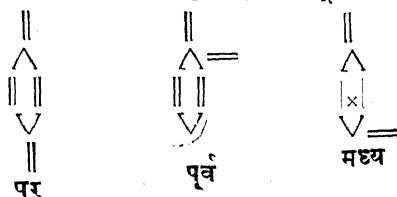
उसने बहुत से प्रयोग किये और अलग अलग समूहोंके आदानमें क्या भेद होता है इसकी जांच की। उसने इसकी बड़ीही लंबी सारिणी दी है परन्तु उसके परस्पर संबंध का विवरण नहीं दिया है।

डा: शिखी भूषण दत्त का वाद (१९२५):— इनका विचार है कि पदार्थोंके रङ्गका उनके उद्गम (origin) से कुछ सबंध नहीं है। [इनका वाद भी विट और बायरके वाद पर कुछ कुछ निर्भर है] रङ्ग आदान (absorption) पर निर्भर है और आदान का कारण असम्पृक्ततामें है। रङ्गकी परीक्षा आंखों से अच्छी नहीं होती क्योंकि ये साधन विश्वसनीय नहीं है। दोकर्बन, कर्बन और ओषजन, कर्बन और नोषजन इत्यादि जब दो या दो से अधिक संयोग-शक्तियों से जुड़े हुये होते हैं तब वे असम्पृक्त होते हैं क्योंकि उनमें परमाणुओंकी कमी होती है और वे अधिक परमाणुओंके साथ जुड़ सकते हैं।

कर्बनकी चार संयोग-शक्तियाँ होती हैं, और वह चारों अन्तरिक्षमें फैली हुई होती हैं। जब कर्बन अकेला रहता है तब ये चारों संयोग-शक्तियाँ आपसमें बराबर कोण (angle) में होती हैं। यह कोण १०९.५° अंशका होता है। नोषजनकी तीन संयोग शक्तियां आपसमें १२०.° अंशका कोण बनाती हैं और ओषजनकी दो संयोग शक्तियां १८०° अंशके कोणमें होती हैं। जैसे

क १०९.५° नो १२०°, —ओ— १८०°
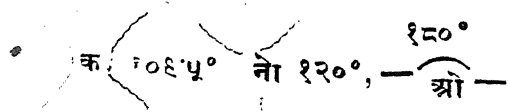
जब कर्बन दो संयोग शक्तियां (valencies) से जुड़ा रहता है तब यह दोनों संयोगशक्तियां आपस में समानान्तर (parallel) होनेका प्रयत्न करती हैं।

>क १०९.५° १०९.५° क< → >क⌒क<

→ >क=क<
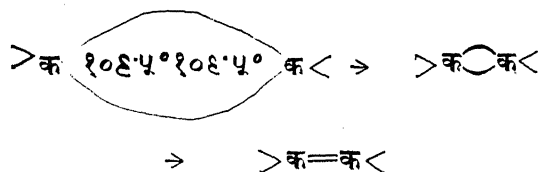
इस प्रयत्नमें खिचाव पैदा होता है जो कि परमाणुकी आंतर-शक्ति (internal energy) में परिवर्त्तित हो जाता है और इसी का परिणाम आदान (absorpiton) और रङ्ग परिवर्तन (colour change) है। जिस परिमाणमें संयोग शक्तियोंके कोणमें परिवर्तन होता है उसी परिमाणमें उसके आदानमें भी परिवर्तन होता है। कर्बन-कर्बनके संयोगमें १०९.५° + १०९.५° = २१९° अंशका परिवर्तन संयोगशक्तियोंको सहना पड़ता है। कर्बन-नोषजनके संयोगमें यह परिवर्तन १०९.५° + १२०° = २२९.५° अंशका होता है और कर्बन ओषजनके संयोगमें यह परिवर्तन १०९°.५ + १८०° = २८९.५° का होता है। नोषजनके संयोगमें यह परिवर्तन १२०° + १२०° = २४०° का होता है और नोषजन ओषजन के संयोगमें १२०° + १८०° = ३००° का होता है। इस परिवर्तनके अनुसार ही अधिकतम-आदान (absorption maxima) की मात्रामें भी परिवर्तन होता है। यह बात नीचे दिये हुये उदाहरणोंसे सिद्ध हो जायगी।

(सारिणी १)

इसमें नम्बर २ अपवाद रूप है।

जब दो परमाणुओंका संयोग त्रि-बन्धसे होता है तो खिंचाव और उसके साथ साथ अधिकतम आदान मात्रा बढ़ जाती है और रंग भी गहरा होने लगता है। उदाहरण:—(सारिणी २)

(सारिणी १)

पदार्थ का नाम	संगठन	संयोग शक्ति कोणमें परिवर्तन	अधिकतम आदान तरंग लम्बाई
१ स्टिलबीन	<⚌>क=क<⚌>	२१६°	२८६०
२ बानजावो दिव्योन	<⚌>क=ओ<⚌>	२८६°·५	३०००
३ बानजीलिदिन नीलिन	<⚌>नो=क<⚌>	२२६°·५	३५८०
४ अजीव बानजावीन	<⚌>नो=नो<⚌>	२४०°	४३१०
५ नोषोसो बानजावीन	<⚌>को=ओ	३००°	७३००

(सारिणी २)

पदार्थ का नाम	संगठन	आदान
स्टाइरीन	क$_६$ उ$_५$· कउ=क उ$_२$	२७३०
दिव्यील सिरकीलिन	क$_६$उ$_५$ ·क≡क उ	२७४०
दालचीनिकाम्ल	क$_६$ उ$_५$ क उ=क उ ·क ओ$_२$ उ	२८००
दिव्यीलअ ोलिकाम्ल	क$_६$ उ$_५$ ·क≡क ·क ओ$_२$ उ	२८२०

इससे यह भी समझमें आ जायगा कि द्विबन्ध-या त्रिबन्धके एक तरफ या दोनों तरफ अधिक समूह जोड़नेसे अर्थात् भार बढ़ानेसे खिंचाव बढ़ता है और साथ साथ आदान मात्रा भी बढ़ती है।

यह ध्यानमें रखना चाहिये कि जितना खिंचाव बढ़ता जायगा उतनी अणुकी स्थिरता (stability) भी कम होती जायगी। ऊपर बतलाया गया है कि नोषजन-ओषजन संयोगमें संयोग-शक्तिकी दिशामें ३००° अंशका परिवर्तन होता है। यह परिवर्तन सबसे अधिक है। और साथ साथ यह भी है कि ऐसे पदार्थ बड़े अस्थिर होते हैं।

जब नोषजनकी संयोग शक्ति पांच होती है तब संयोग शक्तिकी दिशाके आपसेमें के कोण कम हो जाते हैं। और द्विबन्ध, त्रिबन्ध संयोगमें खिंचाव भी कम हो जाता है। इसी कारणसे नोषो (nitro) पदार्थ कम रंग देने वाले होते हैं। उदाहरण नोषोसोबानजावीन क$_६$ उ$_५$· नो=ओ, ७३००λ नोषोबान जावीन, क$_६$ उ$_५$· नो<$^{ओ}_{ओ.}$ २७००λ

इससे पता चलेगा कि दोनों पदार्थोंके खिंचावमें कितना भारी भेद है।

यह ते सामान्य विवरण हुआ। ऊपर बतलाया गया है कि द्विबन्ध या त्रि-बन्धके इधर उधर अधिक समूह देनेसे उसके खिंचावमें अन्तर होता है। अब यह विचार करेंगे कि इन समूहोंकी स्थिति (position) से उसपर क्या असर होता है। नीचे दिये हुये उदाहरणोंसे यह मालूम होगा कि जब समूह पूर्व-अवस्थामें होते हैं तब उनका रंग 'पर' अवस्थाके रंगसे ज्यादा होता है:—

(सारिणी ३)

नाम	संगठन	आदान मात्रा
पर बानजावो कुनोन	ओ< ☰ >=ओ < ☰ > ☰ ओ / ओ	४१७०
पूर्व बानजावो कुनोन	क= ओ	४७३०
क-नफ़्था कुनोन	ΛΛ ‖‖ । VV क=ओ	३६१०
ख-नफ़्था कुनोन	ΛΛ । । । VV क=ओ क=ओ	४३६०

सब से कम रंग मध्य-अवस्था में होता है।

जब खुली-श्रृंखलाके पदार्थका चाक्रिक पदार्थमें परिवर्तन होता है, तब साधारणतः उसका खिंचाव बढ़ जाता है। उदाहरण :—

दालची नोन cumamone (रंग रहित)	ओ ‖ क, उ, क उ=क उ. क. क उ,

(सारिणी ४)

जब किसी पदार्थमे खिंचावके दो स्रोत (sources) पास पास होते हैं तब उनका योग परिणाम, उनके दूर होने वाले परिणामसे अधिक होता है। उदाहरणः—

द्विदिग्पील कीतीन (नारंगी)	क, उ, / क, उ, >क=क=ओ

(सारिणी ५)

जब खिंचावके दो स्रोत एक ही परमाणुसे जुड़े होते है तब वे पदार्थ अधिक रंगदार होते हैं। उदाहरणः—

मेथीटील ओषिर	ओ ‖ क उ, / क उ, >क=क उ. क क उ,
द्विज्वलील कीतीन (गहरा पीला)	क, उ, / क, उ, >क=क=ओ

डा० दत्तका वाद अभी नयाही निकला है। इसका क्षेत्र बहुत ही व्यापक है और मेरा ऐसा विचार है कि यह वाद कुछ दिनों के बाद कार्बनिक रसायनमें सर्वमान्य समझा जावेगा। यह मेरा सौभाग्य है कि मुझे आपके पास काम करनेका अवसर प्राप्त हुआ है। मैं भी आपके रंगवादकी पुष्टिमें काम कर रहा हूँ। मैं डा० दत्तका अत्यन्त आभारी हूँ कि आपने मुझे इस सम्बन्धके अपने मौलिक लेखक पढ़ने को दिये।

(सारिणी ४)

नाम	संगठन	अधिक तम आदान
सा-नवनीतील बानजावीन	क $उ_१$ — क $उ_२$ — क $उ_२$ — क $उ_१$	२५७०
चतुर्-उद-नफ्थलीन	क $उ_२$, क $उ_२$, क $उ_२$, क $उ_२$	२७५०
बानजावो द्विथोन	क ओ	३०००
फ्लोरिनोन	क ओ	३६७०

(सारिणी ५)

नाम	संगठन	अधिक तम आदान
द्वि सिरकील	क $उ_3$. क. क. क $उ_3$ ‖ ‖ ओ ओ	४१६०
सिरकील सिरकोन	क $उ_3$. क. क $उ_2$. क. क $उ_3$ ‖ ‖ ओ ओ	२७३०
बानजिल	$क_6$ $उ_5$. क. क. $क_6$ $उ_5$ ‖ ‖ ओ ओ	४०३०
बानजावोल सिरको द्व्योन	$क_6$ $उ_5$. क. क $उ_2$. क. $क_6$ $उ_5$. ‖ ‖ ओ ओ	३१३०

वैज्ञानिक पुस्तकें

विज्ञान परिषद् ग्रन्थमाला

१—विज्ञान प्रवेशिका भाग १—ले० प्रो० रामदास गौड़, एम. ए., तथा प्रो० सालिग्राम, एम.एस-सी. ।)

२—मिफताह-उल-फ़नून—(वि० प्र० भाग १ का उर्दू भाषान्तर) अनु० प्रो० सैयद मोहम्मद अली नामी, एम. ए. ... ... ।)

३—ताप—ले० प्रो० प्रेमवल्लभ जोषी, एम. ए. ।=)

४—हरारत—(तापका उर्दू भाषान्तर) अनु० प्रो० मेहदी हुसेन नासिरी, एम. ए. ... ।)

५—विज्ञान प्रवेशिका भाग २—ले० अध्यापक महावीर प्रसाद, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद १)

६—मनोरंजक रसायन—ले० प्रो० गोपालस्वरूप भार्गव एम. एस-सी. । इसमें साइन्सकी बहुत सी मनोहर बातें लिखी हैं। जो लोग साइन्स-की बातें हिन्दीमें जानना चाहते हैं वे इस पुस्तक को जरूर पढ़ें। ... १॥

७—सूर्य सिद्धान्त विज्ञान भाष्य—ले० श्री० महाबीर प्रसाद श्रीवास्तव, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद

- मध्यमाधिकार ... ... ॥=)
- स्पष्टाधिकार ... ... ।॥)
- त्रिप्रश्नाधिकार ... ... १॥)
- चन्द्रग्रहणाधिकार ... ... १॥)

'विज्ञान' ग्रन्थमाला

१—पशुपक्षियोंका शृङ्गार रहस्य—ले० अ० शालिग्राम वर्मा, एम.ए., बी. एस-सी. ... -)

२—ज़ीनत वहश व तयर—अनु० प्रो० मेहदी-हुसैन नासिरी, एम. ए. ... ... -)

३—केला—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली -)

४—सुवर्णकारी—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली ।)

५—गुरुदेवके साथ यात्रा—ले० अध्या० महावीर प्रसाद, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद ।=)

६—शिक्षितोंका स्वास्थ्य व्यतिक्रम—ले० स्वर्गीय पं० गोपाल नारायण सेन सिंह, बी.ए., एल.टी. ।)

७—चुम्बक—ले० प्रो० सालिग्राम भार्गव, एम. एस-सी. ... ... ।=)

८—क्षयरोग—ले० डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा, बी. एस. सी, एम-बी. बी. एस ... -)

९—दियासलाई और फ़ास्फ़ोरस—ले० प्रो० रामदास गौड़, एम. ए. ... ... -)

१०—वैज्ञानिक परिमाण—ले० डा० निहाल करण सेठी, डी. एस. सी तथा श्री सत्य-प्रकाश, एम. एस-सी० ... ... १॥)

११—कृत्रिम काष्ठ—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली -)

१२—आलू—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली ... ।)

१३—फसल के शत्रु—ले० श्री० शङ्करराव जोषी ।=)

१४—ज्वर निदान और शुश्रूषा—ले० डा० बी० के० मित्र, एल. एम. एस. ... ... ।)

१५—कार्बनिक रसायन—ले० श्री० सत्य-प्रकाश एम एस-सी० ... ... २॥)

१६—कपास और भारतवर्ष—ले० पं० तेज शङ्कर कोचक, बी. ए., एस-सी. ... -)

१७—मनुष्यका आहार—ले० श्री० गोपीनाथ गुप्त वैद्य ... ... १)

१८—वर्षा और वनस्पति—ले० शङ्कर राव जोषी ।)

१९—सुन्दरी मनोरमाकी करुण कथा—अनु० श्री नवनिद्धिराय, एम. ए. ... ... -)॥

अन्य वैज्ञानिक पुस्तकें

हमारे शरीरकी रचना—ले० डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा, बी. एस-सी., एम. बी., बी. एस.

- भाग १ ... ... २॥)
- भाग २ ... ... ४)

चिकित्सा-सोपान—ले० डा० बी० के० मित्र, एल. एम. एस. ... ... १)

भारी भ्रम—ले० प्रो० रामदास गौड़ ... १।)

वैज्ञानिक अद्वैतवाद—ले० प्रो० रामदास गौड़ १॥=)

वैज्ञानिक कोष— ... ... ४)

गृह-शिल्प— ... ... ।)

खादका उपयोग— ... ... ।)

मंत्री
विज्ञान परिषत्, प्रयाग

मुद्रक—सूरजप्रसाद खन्ना, हिन्दी-साहित्य प्रेस, प्रयाग

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces for use in Schools and Libraries.

पूर्ण संख्या—१७१ Reg. No. A.708

भाग २९ Vol. 29. | मिथुन संवत् १९८६ | संख्या ३ No 3

जून १९२९

विज्ञान

प्रयागकी विज्ञानपरिषत्का मुखपत्र

Vijnana the Hindi Organ of the Vernacular Scientific Society, Allahabad.

अवैतनिक सम्पादक

ब्रजराज

एम. ए., बी. एस-सी., एल-एल. बी.

सत्यप्रकाश,

एम. एस-सी., विशारद.

प्रकाशक

वार्षिक मूल्य ३)] विज्ञान-परिषत्, प्रयाग [१ प्रतिका मूल्य ।)

विषय-सूची

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमान भूतानि जायन्ते
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५॥

भाग २९ | मिथुन संवत् १९८६ | संख्या ३

आकाश

[ले०—श्रीसत्यप्रकाश, एम० एस-सी०]

आकाश किसे कहते हैं, इसकी मीमांसा करना यहाँ आवश्यक नहीं है। प्राचीन और आधुनिक सभी विज्ञान वेत्ताओंने आकाशको सर्वव्यापक माना है। यह सम्पूर्ण भौतिक पदार्थोंकी अपेक्षा अत्यन्त सूक्ष्म है। आकाश ही एक ऐसी सत्ता हैं, जिसके कारण समस्त विश्वमंडल अपना व्यापार कर रहा है। यदि आकाश न होता तो हमें सूर्य्यका प्रकाश और ताप कुछ भी प्राप्त न होता। आकाशके द्वारा ही हम विद्युत्की बड़ी बड़ी तरंगे बिना किसी अन्य साधन के एक स्थान से दूसरे स्थानको भेज सकते हैं। जो लोग बेतार के तार से परिचित हैं वे इस बातको भली भाँति जानते हैं। आकाश बड़ी ही विचित्र वस्तु है।

यह तो सर्वव्यापक आकाशकी बात हुई। पर साधारण जनता आकाश किसे कहती है? किसी बालक से पूछो कि आकाश या आसमान कहाँ है तो वह ऊपर उंगली उठा देगा और जो पेड़ोंके शिखरोंको छूता हुआ नीला-नीला वितान तना है, उसे ही वह आकाश समझेगा। ऐसा मालूम होता है कि यह नीला आकाश हमारी छतके ऊपर ही है पर यदि हम छतके ऊपर चढ़ जायं तो वहाँ भी हम आकाशको न पायंगे। ज्यों ज्यों हम ऊपर बढ़ते जायंगे त्यों-त्यों आकाश भी और ऊपर बढ़ता जायगा। ऊँचेसे ऊँचे पेड़ की शिखाओंसे भी आकाश अधिक ऊँचा है। चिड़ियाँ बहुत ऊँचाई तक उड़ सकती हैं, वायुयान भी बहुत ऊँचे चढ़ जाते हैं, यहाँ तक कि हमारे घरके आकारके बने हुए यान इतने ऊँचे चढ़ जाते हैं कि वे चील

समान छोटे दिखाई पड़ते हैं, पर ये भी आकाशकी ऊँचाई की थाह नहीं ले सकते हैं। हमारी पतंगे और हमारे गुब्बारे भी थोड़ी ही दूर तक जा सकते हैं? पृथ्वी पर खड़े हुए हम तो यह समझते हैं कि ये पतंगें नीले आकाशमें उड़ रही हैं पर यह नीला आकाश इस ऊँचाईसे भी लाखों मील ऊँचा होगा।

आकाशको हम बहरूपिया मान सकते हैं। आप समझते होंगे कि आकाश नीला है, पर यह बात हमेशा ठीक नहीं है! क्या आपने कभी उस समय आकाशकी ओर देखा है जिस समय प्रातःकाल में सूर्य्य निकलने वाला ही हो। इस समयका दृश्य कितना मनोमोहक होता है। कहीं नारंगी रंग, कहीं नीला, पीला, हरा और गुलाबी रंग, तरह तरहके रंगों से आकाश सुशोभित हो जाता है। पर ज्यों ज्यों सूर्य्य का उदय होता जाता है, ये रंग विलुप्त हो जाते हैं और सूर्य्यके पूर्णोदय पर समस्त आकाश तेजोमय श्वेत रंग का हो जाता है। दिन भर यह इसी प्रकार रहता है। सायंकालको जब सूर्य्य अस्त होने को होता है, उस समय आकाश फिर रंग बिरंगे कपड़े पहनने लगता है। उषा काल के समान गोधूली बेला में भी तरह-तरह के रंग दिखाई पड़ने लगते हैं। फिर वही लाल, नारंगी, पीले, हरे रंग निकल आते हैं। सूर्य्यास्तके पश्चात् ये सम्पूर्ण रंग विलुप्त हो जाते हैं और फिर आकाश नीला और निर्मल दिखाई देने लगता है। रात भर आकाशमें यही नीला रंग रहता है और फिर प्रातः कालमें तरह-तरह के रंग निकलने आरम्भ होते हैं। इस प्रकार रंगोंका यह चक्र निरन्तर चला करता है।

यह कहा गया है कि दिनमें आकाशका रंग श्वेत होता है और रातको नीला और दिन और रातकी सन्धियोंमें तरह-तरहके रंग दिखाई पड़ते हैं। आकाशको ये रंग कहाँसे मिलते हैं? हमें ये सब रंग सूर्य्यके प्रकाशसे प्राप्त होते हैं। सूर्य्यका प्रकाश सामान्यतः श्वेत रंगका कहा जाता है। श्वेत रंग सात रंगोंका मिश्रण है:—

(१) लाल
(२) नारंगी
(३) पीला
(४) हरा
(५) आसमानी
(६) नील
(७) बैंजनी या कासनी

प्रकाश एक स्थान से दूसरे स्थानको लहरोंके रूपमें चलता है। लाल, नारंगी, पीले और हरे रंग की लहरें बहुत बड़ी होती हैं और आसमानी, नील, और कासनी रंगकी लहरें छोटी होती हैं। श्वेत रंग इन सातों रंगोंका मिश्रण है। जब सातों रंगोंकी किरणें मिलकर प्रकाश द्वारा हमारे नेत्रोंमें पहुंचती हैं, हमें आकाशका रग श्वेत दिखाई देता है। उषा काल और गोधूली बेला में ये किरणें पूर्ण रूपसे हमारे पास नहीं आ पाती हैं। सूर्य्य इस समय क्षितिजके नीचे रहता है। हमारे पास तक पहुँचते-पहुँचते ये किरणें विभाजित हो जाती हैं और इस लिये आकाशमें तरह-तरह के रंग दृष्टि गत होते हैं। रात्रिके समय सूर्य्य पृथ्वीके दूसरे भागमें पहुँच जाता है, उसकी किरणें हम तक नहीं आ सकती हैं। तब भी छोटी लहरोंकी किरणें किसी प्रकार मुड़ कर हमारे पास आती हैं। इन छोटी लहरोंकी किरणोंमें आसमानी, नीला और, कासनी रंग होता है। हमको इसी रंगमें रात्रिको आकाश दिखाई देता है। इसीलिये हम आकाशको नीला कहते हैं।

आकाशमें कभी कभी, विशेषतः वर्षा होनेके उपरान्त, इन्द्र धनुष दिखाई पड़ते हैं। इस इन्द्रधनुष में लाल, नारंगी, पीले हरे सभी रंग होते हैं जोकि ऊपर बताये गये हैं। वर्षा होनेसे आकाश मण्डलमें जलकण बिखर जाते हैं। जलकी ये गोल बूंदें सूर्य्यके किरणोंके रंगका विभाजन कर देती हैं। इसी लिये

तरह-तरहके रंग दिखाई देते हैं। कभी कभी आकाश में जब थोड़ेसे बादल हों तो उनके कारणभी अनेक प्रकारके रंग दिखाई देगें। आकाशका वह दृश्य भी कितना मनोहर होता है जब नीले बादलोंके चारों ओर सुनहरे और लाल रंगकी पट्टियाँ बनी रहती हैं।

अब तक हमने आकाशके रंगोंका विवरण दिया है। दिनमें प्रकाशकी ओर देखनेसे सूर्य्यके अतिरिक्त और कुछ दिखाई न पड़ेगा। पर इसका अर्थ यह न समझना चाहिये कि इस समय आकाश-में और कुछ है ही नहीं। रातमें आपको आकाशमें सहस्रों तारे चमकते दिखाई पड़ेंगे। दिन में भी ये तारे आकाशमें ही विद्यमान हैं, पर सूर्य्यके प्रचण्ड तेजके सामने इनकी ज्योति मन्द पड़ गई है इसी-लिये ये देखे नहीं जा सकते हैं। प्रातःकाल होते ही सब तारे और तारोंका राजा चन्द्रमा तेज हीन हो जाता है। कभी-कभी प्रातःकालमें सूर्य्योदय होने पर भी चन्द्रमा दिखाई देता रहता है और कदाचित् एक दो मन्द तारे भी आपको दिखाई दे जायँ, पर इन सबकी ज्योति रात्रिके समान सुन्दर और मनोमोहक प्रतीत न होगी। सायंकालको भी इनकी यही अवस्था होती हैं। कभी कभी सूर्य्या-स्तके पहले ही आकाशमें चन्द्रमा दिखाई देने लगता है यद्यपि यह सूर्य्यकी ज्योतिके कारण कान्तिहीन प्रतीत होता है। मध्याह्नकालमें चन्द्रमा अथवा तारोंका देखना असम्भव ही है। रात्रिको ही अनेक तारागण और चन्द्रमा दृष्टि गत होते हैं।

नक्षत्र, पृथ्वी, सूर्य इन सबको मिल कर जो संसार बनता है वह सौर जगत् कहलाता है। सूर्य को सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका पिता मानना चाहिये क्योंकि अन्य सब नक्षत्र इसीसे उत्पन्न हुए हैं और इसके आकर्षण द्वारा आकाश मण्डलमें स्थित हैं। सब नक्षत्र सूर्य्यकी परिक्रमा कर रहे हैं। हमारी पृथ्वी सूर्य्यके चारों ओर ३६५$\frac{1}{4}$ दिनमें एक परि-क्रमा कर आती है। अन्य नक्षत्रभी भिन्न भिन्न कालमें अपनी यह प्रदक्षिणा पूर्ण करते हैं। सूर्य्य भी स्थिर नहीं है। यह भी अपनी धुरी पर बड़े वेगसे लट्टूके समान नाच रहा है। कुछ लोगोंका यह कहना है कि इस ब्रह्माण्डमें इस सूर्य्यसे भी बड़े अनेक सूर्य्य विद्यमान हैं। होंगे, पर हमें तो अपने इसी सूर्य्यसे काम है क्योंकि हमको तो यही गरमी और प्रकाश देता है और हमारे जीवनकी रक्षा करता है।

मुख्य-मुख्य नक्षत्रोंका विवरण देनेके पूर्व यहां हम एक सारिणी देना उचित समझते हैं जिस से सब ग्रहोंके आकार आदिका कुछ तुलनात्मक ज्ञान हो जाये। देखो सारिणी (१)

इस सारिणीमें जो जो अंक दिये गये हैं, उनका तात्पर्य्य यहाँ दे देना आवश्यक है।

व्यासार्ध—प्रत्येक ग्रह एक बड़ा गोला है। इस गोलेके बीच-बीचमें जो एक बड़ा वृत्त बनता है उसका अर्द्ध व्यास यहाँ दिया गया है। सारिणीके देखनेसे मालूम होगा कि सूर्य्यका व्यासार्ध सबसे अधिक है और बुध नक्षत्र का सबसे कम है।

तौल—सारिणीके दूसरे कोष्ठकमें ग्रहोंकी आपेक्षिक तौल दी गई है। इस तौलमें पृथ्वीको इकाई मान लिया गया है, अर्थात् अंकोंसे यह दिखाया है कि अन्य नक्षत्र पृथ्वीसे कितना गुना भारी हैं। सूर्य पृथ्वीसे तीन लाख उनतीस हजार तीन सौ नब्बे गुना भारी है पर मंगल ग्रहसे पृथ्वी १० गुनी भारी है।

भ्रमण पथके अक्षका दीर्घ व्यासार्ध—

यह कहा जा चुका है कि प्रत्येक ग्रह सूर्य्यसे चारों ओर परिक्रमा लगाते हैं। जिस पथ या मार्ग द्वारा ये सूर्य्यके चारों ओर घूमते हैं वह पूरा वृत्त नहीं हैं प्रत्युत अण्डेके आकारका है। उनका यह भ्रमण

(सारिणी १)

ग्रह	व्यासार्ध	तौल	भ्रमण पथके अक्षका दीर्घ व्यासार्ध	दैनिक भ्रमण का समय	वार्षिक भ्रमण का समय	चन्द्रमाओंकी संख्या
	मील	पृथ्वी = १	करोड़ मील	दि० घ० मि०	मध्य सौर दिनमें	
सूर्य्य	४३२८९०	३३६३६०	... ...	२५—०—७	... ...	...
बुध	१३८७	०.३४	३·६	८८—०—०	८७·९७	०
शुक्र	३७८३	>८१८	६·७२	०—२३—२०	२२४·७०	०
पृथ्वी	३९६३.३	१·०००	९·२९	०—२३—५६	३६५·२५६	१
मंगल	२१०८	०·१०६	१४·१६	०—२४—३७	६८४ ९८	२
बृहस्पति	४३५५०	३१४·५	४८·३३	०—९—५६	४३३२·५९	८
शनि	३६१५०	९४·०७	८८·६२	०—१०—१५	१०७५९·२	१०
वरुण	१५४४०	१४·४०	१७८·२८	०—१३—०	३०६८६·०	४
इन्द्र	१६६७०	१६·७२	२७९·२५	?	६० ८७·७	१

पथ दीर्घ वृत्त या अण्ड वृत्त कहलाता है। इस अण्ड वृत्त रूप परिधिके दो व्यास होते हैं। एक लघु व्यास कहलाता है, और दूसरा दीर्घव्यास। इस सारिणी में इस दीर्घव्यास का आधा भाग अर्थात् दीर्घव्यासार्ध दिया गया है।
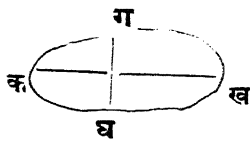
क ख = दीर्घ व्यास
ग घ = लघु व्यास

दैनिक भ्रमण का समय—हमारी पृथ्वीके समान सब ग्रहोंमें दो प्रकार की गतियाँ होती हैं। लट्टू के नाचनेके समान ये सब अपनी धुरी पर नाचते हैं, पृथ्वी अपनी धुरी पर २४ घंटेमें एक बार अपना चक्कर पूरा कर लेती है। यह इसके दैनिक भ्रमणका समय है। हमारे यहाँ २४ घंटे की एक दिन-रात होती है। पर और नक्षत्रोंका यह हाल नहीं है। सूर्य्यभी अपनी धुरी पर चक्कर लगाता है। पर चक्करमें हमारे २५ दिन सात मिनट लग जाते हैं। बृहस्पति नक्षत्रका दिन रात ९ घंटा ५६ मिनटका ही होता है। शनिग्रह १० घंटा १५ मिनटमें अपनी धुरी पर एक चक्कर पूरा करता है। इस समय को दैनिक भ्रमणका समय कहते हैं।

वार्षिक भ्रमणका समय—ग्रहोंकी दूसरे प्रकारकी गति सूर्य्यकी परिक्रमा करना है। प्रत्येक

नक्षत्र सूर्य्यके चारों ओर घूम रहा है। इस प्रकारके एक पूरे चक्करमें जितना समय लगता है उसे एक वर्ष कहते हैं। पृथ्वीका वर्ष ३६५¼ दिनका होता है पर बुध नक्षत्र हमारे ८८ दिनोंमें ही एक पूरी परिक्रमा कर आता है। बृहस्पति नक्षत्रको एक पूरी परिक्रमा करनेमें चार हज़ार तीन सौ तैतीस दिनके लगभग लगते हैं। इन्द्रको तो ६० हज़ार १८८ दिनके लगभग लग जाते हैं। पाठक अनुमान करें कि इन ग्रहोंका एक वर्ष कितना लम्बा होता है। यदि किसी मनुष्यकी अस्सी वर्ष आयु हो तो उसके सारे जीवनमें वरुण ग्रहका केवल एक दिनही समाप्त होगा। इस प्रकारकी परिक्रमाके भ्रमण कालको वार्षिक भ्रमणका समय कहते हैं।

चंद्रमाओं की संख्या—पृथ्वी सूर्य्यके चारों ओर घूमती है। पर आपने देखा होगा कि चन्द्रमा पृथ्वीके चारों ओर घूम रहा है। और ग्रहोंके साथ भी इस प्रकारके चन्द्रमा हैं। केवल बुध और शुक्रके साथ कोई चन्द्रमा नहीं है। शनिग्रहके साथ तो दस चन्द्रमा हैं, बृहस्पतिके साथ ८ और वरुणके साथ ४ चन्द्रमा हैं। यदि आप बृहस्पति या शनिग्रहमें रहते होते और फिर रातके समय आकाशमें आपको ८—१० चन्द्रमा उदय होते दिखाई पड़ते तो कैसा आनन्द आता! क्या आप इस अलौकिक शोभा की कल्पना कर सकते हैं!

ये सब चन्द्रमा एक दिशामें ही नहीं घूमते हैं। कुछ तो जिस दिशामें उनके ग्रह घूमते हैं, उसीमें वे भी घूमते हैं। इस अवस्थामें उन चन्द्रमाओंको अनुकूल-चन्द्र कहा जाता है। कुछ चन्द्र इन ग्रहोंकी गतिकी उलटी दिशामें चक्कर लगाते हैं। इन्हें प्रतिकूल चन्द्र कहते हैं। बृहस्पति ग्रहके ८ चन्द्रोंमें ७ अनुकूल चन्द्र हैं और १ प्रतिकूल चन्द्र है। वरुण में चारों प्रतिकूल हैं। शनिमें ६ अनुकूल और १ प्रतिकूल है। हमारी पृथ्वीका चन्द्र अनुकूल चन्द्र है।

बुध—यह नक्षत्र सब नक्षत्रों से बहुत छोटा है। और सूर्य्यके बहुत निकट है। इस लिए इसका देखना अति कठिन है। सूर्य्यके प्रकाशके कारण यह दिन में तो दिखाई दे ही नहीं सकता पर रातको भी देखना बहुत ही जटिल हो जाता है। इसके देखनेका सबसे उत्तम समय या तो बसन्त ऋतुके सायंकालमें या शरदऋतु के उषा कालमें होता है। दूरबीन या दूर दर्शक यन्त्र से देखने पर इसके पृष्ठ पर काले काले धब्बे दिखाई देंगे। बुध में एक विचित्रता यह है कि यह सूर्य्यके चारों ओर भी ८८ दिन में घूमता है और अपनी धुरी पर पूरा एक चक्कर लगानेमें भी ८८ दिन लगते हैं। इस प्रकार इसके एक वर्ष में इसका एक ही दिन होता है। अतः विचार कीजिये कि यहाँका कुछ भाग तो ४४ दिन बराबर सूर्य्य के सामने रहने से कितना गरम हो जाता होगा। विशेषतः जब कि यह ग्रह सूर्य्यके इतने समीप है। दूसरे भागमें ४४ दिन तक बराबर रात ही रहती होगी जिसमें कड़ाके की सर्दी पड़ती होगी। कौन कह सकता है कि इस ग्रहमें भी प्राणी बसते हैं या नहीं? यदि बसते होंगे तो न जाने वे किस प्रकारके होंगे!

शुक्र—यह कहा जा चुका है कि सब ग्रहोंमें बुध सूर्य्यके अधिक निकट है। बुधके पश्चात् शुक्रका नम्बर है। यह पृथ्वी और बुध के बीच में स्थित है। जब यह पृथ्वी और सूर्य्यके बिलकुल बीचोबीचमें आता है तो यह पृथ्वीसे केवल २७६७०००० मील के ही अंतर पर होता है।

यदि इसको दूरबीन से देखा जाय तो यह भी बुध की भांति अपना रूप बदलता दिखाई देगा। जिस प्रकार चन्द्रमाकी कलायें प्रतिदिवस परिवर्तित होती रहती हैं उसी प्रकार यह भी अपनी स्थितिभेदके अनुसार घटता बढ़ता दिखाई देता है। इस ग्रह में, ऐसा प्रतीत होता है कि बादल सदा घिरे रहते होंगे, इसीलिये वहाँ की कोई भी वस्तु साफ

साफ नहीं दिखाई देती है। इस ग्रहमें वृक्षादि हैं और कदाचित् प्राणी भी होंगे।

पृथ्वी—शुक्रके पश्चात् पृथ्वी है, इसके विषयमें कुछ भी कहना व्यर्थ है, क्योंकि यहाँ हम लोग रहते ही हैं। इस ग्रहमें जड़चेतन सभी प्रकारकी सृष्टि विद्यमान है। कुछ भाग इस ग्रहके ऐसे हैं जहाँ बहुत गर्मी पड़ती है और कुछ भाग ऐसे भी हैं जो वर्ष पर्य्यन्त बर्फ से ढके रहते हैं। मालूम नहीं, अन्य ग्रहोंके निवासी हमारी पृथ्वीके विषयमें क्या विचार रखते होंगे !!

मंगल—इस ग्रहसे हमारी निकटतम दूरी ५२३७००० मील है पर पृथ्वीसे इसका अन्तर सदा एक सा नहीं रहता हैं। यह दूरी घटती बढ़ती है। यह उन दिनों जब कि पृथ्वीसे बहुत निकट रहता है सायंकालको ही पूर्व दिशामें उदय होता हुआ दिखाई देता है, और प्रातःकाल पश्चिममें अस्त होता है। इस ग्रहकी ज्योति अङ्गारेके समान लाल है। मंगलमें हमारे ही बराबर, प्रायः २४½ घंटेके दिन रात होते हैं। पृथ्वीकी धुरीके समान इसकीभी धुरी झुकी हुई है अतः यहाँभी हमारे यहाँ के समान ऋतुएँ होती होंगी। इस ग्रहका अधिकांश पृष्ठ लाल रंगका है और कहीं कहीं हरापन भी दिखाई पड़ता है। ऐसा अनुमान है कि यहाँके ध्रुवों पर भी बर्फ जमी हुई है।

पृथ्वी और मंगलमें एक बड़ा भेद यह है कि पृथ्वी पर तीन भाग जल और एक भाग स्थल है पर मंगलमें तीन भाग स्थल और एक भाग जल है। इस प्रकार इस ग्रहमें जलकी बहुत कमी है। न जाने, वहाँके प्राणियोंका जीवन किस प्रकार चलता होगा। इस ग्रहमें वायुकी विद्यमानता भी सिद्ध की गई है। परन्तु यहाँ वायु पृथ्वीकी अपेक्षा बहुत हलकी है।

मंगल के साथ साथ दो और उप-ग्रह हैं। एकका नाम फोबस (Phobass) है जिसका व्यास ३६ मील ही है। यह मंगलसे ५८०० मीलकी दूरी पर स्थित है। यह प्रति दिन मंगलकी तीन बार परिक्रमा लगाता है। दूसरा उपग्रह डाइमस (Dimus) है जिसका व्यास केवल १० मील है। यह मंगलसे १४६००० मीलकी दूरी पर है और लगभग ३०½ घंटेमें मंगलका एक चक्कर पूरा कर लेता है।

बृहस्पति—मंगलके पश्चात् बृहस्पति है। पर बृहस्पति और मंगलके बीचमें अनेक अन्य छोटे छोटे ग्रह भी हैं। बृहस्पतिका आकार इस सौर जगत्में सबसे बड़ा है। यह पृथ्वीसे तीन सौ गुना तौलमें अधिक है। यह आकाशमें कभी कभी रात भर दिखाई पड़ता है। दूरबीनसे देखने पर पता चलता है कि इसकी मध्य परिधिके दोनों ओर लाल रंगके बादलोंकी विस्तृत मेखलायें हैं। मध्य-परिधिके निकट भी एक पीली मेखला है जिसके बीच बीच में सफ़ेद रंगके गुब्बारेसे चलते प्रतीत होते हैं। इसके दोनों ध्रुवोंके समीपस्थ आसमानी रंगके स्थल हैं। इस प्रकार बृहस्पतिके पृष्ठ तल पर रंग बिरंगे दृश्य हैं। इनमें प्रत्येक ऋतुमें परिवर्तन भी होता रहता है। बृहस्पति अभी द्रव अवस्थामें ही है और पृथ्वी के समान ठोस नहीं है।

बृहस्पतिके आठ उप-ग्रह हैं जो इसकी परिक्रमा करते रहते है। इनमें चार मुख्य हैं पर इन्हें देखना बड़ा ही कठिन है। इनमेंसे तीनका व्यास भगण काल और बृहस्पतिसे इनकी दूरी यहां दी जाती है:— देखो सारिणी (२)

[जितने हमारे दिनोंमें यह उपग्रह बृहस्पतिका एक चक्कर लगाते हैं उस समय को इनका भगण-काल कहते हैं।]

शनि—बृहस्पतिके बाद शनिकी गणना है। इसका पृष्ठतल भी बादलोंसे आच्छादित है। यह भी तरल अवस्था में है। इसकी धुरीभी पृथ्वीकी धुरीके समान झुकी हुई है अतः यहां भी अनेक

(सारिणी २)

उपग्रह	व्यास	बृहस्पतिसे मध्यमान्तर	भगणकाल
१ ला	२५८०	२६१००० मील	३ दिन १२ घंटे
३ रा	३५५०	—	७ दिन ३ घंटे
(गैनीमीड)			
४ था	२२	—	१६ दिन १८ घंटे

ऋतुएं होती होंगी। यह ग्रह एक विचित्र चक्राकार अंगूठी या वलयसे घिरा हुआ है। अच्छे दूरदर्शक यन्त्रसे देखनेसे पता चलेगाकि इसमें इस प्रकारको एकके ऊपर दूसरी तीन अंगूठियाँ हैं। पहले लोगोंका विचार था कि ये अंगूठियाँ किसी एकसार द्रव पदार्थकी बनी हुई हैं पर अब लोगोंका विश्वास है कि ये तो असंख्य छोटे उप-ग्रहोंके समूह हैं जो दूरसे परस्परमें मिले हुए दिखाई देते हैं। ये सब अपने अपने पथ पर एक नियमित रूपसे शनिकी परिक्रमा कर रहे हैं। इनके अतिरिक्त अन्य भी शनिके बहुतसे उपग्रह हैं।

वरुण—प्राचीन ज्योतिषी केवल बुध, शुक्र, पृथ्वी, मंगल, बृहस्पति और शनि—इतने ही ग्रह मानते थे। पर आजकलके ज्योतिषियोंने दो और ग्रहोंका पता लगाया है जिन्हें वे यूरेनस और नेपच्यून कहते हैं। हम इन्हें वरुण और इन्द्र कहेंगे। सन् १७८१ में विलायम हर्षेल (Herschel) ने वरुणकी खोजकी थी। इसके पृष्ठके विषयमें अभी बहुत कम और बातोंका पता चला है। कदाचित इसमें भी बृहस्पति और शनिके समान बादल औरमेखलायें हों। यह अत्यन्त गरम द्रवका बना हुआ है। इसके भी चार उपग्रह हैं।

इन्द्र—एडेम्स और लेवेरिये नामक ज्योतिषियों की गणनाके अनुसार सन् १८४५ ई० में इसकी खोजकी गई। इसके विषयमें बहुत कुछ अभी तक ज्ञात नहीं हो सका है। इसका केवल एक उपग्रह अभी तक पता चला है जो इससे २२३०० मीलकी दूरी पर है। और ६ दिनमें एक परिक्रमा पूरी कर लेता है।

अब इन सब ग्रहों का वृत्तान्त यहाँ समाप्त किया जाता है। नीचे की सारिणी में इन ग्रहोंकी सूर्य्यसे माध्यमिक दूरी दी जाती है।

ग्रह	दूरी
बुध	३८१०००० मील
शुक्र	७२३३०००० ”
पृथ्वी	६२८२०००० ”
मंगल	१५२३७०००० ”
बृहस्पति	५२०२६०००० ”
शनि	६५५४७०००० ”
वरुण	१६२१८१०००० ”
इन्द्र	३०१०६६०००० ”

इन ग्रहोंके अतिरिक्त आकाश लोकमें सहस्रों अन्यभी तारे हैं जिनका विवरण देना यहाँ सम्भव नहीं है। आकाशका सप्तर्षि मण्डल जो सात तारोंसे

मिल कर बना हुआ है सभी ने देखा होगा। यह सप्तर्षि मण्डल ध्रुवतारेकी परिक्रमा करता रहता है। ध्रुव तारा सदा उत्तर की दिशामें ही विद्यमान रहता है। रातमें अन्य तारे तो अपना स्थान परिवर्तित करते रहते हैं, पर ध्रुव तारा ऐसा है जो सदा अपने स्थान पर अचल रहता है। आकाशमें इस प्रकार अचल रहने वाले अन्य तारे भी हैं। पर इन तारों के अचल रहने का यह तात्पर्य कभी नहीं है कि इन तारोंमें गति होती ही नहीं है। यदि उनमें गति न होती तो पृथ्वीकी गतिके कारण आकाशमें इनका स्थान और इनकी दिशा परिवर्तित होती प्रतीत होती जैसे कि सूर्यके विषयमें है। सूर्य स्वयं अचल है पर पृथ्वीकी गतिके कारण यह प्रातःकाल पूर्वमें और सायंकाल पश्चिममें दिखाई पड़ता है। ध्रुव तारेकी गति पृथ्वीकी गतिकी अपेक्षा इस प्रकार नियमित है कि पृथ्वी चाहे कितनी क्यों न घूम गई हो यह तारा हमें अपनी अपेक्षासे सदा एक ही दिशामें दिखाई पड़ता है।

आकाशमें सप्तर्षि मण्डल या सात तारोंका जो समूह ध्रुवकी परिक्रमा करता हुआ दिखाई देता है, उसके सात तारोंके नाम ये हैं—

१	मरीचि	४	पुलस्त्य
२	अत्रि	५	पुलह
३	अंगिरस्	६	क्रतु
	७ वशिष्ठ		

प्रकाशका आवर्जन

[ले०—श्री राजेन्द्र बिहारी लाल, एम-एस-सी.]

काश जब एक माध्यम 'अ' में चलता हुआ किसी दूसरे माध्यम 'ब' की सतह पर पहुँच जाता है तो साधारणतः उसके दो भाग हो जाते हैं।

एक भाग तो पहले ही माध्यम 'अ' में लौट जाता है और दूसरा भाग 'ब' में दाखिल होता है।

जो पहले माध्यममें लौट जाता है उस भागके दो अंश होते हैं
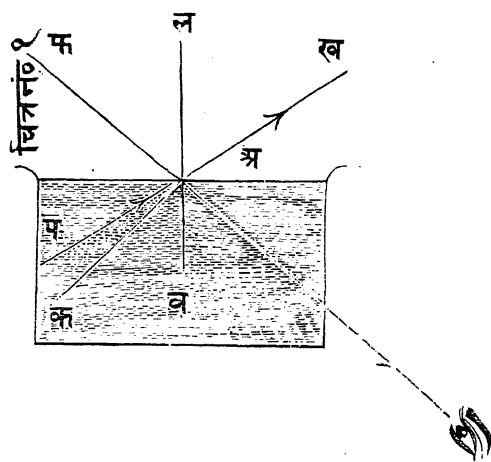
(१) एक को अनियमित परावर्तित या प्रकीर्णित (scattered) या छित्रित (diffusely-refleted) अंश कहते हैं। इस प्रकार छितराए हुए प्रकाश द्वारा ही पदार्थोंकी सतह चमकती हुई (luminous) दिखाई देती हैं। जो चीज़ें स्वयम् दीप्त नहीं हैं उनकी सतहके छितराए हुए प्रकाश ही से वह चीज़ें हमको दिखाई देती हैं।

(२) दूसरा अंश अ और ब की मिलनेके सतह से परावर्तनके नियमानुसार परावर्तित होकर

माध्यम अ में लौट आता है। इस परावर्तित प्रकाश द्वारा ब की सतह तो दीप्त नहीं हो सकती परन्तु रक्खी हुई वस्तुओंका बिम्ब अवश्य दिखाई दे सकता है, जैसे किसी दर्पणमें मुखका।

(३) प्रकाशका दूसरा भाग दूसरे माध्यम ब में दाखिल हो जाता है, और यदि वह माध्यम अपारदर्शक (Opaque) है, तो सोख लिया जाता है. और यदि पारदर्शक (Transparent) है तो आगे चलता है। प्रकाश जब तक एकही सजातीय (Homogeneous) माध्यम में रहता उसका मार्ग सीधी रेखा होता है। परन्तु प्रकाश किरण दूसरे माध्यम में दाखिल होने पर अपनी पुराना रेखा छोड़ कर एक नई रेखाको अपना मार्ग बना लेती है। दूसरे शब्दों में, जब किरणें एक माध्यमसे दूसरे माध्यममें प्रवेश करती हैं तो दोनों माध्यमोंके मिलनेकी सतह पर आकर मार्ग बदलती हैं। बस मार्ग बदलनेको प्रकाशका आवर्जन कहते हैं।

एक सीधी लकड़ीके टुकड़ेको पानीमें इस तरह रक्खो कि उसका भाग पानी के भीतर रहे और कुछ बाहर। झांक कर देखनेसे ऐसा जान पड़ेगा कि लकड़ी सीधी नहीं बल्कि पानीकी सतह पर मुड़ गई है और जो भाग पानीके नीचे है वह ऊपर उठा हुआ मालूम होगा। यहभी एक प्रकार का दृष्टि भ्रम है जिसका कारण प्रकाशका आवर्जन है।

प्रकाशका कितना अंश प्रकीर्ण होगा, कितना परावर्तित और कितना आवर्जित, यह दोनों माध्यमोंके गुणों और उनके बीचकी सतहकी दशा पर निर्भर है। हम जानते हैं कि प्रकाशके प्रति कुछ माध्यम अपार दर्शक हैं, जिनमें आवर्जित प्रकाश की मात्रा नहींके बराबर होती है। कुछ माध्यम पार दर्शक और कुछ अर्धस्वच्छ (translucent) होते हैं; खुरदरी सतह पर पड़ने वाले प्रकाशका अधिकांश तो प्रकीर्णित हो जाता है, मगर एक चिकनी सतह प्रकाशको खूब परावर्तित करती है और उसको सुपरावर्तक कहते हैं। इसके अतिरिक्त सतह पर प्रकाशकी किरणें जितनी ही तिरछी पड़ती हैं उतनाही अधिक भाग उनका परावर्तित हो जाता है। क्योंकि हम किसी सतह को प्रकीर्णित प्रकाश द्वारा ही देखते हैं, अतएव एक पूर्ण परावर्तक (perfectly reflecting) कीसतह अदृश्य होगी।

आवर्जनके नियम

'मम' दो माध्यमोंके बीचकी सतह है। एक किरण 'क' माध्यम 'अ' से 'ब' की ओर आता है। 'मम' पर पहुँच कर वह मार्ग बदल लेती है और नये माध्यममें उसका मार्ग रेखा 'ख' हो जाती है। 'क' को पतित और 'ख' को आवर्जित किरण कहते हैं। यदि इनके मिलनेके स्थान 'स' पर एक रेखा 'ल ल' सतह 'मम' से सम कोण बनाती हुई खींची जाय तो 'ल' और 'क' के बीचके कोणको पतन कोण और 'ल क' के तलको पतन तल कहते हैं। इसी प्रकार आवर्जित किरण 'ख' और लम्बके 'ल' बीचके कोणको आवर्जन कोण और उनके तलको आवर्जन तल कहते हैं। अब प्रकाश आवर्जनके नियमोंको हम इस तरह लिख सकते हैं।

(१) पतन तल और आवर्जन तल एकही होते हैं, अथवा पतित किरण, आवर्जित किरण और लम्ब एकही तलमें रहते हैं।

(२) यदि एकही रंगके प्रकाशका प्रयोग किया जाय तो $\frac{\text{ज्या पतन कोण}}{\text{ज्या आवर्जन कोण}}$ के अनुपातका मान एकही (Constant) रहता है, चाहे कोणका मान कुछही हो।

आगे हम संक्षेप रूपमें पतन कोणको 'प' और आवर्जन कोणको 'आ' से सूचित करेंगे।

दूसरे नियमके अनुसार $\frac{\sin प}{\sin आ} = \mu$.........(१)

$$\frac{ज्या\ प}{ज्या\ आ} = ना$$

ना (μ) को 'अ' का 'ब' की अपेक्षा आवर्जन संख्या कहते हैं। यदि पहिला माध्यम हवा, या ठीक ठीक शून्य (vacuum) हो तो इस अनुपातको माध्यम ब की निर्पेक्ष आवर्जन संख्या (Absolute refractive index) या केवल आवर्जन संख्या कहते हैं।

जब 'ना' (μ) का मान एकसे अधिक होता है तो 'प' कोण 'आ' से बड़ा होता है, और आवर्जित किरण व लम्बके बीच का कोण पतित किरण और लम्बके बीचके कोणसे छोटा होता है। इस अवस्थामें पतित किरण माध्यममें प्रवेश करने पर लम्बकी ओर झुक जाती है। यह देखनेमें आया है कि जब प्रकाश किसी माध्यम से दूसरे अधिक घनत्व वाले माध्यममें जाता है तो उसका मार्ग लम्बकी ओरको झुक जाता है। अतएव जब दो माध्यमोंके मिलनेकी सतह पर प्रकाशका मार्ग लम्बसे और निकट हो जाता है तो हम कहते हैं कि दूसरा माध्यम पहिलेकी अपेक्षा दृक् घना (Optically denser) है। इसके विपरीत जब प्रकाश आवर्जन में लम्बसे दूर हट जाता है तो ना एकसे कम होता है और दूसरा माध्यम पहिलेकी अपेक्षा दृक् पतला या कम घना कहलाता है।

आवर्जनके नियमों द्वारा यदि पतित किरणकी स्थिति दी हुई हो तो आवर्जित किरणकी स्थिति मालूमकी जा सकती है। और जब दो आवर्जित किरणोंका मार्ग मालूम हो गया तो किसी बिन्दुके बिम्बकी स्थिति तुरन्त निकाली जा जकती है।

प्रकाशका मार्ग (Reversible) बिलकुल उल्टा दिया जा सकता है :—

पिछले चित्रमें किरण 'क' आवर्जित होकर 'ख' के मार्ग पर जाती है। यदि किरण 'ख' को, उदाहरणार्थ एक चपटे दर्पणसे, लम्बकी दिशामें (normally) परावर्तित करके अपनेही मार्ग पर लौटा दें तो प्रयोग बताता है कि लौटी हुई किरण 'ख' ऊपर वाले माध्यममें आवर्जित होकर 'क' ही के मार्ग पर जाती है। यह निम्नलिखित साधारण नियमकी एक ख़ास मिसाल है। यदि प्रकाश कई बार परावर्तित और आवर्जित होनेके उपरान्त अपने मार्गके अन्तिम भाग पर लौटा दिया जाय, तो वह अपने पुराने मार्ग पर आदिसे अन्त तक उलटी दिशामें लौट आवेगा।

मानलो कि ऊपरसे नीचेके माध्यममें जाते हुए प्रकाशकी आवर्जन संख्या $ना_{१२}$ (Refractive ivdex $\mu_{१२}$) है, तो

$$\frac{ज्या\ प}{ज्या\ आ} = ना_{१२}$$

प्रकाशका मार्ग उलट देनेसे नया पतन कोण 'आ' हो जाता है और नया आवर्जन कोण 'प' अतएव यदि नीचेसे उपर जाते हुए प्रकाशकी आवर्जन संख्या $ना_{२१}$ हो तो

$$\frac{ज्या\ आ}{ज्या\ प} = ना_{२१}$$

इन दोनों समीकरणों से हम देखते हैं कि

$$ना_{२१} = \frac{१}{ना_{१२}}$$

अथवा, शब्दों में, एक माध्यम 'अ' से दूसरे माध्यम 'ब' में जाते हुए (प्रकाश की) आवर्जन संख्या (Refractive index) 'ब' से 'अ' में जाते हुए (प्रकाश की) आवर्जन संख्या (Refractive index) की उल्टी (Reciprocal) होती है।

गैस यवन की चाल

[ले० श्री रघुनाथ सहाय भार्गव एम. एस-सी.]

स समय हम रौञ्जन किरणों के गुणों पर विचार कर रहे थे हमने यह बतलाया था कि साधारण अवस्थामें गैस विद्युत वाहक नही होती है परन्तु जिस समय रौञ्जन किरणें किसी गैसके परमाणुसे टकराती हैं तो उनमें यापन आरम्भहो जाता है जिस कारण गैस लगभग पूर्ण विद्युत वाहक बन जाती है, परन्तु प्रश्न इस समय यह होता है कि यापन क्या है। इसको सरलतासे समझने के वास्ते किसी वस्तु के परमाणु की बनावट पर दृष्टिपात करना आवश्यक है।

आजकल परमाणुकी बनावट जिसको वैज्ञानिकों, विशेष कर भौतिक शास्त्रियोंने स्वयं स्वीकार कर लिया है, 'रदरफोर्ड' तथा 'बोर' नमूने की है। उनके मतानुसार जिस प्रकार सूर्य मंडलमें सूर्य केन्द्र समझा जाता है और उसके चारो ओर भिन्न भिन्न मार्गमें तारे इत्यादि चक्कर लगाते हैं और यह एक दूसरेकी आकर्षित शक्तिके कारण स्थिर रहते हैं उसी प्रकार परमाणुमें एक केन्द्र होता है। इस केन्द्रका भार परमाणुभारके लगभग होता है, जिसकी मात्रा धन होती है और उसके चारों ओर ऋणाणु अनेक मार्गमें चक्कर लगाते रहते हैं। इनकी मात्रा ऋण होनेके कारण इनमें और केन्द्रमें सदैव एक प्रकारका आकर्षण बना रहता है। इन ऋणाणुओं (electrons) की संख्या तत्व की परमाणु-संख्या (atomic number) बराबर होती है जिसको हम 'न' लिखेंगे। यदि प्रत्येक ऋणाणुकी मात्रा विद्युत् स्थिति इकाई (electro-static-unit) में 'म' है तो पूर्ण मात्रा (म × न) होगी। केन्द्रकी मात्रा भी म × न के बराबर होती है परन्तु अन्तर इतना ही है कि यह धन और वह ऋण मात्रा होती है। दोनों में धन और ऋण मात्रा मिलकर परमाणु को विद्युत-हीन बना देती हैं। यदि हम रौञ्जन किरणें जिनकी तरंग लम्बाई "त" हो प्रयोग में लावें जो 'व' प्रकाशके वेगसे चल रही हों तो उनकी झूलन संख्या 'झ' निम्नलिखित रीतिसे मालूम की जा सकती है।

व = झ. त

यदि इन किरणों की सामर्थ्य 'स' है तो

स = ह. झ

जहां 'ह' प्लांक स्थिर संख्या है जो ६.५५×१०^{-२७} के बराबर है। यदि किरणें किसी गैससे पार होकर जावें तो वह वस्तु के परमाणुसे टकरावेंगी। यदि गैसका परमाणु-भार कम है तो उसमें कुछ ऋणाणु ऐसे उपस्थित रहेंगे जिनको परमाणुसे पृथक् करनेमें किसी प्रकारके सामर्थ्यकी आवश्यकता नहीं होगी। ऐसी गैस पर टकरानेमें रौंजन किरणोंकी सामर्थ्य केवल ऋणाणुओं को गत्यर्थक सामर्थ्य (kinetic energy) देनेमें ही नष्ट होगी। यदि ऋणाणुका वेग परमाणुसे बाहर निकलने पर 'व' है और उसका भार 'भ' है तो

$ह झ = \frac{१}{२} भ व^{२}$

परन्तु ऐसे उदाहरण कम होते हैं। सर्वदा कुछ न कुछ सामर्थ्य केन्द्रकी आकर्षण शक्तिके विरुद्ध व्यय करनी होती है। रौञ्जन किरणोंकी सामर्थ्य केन्द्र शक्तिको विजय करने योग्य है तो ऋणाणु परमाणुसे बाहर निकलने लगते हैं। यदि वह सामर्थ्य जो केन्द्र आकर्षण शक्तिके विरुद्ध व्यय हुई है, '$स_{१}$' है तो

$ह. झ = \frac{१}{२} भ. व^{२} + स_{१}$. (१)

इस प्रकार रौञ्जन किरणोंकी सामर्थ्य वस्तुओं

से पार होने पर कम हो जाती है। यदि ऐसा हो कि रौञ्जन किरणों की सामर्थ्य स, से कम हो तो ऋणाणु परमाणुसे बाहर न निकल सकेंगे और इस प्रकार पतित रौञ्जन किरणों की सामर्थ्य भी नष्ट न होगी। यापन में ऐसी किरणें निष्फल होती हैं। केवल वह किरणें जिनकी सामर्थ्य केन्द्र शक्तिको विजय करने योग्य होती है परमाणु पर टकराने से ऋणाणु को पृथक् कर देती हैं और ऋणाणु किसी वेगसे चलने लगता है। परमाणु ऐसी अवस्थामें धन मात्रा प्राप्त करता है। ऋणाणुका परमाणुसे बाहर निकलनेको यापन कहते हैं।

यदि हम ऋणाणुके वेगकी मात्रा मालूम करना चाहते हैं तो हमको ऊपर लिखे हुए समीकरण (१) में पतित किरणोंकी सामर्थ्य अर्थात् ह. भ्क; भ गैस का परमाणुभार और स, अर्थात् वह सामर्थ्य जो ऋणाणुको परिमाणुसे पृथक करनेमें नष्ट होती है मालूम हो तो वेग निम्नलिखित रीतिसे मालूम हो सकता है।

$$व^2 = \frac{२ (ह. भ्क - स_१)}{भ}$$

यदि व की मात्रा प्रयोग द्वारा सिद्ध करनेकी इच्छा है तो यह जानना अति आवश्यक है कि यवन चाल किसको कहते हैं। यदि यवन किसी विद्युत क्षेत्रमें जो एक वोल्ट प्रति शतांश मीटर है तो उसके वेगको जो शतांश मीटर प्रति सेकंडमें हो यवनकी चाल कहते हैं। यवन चालका ज्ञान प्राप्त करनेकी कई रीति हैं परन्तु सबसे सरल रीति 'रदरफोर्ड की सरल विधि' है जिसका वर्णन नीचे किया जाता है।

प्रयोग यदि हम दो धातु पट लें और उनको १६ शतांश मीटरकी दूरी पर समानान्तर रक्खें और इन धातु पटों को कुचालक-स्तम्भों पर ठहरादें और उनमें से एक पटका बाटरीके धनोदसे एक कुँजी द्वारा सम्बन्ध करदें और बाटरीके ऋणोदको धरतीसे मिला दें; दूसरे पटका सम्बन्ध एक लिवर (Lever) द्वारा जो स्वयं भी कुचालित हो एक विद्युत मापकसे सम्बन्ध करदें और विद्युत मापकके दूसरे सिरेको धरतीसे मिलादें तो इस प्रकार दोनों पट के बीचमें बाटरीके सम्बन्ध करने पर एक विद्युत क्षेत्र उत्पन्न हो सकता है।

इस प्रकार विद्युत् सम्बन्ध करनेके उपरान्त एक भारी लटकन लेते हैं। और उसको इस प्रकार लटकाते हैं कि उसके झूलने पर पूर्वार्ध झटे के अन्तमें वह आवेश बैठनके उपचक्रके बाहरी तारोंसे मिलकर विद्युत् धाराके कटे हुये मार्गको पूर्ण कर देता है। इसे हम नीचेवाले चित्रसे भली प्रकार प्रकट कर सकते हैं:— ल-एक लटकन
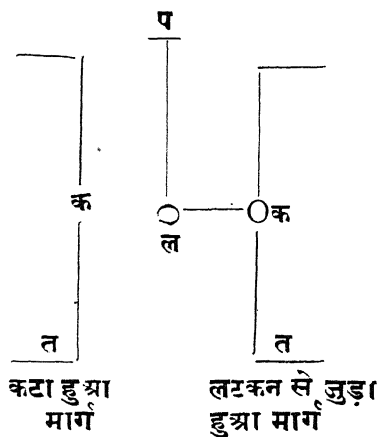
है जो प-पर एक तार द्वारा लटका हुआ है। त-आवेश बैठनके बाहरी तारका एक कटा हुआ मार्ग है जिस समय विद्युत धारा इसमें प्रवेश करानेकी चेष्टा करती है तो क-कटे हुये मार्गके कारण निष्फल रहते हैं। परन्तु जिस समय झूलता हुआ लटकन क से टकराता है तो कटाव पूराहो जाता है और आवेश बैठनके उपचक्रमें बिजली बहने लगती है। रौञ्जन—गोलेमें भी जो उपचक्रकी श्रेणी (series) में सम्बन्धित है बिजली बहने लगती है जिसके बहने पर रौञ्जन किरणें उत्पन्न होकर प्रति·

ऋणोदसे चारों ओर छितरने लगती हैं। इस गोलेके आगे एक पर्दा किरणोंको पटके ठीक आधेमें होकर जानेकी आज्ञा देता है। जिस समय यह किरणें पटकी आधी गैससे टकराती हैं तो उनमें यापन आरम्भ हो जाता है।

लटकन जिस समय दूसरी ओर चलने लगता है तो उपचक्र मार्गमें कटाव फिरहो जाता है। उपाय ऐसा किया जाता है कि जिस समय वह दूसरी ओर आता है तो लिवर से टकराता है इस लिवर द्वारा दूसरे पट और विद्युत मापक से सम्बन्ध रहता है परन्तु लटकनके लिवर से टकराने में यह संबन्ध टूट जाता है। यापन आरम्भ होने और सम्बन्ध टूटनेके बीचका समय लटकनके एक पूर्ण झोंटेके समय तथा क-और लिवर के बीचके फ़ासलेके जाननेसे मालूम किया जाता है।

पर्दे की उपस्थितिके कारण पटके सीधे आधे में यापन होता है। यवनको पट $व_1$ तक पहुँचनेमें कमसे कम त-$व_1$-मार्ग पूरा करना आवश्यक है।

$व_2$ | त | $व_1$

यदि हम मानलें कि इसमें $स_1$ समय लगता है तो जब तक $स_1$ समय उस $स_2$ समयसे कम न होगा जो रौञ्जन किरणों को उत्पन्न करनेमें और विद्युत-मापकका सम्बन्ध तोड़नेमें लगता है, विद्युत् मापकमें किसी मात्राका चिह्न न मिलेगा। यदि हम $स_2$ को धीरे धीरे बढ़ाते जावेंतो एक समय वह आवेगा कि विद्युत मापकमें बिजलीके चिह्न दिखलाई देने लगेंगे अर्थात् उसमें गति (Deflection) होने लगेगी परन्तु यह तभी हो सकता है जब कि यवन ठीक 'त $व_1$' मार्ग पूर्ण करने योग्य हो। इस समयको 'आवश्यक समय' कहते हैं। रदरफ़ोर्ड के प्रयोगमें इस आवश्यक समयकी मात्रा ०.३६ सेकेंड थी जब कि '$व_1$' पट २२० वोल्ट पर था और यवनको ८ शतान्श मीटर चलना था इसलिये

$$\text{यवनका वेग} = \frac{८}{\cdot ३६} \text{ शतान्शमीटर प्रति सेकंड}$$

$$\text{अवस्थाभेद परिवर्त्तन} = \frac{२२० \text{ वोल्ट प्रति सेकंड}}{१६}$$

$$\text{यवन की चाल} = \frac{२२०}{१६} \div \frac{८}{\cdot ३६}$$

$$= ६\cdot १ \text{ शतान्शमीटर}$$

प्रति सेकंड प्रति वोल्ट

रदरफोर्डकी रीति यद्यपि सरल है परन्तु पूर्णतः विश्वसनीय नहीं है इस लिये आजकल यवन की चाल लैंगैविन रीतिसे मालूम करते हैं। इसमें पहिले प्रयोगके समान गैस दो पटोंके बीचमें लेते हैं जिसको रौञ्जन किरणोंके सामने रखते हैं। इन पटों में कुछ अवस्थाभेद रक्खा जाता है। एक पटका सम्बन्ध बाटरीसे और दूसरेका विद्युत्मापक से दो कुंजियों द्वारा कर दिया जाता है।

पहिले बाटरी का सम्बन्ध कुंजी से कर देते हैं और पट की गैस में पहिली लिखी हुई रीतिसे यापन करते हैं। जैसा हम बतला चुके हैं यवन दो प्रकार के होते हैं, धन और ऋण। धन यवन ऋणोदकी ओर तथा ऋण यवन धनोदकी ओर चलते हैं। यदि हम यापन आरम्भ होनेके स' समय बाद पटोंके बीचके विद्युत क्षेत्र को उलटा करदें अर्थात् जो पट धन हैं उसको ऋण और जो ऋण हैं उसको धन कर दें और इस प्रकार जो मात्रा कुचालित पट (Insulated Plate) प्राप्त करेगा उसको हम विद्युत् मापकसे नाप लें तो हम ख़ानेदार कागज़ पर भुजको वह समय मानें जो यापन आरंम्भ होने और विद्युत् क्षेत्र उलटे होने के अन्तर के बराबर है और कोटि को वह विद्युत् मात्रा मानें जो कुचालित पट प्राप्त करता है तो एक विशेष वक्र मिलता है।

इस प्रयोगकी विशेषता समझनेके वास्ते हमको सबसे सरल भाव लेना होगा जिसमें हम यह मान-

लेंगे कि यवन आपस में मिलकर न्यून तम संख्या में विद्युतहीन होते हैं। जिस पटका विद्युत् मापकसे सम्बन्ध है वह कुचालित होता है। यदि हम मान लें कि विद्युत क्षेत्रका बल 'य' है तो ज्योंहा रोञ्जन किरणें गैसमें यापन करेंगी धन यवन इस कुचालित पटकी ओर 'व' वेगसे दौड़ेंगे।

अब $व = क_1 य$

इस स्थानमें $क_1$ एक स्थिर संख्या है इस लिये स समयमें यवन '$क_1$ य स' मार्ग पूरा करेगा। इसके यह माने हैं कि जो यवन $क_1$ य स दूरी पर है वहभी स समयमें पटसे आकर टकरावेगा और अपनी बिजली इस पटको देदेगा। यदि यवन छ क्षेत्र फल में बसे हुए हैं तो '$क_1$स य छ' आयतन के कुल यवन आकर अपनी बिजली देदेंगे। यदि हम मानले कि 'न' यवन प्रति आयतन हैं तो कुल यवनों की संख्या जो पटसे टकरावेगी '$क_1$ य स छन' होगी। यदि यवनकी विद्युत मात्रा 'ई' है तो पट ई ($क_1$ य स छ न) विद्युत् मात्रा पावेगा।

इसी समयमें कुछ ऋण यवन दूसरे बिजलोद यानी धनोदकी ओर चलेंगे जिसकी संख्या ऊपरकी रीतिसे निकाली जा सकती है। वह '$क_2$ य स छन' होगी जहाँ ऋण यवनका वेग '$क_2$ य' है।

यापन आरम्भ होने पर पटके बीचमें ऋण यवनकी संख्या 'न छ म' थी, यहां पर 'म' दोनों पटों के बीचका मार्ग है।

इसलिये ऋण यवन जो 'स' समयके बाद पटके बीचमें रह गये हैं उनकी संख्या

$$= (न छ म - क_2 य स छ न)$$

यदि 'स' समयके बाद हम विद्युत्को उलटा करादें तो यह बाकी ऋणयवन उस ओर चलने लगेंगे जिधर पहिले धन यवन जा रहे थे यानी कुचालित पटकी ओर जाने लगेगें और इस पटको जो ऋण मात्रा देंगे वह ई (न छ म $-$ $क_2$ य स छ न) होगी। ऋण बिजली धनकी उलटी होनेके कारण पहिली मात्राको कम कर देगी। और पूर्व मात्राजो पट प्राप्त करेगा पहिली और दूसरीके अन्तर के बराबर होगी। यदि वह विद्युत् मात्रा व० म० है तो

$$व०म० = ई (न छ म - क_2 य स छ न) -$$

$$ई (न क_1 य स छ)$$

$$= छई \left\{ नम - न य (क_1 + क_2) स \right\}$$

यदि स थोड़ी मात्रा से आरम्भ कर के धीरे धीरे बढ़ाते जायें तो जो वक्र 'व० म०' और 'स' के बीच में खींचेंगे एक सीधी लकीर होगी। ऋण मात्रा धीरे धीरे घटती जावेगी और एक अवसर पर वह ऋण से धन हो जावेगी!

यदि हम मान लें कि ऋण यवन धन यवन की अपेक्षा अधिक वेग से चलते हैं तो 'स' बढ़ाने से एक समय वह आवेगा कि विद्युत क्षेत्र उलटा करने से पहिले ही कुल ऋण यवन दूसरे पट को पहुँच जावेंगे और यह तभी हो सकता है जब यवन की मात्रा '$क_2$ य स' यातो पट के अन्तर मार्गके बराबर हो या अधिक हो। ऐसा होने पर कुचालित पट पर विद्युत क्षेत्र उलटा करने के पश्चात् कोई ऋण यवन नहीं पहुँच सकेगा और कुचालित पट पर धन मात्रा यदि 'ध-म' लिखी जाय तो

$$ध\text{-}म = छई (न क_1 य स)$$

इसके पश्चात् भी 'व० म०' और 'स' का सम्बन्ध वक्र में एक लकीर द्वारा प्रगट होगा परन्तु अन्तर यह होगा कि इस समयके बाद इस लकीरका अक्षों से झुकाव भिन्न हो जावेगा। यह अन्तर बड़ी सरलता से अनुभव किया जा सकता है और इस चिह्न का स्थान आसानीसे पहचाना जा सकता है। यह चिह्न उस स्थान पर होगा जहां $म = क_2 य स_2$

या $स_२ = \frac{म}{क_२ य}$

ऊपर वाले समीकरण में $क_२$ के अतिरिक्त हर एक के मूल्य मालूम हैं जिनकी मात्रा इनके स्थान पर रखने से $क_२$ का मूल्य मालूम हो सकता है और ऋण यवन का वेग ($व_२ = क_२ य$) भी मालूम किया जा सकता है।

धन यवन का वेग ऋण यवन की अपेक्षा कम है इस लिये इस समय भी कुछ धन यवन पटों के बीच में उपस्थित होंगे। यदि इस समय विद्युत् क्षेत्र उलटा किया जावे तो वह कुचालित पट से मुड़कर दूसरी ओर चलने लगेंगे। इससे प्रत्यक्ष है कि '$स_२$', की मात्रा बढ़ानेसे वह धन यवन कुचालित पट पर पहुँच कर उसकी विद्युत मात्रा को और बढ़ावगे परन्तु '$स_२$' को बढ़ाते बढ़ाते एक समय वह आवेगा जब कि कुल धन यवन कुचालित पट पर पहुँचनेके योग्य होंगे और यह उसी समय होगा जब—

$$म = क_१ यस_१$$

या $$स_१ = \frac{क_१ य}{म}$$

ऊपर दिये हुए समीकरण में '$क_१$' के अतिरिक्त हर एकका मूल्य मालूम है इसी लिये उनकी मात्रा उनके स्थान पर रखनेसे '$क_१$' का मूल्य मालूम हो जावेगा। इस प्रकार धन यवन का वेग '$व_१$' जो '$क_१ य$' के बराबर है वक्रसे मालूम हो जावेगा।

'$स_१$' समय पर वक्र में एक बार और झुकाव बदलेगा जिसका स्थान सरलतासे मालूम किया जा सकता है।

'यवन चाल भिन्न भिन्न गैसोंमें'

निम्न लिखित सारिणी से धन और ऋण यवन की चालका कुछ अनुमान किया जा सकता है।

वस्तु	$क_१ +$	$क_२ -$
उद्जन	६.७०	७.९५
" तर	५.३०	५.६०
हवा	१.३६	१.८७
" तर	१.३६	१.५१
कर्बन एकौषिद्	१.१०	१.१४
द्वि ओषिद्	.८१	.८५
गन्धक द्वि ओषिद्	.४४	.४१

नोट—ऊपरवाली सारिणी 'Ions, electrons, and Ioinzing Radiations' by Crowther नामी पुस्तक पृष्ठ २८ से ली गई है।

इस सारिणी से यह प्रत्यक्ष है कि उद्जन जैसी हल्की वस्तुमें ऋण और धन यवन के वेगमें अधिक अन्तर है। ऋण यवनका वेग अधिक है। यह अन्तर ज्यों २ वस्तु भारी होती जाती है कम होता जाता है यहां तक कि गन्धक द्वि ओषिद्में धन यवनका वेग ऋण यवन की अपेक्षा अधिक हो जाता है।

'पानीकी भापका यवन चालपर प्रभाव'।

यह अधिक तर देखा गया है कि पानी की भाप यवन चाल को कम कर देती है परन्तु उल्लेखनीय बात यह है कि ऋण यवन की चाल पर भापका प्रभाव धन यवनकी अपेक्षा विशेष है। इस विषय पर अन्तमें जिस समय दबाव और ताप कम

के प्रभाव पर दृष्टि पात करेंगे अधिक विचार किया जावेगा।

यवन चाल का साधारण हिसाब Approximate calculations of the mobility of Ions.)

यदि हम विचार करें कि किसी विद्युत क्षेत्रमें कुछ यवन और परमाणु उपस्थित हैं। ऐसे यवनों का वेग विद्युत क्षेत्र के कारण स्थिर नहीं रहता है। परन्तु स्थान से स्थान पर बढ़ता रहता है।

अब वेगान्तर (acceleration) $= \frac{य}{भ}$ ई

इस वेगान्तरके कारण इनका वेग बढ़ता ही रहता है परन्तु यदि इनमेंसे कोई यवन मार्गमें किसी परमाणुसे टकरावे और अपनी कुल सामर्थ्य परमाणु को दे दे तो वह वेगहीन हो जाता है। किन्तु इस दशामें वह अधिक समय तक नहीं रह सकता है। विद्युत शक्ति होनेके कारण वह वेगान्तरित होने लगता है जिसकी वजह से कुछ समय बीतने पर वह थोड़ा सा वेग प्राप्त कर लेता है और यह वेग उस समय तक बढ़ता ही रहता है जब तक वह फिर किसी दूसरे परमाणुसे न टकरावे और उसको अपनी कुल सामर्थ्य न दे दे। इन दो टक्करोंके बीच के मार्गको यवनका स्वतन्त्र मार्ग कहते हैं। यह स्वतन्त्र मार्ग सर्वदा एक नहीं रहता है। कभी अधिक और कम होता है परन्तु इनका औसत लिया जा सकता है जिसको यवन का "औसत स्वतन्त्र मार्ग (mean free path)" कहते हैं।

यदि हम मान लें कि स्वतन्त्र मार्ग पूरा करनेमें समय "स₁" और यवनका वेग "व₁" है तो

$$व_1 = व_0 + \frac{1}{2} \frac{य ई स_1}{भ}$$

जब स₁ = ० तो वेग = व₀

परन्तु इस उदाहरणमें व₀ = ०

$$\therefore \quad व_1 = \frac{1}{2} \frac{य ई}{भ} स_1$$

क्योंकि यवन गैसका अंश है इसलिये गैसके अणुओंमें जो ताप क्षोभ (thermal agitation) होता है उसमें भी यवनका कुछ भाग होगा। गत्यर्थक सिद्धान्त (kinetic theory) हमको यह बतलाता है कि यवन और गैस की गत्यर्थक सामर्थ्यका कारण एकही होनी चाहिये। साधारण ताप क्रम पर भी यह ताप वेग अधिक रहता है। हवाके उदाहरणमें अणुओंके वेगकी औसत वायु-मण्डलके दवाव और ०°श तापक्रम पर ४८५०० शतांशमीटर प्रति सेकेन्ड रहती है। चूं कि यह वेग चारों ओर एकसे ही बटे रहते हैं इसलिये यवनकी संख्या जो किसी तलको एक ओरसे दूसरी ओर और दूसरी ओरसे पहिली ओर पार करेंगे बराबर होगी; और इसका परिणाम यह होगा कि वहां पर विद्युत धारा प्रवाहित न होगी इसलिये जिस समय बिजलीके प्रवाह पर विचार किया जाता है तो उस समय ताप क्षोभ पर विचार करना आवश्यक नहीं।

यदि हम मानलें कि औसत स्वतन्त्र मार्ग "म₁" है और यवन का वेग व' है तो वह समय जो "म₁" मार्ग पूरा करने में लगेगा म₁/व' होगा। परन्तु ताप क्षोभ वेग उस वेग की अपेक्षा जो विद्युत क्षेत्रके कारण है बहुत अधिक है। यदि विद्युत क्षेत्र १०० वोल्ट प्रति सेकेन्ड हो तो इस वेगकी मात्रा कुल १६० शतांश मीटर प्रति सेकेण्ड तक हो सकता है। इसलिये व' का मूल्य लगभग ताप वेग "व" के ही बराबर होगा और।

$$स_1 = \frac{म_1}{व} \qquad (१)$$

अब समीकरण (१) से

$$व_1 = \frac{1}{2} \frac{ई म_1 य}{भ व}$$

$$\text{और यवनकी चाल} = \frac{1}{3}\frac{\text{ई म}_1}{\text{भ व}} \quad (२)$$

$$\text{लेकिन म}_1 = \frac{1}{\sqrt{2}}\frac{1}{\text{स}\pi\text{र}^2}$$

यदि हम औसत स्वतन्त्र मार्ग को मालूम करनेके इच्छुक हैं तो हमको दो बातें जाननी होंगी। यहाँ "स" प्रति आयतन अणुओं की संख्या और "र" हर एक अणु का अर्धव्यास है औसत स्वतन्त्र मार्ग मालूम करनेके पश्चात् उसकी मात्रा हम ऊपर दिये हुए समीकरण सं० २ में रख दें तो हमको यवनका वेग मालूम हो जावेगा। इस सूत्र द्वारा जो यवनकी चाल मालूम होती है अभ्यास रीतिसे मालूमकी हुई मात्रासे अधिक पायी जाती हैं। प्रथम तो यह कारण है कि जो कल्पना हमनेकी थी कि एक टक्करमें कुछ समय नष्ट नहीं होता पूर्णतः सत्य नहीं है; दूसरा कारण यह है कि विद्युत यवन का औसत स्वतंत्र मार्ग विद्युत-हीन अणुओं के औसत स्वतन्त्र मार्ग की अपेक्षा कम होगा क्योंकि विद्युत यवनमें सदैव एक प्रकारकी आकर्षण शक्ति उपस्थित रहती है।

यवन चाल पर दबावका प्रभाव

$$\text{यवनकी चाल} = \frac{1}{3}\frac{\text{ई म}_1}{\text{भ व}}$$

परन्तु गैसोंके गत्यर्थक (kinetic theory of gases) सिद्धान्त के अनुसार औसतस्वतन्त्र मार्ग $\frac{1}{\text{द}}$ पर निर्भर है यहां पर "द" से अर्थ दबावका है, यदि हम दबाव बढ़ावेंगे तो स्वतन्त्र मार्ग कम और दबाव कम करेंगे तो मार्ग बढ़ जावेगा।

यदि यवनकी प्रकृति स्थिर रहे तो यवनकी चाल "क" का $\frac{1}{\text{द}}$ पर निर्भर रहना आवश्यक है। दूसरे शब्दोंमें यों कहिये कि गुणनफल "द क" एक स्थिर संख्या होगी! लैंगेविन रीतिसे अनेक दबावों पर यवनकी चाल निकाली जा सकती है।

इन परिणामों से खींचे गये वक्रों से प्रत्यक्ष है कि गुणनफल "द क_1" धन यवनके प्रयोगमें लगभग स्थिर है, वह दबाव पर अधिक निर्भर नहीं है। यदि दबावकी कमसे कम मात्रा ली जावे तो भी "द क_1" में विशेष अन्तर नहीं होता है। यदि धन यवन छोटे छोटे भागोंका एक समूह होता और यह भाग कुछ अन्तर पर उपस्थित होते तो अवश्य इन धन यवनोंके समूहपर दबावका प्रभाव होता। परन्तु ऐसा न होनेसे स्पष्ट होता है कि धन यवन एकही विद्युत् अणु का बना हुआ है।

लेकिन ऋण यवनके साथ वायु मण्डलके दसवें हिस्सेसे कम दबाव होनेसे गुणनफल "द क_2" बहुत जल्दी बढ़ने लगता है और जितना स्वतन्त्र मार्गके बदलनेसे ऋण यवनके वेगमें अन्तर होगा उससे अधिक होता है। इससे प्रत्यक्ष है कि स्वतन्त्र मार्ग के बदलने के साथ साथ कोई दूसरा कारण और है। मालूम होता है कि ऋण यवन स्वयं डील-डौल में दबाव कम होने पर छोटे होते जाते हैं। चूंकि यवन वायु मंडल दबाव पर एक अणु के क़दके बराबर होते हैं तो वह दबाव कम होनेपर अणु के क़दसे कमहो जावेंगे।

हम लेखके प्रारम्भमें बतला चुके है कि प्रत्येक वस्तुके परमाणु एक केन्द्र और कुछ ऋणाणुओं मिल कर बनते हैं। केन्द्र की विद्युत मात्रा धन और ऋणाणुओं की ऋण होती है। यह ऋणाणु केन्द्रके चारों ओर भिन्न भिन्न मार्गमें चक्कर लगाते हैं। इन ऋणाणुओंका भार एक उद्जन परमाणुके भारका $\frac{1}{1800}$ होता है। जिस समय यापन होता ऋणाणु स्वतन्त्र होकर परमाणुसे पृथक् हो जाता है। इस समय बाकी भागमें धन मात्राका भाग बढ़ जाता है। इस भागको धन यवन कहते हैं। ऋण यवन इस समय बिलकुल स्वतन्त्र होता है लेकिन अधिक बिजली होनेके कारण वह अधिक समय तक इस दशामें नहीं रह सकता है। इधर उधर घूमते समय जब वह किसी विद्युत हीन अणु से

टकराता है तो वह उसीमें मिल जाता है। जिसकी मात्रा ऋण हो जाती है। क़द एक अणु के बराबर हो जाता है।

इस समय यह ध्यान रखनेकी आवश्यकता है कि धन यवन अणु से ही बनते हैं लेकिन अणु यवनका जीवन एक ऋणाणुकी अवस्थासे आरम्भ होता है अन्तमें अणु तक पहुँचता है। चूँकि ऋणाणुका भार थोड़ा होता है इसलिये किसी विद्युत क्षेत्रमें स्वतन्त्र अवस्थामें इसका वेग बहुत अधिक होता है परन्तु किसी अणु से मिल जाने पर इसके वेगमें विशेष अन्तर पड़ जाता है। जिस समय दबाव ज्यादा होता है तो ऋणाणु की एक स्वतन्त्र अवस्था में विशेष समय तक चलने की सम्भावना कम होती है, जिसके कारण ऋण यवनकी चाल कम हो जाती है परन्तु दबाव कम करने पर स्वतन्त्र अवस्थाका समय बढ़ जाता है और ऋण यवनकी चाल ऐसी अवस्थामें अधिक हो जाती है। इसी कारण दबाव कम होने पर वक्र में झुकाव अचानक आशासे अधिक बढ़ जाता है।

यवन चालपर तापक्रमका प्रभाव

जिस समय हम यवनकी चाल पर तापक्रम का प्रभाव विचार करते हैं तो हमको ऊपर दिये हुये सिद्धान्तसे परिणाम पर पहुँचनेमें अधिक सहायता प्राप्त होती है। तापक्रम बढ़नेपर क्षोभ विशेष हो जाता है जिसके कारण स्वतन्त्र अवस्था का समय कम हो जाता है जिसका ऋण यवनके वेग पर अधिक प्रभाव पड़ता है परन्तु धन यवन पर तापक्रम का प्रभाव विशेष नहीं होता है।

ऊपर दिये हुये सिद्धान्त को कई बार असत्य सिद्ध करनेका एक दो वैज्ञानिकोंने उद्योग किया है परन्तु लोइब (Lobe) ने थोड़ा समय हुआ बता दिया है कि इस सिद्धान्तका असत्य होना असम्भव है।

उन्होंने भिन्न भिन्न गैसोंमें ऋण यवन और अणुओं के टक्करकी संख्या दी है जिसके उपरान्त वह अणु में मिल जाता है। यहां तक कि शुद्ध उदजन और ओषजनमें ऋण यवन अणु से बहुत कम मिलकर एक होते हैं। दूसरे शब्दोंमें इन गैसोंमें ऋण यवनकी स्वतन्त्र दशा दूसरी गैसोंकी अपेक्षा अधिक समयतक रहनेकी सम्भावना है। इसी कारण ऋण यवनका वेग इन में विशेष पाया जाता है। वायु मण्डल दबाव पर वह ७५० शतांश मीटर से अधिक रहती है। जे. जे. टामसन जिस समय धन किरणों पर प्रयोग कर रहे थे उन्होंने ऊपर दी हुई बात देखी थी।

सूर्य्य

उसके धब्बे तथा गति।

[ले०—श्री प्रेम बहादुर जी]

में जो प्रकाश मिलता है उसका दाता सूर्य्य है जिसे हम प्रतिदिन देखा करते हैं। परन्तु साधारणतया उसे देखनेसे हम उसके वास्तविक रूपको नहीं जान सकते हैं। अगर उसके सच्चे रूपको जाना जाय तो चकित हुए बिना कोई न रहेगा।

यह सूर्य्य बिलकुल गोलाकार है। ऐरी (Sir G. Airy) का कहना है कि "अगर कोई मनुष्य किसी प्रकारसे उसकी गोलाईमें नाम मात्रका भी अन्तर सिद्ध करे तो यह जानना चाहिये कि उसके साधन अपूर्ण तथा अशुद्ध हैं।" इस गोलाकार वस्तुका व्यास ८५२६०० मील है। यह संख्या

हमारी पृथिवीके व्याससे कई गुनी है। इसका घनफल हमारी पृथिवीके घन फलसे १२,५२,६०० गुना अधिक है। इसी प्रकार इसका भार (mass) पृथिवीसे ३, १६,००० गुना अधिक है।

जिस प्रकार पृथिवीमें आकर्षणशक्ति है उसी प्रकार सूर्य्यमें भी है। अगर पृथिवीकी आकर्षण शक्तिको इकाई माना जाय तो सूर्य्य पर उसका मान २७·१ होगा। अर्थात् अगर कोई वस्तु सूर्यके धरातलके पास ऊँचाईसे छोड़दी जाय तो पहले सैकिन्डमें वह ४३३ फ़ीट गिरेगी और ८७२ प्रति सैकिन्डकी गतिको प्राप्त करेगी। इसीको गणित की भाषामें ऐसे कह सकते हैं कि सूर्य्य पर आकर्षण द्वारा जनित वेगान्तर (acceleration due to gravity) ८७२ फीट प्रति सैकिण्डमें है।

सूर्य्य अति चमकीला पदार्थ है। साधारणतया उसे देखनेसे इससे अधिक कुछ भी नहीं जान पड़ता, परन्तु यदि एक दूर-दर्शक यन्त्र द्वारा उसकी परीक्षा की जाय तो उसके धरातलपर बहुतसे धब्बे दिखाई देंगे। ये धब्बे काले, टेढ़े-मेढ़े, तथा भद्दे हैं और अपने रूप, स्थान व आकार में लगातार बदलते रहते हैं। इनका परिमाण बहुत बड़ा है और सूर्य्य धरातलके एक बड़े भाग को घेरे हुऐ हैं। कोई कोई हमारी पृथ्वीसे कई गुने हैं। मनोरंजनार्थ इतना कहना पर्याप्त होगा कि हरशेल ने (Sir W. Herschel) सन् १७७६ में एक धब्बा देखा जो कि पृथ्वीके व्यासके छः गुनेसे ५०००० मील अधिक था।

इसके उपरान्त शीनरने ऐसे कई धब्बे देखे जिनकी संख्या उसने ५० के लगभग बतलाई है। इनके बीचका भाग बहुत काला है; इसे केन्द्र (न्यूक्लियस) कहते हैं। इस भागके चारों ओर कालापन कम होता गया है; यह छाया-भाग (umbra) कहलाता है। छायाभागके भीतर केन्द्रके पास का हिस्सा बाहिरीसे कुछ अधिक चमकीला है। छायाभागके समाप्त हो जाने पर बहुत चमकीला भाग आ जाता है।

पहले लोगोंका विचार था कि ये धब्बे सूर्य्य की किसी विशेषताको प्रगट नहीं करते, परन्तु ज्योतिषी लोग बहुत सोच विचार करने पर इस परिणाम पर पहुँचे कि सूर्य्य एक गतिमान पदार्थ है, और ये धब्बे उसकी गतिको प्रगट करते हैं। तथा उसकी कालावधिको भी बतलाते हैं। अगर वर्षके किसी एक समयपर इनका निरीक्षण किया जावे तो प्रगट होता है कि ये एकसे एवं समानान्तर वक्रपथका अनुसरण करते हैं जो कुछ कुछ अण्डाकार है और २७½ दिनमें उसी स्थान सापेक्ष (relative position) पर लौट आते हैं। नवम्बर व दिसम्बरमें इनका मार्ग एक सीधी रेखा तथा मार्चमें उत्तरकी ओर उभरा हुआ होता है; फिर मई व जूनमें सीधा होकर दक्षिणकी ओर झुक जाता है।

ये धब्बे प्रति वर्ष उसी मार्ग का नये सिरेसे अनुसरण करते हैं और किसी ऋतु विशेषपर उसी स्थानपर पाये जाते हैं। यह गति नियमित रूपसे लगातार हुआ करती है।

गेलीलियोने इस बातको स्वीकार किया है कि सूर्य्य अपनी कीली पर लगातार गति किया करता है। यह कीली उपर्युक्त अण्डाकार मार्गकी ओर कुछ झुकी हुई है और ये काले धब्बे सूर्य्य धरातल ही पर हैं। सूर्य्यकी गति कभी घटती बढ़ती नहीं है वह सर्वदा एकही रहती है। दक्षिण की ओर उत्तरकी अपेक्षा कम गति है।

ये धब्बे क्या हैं? इस विषय पर ज्योतिषियों-के भिन्न मत हैं। इनका दूर-दर्शक यंत्र द्वारा अध्ययन किया गया है। शीनर (Scheiner) और टेंवलियसने निरीक्षण का परिणाम निम्न लिखित दिया है:—

१. प्रत्येक धब्बेमें एक केन्द्र (न्यूक्लियस) तथा छाया भाग (अम्बरा) है जिनके बीचकी सीमा बहुत शुद्ध व ठीक ठीक बनी हुई है। २. इनका रूप सर्वदा बदला करता है और घटाव-बढ़ाव बहुतही शनैः शनैः होता है। ३. यद्यपि इनकी बहिः सीमा बहुतही टेड़ी मेड़ी है तो भी उसमें तीखे कोणोंका अभाव है। ४. कोई धब्बा कभी कभी दृष्टिसे लोप भी हो जाता है। जब ऐसा होता है तो पहले केन्द्र छिपने लगता है फिर छाया भाग।

डा० विलसनने भी इनका अध्ययन किया है। उनका कहना है कि सूर्य्य-गोल (solar globe) में से सचमुच ही कुछ हट जाता है और ऐसा होना ही धब्बे दिखाई देने कारण है। यह भी उनका विचार है कि सूर्य्य एक काले केन्द्रका बना हुआ है जोकि कुछ गहराई तक एक चमकीले पदार्थसे ढका हुआ है, यह चमकीला पदार्थ द्रव (fluid) नहीं है। इसमें कभी कभी ज्वालामुखी आदि उपद्रवों द्वारा छिद्र हो जाया करते हैं। इनसे सूर्य्यका केन्द्र दिखाई देने लगता है। बस यही धब्बों कारण है। इसके चारों ओरसे जब निरीक्षकको अर्धप्रकाश मिलता है तो छाया भाग दिखाई देता है। इन पर जब तिरछी दृष्टि पड़ती है तो धब्बोंमें घटाव चढ़ाव प्रतीत होता है। जब कोई धब्बा लोप होने लगता है तो प्रथम केन्द्र छिपने लगता है फिर छायाभाग तथा उसके प्रगट होने पर ये घटनायें उलटे प्रकार से होने लगता हैं।

हरशेल की कल्पना है कि ये धब्बे सूर्य्यके धरातल परके पहाड़ हैं जोकि ३०० मील ऊँचे हैं और सूर्य्यके आकर्षण व उनकी कीलीपरकी गतिके कारण बहुत दृढ़ रूपसे स्थिर हैं। एक बार अगस्त मासमें उसे मालूम हुआ कि ये धब्बे सूर्य्यकी अपार दर्शकभूमि हैं तथा चमकीला भाग एक आवरण (atmosphere) है जो कभी कभी फट जाता है और इस प्रकार उसके फटजाने पर हम सूर्य्यके दृश्यको पाते हैं। इससे उसने परिणाम निकाला है कि सूर्य्यका आवरण बहुत ही विस्तीर्ण लचकीले द्रव पदार्थ (fluid) का बना हुआ है जो-कि बहुत पारदर्शक है। इसी पारदर्शक भागसे हमें प्रकाश मिलता है। आवरणकी ऊँचाई १८४३ से २७७५ मील तक है। इस सिद्धान्तके अनुसार सूर्य्य दूसरे आकाशस्थ गोलों (heavenly bodies) से अपने ठोसपन, वायु मंडल, पहाड़ व घाटियों के धरातलमें मिलता जुलता है। उसकी गति तथा आकर्षण के नियम भी वैसे ही हैं जैसे कि उनके। यह केवल आकारमें बड़ा है।

उसका ऐसा अनुमान है कि सूर्य बादलोंके (solar clouds) दो आवरण हैं। जोकि भीतरी व बाहिरीके नाम से पुकारे जा सकते हैं। भीतरी आवरण हमारे वायु मंडलसे मिलता जुलता है और अपारदर्शक है तथा बाहिरी उसी प्रकाश का भंडार है जिसे हम उपयोगमें लाते हैं। भीतरी आवरण सूर्य-देह (body of the sun) को बाहिरी आवरणके तापको चमकसे बचाये रहता है। और बाहिरीके आधे प्रकाशको पीछा लौटा कर हमारे प्रकाशकी वृद्धि करता है धब्बोंके विषयमें उसका विचार है कि एक लचकीली गैस तैयार होती है और चमकीले पदार्थसे मिलकर उसका विश्लेषण किया करती है। इस प्रकारसे काले धब्बे दिखाई देने लगते हैं।

श्वेब (Schwabe) ने ४५ वर्ष तक धब्बोंका अध्ययन करके खोजकी कि इनकी गतिकी काला-वधि (period) है अर्थात् किसी विशेष समयके बाद ये अपनी चालका नवीन रूपसे अनुसरण करते हैं। ये घटते बढ़ते रहते हैं और यह चक्कर ११ वर्षमें पूरा होता है। घटावके समय सूर्य्यका धरातल न केवल स्वच्छ ही रहता है प्रत्युन बहुत चिकना हो जाता है। तत्पश्चात् धब्बेदार अवस्था धीरे धीरे आने लगती है और ४ या ५ वर्षमें बढ़ाव पूरा जाता है फिर धीरे धीरे कमी होने लगती है।

और इस प्रकार लगभग ११ वर्षमें घटावकी अवस्था आ जाती है। यह अभी तक नहीं मालूम हो सका है कि गति की ठीक ठीक कालावधि क्या है।

कहा जाता है कि इन धब्बोंका सम्बन्ध पृथ्वी पर की कई घटनाओं से है। इनकी कालावधि पृथ्वी पर के चुम्बकीय तूफ़ानों से विशेषतया सम्बन्धित है।

रंगवीक्षण यंत्र (स्पैक्ट्रस्कोप) द्वारा परीक्षा करनेसे जाना गया है कि हमारे पास प्रकाश एक चक्कर (orb) से आता है जोकि अत्यन्त श्वेत प्रकाश से चमकता रहता है। इससे अनुमान होता है कि सूर्य्य एक ठोस अथवा वहनशील (liquid) पदार्थ है। अगर वह गैसका बना हो तो उस पर अत्यन्त अधिक दवाब होना चाहिये। अनुमानसे दवाब इतना अधिक है कि उसका दृष्टान्त हमें पृथ्वीतल पर नहीं मिलता है। इन्द्र धनुषसे प्रगट होता है कि सूर्य एक चमकीला पदार्थ है और चारों ओरसे मिश्रित वायुओं (complex vaporous substances) से घिरा हुआ है जिनका ताप क्रम सूर्य्य से कम है। सूर्य वायु मंडलमें बहुतसे तत्व वाम्पय रूपमें विद्यमान हैं जिनमें सूर्य्यसे कम गरमी है। अभी तक मगनीसम् (Mg, म), सैन्धकम् (सै, Na), लोहम् (लो, Fe) ताम्रम् (Cu, ता), उदजन, (उ, H), भारम् (Ba, भ), खटिकम् (ख, Ca), स्फटम् (Al, स्फ) मांगनीज़ (मा, Mn), रागम् (रा, Cr), कोबल्टम् (Co, को), नक़लम् (Ni, न), दस्तम् (द, Zn), और टिटेनम् (Ti, टि) तथा अन्य भी कई तत्व सूर्य्य वायु मंडलमें पाये गये हैं। इन तत्वोंके वाय्वय रूप (vapourous) में विद्यमान होने से हमें अत्यन्त उष्णता की सूचना मिलती है।

आरहीनियसका विद्युत् पृथक्करण सिद्धान्त

[ले० श्री वा० वि० भागवत, एम० एस-सी, शिवाजी-क्लब इन्दौर]

(पूर्व से आगे)

प्रथम प्रवेश

विद्युत्घोल और विद्युत पृथक्करण
(Electrolytes and electrolysis)

यदि परगैप्यम्के तार बाटरीके दोनों बिजलोदोंसे लेकर अन्य धातुके तारसे जोड़ दिये जांय तो उनमेंसे विद्युत धारा प्रवाहित होने लगती है। किन्तु इससे परमाणुका चलन नहीं होता। यदि वे दोनों बिजलोद गन्धकाम्लमें डुबाये जायं तो तुरन्त ही रासायनिक क्रिया आरंभ हो जाती है और उसके साथ ही परमाणु भी भ्रमण करने लगते हैं। एक बिजलोदसे ओषजन निकलता है तो दूसरेसे उदजन निकलता हुआ दिखाई देता है। यदि यह क्रिया ऐसे ही चलने दी जाय और घोल को हिलाया न जाय तो हम यह देखेंगे कि जहां बिजलोदसे ओषजन निकलता है वहीं पर गन्धकाम्ल एकत्रित हुआ है।

ऊपर दिये हुए दृष्टान्तसे यह मालुम होता है की विद्युत् चालकता (Electrolytic conduction) दो प्रकारकी होती है। एकमें परमाणु भ्रमण नहीं करते हैं। इस प्रकारको धातुचालकता (metallic Conduction) कहते हैं। अन्य प्रकारमें परमाणुओंका भ्रमण तथा रासायनिक क्रियाभी होती है। उसको 'विद्युतात्मक चालकता' या विद्युत् चालकता (Electrolytic con-

duction) कहते हैं। हमारा संबंध इस लेखमें केवल विद्युतात्मक चालकतासे ही है।

बहुत थोड़े पदार्थ पूर्ण पवित्र स्थितिमें विद्युत् चालकता बताते हैं। गलाये हुए (fused) लवण और क्षार उसके अपवाद हैं। गलाया हुआ रजतहरिद विद्युत चालकता बताता है। इसी प्रकारसे डेवीने क्षारधातुओंका (Alkali metals) शोधन किया। क्षार और अम्लोंके तथा लवणोंके घोल विद्युत् चालकता बताते हैं। पानी पवित्र स्थितिमें विद्युत् चालकता नहीं बताता। यही हाल गन्धकाम्ल का भी है। लेकिन यदि दोनों मिलाये जांय तो बना हुआ घोल उत्कृष्ट चालकता बताता है। पानीमेंके लवणोंके घोल विद्युत् चालक रहते हैं। यदि पानीके अतिरिक्त अन्य घोलक (solvant) जैसे सिरकोन, मद्य इत्यादि लिये जांय तो यह चालकता बहुत कम परिमाण में दृष्टिगोचर होती है। नर्न्स्ट और टामसनने यह बताया कि जिस घोलककी माध्यामिक-संख्या (Dilectric constant) अधिक हो उसके घोल अधिक चालकता बताते हैं। लेकिन यह नियम सर्वसामान्य नहीं है। इसके बहुतसे अपवादभी हैं।

जिस बिजलोद (Electrode) पर ओषजन निकलता है उसको धनोद (Anode) कहते हैं और जिस पर उदजन (Hydrogen) निकलता है उसको ऋणोद (cathode) कहते हैं। इतस्ततः भ्रमण करनेवाले परमाणुओंको यवन (ions) कहा जाता है। और जो यवन ऋणोदकी तरफ जाते है उनको धनयवन और जो धनोदकी तरफ जाते हैं उनको ऋणयवन कहते हैं।

विद्युत् शक्तिकी चालकताके विषयमें फैरेडेने दो सिद्धान्त निर्धारित किये हैं। उनको 'फैरेडेके विद्युत-भ्रमण-सिद्धान्त' कहते हैं। प्रथम सिद्धांतके अनुसार रासायनिक क्रियाका परिमाण, विद्युत शक्तिके परिमाण पर पूर्णतः अवलम्बित है। जितनी विद्युत् शक्तिका परिभ्रमण होगा उसी अंशमें रासायनिक क्रिया भी होगी। यदि विद्युत शक्तिका एक ही अंश भिन्न भिन्न विद्युत चालक घोलोंमें से प्रवाहित किया जाय तो जो पदार्थ उपलब्ध होते हैं उनका परस्पर अंश उसी परिमाणमें होता है, जिन परिमाणोंमें उनके संयोग तुल्यांकभार (equivalent weights) होते हैं। यह फैरेडेका दूसरा सिद्धान्त है। यदि ९६५४० कूलम्ब विद्युत् शक्ति प्रवाहितकी जाय तो उदजनका १ ग्राम अंश प्राप्त होगा। इस परिमाण को एक फैरेडे कहते हैं।

फैरेडे = ९६५४० कूलंब।

जब विद्युत् शक्ति विद्युत घोलमें से भ्रमण करती है तब यह देखा गया है कि उपस्थित पदार्थ एक ही समय दोनों बिजलोदों पर बाहर आते हैं। यह हमको मालूम है कि धनोदपर ऋणयवन और ऋणोद पर धनयवन उपस्थित होते हैं। लेकिन यह यवन भिन्न भिन्न होकर भी एक ही समय अपने अपने बिजलोदों पर उपस्थित होते हैं। इस से हम यह नहीं कह सकते कि दोनों यवनोंकी परिभ्रमणता एकही होगी, या भिन्न भिन्न, क्योंकि दोनों यवनोंको परिभ्रमणता कुछ भी हुई तो भी वह एक ही समय दिखाई देंगे। यह बात निम्न उदाहरणोंसे स्पष्ट होगी।

(१) प्रथम यह समझिये कि दोनों यवनोंकी परिभ्रमणता एक ही है:—

+	+ + + +	+ + + +	−
	− − − −	− − − −	
	क	ख	
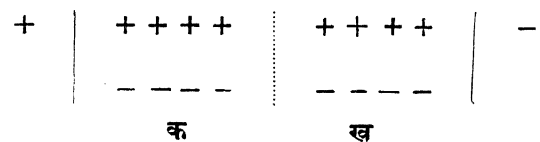
क और ख यह दो कमरे हैं। हर एकमें समझिये की चार चार धनयवन और ऋण यवन है। समझिये कि धनयवन और ऋणयवनकी परिभ्रमणता दो है। अर्थात् यदि एक सेकंडमें दो धनयवन

ऋणकी तरफ जायं तो इस समय दो ऋणयवन धनोदकी तरफ जाते हैं। इस हालतमें दोनों कमरेकी अवस्था निम्न चित्रसे मालूम होगी।

+	++	++++	–
– –	– – – –	– –	++
	क	ख	

यह देखा जा सकता है कि दोनों कमरोंमें, धनयवनोंकी संख्या जिनके ऋणयवन साथी दार हैं वह एक ही है। और इसी कारण धनोद पर जितने ऋणयवन बिना साथियों के हैं उतने ही धनयवन ऋणाद पर अकेले ही हैं। इसी कारण दोनों ऋणयवन और धनयवन सम परिणाममें (equivalent amounts) उपस्थिति होते हैं। क स्तंभसे दो धनयवन ऋणोदकी तरफ चले गये अर्थात् दो ऋणयवन बिना साथियोंके हुए वैसेही दो ऋण यवन "ख" कमरेसे आये। वह भी बिना साथियों के हैं। कुल संख्या चार हुई। वैसे ही चार धन यवन ऋणोद पर बिना साथीके हैं अर्थात् एकही समयमें चार धनयवन और चार ऋण यवन उपस्थित होते हैं और इसी लिये उनका अंश सम परिमाण में है।

(२) अब यह समझिये कि दोनों यवनों की परिभ्रमणता भिन्न भिन्न है। और ऋण यवनकी परिभ्रमणता धन यवनसे दुगनी है। अर्थात् यदि एक सेकंडमें एक धनयवन ऋणोद पर जा सके तो उसी समयमें दो ऋणयवन धनोद पर उपस्थित होंगे। पहिले दृष्टांतके अनुरूप प्रथमतः दोनों कमरों की स्थिति वहाँ बताये हुए प्रकार ही है।

यवनोंके चलनताके पश्चात्की स्थिति निम्न चित्रसे मालूम होगी।

जब क कमरेसे एक धनयवन ऋणोदकी तरफ जाता है उसी समय दो ऋणयवन ख कमरेसे धनोद पर आते हैं। अर्थात् बिना साथियों वाले ऋणयवनोंकी कुल संख्या तीन है। इसी प्रकार बिना साथ वाले धनयवनोंकी संख्या ऋणोद तीन ही है। इसलिये धनयवन और ऋणयवन एकही समय और समपरिमाणमें दोनों बिजलोदों पर उपस्थित होते हैं।

इसी प्रकार यदि और ऋणयवन और धनयवन की कुछभी परिभ्रमणता क्यों न हो तो भी एक ही समय और समपरिमाणमें वे उपस्थित होंगे। किसी भी पदार्थकी चालकता 'चालक यंत्रसे' (conductivity apparatus) निकाली जा सकती है। इसका मूल तत्व ह्विस्टनब्रिज पर अवलंबित है। ह्विस्टनब्रिजके अनुसार जिस पदार्थके घोलकी चालकता निकालना हो उसकी बाधा (Resistance) निकाली जाती है। लेकिन उसमें धारा का उपयोग नहीं कर सकते। इसलिये उसके स्थानमें वाणी ग्राहक (टेलिफोन) का उपयोग करना अधिक उचित है। चालक यंत्र नीचे बताया गया है।
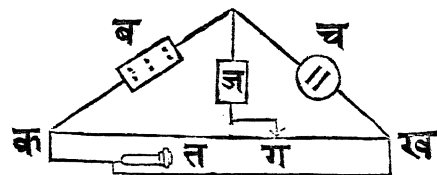
इसमें ब बाधा-सन्दूकची है जिसमें बाधायों की मात्रा यथोचित परिवर्तित की जासकती है। च चालकता पात्र है जिसमें वह द्रव रक्खा जाता है

जिसकी चालकता मालूम करनी होती है। ज आवेश बेठन द्वारा उलटी सीधी धारा द्रव में प्रवाहित की जाती है! त वाणीग्राहक है; क ख एक लम्बा तार है। इस चित्रके अनुसार सम्बन्ध किया जाता है। ग स्थान पर एक चुटकी है जिसको दबा देने से ज का सम्बन्ध चालकता पात्र, बाधा, और वाणी ग्राहकसे होजाता है। ग स्थिति खिसकाकर क ख तारके किसी बिन्दु पर की जा सकती है। इस प्रकार वह बिन्दु निकाला जाता है जिस बिन्दु पर वाणी। ग्राहकमें कुछ भी ध्वनि न सुनाई दे। मान लीजिये कि ग स्थिति ऐसी ही है जहां कुछ भी ध्वनि नहीं सुनाई देती है। ऐसी अवस्थामें—

$$\frac{\text{ब की बाधा}}{\text{च की बाधा}} = \frac{\text{क ग}}{\text{ग ख}}$$

$$\therefore \text{च की बाधा} = \frac{\text{ग ख (ब की बाधा)}}{\text{क ग}}$$

इस प्रकार बाधा निकाल ली जाती है, जिसका व्युत्क्रम करने से चालकता निकल सकती है।

एक बात ध्यान देने योग्य है कि इस प्रयोगमें हम विद्युत शक्तिका सीधा प्रयोग नहीं कर सकते। लेकिन उलटी सीधी धारा का उपयोग किया जाता है। इस लिये आवेश बेठन उपयुक्त होनेसे उसकी योजना की जाती है। इस प्रकार बाधा निकालनेके बाद $\frac{१}{\text{बाधा}}$ = चालकता इस सम्बन्धसे चालकता निकाली जाती है। जिस कोष्ठमें (cell) विद्युत् घोल रखा जाता है उसके बिजलोद यदि परस्पर सम्मुख हों और उनका क्षेत्र फल एक वर्ग शतांशमीटर हो और इन दोनों बिजलोदोंका अन्तर एक शतांश मीटर हो तो इस स्थितिमें जो बाधा मिलेगा उसका व्युत्क्रम $\frac{१}{\text{बाधा}}$ = चालकता होगी।

इस चालकताको विशिष्ट बाधा (specific conductivity) कहते हैं। विशिष्ट चालकताको यदि घोलके उस आयतनसे (volume) गुणा किया जाय कि जिसमें उस पदार्थका एक तुल्यांक भार या अणुभार घुला हो तो इसको समचालकता (equivalent conductivity) और अणुचालकता कहते हैं। इस प्रकार विशिष्ट चालकता और चालकता निकाली जाती है।

इस लेखमें आरहीनियसके पृथक्करण सिद्धांत समझनेके लिये आवश्यक सामग्री सामान्य चर्चा की गयी है। आगेके लेखमें विस्तृत चर्चा उपस्थित करनेमें कुछ भी कठिनाई अब मालूम न होगी

लार्ड केल्विन

[ले० श्री यशपाल वार्शनी]

अगर हम विज्ञानके इतिहास को पढ़ें तो हमको यह ज्ञान पड़ेगा कि अट्ठारहवीं शताब्दीके के आरम्भ होतेही विज्ञान की रणभूमि में बड़े बड़े योद्धा आने लगे। इनमें से न्यूटन, हुक (Hook), बायल इत्यादि बड़े नामी थे। इन योद्धाओं के परलोक सिधारने के बाद मनुष्य जाति को यह मालूम पड़ने लगा कि विज्ञान का आकाश सितारोंसे शून्य हो गया है परन्तु करीब सौ वर्षके बाद दुनिया को एक बहुत तेज़ सितारा फिर उठता दिखाई दिया। यह चमकीला सूर्य्य विलियम टामसन (WilliamThomson) जेम्स टौमसनका जो कि ग्लासगो विश्वविद्यालय में गणित के प्रोफ़ेसर थे, दूसरा पुत्र था विलियम टामसन ने २६ जून सन् १८२४ को जन्म लिया।

इन्होंने दस वर्षकी अवस्था में मैट्रिकुलेशनकी परीक्षा पासकी और केम्ब्रिज (Cambridge) में पढ़नेके बाद सन् १८४५ में द्वितीय रैङ्गलरकी पदवी हासिल की। इसके बाद इन्हें स्मिथ पारितोषिक भी मिला। जिस समय विलियम टामसनने विज्ञान के क्षेत्र में प्रवेश किया उस समय ग्रेट ब्रिटेन में विज्ञान में काम करने वालों को बड़ी मुश्किलों का मुकाबला करना पड़ता था। इस कारण इनको फ्रान्स (France) जाना पड़ा जहां पर कि इन्होंने एक वर्षके लगभग रेगनोल्ट (Regnault) के साथ पैरिस (Paris) में काम किया। सन् १८४६ में ये ग्लासगो विश्वविद्यालयके प्रकृतिशास्त्रके महाध्यापक बना दिये गये।

अब हमको इनके कुछ कामों की तरफ़ ध्यान देना चाहिये। इन्होंने तापका चलन (conduction of heat) के बारे में जो जांच की उससे यह पता लगा कि किसी समय दो करोड़ और ४० करोड़ वर्ष के बीच में पृथ्वी की हालत इस समयके मुक़ाबले कुछ और ही थी। परन्तु इस समय के भूगर्भविद्या जानने वालों का यह विचार था कि पृथ्वीके कड़े (solid) होने में कई हज़ार करोड़ वर्ष लगे हैं। इस बहस के कारण विलियम टामसनमें और इन लोगोंमें एक प्रकारका झगड़ा रहता था। परन्तु अन्त में इन्होंने भूगर्भ विद्या जानने वालोंको परास्त किया।

सन् १८४७ में यह पहिले पहिल जेम्स प्रेसकाट जूलसे औक्स फ़र्डमें मिले और कुछ दिन बाद दोनों ने स्विटज़रलैन्डमें साथ साथ काम किया। इन दोनों ने एक झरनेके पहाड़ परसे गिरनेके कारण उसके पानीके तापक्रम की वृद्धि नापी। इन पर जूलके ताप-सम्बन्धी विचारोंका इतना असर हुआ कि १८४८ में इन्होंने अपनी तापक्रमकी निरपेक्ष माप प्रचालित की।

सन् १८५० में इन्होंने पूरी तरहसे यह सिद्ध कर दिया कि दबाव बढ़नेसे पानी का द्रवणांक कम हो जाता है।

सन् १८५१ में इन्होंने अपना तापका गत्यर्थक सिद्धान्त ऐडिनबरा की रायल सोसाइटीके सामने प्रस्तुत किया। इस सिद्धान्तके ज़रियेसे यह साबित हो गया कि कार्नोट, डेवी, मायर, रमफ़र्ड और जूलके काम सब एक दूसरे से मिलते जुलते हैं। इस सिद्धान्तके कारण सामर्थ्य की अविनाशताके नियम भी पूरे तौर पर माने जाने लगे। इन्होंने इस लेखमें ताप-गति विज्ञानके दूसरे नियमके बारे में भी कुछ लिखा था।

यद्यपि यह कहा जा सकता है कि विलियम टामसन ने ताप-गति विज्ञान पर बहुत काम किया लेकिन इन्होंने अपना सब से बड़ा युद्ध बिजलीके क्षेत्र में जीता। सबसे पहिले इन्होंने सन् १८५५ में एक पत्र में जो कि प्रोफ़ेसर स्टोक्स को लिखा गया था, समुद्रके आर पार पानीके अन्दर तारों द्वारा ख़बर भेजने का प्रयोग लिखा था।

इस पत्र में जो इन्होंने एक बड़ा ध्यान देने वाली बात लिखी थी *, उससे कुछ मनुष्य यह ख्याल करने लगे थे कि अगर यह बात सही है तो समुद्र के आर पार तार द्वारा ख़बर भेजना असंभव है।

इन कठिनाइयों को देखते ही विलियम टामसन जलके अन्दर डालनेके लिये अच्छे तार बनाने लगे। इन तारोंके बनाने में ऐसा तांबा जिसमें बिजली आसानी से चल सके काम में लाया गया। इन्होंने बहुत से नाज़ुक औज़ार भी बनाये। इन औज़ारों द्वारा समुद्री-तार में बिजली की धाराके

* 'लम्बे समुद्री तारों में समाई द्वारा जनित अवरोध के कारण वेग और तार की लम्बाई के वर्ग में व्युत्क्रम अनुपात रहता है।'

ज़रा भी घटने या बढ़ने का पता लग सकता था। इन यंत्रोंमें से दर्पण-धारासूचक (mirror galvanometer) और लंगड़ी दर्शक (Siphon recorder) बड़े प्रसिद्ध हैं। समुद्रके आर पार ख़बर भेजने में वही नियम काम में लाये जाते हैं जो कि भूमि पर तार भेजने में काम में लाये जाते हैं। केवल भेद यह है कि समुद्रके अन्दरके तारोंके ऊपर कई चीज़ों के आवरण रहते हैं।

यह आवरण गटापर्चा, सन, पीतलके फीते या कोलतार लगे फीते के होते हैं और इनकी मोटाई उनके काम में आने और समुद्रके पानी की हालत पर निर्भर रहती है। परीक्षा से यह भी मालूम हो गया है कि यह आवरण उथले पानी में गहिरे पानी की अपेक्षा जल्द घिसकर ख़राब हो जाते हैं यह तार पानी में जहाज़ों पर से डाले जाते हैं। इस समय इन्होंने बिजली नापनेके कई यंत्र बनाये। इनमें से एक बहुत काम का यंत्र धारामापक (electrometer) था जो कि विद्युत्-अवस्था-भेद नापनेके काम में लाया जाता है।

जो यंत्र विलियम टामसन ने बनाये उनके द्वारा बड़ी से बड़ी बिजली की धारा जो कि साधारण तौर पर काम में लाई जाती है नापी जा सकती थी। इन यंत्रोंके द्वारा एक एम्पीयरके दस हज़ारवें हिस्से से दस हज़ार एम्पीयर तक की बिजली की धाराएं और एक वोल्टके सौवें हिस्से से एक लाख वोल्ट तकके अवस्थाभेद नापे जा सकते थे।

विलियम टामसन ने बिजली नापने का मीटर भी जो कि इस समय पर क़रीब करीब हर मकान में पाया जाता है बनाया। अगर सच पूछा जाय तो इन्होंने बहुत से यंत्र बनाये जिनका काम बिजली की रेल गाड़ियां चलाने और बिजली की रोशनी करने इत्यादि में पड़ता है। इससे स्पष्ट है कि जो काम उन्होंने मनुष्य जातिके लाभके लिये किये, उसका दूसरा कोई उदाहरण मिलना कठिन है।

सन् १८५१ में विलियम टामसन ने सामर्थ्यके सिद्धान्तों को काम में लाकर विद्युत् संबधिनी शक्तिका अनुमान लगाया और एक तार में बिजली की धारा चलाने से जो गर्मी पैदा होती है उससे उस तार की बाधा मालूम की। सन् १८५२ में अट्ठाईस वर्ष की अवस्था में इन्होंने थोर्नलीबैन्क के वाल्टर क्रम की सुपुत्री मारगरेटके साथ विवाह किया। सन् १८६६ में नाइट की पदवी से ये सुशोभित किये गये।

सन् १८७० में मारगेरेट की मृत्यु होनेके बाद सन् १८७४ में सर विलियम टामसन ने मेडीराके चार्ल्स. आर. ब्लाण्डी. की सुपुत्री फ्रान्सेस अन्ना के साथ फिर विवाह किया। सन् १८९० में टामसन रायल सोसाइटीके सभापति बनाये गये और दो वर्ष बाद सन् १८९२ में इनको लार्डके बैरेन-केल्विन की पदवी मिली। तब से विलियम टामसन् वैज्ञानिक जगत् में लार्ड केल्विनके नाम से प्रसिद्ध हैं।

लार्ड केल्विन ने मल्लाहोंके दिग्दर्शक यंत्र (कुतुबनुमा) में भी बहुत सुधार किये। इस सुधार के द्वारा जहाज़ के स्थायी और क्षणिक चुम्बकत्व के प्रभाव से बचाव हो सकता था। इसके साथ ही साथ १० इंच कार्डका बोझा बहुत कम कर दिया गया और सुई के झोटे का समय बढ़ा दिया गया। लार्ड केल्विन का एक और यंत्र जो मल्लाहोंके लिये बनाया गया वह पानीकी गहराई नापनेका यंत्र था। इस यंत्र से १६ जहाज़ी मील की रफ़्तार से चलते हुए जहाज़ से गहराईयां नापी जा सकती थीं। अगर प्यानो का तार जिसकी भंजन शक्ति प्रति वर्ग इंच १४० टन हो और उसके साथ ३४

पौण्ड के बोझे का लंगर और स्वयं अंकित करने वाला दबाव मापक काम में लाये जावें तो महा सागरों की गहराईयां नापी जा सकती हैं। लार्ड केल्विन के ईजाद किये हुए और अनगिन्ती (जिनके नाम ही नाम कई सफ़े ले लेंगे) यंत्रों में से ज्वार-भाटा-मापक, ज्वार-विश्लेषक और ज्वार सूचक (ज्वार भाटा आने का समय बताने का यंत्र) भी हैं।

सन् १८९६ में लार्ड केल्विन की अध्यापकीके पचासवें वर्षके महोत्सव पर ग्लासगो विश्व-विद्यालयके पुस्तकालय से एक तार समुद्रके आर पार भेजा गया। यह समाचार न्यूफाउण्डलैण्ड न्यूयार्क, शिकागो, सैन फ्रांसिसको, न्यूआरलियन्स फ्लोरिडा और वाशिंगटन होकर ७½ मिनट में ग्लासगो वापस आगया। इस समय (७½ मिनट) में इस ख़बर ने करीब २०००० मील का फ़ासला तै किया और दो बार अटलांटिक महासागरके आर पार गया।

लार्ड केल्विन का बहुत साधारण स्वभाव था और वे प्रत्येक समय पर विज्ञानमें काम करने वालों का उत्साह बढ़ाना अपना धर्म समझते थे। सन् १८९६ में लार्ड केल्विन को रायल विक्टोरियन आर्डर का ग्राण्ड क्रास और सन् १९०२ में आर्डर आफ मेरिट मिला।

सन् १८९९ में लार्ड केल्विन ने ग्लासगो विश्व-विद्यालय की अध्यापकी छोड़ दी और १७ दिसम्बर सन् १९०७ को नीदरहाल में इस संसार से परलोक सिधारे।

माध्यम

[ले० श्री युधिष्ठिर भार्गव, बी० एस-सी० (आनर्स)]

यदि किसी पदार्थमें बहुत कम शक्ति देकर या बिलकुल बिना शक्ति दिये हुए ही विद्युत तनाव रक्खा जा सके तो वह पदार्थ माध्यम कहा जाता है। यह पहलेही कहा जा चुका है कि माध्यमों और विद्युत चाल-कों के बीचमें कोई सीमा नहीं बंधी है—साधारणतया शीशा, अबरक, चीनी मिट्टी, क़ागज़ और मोम इत्यादि माध्यम कहे जाते हैं।

माध्यमिक पदार्थोंको छाँटनेमें निम्नलिखित बातों का विचार रखना होता है।

(१) माध्यमिक प्रबलता

(२) रोधन बाधा

(३) माध्यमिक संख्या

(१) माध्यमिक प्रबलता (वोल्ट प्रति शतांश मीटर में) वह विद्युत शक्ति है जो कि उस पदार्थको तड़ित कर देती है।

(२) दो विद्युत मात्राओं क और ख के बीच विद्युत् शक्ति $\frac{क \times ख}{अ \times ब^2}$ होती है (ब उन दोनों मात्राओंके बीच की दूरी है) अ माध्यमिक संख्या कही जाती है।

उत्तम माध्यममें निम्नलिखित गुण होने चाहिएँ।

(१) अति माध्यमिक प्रबलता

(२) अति रोधन बाधा।

(३) नमी न सोखे।

(४) जल्दी २ गरम और ठंडा होने का प्रभाव अधिक न होना चाहिए। अथवा गर्मी और सर्दीके चक्करोंसे हानि न पहुँचे।

(५) यदि ठोस पदार्थ हो तो द्रवणांक और यदि द्रव हो तो क्वथनांक ऊँचा होना चाहिए।

(६) तापक्रमगुणक कम होना चाहिए।

(७) यदि गैस हो तो वायुके संग पर स्फोटन मिश्रण न बनावे

(८) अधिक अवस्था भेद होने पर भी विश्लेषण न हो।

आजकल बेतारके यंत्रों तथा और ऊँचे वोल्टन के यंत्रोंमें जो पदार्थ काम लाए जाते हैं, उनके माध्यमिक गुणोंका अध्ययन करना अत्यावश्यक है।

यह पदार्थ गैस या द्रव या ठोस हो सकते हैं।

बहुत ऊँचे अवस्था भेद होने पर गैसों का उपयोग अक्सर किया जाता है। साधारण तया इनकी चालकता बहुत कम होती है किन्तु यह पाया गया है कि रौञ्जन रश्मियों और अन्य रश्मि-शक्ति वाले पदार्थोंके प्रभावसे इनमें चालकता आजाती है।

बिजलोदोंके आकार का प्रभाव भी स्थिर विद्युतीय क्षेत्र पर पड़ता है इस लिए गैसोंकी माध्यमिक संख्या पर भी इनका प्रभाव होता है। नोकीले बिजलोद होनेसे क्षेत्रमें स्थानीय प्रभाव बहुत बढ़ जाता है और इस लिए माध्यम की प्रबलता भी कम हो जाती है।

पैशन (Paschen) ने दबाब और तडित्खंड की लम्बाईके सम्बन्धमें जाँच करके यह बतलाया है कि साधारणतया तड़ितअवस्था ∝ तड़ितखण्ड की लम्बाई × दबाब।

वायु, उदजन, ओषजन, नोषजन, और कर्बन-द्विओषिद् से भी रोधकों का काम लिया जाता है। उदजन और ओषजनकी माध्यमिक प्रबलता वायुसे कम और नोषजन और कर्बन द्विओषिदकी माध्यमिक प्रबलता वायुसे अधिक होती है। जिन यंत्रोंमें अधिक अवस्था भेद की आवश्यकता है उनमें अक्सर अधिकदबाव पर गैसका उपयोग किया जाता है। प्रबल चुम्बकीय क्षेत्रके उत्पन्न करनेके संबंधमें जो प्रयोग हालमें ही कैपिट्ज़ा (Kapitza) ने किया है उसमें उसने इसी विधिका उपयोग किया था।

द्रव पदार्थ—द्रवोंमें पौधों या पृथ्वीमें से निकले हुए तेलों का उपयोग होता है। तेलोंकी विशिष्ट बाधा ६.५ × १०¹² ओह्म प्रति शंताशमीटर है अर्थात् बहुत अधिक है, इनका तापक्रम गुणक ऋण है और तापक्रम और बाधाका सम्बन्ध दिखाते हुए वक्र गरम और ठंडा करते समय भिन्न भिन्न होते हैं।

धूल और नमी होनेसे तेल की माध्यमिक प्रबलता कम हो जाती है। यह पाया जाता है कि १०,००० भाग तेलमें ४ भाग पानी होनेसे चालकता ५०% बढ़जाती है। इसलिए पानी सुखाना और धूल हटाना अत्यावश्यक होता है। तेलोंमें एक और भी ख़राबी हैं। वायु और धातुओं (विशेष कर ताँबा) के होने पर इस पर कर्बन, ओषजन और कुछ उदजनकी तह जम जाती है।

तेलका परिवर्तकों (transformers) और ऊँचे वोल्टनकी चाबियों को डुबानेमें अधिकतर इस्तेमाल किया जाता है। जो तेल परिवर्तकोंमें लगाया जाता है उसकी माध्यमिक प्रबलता इतनी होती है:— आध—इञ्च व्यासके गोलोंको ·१५ इञ्च दूर रखने पर २०,००० से ४०,००० वोल्ट का अवस्था भेद तड़ित के लिए चाहिये। यदि अत्यन्त शुद्ध तेल हो तो

८०,००० वोल्ट तक का अवस्था भेद दरकार होता है।

संसार में सबसे ऊँचा वोल्टन ५,०००,००० वोल्टोंके बराबर हाल मेंही डाक्टर ग्रिगोरी ब्राइट और डाक्टर एम० ए० ट्यूर ने कारनेगी इन्स-टिट्यूट में पैदा किया था। उन्होंने टैसला बेठन को तेलमें ५०० पौंड प्रति वर्ग इंच दबाव पर रक्खा था।

ठोस पदार्थ—इस प्रकार के पदार्थोंकी संख्या इतनी अधिक है कि हम केवल थोड़ेसे ही पदार्थों की चर्चा कर सकेंगे।

अबरक—यह सर्वोत्तम रोधक अथवामाध्यम है और भिन्न भिन्न प्रकारके अबरकोंमें से भारतीय अबरक सर्वोत्तम है—यह पृथ्वीमें से निकाला जाता है, यह पारदर्शक होता है और इसके रवे जो कि चपटे होते हैं .००६ सहस्रांशमीटर तक छोटे बनाये जा सकते हैं। यह बहुत ऊँचे ताप क्रम सहन कर सकता है और १०००° श तक रोधक रहता है। यह संग्राहकों में बहुतायतसे लगाया जाता है। इसके .०५ सहस्रांशमीटर मोटे और क्षेत्रफलमें २५ वर्ग शतांशमीटर तख्तेकी समाई $.002 \times 10^{-6}$ फैराड है:—इस लिए १ नियुतांश फैराड समाईके संग्राहक के लिए ऐसे ५०० तख्तोंकी आवश्यकता होगी।

तहोंकी माध्यमिक प्रबलता वोल्ट / श. म. में नीचेकी सारिणी में दी जाती है।

पदार्थ	मोटाई (सहस्रांशमीटर)	माध्यमिक प्रबलता
अबरक	·०१	२०,००,०००
"	·१	११,५०,०००
"	१·०	६,१०,०००
शीशा (घनत्व) २·५	१·०	२,८५,०००
एबोनाइट	१·०	५,००,०००

जहाँ मज़बूतीकी आवश्यकता होती है वहाँ संगमर्मर और स्लेट लगाये जाते हैं। इनका उपयोग करनेके पहले धातुओं की रेखाओं (veins) के लिए भली भाँति जाँच लेना चाहिए। संगमर्मर गरम मोम में डुबोनेसे और उत्तम रोधक हो जाता है। यह बल बांट-पटों और चाबी-पटोंके दिलहों में लगाये जाते हैं। लकड़ी भी रोधकके लिए काम आती है।

इसकी माध्यमिक प्रबलता इस बात पर भी निर्भर है कि विद्युत तनाव रेशोंके समानान्तर या समकोण पड़ता है। पहली दिशामें आबनूसकी लकड़ी (oakwood) की माध्यमिक संख्या ३·४८ और दूसरी दिशामें ७·७ होती है। यदि लकड़ी खूब सूखी है तो १०,००० वोल्ट प्रति इंच तक सह सकती है।

शीशा सस्ता होनेके कारण बहुतायतसे काम आता है। इसकी विशिष्ट बाधा $१०^{१३}$ से $१०^{१८}$ ओह्म प्रति शतांशमीटरके बीचमें रहती है। बहुत ऊँचे तापक्रमों पर शीशा चालक हो जाता है। इस पर नमी जम जाती है और इस पर चुम्बकीय पदार्थ लटकाए नहीं जा सकते।

रबर मिला कर बहुतसे रोधक पदार्थ बनाए जाते हैं तथापि रबर इस काममें नहीं आता। इसका कारण यह है कि यह थोड़ा ही गरम होने पर मुलायम पड़ने लगता है और इस पर तेल का रासायनिक प्रभाव भी पड़ता है। रबरके मेलसे बनाए हुए पदार्थोंमें से एबोनाइटका उपयोग बहुत होता है। इसमें गंधक और रबर बराबर बराबर मिले रहते हैं। इसको बनाने के लिए गंधक और रबरके मेलको ६०से ८० पौंड प्रति वर्ग इञ्च दबाव रख कर ७५° श तक गरमकिया जाता है। अभाग्य-वश प्रकाशके प्रभावसे गंधक बाहर निकल कर

सतह पर जम जाता है। इसकी माध्यमिक प्रबलता ८०,००० से १,५०,००० वोल्ट प्रति सहस्रांशमीटर तक होती है।

और भी कई पदार्थ है जो कि एबोनाइटसे मिलते जुलते हैं, किन्तु इससे अधिक कड़े होते हैं। अरमोंड (Ermond), जिसमें कि एक मुख्य पदार्थ दूध का ठोस हिस्सा है, इनमें एक है।

कागज भी भिन्न भिन्न रूपोंमें इसकाममें आता है। किन्तु उपयोग करने के पहले इसको किसी रक्षक पदार्थमें रक्खा जाता है—ऐसा करनेसे इसमें पानी न सोखने का गुण मारा जाता है। साधारणतया यह रक्षक पदार्थ ओषिद बनाया हुआ अलसी का तेल होता है। जबसे बेतारके तार पर लोगोंका ध्यान आकर्षित हुआ है तब से कागज़ लगा कर बहुत से सग्राहक बनाए ज़ाने लगे हैं।

वार्निशोंमेंसे अलसीका तेल ही सब के ज्यादा काम आता है। तरह तरह के रोधक पदार्थ इसे मिला कर बनाए जाते हैं किन्तु अधिकतर पानी सोखनेके गुणके कारण ये ठीक काम नहीं देते।

अब हम ठोस रोधकोंके साधारण गुणों का अध्ययन करेंगे। इनमें सबसे बड़ी कमी यह है कि हवा में नमी होने पर इनके गुण बिलकुल बदल जाते हैं। रेनर ने प्रेसपाह (press pahn) के एक ०·६२ सहस्रांशमीटर मोटे नमूनेकी जाँच करके यह पाया कि साधारणतया इसकी बाधा (१·०७—१·०८) × १०^{8} ओह्म थी। १८ घंटे सुखाने वाले (dessicator) में रखने पर बाधा ६६०० × १०^{6} ओह्म और ३० घंटे और रखने पर ४१००० × १०^{6} ओह्म हो गई—इससे नमीका प्रभाव प्रगट है। प्रकाश का भी एबोनाइट (ebonite) जैसे पदार्थों पर कुछ ऐसा प्रभाव है कि सतहकी बाधा बदल जाती है।

चीनी मट्टी (porcelain) जैसे रोधकों पर नमी का कुछ कपाट कासा असर होता है। नम होने पर यह विद्युतधाराको एक दिशामें दूसरी दिशा की अपेक्षा अधिक सहूलियतसे बहने देते हैं।

किसी पदार्थकी माध्यमिक प्रबलता जाननेके लिए उस पदार्थको उचित बिजलोदोंके बीचमें रख कर वोल्टन धीरे धीरे बढ़ाया जाता है, जब तक कि उसमें से तड़ित न जावे। इस पर बिजलोदोंकी नाप और आकार और वोल्ट बढ़ानेके वेगका भी प्रभाव बहुत पड़ता है पर अभी तक यह नहीं पता है कि किस पदार्थके लिए कैसा बिजलोद होना चाहिए।

यद्यपि मोटाई और माध्यमिक प्रबलतामें सम्बन्ध ठीक ठीक नहीं मालूम है तथापि बावर (Baur) की राय है कि यदि 'य' तड़ित अवस्था और 'क' मोटाई हो तो 'य' ∝ 'क$^{2/3}$'।

ठोस रोधकों पर तापक्रमका भी प्रभाव बहुत पड़ता है। एक पदार्थ को जो कि ११° श पर ७००० वोल्टके अवस्था भेदको २१ मिनट तक सहता रहा, ८०° श पर २५ सैकंड में ही फट (rupture) गया।

नमी यदि सतहके ऊपर हो तो गरम करने पर हट जाती है किन्तु यदि इस सतह पर वार्निश की गई हो तो बूंदें इसके नीचे फँस जाने पर बहुत गड़बड़ करती हैं।

माध्यमोंमें भी उसी प्रकार सामर्थ्य व्यय होती है जैसे चुम्बकीय करण चक्रोंसे लोहेमें। अणुओं की रगड़के कारण विद्युतीय खिसकाव क्षेत्रके प्रभाव से पछड़ जाता है। कुछ लोगोंका मत है कि यह व्यय इस कारण होता है कि माध्यमोंमें उसी प्रकार धारा बहने लगती है जैसे चालकद्रवोंमें। मौनेश इस नतीजेको पहुँचे कि व्यय लगाये हुए बोल्टनके वर्गके साथ बढ़ता है।

जब कि केवल नीचे वोल्टनोंका उपयोग किया जाता है तब माध्यमों पर अधिक दबाव

नहीं होता है इस लिए बहुत अच्छे रोधकों की आवश्यकता नहीं होती। ऐसी दशामें रोधकोंकी छाँट दूसरे गुणों पर निर्भर होगी। जैसे कि जो तार समुद्रमें लगाए जाते हैं उनके रोधनमें रोधक पदार्थ पक्का और लचीला (flexible) होना चाहिए और उस पर समुद्रके पानी का कोइ असर न होना चाहिए। यहाँ गट्टा पार्चाका उपयोग होता है।

साधारण (अर्थात् ५०० वोल्ट तक) वोल्टन तक क़ागज़ जैसे रोधकोंका उपयोग किया जाता है और क़ागज़ को पानीके असरसे बचानेके लिए लाख, आलसीके तेल या ऐसी ही किसी चीजमें एक डोब दे दिया जाता है। डोब शून्यमें दिया जाता है। बर्तनमें से हवा निकाल कर वह पदार्थ जिसमें डोब देना हो गर्म गर्म डाला जाता है। इसमें फिर क़ागज़ इत्यादि डुबाये जाते हैं। हवा फिर अन्दर आने दी जाती है—इसके दबावसे तेल इत्यादि अन्दर तक पहुँच जाते हैं।

ऊँचे वोल्टनके यंत्रोंमें क़ागज़ अत्यन्त शुद्ध किया हुआ (refined) और मिट्टीके तेलमें डुबाया हुआ काममें लाया जाता है। डायनमो की बेठनों के बीचमें जगह बहुत कम रहती है और तापक्रम १५०° श तक हो सकता है। इनमें इस लिए अबरक लगाया जाता है।

चुम्बकीय पदार्थ

चुम्बकीय पदार्थ तीन प्रकार के हैं।

(१) द्विषचुम्बकीय (Diamagnetic) इनकी प्रवेश्यता एकसे कम और चुम्बकत्वका प्रभाव ऋण होता है।

(२) चुम्बकीय (Paramagnetic) कुछ कुछ चुम्बकीय पदार्थ जिनमें कि चुम्बकत्वका प्रभाव धन होता है। जैसे नकलम्

(३) लोह चुम्बकीय (Ferro-magnetic) वे पदार्थ जोकि अधिक चुम्बकीय हैं। जैसे लोहा, इस्पात इत्यादि।

यह विभाग लैंजिविन (Langevin) का किया हुआ है। उन्होंने यह माना था कि (२) भागमें ग्राह्यता (ग) क्षेत्रके प्रभाव पर निर्भर न हो कर तापक्रमके साथ विषम संबंध रखता है। इन दोनोंके बीचका सम्बन्ध उन्होंने यह माना था कि

ग ∝ $\frac{१}{त}$। (३) भागके पदार्थोंमें ग्राह्यता और क्षेत्रके प्रभाव और तापक्रमके बीचका सम्बन्ध इतना सरल नहीं है। लोहेके चुम्बकीय गुण उसमें पड़े हुए कर्बन और दूसरे तत्त्वोंके परिमाणों पर निर्भर हैं।

लोहेमें एक विचित्र गुण है जिसको पिछड़न (hysteresis) कहा जाता है। यदि एक लोहेके टुकड़े पर धीरे धीरे चुम्बकीय शक्ति बढ़ाई जाय तो चुम्बकत्व पहले बहुत वेगसे बढ़ता है किन्तु बादमें चुम्बकत्व शक्तिके बहुत बढ़ाने पर भी बहुत कम बढ़ता है। अथवा लोहा सम्पृक्त दशाको पहुँच जाता है। यदि अब शक्ति धीरे धीरे हटाई जाय तो टुकड़ेका चुम्बकत्त्व उतने वेगसे नहीं घटता जितने वेगसे पहले यह बढ़ा था। और इस लिए अन्तमें थोड़ा सा चुम्बकत्त्व शक्तिके पूर्णतया हटा लेने पर भी रह जाता है। इस बचे हुए चुम्बकत्त्वके परिमाणसे उस लोहे की चुम्बकत्वके रोकनेकी शक्ति भी नापी जा सकती है। स्थिर चुम्बकों में यह रोकने वाली शक्ति अधिक और अस्थिर चुम्बकों में यह शक्ति कम होनी चाहिए। स्थिर चुम्बकों में अधिक रोकने की शक्तिके साथ ही साथ एक बार पाये हुए चुम्बकत्वको न खोनेका गुण भी आवश्यक होना है। यह उस उलटी चुम्बकीय शक्ति से नापा जाता है जो कि इसको पूर्णतया साधारण लोहा बनानेके लिए आवश्यक है। इसको 'निकालने वाली शक्ति' कहते हैं। अभाग्यवश यह दोनों गुण साथ २ नहीं हो सकते और

दोनों गुणोंको थोड़ा २ रखना पड़ता है। अच्छे चुम्बकोंको बनानेके लिए निकालने वाली शक्ति और चुम्बकत्वके प्रभावका गुणनफल अधिकसे अधिक रक्खा जा सकता है।

डाक्टर टामसन कहते हैं कि इस काम के लिए आदर्श पदार्थ वह है जिसमें बकाया ८०० और निकालने वाली शक्ति ८० हो।

हालमें रागम् इस्पातका उपयोग होने लगा है। उससे कोबल्टम इस्पात और भी अच्छा पदार्थ है किन्तु इसके बनाने में लागत बहुत आती है।

यह पाया जाता है कि अधिक कर्बन वाले इस्पात से अच्छे स्थिर चुम्बक बनते हैं।

अक्सर ऐसे पदार्थ की आवश्यकता होती है जो कि बहुत बड़ी खिंचाव शक्ति से न हटें और चुम्बकीय गुण किसी प्रकारके भी न हों। ऐसा पदार्थ इस्पात में और धातुओं को डालकर बनाया जाता है। १३% मांगनीज डालने से इस्पात चुम्बकीय हो जाता है। और संकर कड़ेका कड़ा बना रहता है। इस्पातमें रागम्, नकलम्, वुलफ्रामम् इत्यादि भी मिलाकर अचुम्बकीय पदार्थ बनाये जाते हैं।

लोहे से भी अधिक चुम्बकीय पदार्थ बनाए जा सकते हैं। २.५% शैलम और स्फटम मिलाने से जो धातुसंकर बनता है उसकी प्रवेश्यता अधिक होती है। उसकी विशिष्ट बाधा भी अधिक होती है इसलिए इसका उपयोग उलटी सीधी धारा वाले चुम्बकोंके पत्तीदार लट्टों और परिवर्तकों में होता है!

गरमी का प्रभाव भी लोहेके चुम्बकत्व पर अधिक होता है। ७००° श पर लोहे में चुम्बकत्व नहीं रह जाता।

अब कुछ वर्षों से चुम्बक बनाने वाले वुलफ्रामम् मिला हुआ इस्पात इस्तैमाल करने लगे हैं।

यद्यपि हम यहाँ चुम्बक बनाने की रीति का वर्णन नहीं करेंगे तथापि यह कहना आवश्यक है कि चुम्बकोंके गुण समय पाकर बदल जाते हैं। इसलिए वे प्रारम्भ में ही भाप से गरम किए जाते हैं। साधारण हवा का वर्षों में जो प्रभाव चुम्बकों पर पड़ता है वही भाप से कुछ ही घंटों में पैदा किया जा सकता है।

कालसन (J. Calson) ने दिखा दिया है कि यही काम इस प्रकार भी निकल सकता है:— गंधकके तेजाब के २५% घोल में चुम्बक को ऋणोद बनाकर धारा प्रवाहित की जाय। उदजन निकल कर चुम्बक पर वही असर कर देगा जो कि उस पर वायु वर्षों में करती।

पहले ही कहा जा चुका है कि विद्युत्चुम्बकों में अधिक प्रवेश्यता और कम निकालनेवाली शक्ति की आवश्यकता होती है।

प्रोफेसर वीस (Weiss) ने सन् १९१२ ई० में लोहे और कोबलटम् का एक धातुसंकर निकाला। इसकी प्रवेश्यता लोहे से २५% अधिक है। सम्पृक्तस्थिति में मान १३% अधिक है। इसका पिछड़न व्यय लोहे से कम और विशिष्ट बाधा करीब २ लोहे के बराबर ही है। लोहे और स्फटम् के धातुसंकरों का भी अध्ययन किया गया है।

लोहे के चुम्बकत्व पर तापक्रम के प्रभाव का अच्छा अध्ययन किया गया है। साधारणतया यह पाया गया है कि दुर्बल क्षेत्रोंमें प्रवेश्यता परिवर्तन-तापक्रमके पास पहुँचने पर बढ़ती जाती है। इस तापक्रम पर यह शून्य होती है।

नकलम् पड़े हुए इस्पात में यह बात नहीं होती। उनमें तापक्रम बढ़ाने पर प्रवेश्यता घटती है। इस गुण का मीटरों में तापक्रम गुणक का प्रभाव हटानेके लिए उपयोग किया जाता है। उनमें एक चुम्बकीय हार लगा दिया जाता है।

सन् १८०३ ई० में ह्यूसलर (Heusler) ने यह मालूम किया कि चुम्बकीय पदार्थ अचुम्बकीय पदार्थों से भी बनाये जा सकते हैं। एक धातु-संकर, जिसमें कि निम्नलिखित धातुएँ इस परिमाणमें है,—'तांबादार स्फरम् १२·५ मांगनीज २५—ढले हुए लोहे के बराबर ही है। इसके चुम्बकीय गुण मांगनीज की उपस्थितिके कारण कहे जाते हैं।

भूगर्भ शास्त्र

(ले० श्री विपिन बिहारी श्रीवास्तव, बी. एस-सी, एल. टी.)
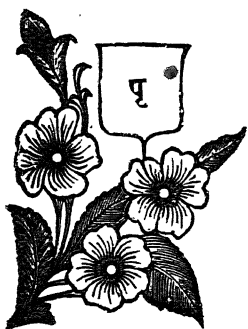
थ्वी और उसके निवासियों की बनावट, इतिहास और परिवर्तनका वर्णन, जैसा कि चट्टानों और पत्थरों से विदित होता है, भूगर्भ शास्त्रका विषय है। इस परिभाषासे यह बात प्रत्यक्ष है कि भूमिशास्त्रका सबसे बड़ा उद्देश्य पृथ्वीके इतिहासका अन्वेषण है और ऐतिहासिक उद्देश्य सर्वव्यापी है। इसलिये यह आवश्यक है कि पृथ्वीके अन्तर्गत जितने शिलासमूहों में सुरक्षित घटनाओंका इतिहास लिखा हुआ है उनके अनुसन्धान करनेमें जितनी विद्याओंकी सहायता मिलसकी है उनका अध्ययन किया जाय। ज्योतिष, भौतिक शास्त्र, रसायन, खनिज विद्यादि सब विद्याओंकी सहायता की आवश्यकता पड़ती है। जब इन शास्त्रोंकी यथोचित उन्नति हो चुकी तभी उसके आधार पर स्थित भूगर्भ शास्त्रका विज्ञान रूपमें प्रादुर्भाव हुआ। पृथ्वीका ऐतिहासिक काल वर्षोंमें नहीं किन्तु लाखों और करोड़ों वर्षमें नापा जा सकता है। यदि हम भौगर्भिक कालका अनुमान करना चाहें तो हमें जातीय इतिहासोंके कृत्रिम काल के विचारमें बहुत कुछ परिवर्तन करना पड़ेगा और 'प्राचीन' 'आधुनिक' शब्दों, का अभिप्राय भी वैसा न होगा जैसा कि हम साधारणतः मानते आते हैं।

पृथ्वी वर्तमान अवस्थामें आनेके पहिले किस किस अवस्था में रहचुकी है और इसमें भूगोल, जलवायु, वनस्पति और प्राणो मात्रमें क्या क्या परिवर्तन और उन्नति हुई हैं, यह सब बातें हमें उन चट्टानो और शिलाओं के तटों में सुरक्षित लेख के रूपमें विदित होती हैं जिनकी एकके ऊपर दूसरी तहें मिलकर पृथ्वीकी ऊपरी पपड़ी (Crust) बनी है।

शिलाओंमें जो ऐतिहासिक ज्ञान भरा हुआ है उनका अन्वीक्षण करनेके लिये, सबसे प्रथम यह आवश्यक है कि जिस भाषा में वह लिखा हुआ है उसका अध्ययन किया जाय। हमको शिलाओं की अच्छी जानकारी रखनी पड़ेगी और इसका ज्ञान भी रखना पड़ेगा कि शिला समूह किस प्रकार बनते हैं और उनमें क्या क्या परिवर्तन होते हैं। उन सब कार्य क्रमों का जानना भी अनिवार्य है जो आधुनिक कालमें पृथ्वी के अन्तर्गत और सतह पर काम कर रहे हैं। इन सब बातोंका ज्ञान इतना अपूर्ण और अव्यवस्थित है कि भौगर्भिक ज्ञानका पता लगाना बहुत कठिन और कहीं कहीं असम्भव सा है। उनका अनेक प्रकार से अर्थ लगाया जाता है क्योंकि शिलाविज्ञ न पूर्णन होने से भिन्न भिन्न वैज्ञानिकोंके मतमें अन्तर पड़ जाता है। इसके अतिरिक्त अनेक परिवर्तन कार्य भूगोलके भीतरी गर्भमें होनेके कारण प्रत्यक्ष नहीं देखे जा सके। कहीं कहीं प्रत्यक्ष अन्वीक्षण इसलिये असम्भव हो जाता है उनको पहिचाननेके लिये एक जीवन काल भी कम होगा। ऐसी अवस्थाओंमें

हमको अदृष्ट कारणोंका पता उनके दृष्ट फलोंसे लगाना चाहिये। परन्तु यह और भी कठिन है क्योंकि एक कार्य्यके ही बहुतसे कारण हो सकते हैं। उन कारणोंमें कौन सा कारण सत्य और तथ्य है यह पता लगाना दुष्कर है। इसलिये भौगर्भिक ज्ञान के प्रयोगोंमें बहुधा अनुसन्धान और मतों की विभिन्नता होती है।

जीवित और उन्नति शील विज्ञान होनेके कारण भूगर्भ शास्त्र में बहुत से परिवर्तन होते रहते हैं। यह आवश्यक नहीं है कि परिवर्तन उन्नति मार्गमें हो। यह भी सम्भव है कि इससे मतों का प्रत्यावर्त हो जाय अथवा किसी मत (theory) का खंडन कर एक नया मत स्थापित हो जाय।

बहुतसे लोगों को वैज्ञानिक मतों का इस प्रकार परिवर्तन तथा प्रत्यावर्तन जो ज्ञानकी उत्तरोत्तर वृद्धिके लिये आवश्यक है बुरा मालूम होता है और इससे वैज्ञानिक मतों में उनका विश्वास कम हो जाता है। उनके इस अविश्वास का कारण यह है कि वे प्रत्यक्ष कारणों और उनसे निकले हुये फलों और अनुमानोंके अन्तरका अनुभव नहीं कर सकते। प्रत्यक्ष कारण सर्वदा वही रहते हैं किन्तु परिवर्तन उनसे निकाले हुये फलों और अनुमानोंमें होता है। यह अनुमान (Inference) भी कई प्रकारके होते हैं। कुछ तो ऐसे है जो कई शताब्दी पहिले किये गये थे और अब तक सही माने जाते हैं। कुछ ऐसे हैं जो अभी थोड़े ही दिन हुये किये गये थे और गलत साबित हुये। उदाहरणार्थ जब किसी शिला समूहकी तहोंमें बालुकणके परत, सामुद्रिक वस्तु जैसे घोंघे या शंख के टुकड़े मिलते हैं तो यह अनुमान होता है कि यह शिला समुद्र के अन्दर बनी है अथवा वह स्थान जिस पर वह शिला है समुद्रके नीचे था। यह सिद्धान्त बहुत प्राचीन है। जहाँ ऐसे सबूत मिलें वहां किसी समय समुद्र था, यह अनुमान होता है। ऐसे सिद्धान्त साधारणतः पुष्ट होते हैं क्योंकि वह सब तरहसे सिद्ध किये जा सकते हैं तथा उनमें कभी मत भेद नहीं होता। इसके विपरीत पृथ्वी सम्बन्धी कई सिद्धान्त जैसे क्यूवियर (Cuvier) आदि विद्वानों के हैं जिनमें उन्होंने पृथ्वीके परिवर्तन तथा परिचालनके बारे में निजी अनुमान बतलाया है, और यह भी बतलाया है कि किस प्रकार प्राणि समूह और वनस्पति-समूह की उत्पत्ति हुई है अब नहीं माने जाते।

ज्ञात से अज्ञात बातोंके अनुसन्धान करनेमें हम जो तर्क करते हैं उनमें दृष्य और प्रत्यक्ष सबूतों के अभावसे हमारे अनुमान और अनुसन्धानमें बहुत सा अन्तर पड़ जाता है। परन्तु ऐसे अस्थाई अनुमान भी हमें बहुतसी बातोंके समझानेमें सहायता देते हैं तथा सत्यसिद्धान्त तक पहुँचनेके लिये आवश्यक भी हैं।

इसमें एक अवगुण यह हो सकता है कि बहुत से लोग यह समझ बैठते हैं कि ये असिद्ध अनुमान सर्वसिद्ध सफल सिद्धान्त हैं क्योंकि उनको यह बातें इस प्रकार पढ़ाई जाती हैं कि यह सर्वतः सिद्ध हों।

एक सत्य अनुमान नये अनुसन्धानोंके फलोंके निकालनेमें सहायक होगा परन्तु एक मिथ्या अनुमान, चाहे वह उस समय जब वह किया गया था वैज्ञानिक सिद्धान्तों के अनुकूल प्रतीत होता हो, विज्ञान के उन्नति काल में प्रतिकूल साबित हो जायगा, क्योंकि उन्नति शील अन्वेषणके प्रकाशमें उसकी असत्यता प्रकट हो जायगी। तथापि एक मिथ्या अनुमान भी लाभदायक हो सकता है क्योंकि यह नये प्रश्न खड़ा कर देता है और लोगों को उसके अन्वेषणमें तत्पर कर देता है।

विज्ञानका राजपथ उन अनुमानोंकी शवोंसे भरा हुवा है जो पिछले समयमें प्रयुक्त हुये थे और

फिर जीर्ण होकर फेंक दिये गये। हमारे सब वैज्ञानिक अनुसन्धानोंमें केवल अनुमानों और प्रत्यक्ष बातोंमें क्या अन्तर है यह समझना आवश्यक है।

भूगर्भ शास्त्र एक केन्द्रीय विज्ञान है यद्यपि व्यवस्थित अध्ययनके लिये इस विषयको कई भागों में विभाजित करना आवश्यक है। परन्तु यह समझ लेना चाहिये कि यह सब भाग उसी विज्ञान के भिन्न रूप हैं। इसके प्रत्येक भाग एक दूसरेसे इस प्रकार सम्बद्ध हैं कि उनको किसी प्रकारसे अलग करनेमें वह बातें जो एक ही विषयके अन्तर्गत थीं बहुत दूर हो जाती हैं इसीलिये किसी किसी बात का दुहराना सब विषयों में आवश्यक हो जाता है।

भूतकालका ज्ञान प्राप्त करना कठिन है अगर हम वर्तमान और प्रत्यक्ष बातोंसे अनभिज्ञ हैं और भूत काल के ज्ञान के विना हम वर्तमानको समझ नहीं सकते। तथापि यह विदित है कि भूत और वर्तमान दोनों का अनुशीलन एक ही समय नहीं हो सका। यह सब होने पर भी, हमारे सुभीतेके लिये किसी प्रकारका विषय विभाग करना आवश्यक है क्योंकि ऐसा न करने से बहुतसी बातें अव्यवस्थित रूपसे एक ही स्थान पर भर जायंगी।

भूगर्भ शास्त्र साधारणतः निम्न लिखित विभागों में बांटा जाता है।:—

(१) शक्ति-विभाग (Dynamical geology)

उन शक्तियोंके अध्ययनको कहते हैं जो वर्तमान समयमें पृथ्वी के ऊपरी सतह पर कार्य कर रही हैं और जो परिवर्तन—रासायनिक तथा क्रियात्मक—(Chemical and mechanical) उनके कारण होते हैं उनके अध्ययनको भी कहते हैं। यही ज्ञान भूतकाल के परिवर्तनोंके समझनेमें सहायक होते हैं।

(२) गठन विभाग (Structural geolgy)

जिन वस्तुओं से पृथ्वी बनी है और जिस रीतिसे यह सब वस्तु एक दूसरेके साथ जोड़ कर रक्खी हुई हैं उनके अध्ययनको कहते हैं। यह हमें उन कारणोंको भी बतलाती है जिससे यह सब वस्तु एक दूसरेके साथ इस प्रकार मिले हैं जैसा कि उनके बनावटसे ज्ञात होता है।

(३) रूप-विभाग

पृथ्वी के उन प्राकृतिक चिन्हों और जिस रीति से वह बने हैं और जिस रूपमें वह स्थित हैं उनके अध्ययनको कहते हैं।

यह विषय प्राकृतिक भूगोलके अन्तर्गत है, परन्तु भूगर्भ शास्त्रको बहुमूल्य सहायता प्रदान करता है।

यह तीन पिछले विभाग मिलकर प्राकृतिक भूगर्भ शास्त्र कहलाते हैं।

(४) ऐतिहासिक विभाग (Historical geology)

या भौगर्भिक इतिहास –

यह पृथ्वीकी ऐतिहासिक बातोंका अध्ययन है। पृथ्वीके बाहरी आकार और सतहके परिवर्तनका वर्णन है। वनस्पतियों और जीवोंकी, जो क्रमशः इस भूमि पर उत्पन्न हुये और नष्ट हो गये, उत्तरोत्तर वृद्धिका वर्णन है। भूगर्भ विज्ञानमें ऐतिहासिक उद्देश्य सर्वोपरि है तथा पृथ्वीके सुरक्षित ऐतिहासिक ज्ञानका अन्वेषण करना ही उसका महान प्रश्न है। भूगर्भ शास्त्रके दूसरे विभाग इसी इतिहासके अन्वेषणमें सहायक होते हैं।

भूगर्भ वेत्ताको बहुधा सब भौतिक और प्राकृतिक विज्ञानोंकी सहायता लेनी पड़ती है तथापि उसको उस शिलासमूह (Rocks) का विशेष ज्ञान रखना आवश्यक है जिससे पृथ्वी की बाहरी

पपड़ी बनी हुई है। यह शिलायें पृथ्वीमें उसके केन्द्र तक फैली हुई हैं परन्तु उनके बारेमें हमारा ज्ञान परिमित है क्योंकि हम उतनी गहराई तक नहीं जा सकते। खानों और अन्यान्य बड़े गड्ढों के शिला समूह तक जिनकी गहराई लगभग १५ मील तक (अधिकसे अधिक) है वैज्ञानिकों के अन्वेषणके अन्तर्गत आचुके हैं। इन पत्थरोंमें खनिज पदार्थों का सम्मिलित अंश रहता है और जिन खनिजोंसे यह शिला बनते हैं। उनको शिला बनाने वाले खनिज कहते हैं जिन २ रीतियोंसे तह शिलायें बनती हैं और जो २ क्रियायें उनके बनते होतीं है उनके अध्ययन से पता चलता है कि ये शिलायें तीन बड़े समूहोंमे विभाजित की जा सकती हैं।—

१—आग्नेय शिला खंड (Igneous rocks)

उन शिलाओंको कहते हैं जो भूगर्भमें पिघली हुयी दशासे ठोस हो गयी हैं। इनमें तह नहीं होती और या तो यह चिकने शीशे की तरह होती हैं या रवे दार (crystalline) होती हैं और गूढ़ खनिजोंसे बनती हैं। यह पत्थर पिघली हुई दशामें भूगर्भसे पृथ्वी की तहोंको फाड़ती हुई कई तरहसे भूमि तलके ऊपर तक पहुँच जाते हैं। इसके उदाहरण रूपमें लावा है जो ज्वालामुखी पर्वतों और पृथ्वीके फटे हुये हिस्सोंसे निकलता है। कहीं कहीं ऊपर का भूमितल हटनेसे नीचे का शिला समूह निकल आता है जो हम देख सकते हैं। ऐसे पत्थर विहारकी तरफ अधिकतर निकले हुये हैं!

२—प्रस्तर (Sedimentary or stratified rocks)

यह शिला समूह पत्थरोंके टुकड़ोंके समुद्रमें आकर एकत्रित होनेसे बनते हैं। पुरानी चट्टानोंके कण जो बहकर समुद्रमें आते हैं एक के ऊपर एक तहमें इकट्ठा होते हैं और दबावके कारण कड़े हो जाते हैं। ऐसे तहदार शिला समूहमें पत्थरके छोटे छोटे टुकड़े जो रवादार नहीं होते, रहते हैं जो भूगर्भ स्थित शिलाके कणोंसे भिन्न होते हैं। साधारणतः इन शिलाओंकी तहें भूमितलके समानान्तर होती हैं परन्तु जब भूडोल आदि भौतिक कारणोंसे उनमें कुछ परिवर्तन होता है तो यह हमें कुछ टेढ़े खड़े और भूमि तलसे कुछ कोण बनाते हुये दिखलाई देते हैं। हिमालय पर्वत का शिला समूह भी इसी प्रकार समुद्रके नीचे बना हुआ मालूम होता है। वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध कर दिखाया है कि यह शिलायें अपनी वर्तमान स्थितिसे बहुत नीची थीं और इसी स्थान पर (जहां आजकल हिमालय है) एक समुद्र था जिसका नाम भूगर्भ शास्त्र वेत्ताओं ने टेथिस-सागर (Tethys-sea) रक्खा है। यह समुद्र बहुत दूर तक भूमध्य सागर तक फैला था। और इसी समुद्रके नीचे यह तहदार शिला समूह बनते रहे। इसके पश्चात् नीचे की ओरसे (भूगर्भ से) ऊपर की ओर ऐसा दबाव पड़ा कि यह तहदार चट्टानें कुछ कुछ उठ आयीं। इसी तरह बार बार होनेसे यह चट्टान हिमालय की वर्तमान स्थितिमें परिणत हो गई। यद्यपि हिमालय पर्वतमें अब तोड़ मोड़ अधिक है तथापि उसमें तहदार पत्थर नज़र आते हैं और कहीं २ प्राचीन समुद्री जीवके अस्थि शेष (Fossil remains) भी दिखलाई देते हैं।

३—परिवर्त्तित शिलायें (metamorphic rocks)

यह शिला समूह ऊपरकी दो प्रकारकी शिलाओंके परिवर्तनसे बनते हैं। यद्यपि इनकी उत्पत्ति ऊपर कही हुई शिलाओंसे होती है परन्तु उनमें इतना अधिक परिवर्तन होजाता है कि यह एक भिन्न आकार और गुण ग्रहण कर लेती हैं और उनको बनाने वाले खनिज भी अधिक तर परिवर्तित हो जाते हैं।

जहां तक हम लोग पृथ्वीके अन्दर पहुँच सकते हैं और जितने प्रकारके शिला समूह मह

देख सकते हैं, वह एक समूचा चट्टान नहीं हैं प्रत्युत कई चट्टान जुटे हुये हैं। कहीं २ तो जोड़ पृथ्वीके समानान्तर आड़े है और कहीं २ खड़े (vertical) हैं। कहीं कहीं ऐसे जोड़ जब चट्टानोंके फटने और नीचे या ऊपर की तरफ चले जाने से होते हैं तो इनके सिलसिलेमें बहुत अन्तर पड़ जाता है। इन चट्टानोंके आयतनमें बहुत फरक़ होता है। कोई कोई तो सहस्रों मील लम्बे चौड़े होते हैं और और कोई केवल कुछ वर्ग फीट ही क्षेत्र फलके होते हैं। इसी लिये इस पृथ्वी तलको लोग चट्टानोंकी फैली हुई विचित्र तस्वीरसे उपमा देते हैं। पृथ्वीके ऊपर वाली चट्टानोंकी बनी हुई पपड़ी को शिला कोष (lithophere) कहते हैं। यह बहुत गहरी है और इसकी गहराई का पता लगाना कठिन है। इसके अन्दर केन्द्र कोष (centrosphere) है जिसके बारेमें हमको इतना ज्ञान है कि यह अत्यन्त उष्ण और अधिक घनत्व वाला है। पृथ्वी का तल बहुत नीचा ऊंचा है। कहीं २ बड़े ऊचे पर्वत हैं और कहीं कहीं गहिरे गड्ढे हैं। अधिक गहिरे गड्ढे पानी से भरे हुये हैं। यह समुद्रीय अंश (जल कोष) स्थल विभाग का ढाई गुना है। अगर पृथ्वी का तल चिकना होता तो समुद्रके पानी की गहराई लगभग दो मील होती। उसके ऊपर चारों तरफसे घेरे हुये वायु मंडल या वायुकोष है जो कई मील ऊँचाई तक फैला हुवा है।

रुथेनम् और परर‍ौप्यम् समुदाय

(Ruthenium and platinum groups)

[ले० श्री सत्यप्रकाश एम० एस-सी०]

ह कहा जा चुका है कि आवर्त्त संविभाग के अष्टम परिवर्तन समूह में तीन समुदाय हैं। एक समुदाय में लोहम्, कोबल्टम् और नकलम् ये तीन धातुएँ हैं जिन का उल्लेख पहले किया जा चुका है। दूसरे समुदाय में रुथेनम्, ओड्रम् और पैलादम् तीन धातुतत्त्व हैं और तीसरे समुदाय में वासम्, इन्द्रम् और परर‍ौप्यम् ये तीन तत्त्व हैं। दूसरे समुदाय का नाम रुथेनम् समुदाय और तीसरे का परर‍ौप्यम् समुदाय है। अब हम इन समुदायों का वर्णन देंगे।

निम्न सारिणीसे इन समुदायोंके तत्त्वोंके भौतिक गुण स्पष्ट हैं :—

(देखो सारिणी १)

इन सब तत्त्वोंमें परर‍ौप्यम् तत्त्व ही अधिक प्रसिद्ध है। अब हम एक एक तत्त्व का उल्लेख करेंगे।

रुथेनम् (Ruthenium) थे, Ru

यह परर‍ौप्यम् और वासम् के खनिजोंमें पाया जाता है। इसका एक खनिज लौराइट, $थे_2 ग_3$, भी है जो गन्धिद है। यह मुख्यतः ओस्मिरीडियम् (वासम् और इन्द्रम् का खनिज) में से धातु रूप में प्राप्त किया जाता है। इस खनिज में ५७.८ प्रतिशत इन्द्रम्, ३५.१ % वासम् और ६.३७ % रुथेनम् होता है। ०.६३ % ओड्रम् और तांबे एवं लोहे की भी कुछ मात्रायें इसमें रहती हैं। खनिज या धातु संकर को दस्तम् धातुके

(सारिणी १)

तत्त्व	संकेत		परमाणुभार	घनत्व	द्रवांक	क्वथनांक	आपेक्षिकताप
रुथेनम्	थे	Ru	१०१·७	१२·३	१९०० ?	२५२० ?	·०६१
ओड्म्	ड्	Rh	१०२.९	१२·४४	१९०७	२५०० ?	·०५८
पैलादम्	पै	Pd	१०६·७	११·४	१५४९	२५४०	·०५९
वासम्	वा	Os	१९०·९	२२·५	२२००	—	·०३१
इन्द्रम्	इ	h	१९३·१	२२·४१	२२९०	२५५०	·०३२३
परौप्यम्	प	Pt	१९५·२	२१·५	१७१०	२४५०	·०३२४

साथ गलाया जाता है। गलित पदार्थ को फिर उदहरिकाम्ल द्वारा प्रभावित करते हैं। और फिर शेष पदार्थके एक भाग को ३ भाग भार-परौषिद् और एक भाग भार-नोषेतके साथ मिला कर तपाते हैं। तदुपरान्त ठंडा करके बन्द् बोतलमें हलके उदहरिकाम्लमें सावधानीसे छोड़ते हैं, और मिश्रण को खूब ठण्डा करते हैं। प्रक्रियामें वास-चतुरोषिद की विषैली वाष्पें निकलती हैं जिनसे सावधानी रखनी चाहिये। जब प्रक्रिया शान्त पड़ जाय तो एक भाग नोषिकाम्ल और २ भाग गन्धकाम्लके साथ मिश्रण को भली प्रकार हिलाया जाता है। इस प्रकार भार-गन्धेत अवक्षेपित हो जाता है जिसे छानकर पृथक् कर लेते हैं। फिर छने हुए द्रव का स्रवण करते हैं। स्रवित पदार्थमें वासम् धातुके उड़नशील ओषिद होते हैं। जो भाग अस्रवित रह जाता है उसमें दो तीन भाग अमोनियम् हरिद मिलाया जाता है और थोड़ासा नोषिकाम्ल डाल कर जलकुंडी पर सुखा लिया जाता है। तत्पश्चात् इस सूखे पदार्थ को अमोनियम हरिद-द्वारा-अर्धसम्पृक्त जलसे धोते हैं जब तक कि धोवन नीरंग न हो जावे। इस प्रक्रियाके करनेके बाद शेष पदार्थमें रुथेनम्से युक्त अमोनियम-इन्द्रम्-हरिद् रह जाता है। इसे भस्म करने के बाद चांदीकी प्यालीमें २ भाग शोरा और एक भाग दाहक सैन्धक क्षारके साथ गलाते हैं। गलित भागको पानीमें घोलनेसे पांशुज रुथेनेत लवणका नारंगी-लाल रंगका घोल प्राप्त होता है। इसे फिर नोषिकाम्लसे प्रभावित करनेसे रुथेन-ओषिद पृथक् हो जाता है। इस ओषिद को उदजन की ज्वालामें अवकरण करनेसे रुथेनम् प्राप्त हो सकता है। यह धातु कठोर और भंजनशील है। यह बड़ी कठिनतासे गलायी जा सकती है। इसे ओष-उदजन ज्वालामें गला सकते हैं। यह ओषजनसे शीघ्र संयुक्त हो सकता है।। अम्लराजका इस पर प्रभाव नहीं पड़ता है पर हरिन्‌से यह रक्तताप पर संयुक्त हो जाता है।

रुथेन ओषिद—इसके मुख्य ओषिद, थे$_{२}$ ओ$_{३}$, थे ओ$_{२}$ और थे ओ$_{४}$ हैं। रुथेनम् को वायुमें गरम करनेसे थे$_{२}$ ओ$_{३}$ बनता है जो नीला चूर्ण है। रुथेन-हरिद, थे ह$_{३}$ में क्षार डालनेसे रुथेन उदौ-

षिद्, थे (ओ उ)$_3$, का श्याम-भूरा अवक्षेप आता है। रुथेन द्विगन्धिद्, थे ग$_2$, या रुथेन गन्धेत को वायुमें भूंजनेसे रुथेन द्वि ओषिद्, रु ओ$_2$, मिलता है। रुथेनम् धातु, दाहक पांशुज क्षार और पांशुज नोषेतके मिश्रण को भस्म करनेसे पांशुज रुथेनेत, पां$_2$ थे ओ$_4$ उ$_2$ ओ मिलता है। रुथेनम् धातु की थोड़ी सी मात्राको ओषजनके प्रवाहमें १०००° श तक गरम करनेसे रुथेन चतुरोषिद्, थे ओ$_4$, मिलता है।

रुथेन त्रिहरिद्—थे ह$_3$—रुथेन धातुचूर्णको हरिन और कर्बन द्विओषिद् वायव्य के मिश्रणमें ३६०°—४४०° तापक्रम पर गरम करनेसे मिलता है। रुथेन चतुरोषिद्को उदहरिकाम्लके साथ वाष्पीभूत करनेसे भी यह प्राप्त होता है। प्रक्रियामें हरिन् निकलने लगती है।

रुथेन गन्धिद्—लौराइट खनिजमें थे$_2$ ग$_3$ होता है। रुथेनम् लवणोंके घोलमें उदजन गन्धिद् प्रवाहित करनेसे जो अवक्षेप आता है वह कई प्रकार के गन्धिदोंका मिश्रण होता है। इसे नोषिकाम्लमें घोलनेसे रुथेनिक गन्धेत, थे (ग ओ$_4$)$_2$ प्राप्त होता है।

रुथेनम्के बहुतसे संकीर्ण यौगिक, जैसे पांशुज रुथेनियो-श्यामिद्, पां$_4$ थे (क नो)$_6$, ३ उ$_2$ ओ और अमोनिकल यौगिक, थे (नो उ$_3$)$_4$ (ओ उ)$_2$ रूपके पाये जाते हैं।

ओड्म् (Rhodium) ड्, Rh

यह भी पररौप्यम् खनिजोंके साथ पाया जाता है। और उन्हींमें से पृथक् किया जाता है। इसके तीन ओषिद्, ड् ओ, ड्$_2$ ओ$_3$, और ड् ओ$_2$ होते हैं। धातुचूर्णको वायुके प्रवाहमें गरम करनेसे ओड् एकौषिद्, ड् ओ, मिलता है। ओड् नोषेत को गरम करनेसे एकार्धओषिद्, ड्$_2$ ओ$_3$, बनता है। ओड्म् धातु को पांशुज क्षार और शोरेके साथ गरम करनेसे द्विओषिद्, ड् ओ$_2$, बनता है। इन ओषिदोंके अनुकूल उदौषिद् भी पाये जाते हैं।

ओड्म् धातुको हरिन्के प्रवाहमें लगातार भस्म करनेसे ओड् त्रिहरिद्, ड् ह$_3$, मिलेगा। और यदि यह धातु गन्धककी वाष्पोंमें गरम किया जाय तो ओड् एकगन्धिद्, ड् ग, मिलेगा।

यदि ओड्म् धातु पर सैन्धक हरिद् की विद्यमानतामें हरिन् प्रवाहितकी जाय तो ओड्-सैन्धक-हरिद्, ड् ह$_6$, ३ सैह नामक द्विगुण लवण मिलता है। इसे पांशुज उदौषिद् की थोड़ी मात्राके साथ प्रभावित करनेसे ड् (ओ उ)$_3$ उ$_2$ ओ के पीले रवे प्राप्त होते हैं। इस उदौषिद् को गन्धकाम्लमें घोलने से ओड् गन्धेत, ड्$_2$ (ग ओ$_4$)$_3$ १२ उ$_2$ ओ के पीले रवे मिलेंगे।

पांशुज ओड्रो श्यामिद्, पां$_3$ ड् (क नो)$_6$ नामक संकीर्ण यौगिक भी पाया जाता है।

पैलादम् (Palladium) पै, Pd

कुछ खनिजों में यह शुद्ध रूपमें भी पाया जाता है। किसी खनिजके घोलमें जिसमें अन्य पररौप्यम् धातु भी हों, पारदिक श्यामिद डालनेसे पैलाद् द्विश्यामिद अवक्षेपित हो जाता है। इसको तप्त करनेसे पैलादम् धातु मिल जाती है। यदि पैलाद द्विहरिद्में पांशुज नैलिद् डाला जाय तो पैलाद्-नैलिद् मिलेगा जिसे उदजनके प्रवाह में गरम करनेसे भी पैलादम् धातु मिल सकती है।

पैलादम्के मुख्य ओषिद्, पै ओ और पै ओ$_2$ हैं। धातुको ओषजन प्रवाहमें ७००°—८००° तापक्रम तक गरम करनेसे यह मिल सकता है। पांशुज-

पैलाद हरिद्के घोलमें सैन्धक क्षार डालनेसे पैलाद द्विओषिदका भूरा अवक्षेप आता है।

ग्रैहम ने सर्व प्रथम यह बात देखी कि यदि रक्त तप्त पैलादम् पर उदजन प्रवाहित किया जाय तो उदजन धातुमें अधिशोषित (adsorb) हो जावेगा। उदजन-अधिशोषित पैलादम् के पत्र अवकरण क्रिया करनेके लिये बड़े उपयोगी हैं।

पैलादस गन्धिद, पैग, को शुष्क हरिन्में गरम करनेसे पैलादस हरिद, पै $ह_2$ बनता है। पैलादिक हरिद, पै $ह_4$, शुद्धावस्थामें नहीं पाया जाता है। पैलादम् हरिद, पै $ह_2$, के घोलमें पांशुज हरिद डालनेसे पांशुज पैलादो हरिद, $पां_2$ पै $ह_4$, बनता है जो जलमें घुलनशील है। यदि पैलादम् धातुको अम्लराजकी अधिक मात्रामें घोलकर घोलमें पांशुज हरिद डाला जाय तो पांशुज पैलादी हरिद, $पां_2$पै $ह_6$, मिलेगा। यह जलमें अनघुल है। पैलादस हरिदसे पांशुज नैलिद डालनेसे पैलादस नैलिद पै $ने_2$, का काला अवक्षेप आता है। पैलादम् धातुको गन्धक की वाष्पोंके साथ गरम करनेसे पैलाद एक गन्धिद, पै ग, बनता है। पैलादस उदौषिद्को गन्धकाम्लमें घोलनेसे पैलादस गन्धेत, पै गओ $_4$, $उ_2$ ओ, बनता है। पैलादस लवणके घोलमें पारदिक श्यामिद डालनेसे पैलादस श्यामिद, पै (क नो)$_2$ का पीला अवक्षेप आता है।

निम्न दो श्रेणियोंके पैलाद-अमोनियम लवण पाये जाते हैं:—

पै (नो $उ_3$)$_2$ $य_2$
पै (नो $उ_3$)$_4$ $य_2$

इनके अतिरिक्त अनेक अन्य संकीर्ण यौगिक भी मिलते हैं।

वासम् (Osmium), वा, Os

यह इन्द्रम् धातु के साथ संयुक्त परौप्यम्-खनिजोंमें पाया जाता है। यह अन्य साथियोंके साथ आसानीसे पृथक् किया जा सकता है क्योंकि यह सीधा ओषजनसे संयुक्त होकर उड़न शील चतुरोषिद, वा $ओ_4$, देता है। रुथेनम्का वर्णन देते हुए कहा जा चुका है कि वासम् अन्य धातुओं से स्रवण द्वारा किस प्रकार पृथक् कर लिया जाता है। वासम् के प्राप्त घोलमें अमोनिया और अमोनियम गन्धिद डालने से वासगन्धिद का अवक्षेप आता है। इस अवक्षेपमें सैन्धकहरिद डालकर मिश्रण पर हरिन प्रवाहित करनेसे सैन्धक-वासो-हरिद, $सै_2$ वा $ह_6$, प्राप्त होता है। इसमें अमोनियम हरिद डालनेसे अमोनियम-वासो-हरिद मिलेगा जिसे बन्द घरियामें गरम करनेसे वासम् धातु शेष रह जावेगी।

वासम् धातु रवेदार या चूर्णावस्थामें प्राप्त होती है। चूर्ण धातुको ४ भाग वंगम्से मिलाकर कोयलेकी घरियामें गरम करनेसे रवेदार वासम् मिलेगा। रवेदार वासम् पर अम्लराजका भी कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। पर चूर्ण वासम् धूम्रित नोषिकाम्लमें शीघ्र और अम्लराजमें धीरे धीरे घुल जाता है। क्वथनांक अति उच्च होनेके कारण इस धातुका उपयोग विशेष बिजलीकी लैम्पोंमें किया जाता है।

इसके चार मुख्य ओषिद पाये जाते हैं—वासएकौषिद, वाओ, एकार्ध ओषिद, $वा_2$ $ओ_3$, द्विओषिद, $वाओ_2$, और चतुरोषिद, $वाओ_4$। जिस श्रेणी का ओषिद तैयार करनाहो उसी श्रेणी के लवण को सैन्धक कर्बनेतके साथ कर्बनद्विओषिदके प्रवाहमें गरम करना चाहिये। इस प्रकार ओषिद मिल जायगा।

वासम्‌को हरिन्-प्रवाह में गरम करने से थोड़ा सा वास द्विहरिद, वा ह $_2$, मिलता है। वास चतुरोषिद्को पांशुजक्षारमें घोल कर अमोनिया डालने से और फिर उदहरिकाम्ल द्वारा संपृक्त करने से पांशुज-वासो-हरिद, पां $_2$ वा ह $_6$, ३ उ$_2$ ओ, प्राप्त होता है। वास चतुरोषिद्के जलीय घोलमें उदजन गन्धिद वायव्य प्रवाहित करनेसे वास गन्धिद, वा ग $_4$ मिलता है।

चतुरोषिद्के क्षारीयघोलमें पांशुज श्यामिद डालनेसे पांशुज वासो श्यामिद, पां$_4$ व (क नो)$_6$ प्राप्त होता है।

इन्द्रम् (Iridium) इ, Ir

प्लेटिनीरीडियम् (परशैप्यम् और इन्द्रम्‌का धातु संकर) तथा ओस्मीरीडियम् (वासम् और इन्द्रम्‌का धातु संकर) ये दो इन्द्रम् के मुख्य खनिज हैं। इन खनिजोंमें अन्य धातु निम्न मात्रा में हैं:—

	परशैप्य-इन्द्रम् यूरालका	वास-इन्द्रम् यूरालका
इन्द्रम्	७६,८५	५५,२४
वासम्	—	२७,२३
परशैप्यम्	१६.६४	१०,०८
ओड्रम्	—	१,५१
रुथेनम्	—	५,८५
पैलदम्	०,४६	—
लोहा	४,१४	—
ताबा	३,१०	—

वासम्-इन्द्रम् धातु संकरसे इन्द्रम् इस प्रकार प्राप्त किया जाता है। धातु संकरको दस्तम्‌के साथ गलाते हैं और तब तक गरम करते हैं जब तक सब दस्तम् उड़ न जाय। इस प्रकार प्राप्त छेदीले पदार्थको पीस कर भार-नोषेतके साथ भस्म करते हैं। इस प्रकार इन्द्रम् इन्द्र-ओषिद में परिणत हो जाता है और वासम् का भार-वासेत बन जाता है। तब फिर इसे जलसे संचालित करके नोषिकाम्लके साथ उबालते हैं। ऐसा करनेसे इन्द्रम् घोलमें आ जाता है और वासम् उड़नशील चतुरोषिद बनकर उड़ जाता है। इस घोलमें भारउदौषिद डालने से इन्द्र ओषिद अवक्षेपित हो जाता है जिसे अम्ल राजमें घोल लेते हैं और इस घोलमें अमोनियम हरिद डाल कर इन्द्रम् और अमोनियम का द्विगुण हरिद प्राप्त कर लेते हैं। इस हरिद को भस्म करनेसे छेदीली इन्द्रम् धातु मिल जाती है।

वासम् सबसे देरमें गलनेवाली धातु है। और इसके बाद इन्द्रम् की गिनती है। ठंडी अवस्थामें इन्द्रम् भंजनशील है पर गरम अवस्थामें कुछ धन-वर्धनीय हो जाता है। यदि इन्द्र गन्धेत के मद्यिक घोलको प्रकाशमें खुला रखा जाय तो थोड़ी देरमें काली धातु अवक्षेपित हो जायगी। इसे श्याम-इन्द्रम् कहते हैं, यह पदार्थ वायव्यों के संयुक्त करनेमें प्रबल उत्प्रेरकका काम देता है।

इसके दो ओषिद इ$_2$ ओ$_3$, और इ ओ$_2$ होते हैं। पांशुजइन्द्र हरिदको सैन्धक कर्बनेतके साथ रक्त-तप्त करनेसे एकार्ध ओषिद, इ$_2$ ओ$_3$, प्राप्त होता है। पांशुज इन्द्र हरिदके घोलमें पांशुजक्षार डाल कर बन्द बोतल में रखने से पीत हरा अवक्षेप आवेगा जो त्रिओषिद, इ (ओ उ)$_3$ का है। इस ओषिद को कर्बन द्विओषिद के प्रवाहमें गरम करनेसे इन्द्र द्विओषिद, इओ$_2$, का काला चूर्ण मिलेगा।

रक्ततप्त छेदीले इन्द्रम् के ऊपर हरिन् प्रवाहित करनेसे इन्द्रस हरिद, इह$_3$, प्राप्त होता है। इन्द्रम्

चूर्णको अम्ल राज में घोलने से इन्द्रिक हरिद, इह$_4$, मिलता है। इसके उदहरिकाम्ल घोल का संगठन उ$_2$ इह$_6$, माना जाता है। उसमें यदि पांशुजहरिद डाल दिया जाय तो पांशुज-इन्द्री हरिद, पां$_2$ इह$_6$, मिलेगा जिसके अष्टतलीय रवे होते हैं। इस इन्द्रीहरिद को उदजन गन्धिद वायव्य के साथ गरम करके घोल में पांशुजहरिद डालने से पांशुज इन्द्रो हरिद, पां$_3$ इह$_6$, ३ उ$_2$ ओ मिलेगा।

इन्द्रम् चूर्णको सैन्धक कर्बनेत और गन्धकके साथ गरम करनेसे द्वि गन्धिद, इ ग$_2$, बनता है। इन्द्र एकार्ध ओषिदके लवणके घोलमें उदजन गन्धिद प्रवाहित करनेसे इन्द्र एकार्ध गन्धिद, इ$_2$ ग$_3$ का धूरा अवक्षेप मिलेगा। इस धातुके भी बहुतसे अमोनिकल यौगिक तैयार किये गये हैं।

परौप्यम् (Platinium) प, Pt

परौप्यम्का अधिकांश भाग रूस प्रदेशके यूराल पर्वतोंमें उपलब्ध विशेष रेणुकामें से प्राप्त किया जाता है। इस रेणुकामें निम्न पदार्थ होते हैं :-

परौप्यम्	७६,४
इन्द्रम्	४,३
ओड्म्	०,३
पैलादम्	१,४
स्वर्णम्	०,४
ताम्रम्	४,१
लोहम्	११,७
बालू	१,४
वासम् इन्द्रम्	०·५

इस मिश्रणमें से स्वर्णम् को तो पारद-मिश्रण विधिसे पारदमेल बनाकर पृथक् कर लेते हैं। तदुपरान्त शेष पदार्थको अम्लराजसे संचालित करते हैं। वासम्-इन्द्रम् अनघुल रह जाता है, शेष घोलको वाष्पीभूत करके शुष्क कर लेते हैं। शुष्क पदार्थको फिर १२५° श तक गरम किया जाता है। पैलादम् और ओड्म्के अनघुल हरिद, पै ह$_2$ और ड् ह$_3$ बन जाते हैं। अतः इस मिश्रणको जलसे प्रभावित करने से परौप्यिक हरिद, प ह$_4$ और कुछ इन्द्र हरिद, इह$_4$, घोलमें चले जाते हैं। घोलको फिर उदहरिकाम्ल द्वारा अम्लित किया जाता है और फिर इसमें अमोनियम हरिद डालनेसे अमोनियम हरो परौप्येत, (नो उ$_4$)$_2$ प ह$_6$ अवक्षेपित हो जाता है और इन्द्रम् घोलमें ही रह जाता है। अमोनियम हरो परौप्येतको गरम करनेसे छेदीला परौप्यम् प्राप्त होता है। इसे रक्त-तप्त करके घनकी चोट देनेसे परौप्यम् धातु के ढोके बन जाते हैं। इसे ओष-उदजन ज्वालामें गलाया जा सकता है।

छेदीला परौप्यम् (Platinum sponge) छेदीला खाकी पदार्थ है जो अमोनियम हरो परौप्येत को गरम करनेसे बनता है।

हरो परौप्यिकाम्ल, उ$_2$ पह$_6$, के घोलको दस्तम् या सैन्धक पिपीलेत द्वारा अवकरण करने से परौप्यम् चूर्ण जिसे श्यामपरौप्यम् (Platinum black) कहते हैं, मिलता है। इसमें ओषजन अधिशोषित रहता है अतः यह मद्यको मद्यानार्द्रमें ओषदीकृत कर सकता है।

यदि परौप्यम् तारोंके बीचमें जलके भीतर विद्युत धारा प्रवाहित करके विद्युत चाप बनाया जाय तो कुछ परौप्यम् जलमें चला जाता है। इस प्रकार परौप्यम्का भूरा कलार्द्रघोल प्राप्त होता है। इसे कलार्द्र परौप्यम् (Colloidal platinum) कहते हैं।

यदि एसबेस्टसके तन्तुओंको तीव्र उदहरिकाम्लमें उबाल कर परौप्यिक हरिदके घोलमें भिगोया जाय और फिर सुखा कर थोड़ेसे अमोनियम हरिद द्वारा घरियामें गरम किया जाय (या सैन्धक पिपीलेत द्वारा अवकृत किया जाय) तो परौप्यित एसबेस्टस (Platinised asbestos) प्राप्त होता है।

पररौप्यम् मटमैले श्वेत-रंगकी धातु है। इसके घनत्व आदि भौतिकगुण आरम्भ की सारिणीमें दिये जा चुके हैं। ओषउद्‌जन ज्वालामें यह गलाया जा सकता है और तीव्र रक्तताप्त करने पर यह पीट कर पत्राकार किया जा सकता है और इसके तार भी खींचे जा सकते हैं। कर्बन और स्फुर द्वारा रक्तताप पर यह प्रभावित होकर भंजनशील हो जाता है। इस धातु पर तीव्र नोषिकाम्ल, या उदहरिकाम्ल का प्रभाव नहीं पड़ता है पर अम्लराज में यह घुल जाता है। यह बहुत स्थायी धातु है। इसकी घरियाँ और कटोरियाँ रासायनिक प्रक्रियाओंके लिये बनाई जातीहैं। पररौप्यम्‌की घरियाको धुएंदार ज्वालासे गरम न करना चाहिये और न मगनीस उष्म स्फुरेत को छन्ना कागज़के साथ इसमें भस्म करना चाहिये क्योंकि प्रक्रिया में अवकरण द्वारा स्फुर बन जाता है जो पररौप्यम् को खा जाता है। वंगम् और सीसम् धातुएं पररौप्यम्‌के साथ शीघ्र धातु-संकर बना देती हैं। उदप्लविकाम्लका पररौप्यम् पर प्रभाव नहीं पड़ता है।

पररौप्यम् और सीसम् का धातु संकर नोषिकाम्लमें घुल जाता है और पररौप्य नोषेत बनता है। पररौप्यम्‌को अम्लराजमें घोलकर वाष्पीभूत करने के उपरान्त प्राप्त पदार्थको तीव्र उदहरिकाम्लसे भिगोकर फिर वाष्पीभूत करके शुष्क करनेसे हरोपररौप्यिकाम्ल,, उ$_{२}$ प ह$_{६}$, ६ उ$_{२}$ ओ, के लाल-भूरे रंगके रवे प्राप्त होते हैं जिन्हें साधारणतया पररौप्यिक हरिद भी कहा जाता है

पररौप्यमके यौगिक—पररौप्यम् के यौगिक दो श्रेणियोंके होते हैं।

पररौप्यस यौगिक, प क$_{२}$, रूपके और पररौप्यिक यौगिक, प क$_{४}$ रूपके, इनमें पररौप्यिक यौगिक अधिक उपयोगी हैं।

हरो पररौप्यिकाम्ल—इसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। यह प्रबल द्विभस्मिकाम्ल है। रजत-नोषेत के साथ यह रजत हरोपररौप्येत, र$_{२}$ प-ह$_{६}$, का पीला अवक्षेप देता है।

पांशुज हरो पररौप्येत, पां$_{२}$ प ह$_{६}$ जलमें केवल १·१२ प्रतिशत घुलनशील है, लाल-पररौप्येत, ला$_{२}$-प ह$_{६}$, ०·१४१०/° घुलनशील है और व्योम-पररौप्येत, वो$_{२}$ प ह$_{६}$ तो केवल ०·०७ प्रतिशत घुलता है अतः इन तत्त्वोंके घुलनशील लवणोंमें हरो-पररौप्यिकाम्ल डालनेसे अवक्षेप आजाता है।

पररौप्यिक हरिद—प ह$_{४}$, हरो पररौप्यिकाम्लको हरिन्‌के प्रवाहमें ३६९° श तक गरम करनेसे यह मिल सकता है। यह भूरा रवेदार पदार्थ है। ३९०° का तापक्रम तक हरिन्‌में गरम करनेसे त्रिहरिद, प ह$_{३}$, बनता है और ५८०° श तक गरम करनेसे द्विहरिद, प ह$_{२}$ बनता है।

पररौप्य चतुर्हरिद, प ह$_{४}$, को जलमें घोलनेसे पीतलाल घोल मिलता है, जो कदाचित् [प ह$_{४}$ (ओउ)$_{२}$] उ$_{२}$ रूपका संकीर्ण अम्ल है। पररौप्यद्विहरिद जलमें अनघुल है पर यह उदहरिकाम्ल में घुलकर हरो पररौप्यिकाम्ल का भूरा घोल देता है। हरो पररौप्यिकाम्ल पर गन्धकद्विओषिदका प्रभाव डालनेसे भी यह बनसकता है।

ओषिद और उदौषिद—हरो पररौप्यिकाम्लके घोलमें सैन्धक कर्बनेत डाल कर वाष्पीभूत करनेके उपरान्त सिरकाम्ल द्वारा प्रभावित करनेसे पररौप्यिक उदौषिद, उ$_{२}$ [प (ओ उ)$_{६}$] लाल-भूरे रंग का पदार्थ मिलता है। इसे धीरे धीरे गरम करनेसे पररौप्य-द्विओषिद, प ओ$_{२}$, का काला पदार्थ मिलेगा।

पररौप्यो हरिदोंके घोलमें क्षार डालनेसे पररौप्यस उदौषिद, प (ओ उ)$_{२}$ का अवक्षेप आता है जो गरम करने पर पररौप्यस ओषिद, प ओ, देता है।

पररौप्यिक गन्धिद—प ग$_{२}$,—यह हरोपररौप्यिकाम्लके घोलमें उदजनगन्धिद वायव्य प्रवाहित करने से मिलता है। यह गन्धिद पीत अमोनियम

गन्धिदमें घुलनशील है। परदौप्यस लवण उदजन गन्धिदके प्रवाहसे परदौप्यस गन्धिद, पग, देते हैं।

परदौप्यिक नैलिद, पनै$_4$—हरो परदौप्यिकाम्लमें पांशुजनैलिद डालनेसे लाल रंगका घोल प्राप्त होता है जिसे गरम करनेसे परदौप्यिक नैलिद अवक्षेपित हो जाता है। यह उदनैलिकाम्लके संसर्गसे नैलो परदौप्यिकाम्ल, उ$_2$ प नै$_6$ के काले सूच्याकार रवे देता है। परदौप्यस लवणके घोल पांशुज नैलिदके साथ परदौप्यस नैलिद, प नै$_2$, देते हैं।

परदौप्यम् भी अमोनियम यौगिकोंके साथ अनेक संकीर्ण यौगिक देता है जिन्हें परदौप्यामिन कहते हैं। जैसे :—

[प (नो उ$_3$) ह$_2$) आदि

यदि हरो परदौप्यिकाम्लमें उदश्यामिकाम्ल और भार ओषिद डाला जाय, और घोलको गरम करके गन्धक द्विओषिदसे प्रभावित किया जाय तो भार-परदौप्यो श्यामिद भ प (क नो)$_4$, ४ उ$_2$ ओ, प्राप्त होता है।

घोलमें से भार गन्धेतको छान कर पृथक् कर लेते हैं और फिर इसका स्फटिकी करण करनेसे पीला चूर्ण मिलता है। भार-परदौप्यो-श्यामिद का उपयोग रौञ्जनरश्मियोंकी पहिचानमें आता है क्योंकि यह इन रश्मियों के प्रभावसे चमकने लगता है।

सोडावाटर और उसका व्यवसाय

[लेः—श्रीकृष्णचन्द्र बी० एस-सी०]

रूपके कई भागोंमें ऐसे बहुत से सोते मिलते हैं जिनमें कर्बन द्विओषिद बहुत अधिक मात्रामें घुली मिलती है। ऐसे सोतोंमें और भी कई प्रकारके गुणदायक पाचन शक्ति बढ़ाने वाले नमकीन पदार्थ मिले रहते हैं। कई रोगोंको अच्छा करनेके कारण दो सौ वर्षसे अधिक समयसे ये बड़े विख्यात हो गये हैं। बड़े बड़े नगर इनके किनारे बसे हुये हैं जहाँ दूर दूर से मनुष्य अपना इलाज करवाने आते हैं। इलाज क्या है, केवल इन्हीं सोतों के पानीको दिनमें कई बार पीना। प्राकृतिक वस्तुओं की नकल करनेका रोग मनुष्यमें कोई नया नहीं है। बहुतसे मनुष्योंको इस प्रकारके पानीको अपने हाथसे बनानेकी इच्छा हुई और ज्यों ही वैज्ञानिकोंने कर्बन द्वि-ओषिद ढूंढ़ निकाली और बनानेकी विधि जानली उन सबोंको अपने स्वप्न सत्य होते प्रतीत होने लगे।

सबसे प्रथम जोसेफ प्रीस्टलेने १७७२ ई० में इस बातका प्रयत्न किया कि कर्बनद्वि ओषिद और अन्य पदार्थ मिलाकर ऐसा पानी बनाया जाय जिसमें सोतेके पानीके सब गुण वर्त्तमान हों (Directions for impregnating water with fixed air to communicate the pecu-

liar Spirit and Virtues of Pyrmont water. 1772.)

प्रीस्टलेको सफलता तो बहुत कुछ हुई परन्तु पानी जो बनने लगे वे अपने ढंगके नये थे। उनमें से कोई पानी ऐसा न था जो किसी सोतेके समान हो— बनाये हुये पानीमें नाना प्रकारकी सुगन्धें मिलाई जाती हैं और प्रत्येक पानीका नाम किसी फल पर होता है जिससे इसकी सुगन्ध मिलती है। सुगन्ध किसी फलका सत नहीं होती परन्तु कई वस्तुओंको मिलाकर बनाई जाती है (synthetic)। केवल कर्बनिकाम्ल गैस और थोड़ा सैन्धक अर्ध-कर्बनेत ही दो ऐसी वस्तु हैं जो सोते और बनाये हुये पानीमें मिलती हैं। दोनोंमें केवल इतनी ही समानता है। बनाये हुये पानीको एरेटेड वाटर (Aerated water) अथवा खारा पानी या खनिज जल (mineral water) कहते हैं।

इसका व्यवसाय सबसे प्रथम निकोलस पाल ने १७६० ई० में जनीवामें आरम्भ किया—जे० श्वेपी (Schiveppe) जो पालका साझीदार था लन्दन आया और सोडावाटर बनानेका व्यवसाय करने लगा—उसके बनाये हुये पानीकी प्रशंसा टिबेरियस कैवैलोने अपने (Medicinal Properties of Pactitious air) नामी लेखमें की जो सन् १७-९८ ई० में छपा था।

इन दिनों उत्तरी भारतमें सोडावाटरका व्यवसाय उन्नति पर है क्योंकि अब लोगोंको इसके प्रति रुचि बढ़ती जा रही है। अभी दस वर्ष से अधिक न हुये होंगे जब बहुत से मनुष्य इसे अशुद्ध समझ कर छूते न थे किन्तु अब बिरला ही कोई ऐसा धार्मिक होगा जिसके हृदयमें यह भावना बची हो।

परन्तु इसके व्यवसायमें लोगों ने जनताको धोखा देना आरम्भ कर दिया—व्यवसाय की उन्नतिके संग बहुत से कारखाने खुल गये और आपसकी द्वेषाग्निके कारण उन्होंने पानीके दाम गिराने शुरू कर दिये। फल स्वरूप मूल्य कम होगया किन्तु पानी बुरे बनने लगे। बुरेसे यह तात्पर्य्य है कि हर प्रकारकी मिलावट होने लगी— जहां शीरेमें चीनी छोड़ और कोई वस्तु व्यवहारमें न लाई जाती थी वहां सैकरीन(शर्करिन्) अधिकतासे मिलाई जाती है। सैकरीन एक प्रकारकी तारकोलसे निकाली हुई बहुत ही मीठी वस्तु है जो चीनीसे ५५० गुणा अधिक मीठी होती है। यह दृष्टि अथवा फेफड़ेके लिये अत्यन्त हानि कारक है। रंगीन पानिओंमें जहां प्रथम खानेके अच्छे रंग डाले जाते थे वहां इन दिनों सस्ते हानि-कारक कपड़े रंगनेके रंग व्यवहारमें लाये जा रहे हैं। पानीको खट्टा करनेके लिये इमलिकाम्ल के स्थान गंधकका तेजाब काममें आने लगा। इस व्यवसाय के करने वालोंको इसकी चिन्ता नहीं कि अनिष्ट कारक वस्तुओंके मिलानेसे मनुष्यों पर कितना बुरा प्रभाव पड़ेगा और वे जनताके साथ कितना अन्याय कर रहे हैं। उन्हें तो अपने लाभसे लाभ, और सबसे आश्चर्य्य की बात एक और एक और है। पब्लिक हेल्थ डिपार्टमेन्टका डाक्टर बोतलोंमें कूड़ा ही देखता है—उसे पानी कीपरीक्षा (Analysis) से कोई सरोकार नहीं— नहीं तो इनमें की बहुत मिलावटें बन्दकी जा सकती हैं।

जिन मशीनोंसे पानी भरा जाता है उनका आविष्कारक जौसेफ ब्रमाह है। उसकी बनाई हुई मशीनमें कुछ दोष थे जो आज कलके इंजीनियरोंने ठीक कर लिये हैं। और जिस मशीनका चित्र आगे दिया जाता है वह सब मशीनोंमें अच्छी गिनी जाती है—इसे 'सरविस' मशीन कहते हैं और सरदार कम्पनी ही केवल इसे बनाती है— अभी तक किसी और कारखाने ने इनसे अच्छी मशीन नहीं बना पाई है।

मशीनके भिन्न भिन्न भाग इस प्रकारसे हैं—'क' को सिलेण्डर या बेलन कहते हैं जिसमें कर्बन द्वि ओषिद् भरी रहती है इसका सम्बन्ध एक घुमेरदार तांबे की नली द्वारा हांडीसे है। चित्र में "ग" हांडी है। सिलेंडरके मुंह में एक चरखीलगी रहती है जिससे सिलेन्डर खुल व बन्द हो सकता है—सिलेन्डर खोल देने पर गैस हांडीमें भर जाती है—"च" पम्प है जो चक्र 'छ' के घुमानेसे चलता है और इसका संबन्ध एक ओर पानीके हौज़से होता है जो दिखाया नहीं गया है, और दूसरी ओरसे हांडीमें जाकर एक नली द्वारा मिल जाता है। इस पम्पके द्वारा पानी हांडीमें चढ़ाया जाता है। हांडीके अन्दर लोहेकी जाली भरी रहती है जिसके कारण पानी और गैस भली प्रकार एक दूसरेसे मिल जाते हैं। 'ख' चांपा है

जिसमें बोतल लगकर भरी जाती है इसका सम्बन्ध एक नल द्वारा हांडीके नीचे भाग से होता है। चांपा घूम सकता है—हांडी और चाँपेके मध्यमें दो छिद्रवाला एक कपाट या वाल्व (valve) होता है 'ठ'। जब चांपेमें लगी हुई बोतल का मुंह नीचे होता है तो वाल्व द्वारा चांपे और हांडी में सबन्ध हो जाता है और मुंह ऊपर करते ही संबन्ध टूट जाता है। 'घ' को घड़ी कहते हैं जिससे हांडी के अन्दर भरी हुई गैसका दबाव (Pressure) सूचित होता है। इसकी नाप 'पौंड घन इंच होती है—साधारणतः बोतलोंको १०० से १५० पौंड दबाव पर भरते हैं—'ट' एक काँचकी नली है जिसे तल सूचक (मैनोमीटर ट्यूब) कहते हैं। इससे हाँडीके पानीके भीतर की नापसूचित होती है। 'झ' रेग्यूलेटर या नियामक है जिसका कार्य्य किसी नियत किये हुये दबावसे अधिक गैस को हाँडीमें जानेसे रोकता है। यह पुरजा बड़े कामका
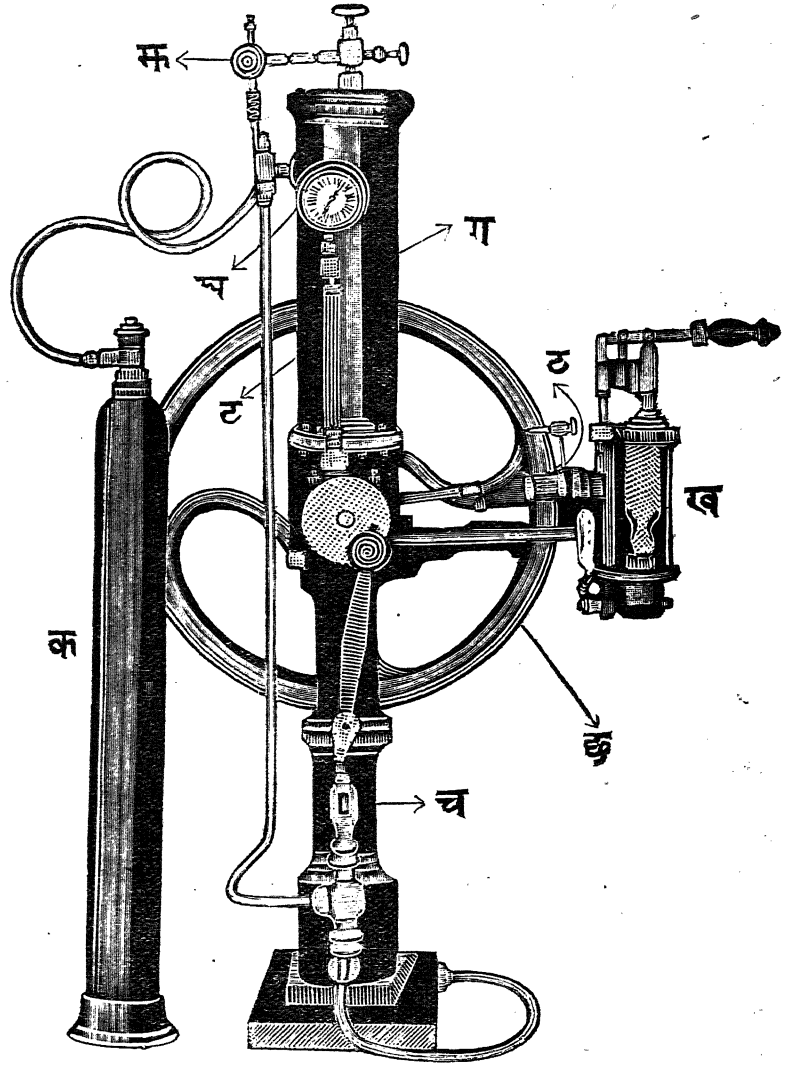
होता है क्योंकि अधिक गैस चले जानेके कारण हाँडीके फटने का डर रहता है।

मशीनके भागोंका संक्षेपमें वर्णन करनेके पश्चात् अब यह बताना आवश्यक है कि बोतलको भरनेके पहिले क्या-क्या क्रियायें होती हैं और किन-किन वस्तुओंका उपयोग किया जाता है। प्रथम, बोतल भली प्रकार धोई जाती है। इसको तीन भिन्न-भिन्न नाँदोंमें लम्बे ब्रुशोंसे धोते हैं। दूसरे स्थानमें ८५ पौंड चीनी, १० गैलन पानी और ढाई आउंस प्रति गैलन टार्ट्रिक या इमलिकाम्ल मिलाकर शीरा पकाया जाता है। यदि अधिक मीठेकी आवश्यकता हो तो पानीकी मात्रा घटा दी जाती है। इस शीरेको फलालैनकी थैली (Filter-bag) में छाना जाता है और छने हुये शीरेमें एक ड्राम फी दर्जनके हिसाबसे इत्र या एसेन्स (जिसका पानी बनाना हो) और रंग डाला जाता है। एक ड्राम फी छै दर्जनके हिसाबसे फोमसिरप (Foam syrup) डाला जाता है जिससे बोतल खोलने पर झाग उठता है। लैमोनेडमें झागकी आवश्यकता नहीं होती। इस प्रकारसे बना शीरा नापकर थोड़ा-थोड़ा हर एक बोतलमें भरा जाता है। और इसके पश्चात् चांपेमें बोतल लगा दी जाती है और जब चांपा घुमाया जाता है तो कर्बनिकाम्ल गैसके साथ फिटा हुआ पानी नियत किये हुये दबाव पर आकर बोतलमें भर जाता है और काँचकी गोली बोतलके मुंहमें रबरके छल्लेमें फंसकर बोतल का मुंह बन्द कर देती है। लेबुल लगा देनेके पश्चात बोतल बाहर भेज दी जाती है। सोडा वाटर (खारा पानी) बनाना इससे और भी सरल है। बहुतसे कारखाने वाले तो केवल गैस और पानीही बोतलमें भर देते हैं किन्तु यदि इससे भी अधिक तीक्ष्ण सोडेकी आवश्यकता हो तो थोड़ासा सोडा बाई कार्ब (सैन्धक अर्ध कर्बनेत) पानीकी टंकीमें मिला देना चाहिये। एक पिन्ट पानीके लिये १५ ग्राम सोडेकी आवश्यकता होती है। पोटाश वाटर और लीथिया वाटरमें पांशुज कर्बनेत और लाल-कर्बनेत पड़ते हैं। मीठे पानीके लिये दस आऊंसकी बोतल काममें लाई जाती है और खारे पानीमें १२ से १६ आऊंस तककी बोतल उपयोगकी जाती है। एक छः आऊंसकी बोतल होती है जिसे स्प्लिट बोलते हैं।

अन्तमें इस बातका संक्षेपमें वर्णन करना आवश्यक है कि कर्बन द्विओषिद कैसे बनाई जाती है। बहुत सी पुरानी ढंगकी मशीनोंका जिन्हें दोपालिया मशीन बोलते हैं भट्टीसे सम्बन्ध रहता है। भट्टियाँ एक प्रकारकी टंकी हैं जिनमें गंधकका तेज़ाब और सोडा बाई कार्ब (सैन्धक अर्ध कर्बनेत) अथवा व्हाटिंग (whiting) डालदी जाती है और गैस बनकर बोतलोंमें भर जाती है परन्तु नवीन ढंगकी मशीनों में भट्टीके लिये कोई स्थान नहीं है। इनमें गैस सिलेंडरसे दी जाती है। गैस बनानेके अलग कारखाने खुल गये हैं जिनमें गैस बनाई जाती है और सिलेंडरोंमें भरकर भेज दी जाती है।

Ref. – (1) Evolution of artificial mineral water by Virkby— Manchester 1902

(2) Encyclopaedia Britannica.

वैज्ञानिकीय

डा० सर सी० वी० रमन

सम्राट पंचमजार्जके जन्मदिवसके उपलक्षमें भारतवर्षके प्रसिद्ध भौतिक शास्त्र वेत्ता, तथा कलकत्ता विश्वविद्यालयके अध्यापक डा० सी० वेंकट रमन, एफ० आर० एस०, को 'सर' की उपाधि भेंटकी गई है। भारतीय सरकार ने उनके वैज्ञानिक अन्वेषणोंको इस प्रकार सम्मानित किया है। वैज्ञानिक कार्य्यके लिये इस प्रकारकी उपाधियां जगदीशचन्द्र वसु और प्रफुल्लचन्द्र रायको भी भेंटकी जा चुकी हैं। सर रमनको हम इसके उपलक्षमें बधाई देते हैं। वह दिन भी शीघ्रही आने

वाला है जब सर रमन नोबुल—पुरस्कार द्वारा भी सम्मानित किये जावेंगे।

सर जगदीश वसुके भ्रान्तिपूर्ण आविष्कार ?

डा० जी० ए० परसन (Persson) एम० डी०, एम० एस०, ने सर जगदीशचन्द्र वसुके वनस्पति जीवन सम्बन्धी अन्वेषणोंके विषयमें 'साइंटफिक अमेरिकन' नामक विख्यात पत्रमें अपना मन्तव्य बड़े जोरदार शब्दोंमें प्रकाशित किया है। वे कहते हैं—

'कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी इंगलैण्डमें शिक्षित प्रसिद्ध भारतीय वैज्ञानिक और कलकत्ताके बोस—इन्सटीट्यूटके संस्थापक तथा वनस्पति जीवनके रहस्योंके विषयकी अनेक मनोरञ्जक पुस्तकोंके रचयिता,—जिन्हें, अपने अन्वेषणोंके कारण सरका सम्मान तथा अनेक आनरेरी उपाधियां भेटकी गई है—सरजगदीश चन्द्र वसु ने अपनी नवीन पुस्तक—'पौधोंके स्वलेखन और उनके अर्थ' (Plant autographs and their revelations) में यह बताया है कि वनस्पति शरीरमें भी मुख्यतः हमारे ही शरीरके समान रस-प्रवाह-प्रबन्ध है और इस बात के समर्थनके लिये उन्होंने बहुतसी वनस्पतियों और फूलोंके हृदय-स्पंदन सम्बन्धी अनेक चित्र दिये हैं।

'इस बातको स्वीकार करना ही होगा कि यह खोज परमोपयोगी है पर लेखकने, क्षमा हो, इससे भी अधिक एक और आश्चर्यजनक वृत्तान्तकी घोषणाकी है। एक बार नहीं, कई बार, अपनी प्रयोगशालामें केवल रुईकी बनी हुई दीपक की बत्तीमें भी जो गोभीके रसमें डुबोकर रखी गई थी, उन्हें पूर्णतः विश्वसनीय निश्चित आवर्त्त-स्वाभाविक हृदय स्पन्दन मिला है।

'चाहे यह अनुमान किया भी जा सके कि जीवित अङ्गोंमें और बाग़में उगने वाली तरकारियों के समान क्षीण—चेतन पदार्थोंमें इस प्रकारके स्पन्दन होने सम्भव हों, पर निर्जीव चेतना-हीन पदार्थोंमें इनके अस्तित्वके विषयमें क्या कहा जा सकता है ?

'इसका उत्तर बहुत सीधा है। मैं यह निस्संकोच कह सकता हूँ कि मुझे जब कभी अपने प्रयोगोंमें हृदयकी धड़कन (यदि यह उपमा-सूचक नाम दे भी दिया जावे) मिली तो खोज करने पर यही पता लगाकि प्रयोगमें कुछ असावधानी रह गई है। यह केवल आणविक आकर्षणके कारण मिली थी। जब जब मैंने अपने यंत्रोंको बाह्य परिस्थितिके प्रभावसे पूर्णतः बचाने का प्रबन्ध किया, मुझे कभीकी इस प्रकारके स्पन्दन नहीं मिले।

'यदि आप भारतके इस प्रसिद्ध अन्वेषककी खोजोंके सम्बन्धमें मेरे विचार पूछें तो मैं निष्पक्ष और निस्संकोच संक्षेपमें यह कह सकता हूँ कि मनोवैज्ञानिकोंके शब्दोंमें यह सब 'इच्छा—पूर्ति' ही है। स्पष्ट शब्दोंमें मैं इस परिणाम पर पहुँचता हूँ कि सर जगदीश केवल इसी लिये पौधोंमें हृदय-स्पन्दनका अनुभव कर सके क्योंकि इसकी उन्होंने पहले ही कल्पना या धारणा करली थी। वे प्राप्त करना चाहते थे—और इसी लिये उन्हें यह मिल गया।

'भारतके इस महान व्यक्तिको मैं आदर और सम्मानकी दृष्टिसे देखता हूँ। मैं मानता हूँ कि उन्होंने ३० वर्षके अथक परिश्रम द्वारा वनस्पति जीवन पर उपयोगी प्रकाश डाला है। पर मैं इस बातका अनुभव करता हूँ कि उन्होंने अपनी इस नवीन पुस्तकमें सिद्धान्तोंके निर्धारणमें बुद्धिकी अपेक्षा हृदयावेशसे अधिक काम लिया है।'

वैज्ञानिक पुस्तकें

विज्ञान परिषद् ग्रन्थमाला

१—विज्ञान प्रवेशिका भाग १—ले० प्रो० रामदास गौड़, एम. ए., तथा प्रो० सालिग्राम, एम.एस-सी. ।)

२—मिफताह-उल-फ़नून—(वि० प्र० भाग १ का उर्दू भाषान्तर) अनु० प्रो० सैयद मोहम्मद अली नामी, एम. ए. ... ... ।)

३—ताप—ले० प्रो० प्रेमवल्लभ जोषी, एम. ए. ।=)

४—हरारत—(तापका उर्दू भाषान्तर) अनु० प्रो० मेहदी हुसेन नासिरी, एम. ए. ... ।)

५—विज्ञान प्रवेशिका भाग २—ले० अध्यापक महावीर प्रसाद, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद १)

६—मनोरंजक रसायन—ले० प्रो० गोपालस्वरूप भार्गव एम. एस-सी. । इसमें साइन्सकी बहुत सी मनोहर बातें लिखी हैं। जो लोग साइन्सकी बातें हिन्दीमें जानना चाहते हैं वे इस पुस्तक को जरूर पढ़ें। ... १॥

७—सूर्य सिद्धान्त विज्ञान भाष्य—ले० श्री० महावीर प्रसाद श्रीवास्तव, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद

- मध्यमाधिकार ... ... ॥=)
- स्पष्टाधिकार ... ... ।॥)
- त्रिप्रश्नाधिकार ... ... १॥)
- चन्द्रग्रहणाधिकार ... ... १॥)

'विज्ञान' ग्रन्थमाला

१—पशुपक्षियोंका शृङ्गार रहस्य—ले० अ० शालिग्राम वर्मा, एम.ए., बी. एस-सी. ... -)

२—ज़ीनत वहश व तयर—अनु० प्रो० मेहदी-हुसैन नासिरी, एम. ए. ... ... -)

३—केला—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली =)

४—सुवर्णकारी—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली ।)

५—गुरुदेवके साथ यात्रा—ले० अध्या० महावीर प्रसाद, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद ।=)

६—शिक्षितोंका स्वास्थ्य व्यतिक्रम—ले० स्वर्गीय पं० गोपाल नारायण सेन सिंह, बी.ए., एल.टी. ।)

७—चुम्बक—ले० प्रो० सालिग्राम भार्गव, एम. एस-सी. ... ... ।=)

८—क्षयरोग—ले० डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा, बी. एस. सी, एम-बी. बी. एस. ... -)

९—दियासलाई और फ़ास्फ़ोरस—ले० प्रो० रामदास गौड़, एम. ए. ... ... =)

१०—वैज्ञानिक परिमाण—ले० डा० निहाल करण सेठी, डी. एस. सी तथा श्री सत्य-प्रकाश, एम. एस-सी० ... ... १॥)

११—कृत्रिम काष्ठ—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली =)

१२—आलू—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली ... ।)

१३—फसल के शत्रु—ले० श्री० शङ्करराव जोषी ।=)

१४—ज्वर निदान और शुश्रूषा—ले० डा० बी० के० मित्र, एल. एम. एस. ... ... ।)

१५—कार्बनिक रसायन—ले० श्री० सत्य-प्रकाश एम-एस-सी० ... ... २॥)

१६—कपास और भारतवर्ष—ले० पं० तेज शङ्कर कोचक, बी. ए., एस-सी. ... -)

१७—मनुष्यका आहार—ले० श्री० गोपीनाथ गुप्त वैद्य ... ... १)

१८—वर्षा और वनस्पति—ले० शङ्कर राव जोषी ।)

१९—सुन्दरी मनोरमाकी करुण कथा—अनु० श्री नवनिद्धिराय, एम. ए. ... ... -)॥

अन्य वैज्ञानिक पुस्तकें

हमारे शरीरकी रचना—ले० डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा, बी. एस-सी., एम. बी., बी. एस.

- भाग १ ... ... २॥)
- भाग २ ... ... ४)

चिकित्सा-सोपान—ले० डा० बी० के० मित्र, एल. एम. एस. ... ... १)

भारी भ्रम—ले० प्रो० रामदास गौड़ ... १।)

वैज्ञानिक अद्वैतवाद—ले० प्रो० रामदास गौड़ १॥=)

वैज्ञानिक कोष— ... ... ४)

गृह-शिल्प— ... ... ॥)

खादका उपयोग— ... ... १)

मंत्री
विज्ञान परिषत्, प्रयाग

मुद्रक—सूरजप्रसाद खन्ना, हिन्दी-साहित्य प्रेस, प्रयाग

पूर्ण संख्या—१७२ *Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces for use in Schools and Libraries.* Reg. No. A.708

भाग २९
Vol. 29.

कर्क संवत् १९८६
जुलाई १९२९

संख्या ४
No 4

प्रयागकी विज्ञानपरिषत्‌का मुखपत्र

Vijnana the Hindi Organ of the Vernacular Scientific Society, Allahabad.

अवैतनिक सम्पादक

ब्रजराज

एम. ए., बी. एस-सी., एल-एल, बी.

सत्यप्रकाश,

एम एस-सी., विशारद.

प्रकाशक

वार्षिक मूल्य ३)] विज्ञान-परिषत्, प्रयाग [१ प्रतिका मूल्य ।)

विषय-सूची

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमान भूतानि जायन्ते
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५।

भाग २९ | कर्क संवत् १९८६ | संख्या ४

वनस्पतिका रासायनिक जीवन

[ले०—श्री वा० वि० भागवत, एम०एस-सी०
(शिवाजीक्लब) इन्दौर]

इस लेखमें वनस्पतिके रासायनिक जीवनका इतिहास कथन करनेकी इच्छा है। तथापि इस विषयका शास्त्रीय पद्धतिसे अनुवाद करना हम उचित नहीं समझते। क्योंकि सर्व-सामान्य जनता को फिर यह विषय अत्यंत क्लिष्ट मालूम होगा। विज्ञान [illegible]-सामान्य जनताके लिये है। इसलिये इसमें [illegible]स्त्रीय विषयों की चर्चा ऐसी तरह करनी चाहिये कि जिसे सामान्य जनता भी समझे। इसके बिना [illegible]ज्ञान की अभिरुचि लोगोंमें उत्पन्न होना [illegible]ठिन है।

वनस्पति और प्राणियोंके जीवन चरित्रमें बहुत कुछ साम्य है। खाना और बढ़ना यह दो बातें जैसी प्राणियोंमें दिखाई देती हैं वैसी ही वनस्पतियोंमें भी नज़र आती है। सब वनस्पतियोंमें कललरस (प्रोटोप्लाज़्म) भिल्लीके समान एक पदार्थ रहता है। वह कर्बन, ओषजन, नोषजन इत्यादि पदार्थोंसे बना हुआ है। जैसी चलन शक्ति प्राणियोंमें होती है वैसी ही वनस्पतिमें भी होती है। लेकिन दोनोंमें भेद यह है कि इस चलन-शक्तिका परिमाण वनस्पतियोंसे बहुत ही कम रहता है।

प्राणी एक जगह वनस्पति की तरह स्थिर नहीं रहते और घूम सकते हैं। और इसीलिये वह अपनी जीवन रक्षा घूम कर कर सकते हैं। वनस्पतिओंकी स्थिति भिन्न है। वह एक ही जगह स्थित होनेके कारण अपनी जगह छोड़कर परिभ्रमण नहीं कर सकते हैं। इसलिये उनको अपनी जीवन

रक्षाके लिये अन्न एक ही जगह बैठकर ग्रहण करना पड़ता है। फिर यह प्रश्न उपस्थित होता है कि वे अपना अन्न किस तरह प्राप्त करते हैं ?

वनस्पति अपनी जीवन रक्षा पानी, हवा और ज़मीन इन तीनों की सहायतासे करते हैं। और कर्बन, उदजन, ओषजन, नोषजन इत्यादि तत्त्वोंसे अपना शरीर बढ़ाते हैं। यद्यपि वनस्पतियों को अन्नग्रहण करनेकी क्रिया प्राणियोंसे भिन्न है तथापि ऐसे भी पौधे पाये जाते हैं कि जो अन्न का सेवन प्राणियों के समान ही करके इसको पचा डालते हैं।

हम अब यह देखेंगे कि पानी, हवा और जमीन से वनस्पति अपना अन्न कैसे बनाते हैं।

प्रथमतः हवाके विषयमें विचार कीजिये। हवामें कर्बन द्विओषिद रहता है यह हमको मालूम है। इसके सिवाय ओषजन, और नोषजन भी हवामें होते हैं। वनस्पति अपना अन्न घोल या बाष्प स्थितिमें ही ग्रहण कर सकते हैं। प्राणियोंके समान ठोस स्थितिमें वे अन्न ग्रहण नहीं कर सकते हैं। हवा का कर्बन द्विओषिद ही वनस्पति का आद्य जीवन है। यह वायुव्य (gas) ओषजन और कर्बनमें विभक्त किया जाता है। क्योंकि विभक्त किये बिना वनस्पति उसका सेवन नहीं कर सकते। यह वायव्य प्राणियोंके लिये घातक है, किन्तु वनस्पति उसको विभक्त करके उसमेंका कर्बन सेवन करते हैं और ओषजन हमारे लिये छोड़ देते हैं। लेकिन यह प्रक्रिया केवल सूर्यके प्रकाशमें ही होती है। उसके बिना यह क्रिया नहीं हो सकती। सूर्यकी किरणोंसे कर्बन द्विओषिद को विभक्त करने के लिये शक्ति मिलती है। पर्णहरिन् (क्लोरो फिल) वनस्पतिका मुख्य विभाग है। पेड़के पत्ते हरे हरे होते हैं। यह हरा रंग जो इन पत्तोंमें रहता है पर्णहरिन् कहलाता है। इस पर्णहरिन्में सूर्यकी किरणोंके शोषण (absorb) करनेकी शक्ति रहती है। जब सूर्यके किरण इस पर आकर गिरते हैं तब इनमेंसे कुछ किरण शोषित होकर यह शक्ति एकत्रित की जाती है और फिर इस संग्राहीत शक्तिसे कर्बन द्विओषिद को विभक्त करके वनस्पति उसमेंसे कर्बनका सेवन करते हैं।

पेड़ पत्ते भी इस जीवन क्रियामें भाग लेते हैं। आपने पेड़के पत्ते देखे होंगे। आपकी दृष्टिमें यह आया होगा कि पेड़ पत्तोंसे कितना भी फूला हो लेकिन पेड़ एक पत्ता दूसरेके ऊपर गिरा हुआ कभी भी नहीं मिलेगा। इनकी रचना बहुत चातुर्यसे की हुई रहती है। हर एक पत्ता दूसरे पत्तेसे बिलकुल अलग रहता है। इसका कारण यह है कि ऐसा करनेसे अधिकसे अधिक स्थान सूर्य के प्रकाशको फैलनेके लिये मिलता है। और उसी कारण अधिक शक्ति संग्रहीत की जाती है जिससे कर्बन द्विओषिद्को विभक्त करना अधिक सुलभ हो जाता है। इस तरह कर्बनका सेवन करके उसका परिवर्तन करके कर्बोदेत (कार्बोहैड्रेटस्) बनते हैं। उनसे नशास्ता (स्टार्च) बनता है। वैसेही उसका अनेक प्रकारके शर्कराें में परिवर्तन होता है। यह सब क्रिया सूर्य किरणोंसे पर्ण हरिन्के द्वारा होती है यह ध्यानमें रखना आवश्यक है।

अंधेरे में यह क्रिया नहीं होती। क्योंकि पर्ण हरिन् केवल उँजेले ही में कार्य कर सकता है। वनस्पतिके श्वास-उश्वास क्रियाका (Respiration) ज्ञान अंधेरेमें ही होता है। रातको यह क्रिया होती रहती है। इस वक्त वनस्पति ओषजनका सेवन करती है और कर्बन द्विओषिद्को बाहर फेकती है। इससे यह मालूम होता है कि वनस्पति दिनको कर्बन द्विओषिद् सेवन करके ओषजन बाहर निकालती हैं लेकिन रातको दिनका उलटा होता है अर्थात् कर्बन द्विओषिद बाहर निकालना और ओषजन भीतर लेना यह क्रिया होती है। किन्तु दिनकी क्रियाका परिमाण अधिकतर होता है।

जैसा कर्बन हमारी देहमें जलता रहता है वैसीही स्थिति वनस्पतियोंमें होती हैं। उससे उत्पन्न हुई कुछ शक्ति रासायनिक क्रियामें काममें आकर नशास्ता, शक्कर इत्यादि पदार्थ वृक्षमें बनते हैं। उसका कुछ हिस्सा उष्णताके रूपमें भी दिखाई देता है। जब वृक्षमें पत्ते और फल फूल आते हैं तब इसका तापक्रम इसी कारणसे वाह्य तापक्रमसे अधिक होता है।

पानी वनस्पतिकी जीवन-रक्षाका दूसरा साधन है। अनेक बार पेड़ के पत्तोंपर जलबिंदु आपने देखे होंगे। यह जलबिंदु पत्तोमें से ही निकलते हैं। यदि इस तरह अनेक जलबिंदु पत्तोसे निकल जायँ तो वह पत्ता गला हुआ अर्थात् मृतवत् दिखाई देगा। क्योंकि पानी वनस्पतिका जीवन है। जब सूर्यका प्रकाश दोपहरके समय अधिक होता है तब यह बात अच्छी तरहसे दिखाई देती है। दुपहरको पत्ते पानी निकल जानेके कारण कुछ गले हुये मालूम होते हैं। ऐसे गल जानेसे एक और भी फायदा होता है। वह यह कि गल जानेसे जितनी जगह पर सूर्यका प्रकाश गिरता था इससे कम जगह पर गिरता है और इसलिये पत्तेसे पानी निकलनेकी क्रिया कम हो कर पत्तेमें जीवन रहने देती है। पानी वनस्पतिका सर्वस्व है। अपनी जड़ों द्वारा वृक्ष पानीका शोषण कर लेते हैं, और तद्वारा दूसरे ठोस पदार्थों का सेवन उनको घोल स्वरूपमें लाकर करते है। वनस्पति वृद्धिके लिये नोषजन की आवश्यकता है। यह नोषजन नोषस तथा अमोनियाके यौगिकों के स्वरूप में रहता है। इनको पानी घोल लेता है और फिर वनस्पतियां इनका ग्रहण करती हैं। इसी तरह स्फुरेतोंसे स्फुर, गन्धेतसे गन्धक, पानीसे उदजन, वनस्पति को प्राप्त होता है। इसी तरह लोहा, खटिकम् इत्यादि उपयुक्त वस्तु का सेवन वनस्पतियाँ करती हैं। पेड़ की जड़ इसके शिरो भागसे भी अग्रगण्य है। क्योंकि उसीकी सहायता से वनस्पतिका जीवन-क्रम चलता है।

कुछ कुछ पौधों का जीवन क्रम इससे कुछ अन्य विधि से चलता है। इनमें पर्णहरिन् का अंश कम होता है। कुछ पौधे अपने जीवनके वास्ते दूसरे पौधोंका नाश करते हैं। सनड्यू (Sundew) एक चमत्कारिक पौधा है, इसके पत्ते लाल होते हैं, उसमेंसे एक श्वेत प्रवाही पदार्थ निकलता है। यह पदार्थ सूर्य किरणों में शोभायमान होकर मोतीकी तरह दिखाई देता है। जब कोई कीड़ा उसको देखता है तो वह मधु समझ कर उसके ऊपर बैठता है। उसी वक्त वृक्षके पत्ते बंद होने लगते हैं। और हवा न मिलने से कीट मर जाता है तब उसका रस यह पौधा सेवन करता है। बाद में फिर पत्ते खुल जाते हैं और दूसरे शिकारकी राह देखते हैं। इस प्रकार यह पौधा अपने जीवन के लिये नोषजन प्राप्त करता है।

पानीमें पैदा होनेवाले पौधे अपने जीवन के लिये पानीसे कर्बन द्विओषिद सेवन करते हैं। क्योंकि कर्बन द्विओषिद पानीमें घुला हुआ रहता है। कुछ पौधोंका कुछ भाग पानीमें होता है और कुछ उसके ऊपर रहता है। पानीमेंके पत्ते फटे फटे होते हैं क्योंकि पानीमें सूर्यप्रकाशका थोड़ा अंश जाता है, और सूर्यप्रकाश जितना अधिक मिले उतना ही अच्छा होनेसे पत्ते फटे फटे होकर जिस जगह यह सूर्य प्रकाश गिरे उसको बढ़ा देते हैं।

हम इन सब बातोंसे यह देख सकते हैं कि ये सब क्रियायें एक चक्कर में चलती है। वनस्पति कर्बन लेकर प्राणियों के लिये अन्न तैयार करते हैं वे ओषजन बाहर निकालते हैं उसका प्राणी सेवन करते हैं। आदमी और अन्य प्राणी कर्बन द्विओषिद बाहर छोड़ते हैं उसका सेवन वनस्पति करते हैं। रात को वनस्पति कर्बन द्विओषिद बाहर निकाल कर ओषजन अन्दर लेते हैं। प्राणियों के तथा वनस्पतियों के नष्ट होने पर कर्बन द्विओषिद निकलता है तथा नोषजनिक पदार्थ भी पैदा होते

हैं। जिनका सेवन वनस्पति करते हैं और ये वनस्पति स्वयं प्राणियोंके खाद्य बनते हैं। जगत में यह चक्र अनादि काल से चला आ रहा है।

ज़मीन वनस्पति का तीसरा जीवन साधन है। उनकी वृद्धि ज़मीनके अच्छे बुरे होनेपर अवलंबित है। ज़मीनसे ही वनस्पति अपने जीवनके लिये नोषजन लेती हैं। पत्थर के छोटे छोटे तथा बड़े बड़े टुकड़े पानी, हवा, इत्यादि से फोड़े जाकर उनकी मट्टी बनती है। ज़मीन नोषेत, स्फुर, गन्धेत इत्यादि से परिपूर्ण रहती है और इनको पानीमें घोल कर वनस्पति अपनी जीवनरक्षाके वास्ते काममें लाते हैं। जिस जमीन में यह पदार्थ कम होते हैं उनमें वनस्पति बढ़ नहीं सकती। ऐसी जमीनको बाहरसे लाकर खाद देनी पड़ती है। फल वृद्धिके लिये पांशुज की योजना की जाती है। यह पांशुज गन्धेत लवणके स्वरूपमें दिया जाता है। पत्तेके लिये नोषेत की जरूरत होती है। पेड़के सुन्दर और मोटे ताजे हरे पत्ते उसी नोषजन सेवनका फल है। यह नोषेत पांशुज या सैन्धक नोषेतके स्वरूपमें जमीनको दिया जाता है। स्फुरेत फूल तथा बीजोंकी वृद्धिके लिये उपयुक्त हैं। यह खटिक स्फुरेतके स्वरूपमें जमीनको देते हैं। चूना भी खादके लिये उपयुक्त है उससे जमीन की अम्लता नष्ट की जाती है।

भिन्न-भिन्न वनस्पतियोंकी अन्न ग्रहण-शक्ति भिन्न-भिन्न रहती है। इस लिये एकही खेतमें एक ही बीज बार बार नहीं बोते लेकिन अदल बदल कर बीज बोना हितकर है।

सब अच्छी ज़मीनोंमें ह्यूमस नामक एक पदार्थ रहता है। इसके विभाजित होने पर कर्बन द्विओषिद नोषेत, स्फुरेत इत्यादि उपयुक्त खाद तैयार होते हैं। यह क्रिया बैक्टीरिया कीटाणुओं के द्वारा बहुत जल्द होती है।

आधुनिक युगमें रश्मिम्‌के द्वारा वनस्पति जीवन सुधारनेका यत्न हो रहा है लेकिन अभी-तक सफलता नहीं मिली है। विद्युत् शक्तिसे भी प्रयत्न किये गये और वह सफल भी हुये लेकिन बड़े परि प्रमाण पर इसका प्रचार अभीतक नहीं हुआ।

जमीनके हानिकारक जीव-जन्तुओंका नाश वनस्पतिके जीवनके लिये करना आवश्यक है। यह काम भी रसायन द्वारा किया जाता है।

दिन दिन रासायनिक द्रव्यका उपयोग अधिक बढ़ता जा रहा है और कुछ दिन बाद यह वनस्पति जीवन संपूर्णतासे रासायनिक हो जायगा। हिन्दुस्थान कृषि-प्रधान देश होकर भी वनस्पति जीवनके रासायनिक महत्व पर ध्यान नहीं देता है। जमीनको रासायनिक खाद देना अति उचित है, इस बात पर अभी तक हमको विश्वास भी नहीं होता है। इसीलिये जमीन दिन दिन उत्तेनन होती जा रही है। और धान्य की पैदाइश कम होती जारही है। यदि हिंदुस्थानकी जीवन यात्रा सुधारना हो तो कृषकोंके ध्यानमें ये बातें ला देना आवश्यक है कि वनस्पतिका जीवन रासायनिक है।

दुष्प्राप्य पार्थिव तत्व

[The elements of the Rare Earths]

[ले० श्रीसत्यप्रकाश, एम. एस-सी.]

(आ)वर्त्त संविभागके मुख्य तथा उपयोगी तत्त्वोंका वर्णन दिया जा चुका है। केवल दुष्प्राप्य वायव्य और दुष्प्राप्य पार्थिव तत्त्वोंका उल्लेख करना और बाक़ी है। संविभागके तृतीय समूहमें ५७ परमाणुसंख्याका एक तत्त्व है जिसका नाम लीनम् है। इस तत्वसे लेकर ७२ वीं परमाणु संख्या वाले तत्व तकका नाम दुष्प्राप्य पार्थिव तत्व है। ये पदार्थ दुष्प्राप्य इस लिये कहे जाते हैं कि पहले लोगोंका यह

विचार था कि भूमि तलमें ये बहुत थोड़ी ही मात्रामें विद्यमान हैं। पर अब पता चला है कि ये तत्त्व भी बहुतायतसे विस्तृत हैं और इन्हें अब दुष्प्राप्य मानना अधिक उचित नहीं है।

इन तत्वोंकी विशेषता यह है कि लगभग सब के सभी आवर्त्त संविभागके एक ही समूहमें रखे जा सकते हैं, इन सबकी संयोग शक्ति ३ या ४ है और परस्परमें सबके गुण इतने मिलते जुलते हैं कि एकदूसरेको पृथक् करना अत्यन्त कठिन काम है। 'परमाणु-संख्या' वाले नियमके पता चलनेके पूर्व किसीको यह दृढ़ निश्चय न था कि वास्तवमें प्रकृतिमें इस प्रकारके दुष्प्राप्य पार्थिक तत्व कितने होंगे। इनकी खोजका इतिहास बड़ा ही मनोरंजक है। रसायनज्ञोंने अनेक तत्वोंकी घोषणायें कीं जो बाद को परीक्षा करने पर यौगिक सिद्ध हुए। इस प्रकार अनेक प्रयासोंके पश्चात् अब लीनम् (परमाणु सं० ५७) और हेफनम् (परमाणु सं० ७२) के बीचमें १३ तत्वोंकी खोज और हुई है। केवल तत्व संख्या ६१ की स्थिति अभी सन्देह जनक है। ये तत्व मुख्यतः स्कैण्डिनेवियन प्रायद्वीपके पार्थिव पदार्थोंमें पाये जाते हैं। यूराल पर्वतों तथा अमरीका और अस्ट्रेलियाके कुछ स्थानोंमें भी ये मिलते हैं। परमाणु संख्या ३९ वाले यित्रम् तत्वकी भी गिनती बहुधा इन्हीं तत्वोंके साथकी जाती है। सुविधाके लिये इन दुष्प्राप्य पार्थिव तत्वोंको तीन समूहों में विभाजित किया गया है:—

१. सृजकम् समूह
२. टेरबम् समूह
३. यीत्रबम् समूह

नीचे की सारिणी में इन तत्वोंके यौगिक गुण दिये जाते हैं।

(देखो सारिणी १)

इन तत्वोंको मैण्डलीफके आवर्त संविभागमें कहां स्थान देना चाहिये, यह विवादास्पद विषय है। इन पार्थिव तत्वोंका उपयोग भी बहुत कम होता है। कोई ५० वर्ष पूर्व तो ये बिलकुल निरर्थक ही समझे जाते थे पर कुछ दिनोंसे इनका उपयोग गैस-दीपकोंके प्रावार (mantles) में किया जाने लगा है। इस व्यवसायमें इनका उपयोग होनेके कारण इन तत्वोंका महत्व बढ़ गया है और ये अब व्यापारिक मात्रामें तैयार किये जाते हैं।

सृजकम् समूहके पार्थिव तत्वोंका परमाणुभार ज्यों ज्यों बढ़ता जाता है, उनका घनत्व भी बहुधा बढ़ जाता है। लीनम् वंगम्के समान श्वेत धातु है, सृजकम्का रंग लोहेका सा होता है, नौलीनम्में थोड़ासा पीलापन होता है तथा पलाशलीनम् पीला होता है। इन तत्त्वोंकी कठोरता दस्तम्, सीसम् तथा वंगम्की अपेक्षा निम्न श्रेणी द्वारा प्रकटकी जा सकती है—

सीसा, वंगम्, सृजकम्, लीनम्, दस्तम्, नौलीनम्, पलाशलीनम्। सामरम् इन सब तत्वोंमें अधिक कठोर है।

रासायनिक गुण

रासायनिक रूपमें ये तत्व विशेष क्रियावान् हैं। और अनेक अन्य तत्वोंसे एकदम संयुक्त हो सकते हैं।

वायुमें ये जल सकते हैं। सृजकम् तो इतनी तीव्रतासे जलता है कि मगनीसम् भी इसकी समता नहीं कर सकता है। प्रक्रियामें $\text{ध}_{२}\text{ओ}_{३}$ रूपके ओषिद बनते हैं। [ध से तात्पर्य्य किसी पार्थिव धातु तत्वसे है]। कुछ धातु तो $\text{ध}\,\text{ओ}_{२}$ रूपका उच्च ओषिद भी देते हैं। सृजक एकार्ध ओषिद, $\text{सृ}_{२}\text{ओ}_{३}$, अस्थायी है, पर सृजक द्विओषिद, $\text{सृ}\,\text{ओ}_{२}$ अति स्थायी है। पर पलाशलीनम्का द्विओषिद अस्थायी है। टेरबम् और नौलीनम्के—$\text{टे}_{४}\text{ओ}_{७}$ और $\text{नौ}_{२}\text{ओ}_{२}$—ओषिद भी होते हैं।

इन ओषिदोंके बनानेकी दो विधियाँ हैं। एक तो इन धातुओं के नोषतोंको गरम करके जैसे सृजकस नोषेत गरम करनेसे $\text{सृ}_{२}\text{ओ}_{३}$ मिलता

(सारिणी १)

तत्त्व	संकेत		परमाणु संख्या	परमाणु भार	घनत्व	द्रवांक	आपेक्षिकताप
सृजकम् समूह							
लीनम्	ली	La	५७	१३६·०	६·१२	८१०	०.०४५
सृजकम्	सृ	Ce	५८	१४०·२१	६·६८	६२३	०.०४५
पलाशलीनम्	श्ल	Pr	५६	१४०·६	६·४८	६४०	—
नौलीनम्	नौ	Nd	६०	१४४·३	६·६६	८४०	—
—?	—	—	६१	—	—	—	—
सामरम्	सा	Sm	६२	१५०·४	७·८	१३५०	—
टेरबम् समूह							
यूरोपम्	यू	Eu	६३	१५२.०	—	—	—
गन्दलनम्	गं	Gd	६४	१५७.३	—	—	—
टेरबम्	टे	Tb	६५	१५६.२	—	—	—
यीत्रबम् समूह							
दारुणम्	दा	Dy	६६	१६२.५	—	—	—
हौल्मम्	हौ	Ho	६७	१६३.५	—	—	—
एरबम्	ए	Er	६८	१६७.७	४.७७ ?	—	—
थूलम्	थू	Tm	६६	१६८.५	—	—	—
यीत्रबम्	यी	Yb	७०	१७३.५	—	—	—
लुटेशम्	लु	Lu	७१	१७५.०	—	—	—
हेफनम्	हे	Hf	७२	१७८.० ?	—	—	—
यित्रम्	य	Y	३६	८६.३३	३.८ ?	—	—

है, और दूसरे इनके उदौषिदोंको गरम करनेसे। पर इन दोनों विधियोंसे प्राप्त ओषिद परस्पर रासायनिक गुणोंमें भिन्न होते हैं—यह एक विचित्र बात है।

इन ओषिदोंमें सामान्य क्षारीय—गुण होते हैं। निम्न श्रेणी द्वारा इनकी सापेक्ष क्षारता पता चल सकती है। पहला ओषिद, $\text{ली}_२ \text{ओ}_२$, सबसे अधिक क्षारीय है :—

$\text{ली}_२ \text{ओ}_३$, $\text{श्ल}_२ \text{ओ}_३$नौ, $\text{न}_२ \text{ओ}_३$, $\text{सृ}_२ \text{ओ}_३$, $\text{य}_२ \text{ओ}_३$, $\text{सा}_२ \text{ओ}_३$, $\text{गं}_२ \text{ओ}_३$, $\text{टे}_२ \text{ओ}_३$, $\text{हौ}_२\text{-ओ}_३$, $\text{ए}_२ \text{ओ}_३$, $\text{थू}_२ \text{ओ}_३$, $\text{यी}_२ \text{ओ}_३$, $\text{सृ ओ}_२$।

लीन ओषिद, गुणोंमें खटिक ओषिदके समान है। जलके संसर्गसे इसमें सनसनाहट पैदा होने लगती है, और वायुमें से यह कर्बन द्विओषिद ग्रहण कर लेता है। यीत्रबम् समूहके ओषिद इन गुणोंमें कम प्रबल है। सृजकम् समूहके त्रिशक्तिक ओषिद सबसे अधिक क्षारीय हैं। प्रबल अम्लों द्वारा बने हुए इनके लवणों का उदविश्लेषण नहीं होता है।

ये दुष्प्राप्य पार्थिव तत्व उदजन और नोषजनसे भी एकदम संयुक्त हो सकते हैं। इनके उदिदोंका सामान्य रूप $\text{ध उ}_२$ या $\text{ध उ}_३$ है। धातुओंको २००°—३००° श तापक्रम तक गरम करके उनके ऊपर उदजन प्रवाहित करनेसे ये मिल सकते हैं। उदजनके प्रवाहमें इन धातुओंके ओषिदोंको मगनीसम् द्वारा प्रभावित करनेसे भी ये उदिद तैयार हो सकते हैं, यदि मगनीसम् की विद्यमानतामें इन ओषिदोंके ऊपर नोषजन प्रवाहित किया जायगा तो नोषिद, ध नो, रूपके बनेंगे—

$$\text{ली}_२ \text{ओ}_३ + ३\,\text{म} + ३\,\text{उ}_२$$
$$= २\,\text{ली उ}_३ + ३\,\text{म ओ}$$
$$\text{ली}_२ \text{ओ}_३ + ३\,\text{म} + \text{नो}_२$$
$$= २\,\text{ली नो} + ३\,\text{म ओ}$$

इन धातुओंके कर्बिदों पर अमोनियाका प्रभाव भी डालनेसे भी नोषिद मिल सकते हैं।

$$२\,\text{ली क}_२ + २\,\text{नो उ}_३$$
$$= २\,\text{ली नो} + २\,\text{क}_२ \text{उ}_२ + \text{उ}_२$$
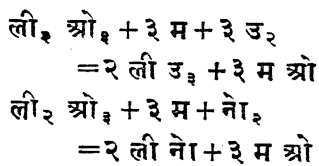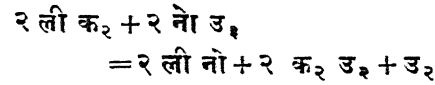
ये कर्बिद साधारणतः $\text{ध क}_२$ रूपके होते हैं। कर्बनकी उपस्थितिमें धातु-ओषिदों का विद्युत्-अवकरण करनेसे ये प्राप्त होते हैं। जलके संसर्गसे ये खटिक कर्बिदके समान सिरकीलिन गैस देते हैं।

खनिज और धातु उपलब्धि

इन दुष्प्राप्य पार्थिव तत्वोंके मुख्य खनिज ये हैं :—

सेराइट (सृ नकित)—$\text{उ}_३ (\text{ख, लो}) \text{सृ}_३ \text{शै}_३ \text{ओ}_{१३}$

गेडोलिनाइट—$(\text{लो, बे})_२ \text{य}_२ \text{शै}_२ \text{ओ}_{१०}$

इनके अतिरिक्त फर्गूसोनाइट, टैण्टेलाइट, सामरस्काइट, इत्यादि अनेक अन्य खनिज भी हैं।

एक ही खनिजमें अनेक दुष्प्राप्य तत्त्व साथमें मिले रहते हैं। अतः उनको पृथक् करना बड़ी ही कठिन समस्या है, विशेषतः जब कि इन सबके गुण परस्परमें अधिकांशमें मिलते जुलते हैं। इन धातुओंके पृथक् करने के लिये चार बातें करनी पड़ती हैं:—

[क] खनिज को पहले विभाजित करते हैं और इसके दुष्प्राप्य पार्थिवोंको अलग करके काष्ठेतोंमें परिणत करते हैं। ये काष्ठेत अनघुल होते हैं।

[ख] इन अनघुल पार्थिव-काष्ठेतोंको घुलनशील लवणोंमें परिणत करते हैं।

[ग] इन घुलनशील लवणोंका पांशुजगन्धेतके साथ द्विगुण लवण बनाया जाता है। घुलनशीलताके हिसाबसे इन द्विगुण लवणों को तीन भागोंमें विभाजित करते हैं। इस प्रकार सृजकम् समूह, टेरबम् समूह और यीत्रबम् समूह पृथक् हो जाते हैं।

[घ] इतना करनेके बाद प्रत्येक समूहके तत्त्वों को अलग किया जाता है।

इन चारों प्रक्रियाओं की सामान्य विधि सूक्ष्म-रूपमें यहाँ दी जावेगी—

है, और दूसरे इनके उदौषिदोंको गरम करनेसे। पर इन दोनों विधियोंसे प्राप्त ओषिद परस्पर रासायनिक गुणोंमें भिन्न होते हैं—यह एक विचित्र बात है।

इन ओषिदोंमें सामान्य क्षारीय—गुण होते हैं। निम्न श्रेणी द्वारा इनकी सापेक्ष क्षारता पता चल सकती है। पहला ओषिद, ली$_2$ ओ$_2$, सबसे अधिक क्षारीय है :—

ली$_2$ ओ$_3$, श्ल$_2$ ओ$_3$नौ, न$_2$ ओ$_3$, सृ$_2$ ओ$_3$, य$_2$ ओ$_3$, सा$_2$ ओ$_3$, गं$_2$ ओ$_3$, टे$_2$ ओ$_3$, हौ$_2$-ओ$_3$, ए$_2$ ओ$_3$, थू$_2$ ओ$_3$, यी$_2$ ओ$_3$, सृ ओ$_2$।

लीन ओषिद, गुणोंमें खटिक ओषिदके समान है। जलके संसर्गसे इसमें सनसनाहट पैदा होने लगती है, और वायुमें से यह कर्बन द्विओषिद ग्रहण कर लेता है। यीत्रबम् समूहके ओषिद इन गुणोंमें कम प्रबल है। सृजकम् समूहके त्रिशक्तिक ओषिद सबसे अधिक क्षारीय हैं। प्रबल अम्लों द्वारा बने हुए इनके लवणों का उदविश्लेषण नहीं होता है।

ये दुष्प्राप्य पार्थिव तत्व उदजन और नोषजनसे भी एकदम संयुक्त हो सकते हैं। इनके उदिदोंका सामान्य रूप ध उ$_2$ या ध उ$_3$ है। धातुओंको २००°—३००° श तापक्रम तक गरम करके उनके ऊपर उदजन प्रवाहित करनेसे ये मिल सकते हैं। उदजनके प्रवाहमें इन धातुओंके ओषिदोंको मगनीसम् द्वारा प्रभावित करनेसे भी ये उदिद तैयार हो सकते हैं। यदि मगनीसम् की विद्यमानतामें इन ओषिदोंके ऊपर नोषजन प्रवाहित किया जायगा तो नोषिद, ध नो, रूपके बनेंगे—

ली$_2$ ओ$_3$ + ३ म + ३ उ$_2$
= २ ली उ$_3$ + ३ म ओ

ली$_2$ ओ$_3$ + ३ म + नो$_2$
= २ ली नो + ३ म ओ

इन धातुओंके कर्बिदों पर अमोनियाका प्रभाव भी डालनेसे भी नोषिद मिल सकते हैं।

२ ली क$_2$ + २ नो उ$_2$
= २ ली नो + २ क$_2$ उ$_2$ + उ$_2$

ये कर्बिद साधारणतः ध क$_2$ रूपके होते हैं। कर्बनकी उपस्थितिमें धातु-ओषिदों का विद्युत्-अवकरण करनेसे ये प्राप्त होते हैं। जलके संसर्गसे ये खटिक कर्बिदके समान सिरकीलिन गैस देते हैं।

खनिज और धातु उपलब्धि

इन दुष्प्राप्य पार्थिव तत्वोंके मुख्य खनिज ये हैं :—

सेराइट (सृ नकित)—उ$_3$ (ख, लो) सृ$_3$ शै$_3$ ओ$_{13}$

गेडोलिनाइट—(लो, बे)$_2$ य$_2$ शै$_2$ ओ$_{10}$

इनके अतिरिक्त फर्गूसोनाइट, टैण्टेलाइट, सामरस्काइट, इत्यादि अनेक अन्य खनिज भी हैं।

एक ही खनिजमें अनेक दुष्प्राप्य तत्व साथमें मिले रहते हैं। अतः उनको पृथक् करना बड़ी ही कठिन समस्या है, विशेषतः जब कि इन सबके गुण परस्परमें अधिकांशमें मिलते जुलते हैं। इन धातुओंके पृथक् करने के लिये चार बातें करनी पड़ती हैं:—

[क] खनिज को पहले विभाजित करते हैं और इसके दुष्प्राप्य पार्थिवोंको अलग करके काष्ठेतोंमें परिणत करते हैं। ये काष्ठेत अनघुल होते हैं।

[ख] इन अनघुल पार्थिव-काष्ठेतोंको घुलनशील लवणोंमें परिणत करते हैं।

[ग] इन घुलनशील लवणोंका पांशुजगन्धेतके साथ द्विगुण लवण बनाया जाता है। घुलनशीलताके हिसाबसे इन द्विगुण लवणों को तीन भागोंमें विभाजित करते हैं। इस प्रकार सृजकम् समूह, टेरबम् समूह और यीत्रबम् समूह पृथक् हो जाते हैं।

[घ] इतना करनेके बाद प्रत्येक समूहके तत्वों को अलग किया जाता है।

इन चारों प्रक्रियाओं की सामान्य विधि सूक्ष्म-रूपमें यहाँ दी जावेगी—

[क] प्रकृतिमें दुष्प्राप्य पार्थिवोंके खनिज बहुधा शैलेतोंके रूपमें पाये जाते हैं। खनिजको तीव्र उदहरिकाम्ल अथवा गन्धकाम्लके साथ उबाल कर टुकडे टुकड़े कर लिया जाता है। चूर्ण पदार्थ को जल द्वारा संचालित करते हैं। मिश्रणको छाननेसे पार्थिव तत्व घुलनशील लवण बनकर छाननमें आजाते हैं। पार्थिव तत्वोंके अतिरिक्त घोलमें तांबा, विशद, सुनागम्, लोहम्, थोरम् आदि तत्व भी होते हैं। घोलमें उदजन गन्धिद प्रवाहित करके द्वितीय समूही तत्व अवक्षेपित कर लिये जाते हैं। इन्हें अलग करके लोहस-लोहेको हरिन के प्रवाह द्वारा लोहिक कर लेते हैं और फिर अमोनियम काष्ठेत डाल कर पार्थिव तत्व और थोरम् तत्व काष्ठेत रूपमें अवक्षेपित कर लेते हैं।

[ख] इन अनघुल काष्ठेतोंको अब घुलनशील लवणोंमें परिवर्तित करते हैं। इन्हें गरम नोषिकाम्ल में घोलने से काष्ठेत घुलनशील नोषेतोंमें परिणत हो जाते हैं। अथवा काष्ठेतोंको गरम करके ओषिदोंमें परिणत कर लेते हैं और इन ओषिदों पर यथोचित अम्लोंके प्रभावसे इच्छित घुलनशील लवण बनाये जा सकते हैं। यहीं पर थोरम् धातु को भी पृथक् कर लेना चाहिये। घोलमें उदजन परौषिद प्रवाहित किया जाता है जिससे थोरम् परौषिद अवक्षेपित हो जाता है। इसे छान कर पृथक् कर लेते हैं।

[ग] इन घुलनशील पार्थिव लवणों का पांशुल गन्धेतके साथ द्विगुण लवण बनाते हैं। घुलनशीलताके हिसाबसे ये निम्न तीन समूहोंमें विभाजित कर लिये जाते हैं :—

१. सर्वथा अनघुल द्विगुणलवण—स्कन्दम्, सृजकम्, लीनम्, पलाशलीनम्, नौलीनम्, और सामरम्।

२. घुलनशील द्विगुण लवम्—यूरोपम्, गन्दालनम्, और टेरबम्।

३. अति घुलनशील द्विगुण लवण-दारुणम् हौलमम्, परबम्, थूलम्, यित्रम्, यीत्रवम्।

[घ] इस प्रकार तीन समूहोंमें विभाजित करने के बाद अब प्रत्येक समूहके तत्व अलग अलग किये जाते हैं। ऐसा करनेके दो उपाय हैं। सिद्धान्त यह है कि (१) प्रत्येक तत्वके घुलनशील यौगिकों की घुलनशीलता कुछ न कुछ भिन्न होती हैं। अतः सावधानीसे स्फटिकी करण करके इन्हें पृथक् किया जा सकता है। (२) प्रत्येक तत्वोंके ओषिदों की क्षारता भिन्न भिन्न होती है। कुछ ओषिद कम क्षारीय होते हैं और कुछ अधिक। इन दोनों सिद्धान्तोंके अनुसार तत्व इस प्रकार पृथक् किये जाते हैं :—

(१) घुलन शीलताके आधार पर-घुलनशील लवणोंको सुविधानुसार रागेत, गन्धेत, नोषेत, काष्ठेत या पिपीलेतमें परिणत किया जाता है। सब पार्थिव यौगिकों को पानीमें घोला जाता है। तत्पश्चात् घोलको इतना सुखाया जाता है कि उसमें घुले हुए भागका आधा रवेके रूपमें पृथक् हो जाता है। इन रवों को पृथक् कर लेते हैं। शेष घोल को फिर इतना सुखाते हैं कि बचे हुए घुलनशील लवण आधे फिर पृथक् हो जाते हैं। इस प्रकार कई बार करते रहते हैं। प्रत्येक प्रक्रियामें दो भाग मिलते हैं एक रवेदार ठोस भाग और दूसरा आदि द्रव (mother liqour)। इसके बाद ऐसा करते हैं कि एक प्रक्रियामें प्राप्त आदि-द्रवको किसी दूसरी प्रक्रिया में प्राप्त ठोस भाग से मिला देते हैं।

इस प्रकार ठोस भाग और आदि द्रवोंकी अदला बदली करके स्फटिकीकरण करते रहते हैं। एक भागमें एक तत्त्वके यौगिककी मात्रा बढ़ती जाती है और दूसरे भागमें दूसरे तत्त्वके यौगिक की। इसे इस प्रकार स्पष्ट कर सकते हैं :—
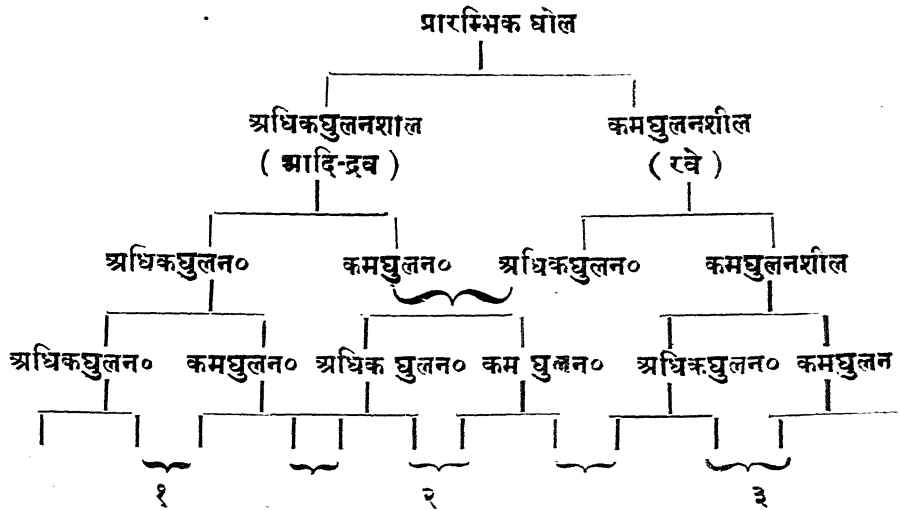
इसमें कोष्ठों द्वारा उन भागों को दिखाया गया है जो परस्पर मिला दिये गये थे और फिर जिनका स्फटिकीकरण किया गया। इस आयोजना को देखने से पता चलेगा कि सबसे अधिक घुलनशील यौगिक बायीं ओर (१) इकट्ठे होते जारहे हैं और सबसे कम घुलनशील दाहिनी ओर (३)। बीच वाली घुलनशीलताके यौगिक बीचमें हैं। इस विधिसे अनेक दुष्प्राप्य पार्थिव तत्त्व पृथक् किये जासकते हैं।

(२) क्षारताके आधार पर—इस आधार पर दो विधियाँ निकाली गई हैं — (i) आंशिक अवक्षेपण-के हिसाबसे और (ii) तापद्वारा भिन्न अवस्थामें नोषितोंके विभाजनके हिसाबसे।

(i) पहली विधि इस प्रकार समझी जासकती है। मानलो कि किसी घोलमें च और छ दो पदार्थ हैं और यदि इनके मिश्रणमें तीसरा पदार्थ ज ऐसा छोड़ा जाय जो इन दोनों को अवक्षेपित करसकता हो तो ज की अधिक मात्रा डालनेसे तो दोनों च और छ अवक्षेपित हो जावेंगे। पर ज की कम मात्रा डालनेसे दोनों एक ही मात्रामें अवक्षेपित न होंगे। यदि ज का च के प्रति अधिक आकर्षण होगा तो छ की अपेक्षा च के अधिक अवक्षेपित होने की सम्भावना होगी। पर यदि ज का छ के प्रति च की अपेक्षा अधिक आकर्षण है तो छ अधिक अवक्षेपित होगा, यह आकर्षण दोनों तत्त्वोंके ओषिदोंकी क्षारता पर निर्भर है। इस प्रकार अवक्षेपण प्रक्रियाको कई बार दोहराने से सबसे अधिक क्षारता वाला पदार्थ अवक्षेपित रूपमें अन्तमें प्राप्त होगा। इस विधिमें मगनीसिया, अमोनिया, सैन्धक या पांशुजदाहक क्षार आदि रसोंका प्रयोग किया जाता है। अवक्षेप प्राप्त किये जाते हैं और उन्हें फिर घोला जाता है। अन्तमें शुद्ध पदार्थ मिल जाता है।

(ii) इस विधिमें काष्ठेतोंके मिश्रणको नोषेतोंमें परिणत करते हैं। फिर मिश्रणका द्रवांक घटानेके लिये सैन्धक या पांशुज नोषेत की कुछ मात्रा और मिला देते हैं, मिश्रण को अब गलाया जाता है। गलाने पर नोषेत विभाजित होकर ओषिदोंमें परिणत होने लगते हैं। सबसे कम क्षारीय गुणों वाले ओषिद सबसे पहले पृथक् होते हैं। इस विधि को कई बार दोहरानेसे पार्थिव तत्व पृथक किये जा सकते हैं।

अबतक जो कुछ कहा गया है वह इन तत्वोंके पृथक् करने की विधि का सिद्धान्त रूप ही है

वास्तविक प्रक्रियायें कहीं अधिक जटिल और विस्तृत हैं और रसायनज्ञोंने इनके पृथक् करनेमें अपने असीम धैर्य्य का परिचय दिया है। उर्बा, जैम्स आदि वैज्ञानिकोंने इस कार्य्यमें अपना नाम अमर कर लिया है।

सृजकम् (Cerium) सृ, Ce

दुष्प्राप्य यौगिकोंमें सृजकम् यौगिक अधिक महत्व का समझा जा सकता है। इसके यौगिक दो श्रेणियोंके होते हैं।—सृजकस यौगिक, $सृ य_3$ रूपके जिनमें सृजकम् त्रिशक्तिक है और सृजकिक यौगिक, $सृ य_4$, जिनमें सृजकम् चतुर्शक्तिक है। सृजकस यौगिक अधिक स्थायी तथा नीरंग होते हैं। पर यदि सृजकस नोषेत या काष्ठेतको गरम किया जाय तो प्राप्त ओषिद $सृ_2 ओ_3$ नहीं होता है। यह ओषदीकृत होकर $सृ ओ_2$ रूपके द्विओषिदमें परिणत होजाता है। सृजक-एकार्ध-ओषिद अस्थायी है। द्विओषिद का खटिकम् धातु द्वारा अवकरण करनेसे यह मिल सकता है। किसी सृजकम् लवणके घोलमें क्षारों का घोल डालनेसे सृजकस उदौषिद, $सृ (ओ उ)_3$ का श्वेत अवक्षेप आता है पर इसका रंग वायुके संसर्ग से शीघ्र ही लाल, बैंजनी और अन्तमें पीलाहो जाता है। यह पीला अवक्षेप सृजकिक उदौषिद, $सृ (ओ उ)_4$ का है। किसी सृजकम्-लवणके घोलमें सैन्धक उपहरित का घोल डालनेसे भी यह पीला उदौषिद अवक्षेपित किया जा सकता है।

सृजक द्विओषिदको गरम तीव्र गन्धकाम्ल द्वारा प्रभावित करनेसे पीला सृजकिक गन्धेत, $सृ (ग ओ_4)_2$ प्राप्त होता है जिसमें प्रबल ओषद-कारक गुण विद्यमान हैं। जलमें घोलने पर यह पीला घोल देता है। यह घोल उदजन परौषिद द्वारा अवकृत हो जाता है और ओषजन निकलने लगता है। अब घोल नीरंग हो जाता है और इसमें सृजकस गन्धेत, $सृ_2 (ग ओ_4)_3$ रहता है। यह गन्धेत पांशुज गन्धेत के साथ द्विगुण लवण, $सृ_2 (ग ओ_4)_3$ $पां_2 ग ओ_4$ २ $उ_2$ ओ, देता है।

किसी सृजकस लवणके घोलमें काष्ठिकाम्ल डालने से सृजकस काष्ठेत, $सृ_2 (क_2 ओ_4)_3$, अवक्षेपित हो जाता है।

सृजक-द्विओषिद तीव्र उदहरिकाम्लमें कठिनतासे घुलता है और भूरे रंगका अस्थायी घोल जिसमें सृजकिक हरिद, $सृह_4$, रहता है देता है। घोल गरम करनेसे हरिन् निकल जाता है और सृजकस हरिद, $सृह_3$, रह जाता है।

सृजकस नोषेत स्थायी श्वेत पदार्थ है पर सृजकिक नोषेत अस्थायी है। सृजकिक अमोनियम नोषेत स्थायी पीला लवण है। इसके घोलका निःश्लेषण (dialysis) करने से कलार्द्र सृजकिक उदौषिद प्राप्त होता है।

देश और काल

(पूर्वानुवृत्ति)

[ले० श्री सुरेशचन्द्र देव, एम. एस-सी.]

पेक्षिक तत्ववादिओंकी कल्पनायें किस धारासे बहती हैं यह आपने विज्ञानमें प्रकाशित गत तीन लेखोंसे कुछ कुछ समझ लिया होगा। यह स्वाभाविक है कि आपेक्षिक तत्वको समझनेके लिये अब-तक जो कुछ कहा गया है वह भूमिका-स्वरूप है। जितनी कल्पनाओंसे हम परिचित हैं उनकी अपेक्षा इस नवीन मतका पथ ऐसा विपरीत है कि एकाएक इसको सुननेसे पागलका प्रलापसा प्रतीत होना अति सम्भव है। इसके ठीक ठीक समझने में

हमारी भाषा भी एक प्रकारकी बाधा है, क्योंकि भाषा द्वारा अब तक एक विशेष दृष्टिकोण द्वारा अनुसन्धान किये गये जगत्के रूपको हम प्रकट करनेका प्रयत्न करते थे। अब यह दृष्टिकोण पूर्णतः परिवर्त्तित हो गया है, किन्तु भाषाके शब्दों में कोई परिवर्तन नहीं हुआ।

एक विशेष शब्द हमारे कानमें पहुँच कर मस्तिष्कके द्वारा पुराने संस्कारों द्वारा जनित भावको ही उत्तेजित करता है, और ऐसी ही प्रक्रिया से हम उस शब्दके तात्पर्यका स्मरण करते हैं। अब उसी शब्द द्वारा हम एक पूर्णतः विभिन्न दृष्टि कोण को प्रकट करना चाहते हैं; पर हमारा मन इसको किसी तरह स्वीकार करना नहीं चाहता है—क्योंकि उसकी स्मृतिमें उस शब्द का वैसा संस्कार नहीं है। ऐसी अवस्थामें सबसे उपयोगी सहायता करने वाली हमारी बुद्धि है। जब तक बुद्धि द्वारा मनका पुराना संस्कार परिवर्त्तित होकर उसमें नया भाव नहीं पड़ता है तब तक इस तत्वका तात्पर्य कहां तक स्पष्ट होगा यह कहना ना मुमकिन है। इसीलिये आपेक्षिक तत्वको समझनेमें सबसे प्रधान बाधा भाषाकी है।

अबतक जो कुछ कहा गया है वह इतना आश्चर्यजनक है कि हम साधारण दृष्टिमें कुछ वैपरीत्य और वैचित्र्य प्रादुर्भाव की कल्पना किये बिना इसका अनुमान नहीं कर सकते हैं। संसारमें सर्वत्र एक अविचल परिवर्त्तन हो रहा है; इस परिवर्त्तनने सम्पूर्ण शक्तियों (Forces) और सामर्थ्यों (energies) के साथ अपनेको ऐसा मिला रक्खा है कि सृष्टिके अन्तःस्थलमें क्या हो रहा है किसीको पता नहीं चल सकता। क्या हम इस तरह सोच सकते हैं कि सब कार्योंके पीछे ऐसी कोई एक सत्ता विराजमान है जोकि इन परिवर्त्तनोंको हमारे निकट गुप्त रख कर भी सब जगह प्रकाशित कर रही है। परिवर्त्तन जगत्के मूलमें है किन्तु जब उसके अनुसन्धान करनेके लिये चलिये तो कहीं किसी जगह उसका पता न मिलेगा। या हम लोग स्वयं ही इस विचित्र जटिलताके सृष्टि-कर्त्ता हैं, और जब बाह्य जगत्में हम अपनेको खोजने जाते हैं तो हमको अपना पता कहीं नहींमिलता। या हमारी जो भाषा है वह प्रकृतिमें जो घटता है उसको स्वाभाविक और सरल रूपसे प्रकट करनेके काममें वस्तुतः उपयोगी नहीं है।

इसी कारण आपेक्षिक वादमें दो विभाग उत्पन्न हो गये हैं। एक जो केवल परीक्षा और प्रयोग द्वारा प्राप्त फलोंके वर्णन (Statement) हैं। यह वर्णन सही या गलत—दोनों हो सकते हैं, क्योंकि परीक्षाके फलके ऊपरही वह सम्पूर्णतः निर्भर है। इसका प्रथम खण्ड हम लोगों ने अपने प्रथम लेखमें सीमाबद्ध तत्व (restricted principle) के नामसे आपके सम्मुख उपस्थित किया था। अन्य सब वैज्ञानिक सिद्धान्त जिस तरहसे पाये जाते हैं उसी तरह गणितके विचार द्वारा इसके भी परिमाण पाये जा सकते हैं। यह प्रकृतिके विषयमें अपना कोई नया मत स्थापित करने की अभिलाषा नहीं रखता, और न देश और कालके तात्पर्य पर अपना कोई सिद्धान्त देता है। जो कुछ यह कहता है, वह परीक्षा और प्रयोग से ठीक ठीक पाया जाता है या नहीं इसीको स्पष्ट रूपसे समझाना इसका प्रधान और प्रथम कार्य है।

किन्तु इसके विपरीत अपने विचारको उचित रूपसे प्रकाशित करनेकी चेष्टासे आपेक्षिक मनोभाव (Stand point of relativity) का उद्भव हुआ है। यह पूर्व कथित आपेक्षिक तत्वसे भिन्न है। प्रथमही यह एकदम कह उठता है कि हमारी सब भौतिक उपपत्तिओंमें देश और काल के विषय में एक अपरीक्षित और यथार्थ कल्पना (hypothesis) प्रवेश कर बैठी है, और इसी कारण हमारे सब विषयोंमें भयानक गोलमाल होगया है। सबसे विपद्सङ्कुल कल्पना वही है जो

हमें अज्ञात रहती है। इसीलिये आपेक्षिक मनोभाव इन सब कल्पनाओंको परिहार करनेके लिये बलपूर्वक आगे बढ़ना चाहता है। और ऐसा करने से उसे पता चलता है कि वे कल्पनायें केवल पूर्णतः अप्रयोजनीय ही नहीं मिथ्या और भ्रम पूर्ण भी हैं। आपेक्षिक तत्व का श्रेष्ठत्व इसी बात में है कि इसके द्वारा उसने भौतिक शास्त्र की प्राचीन भित्ति को पूर्णतः उलट पलट कर डाला है और उसको ऐसे एक अचल और कठिन स्थान पर खड़ा कर दिया है जो कि दार्शनिक की दृष्टिसे भी निर्भ्रान्त है। हम लोग अब इस पर अपना विचार आरम्भ करेंगे।

हम एक अत्यन्त साधारण बात का वर्णन करते हैं। हमारे सब पाठकों ने रेलगाड़ीसे भ्रमण किया है, ऐसा इस बीसवीं शताब्दीमें मान लेना कोई आश्चर्य का बात नहीं कही जायगी।

रेलगाड़ी प्लाटफार्म पर खड़ी है, और दूसरी एक गाड़ी धीरे धीरे अन्य उलटी दिशासे इस गाड़ी के बगलसे जा रही है। ऐसी अवस्थामें प्रथम गाड़ीसे भ्रमण करने वालेको कभी कभी ऐसी भ्रान्ति हो पड़ती है—कि वह समझता है कि उसकी अपनी गाड़ी चल दी। वह केवल गाड़ीको चलते ही नहीं देखता है, प्रत्युत सचल गाड़ीकी चलन शीलताकी एक संवेदना भी होती है जिसका वह अनुभव करता है। ठीक इसके विपरीत कभी कभी अनुभवमें पाया जाता है। उदाहरण स्वरूप सोचिये कि गाड़ी की गति इतनी कम हो गयी है कि उसमें धक्कों और झटकों का पूर्ण अभाव हो गया है। इस अवस्थामें अनेक यात्रियों को अन्य किसी पटरी पर दूसरी एक खड़ी हुई गाड़ीको देखने पर कभी कभी ऐसी भ्रान्ति हो जाती है कि यह दूसरी गाड़ी चल रही है और उसकी गाड़ी स्वयं स्थिर है। रेलगाड़ी में बैठे हुये तारके खम्भोंके उलटी दिशामें भागते जानेका अनुभव भी अति साधारण है। ऊपर कहे हुये इन उदाहरणों से यह सिद्धान्त निकलता है कि हममें गति या वेग (motion) का ज्ञान अन्य दूसरी किसी वस्तुके सम्बन्धसे ही उत्पन्न होता है, और इस सम्बन्धके किस प्रान्त की वस्तुमें वह वेग विद्यमान है उसको जानना अत्यन्त कठिन प्रतीत होगा।

किसी वस्तुके आकारके विषयमें भी उपर्युक्त सिद्धान्त का पूर्णतः प्रयोग मिलता है। इसके समझनेमें रेलगाड़ी की तरह कोई अति साधारण दृष्टान्त हमारे पास नहीं है, इसीलिये हमारी स्कूलकी पाठ्य पुस्तकोंमें से दो कहानियोंका आश्रय हमको लेना पड़ता है। उसमें एक है लेविस केरोल की रचित पुस्तक 'आश्चर्य प्रदेशमें एलिस' और दूसरी स्विफ्ट की प्रसिद्ध पुस्तक—'गुलीवर की यात्रायें'।

आश्चर्य प्रदेशमें आकर एलिस अपनेको हर समय परिवर्त्तित होती देखती थी। कभी वह अपनेको बहुत भारी पाती थी, और कभी इतनी छोटी हो जाती थी कि दिखाई पड़ना भी कठिन हो जाता था। प्रत्युत् गुलिवर की आकृति सब अवस्थाओंमें एक सी ही रही। एक यात्रामें उसे ऐसा एक देश मिला जहांके सब निवासी छोटे छोटे थे; और इसी यात्रामें उसको जो देश मिला उसमें जो कुछ था—सब अत्यन्त विशाल और विराट। इन दोनों देशोंमें केवल मनुष्यही छोटे या बड़े नहीं थे, वहांके सब पदार्थ अपने परिमाणानुसार छोटे या बड़े थे।

इन दोनों लेखकों ने एकही प्रकारकी घटना—अर्थात् दृश्य और द्रष्टाके आपेक्षिक मानके परिवर्त्तन के कारण रूप और आकृति के परिवर्तन—के वर्णन करने का प्रयास किया है। उसको समझनेके लिये मस्तिष्कको विशेष कष्ट देनेकी आवश्यकता नहीं पड़ती है। लिविस केरोल ने विज्ञानकी साधारण दृष्टि को हृदयमें

रख कर अपनी ग्रन्थ-रचना आरम्भ की थी। देखने वाले अर्थात् द्रष्टाके परिवर्त्तन की कल्पनासे चारों तरफके दृश्यों को अवस्था कैसा रूप ग्रहण करती है यही उसका लिखने का मुख्य उद्देश्य था। कहानीमें एलिस अपने आकार का परिवर्त्तन देखती थी; किन्तु वास्तवमें उसको अपनेको इस तरह परिवर्त्तित होने का विचार नहीं आ सकता है।

क्यों कि अपने आकार का विचार अपने ही शरीर के सब अङ्ग प्रत्यङ्गके अनुपात पर निर्भर है, जब तक यह अनुपात बना रहेगा तब तक हमारे निकट अपना आकार भी अपरिवर्त्तित ही रहेगा। बाल्यावस्थामें अपने शरीरके आकारसे अपने वर्त्तमान आकारको हम बड़ा कहते हैं—इसका यह तात्पर्य्य नहीं कि वस्तुतः हम अपनेको बड़ा देखते हैं, परन्तु अन्य सब लोग जो हमारे आकार के परिवर्त्तन का अनुभव करते हैं वे इस परिवर्त्तन के विचारको हमारे मनमें प्रविष्ट कर देते हैं इसलिये हम अपनेको बड़ा होनेकी कल्पना करते हैं। इसके उपरान्त यह कल्पना धीरे धीरे हमारे मनमें इतनी जड़ फैलाती है कि उसका फल वस्तुतः बड़ा देखने का नामान्तर स्वरूप हो जाता है। इसीलिये एलिसके पास उसको अपनेको छोटा बड़ा हो जाना न मालूम हो कर—उसके चारों तरफकी वस्तुओंसे इस छोटा या बड़ा होने का कार्य मालुम होनाही अधिक स्वाभाविक था। मनुष्यके इस वास्तविक मनोभावके दृष्टिकोणसे ही डीनस्विफ्ट ने 'गुलिवर की यात्रा' की रचना की है। गुलिवरने अपने आकारके परिवर्त्तनको उसके चारों तरफ की वस्तुओं पर आरोपित कर दिया था; वह स्वयं बदलता था—यह उसको किसी अवस्थामें नहीं मालूम पड़ा था। वस्तुतः लिविस केरोल और डीनस्विफ्ट इन दोनों लेखकों की रचना का उद्देश्य अभिन्न है—क्योंकि दृश्य और द्रष्टाके आपेक्षिक परिवर्त्तनसे जगत् का चित्र कैसा रूप ग्रहण करता है वही इन दोनों लेखकों ने दिखलाने का प्रयत्न किया है। किसी वस्तुके आकारकी कल्पना अन्य किसी वस्तुके सम्बन्ध से ही हममें उदय होती है। और इस सम्बन्ध के एक प्रांतकी तुलनामें अन्य प्रान्त के परिवर्त्तन होनेको निर्भ्रान्त रूप से कहने के लिये हमारे पास कोई उपाय नहीं है।

मिकलसन और मोरली के प्रयोग पर विचार करते समय हमलोगों को यह पता चलता था कि आकार का आदर्श—अर्थात् नापने वाला रुलर—गति की अवस्था पर निर्भर है और गति के अनुसार अवश्य परिवर्त्तित होगा। और वैमानिक के अनुभव भी यदि आपलोगों को याद हों, तो समयके क्षण (deviation of time) भी ठीक रुलरकी तरह गति पर निर्भर होकर परिवर्त्तित होते थे। आकाश-जगत् के प्राणियों (अर्थात् सूर्य, चन्द्र, मङ्गल, शुक्र इत्यादि जो सब सौर—ग्रह हैं) की गति का जब ज्योतिषी हिसाब करते थे तब उनमें एक नवीन रूपकी विचित्रता पाते थे, इस विचित्रता का न्यूटन साहब के गति विज्ञान पूरा उत्तम रूपसे समाधान नहीं मिलता। इस विचित्रता का सब अवस्थाओं में एक ही रूप से प्रकट होने के कारण यह सन्देह करना पड़ा कि इसका कारण यह है कि हमारे पास कोई आदर्श घड़ी नहीं है अर्थात् पृथ्वी के समय-निरूपण के लिये निर्भ्रान्त साधन नहीं है। दृश्य की वेगावस्था का परिवर्त्तन जब उसके परिपार्श्विक जगत् के परिवर्त्तन को छिपाता अथवा प्रकट करता है तो इसका प्रभाव दृश्य के ऊपर आकर उसके काल-क्षण को परिवर्त्तन कर देने की शक्ति रखता है।

आपेक्षिकवाद का उद्देश्य द्रष्टा और दृश्य के बीचमें दर्शनके दायित्वको ठीक ठीक विभाजन करने की तरह असम्भव नहीं है। बल्कि, प्राकृतिक सकल अनुभवगत व्यापार की साधारण या विज्ञान सम्मत व्याख्या में ये दोनों सत्तायें अङ्गाङ्गी रूपसे जड़ित हैं, इसी को स्पष्टरूप से दिखलाना ही इसका उद्देश्य समझा जा सकता है। एकाएक इस तत्व का

स्वीकार करना असम्भव होगा, किन्तु गत लेखों में जो भूमिका बनायी गयी है उस पर अब सम्भव है कि इसका समझना कठिन न होगा। प्रत्युत् इसीमें इसकी स्वाभाविक समाप्ति है ऐसा ही प्रतीत होगा। अतएव हम अपने वर्णन के लियेजो कुछ शब्द व्यवहार करते हैं—जैसे, लम्बाई शक्ति (force) वेगान्तर (acceleration) गति (velocity) भार (mass) इत्यादि—सब ऊपर कहे हुये जगत्के ऐसे आपेक्षिक ज्ञान को ही—सूचित करता है। उस ज्ञान की प्रकृति कैसी है यह अब देखना चाहिये।

आप एक कागज के टुकड़े पर एक चतुष्कोण बनाइये। इसकी चारों भुजायें जितनी दूर सम्भव हो समान लम्बाई की बनाइये। इस चतुष्कोण का नाम क ख ग घ रखिये। हम पूर्व के एक लेख में देख आये हैं कि एक वैमानिक क ख की दिशा में सेकन्ड में १६१००० मील से उड़ते समय इस की क ख और ग घ भुजाओं को अपनी लम्बाई का आधा ही कर संकुचित होते पायेगा। अर्थात् उसके निकट यह चतुष्कोण आयताकार (oblong) प्रतीत होगा। अब इस समय इस चतुष्कोण को अगर आप एक-समकोण (rightangle) में घुमादें तो उस वैमानिक के पास क ख और घ ग भुजायें बढ़ी हुई दिखाई देने लगेंगी और अन्य दो भुजायें संकुचित हो जायंगी। परन्तु हमारे और आपके निकट—जो कि इस चतुष्कोणके पास खड़े हैं—क ख और क ग की लम्बाई में कोई परिवर्त्तन प्रतीत नहीं होगा। हमारे लिये क ख और क ग की लम्बाई सब समयों में बराबर ही रहेगी। अब यह प्रश्न उठता है कि एक ही समय एक ही वस्तु की दो अवस्थाओं को दो पर्यवेक्षकों ने दो विभिन्न रूपसे पाया तो इस विभिन्नता का दायित्व किस पर होगा। उस वस्तु पर—या पर्यवेक्षककी अवस्था पर। न्यायानुमोदित उत्तर होगा पर्यवेक्षक की अवस्था ही इस का उत्पादक है। अतएव इससे यह स्पष्ट है कि लम्बाई चित्र का कोई स्वकीय धर्म नहीं है, इसके जानने के लिये किसी द्रश्य या पर्यवेक्षक के निर्देश करने की अवश्यकता है।

हमने यह भी देखा है कि काल के क्षण (deviation of time) के लिये भी पर्यवेक्षक को निर्दिष्ट करने की आवश्यकता थी, क्योंकि पृथ्वी पर स्थित पर्यवेक्षक और वैमानिक इन दोनोंमें चुरट पीनेके समयके विषयमें मत-भेद था।

अतएव दैर्घ्य और क्षण (Length and duration) वाह्य जगत् का कोई प्रकृतिगत धर्म नहीं है। आपेक्षिक मतवादके अनुसार वह, पर्यवेक्षण रूप कार्यमें पर्यवेक्षकके साथ वाह्यजगत्के सब पदार्थों का जो सम्बन्ध उत्पन्न होता है—वही है। इस तत्वको यदि हम ठीक ठीक समझलें तो सब रहस्य आसान हो जायंगे। हमने देखा है कि मिकेलसन और मोरली जब प्रयोग कर रहे थे तो उनके यन्त्र का दण्ड एक समकोणमें फिरानेसे संकुचित हो जाता था। इससे स्वभावतः ऐसा मालूम होता है कि उस दण्डहीमें कुछ हो जाता है। वास्तवमें वाह्य जगत्में एक वस्तु-स्वरूप जो दण्ड है उसमें किसी प्रकार का वैलक्षण्य उत्पन्न नहीं होता है। इसकी लम्बाई का परिवर्तन अवश्य हुआ है—इसमें कोई सन्देह नहीं। किन्तु लम्बाई तो उस दण्ड का कोई प्रकृतिगत धर्म नहीं है, क्योंकि जब तक किसी पर्यवेक्षक का आविर्भाव नहीं होता है तब तक पूर्णतः अज्ञात ही रहती है। एक समकोणमें फिरानेसे पर्यवेक्षकसे दण्ड का जो सम्बन्ध था वह बदल जाता है; किन्तु दण्ड स्वयं, अर्थात्, इसका एक प्रान्तके कणोंसे दूसरे प्रान्तके कणोंका परस्पर जो सम्बन्ध है वह, सर्वथा ठीक रहता है। पर्यवेक्षक समगति सम्पन्न यन्त्र द्वारा देश और कालका जो विभाजन करता है, उसकी अपेक्षासे हो लम्बाई और कालका परिमाण वह निश्चित करता है। परन्तु प्रकृतिसे इस विभाजन का कोई सम्बन्ध नहीं है। प्रकृतिकी

अपनी एक पृथक् गणित है जो कि स्वभावतः ही किसी विभाजन की अपेक्षा नहीं रखती है।

हम लोग अब धीरे धीरे पुराने भौतिक शास्त्र से आपेक्षिकवादके नवीन दृष्टिपथ पर चलने का यत्न कर रहे हैं, और इस अवस्थामें पाठक इस बात पर सन्देह कर सकते हैं कि उन सब विचित्र विचित्र घटनाओं को जिनको संकोचन और कालका विलम्बन (retardation) कह कर अब तक वर्णन किया गया है सत्यमान कर स्वीकार करें या हेत्वभासका एक उदाहरण मानें। इसका उत्तर यह है कि हम लोग विश्वास करते हैं कि जिस तरहसे वर्णन किया गया है ठीक उसी तरह वह संसारमें भी चलता है; परन्तु उसकी व्यवस्था जब करते हैं तब वहिर्जगत्के साथ किसी पर्यवेक्षकके सम्बन्धको अनुमान करना पड़ता है। केवल बहिर्जगत्को लेने से यह व्या ख्या अपूर्ण रह जाती है। प्रकृतिकी अद्भुत और अभूतपूर्व घटनायें तभी प्रकट होती हैं जब हम लोग इस भ्रान्त और हेत्वाभासपूर्ण किन्तु स्वाभाविक सिद्धान्त को ग्रहण करते हैं कि वस्तुओंका परिवर्त्तन होना उनका प्रकृतिगत धर्म है।

नीहारिकायें

[ले०—श्री सत्यप्रकाश एम० एस-सी०]

सृष्टि की रचना कैसे हुई? क्या हमारी यह ठोस पृथ्वी सर्वदा ऐसी ही थी? इसमें क्या ये शिलायें और पत्थर, नदी और नाले, समुद्र और पर्वत, वन और मरुस्थल हमेशासे ऐसे ही चले आये हैं? इस सृष्टि का कभी अन्त होगा या नहीं? मनुष्य और पशु, वृक्ष और पक्षी सदा ऐसेही रहेंगे अथवा इनमें भी कोई परिवर्त्तन होगा? ये सब प्रश्न ऐसे हैं जो सबके हृदयमें उठते हैं। एक छोटा बच्चा भी चन्द्रमा को देखकर अपने माता, पिता और भाई बहनोंसे पूछ उठता है कि इसे किसने बनाया है, यह दिन को कहां चला जाता है, और रात को कहांसे आजाता है, आकाशमें यह किस प्रकार ऊंचा टंगा रहता है और पृथ्वी पर क्यों नहीं गिर पड़ता? तारोंके विषयमें भी इसी प्रकारके प्रश्न उठते हैं। ये सहस्रों तारे आकाशमें किस प्रकार स्थित हैं और यहाँसे कितनी दूर हैं, या इन तारोंमें भी हमारी पृथ्वीके समान पशु-पक्षी, मनुष्य और स्त्री, लड़के और लड़कियाँ रहती हैं या नहीं। ये सब प्रश्न नये नहीं हैं। पर प्रश्नोंका करना तो बहुत आसान है, इनका सन्तोषजनक उत्तर देना इतना सरल नहीं है। इनमें बहुत से प्रश्न तो ऐसे हैं जिनका हम कुछ भी उत्तर नहीं देसकते हैं। और बहुतसे प्रश्नोंका हम केवल अधूरा उत्तर ही देपाते हैं। कुछ ही बातें ऐसी अवश्य हैं जिनके विषयमें हम निर्भ्रान्त वृत्तान्त बता सकते हैं।

यहाँ हम अब ऐसी एक वस्तुका उल्लेख करेंगे जिससे बहुत कम पाठक परिचित होंगे, पर यह इतने महत्वकी है कि यदि इसका अस्तित्व न

होता, तो इस सृष्टिका बनना भी सम्भव न था। इन्हें नीहारिका कहते हैं। यह ठोस पृथ्वी सदा ऐसी ही नहीं थी। इसकी उत्पत्ति भी इन्हीं नीहारिकाओंसे हुई है। उस अवस्थाका विचार कीजिये जब सम्पूर्ण आकाशमण्डल इन्हीं नीहारिकाओंसे आवृत था। जिस प्रकार अन्तरिक्ष में बादल या धुँआ फैला रहता है, उसी प्रकार ये नीहारिकायें सर्वत्र छायी हुई थीं। ये दूरसे कोहराके समान दिखाई देती हैं। जाड़ेकी ऋतुमें आपने देखा होगा कि सूर्योदयके पूर्व और सूर्यास्तके पश्चात् कैसा घना कोहरा छाया रहता है। सृष्टिके आरम्भमें सम्पूर्ण आकाशमण्डल इसी प्रकारके कोहरेसे ढका हुआ था। यह कोहरा ये नीहारिकायें ही थीं। इन्हें अंग्रेज़ीमें नेबुला भी कहते हैं। इन्हीं नीहारिकाओंके घनीकरणसे हमारे सौर मण्डलका जन्म हुआ।

आजकल भी कभी कभी रातमें तारोंके समीप कोहरा या धुँआके समान फैला हुआ एक अंश दिखाई देता है। इसे मन्दाकिनी या आकाश गंगा (milky-way) कहते हैं। पर इसे नीराहिका न समझना चाहिये। यह तो छोटे छोटे सहस्रों तारोंका एक विस्तृत समूह है। ये तारे एक दूसरेके इतने निकट हैं कि दूरसे दूधके समान आकाशमें फैले दिखायी देते हैं। बड़ी बड़ी दूरबीनोंसे देखने पर पता चलेगा कि इस आकाश गंगामें कुछ तारे बहुत ही छोटे हैं पर कुछ बड़े भी हैं।

आकाशमें नीहारिकाओंका देखना सरल नहीं है। ये विशेषतः उन्हीं स्थानों पर होती हैं, जहाँ तारे बहुत कम संख्यामें होते हैं। कुछ नीहारिकायें ही ऐसी हैं जिन्हें हम आँखसे स्पष्ट देख सकते हैं, कुछ ऐसी हैं जिनका फोटोग्राफी द्वारा चित्र उतारने पर ही पता चल सकता है। बहुतसों को हम अच्छे दूरदर्शक यंत्रों (दूरबीनों) द्वारा ही जान सकते हैं। पर इसका तात्पर्य्य यह न समझना चाहिये कि आकाशमें नीहारिकाओं की संख्या बहुत कम है। दूरदर्शक यन्त्रों द्वारा ५ लाख (५,००,०००) के लगभग नीहारिकाओंका पता लगाया गया है। इन नीहारिकाओंमें से दो ऐसी अवश्य हैं जिन्हें स्पष्ट रूपसे देखा जासकता है।

आकाशमें एक नक्षत्र समूह मृगशीर्ष (orion) कहाता है। यहाँ दिये गये चित्रमें यह दिखाया गया है। इस समूहमें तीन नक्षत्र एक सीधी पंक्ति 'अ' में हैं। इस सीधी पंक्तिके नीचे दो नक्षत्र इस प्रकार स्थिति हैं कि ऊपर वाली पंक्तिके बीच वाला नक्षत्र और ये दो नक्षत्र जोड़ने पर एक सरल रेखा बनती है। इन दो नीचे वाले नक्षत्रोंके बीचमें एक हल्कासा प्रकाश-पुंज-युक्त कोहरेके समान अंश 'न' दिखाई देगा। यह एक नीहारिका है।
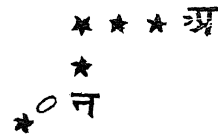
चित्र (१)

भाद्र-पदी या एण्ड्रोमीडामें एक और चमकीली नीहारिका है। नीचेके चित्रमें इसकी स्थिति भी दिखाई गई है। सप्तर्षिमण्डल आकाशमें आसानीसे पहचाना जासकता है। इसका पता लगाकर ध्रुवतारा मालूम करते हैं। ध्रुवतारासे थोड़ी दूरपर पाँच तारोंका एक समूह कैसिओपी (cassiopeia) है। बस इसी कैसिओपीके पास एण्ड्रोमीडा 'ए' का समूह है जिसमें अलगोल, अलमच, मिरच आदि तारे हैं। अलगोल और अलमच की सीधमें ही एण्ड्रोमीडाकी नीहारिका है। यह इतनी चमकीली है कि आँखोंसे देखी जासकतो है।
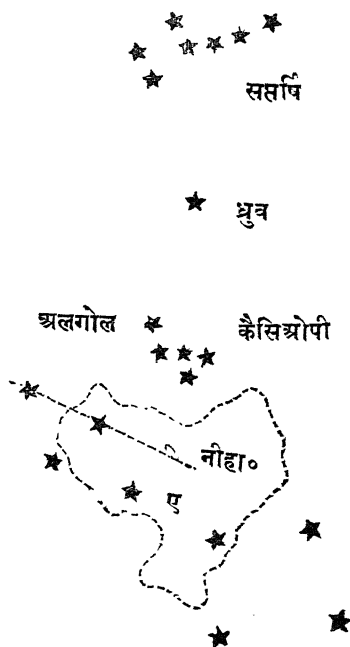
(चित्र २)

इस प्रकार आँखोंसे दिखाई देने वाली नीहरिकायें बहुत कमहैं, यद्यपि इनकी संख्या बहुत है। अवस्था भेद के अनुसार इन्हें कई भागोंमें विभाजित किया जासकता है। कुछ तो इनमें अंगूठीके आकार की (वलयाकार) होती हैं। कुछ ग्रही-नीहारिकायें कहलाती हैं जो एक छोटी चपटी तश्तरीके आकार की होती हैं, और इस तश्तरीके चारों ओर हलकी नीहार-ज्योति होती है। कुछ नीहारिकाओं का गठन बिलकुल असम्बद्ध रहता है।

नीहारिकाओं का एक और समूह है जिसका गठन सर्पिल आकार का होता है। जिस प्रकार सर्पकी कुंडलियाँ होती हैं, उसी प्रकार ये नीहारिकायें चक्कर लगाती हुई दिखाई देती हैं। यह सबने देखा होगा कि जब धुंआ सीधा ऊपर जा रहा हो और उसी समय यदि हवा का हलका झोंका आ जाय तो वह धुंआ भी सर्पकी डकुंलीके आकारमें नाचता हुआ ऊपर चढ़ेगा। सर्पिलाकार नीहारिकाओंमें भी इसी प्रकार का परिभ्रमण होता है। लार्ड रोज़के प्रबल-दूरदर्शक यन्त्र द्वारा इन नीहारिकाओं की सर्व प्रथम खोज की गई थी। ये नीहारिकायें सर्वत्र एकसी ही घनी नहीं हैं। कहीं तो अधिक घनी हो गई हैं और कहीं पर कम। ऐसा प्रतीत होता है कि कहीं पर चमकीली घनी गाठें और कहीं छोटी हलकी गाठें हैं। ये गाठें विशेष महत्व की हैं और ऐसा अनुमान किया जाता है कि इन गाठोंसे ही ग्रहोंकी उत्पत्ति होती है। जब ये गाठें घनी हो जाती हैं तो वह ग्रहों का रूप धारण कर लेती हैं, सांप की कुँडलीके समान ये सब गाठें एक चमकीले केन्द्र के चारों ओर घूम रही हैं। यह चमकीला केन्द्रही बादको सूर्य्य हो जाता है और गाठें ग्रहोंके रूपमें इस सूर्य्यके चारों ओर चक्कर लगाने लगती हैं। समस्त सौर साम्राज्य की उत्पत्ति इस प्रकार हो जाती है।

इन सर्पिलाकार नीहारिकाओं की वर्तमान स्थिति इस बातका प्रमाण है कि हमारे इस सौर मण्डलके समान कई नये और सौर मण्डल बन रहे हैं। यह अभी पूरे नहीं बन पाये हैं पर लाख दो लाख या करोड़ दो करोड़ वर्षोंमें ही इन नीहारिकाओंसे अनेक नये सूर्य्यों और उनके चारों ओर घूमने वाले नये ग्रहों की उत्पत्ति हो जायगी। हमारे सौर साम्राज्य का भी इसी प्रकार जन्म हुआ था। नीहारिकाओंके बाहरी भागमें घनीकरण आरम्भ हुआ। इनमें कई गाठें उत्पन्न हो गईं जो और घनी होकर बुध, बृहस्पति, पृथ्वी, मंगल, शनि आदि नक्षत्र बन गईं। नीहारिकाओंके अन्दर का चमकीला भाग सूर्य्यमें परिणत हो गया।

पर यह निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता है कि वस्तुतः वह नीहारिका किस प्रकारकी थी जिससे इस पृथ्वी का जन्म हुआ है। लार्ड रोज़के दूर-दर्शक यन्त्र द्वारा यह पता चला है कि बहुत सी नीहारिकायें तो केवल छोटे छोटे तारों का समूह ही है

जो परस्परमें अति निकट तथा हमसे बहुत दूर होने के कारण धुंएके रूपमें दिखाई देती हैं। सड़कके किनारों पर जलते हुए बिजलीके लैम्प; या दीपमालिका के दिन छतों पर रखे हुए दीपक दूरसे देखने में बिलकुल एक दूसरेसे मिले हुए दिखाई देते हैं। बस इसी प्रकार बहुतसे ऐसे समूह जो पहले नीहारिका समझे जाते थे, प्रबल दूर-दर्शकों द्वारा केवल तारोंके समूह ही रह गये। सम्भव है कि बहुतसे वे समूह जिन्हें हम आजकल नीहारिका समझते हैं वे भी तारे ही हों।

सर विलियम ह्यूजिन्स (Huggins) ने यह दिखा दिया है कि यद्यपि कुछ नीहारिकाओंमें वैसे ही पदार्थ हैं जैसे कि तारोंमें, पर कुछ नीहारिकाओं का गठन इनसे बहुत ही भिन्न है। ये वायव्य या गैस रूप हैं। सन् १७६६ ई० में प्रसिद्ध फ्रान्सीसी ज्योतिर्विद् लाप्लासने इन नीहारिकाओंके विषयमें यह मन्तव्य प्रकाशित किया था कि ये गैसके बादल हैं जो कि इतने गरम हैं कि वे चमकने लगते हैं। यदि आप लोहे के टुकड़े को गरम करें तो थोड़ी देर तक तो यह पूर्ववत् कालाही दिखाई देगा। पर और अधिक गरम करने पर यह लाल रूपमें चमकने लगेगा। यदि भट्टीमें बहुत प्रचंडतासे तपाया जाय तो यही फिर श्वेत रूपमें चमकने लगेगा। यह अवस्था ठोस पदार्थ की ही नहीं, प्रत्युत द्रव और गैस पदार्थों की भी है। प्रचंडतासे गरम करने पर ये भी चमकने लगते हैं। नीहारिकाओं के ज्योतिर्मय होने का भी यही कारण है। लाप्लासके सिद्धान्तके अनुसार यह ज्योतिर्मय अंश अपने केन्द्र के चारों ओर लट्टूके समान नाच रहा है। इसका बाहरी भाग धीरे धीरे ठंडा होता जाता है। ठंडा होनेसे सिकुड़न (संकोचन) आरंभ होती है जिसके कारण कुछ अंश घना होकर भिन्न भिन्न वलयों या मुद्रिकाओंके रूपमें पृथक् हो जाता है। बस इन्हींसे ग्रहों की उत्पत्ति होती है। लाप्लास का इसी प्रकारका सिद्धान्त था।

लाप्लासके इन विचारों की पुष्टि अन्य वैज्ञानिकों के प्रयोगों द्वारा भी हुई। इस निहारिका-सिद्धान्तके अनुसार जो भिन्न भिन्न अवस्थायें होनी संभव हैं वे सब फोटोग्राफिक प्रयोगों द्वारा वस्तुतः चित्रित करली गई हैं। सन् १८८७ ई० में डा० आइज़क रोबर्ट्सने एण्ड्रोमीडा-नीहारिका की फोटो ली। उस चित्र द्वारा यह प्रकट होता है कि यह नीहारिका चपटी गोल तश्तरी के आकार की है, इसके केन्द्रमें एक चमकता हुआ ज्योतिर्मय भाग है पर इसका बाहरी भाग केन्द्र भागकी अपेक्षा कम चमकीला है। यह बाहरी भाग वलय या मुद्रिकाओं में विभाजित होता जा रहा है। जहाँ कहीं भी वलयों के बाहरी भाग में से अन्दर की ओर कुछ देखा जा सकता है, वहाँ यह स्पष्ट पता चलता है कि अन्दर कुछ घने अंश बन रहे हैं, जो संभवतः भविष्य में ग्रहों का रूप धारण कर लेंगे।

यह बात तो ठीक है कि लाप्लास के अनुमान के अनुसार नीहारिकायें वलयों में परिणत हो-रही हैं पर लाप्लास का अनुमान था कि इन नीहारिकाओं में लट्टू के समान प्रबल गतिभी होगी। सर्पिलाकार नीहारिकाओं में केन्द्र के चारों ओर कुछ गति अवश्य पाई गई है पर उतनी नहीं जितना लाप्लास समझता था। जी० पी० बौण्ड ने सन् १८४८ ई० में नीहारिका एक चित्र लिया पर उस चित्र में भी सब स्थलों की आपेक्षिक स्थिति वैसी ही थी जैसी कि बाद में इसी नीहारिकाके लिये गये चित्रों में है। इससे पता चलता है कि नीहारिकाओं की भ्रमण गति बहुत ही कम है। यदि गति अधिक होती तो कुछ अंशों की आपेक्षिक स्थिति में अवश्य अन्तर मिलता।

दूरदर्शक यन्त्र द्वारा जो कुछ नीहारिकाओं के विषय में ज्ञात हो सकता था उसका अब तक उल्लेख किया गया है। इसके अतिरिक्त

भौतिक शास्त्रवेत्ताओं के पास एक और उपयोगी साधन है जिसके द्वारा नीहारिकाओं की परीक्षा की जा सकती है। इस परीक्षा का नाम है 'किरणचित्रण'। इस परीक्षा द्वारा पाये गये परिणामों का उल्लेख करने के पूर्व यह बता देना उपयोगी है कि यह किरणचित्रण विधि क्या है।

बहुत से पाठकों ने फानूसी शीशे अवश्य देखे होंगे। पुराने समय में बड़े बड़े घरों में रात को सुन्दर रोशनी करने में झाड़ फानूसों का बहुत उपयोग होता था। जिस समय दीपक जलते थे और प्रकाश इन फानूसों पर पड़ता था तो रंग बिरंगी ज्योतियाँ निकल कर कमरे की शोभा को बढ़ा देती थीं, फानूसी शीशोंका काम यह है कि यदि श्वेत प्रकाश इनमें होकर जावे तो वह कई रंगों में विभाजित हो जाता है। यह विभाजन किसी भी तिकोने ठोस कांच से हो सकता है। इस विभाजन के लिये फानूस के समान सुडौल तिकोना पदार्थ जिसे त्रिपार्श्व (prism) कहते हैं बनाया गया है। जब रोशनी इसमें होकर जाती है, तो वह रंगों विभाजित हो जाती है। जिस प्रकार के रंग इन्द्र धनुष में दिखाई पड़ते हैं उसी प्रकार के रंग त्रिपार्श्व में भी दिखाई देते हैं। ये रंग कासनी, नील, आसमानी, हरा, पीला, नारंगी और लाल होते हैं। सफेद वस्तु त्रिपार्श्व (या फानूसी शीशे में) से देखने पर इन रंगों द्वारा विरंजित दिखाई देती है। इस प्रकार की जो रंगीन पट्टी प्राप्त होती है उसे किरणचित्र (spectrum) कहते हैं। इस प्रकार के किरण चित्र तरह तरह की रोशनी के लिये अलग अलग होते हैं। सूर्य्य के प्रकाश का किरणचित्र और प्रकार का होगा और चन्द्रमा के प्रकाश का चित्र और प्रकार का होगा। हर एक तारे की रोशनी भी एक सी नहीं होती है। अतः प्रत्येक तारे का किरणचित्र भी पृथक् पृथक् होता है।

ज्योतिषियों ने तरह तरह के किरण-चित्र-दर्शक यन्त्र बनाये हैं जिनसे सुविधानुसार भिन्न भिन्न तारों की ज्योति की परीक्षा की जा सकती है। साधारणतया किरणचित्र तीन प्रकार के होते हैं।

(१) पट्टीदार किरणचित्र

(२) कालीरेखाओं का किरणचित्र

(३) चमकीली रेखाओं किरणचित्र
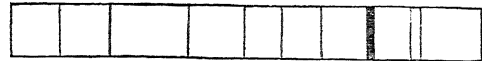
चित्र (३)

ऊपर कहा जा चुका है कि जब किसी ठोस, द्रव, या गैस पदार्थ को प्रचंड ताप दिया जाता है तो यह ज्योतिर्मय हो जाता है, अर्थात् चमकने लगता है। लोहा, तांबा, चांदी, सोना, आदि सभी भट्टी में खूब गरम करने पर चमकते हुए दिखाई देते हैं। पर इनमें से हर एक पदार्थ की ज्योति भिन्न भिन्न तरह की होगी। अतः इनके किरणचित्र भी अलग अलग तरह के होंगे। इनकी ज्योति की किरणचित्रदर्शकयन्त्र द्वारा परीक्षा करने पर पट्टीदार किरणचित्र प्राप्त होता है। अर्थात् चित्रमें लाल, हरे, पीले, नीले आदि रंगों की एक दूसरे से मिली हुई बराबर पट्टियां होंगी। हर एक पदार्थ की ज्योति के लिये अलग अलग तरह की पट्टियां होती हैं। ठोस द्रव, और घनी गैस वाले पदार्थों का पट्टीदार किरणचित्र (चित्र ३, क) होता है। पर यदि हलकी गैस को तप्त करके ज्योतिर्मय बनाया जाय और फिर इसका किरणचित्र लिया जाय तो एक दूसरेसे हटी हुई रंगदार चमकीली रेखायें ही किरणचित्रमें मिलेंगी (चित्र ३ ग)। इस प्रकारका किरणचित्र चमकीली रेखाका किरणचित्र या केवल रेखा किरणचित्र कहलाता है। किरणचित्रमें इन रेखाओं

का स्थान विशेष महत्वका है। प्रत्येक तत्वकी रेखाके लिये विशेष विशेष स्थान नियुक्त है अतः रेखाओं का स्थान मालूम कर लेने से पता चल सकता है कि ज्योति किस तत्त्व से आ रही है। इस प्रकार हर एक तारे की ज्योतिका रेखा-चित्र मालूम होने पर यह पता चल सकता है कि उस तारेमें कौन कौन तत्त्व विद्यमान हैं।

काली रेखाओं का किरणचित्र 'शोषण चित्र' भी कहलाता है, इस किरणचित्र में रंग की पट्टियों के ऊपर कहीं कहीं काली रेखायें दिखाई पड़ती हैं (चित्र ३, ख)। काली रेखायें कैसे पैदा होती हैं? मान लीजिये कि किसी ज्योतिर्मय वस्तु से लाल, पीली, और नारंगी रेखाओंकी किरणें चल रहीं हैं। बीच में यदि इन किरणों को कोई ऐसा पदार्थ मिला जिन्होंने नारंगी रेखा वाली कुछ किरणों को सोख लिया (शोषण कर लिया) तो फिर आप इन रेखाओं का चित्र किरणचित्र में न पावेंगे। इनके स्थानमें केवल काली रेखायें रह जावेंगी, इन काली रेखाओं की स्थिति से पता चलता है, कि अमुक तारे से निकली हुई ज्योति का कुछ अंश किन्हीं अन्य पदार्थों द्वारा शोषित हो गया है। इस प्रकार यह पता चल सकता है कि उक्त तारे के चारों ओर किस पदार्थ की वाष्पें घिरी हुई थीं जिन्होंने कुछ रश्मियों का शोषण कर लिया है।

सूर्य्य का किरणचित्र लेने पर शोषण-किरण-चित्र अर्थात् काली रेखाओंका किरणचित्र मिलता है क्योंकि इसके केन्द्र में तो घनी ज्योतिर्मय गैसे हैं जिनके कारण पट्टीदार रश्मिचित्र मिलना चाहिये। पर इस केन्द्र के चारों ओर अन्य अनेक तत्वों की हलकी वाष्पें हैं जो केन्द्रसे आई हुई ज्योति की कुछ रेखाओंका शोषण कर लेती हैं, अतः काली रेखा वाला किरणचित्र ही प्राप्त होता है। कुछ तारे जैसे ब्रह्महृदय (केपेला) भी इसी प्रकारका किरणचित्र देते हैं।

इस किरणचित्रण विधिका उपयोग नीहारिकाओं की ज्योति की परीक्षा में भी करना चाहिये। पर इनके विषय में एक बड़ी कठिनाई यह होती है कि नीहारिकाओं की ज्योति बहुत ही क्षीण है। सर विलियम ह्यूजिन्स ने सन् १८६४ में सबसे पहले यह बात प्रदर्शित की कि प्रत्येक नीहारिका रेखा-किरणचित्र देती है। अर्थात् इसके किरणचित्र में अनेक चमकीली रेखायें होती है। रेखा किरणचित्र का होना ही यह बताता है कि नीहारिका हलकी ज्योतिर्मय गैसों से बनी हुई है क्योंकि यदि ठोस या द्रव ज्योतिर्मय पदार्थ होता तो पट्टीदार किरण चित्र मिलना चाहिये था। लाप्लास का सिद्धान्त भी नीहारिका के विषय में यही बताता है। इन चमकीली रेखाओंकी स्थितिसे ह्यूजिन्सने यह अनुमान किया कि नीहारिकाओं मे तीन तत्त्व उपस्थित हैं—(१) हिमजन (हीलियम्) (२) उदजन (हाइड्रोजन) और एक अज्ञात तत्व जिसे नीहारिकम् या नेबूलियम् नाम दिया गया।

सर विलियम ह्यूजिन्स के प्रयोगों के पश्चात् नीहारिकाओं के किरणचित्र की विस्तृत परीक्षा आरम्भ हुई। उस परीक्षा के अनुसार नीहारिकाओं को दो भागों में विभाजित किया गया। पहले विभाग में वे नीहारिकायें रखी गईं जिनसे एक हलका-पट्टीदार किरणचित्र मिला जिसके ऊपर चमकीली रेखायें भी थीं। ये रेखायें उपर्युक्त तीन तत्वों की थीं। पांचसौ के लगभग नीहारिकाओं में ये ही तत्त्व थे। ये नीहारिकायें ज्योतिर्मय वायव्य पदार्थों की बनी थीं।

दूसरे विभाग में उन नीहारिकाओं को स्थान मिला जिन्होंने शोषण-किरणचित्र अर्थात् काली रेखाओं वाला किरणचित्र दिया। ये नीहारिकायें सूर्य्य के समान मानी जा सकती हैं। इन्हें तारों का समूह समझना चाहिये है, कम से कम किरणचित्र द्वारा तो तारोंमें और इन नीहारिकाओं में भेद नहीं मालूम पड़ सकता है। एण्ड्रोमीडा

की पूर्वोक्त नीहारिका और अन्य सर्पिल नीहारिकायें भी इसी प्रकार का किरणचित्र देती हैं। सर राबर्ट बालका कहना है कि सर्पिल नीहारिकायें वायव्य रूप में नहीं है। ये मुख्यतः पट्टीदार किरण चित्र देती हैं जिनमें बहुत कम शोषण रेखायें होती है। इससे पता चलता है कि अधिकतर नीहारिकाओं का बाहरी भाग अन्दर के भाग से ठंडा है और इस बात में ये सूर्य्य और तारों के समान हैं। पहले विभाग की नीहारिकाओंसे चमकीली रेखा का किरणचित्र मिला था अतः उन नीहारिकाओं का बाहरी भाग अत्यन्त तप्त ज्योतिर्मय वायव्य पदार्थों का बना हुआ है। यह भी होना संभव है कि पहले विभाग की नीहारिकायें ही ठंडी होने पर दूसरे विभाग की नीहारिकायें बन जाती हों।

उल्का (Meteorites)

नीहारिकाओं का उल्लेख करते हुए यह कहा जा चुका है कि लाप्लास के सिद्धान्त के अनुसार सौर जगत का आरम्भ इन्हीं नीहारिकाओं के घनीकरण द्वारा होता है। सर विलियम ह्यूजिन्स के किरणचित्र सम्बन्धी प्रयोगों द्वारा यह भी दिखाया जा चुका है कि ये बहुत सी नीहारिकायें वाष्प रूप में विद्यमान हैं और ज्योतिर्मय हैं। लार्ड केल्विन ने यह अनुमान लगाया है कि इन वाष्पोंका घनत्व हवा के घनत्व का १० लाखवां भाग ही है। अब प्रश्न यह है कि इतने कम घनत्व वाली वस्तु अपनी ज्योति तथा ताप इतने अधिक समय तक कैसे स्थित रख सकती है। होना तो यह चाहिये था कि इसका सब ताप थोड़ी ही देरमें विकीर्ण हो जाता और ये नीहारिकायें ठंडी पड़ जातीं।

इस समस्या के हल करने के लिये सर नारमन लौकयर ने उल्काओं का सिद्धान्त प्रस्तुत किया और प्रोफेसर टी० सी० चैम्बरलेन ने इसी सिद्धान्त को विशेष रूप से पुष्ट किया। लौकयर और चैम्बरलेन के सिद्धान्त ने नीहारिकाओं के गठन को एक नया ही रूप प्रदान किया। इनके मतानुसार ये नीहारिकायें ज्योतिर्मय वाष्पों या गैसों की बनी हुई नहीं है। इनका कहना है कि इनका निर्माण छोटे छोटे उल्काओं के समूहोंसे हुआ है। हमारे पाठकों ने निर्मलरात्रि में इन उल्काओं को टूटते हुए अवश्य देखा होगा। कभी कभी आपको शैय्या पर लेटे हुए दिखाई पड़ा होगा कि तारे के समान चमकती हुई कोई वस्तु अकस्मात् टूटकर पृथ्वी पर गिरी चली आ रही है और थोड़े ही समयमें अदृश्य हो जाती है। ये चमकीली वस्तुएँ ही उल्कायें हैं। इनके गिरने को उल्कापात कहते हैं। लौकयर का कहना यह है कि नीहारिकायें इन्हीं उल्काओं की बनी हुई हैं।

सामान्यतः ये उल्का काले और ठंडे होते हैं पर जिस समय ये पृथ्वीके वायुमण्डलमें पहुँचते हैं तो घर्षण (रगड़) द्वारा इनमें प्रचंड ताप उत्पन्न हो जाता है और तब ये तारों के समान चमकने लगते हैं। इसी रगड़ द्वारा पिसकर चूर्ण हो जाते हैं। अतः इस विचार के अनुसार हमें यह मानना पड़ता है कि नीहारिकाओंमें इन उल्काओं के असंख्य समूह आपस में टकराते हैं और पारस्परिक रगड़ के कारण ये गरम हो जाते हैं, और इस गरमी से इनका कुछ अंश वाष्पीभूत हो जाता है। यह वाष्प ही अत्यन्त ताप के कारण ज्योतिर्मय हो जाती है। थोड़े समयमें यह वाष्प अपना ताप विकीर्ण करके ठंडी पड़ जाती है। पर इसी समय उल्काओं के शेष ठोस अंश फिर परस्पर टकराते हैं और इसका फिर कुछ अंश ज्योतिर्मय वाष्पों में परिणत हो जाता है। इस प्रकार यह प्रकिया बार बार होती रहती है और इस कारण ये नीहारिकायें सहस्रों वर्षों तक ज्योतिर्मय रह सकती हैं।

लाप्लास और लौकयर के सिद्धान्त में यही भेद है कि लाप्लास तो आरम्भ से ही नीहारिकाओं को वाष्प रूप में मानता है पर लौकयर का कहना

यह है कि ये आरम्भ में तो ठोस उल्काओं से बनी हैं पर पारस्परिक संघर्ष द्वारा इन उल्काओं का कुछ अंश वाष्प में परिणत हो जाता है। उल्का स्वयं ठंडे हैं पर रगड़ के कारण उत्पन्न वाष्पें प्रचंड ताप के कारण ज्योतिर्मय हो जाती हैं। ये वाष्पें रगड़ से बराबर पैदा होती रहती हैं, और और शीघ्र ही बुझकर शीतल पड़ती जाती हैं पर इनकी उत्पत्ति और ज्योतिर्हीन होने का यह क्रम बराबर चलता रहता है।

सर नारमन लौकयर के मतानुसार सम्पूर्ण सौर मंडल इन्हीं उल्काओंके घनीकरणसे बना हुआ है। एक ऐसे समय की कल्पना कीजिये जब कि समस्त ब्रह्माण्ड इन्हीं उल्काओंसे आवृत्त था। ये उल्का एक प्रकारसे सर्वव्यापक थे। जिसको हम शून्य आकाश कहते हैं, वह कहीं भी न था। कालान्तरमें इन्हीं उल्काओं का घनीकरण आरम्भ हुआ और यह सौर जगत् उत्पन्न होगया।

ये उल्का किस पदार्थके बने हुए हैं और इनकी अवस्था क्या है, यह भी जानने योग्य बात है। ये ठोस पदार्थ हैं और यहाँ तक आते आते इतने ठंडे हो जाते हैं कि वायु द्वारा संघर्षित होने पर भी गिर पड़नेके कुछ घंटोंके बादही इनमें इतनी गरमी आती हैं कि ये हाथसे उठाये जा सकें। इनमें कुछ उल्का तो इसी सौर मंडलके होते हैं पर कभी कभी कुछ उल्का सौर मंडलके बाहरसे भी यहाँ आ जाते हैं। इनमेंसे कुछ तो सूर्य्यकी परिक्रमा लगाते हैं अतः चैम्बरलिनके शब्दोंमें इन्हें सूक्ष्म-ग्रह (planetesimal) कह सकते हैं पर इनके भ्रमणपथ साधारण ग्रहोंकी अपेक्षा भिन्न होते हैं। हम इन उल्काओंको तब तक नहीं देख सकते हैं जब तक वे हमारे वायुमंडलमें प्रवेश न करलें। वायुमंडलमें इनका वेग ८ मीलसे लेकर ७० मील प्रति सैकेण्ड तक होता है। वायु द्वारा संघर्षित होकर ये चमकने लगते हैं। अमावस्याके दिन निर्मल रात्रिमें या कृष्ण-पक्षके किसी और दिन जिस समय चन्द्रमा न दिखाई दे रहा हो, प्रति घंटे आठ दस उल्का गिरते हुए दिखाई देंगे। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि प्रति दिन हमारे वायुमंडलमें २ करोड़के लगभग ऐसे उल्का प्रवेश करते हैं जिन्हें हम आँखोंसे देख सकते हैं।

इनके अतिरिक्त ऐसे भी बहुतसे सूक्ष्म उल्का होंगे जिन्हें हम बिना दूरबीन की सहायताके नहीं देख सकते। सर नारमन लौकयरके कथनानुसार प्रति दिन पृथ्वी पर ४००,०००,००० (चालीस करोड़) उल्काओं का पतन होता है। इनमेंसे कुछ तो मटरके दानेके बाराबर होते हैं और कुछ ५०० से १००० सेर तकके भारी होते हैं। पर इन सबका औसत भार इतना कम होता है कि दस लाख वर्षमें भूमिके पृष्ठतलमें केवल $\frac{१}{१०००}$ इंच की ही वृद्धि होने पाती है।

भारतवर्ष में ऐसे उल्का बहुत गिरा करते हैं। हमारे पुराने ग्रन्थोंमें उल्कापातका नाम 'अशनि-पात' (या बिजली गिरना) भी है। किसी किसी रात में उल्कापात की झड़ी सी लगजाती है, जिसे देखनेसे बड़ा भय मालूम होता है। इनका गिरना इस देशमें अशुभ माना जाता है। कभी कभी इनके गिरनेसे मनुष्यों की मौत भी हो जाती है और मकानों को भी क्षति पहुँचती है।

उल्कापात सभी महीनोंमें एकसा नहीं होता है। किसी महीनेमें अधिक और किसीमें कम। भारतीयों का ऐसा विचार है कि नवम्बरकी १५ तारीखके लगभग अधिक उल्का गिरते हैं। अगस्त की १० वीं तारीखके निकट भी अधिक उल्का पात होता है।

उल्का दो प्रकारके होते हैं। अधिकांश उल्का और विशेषकर वे जो आकारमें बड़े हैं, लाहे के बने होते हैं और इनमें ६°/. से १० °/. तक नकलम् (निकल) धातु भी होती है। इनमें मगनीसम् आदि धातुएँ भी होती हैं। दूसरे प्रकारके

उल्काओंमें ऐसे क्षारीय पदार्थ होते हैं जो शिलाओं में पाये जाते हैं। इनमें फैल्सपार (पांशुज- स्फूट-शैलेत), ओलिविन (मगनीस शैलेत) और क्रोमाइट खनिज भी पाये जाते हैं।

बहुतसे उल्काओंमें कर्बन द्विओषिद, कर्बन एकौषिद, नोषजन, उद्जन आदि गैसें भी होती हैं।

यह निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता है कि इन उल्काओं का आदि जन्म कहाँसे होता है। आरहीनियस का विचार है कि सूर्य्यसे गोल गोल कण छूटा करते हैं जिनका घनीकरण होनेसे उल्का बन जाते हैं।

धूमकेतु (comets)

धूमकेतु भी ज्योतिर्मय सृष्टिके कौतूहलप्रद अन्श हैं। इन्हें पुच्छल तारा भी कहते हैं। इनमें एक चमकीला दिव्य केन्द्र होता है और जब ये सूर्य्यके निकट आ जाते हैं तो इनमें लम्बी चमक. दार पूँछ भी निकल आती है। कुछ धूमकेतु तो सूर्य्य की परिक्रमा करते रहते हैं पर कुछ सूर्य्यके अति निकट प्रतीत होते हैं पर थोड़ी ही देरमें फिर एकदम सूर्य्यसे दूर भाग जाते हैं। ये धूमकेतु परवलय (parabola) पथमें चलते हैं।

धूम केतुओं और उल्काओंमें भी बड़ा सम्बन्ध है। कभी कभी तो धूमकेतु ही उल्का समूहमें परिणत हो जाते हैं। बीला (Beilla) के धूमकेतु के विषयमें यह कहा जाता है कि पहले तो यह सूर्य्य की परिक्रमा लगाता रहा और सन् १७७२से सन् १८५२ के बीचमें ६.६७ वर्षोंके अन्तरसे यह सदा दृष्टि गोचर होने लगा। पर अन्तिम बार यह दो भागोंमें टूट गया। जब दूसरे बार इसके देखनेकी बारी आई तो यह धूमकेतु तो न दिखाई दिया पर इसके स्थानमें उल्काओंका समूह ही दृष्टिगत हुआ। इससे यह अनुमान लगाया गया है कि वह धूमकेतु ही इन उल्काओंमें परिणत हो गया है।

इन धूमकेतुओंके नाम उनके आविष्कर्त्ताओंके नाम पर पड़े हैं। बीला ने जिस धूमकेतुको सबसे पहले देखा वह बीला-का-धूमकेतु कहलाता है। भारतीय ज्योतिष शास्त्रमें पितामह धूमकेतु, उद्दालक धूमकेतु, काश्यप धूमकेतु आदिका उल्लेख पाया जाता है। इन तीनों धूमकेतुओंके भगणकाल (अर्थात् सूर्य्य की परिक्रमा करनेका समय) क्रमशः ५०० वर्ष, ११० वर्ष और १५०० वर्ष बताया गया है।

पाश्चात्य ज्योतिषियोंके खोजे हुए धूमकेतुओं में हेली (Halley) का धूमकेतु, एंकी (Enkei) का धूमकेतु, डोनेटी (Donetee) का धूमकेतु और टेम्पल (Tempel) का धूमकेतु अधिक प्रसिद्ध हैं। हेलीके धूमकेतुका भगणकाल ७६ वर्षके लगभग है। यह सन् १८३५ और १९१० में दिखाई दिया था। अब सन् १९८५ में फिर दिखाई देगा। एंकी का धूमकेतु ३ वर्ष ४ मासके अन्तर पर ही दिखाई देता है। डोनेटीका धूमकेतु सन् १८५८ में दिखाई पड़ा था पर अब उसका कहीं पता नहीं है। टेम्पल का धूमकेतु अबतो उल्का समूहों में परिणत हो गया है, और यह उल्काराशि ३३¼ वर्ष के अन्तर से दिखाई पड़ा करती है। सन् १९१० में टाइरोल स्थान पर एक उल्का गिरा था जिसके विषय में यह अनुमान है कि यह हेली के धूमकेतु का अंश था।

धूमकेतुओं का उल्काओं में परिणत हो जाना यह बताता है कि दोनों एकही पदार्थ के बने हुए हैं। अब एक प्रश्न यह उपस्थित होता है कि इन धूमकेतुओं में ज्योति कहाँ से आती है। नीहारिकाओं की ज्योति के विषय में लोगों का विचार यह था कि ये ज्योतिर्मय गैस के बने हुए हैं। यही कल्पना धूमेकेतुओं के विषय में भी की गई। पर यह कल्पना स्वीकार करना कठिन ही है क्योंकि इतनी हलकी गैसें इतना अधिक ताप अधिक काल तक स्थिर नहीं रख सकती हैं, और दूसरी आपत्ति

यह है कि इन हलकी गैसों के लिये यह संभव नहीं है कि वे सूर्य्य की ओर इतने प्रबल वेग से दौड़ सकें जितने से कि धूमकेतु सूर्य्य के समीप आते और आकर फिर हटजाते हैं।

ज्योतिषियों ने जिस कल्पना को आजकल स्वीकार किया है वह यह है कि धूमकेतुओं की ज्योति विद्युत् प्रभाव के कारण है। सूर्य्य द्वारा धूमकेतु के कणों पर एक प्रकार का विद्युत् संचार उत्पन्न होता है जिससे ये चमकने लगते हैं। ह्यूजिन्स ने सन् १८७४ ई० में इस धारणा को जन्म दिया था और बाद के प्रयोगों से इसकी पुष्टि होगई।

सर विलियम ह्यूजिन्स ने सन् १८८१ में धूमकेतु के किरणचित्र की परीक्षा की। इस चित्र में कुछ तो पट्टीदार चित्र मिला जो कि सूर्य्य के परावर्तित प्रकाश द्वारा पैदा हुआ था। इसके अतिरिक्त चित्र में चमकीली रेखायें भी मिलीं जिससे यह अनुमान लगाया जाता है कि धूमकेतु में वाष्पें भी विद्यमान हैं। ये चमकीली रेखायें दो भागों में विभक्त की जा सकती हैं। एक भाग की रेखायें सैन्धकम् तत्त्व की विद्यमानता की सूचक हैं और दूसरे प्रकार की रेखायें उद्-कर्बन पदार्थों (अर्थात् कर्बन और उद्जन के बने हुए पदार्थों) की सूचक हैं।

प्रकाश का आवर्जन

गताङ्क से आगे

[ले० श्री राजेन्द्र बिहारी लाल, एम० एस-सी]

पट में आवर्तनः

न लो च छ, ज झ किसी पट के समानान्तर पृष्ठतल हैं, और पट कांच या किसी दूसरी पारदर्शक वस्तु का बना हुआ है जिसकी आवर्जन संख्या (ना) है। जिन सतहों के चिह्न च छ ज झ हैं वह कागज़ के तल पर लम्बाकार हैं। मानलो कि पट के ऊपर
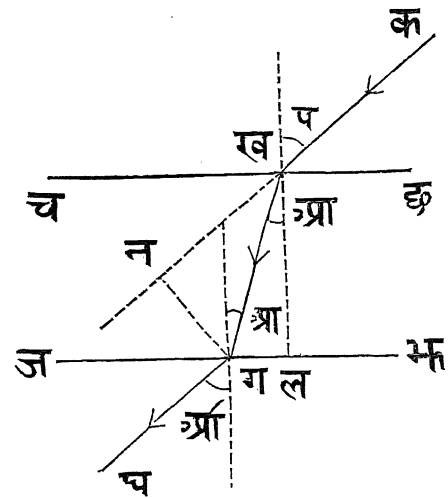
चित्र २

और नीचे हवा या शून्य है। एक किरण क ख जो कागज़ के तल में, लम्ब से प कोण बनाती हुई, पतित होती है, आवर्जित होकर ख ग के मार्ग पर जाती है और कागज़ ही के तलमें में रहती है। यदि ख पर आवर्जन कोण आ हो तोः—

$$\frac{\text{ज्या प}}{\text{ज्या आ}} = \text{ना} \ldots\ldots\ldots\ldots (५)$$

किरण ख ग पट के दूसरी सतह पर आ कोण

बनाती हुई पतित है। पट से निकलने वाली किरण ग घ भी कागज़ ही के तल में रहेगी, और यदि लम्ब से आ कोण बनावे तो

ज्या आ / ज्या आ′ = १/ना.........(६)

(५) और (६) के दाहिनी और बाईं ओर के भागों को एक दूसरे से गुणा करें तो

ज्या प / ज्या आ′ = १

ज्या प=ज्या आ′

अतएव आ′=प और बाहरी किरण ग घ पतित किरण क ख के समानान्तर है।

चित्र २ से स्पष्ट है कि पतित किरण और बाहरी किरण एक ही रेखा में नहीं हैं। उनके बीच के हटाव का अन्तर निकाला जा सकता है।

क ख रेखा को बढ़ादो और उस पर ग से लम्ब खींचो जो क ख से न पर मिलता है। तो किरणों के बीच का हटाव ग न के बराबर है।

यदि ख पर लम्ब दूसरी सतह ज झ से ल पर मिले तोः—

गन = ख ग ज्या ग ख न

$= \frac{\text{ख ल}}{\text{को ज्या ग ख ल}}$ ज्या (न ख ल—ग ख ल)

$= \frac{\text{ख ल}}{\text{कोज्या आ}}$ ज्या (प—आ)

$= \text{म}\,\frac{\text{ज्या (प—आ)}}{\text{को ज्या आ}}$ ....(६)

जहां कि पट की मोटाई ख ल की बजाय म लिख दिया गया है। इस फल से हम देखते हैं कि किरणों के बीच का हटाव आवर्जक माध्यममें प्रकाश के मार्ग की लम्बाई के समानुपाती है।

प्रयोगः

कांच का एक चपटा चौखूंटा टुकड़ा ले कर कागज़ के एक एक तखते पर रक्खो। कागज़ पर दो लकीरें पेंसिल से इस प्रकार खींचो कि पट के दोनों ओर के किनारों के चिह्न कागज़ पर बन जावें। पट के एक तरफ दो पिनें खड़ी करके कागज़ में गाड़दो। जिस प्रकार दो बिन्दुओं से एक रेखा नियत हो जाती है उसी प्रकार इन दो पिनों से एक प्रकाश किरण क ख का मार्ग नियत हो गया। कांच के दूसरी तरफ दो पिनें इस प्रकार गाड़ो कि कांच के भीतर देखने से चारों पिनें एक सीधी रेखा में दिखाई दें। अब कांच के टुकड़े को हटा दो और पिनों के स्थानों में होती हुई रेखाएं क ख, ग घ खींचो जो च छ, ज झ से क्रमानुसार ख और ग पर मिलें। ख और ग को भी एक रेखा से मिलादो। अब हम को पतित किरण क ख, आवर्जित किरण ख ग और बाहिरी किरण ग घ की स्थिति मालूम हो गई और हम आवर्जन के दोनों नियमों की जांच कर सकते हैं।
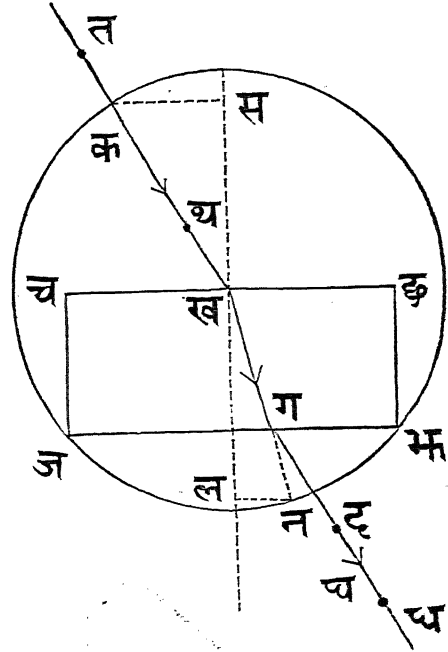
चित्र ३

पतित किरण, आवर्जित किरण और लम्ब चित्र में कागज़ ही के तल में है।

यदि हम <क ख स और <ग ख ल को चांदा से नापलें तो दूसरे नियम की भी जांच कर सकते हैं और साथ ही साथ कांच की आव-

र्जन संख्या भी निकाल सकते हैं। या अगर हम कोणों को नापना न चाहें तो रेखाओं को नाप कर भी आवर्जन संख्या निकाल सकते हैं। परकार से एक बड़ा वृत्त ख को केन्द्र मान कर खींचो। पतित किरण ख क और आवर्जित किरण ख ग को बढ़ा दो ताकि इस वृत्त परिधि से क और न पर मिल जावें। क और न से ख ल पर लम्ब खींचो। यदि क स, न ल को पटरी से नाप लिया जाय तो उनका अनुपात कांच की आवर्जन संख्या के बराबर होगा।

क्योंकि

ना = ज्या स ख क/ज्या ग ख ल

$$= \frac{कस}{कख} \div \frac{नल}{नख} = कस / नल$$

अपने खींचे हुए चित्र से हम यह भी सिद्ध कर सकते हैं कि पतित और बाहरी किरणों; क ख; ग घ, समानान्तर हैं, और यदि इन दोनों किरणों के बीच की दूरी नाप लीजाय तो उपर्युक्त सूत्र की जांच कर सकते हैं।

प्रकाशका कई माध्यमों में आवर्जनः—
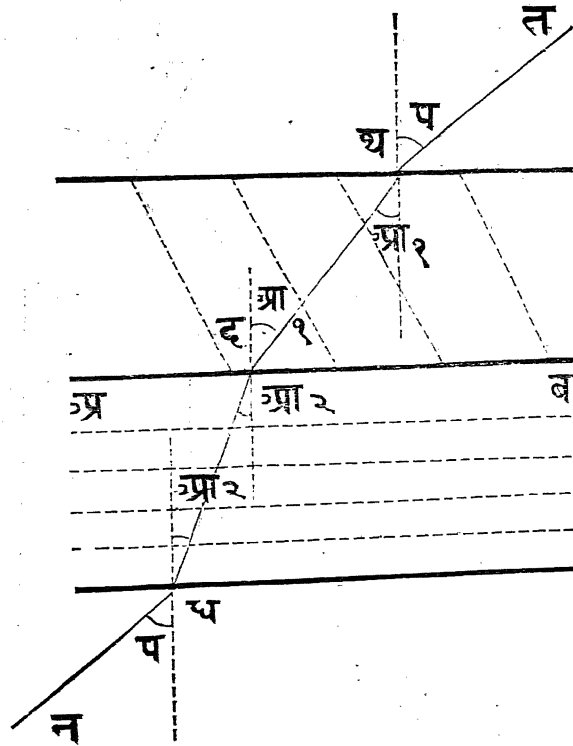
चित्र ४

सरलता के लिये हम यह मान लेते हैं कि माध्यमों के बीच की सतहें चपटी और समानान्तर हैं।

त थ द ध न, एक किरण का मार्ग है जो क्रमशः दो समानान्तर पटों में होकर जाती है जिनकी दोनों सतहें अ ब पर मिली हैं।

प्रयोग बताता है कि यदि इस युगल-पट के ऊपर और नीचे एक ही माध्यम हो तो पतित किरण तथ और बाहिरी किरण धन समानान्तर होती हैं। मान लो कि इस पट के ऊपर नीचे शून्य है। यदि ऊपर के माध्यम की आवर्जन संख्या $ना_1$ हो, तो

$ना_1$ =ज्या पतन कोण/ज्या आवर्जन कोण
=ज्या प/ज्या $आ_1$ ....(८)

ऊपर से नीचे के माध्यम में जाते हुए पतन कोण =$आ_1$ और आवर्जन कोण=$आ_2$ और यदि आवर्जनसंख्या $ना_{12}$ हो तो

$ना_{12}$ = ज्या $आ_1$ / ज्या $आ_2$ ....(९)

नीचे के माध्यम से शून्य में जाते हुए किरण द ध का पतन कोण = $आ_2$ और क्योंकि आवर्जन कोण =प, इसलिये यदि दूसरे माध्यमकी आवर्जन संख्या $ना_2$ हो तो

१ / $ना_2$ = ज्या $आ_2$ / ज्या प।......(१०)

(८) और (१०) को गुणा करके (९) का उपयोग करने से

$$\frac{ज्या\ प}{ज्या\ आ_1} \quad \frac{ज्या\ आ_2}{ज्या\ प} = \frac{ना_1}{ना_2}$$

$$\frac{ज्या\ आ_2}{ज्या\ आ_1} = \frac{ना_1}{ना_2} = \frac{१}{ना_{12}}$$

$$\therefore\ ना_{12} = ना_2 / ना_1 \ ....(११)$$

अथवा किसी माध्यम ब की किसी दूसरे माध्यम अ से आपेक्षिक आवर्जन संख्या ब और अ के आवर्जन संख्या के अनुपातके बराबर है।

शून्य से साधारण वायु की आवर्जन संख्या १·०००३ के बराबर है। बस अगर हवा से कांच की आवर्जन संख्या ना हो तो शून्य से कांचकी आवर्जन संख्या ना × १·०००३ होगी। इस संख्या और ना का अन्तर इतना कम है कि साधारण प्रश्नों में हम इस अन्तर पर बिल्कुल ध्यान नहीं देते और ना ही को काम में लाते हैं।

ऊपरकी विधि से यह सिद्ध किया जा सकता है कि, यदि प्रकाश क्रमशः स माध्यमों में होकर अपने पहिले माध्यम में लौट आवे तो

$$ना_{12} \times ना_{23} \ldots\ldots \times ना_{स1} = १ \ \ldots(१३)$$

आवर्जन से बिम्ब का बनना

जब प्रकाश किसी सतह पर समकोण बनाता हुआ पतित होता है तो प=० और ज्या प=०, इसलिये इस अवस्था में, क्योंकि ज्या प=ना ज्या आ, ज्या आ = ०, आ = ० और प्रकाश बिना मुड़े सीधा ही दूसरे माध्यम में चला जाता है।
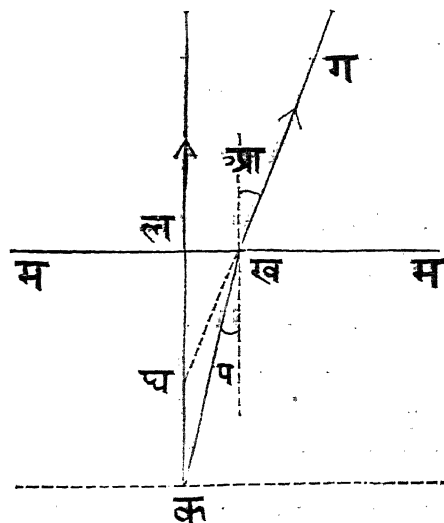
चित्र (५)

मान लो किसी माध्यम में क एक छोटा सा पदार्थ, या सरलताके लिये एक बिन्दु है। क ल दो माध्यमोंके बीचकी सतह म म से समकोण बनाता हुआ लम्ब है। अब हमें यह निकालना है कि यदि ल के ऊपर आंख को रक्खें तो क कहां पर दिखाई देगा। आंखकी पुतलीके छोटे होनेके कारण वही किरणें कामकी हैं जो ल के पास ही सतह से निकलती हैं।

क से निकलनेवाली एक किरण कल है जो सीधी ही चली जाती है। एक दूसरी क ख है जो ख पर लम्ब से दूर मुड़कर ख ग की दिशा में जाती है। ग ख को पीछे की ओर बढ़ा दो जिससे वह क ल से घ पर मिल जावे।

चित्र (६)

तो इस शर्त पर कि सब किरणें ल के पासही निकलती हैं,

क का दिखावटी बिम्ब घ होगा।

अथवा हमको यह सिद्ध करना है कि क से निकलने वाली सब किरणें, ल पर रक्खी हुई आंख को, घ से निकलती हुई मालूम होंगी।

चित्र में ल और ख पर लम्ब समानान्तर रेखाएं हैं

∴ $ना_{१२}$ = ज्या प / ज्या आ

= ज्या ख क ल / ज्या ख घ ल

$= \frac{\text{ल ख}}{\text{क ख}} \Big/ \frac{\text{ल ख}}{\text{ख घ}} = \frac{\text{ख घ}}{\text{क ख}}$

$= \frac{\text{घ ल}}{\text{क ल}}$ ....(१३)

क्योंकि ख के ल से निकट होने के कारण, क ख =क ल, घ ख=घ ल।

उपर्युक्त समीकरण में पतन और आवर्जन कोण नहीं आते। इसलिये यदि कोई दूसरी किरण ली जाय जो क से चल कर ल के निकट पतित होती है; तो वह भी क ल को घ ही पर काटेगी। अतएव क से निकलने वाली बसकिरणें घ से आती हुई जान पड़ती हैं। बस क का दिखावटी बिम्ब घ हुआ।

यदि सम सतह से पदार्थ की दूरी को त और बिम्ब की दूरी को थ कहें, तो

थ=ना त.. ....(१४)

जब कि ना उस दिशा में आवर्जन संख्या है जिसमें प्रकाश जा रहा है।

आवर्जन के कारण पदार्थ अपनी असली स्थिति से कुछ हटा हुआ मालूम पड़ता है।

यह हटाव =क घ

=क ल – घ ल=त – थ

=त (१ – ना) ....(१५)

यदि बिम्ब की स्थिति प्रयोग द्वारा निकाली जाय तो ऊपर के सूत्र से नीचे वाले माध्यम की आवर्जन संख्या मालूम हो जायगी।

प्रयोग—कांच का एक आयताकार ठोस कागज़ पर रक्खो। उनके पिछले किनारे मिला कर एक पिन सीधी गाड़ दो। यह हमारे पदार्थ क का काम देगी। कांच में से इस पिन को देखो और दो और पिनें ख ग पर कांच के दूसरी तरफ़ इस प्रकार गाड़ दो कि यह पिनें और क का बिम्ब एक ही सीधी रेखामें दिखाई दें। ख ग से एक बाहरी किरण का मार्ग नियत हो गया। इसी प्रकार पिनें गाड़ कर दूसरी बाहरी किरणें भी मालूम की जा सकती है। जिस स्थान से यह बाहरी किरणें आती हुई मालूम होती हैं, अथवा घ जहां उनकी रेखाएं पीछे बढ़ाने से मिलती हैं, वह क का बिम्ब है। च छु से क की दूरी क ल को नाप लो, और घ ल को भी तब

$$\text{ना} = \frac{\text{ठोस की असली चौड़ाई}}{\text{ठोस की दिखावटी चौड़ाई}}$$

$$= \frac{\text{कल}}{\text{घल}}$$

प्रयोगः—कांच का एक बेलन लो जिस की ऊंचाई कोई ३० या ४० शतांश मीटर हो। इसके पेंदे पर एक पिन या एक नन्हासा कण खरिय का रक्खो और इसे पानी से भर दो। पानी की असली गहराई, अथवा पिन से पानी की सतह की दूरी, एक पटरी से नाप लो। पानी में झांक कर देखने से पिन अपनी असली जगह से ऊपर उठी हुई दिखाई देगी। पिन के दिखावटी बिम्ब की स्थिति निकालने के लिये एक छोटे से नोकीले गैस लौ को पड़ी दिशा में करके, पानी की सतह के ऊपर इतनी ऊंचाई पर रक्खो कि गैस-लौ के पानी की सतह पर परावर्तन द्वारा बनने वाले बिम्ब और पिन के दिखावटी बिम्ब में लम्बन (parallax) न रह जावे। अथवा, आँख को कुछ दूर इधर उधर हटाने से यह दोनों बिम्ब एक दूसरे से पृथक् न हों। इस अवस्था में पानी की सतह और गैस लौ के बीच की दूरी पिन के बिम्ब और पानी की सतह की दूरी अथवा थ के बराबर है।

कांच की एक नली जो खींच कर पतली नोकदार बनाई गई है गैस लौ के दग्ध का काम दे सकती है।

इस प्रकार जलकी आवर्जन संख्या निकल सकती है। यह लगभग १.३३ या ४/३ के बराबर होगी।

इस प्रयोग से यह सिद्ध होता है कि पानी की सतह के नीचे रक्खी हुई कोई वस्तु जब ऊपर से झांक कर देखी जाती है तो सतह से असली दूरी की तीन चौथाई दूरी पर दिखाई देती है।

———

परमाणुओं की अन्तर-रचना
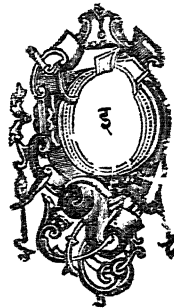
इस जगतके सब पदार्थ अणुओंके बने हैं और अणु परमाणुओंके बने हैं। यदि कोई पदार्थ तत्त्व है तो उसके अणुओं का प्रत्येक परमाणु एकही प्रकार का होगा और यदि वह यौगिक है तो उसके अणुओंमें दो या इससे अधिक प्रकारके परमाणु पाये जायेंगे। परन्तु किसी भी पदार्थके सब अणु एकही प्रकारके होंगे। अणु पदार्थके उस न्यूनतम भाग का नाम है जो उस पदार्थके समान गुणवाला होकर स्वतन्त्र अवस्थामें रह सके; परमाणु तत्त्वों के उस न्यूनतम भागको कहते हैं जो रासायनिक प्रयोगोंमें भाग ले सकें। किसी भी तत्त्वके परमाणु जाँच करने पर सब प्रकारसे समान पाये जायेंगे; भिन्न भिन्न पदार्थोंके परमाणु दूसरेसे असमानता प्रकट करेंगे।

पचास वर्ष पहिले पाश्चात्य वैज्ञानिकों का यह विचार था कि परमाणु अविभाज्य है। परन्तु जैसा कि प्रोफेसर सौडीने कहा है परमाणु प्रकृति की इकाई नहीं है। वास्तवमें परमाणु की रचना को जाननेके प्रश्नमें वर्तमान वैज्ञानिक संसारकी बहुत सी शक्तिलगी हुई है। भौतिक शास्त्रज्ञों तथा रसायन-वेत्ताओंके लिये यह एक बड़ी भारी समस्या है जिसकी पूर्तिके लिये वह भांति भांति के प्रयोग कर रहे हैं; तथा गणितज्ञ प्राप्त किये गये फलों पर विचार कर रहे हैं। और खोजों को नियन्त्रित रूपमें ला रहे हैं। संसार की किसी भी प्रयोगशालामें जाइये, वैज्ञानिक लोग एक न एक रूपमें परमाणु रचनाके विषयमें खोज कर रहे होंगे। यदि वह किसी भौतिक-शास्त्री की प्रयोगशाला है तो आप निश्चय ही किसी को रौञ्जन-किरण वा रश्मिशक्ति (Radioactivity)

पर प्रयोग करते हुए पायेंगे। यदि आप किसी रसायन-शालाके गलित पदार्थों की बाससे भरे हुए वातायनमें जाँय तब भी किसी न किसी को परमाणुके विषयमें कुछ काम करते पायेंगे। और यदि आप किसी भूगर्भवेत्ताकी प्रयोग-शालामें जायें तो कदाचित् यही सुनेंगे कि वह एक प्रयोग कर रहे हैं जिसके द्वारा सम्भवतः वह परमाणु रचना की अमुक उलझन सुलझा सकें।

आज कल यह कहना कठिन है कि भौतिक शास्त्र का कहाँ अन्त होता है और रसायन शास्त्र कहांसे आरम्भ होता है। प्रयोगों का क्षेत्र आजकल इतना विस्तृत तथा गूढ़ होगया है कि किसी जिज्ञासु (Research worker) का अपनी खोजके विषय को छोड़ कर और विषयोंसे परिचित होना असम्भव सा होगया है। उनमेंसे कुछ तो ऐसे हैं जो औरोंको राह बताते हैं परन्तु छोटे बड़े सब ही लगे हैं केवल एक ही काममें। हम कह सकते हैं कि आज-कल भौतिक, रसायन तथा गणित शास्त्र तीनों ही एक व्यापक शास्त्रके अङ्ग होगये हैं और उस शास्त्र का लक्ष्य है परमाणुकी रचना। प्राचीन भारतके ऋषिमुनियोंका जिस प्रकार परलोक ही एक मात्र लक्ष्य था, परमाणु भी उसी भांति पाश्चात्य वैज्ञानिक जगतका एक मात्र लक्ष्य हो रहा है। दिन रात बेचारा परमाणु संसारकी सहस्रों प्रयोग-शालाओंमें कूटा पीटा तथा गरम किया जारहा है। लीडनमें प्रो० कैमरलिङ ओन्सकी प्रयोगशाला में तो उसे केल्विन शून्य के लगभग तक ठण्डा होना पड़ रहा है। क्रिश्चियानामें प्रो० वैगेर्ड मेरु-ज्योतिकी छटा प्रयोगशालामें उत्पन्न करनेका प्रयत्न कर रहे हैं। उनका विचार है कि वह ज्योति केवल ऊँचाई परकी जमी हुई हवा द्वारा उत्पन्न किया हुआ वर्णछत्र मात्र है।

परन्तु जिस बेचारे अणु पर इतनी शक्ति लगाई जारही है उसका परिमाण इतना बड़ा है कि एक सुईके नकुएके बराबर स्थानमें परमाणु अरबोंकी संख्यामें समा जायेंगे। जैसा कि अमेरिका के प्रो० मिलिकन ने कहा कि यदि हम परमाणुओं तथा अणुओंको ४ नील (४×१०^{१३}) गुना बढ़ा दें तो हमें चिड़िया मारनेके छर्रे पृथ्वीके बराबर दीखेंगे परन्तु एक परमाणु एक गजसे कम ही रहेगा।

इस छोटेसे परमाणु का भी दस करोड़वें से कम भाग ठोस है शेष शून्य आकाश है। इस पर-माणुका केन्द्र धन विद्युत् पूर्ण है और यद्यपि यह परिमाणमें बहुतही छोटा है परन्तु इसका लगभग सारा पदार्थ इसही में रहता है। परमाणु-केन्द्रके चारों ओर ऋण विद्युत् पूर्ण कणिकाएँ घूमती हैं जो कि ऋणाणु कहलाती हैं। इनका आकार परमाणु-केन्द्रोंके सदृश ही होता है परन्तु पदार्थ परमाणु केन्द्रकी अपेक्षा बहुतही अल्प होता है। भिन्न भिन्न पदार्थों में केन्द्रके चारों ओर घूमने वाले परमाणुओंकी संख्या भिन्न भिन्न होती है।

उदजनके अणु केन्द्रके चारों ओर केवल एक ऋणाणु घूमता है। हिमजन नामक वायव्य पदार्थ के केन्द्रके चारों ओर दो ऋणाणु घूमते हैं। इन भिन्न २ ऋणाणुओंके घूमनेके घेरे भी सब एकसे ही नहीं होते।

यद्यपि परमाणु तथा अणु इतने छोटे हैं परन्तु तब भी वैज्ञानिकगण न केवल अणु तथा परमाणु वरन् उनके छोटे से छोटे भागों अर्थात् परमाणु-केन्द्रों और ऋणाणुओं पर भी प्रयोग करनेमें समर्थ हैं। नीचे दिया हुआ प्रयोग इस अद्भुत बात को स्पष्ट कर देगा।

कल्पना कीजिए कि आप एक प्रयोगशाला में हैं। और एक यन्त्रके ऊपर की छोटी सी काँच की खिड़की में झाँक रहे हैं। प्रोफेसर साहेब आप से कहेंगे कि ध्यान से देखिए, अब परमाणु केन्द्र को एल्फाकिरण द्वारा तड़ित किया जायगा। जब मैं इस डण्डे को खींचूंगा तो इस बक्स के अन्दर की हवा फैलने के कारण ठण्डी होजायगी। और तुम एल्फा किरणों के मार्ग देख सकोगे। तुम देखोगे

कि यद्यपि बहुत सी किरणों के मार्ग सीधे हैं परन्तु कुछ के मार्ग पहले सीधे जाकर एक दम मुड़गये। यह टेढ़े मार्ग उन एल्फाकणोंके हैं जो परमाणु-केन्द्रों से टकरा गये हैं। यह प्रयोग सी० टी० आर० विलसन के प्रयोग के नाम से प्रख्यात है। इसको हम इस प्रकार समझा सकते हैं। एल्फा किरणों के उस बक्स में होकर जाने के कारण उसकी वायु विद्युत शक्ति सम्पन्न होजायगी। वायु में एल्फा किरण का मार्ग दृष्टि गोचर नहीं होता परन्तु कमरे की वायु के ठण्डे होजाने के कारण उसमें मिली हुई जलीय वाष्प विद्युच्छक्ति सम्पन्न कणों पर जम जाती है। जिसके कारण एल्फा कणों का मार्ग दृष्टिगोचर होने लगता है। एल्फा-कण हिमजन नामक वायव्य पदार्थ के परमाणु केन्द्र हैं जिनमें दो धनाणुओं की मात्रा रहती है। जब एल्फा कण वायु में जाते हैं तो एक एक करके दो ऋणाणुओं को अपनेमें मिला लेते हैं। इस भाँति वह साधारण विद्युत् शक्तिहीन हिमजन का परमाणु बन जाते हैं, और फिर उनका मार्ग दिखलाई देना बन्द हो जाता है। इसी कारण हमें चमकीली रेखाएं थोड़ी ही देर दिखाई देती हैं। टेढ़ी रेखाएँ बतलाती हैं कि एल्फाकण परमाणु केन्द्रसे टकरा गया है। और इस कारण उसने अपना पहला मार्ग छोड़ कर एक दूसरा मार्ग ग्रहण किया है। इस प्रयोगके छाया चित्र लिए गये हैं और उनके द्वारा रदरफोर्ड महोदय अपने परमाणुओंकी विद्युत्मात्रा (charge) निकालने, तथा ऋणाणु आदिके आकार आदि निकालनेमें समर्थ हुए हैं।

परमाणु रचनाके विषयमें प्रयोग करनेके लिए एक अति उपयुक्त वस्तु किरणचित्र विश्लेषक (spectros cope) है। एक यन्त्र है जिसमें जाकर प्रकाश भिन्न २ रंगोंमें विभक्त होजाता है। इसमें एक पतलीसी दरार—युक्त—ढक्कन वाली एक नली होती है। जिसमें एक ताल भी लगा होता है जो कि दरारसे आने वाली किरणोंको समानान्तरित कर देता है। यह किरणें एक कांचके तिपहलिया (त्रिपार्श्व) पर पड़ती हैं, और भिन्न २ रंगोंमें विभक्त होजाती हैं। इसके अनन्तर किरणें एक छोटे से दूरवीक्षणयंत्रमें होकर जाती हैं जिसके सिरे पर आंख लगा कर हम सब रंगोंको देख सक्ते हैं। इस सब रंगोंके समूहको किरण-चित्र कहते हैं। यह किरण-चित्र एक परदे पर भी डाला जा सकता है। यदि हम किसी प्रकाशके किरण चित्रको ध्यानसे देखें तो उसमें सीधी २ खड़ी रेखाएं पाएँगे। कुछ वस्तुओंके किरणचित्र आदिसे अन्त तक अनवरत रूपसे प्रकाशित होते हैं। और उनमें बीच २ में काली रेखाएँ होती हैं, और कुछ पदार्थोंके किरण चित्रोंमें केवल कुछ चमकीली रेखाएँ होती हैं। पहले प्रकारके किरण चित्र वाष्पसे घिरे हुए पदार्थोंसे आने वाली किरणोंके होते हैं और दूसरे प्रकारके चित्र तपे हुए ठोस पदार्थोंके होते हैं। सैन्धकम् नामक धातुके किरण चित्रमें केवल दो पीली रेखाएं होती हैं। लोहे इत्यादि और दूसरी धातुओंके किरण चित्र बड़े जटिल होते हैं। और उनमें बहुत सी रेखाएं होती हैं। प्रोफ़ेसर लारेञ्ज नामक प्रसिद्ध उच्चभौतिक शास्त्री ने बहुत दिन हुए यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया था कि किरण चित्रकी प्रत्येक रेखा विद्युत् परमाणुओं के सामर्थ्य विकरण से सम्बद्ध रखती है। इस सिद्धान्त ने किरणचित्र और परमाणु-रचना में सम्बन्ध निश्चित कर दिया।

इस सिद्धान्तके सम्बन्ध में एम्स्टर्डमके प्रोफ़ेसर ज़ीमैन ने बहुत खोज की है। सन् १८९६ में उन्होंने यह मालूम किया कि जिस प्रकाश पर प्रयोग किया जानेवाला है उसकी किरणा के चारों ओर यदि एक चुम्बकीय क्षेत्र लगा दें तो रेखायें बढ़ जाती हैं और साधारण दशाओं में प्रत्येक रेखा की दो २ या तीन ३ रेखायें हो जाती हैं। और चुम्बकीय क्षेत्र हटा दिया जाय तो रेखाएँ फिर अपनी पूर्व दशा में आजाती हैं। लारेञ्ज साहब

ने कहा कि यह उनके सिद्धान्त की पुष्टि का एक प्रमाण है और रेखाओं के टूटने का कारण कम्पन शील विद्युत् परमाणुओं पर चुम्बक का प्रभाव है। इस सिद्धान्तकी उन्नति का यह एक बहुत बड़ा लक्षण था परन्तु इससे मापसम्बन्धी प्रयोगों के फलपर कुछ अधिक प्रकाश नहीं पड़ा। इससे इस बात का कुछ पता नहीं चला कि भिन्न-भिन्न पदार्थों के किरणचित्र एक दूसरे से क्यों भिन्न होते हैं और उद्जन की तरह उनमें आन्तरिक सम्बन्ध क्यों होता है।

इसके बताने से पहिले कि इस प्रश्नके हल करनेके प्रयत्न में कितनी सफलता हुई रौञ्जन किरण विश्लेषण के विषय में जो कि प्रकाश विश्लेषणकी दूसरी शाखा है, कुछ कह देना अनुचित न होगा।

यद्यपि अमेरिका के भौतिक शास्त्री बीस हजार रेखायें बराबर बराबर दूरी पर खींचने में समर्थ हुये हैं जो कि वास्तव में एक चमत्कारिक कार्य है परन्तु रौञ्जन किरण की लम्बाई नापने में तब भी सफलता न हुई। परन्तु सन् १९१२ में जर्मन वैज्ञानिक लावे ने सोचा कि रौञ्जन किरणके विश्लेषण में रवे क्यों न काम में लाये जायँ। उसने कहा कि रवों में परमाणु प्रत्येक दिशा में सींकचों की तरह क़तार में लगे होते हैं। और इस अनुमान से उसने हिसाब लगाया कि रवे में होकर जाने से रौञ्जन किरण का विश्लेषण इसी भांति होगा जैसे कि एक इञ्चमें२००००००० रेखायें खींचीं जाने पर होता। उसका यह अनुमान सत्य निकला और रौञ्जन किरण की लम्बाई इसी रीति से नापी जाने लगी परन्तु रवे को इस काम के लिये नियमित रूप में पाना भी सरल नहीं है। इस कठिनाई के कारण प्रोफ़ेसर डेबाई नामक डच भौतिक शास्त्री ने जो कि अब ज्यूरिच में हैं रौञ्जन किरण के विश्लेषणके लिये चूर २ किये हुयेरवे काम में लाने आरम्भ किये।

परन्तु रौञ्जन किरण सम्बन्धी सबसे लाभदायक फल सीधे रूपमें प्राप्त न हीं था। यदि परमाणुओंके बीचकी खाली जगह को काममें लाकर रौञ्जन किरण परमाणुके विषयमें जानकारी हासिल की जा सकती है तो इसका उलटा भी किया जा सकता है अर्थात् रौञ्जन किरणमें परमाणुके बीचमें कितनीखाली जगह है यह जाना जा सकता है। लण्डनके सर विलियम ब्रैग उनके पुत्र डब्ल्यू० एल० ब्रैग तथा और और वैज्ञानिकों ने इस विषय पर बहुत खोज की है। ब्रैग पिता-पुत्रों को तो इस विषय की खोजके लिये नोबेल पुरस्कार भी मिला है। मोसली नामक एक इङ्गलैण्डके भौतिक शास्त्री ने यह देखा कि भिन्न भिन्न पदार्थोंके रौञ्जन किरणचित्र जैसा विचार था उससे कहीं अधिक सरल थे और उनमें पारस्परिक सादृश्य भी अधिक था। उसने यह सिद्ध किया कि यदि हम सब पदार्थों को परमाणु भार के हिसाब से एक श्रेणीमें रख लें तो हम उनके किरण चित्रमें भी एकसे दूसरेमें उत्तरोत्तर वृद्धि पावेंगे। प्रकाश के किरण चित्रका पदार्थोंके बाह्य भागसे अर्थात् परमाणुके सामर्थ्य-विकरणसे सम्बन्ध है, परन्तु रौञ्जन किरणके किरण-चित्र का परमाणुओंके अन्तस्थलसे अर्थात् परमाणु केन्द्रसे सम्बन्ध है। मोसलीने यह दिखलाया कि किरण चित्रका यह उत्तरोत्तर परिवर्तन धनाणु की विद्युच्छक्ति में उत्तरोत्तर वृद्धि के कारण होता है। परन्तु परमाणु केन्द्रोंमें धन विद्युत्शक्ति होती है और ऋणाणुओं में ऋण विद्युत्शक्ति। इससे यह स्पष्ट है कि परमाणु केन्द्र की विद्युच्छक्ति की वृद्धिके साथ ऋणाणुओं की संख्या भी बढ़ जायगी क्योंकि प्रत्येक ऋणाणु में एक ऋण मात्रा होती है। इसीलिये मोसली साहब ने बताया कि परमाणु संख्या यह बतलाती है कि तत्वों की श्रेणी में अमुक तत्व की कौन सी संख्या है। इससे हमें उस रूप के परमाणु में ऋणाणुओं की संख्या ज्ञात हो जायगी। इस भांति उद्जन जो कि सबसे हलका पदार्थ है इस श्रेणी में सबसे पहिले आता है अर्थात् इसकी परमाणु संख्या एक है और उसके

परमाणुमें एक ऋणाणु होता है, हिमजन की परमाणु संख्या दो है और उसके परमाणु केन्द्र के चारों ओर दो ऋणाणु घूमते हैं। कर्बनकी परमाणु संख्या ६ है और उनके केन्द्र के चारों ओर ६ ऋणाणु घूमते हैं। मोसलीके इस अपूर्व आविष्कार का भांति २ के प्रयोगों द्वारा समर्थन हो चुका है और यह अब पूर्ण तया सिद्ध मान लिया गया है।

पिछले दस पन्द्रह वर्षसे वैज्ञानिक लोग इस प्रश्न का उत्तर सोचनेमें लगे हुये हैं कि परमाणुओं के चारों ओर ऋणाणु किस प्रकार गुथे हुए हैं। इसके विषयमें लोगों ने अनेक सिद्धान्त प्रतिपादित किये है। उनमें से प्रधान दो हैं, एक तो यह है कि ऋणाणु केन्द्रके चारों ओर इस प्रकार घूमते हैं जैसे सौर जगतमें ग्रह। दूसरेके अनुसार ऋणाणु स्थिर हैं।

यद्यपि पिछले सिद्धान्तसे पदार्थोंके रासायनिक गुणोंके समझनेमें सरलता होती है परन्तु भौतिक विद्यार्थी अधिकतर इसे नहीं मानते। यह बहुत ही अप्राकृतिक है और इसके समर्थनोंको कोष्ठोंकी कल्पना करनी पड़ी है जिनमें कि ये ऋणाणु बन्द रहते हैं। यदि हम इसके प्रतियोगी सिद्धान्तको मानें तो हमको एक मौलिक कठिनाई का सामना करना पड़ता है। विद्युत् तथा चुम्बकके सिद्धान्तोंके अनुसार ऋणाणुओंके घूमनेके द्वारा प्रकाशके निकलनेसे ऋणाणुओंके घूमनेका घेरा कम होता जायगा और अन्तमें ऋणाणु केन्द्रोंमें जा मिलेंगे। परन्तु प्रत्येक पदार्थके लिये साफ़ २ विशिष्ट रेखाएँ होनेसे विदित होता है कि ऐसी घटना नहीं होती क्योंकि यदि ऐसा होता तो रेखादार किरण चित्र न मिलता और केवल पट्टीदार (continuous) किरण चित्र प्राप्त होता। इस भांति या तो इस विचारका कि ऋणाणुसे प्रकाश विकरण होता है या उस विद्युत्-गति विज्ञानके सिद्धान्तका परित्याग करना पड़ेगा।

इस समस्याको सुलझा कर स्केन्डिनेवियाके प्रो० नीलसबोर सबसे प्रथम स० १९१३ ई०में वैज्ञानिक जनताके सामने आये। उनके अनुयायी कहते हैं कि उन्होंने परमाणु विज्ञान सम्बन्धी चार भिन्न भिन्न शाखाओंको एक सूत्रमें बाँध दिया है यथा (१) प्रो० रदरफोर्डका परमाणु सम्बन्धी केन्द्रिक सिद्धान्त (२) किरण चित्रोंका नियन्त्रित होना (३) प्रो० लौरेंजके आणविक सामर्थ्य विकिरणका सिद्धान्त, तथा (४) प्रो० प्लाङ्कका मात्रिक सिद्धान्त (quantum theory)। इनमें पहली तीनका तो परिचय दिया जा चुका है, अब संक्षेप मेंचौथीके विषयमें लिखा जायगा।

इसी शताब्दिके प्रारम्भमें जब प्रो० प्लाङ्क विकिरण सम्बन्धी कुछ समस्याओं पर विचार कर रहे थे तो उन्हें कुछ क्रियाओंके कारण समझने में कठिनाइयाँ पड़ीं। परन्तु उन्होंने देखा कि यदि हम यह मानें कि विकिरण नल के पानी के बहने की तरह लगातार रूपमें न होकर खण्डोंमें होता है तो बहुत सी समस्याएं हल हो जाती हैं। और उन्होंने देखा कि इन खण्डों का परिमाण कम्पन शक्ति पर निर्भर है। एक दो अथवा सौ दो सौ मात्राओंमें सामर्थ्य विकिरण या शोषण हो सकता है परन्तु इसके खण्डोंमें नहीं। कम्पनकाल की भिन्नताके अनुसार मात्राका परिमाण भिन्न होता है। इस प्रकार बैंजनी रंगके प्रकाशकी मात्रा लाल रंगके प्रकाशके मात्रासे भिन्न होती है।

यद्यपि प्लाङ्कके सिद्धान्तका आन्तरिक अर्थ भली भाँति समझमें नहीं आया है परन्तु प्रयोग फल उसका खूब समर्थन करते हैं। कोई नहीं जानता कि यह सिद्धान्त क्यों सफल हो रहा है पर सफल यह हो ही रहा है। यहाँ हम कह सकते हैं कि मात्रिक-सिद्धान्त हमको फिर न्यूटन के कोर्पसकुलर सिद्धान्त पर ले जाता है, यद्यपि उसका रूप बहुत कुछ परिवर्तित हो गया है। इस सिद्धान्त को मानकर आइन्स्टाइनने कई वर्ष पहिले कुछ समस्याओं को हल किया। और हालमें नीलसबोर भी इसी सिद्धान्तसे परमाणु सिद्धान्त की कुछ कठिनाइयों

को दूर करनेमें समर्थ हुये हैं। बोरने कहा कि प्रत्येक प्रकारके परमाणुमें ऋणाणुओंके लिये स्थायी कक्षा होती है जिसमें घूमने से सामर्थ्य विकिरण बिलकुल नहीं होता और न कक्षा ही सिकुड़ती है। परन्तु धक्के के कारण अथवा बाहर से आनेवाली विकृत सामर्थ्य (radiated energy) के कारण ऋणाणु एक कक्षासे दूसरी कक्षामें कूद जाता है। और तब वह एक या इससे अधिक मात्राओं में सामर्थ्य विकिरण करते हैं। प्रत्येक परमाणुमें सम्भावित कक्षाओंके वर्ग (sets) होते हैं। इनके द्वारा ही किरण चित्रकी रेखायें उत्पन्न होती हैं इस सिद्धान्त को ले कर बोरने एक ऋणाणु वाले उद्जनके परमाणु तथा कई हल्के परमाणुओंके किरणचित्र की लकीरों को अपने सिद्धान्तके अनुसार प्राप्त किया है।

यह तो प्रत्यक्ष ही है कि ऋणाणुओं की सम्भावित कक्षाएं कई होंगी और इनकी तथा विकृत शक्ति की भूलन संख्या मालूम करना गणितके जटिल प्रश्न हैं। जब ऋणाणुओंकी संख्या रश्मिमूके परमाणुकी भाँति अस्सी या अधिक होती हैं उस समय शायद समस्या हल न होसके परन्तु वैसे कोई भी बात वर्त्तमान कालके गणितज्ञोंकी सामर्थ्य से बाहर नहीं है। ये वैज्ञानिक पैदा होते हैं बनाये नहीं जाते। आइन्सटाइन जोकि अपने को अत्यन्त अल्पज्ञ बतलाते हैं गणितके उच्च विषयोंको ११ वर्ष की आयुसे अध्ययन कर रहे थे। नार्वे का भाग्यहीन गणितज्ञ आबे (Abel) तथा उसके फरासीसी प्रतियोगी गार्बिनने अपना सर्वोत्तम कार्य विंशोत्तर होने से पहिले ही कर लिया था। इनमें पहिले का २६ तथा दूसरेकी २१ वर्षमें मृत्यु हो गई।

—वीरेशचन्द्र पन्त

पृथ्वी का इतिहास

[ले०— श्रीसत्यप्रकाश, एम. एस-सी.]

यह कहा जा चुका है कि आधुनिक सिद्धान्तके अनुसार सौर जगत्की उत्पत्ति उलकाओं और नीहारिकाओंसे हुई है। परन्तु वर्तमान रूप प्राप्त करनेमें भी इस पृथ्वीने लाखों वर्ष लिये होंगे। पृथ्वीके निर्माणका इतिहास भी कई कालोंमें विभक्त किया गया है। भारतवर्षके नैतिक इतिहासके तीन बड़े बड़े भाग किये जाते हैं। प्राचीन कालीन इतिहास, मध्यकालीन और आधुनिक। इसी प्रकार सुविधाके लिये पृथ्वीके ऐतिहासिक समयको ५ बड़े बड़े कालोंमें विभाजित किया गया है। प्रत्येक कालके फिर कई छोटे छोटे और विभाग किये गये हैं जिन्हें 'खंड' कहते हैं। ये काल और समय इस प्रकार हैं:—

(देखो सारिणी १)

इस प्रकार समस्त ऐतिहासिक समय ५ ऐतिहासिक कालों या १६ खंडोंमें विभाजित किया गया है। पहले कालको आदि काल इसलिये कहते हैं कि इसमें जीवनका प्रथमतः आरम्भ हुआ था। दूसरा काल परिवर्त्तन काल कहलाता है। इसमें विचित्र प्रकारके जीवोंकी उत्पत्ति होने लगी। जीवनमें इसकालसे परिवर्त्तन आरम्भ होने लगा। इसके बाद प्राचीन काल आया जिसमें प्राचीन समयों के जीवोंकी सृष्टि हुई। माध्यमिक कालमें इस प्रकारके पशु और वृक्ष पाये जाते हैं जिनकी अवस्था माध्यमिक और आधुनिक कालके जीवोंके बीच की हैं। अन्तिम काल आधुनिक काल है जो अभी चल रहा है। यह ऐतिहासिक विभाग पशु पक्षिओं और वनस्पतिजगतकी अवस्थाओं के अनुसार किया गया है।

(सारिणी १)

यौगर्भिक काल (Eras)	खंड (Period)
आदि काल—Eozoic	१. लेविसियन
परिवर्तन काल—Archaeozoic	२. टौरिडोनियत
प्राचीन काल—Palaeozoic	३. कैम्ब्रियन
	४. ओडोवीसियन
	५. सिलूरियन
	६. डेवोनियन
	७. कार्बोनिफेरस
	८. परमियन
माध्यमिक—Mesozoic	९. ट्रायजिक
	१०. जूरेजिक
	११. क्रीटेशस
आधुनिक काल—Kainozoic	१२. इओसीन
	१३. ओलिजोसीन
	१४. मायोसीन
	१५. लायोसीन
	१६. लाइस्टोसीन

पर इस प्रकार का विभाग क्यों किया गया। वस्तुतः बात यह है कि जलवायु, तापक्रम आदि परिस्थितिओं पर प्राणी और वनस्पति जगत्‌की अवस्था निर्भर है। गरम प्रदेशमें रहने वाले पशु और इन स्थलोंमें उगने वाले वृक्ष शीत प्रधान प्रदेशके पशु और वृक्षोंसे अनेक उपयोगी गुणोंमें भिन्न होते हैं। प्रत्येक पशु और वृक्ष के जीवनके लिये एक विशेष जल वायुकी आवश्यकता है। अब यदि कहीं

पुराने अस्थिपिंजर प्राप्त हों या वृक्षोंके अवशेष मिलें तो उनकी परीक्षा करने से पता चल सकता है कि उक्त जीव और वृक्षोंके जीवन कालमें उस स्थान पर कैसी जल वायु थी, अथवा उस समय उक्त स्थानमें पृथ्वी की क्या अवस्था थी। इस सिद्धान्त के अनुसार प्राचीन अवशेषों और अस्थिपिंजरों को संकलित किया गया और उस समयका इतिहास इन्हीं साधनों द्वारा निश्चित किया गया है। पृथ्वी का इतिहास जानने वाले विद्यार्थी के लिये इन अवशेषों और शिलाओंके अतिरिक्त और कोई साधन है भी तो नहीं जिससे कुछ सहायता ली जा सके।

उपर्युक्त सिद्धान्त को एक उदाहरणसे स्पष्ट किया जा सकता है। यह सब जानते हैं कि मूँगाओं की भित्तियाँ केवल उष्ण जलवायु में ही उपलब्ध होती हैं। इस समय भी उन्हीं प्रायद्वीपों या महाद्वीपोंके समुद्रीतट पर मूँगा पाये जाते हैं जहाँकी जल वायु उष्ण है। यदि किसी शीत प्रधान देशमें मूँगाओंके अवशेष पाये जायें, तो इससे यह अनुमान लगाना सर्वथा युक्ति संगत है कि ऐसा कोई समय अवश्य था जब कि इस शीत प्रधान देशकी जलवायु उष्ण थी, और तभी वहाँ इन मूँगाओंकी उत्पत्ति होना संभव हुआ। बृटिश-द्वीप के कुछ चूनेके पत्थरोंमें मूँगा पाये जाते हैं, इससे यह अनुमान लगाया जाता है कि एक समय अवश्य ऐसा था जब कि इन द्वीपोंकी जलवायु वर्त्तमान जलवायु की अपेक्षा अधिक गरम थी।

सृष्टिके इतिहास को परिवर्तित करनेमें गरम और ठंडी हवाओं की शक्तियाँ भी बहुत भाग लेती हैं। यदि किसी शिला प्रस्तर पर वायु अधिक शक्तिसे टकराती है तो इनमें और प्रकार का परिवर्तन हो जाता है और यदि कम बलसे टकरावे तो परिवर्त्तन और ही प्रकार का होगा। हवाओं का बल या शक्ति दो स्थलोंके ताप क्रम-भेद पर निर्भर है। हवायें किस प्रकार चलती हैं? मान लीजिये कि दो स्थान भिन्न भिन्न तापक्रमों पर हैं। एक अधिक गरम है और दूसरा अधिक ठंडा है। गरम प्रदेशकी हवा गरम होकर हलकी हो जाती है और ऊपर उठती है और उसका रिक्तस्थल पूरा करनेके लिये ठंडे स्थानसे ठंडी वायु गरम प्रदेश की ओर दौड़ने लगती है। इसी प्रकार हवाके झोंके तापक्रम-भेदसे पैदा हो जाते हैं। दो स्थानों के ताप क्रमोंमें जितना ही अधिक भेद होगा, हवा का झोंका भी उतने ही अधिक बलसे बहेगा। यदि यह तापक्रम-भेद कम है तो हवा भी धीरे धीरे ही बहेगी। भूप्रदेश पर इस हलके बलवाली वायुका प्रभाव और प्रकार का पड़ेगा और अधिक बल वाली वायु का प्रभाव और प्रकार का होगा। भू-वेत्ताओंने स्थलों की परीक्षा करके यह परिणाम निश्चित किये हैं कि वायु का कितना वेग स्थलोंमें कितना परिवर्त्तन कर सकता है। किसी अज्ञात स्थानमें भूमि की परीक्षा करनेसे पता चलता है कि किसी समय वहां पर वायु अधिक वेगसे चल रही थी या धीरे धीरे, अतः यह पता चल सकता है कि उस स्थलके तापक्रम में और समीपवर्ती अन्य स्थानोंमें तापक्रम का भेद कम था या अधिक। इस प्रकार उन स्थलों की भौतिक स्थिति का कुछ अनुमान लगाया जा सकता है।

वर्षा की बूँदोंके प्रभावसे भी भू-स्थल पर अनेक परिवर्तन हो जाते हैं। अतः भिन्न भिन्न स्थलों की परीक्षा करनेसे यह पता चल सकता है कि उन स्थलोंमें वर्षा की क्या अवस्था थी। कल्पना कीजिये कि किसी ऐसे स्थलमें जहां आजकल बहुत कम वर्षा होती है, कुछ ऐसे चिह्न मिलें जो केवल अधिक वर्षा होने वाले स्थलों में ही संभव थे तो यह अनुमान लगाया जा सकता है कि कोई ऐसा समय अवश्य होगा जब इस स्थलमें बहुत वर्षा होती थी।

इन सब साधनों का उपयोग करके यह परिणाम निकाला गया है कि अनेक स्थलों में जहाँ पहले मरुभूमि की आज कल झीलें हैं और जहां

आज कल झीले हैं वह पहले मरुस्थल थे। परीक्षा करने पर यह पाया गया है कि चीनमें और दक्षिणी अस्ट्रेलिया में एडोलेड के पीछे की पहाड़ियों में एक ही प्रकार की शिलाये हैं। ये सब शिलायें प्राचीनकालके कैम्ब्रियन खंड में हिमानी-नदों (ग्लेशियरों) के प्रभाव से बनी हुई बताई जाती हैं। ग्लेशियर बर्फीली नदी के समान होते हैं। इससे स्पष्ट है कि कैम्ब्रियन काल में चीन और दक्षिणी अस्ट्रेलियामें आजकलकी अपेक्षा कहीं अधिक ठंडक पड़ती थी।

इन सब बातों से यह पता चलता है कि भौगर्भिक इतिहास के आरम्भमें बहुतसे स्थानों पर आजकल की अपेक्षा अधिक ठंडक पड़ती थी। प्राचीन कालीन कार्बोनिफेरस खंड की शिलायों की परीक्षा करनेसे यह पता चलता है कि भारतवर्ष तथा दक्षिणी गोलार्ध के अन्य भागों में उन स्थानों पर बहुत बर्फ पड़ती थी और ग्लेशियर भी विद्यमान थे जहां कि आजकल इनका नामोनिशान भी नहीं है। दक्षिणी अफ्रीका में भी इसी प्राचीन समय के बहुत से ऐसे पत्थर विद्यमान हैं जिनके देखने से यह पता चलता है कि इनमें बर्फके टुकड़ों की रगड़ें अवश्य लगी हैं। इससे पता चलता है कि यहां भी उक्त समय में ग्लेशियर विद्यमान थे। क्या यह विचित्र बात नहीं है कि जिस समय भारतवर्ष, अफ्रीका आदिमें कड़ाके की बर्फ पड़ती थी, यूरोप आदि उत्तरी गोलार्ध के स्थलों में आज कल की अपेक्षा अधिक गरम जलवायु थी।

पृथ्वी की पुरातन जलवायु इस बात को अधिक सिद्ध करती है कि इसका जन्म ठंडे उल्काओं के संघात और एकीकरणसे हुआ है न कि ज्योतिर्मय वायव्य के घनीकरण से। इसमें सन्देह नहीं कि एक समय ऐसा था जब कि भूमि के ऊपर की पपड़ी आज कल की अपेक्षा अधिक गरम थी परन्तु यदि पृथ्वी का जन्म ठंडे पदार्थों के ऐसे समूहों से हुआ है जो पारस्परिक संघर्षण के कारण गरम हो गये थे, तो यह गरम अवस्था शीघ्र ही नष्ट हो जानी चाहिये। यदि पृथ्वी की उत्पत्ति ज्योतिर्मय नीहारिकाओं से मानी जाय तो इसके केन्द्र में इतना ताप होना कभी संभव नहीं है जितना कि इसमें पाया जाता है। ऐसी अवस्था में पृथ्वी की पपड़ी नीचे से इतनी नियमित रूप से फिर गरम न हो पाती और समस्त भूमि ठंडी पड़ जाती। इससे मालूम होता है कि ज्योतिर्मय भापके घनी करणसे भूमिकी उत्पत्ति मानना ठीक नहीं है।

पृथ्वी की पपड़ी का निर्माण

सम्भवतः यह पृथ्वी ठण्डे उल्काओंके एकीकरण से बनी, पर एक समय ऐसा अवश्य आचुका है जब कि इसका पृष्ठतल आज कल की अपेक्षा अधिक गरम था। यह गरम उल्काओं के संघर्षण से पैदा हुई थी। संघर्षण के अतिरिक्त गरमी पैदा होने का एक दूसरा भी कारण था। जब सब उल्का आपस में मिल गये तो इस प्रकार बने हुए पिण्ड में संकोचन आरम्भ हुआ। यह संकोचन भी गरमी का कारण है। सूर्य्य की भी अधिकांश गरमी इसी संकोचन से उत्पन्न हुई है, न कि सूर्य्य-स्थित-पदार्थों के जलने के कारण। सूर्य्य वाष्पों का समूह है, यदि इसमें स्थित-पदार्थों के जलने के कारण ही गरमी होती, तो जिस हिसाबसे सूर्य्य अपनी गरमी अन्य लोकोंको दे रहा है, उससे इसमें अधिक समय तक गरमी न रह सकती। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि यदि सूर्य्य के आकार के बराबर कर्बन का एक गोला तपाया जाय तो इसमें ३ हज़ार वर्ष से अधिक गरमी नहीं रह सकती है, पर सूर्य्य लाखों वर्षों से बराबर हमको गरमी देता रहा है। इसका कारण यही है कि इस गरमी का मुख्य कारण सूर्य्यस्थ वाष्पों का संकोचन है। जर्मन-विज्ञान-वेत्ता हेलम-होलज़ ने इस संकोचन का हिसाब लगाकर यह दिखा दिया है कि इसके आधार पर सूर्य्य में बहुत दिनों तक गरमी रह सकती है। उसकी गणना के हिसाब से यदि सूर्य्य

के व्यास में प्रति दिन १६ इंच या प्रति ११ वर्ष में १ मील संकोचन होता रहे तो यह बराबर गरम बना रहेगा।

इसी प्रकार का संकोचन पृथ्वी के उल्का पिंड में भी हुआ। ये उल्का मुख्यतः लोहे के बने हुए थे जो कि ताप का अच्छा चालक है। अतः संकोचन से जो ताप उत्पन्न हुआ वह सम्पूर्ण पिण्ड में फैल गया। इस पिण्ड के पृष्ठतल से धीरे धीरे कुछ ताप विसर्जित होने लगा और गरम पृष्ठतल ठंडा पड़ने लगा। संकोचन द्वारा उत्पन्न गरमीसे बहुत से पदार्थ पिघल भी गये। पर पृथ्वी के केन्द्रस्थ पदार्थों के पिघलने के लिये अधिक अवकाश न था क्योंकि जब कोई वस्तु पिघलती है तो ठोसावस्था की अपेक्षा वह अधिक जगह घेरती है। पर ऊपर के पदार्थों के दबाव के कारण पृथ्वी के अन्दर के पदार्थोंको इतनी जगह कहां मिल सकती थी कि वे पिघल कर बढ़ जायं। अतः भू-पिंड का केन्द्रस्थ भाग ठोसही रहा। जो वस्तुएँ अधिक शीघ्र पिघल सकती थीं वे ऊपर के तल में पिघल कर बहने लगीं। पृथ्वी के अन्दर भी जो कुछ पिघले हुए अंश थे वे भी पिंडकी भारी धातुओंके संकोचन से ऊपर आ गये। इस प्रकार पृथ्वी के अन्दर तो धातुएँ रह गयीं और पथरीले पदार्थ ऊपर आगये, यह पथरीला पिघला हुआ भाग ठंडा होने पर पृथ्वी की पथरीली पपड़ी बन गया। यही बात है कि पृथ्वी का धातु कोष अन्दर की तरफ है और शिला-कोष ऊपर है।

रेडियोएक्टिविटी या रश्मिशक्तित्वका हिसाब लगा कर लार्ड रेले ने भी यही अनुमान लगाया है कि पृथ्वीके अन्दर धातुकोष अवश्य विद्यमान है। पृथ्वीके पृष्ठतल पर जितना रश्मिशक्तित्व है उसके हिसाब से ४५ मील की तह में रश्मिशक्ति-युक्त पदार्थ होने चाहिये, पर यदि और अधिक तह में ये होते तो पृथ्वीतल पर की रश्मि-शक्ति-मात्रा और अधिक होती। इससे पता चलता है कि ४५ मील के नीचे रश्मिशक्तित्व पदार्थ नहीं हैं। यह विदित बात है कि लोह-उल्काओं में रश्मिशक्तित्व नहीं होता है अतः बहुत सम्भव है कि पृथ्वी में ४५ मील नीचे लोह उल्का तथा नक़लम् आदि धातुएँ होंगी अतः पृथ्वी के भीतर धातुकोष की विद्यमानता मानना अनुपयुक्त न होगा।

पृथ्वी की पपड़ी पथरीली शिलाओं की बनी है। प्रत्येक शिला एक व अनेक पदार्थों से मिलकर बनी हुई है। इन पदार्थों को खनिज कहते हैं। ये खनिज दो प्रकार के होते हैं—एक रस खनिज और मिश्रित खनिज। जिन खनिजों के चूर्ण पानी से धोकर या हाथ से ही जिनके कण-चुन चुन कर दो पृथक् भागों में अलग नहीं किये जा सकते हैं उन्हें एक रस खनिज कहते हैं। मिश्रित खनिज कई खनिजों के मिश्रण होते हैं। इनमें से बहुतसे मिश्रित खनिज कई एकरस खनिजोंके मिश्रणको गलाकर ठंडा करने से बनाये जा सकते हैं। बहुत से मिश्रित खनिज प्रकृति में ही पाये जाते हैं, उनको कृत्रिम रूप से तैयार नहीं किया जा सकता है।

निम्न खनिज एक रस खनिजोंके मिश्रण को गलाकर कृत्रिम रूप से तैयार किये जा सकते हैं:—

१. ओलिविन ४. भूरा माइका (अभ्रक)
२. पाइरोक्ज़ीन ५. फेल्सपार
३. गारनेट ६. ट्रिडाइमाइट

कार्ट्ज़, श्वेत माइका (अभ्रक), टोपाज, टूरमेलिन आदि कृत्रिम रूप में अभी तक नहीं बनाये जा सके हैं।

इस प्रकार शिलाओं में पाये जाने वाले खनिज दो विभागों में बांटे जा सकते हैं। एक तो वे जो पिघले हुए खनिजोंसे बनाये जा सकते हैं और दूसरे कार्ट्ज़, श्वेत माइका आदि के समान वे जिनके बनने की प्रक्रियायें इतनी जटिल हैं कि अब तक कृत्रिम रूप से उनका बनाना संभव नहीं हुआ है।

पृथ्वी के पृष्ठतल पर सबसे पहले वे चट्टानें बनी होंगी जो साधारणतया गला कर बनाई जा सकती हैं। इनके खनिजोंमें सिलीका (शैलम् धातु का ओषिद) नहीं पाया जाता है अतः ये क्षारीय कहलाती हैं। कुछ शिलाओंमें लोहा और मगनीसम् भी होता है। इन शिलाओंके पश्चात् उन शिलाओं की स्थिति है जो क्षारीय हैं। इन शिलाओंके खनिजों में ग्रेनाइट अधिक प्रसिद्ध है। इस प्रकार भौगर्भिक इतिहासमें भूमि सर्वप्रथम तीन भागोंमें विभाजित हुई (१) केन्द्रस्थ धातु कोष (२) शिलाकोष जिसके नीचेकी तहमें क्षारीय शिलायें, लोह और मगनीसम् वाले खनिज हुए और (३) जिसकी ऊपरी तहमें अम्लीय शिलायें जिनमें कार्ट्ज़, सैन्धक शैलेत आदि खनिज हुए।

इस प्रकार पृथ्वीके पृष्ठतलकी पपड़ी बनगई। अब इन पपड़ियों के भीतर भूमिकी क्या अवस्था है इसका पता लगाने के लिये भूकम्प या भूडोल की भी सहायता ली गई है। जब किसी तालाब या नदीमें एक कंकड़ डाला जाता है, तो जिसस्थान पर कंकड़ गिरता है, उसके चारो ओर गोल गोल लहरें उठने लगती हैं और ये लहरें तालाब के एक किनारेसे दूसरे किनारे तक पहुँच जाती हैं। यदि कीचड़में कंकड़ डाला जाय तो उसमें भी कुछ लहरें उठेंगी पर इनका वेग उतना न होगा जितना कि पानीकी लहरोंका था। इससे मालूम होता है कि इस प्रकारकी लहरें भिन्न भिन्न तरल पदार्थोंमें भिन्न भिन्न वेगसे चलती हैं।

पृथ्वीमें जो भूकम्प आते हैं वे भी तो इसी प्रकार की तरंगे हैं। पृथ्वी की पपड़ीमें जब कभी क्षति पहुँचती है या किसी ज्वालामुखीका प्रकोप होता है तो इस प्रकारकी लहरें चलने लगती हैं। ये लहरें दो प्रकार से चल सकती हैं। यातो पृथ्वीके पृष्ठतल पर ही हो कर अपने विपरीत स्थान पर पहुँच जांय, या पृथ्वीके अन्दर होती हुई दूसरे स्थान पर पहुँचें। पृथ्वी गोल है अतः पृथ्वीके भीतर सीधी घुस कर पृष्ठतलके दूसरे स्थान पर पहुँचनेमें कम समय लगेगा और यदि पृष्ठतल के ऊपर ही ऊपर जाना चाहेंगी तो इन्हें एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचने में अधिक समय लगेगा। इसके अतिरिक्त इन लहरों को मार्ग में जिस प्रकारके पदार्थ मिलेंगे उनकी अवस्था पर भी इन लहरों का वेग निर्भर रहेगा। प्रोफेसर मिल्ने ने हिसाब लगाया है कि पृथ्वी के अन्दर होकर तो ये लहरें ५.५८ मील प्रति सैकेन्ड के हिसाबसे चलती हैं पर पृथ्वी की पपड़ीमें होकर केवल १.८६ मील प्रति सैकेन्डही वेग रहजाता है। इन वेगोंके हिसाबसे मिल्ने ने हिसाब लगाया है कि चालीस मीलभी मोटी पृथ्वीकी पपड़ी है और इसके नीचे धातुका एकरस-कोष है। ओल्डम महोदय ने अपनी परीक्षाओंसे यह परिणाम निकाला है कि धातुकोष के नीचे भी एक और कोष है जिसे केन्द्रस्थकोष कहते हैं। यह किसी अज्ञात पदार्थ का बना हुआ है।

पर इस प्रकार की पृथ्वीसे कोई अधिक लाभ नहीं हो सकता था, क्योंकि इसकी सम्पूर्ण धातुयें पृथ्वीके दुरूह गर्भ में लुप्त थीं जहाँ से धातुओंको प्राप्त करना मनुष्य-शक्ति के बाहर था। बिना धातुओंके मनुष्य जीवनका निर्वाह होना असम्भव ही है। स्फुरतत्व भी अग्नि शिलायोंमें छोटे छोटे कणों के रूप में बिखरे हुए थे, जिनसे लाभ उठाना दुष्कर ही था और बिना स्फुरके भी तो मनुष्य या प्राणियों का शरीर नहीं बन सकता है। कार्ट्ज़ भी जिनका उपयोग भवनों के निर्माण करनेमें होता है, कि अज्ञात शिलाओंके बीचमें छिपा हुआ था। यह मिट्टी जो अनेक रूप से हमारे लिये आवश्यक है, उस समय इस रूपमें न थी। शरीर निर्माणका एक और आवश्यक पदार्थ नोषजन (नाइट्रोजन) केवल वायुमण्डल में ही था, पर इस रूप में यह प्राणियों और वनस्पतियों के लिये किसी काम का भी नहीं है। यद्यपि जीवन की आवश्यक समस्त सामग्री इस पृथ्वीमें विद्यमान थी

पर वह सब ऐसी अवस्था और ऐसे स्थलोंमें थी कि उससे लाभ उठाना असम्भव ही था।

अतः प्राणियों के विकासके पूर्व इस पृथ्वी में फिर परिवर्तन आरम्भ हुए। इनके द्वारा पृथ्वी की सम्पत्ति का वितरण और विभाजन हुआ जिस प्रकार बड़े बड़े नगरों के बाज़ारों में दूर दूर के स्थलों से भिन्न भिन्न वस्तुएँ आकर आवश्यकताओं की पूर्ति करती हैं, इसी प्रकार पृथ्वी में भी अनेक स्थलों पर बाजार खुल गये जहाँ सब जगहों की वस्तुएँ एक स्थान पर मिलना सम्भव होगई।

पृथ्वी की अवस्था में ये परिवर्त्तन तीन प्रकार के साधनों से हुए। पहले प्रकारके साधनने शिलाकोषकी शिलाओं को तोड़ना आरम्भ किया। दूसरे प्रकारके साधनों ने शिलाकोषके इन टुकड़ोंका निर्वाचन किया अर्थात् भिन्न भिन्न पदार्थोंको अलग अलग किया। तीसरे प्रकारके साधनोंसे शिलाकोषके इन निर्वाचित अंशों को फिर भिन्न प्रस्तरोंके रूपमें संचित करना आरंभ किया। इस प्रकार तीन साधनों द्वारा शिलाकोषकी शिलाओंसे नई शिलायें बननी आरम्भ हुईं।

अब दो प्रकारकी शिलायें हो गईं। एक तो वे जो पृथ्वीके बनते समय पिघले हुए भागके ठंडे होने से बनी थीं। इन्हें 'मुख्य-शिलायें' (primary rocks) कहते हैं। दूसरे प्रकारकी शिलायें इन्हीं मुख्य शिलाओंके विभाजन और नये रूप से संचय होकर बनी हैं। इन्हें 'गौण शिलायें' (secondary) कहते हैं। मुख्य शिलाओं पर वायुमण्डलकी गैसों का प्रभाव पड़ता है जिससे इनमें परिवर्तन आरंभ हो जाते हैं। वायु में ओषजन, कर्बन द्विओषिद और जलवाष्प ये तीन ऐसे अंश हैं जिनका उपयोग प्रकृति मुख्य शिलाओंके भंजन करने में करती है। इन शिलाओंके कुछ अंशों से ओषजन संयुक्त हो जाता है। ओषजन से अन्य पदार्थोंके संयोग का नाम ओषदीकरण है। इस प्रक्रिया में ताप भी उत्पन्न होता है और पदार्थों के आयतन में भी वृद्धि होती है। इसका तात्पर्य्य यह है कि ओषदीकरणके पूर्व पदार्थ जितनी जगह घेरता है उससे अधिक जगह उसे ओषदीकरणके पश्चात् घेरनेके लिये चाहिये पर इन शिलाओंके आसपास ख़ाली स्थल न होनेके कारण इन्हें अपने समीपस्थ अन्य शिलाओं से संघर्षण करना पड़ेगा और जिस प्रकार गरम काँच पानी पड़ते ही टुकड़े टुकड़े हो जाता है, ये मुख्य शिलायें भी ओषजन से संयुक्त होकर फैलनेके लिये अवकाश न पानेके कारण चूर चूर हो जाती हैं।

वायु में कर्बनद्विओषिद भी है। जब वर्षा होती है तो यह पदार्थ जलमें घुलकर पृथ्वीके ऊपर आ जाता है। यह जल जमीन में प्रविष्ट हो जाता है। और वहाँकी चट्टानों से इसमें घुला हुआ कर्बन द्विओषिद संयुक्त हो जाता है। कर्बन द्विओषिद और अन्य पदार्थोंके संयोग से जो पदार्थ बनते हैं उन्हें कर्बनेत कहते हैं। शिलाओं का मुख्य तत्त्व शैलम् या सिलीकन है। जब तक शिलाओं में यह तत्त्व रहता है तब तक इन पदार्थों को शैलेत (सिलीकेट) कहते हैं। पर अब कर्बन द्विओषिदके प्रभाव से ये शैलेत कर्बनेत में परिणत हो जाते हैं। इस परिवर्तनके कारण भी शिलाओं का विभाजन और भंजन आरम्भ होता है।

वायु में जो जल विद्यमान है वह भी इन मुख्य शिलाओं को तोड़ने में सहायक होता है। यह वाष्पजल धीरे धीरे शिलाओं में भिदने लगता है और उनके छेदों और दराजों में भर जाता है। रात को ठंडा होकर यह जल बर्फ बन जाता है। बर्फ पानी से अधिक स्थान घेरती है अतः बर्फ बन कर जब जल फैलता है तो फैलनेके लिये अवकाश न पाकर यह चट्टानों को तोड़ डालता है। इस जल का दूसरा प्रभाव यह होता है कि इसमें कर्बन द्विओषिद घुले होनेके कारण बहुत से कर्बनेत इसमें घुल जाते हैं और इस प्रकार शिलाओं में परिवर्तन हो जाता है।

इन सब प्रभावोंके द्वारा मुख्य शिलायें टूट टूट कर टुकड़े हो जाती हैं, और फिर बादको इनसे

नई शिलायें बननी आरंभ होती हैं। इन शिलाओं का विस्तृत वर्णन आगे दिया जावेगा।

चिकित्सा शास्त्रमें रसायनका स्थान

(ले० श्री जटाशंकर मिश्र, एम० एस०-सी)

[भाग २६ सं० २ के आगे]
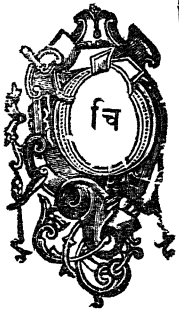
चिकित्सा शास्त्रकी रासायनिक उन्नति के विषयमें कुछ प्रकाश पूर्व लेख में डाला गया है।

उस लेख में चिकित्सा शास्त्र के प्रारम्भिक कालका उल्लेख किया गया था। उस काल के पश्चात् अब हम प्रौढ़ कालीन विभाग में प्रवेश करते हैं। इसका आरम्भ जस्टस वान लीबिग (१८०३-७३) से समझना चाहिये। इन सुप्रसिद्ध रसायनज्ञने अश्व-मूत्रकाम्ल, हरल और हरोपिपील (१८३१) की खोज, मूत्रिकाम्ल सम्बन्धी यौगिकोंका अध्ययन, मूत्रियाकी मात्रा निकालनेकी विधि और चरबियों, रक्त, पित्त और माँस-रस (लीबिग रस) सम्बन्धी कार्य्य द्वारा चिकित्सा शास्त्रकी बड़ी सहायता की। फ्रीडरिक व्हूलर (१८००-८२) भी लीबिग के साथ साथ मूत्रिकाम्ल, श्यामजन यौगिक कड़वे बादामका तैल, शक्कर और विटपिनके कृत्रिम संश्लेषण इत्यादि खोजोंमें लगे रहे और स्वयं भी बहुतेरे ऐसे काम किये जो शरीर विज्ञानके इतिहासमें निराले ही दीख पड़ते हैं। १८८२ में व्हूलरने अमोनियम श्यामेतको तपाकर मूत्रिया तैयार करली जिससे यह साफ प्रमाणित हो गया कि जीवित और जड़ पदार्थों की रासायनिक उत्पत्तिमें कोई विशेष अन्तर नहीं है। उन्होंने यह भी दिखा दिया कि यदि बानजाविकाम्ल खाया जाय तो मूत्रमें यह अश्वमूत्रिकाम्लके रूपमें निकलता है। १८४२ में इस बातको दृढ़ता पूर्वक माननेके साथ ही साथ यह भी स्वीकार करलेना पड़ा कि जानवरोंमें भी अपने हितकी वस्तुओंकी कृत्रिम तैयारी करलेने की शक्ति है। यह विचार अशुद्ध है कि उनको पौधों या अन्य जानवरों पर ही निर्भर रहना पड़ता है। इस तरहके और उदाहरण हैं जैसे अमोनियम कर्बनेतसे मूत्रिकाम्ल और कलेजे के मधुओजन से द्राक्षशर्कराएं। इस दूसरी बात की जानकारीसे वैज्ञानिकोंमें कृत्रिमभोजन तैयार करनेकी कामना उत्पन्न हुई, वास्तवमें लीबिग और व्हूलर शारीरिक प्रक्रिया संबन्धी गुणात्मक प्रयोगों के प्रथम अन्वेषकोंमें से थे।

रसायन शास्त्र ने चिकित्सा शास्त्रको इस काल के पूर्व जो सहायता पहुँचाई थी उसमें निम्नलिखित की गणनाकी जा सकती है:—सरटरनर द्वारा मोरफीनकी खोज (१८०६) वालस्ट द्वारा सिस्टिन-पथरी का अध्ययन; किरशफ द्वारा नशास्ता का शर्करामें परिवर्तन, केव्यन्टू व पेल्यटियर द्वारा ब्रूसिन, कुनिन और वेराट्रिनकी खोज, मार्स्यट द्वारा काले मूत्रका अध्ययन, ह्यस द्वारा एट्रोपीनकी खोज, रोज़की अण्डसितकी पहचानके लिये अर्ध-मूत्रेत परीक्षा, फेलिङ्ग द्वारा मूत्रमें शक्करके पता लगाने का विधान, जोन्स द्वारा घुली हुई हड्डी वाले रोगी के मूत्रमें अण्ड सितोज की खोज, और मिलन द्वारा प्रत्यमिनों की पहचान के लिये एक विशेष रस की खोज (१८४८) इत्यादि। ड्यूमा ने फ्राँसमें रासायनिक खोज प्रोत्साहित की। उन्हों-ने चिगनेकी वृद्धि संबन्धी रासायनिक परिवर्तनोंका अध्ययन किया और गठिये के इलाजमें नैलिन्की उपयोगिता पर ध्यान आकर्षित किया। इँगलैण्डमें ग्रैहम ने वायुओंके निस्सरण संबन्धी नियम,

निस्सरण द्बाव के अध्ययन, और शारीरिक रसों व अन्य द्रवों को विश्लेषण द्वारा अलग करनेके विधान की खोज़ करके शरीर विज्ञान की बड़ी अमूल्य सेवा की !

पाचन सम्बन्धो शरीर विज्ञान के अध्ययन में रसायन विज्ञान ने बड़ा ही भाग लिया है। यंग ने दिखलाया कि पेट के रस का घोलक-तत्व एक अम्ल है जो लिटमस को लाल कर देता है और हड्डियों को घुला घुलाकर नर्म गूदे में परिवर्तित कर देता है। यह अम्ल आमाशय के भीतर किसी अँगूरी शराब की भाँति अथवा खमीरण से नहीं उत्पन्न होता परन्तु यह पेट के प्राकृतिक त्यागमल का एक अंश है। १८२४ में प्राउट नामक अँग्रेज़ी रसायनिक ने सिद्ध किया कि पेटके रस का अम्ल उदहरिकाम्ल है। ग्मेलिन ने पित्त रोगन (bile-pigments) रुधिर की सार (serum) और मूत्र के लिये नोषिकाम्ल परीक्षा निकाली। उन्होंने दिखाया कि राल में एक गन्धोश्यामेत और राल-रस (पैंक्रियेटिक) में हरिन् जलको लालकर देने वाला तत्व है !

१८०० में सर हम्फ्री डेवी ने स्वयं अपने ऊपर नोषस ओषिद् का प्रयोग करके बतलाया कि यह शस्त्रवैद्यक चीर फाड़में जिसमें अधिक रुधिर का प्रवाह न हो आनन्द पूर्वक सेवन किया जा सकता है। मार्टन के गुरु डाक्टर जैक्सन ने दिखाया कि हरिक ज्वलक में भी बेहोशी पैदा करने की शक्ति है (जुलाई १८४४)। तदुपरान्त मार्टनने पता लगाया कि गन्धिक ज्वलक में भी वही गुण है। ४ नवम्बर १८४७ को सरजेम्स यंग सिम्पसन ने प्रसवकर्म में हरोपिपील (क्लोरोफ़ार्म) का प्रचार करके 'पीड़ा की मृत्यु' का यश कमाया !

सैन्डरसन और बर्न्सटीन ने गुप्त उभाड़ (lat ent stimulation) के काल का समय संबन्ध मापने के निमित्त फ़ोटो ग्राफ़ी का प्रभावशाली उपयोग किया।

कलेजा और पैंक्रियस संबन्धी ज्ञान सदा क्लार्ड वरनर्डके महान नामके साथ स्मरण किया जायगा। उन्होंने दिखाया कि पाचकरस (pancreatic juice) अँतड़ियोंके भीतरसे जाने वाले चरबीदार भोजन साथ घोलकर उसे मज्जिकाम्लों और मधुरिनमें विभाजित कर देता है। उन्होंने इसकी नशास्ता को शक्करमें परिवर्तित करने और आमाशयमें न घुलने वाले प्रत्यमिनों को घोलने की शक्ति भी दर्शाई। बूके इत्यादिने दिखाया कि नशास्ता अमाशयके अन्दर शक्करों की पाचन क्रियामें सीधे दुग्धिकाम्लमें परिणत हो जाता है। सम्भवतः दुग्धिकाम्ल जनक प्रेरकाणु जीव इसके लिये उत्तर दाता हैं। बायो और कान ने सिद्ध किया कि अमाशय का उदाहरिकाम्ल रुधिर प्लाज्मा के हरिदों से आता है। मीयलहे टायेलिन को शोधकर पृथक् किया। प्यटेनकाफ़र (१८१८—१६०१) और बायो ने सर्वप्रथम निकले हुए नोषजन और कर्बनद्वि ओषिद द्वारा शरीरमें खर्च हुए, प्रत्यमिनों चर्बियों और कर्बनेत पदार्थों का अनुमान किया। जेल-डाल ने १८८३ में नोषजन को मात्रा निकालने का विधान बहुत सरल बना दिया।

प्यटर ने बहुमूत्रिय मूत्र में सिरकोन का पता लगाया और स्टेडेलमान ने ख—ओष नवनीति-काम्ल और बहुमूत्रिय बेहोशी के परस्पर सम्बन्ध का अध्ययन किया। ऐसी और भी बहुत सी खोज की सहायता से बहुमूत्र रोगकी चिकित्सा एक रासायनिक प्रहेलिका हो रही है। मूत्रमें सर्व प्रथम शीले (१७७६) द्वारा प्राप्त और गठियेदार अथवा मूत्रीय जमावटों में वालस्टन द्वारा प्राप्त मूत्रि-काम्ल का शारीरिक प्रक्रिया से सम्बन्ध आज भी एक विवादास्पद विषय है। मार्स्पट द्वारा जैन्थीन की खोज, मूत्र में उसकी स्ट्रेकर द्वारा सिद्धि और

कौसल (Kossel) का प्रमाण कि जैन्थीन यौगिक मूत्रसे उत्पादित पदार्थ (derivatives) हैं कुछ कम प्रभावशाली अनुसन्धान नहीं हैं।

जीवरसायनज्ञ हापकिन्सने ही पहिले पहल अपने प्रयोगों द्वारा विटेमिनकी प्रतिष्ठा स्थापितकी। उन्होंने कहा कि "अमिनोअम्ल आरज़िनन, हिस्टिडिन रहित, अथवा अठारहों प्रत्यमिन सम्बन्धी पाँच अमिनो अम्लोंसे बना हुआ भोजन जीवनका पोषण करनेमें असमर्थ है।"

रुधिर की बनावटके ज्ञानके लिये विशेषकर हम महानुभाव हाप्पे साइलर के ऋणी हैं। लीबिग और एमिल फिशरके बीच में वे ही एक श्रेष्ठ जीवरसायनज्ञ हुए हैं। उन्होंने सर्वप्रथम हीमोग्लोबिन प्राप्त किया और हीमिन, हीमेटिन, हीमेटो पोरफीरिन का सूत्र निश्चित किया, हीमो क्रोमोजन और मेटहीमोग्लोबिनकी खोजकी और दिखाया कि हीमोग्लोबिन ओषजन से बहुत ढीले रूपमें मिला हुआ है परन्तु कर्बनद्विओषिद से पृथक् नहीं किया जा सकता है। उन्होंने ही पहिले पहिल वायु-दबावके गिरजानेके पश्चात् रुधिरमें वायुका विद्यमान होना निरीक्षण किया। उन्होंने केन्द्रिन व चिटोसनकी खोजकी, लेसीथिनको शुद्ध दशामें प्राप्त किया, दूध पित्त व मूत्रका प्रभावशाली संशोधन किया और पर्णहरिन् का अध्ययन किया।

बर्लिन निवासी चिकित्सा-रसायनज्ञ सलाकाउस्की ने दिव्योल, पंचोज मूत्रिया, पेप्टोन मूत्रियाकी रोगी दशामें त्यागकी छान-बीनकी और मूत्रियाकी पारिमाणिक जांचकी। उन्होंने वनस्पतिक मज्जामें फाइटो स्टेरिनके निजी अनुसन्धानको पाशविक मज्जाकी मिलावट अथवा अशुद्धिके पता लगानेके निमित्त प्रयोग किया और रुधिरकी ओषदीकरण शक्ति पर बहुतेरे स्मरणीय अनुसन्धान किये।

इसी समय सर्वश्रेष्ठ फ्राँसीसी महानुभाव लुई पास्ट्यूर (१८२२—९५) ने रङ्गमंचमें प्रवेश करके अद्वितीय सुन्दर खेल खेला। मानव कर्म और कल्पनाके समस्त इतिहासमें ऐसी मधुर और विभूतिमान लीला किसीभी व्यक्तिने नहीं दिखाई। मानव जातिका यह महान उपकारी एक ही जगमगाता जवाहिर है जिसने अपने अमित चातुर्य्य द्वारा कीटविज्ञानीय विचारोंके अन्धकारका अन्त किया। दिग् प्रधान शक्ति (Optical acivity) के अध्ययन की ओरसे उसने अपना ध्यान प्रेकजीवों और सूक्ष्म जीवधारियोंकी ओर हटा लिया। उसने दिखाया कि मदिराका बिगड़ना ५५° – ६०°श के तापःक्रमपर अंशिक ताप शोधन ताप द्वारा बिना स्वादको किसी तरह बिगाड़े हुए ही रोका जा सकता है। यह सिद्धान्त शीघ्र बिगड़ जाने वाले भोज्य पदार्थोंके रक्षार्थ प्रयोग किया जाता है और बच्चोंके पोषणमें इसकी उपयोगिता अत्यन्तही अमूल्य जँची है। क्षौम कृमि (Silk worm) उसकी सहानुभूतिकी बाट जोहही रहा था कि परमात्माकी सृष्टि (creation) का महान् मित्र उसकी सहायताको आपहुँचा। (Chemist) रसायनज्ञ कीट विज्ञान (Bacterlogy) द्वारा चिकित्साशास्त्रके क्षेत्रमें आ उतरा। क्लयब्स (Klebs) का कहना था कि एन्थ्रक्स वीरस छाना नहीं जा सकता है क्योंकि छानन रोगको फिर पैदा करनेमें असमर्थ है। पास्ट्यूरने इस विवादास्पद प्रश्नको सुलझा दिया। वे वेसीली कीटाणुको सौ वंश तक ले गए और श्रेणीके अन्तिम पदसे एन्थ्रक्स रोग पैदा कर दिखाया। उनके टीका लगानेकी खोज केवल अकस्मात् ही होगई। प्रयोग-शालाकी एक छुट्टीसे लौटने पर उन्होंने देखा कि चिकेन-कोलेरा-वीरसकी एक पूरी अच्छी खेती हीऊसर (Sterile) होगई थी और इञ्जेक्शन देने पर एक पश्चाद्गामी कड़े ज़हरीले इञ्जेक्शनके निमित्त लाभप्रद वैक्सीन का काम करती थी। आगे चलकर उन्होंने यह भी सुझाया कि किसी छूतवाले रोगकी वृद्धि अथवा नाश उसके वीरसकी बाहरी दशाओं द्वारा

पुष्टि अथवा अवनतिके कारण होसकी है। अनेकों पास्ट्यूर इन्स्टीट्यूटों में इस सिद्धान्तका प्रयोग किया जाने लगा। पास्ट्यूरने एक लड़केको जिसके समस्त शरीरमें बावले कुत्तोंने काट खाया था, चंगा कर दिया। इसी कृतार्थतासे लाभ उठानेके विचारसे वे इन्स्टीट्यूट्स बनवाये गये थे, वे लगभग जीवनके अन्त समय तक अपने योग्य शिष्योंके साथ काम करते रहे और उन्होंने डिप्थेरिया, एएटीटौक्सिन, फैगोसाइटोसिस, दुग्धिकाम्ल बेसीलस, प्लेगकीटाणु और सांपसे काटे जानेके लिये लाभप्रद टीका इत्यादिके सम्बन्धमें युग-स्मरणीय खोजकी। सच पूछिये तो उन्होंने जर्राही (शस्त्र वैद्यक) और चिकित्सा शास्त्रको समाधिसे उठाया और लगभग सम्पूर्ण रूपसे उनकी कायाही पलट दी।

ट्राउबेने डिजिटेलिसकी प्रकृतिका अध्ययन किया,और जरहार्ट (Gerhardt) ने (Acetonimia) रोग एसिटोनीमिक मूत्रमें सिरकोसिरकिक ज्वलक की जाँचके लिये लोह-हरिद प्रक्रिया प्रचलित की। श्मीडलबर्गने गुर्दे (Kidneys) में अश्वमूत्रिकाम्ल संश्लेषणका अध्ययन किया और मस्केरिन, फेरेटिन डिजिटेलिस इत्यादि औषधियों की भी छान बीन की।

सं० १९०० में लेडकने आग्रोनो चिकित्साका प्रचार किया। डोमिन्सीने १९०६ व १९१९ के बीचमें रश्मिम्-चिकित्सा विशेषतया पराविभाग की किरणों का जिसके कारण नव-साज्म पर इसका प्रभाव स्वस्थअंगोको हानि न पहुँचाते हुए भी बढ़ जाताहै अध्ययन किया। साधारण रासायनिक अनुसन्धानों की चिकित्सा सम्बन्धी उपयोगिताके ये कुछ दृष्टान्त हैं।

सं० १९०१ में बेनोने कलाद्र धातुओं (कोलार्गल इत्यादि) का इञ्जेक्शनमें प्रयोग आरंभ कराया। बामान (Baumann) ने नैलोथाइरिनको पृथक करलिया। इस कार्य्यसे इसके और नैलिन् सम्बन्धी शारीरिक प्रक्रियाओंके परस्पर सम्बन्धका पता लग गया।

अमिनो अम्लोंसे प्रत्यमिनोंके संश्लेषणकी कठिन समस्याकी पूर्तिसदा एमिल फ़िशर (१८५२-१९१९) के ही महान नामके साथ स्मरणकी जायगी। इस अर्थकी सिद्धिके निमित्त उन्होंने अपनी समस्त शक्तिका प्रयोग किया। प्यूरिन यौगिकके संश्लेषण की भी उन्होंने विस्तार पूर्वक छान बीनकी और यह दर्शाते हुए कि प्यूरिन् रूप गठिया रोगके सभी जनित पदार्थोंका सामान्य अंग है। उन्होंने एक गठियाके वंश-वृक्षकी कल्पनाकी उन्होंने शर्करा समूहके बहुतसे नए यौगिकों। का संश्लेषण किया और उनके संगठन निर्धरित किये। विश्वसनीय हिप्नोटिक बेरोनलके संश्लेषणसे उनकी योग्यता प्रमाणित होती है (१९०४)। उन्होंने और बहुतसी औषधियाँ तैय्यारकीं जिनमें प्रोनल (proponal) सपोडिन और इलार्सन मुख्य हैं। महायुद्धके समय उन्होंने नोषजनक पदार्थ पाशविक मज्जा और भोज्य पदार्थोंके कृत्रिम स्थानापन्नों के बनानेमें अद्भुत् शक्ति प्रगट की। कदाचित् प्राप्त नोबेलपुरस्कारके सम्मानकी सेवामें किसीने भी इनके तुल्य आत्मसमर्पण न किया होगा।

इनके शिष्य एमिल एब्डरहालडेन (१८७७-१९२९) ने शारीरिक प्रक्रिया और भोज्य पदार्थोंकी बड़ी विस्तृत छानबीनकी। अण्डसितोदों व केन्द्रिकाम्लोंका प्राणिशरीरमें विभाजन व संयोग कोष्ठ सम्बन्धी शारीरिक प्रक्रिया; कृत्रिम भोज्य पदार्थों का संश्लेषण और पशुओं पर उनका प्रयोग, ये ही विशेषकर उनके कर्मक्षेत्र हैं। उन्होंने दिखाया कि ट्रिप्टोफैन शरीरपोषणके निमित्त आवश्यक है परन्तु मधुन नहीं; एवं द्राक्षशर्करा संकीर्ण कर्बोदेतोंके बदले सेवन किया जा सकता है; और मधुरिन् व मज्जिकाम्ल मज्जाओंके स्थान ग्रहण कर सकते हैं। उन्होंने सगर्भताका पता

लगानेके लिये एक जीव-रासायनिक परीक्षा खोज निकाली।

अमेरिका निवासी ओसबार्न और मैण्डेल ने कृत्रिम भोज्य पदार्थोंके सम्बन्धमें बड़ी महत्व-पूर्ण खोज की है। और भोजनमें विटेमिनोंकी उपयोगिताका अनुकरण किया है। उन्होंने यहभी प्रमाणित किया है कि प्रत्यमिन रहित दूध और मज्जा शरीर वृद्धिके हेतु हानिकारक हैं।

पाल अरलिक अपने द्वयजीवकरण प्रक्रियाके लिये प्रसिद्ध हैं। टाइफोइड बुख़ारकी चिकित्सामें इसका प्रयोग लाभप्रद है। उन्होंने कीटाणुओंकी ओषजनकी माँगका अध्ययन किया जिसमें उन्होंने शारीरिक अंगों और रासायनिक पदार्थोंके बीच एक निवीन आकर्षणकी कल्पनाका उपयोग किया। उनका विचार था कि जीवित कललरसाणु एक स्थिर केन्द्र और अस्थिर प्राश्र्व श्रेणियों अथवा केमोरिसेप्टर से, बना हुआ है जिनके कारण यह अणु भोज्य पदार्थोंसे रासायनिक रीतिसे संयुक्तहो सका है और रुधिरमें पार्श्व श्रेणियों को फैलाकर विषैली वस्तुओंकी शक्तिका नाश कर सकता है। इस प्रकार उन्होंने अगस्त केक्यूले कृत बानजावीन-सिद्धान्तका प्रयोग किया जिसके अनुसार कर्बन परमाणुओंकी चौथी संयोगशक्ति सहजही में बदल दिये जानेवाले उद्‌जन परमाणुओंके अस्थिर पार्श्व श्रेणीमें से संयुक्त हैं। उन्होंने चूहोंके टाइ-पेनो सोमियेसिस रोगको कुछ विशिष्टांगोंसे चंगा करनेका प्रयत्न किया। फलस्वरूप अति उत्तम औषधि सिलवर्सनकी प्राप्ति हुई। उनकी निकाली हुई अन्य दवाइयोंमें दारीलिन-नील, ट्राइपेनलाल संक्षीणो दिव्यील मधुन, पत्रिन और रिसिन अत्यन्त उपयोगी प्रमाणित हुई हैं। वास्तवमें वे रंग विश्लेषण अथवा वर्ण-पदार्थों और अंगोंके सूक्ष्म जीवरासायनिक संबन्धोंके सर्वश्रेष्ठ ज्ञाता थे।

सर लीयेनार्ड हिल इत्यादिने रण-वायु द्वारा फैले हुए विषोंकी चिकित्साके सम्बन्धमें महत्व-पूर्ण खोजकी है।

समालोचना

वेदकाल निर्णय—लोकमान्य तिलकके 'ओरा-यन' का सारानुवाद-अनुवादक-पं० केदारनाथ साहित्य भूषण, प्रकाशक पं० रामचन्द्र शर्मा, संस्कृत प्रोफेसर, दयानन्द एंग्लो वैदिक कालेज जालन्धर, पृष्ठ सख्या २३+१००+१६, मूल्य १)। छपाई, काग़ज़ साधारण

यह पुस्तक लोकमान्य तिलकके 'Orion' का अनुवाद है। इस पुस्तककी महत्ता एवं उप-योगिताके विषयमें कुछ भी कहना व्यर्थ है। वस्तुतः इसे पुरातत्व-साहित्यकी स्थायी सम्पत्ति मानना चाहिये। मूल पुस्तकके भावोंसे पूर्णतः सह-मत न होते हुए भी इसके रचयिताके ज्योतिष एवं वैदिक साहित्य संबन्धी परिज्ञानकी प्रशंसा किये बिना कोई नहीं रह सकता है।

यह प्रस्तुत ग्रन्थ मराठी-संस्करण का अनुवाद है। मूल पुस्तक अंग्रेज़ीमें है। पुस्तकारम्भमें विद्या-वाचस्पति श्री देवराजजी की लिखी हुई एक सुबोध भूमिका है। यह भूमिका स्पष्ट शब्दोंमें विद्वत्ता पूर्वक लिखी गई है और इससे ग्रन्थोल्लिखित विषयोंके समझने में विशेष सहायता मिलेगी। भूमिका सर्वथा उपादेय है।

खेदकी बात केवल इतनी ही है कि 'साहित्य-भूषण' जी का अनुवाद विशेष रूपसे जटिल, अप्रा-कृतिक एवं भ्रान्ति-पूर्ण होगया है। मराठी भाषा की झलक इसमें स्थान स्थान पर दिखाई दे रही है। शब्दयोजनाओंके कुछ अवतरण देखिये—

१—बौद्ध मत का गिराव हुआ (पृ० १ पंक्ति, ११)
२—बुद्धि आजतक चल विचल हो रही है (पृ०२/७)
३—इस साधनमें एक प्रकार से वेदकालके चार भाग छन्द काल, मंत्र काल, ब्राह्मण काल, सूत्र काल, इस प्रकार से है। (२/१७)

४—दूसरी बात ये है (७/८), ये दीखता है (८/१७), स्पष्ठ रूपसे ये बात जानी जाती है

(८/२), कारण ये है (८/१८), ये भी देखना चाहिये (६/१४)—'यह' के स्थानमें सैकड़ों स्थलों पर 'ये' है।

५—बरोबर होना संभव नहीं (८/१२)

६—'ऋतुओंके परिमाणसे वर्षका अन्दाज़ा करना यह, (?) कुछ कठिन नहीं है'—(६/६) यहां 'यह' अनावश्यक है।

७—'मिले' के स्थानमें 'मिलै' (१५/८) होवे के स्थानमें होवै (२८/२७), बातें के स्थान में बातैं (८०/६)

८—यह फेर बदल कब हुआ (१५/१९)

तात्पर्य्य यह है कि भाषादोष सर्वत्र ही विद्यमान हैं और पाठकों को अनायास ही मिल जावेंगे। आशा है कि साहित्यभूषण जी की कृतिको विद्यावाचस्पति जी दूसरे संस्करणमें सुधार देंगे।

इसमें सन्देह नहीं कि पुस्तकके प्रकाशित हो जानेसे हिन्दी साहित्यको लाभ ही होगा। आशा है कि लोकमान्यके अन्य ग्रन्थ भी हिन्दी में अनुवादित हो जावेंगे।

खून के आंसू—लेखक, पं० शिवशर्मा, महोपदेशक, प्रकाशक स्वामी चिदानन्द, मंत्री भारतीय शुद्धि सभा, देहली, पृ० सं० ७२ मूल्य ≡), छपाई, कागज़ साधारण

एक सच्ची घटनाके आधार पर लिखी गई छोटी उपन्यासिका है। इसमें एक निर्दोष बालिका का क्रान्तिकारी उल्लेख है। इस बालिका पर एक मुसलमानने मांस-खानेका झूठा दोषारोपण लगा दिया था जिसको सच मानकर उसके माता पिता ने कन्याको उसी मुसलमानके हवाले कर दिया। बेचारी बालिका इस प्रकार उसके हाथ फंस गई। तत्पश्चात् आर्य्यसामाजिकों द्वारा इसका उद्धार हुआ और इसका विवाह एक प्रतिष्ठित हिन्दूके साथ करा दिया। इसके माता-पिताको पुत्री-वियोगका पश्चाताप हुआ और वे इसकी खोजमें निकले और जिस समय उक्त कन्याका विवाह होने ही वाला था, उसी समय कन्यासे उनकी भेंट हुई। वियोगका दुःख करुणोत्पादक रोमाञ्चकारी आवेश पूर्ण आनन्दमें परिणत होगया, यह बालिका इस समय भी जीवित है और आनन्दसे गृहस्थ जीवन व्यतीत कर रही है। लेखकने इस कहानी को जोरदार भावपूर्ण और हृदय ग्राही शब्दोंमें लिखा है। आशा है कि पुस्तक अपने उद्देश्यमें सफल होगी, और हिन्दू सामाज इसको पढ़ कर कुछ खूनके आँसू बहा सकेगा।

विद्यार्थी—(विशेषांक)—सम्पादक, पं० रामजी लाल शर्मा तथा सुरेन्द्र शर्मा, वा० मूल्य ३) एक प्रति का ।–)। प्रकाशक—हिन्दी प्रेस प्रयाग।

विद्यार्थीका चैत्रका अङ्क विशेषांक निकाला गया है। इसमें विद्यार्थियोंके पढ़ने योग्य ९६ पृष्ठ हैं। सम्पादन भली प्रकार हुआ है और चित्रादि की छपाई भी सुन्दर है। लेख, कहानियाँ सभी अच्छी हैं। हम इस पत्र की सदुन्नति चाहते हैं। गुप्तजी, शंकर जी और स्वर्णसहोदर की रचनायें सुन्दर हैं। प्राचीन संस्कार नामक कहानी भी दिलचस्प है। शंकरराव जोशी, चन्द्रमौलि सुकुल, चन्द्रशेखर शास्त्री आदिके पठनीय लेख हैं। हरिऔध जी की 'हृदय हीनता' पर व्यंगात्मक हृदयहीन कविता भी है।

मुसकान—ले० पं० भगवती प्रसाद बाजपेयी, प्रकाशक, साहित्य मन्दिर, दारागंज, प्रयाग। पृ० सं० ६+१११। मूल्य १=)। छपाई, जिल्द, कागज़ आदि सुन्दर।

श्री बाजपेयी जी की सुन्दर छोटी छोटी गल्पों से साहित्य जगत् परिचित है। मुझे इनके पढ़नेमें सदा आनन्द आता रहा है। मुसकान, छोटी गल्प तो नहीं, पर छोटा सा उपन्यास अवश्य है। लेखक अथवा प्रकाशकके शब्दोंमें यह 'राष्ट्रीय जागरणके भावोंसे ओतप्रोत सरस सामाजिक

उपन्यास' है, अर्थात् यह राष्ट्रीयता, सरसता एवं सामाजिकताको लक्ष्यमें रखकर लिखा गया है। उपन्यास मुझे मिला और थोड़ी ही देरमें मैंने इसे पढ़ भी डाला। जैसे ही ललिताका आत्मदान पढ़ा चित्त व्याकुल हो उठा। उपन्यास समाप्त हुआ, हृदय ने गवाही दी कि यह बहुत ही अच्छा लिखा गया है, अवश्य सरस है, दिल पर मीठी चोट पहुँचाने वाला है। सम्पूर्ण उपन्यासके दो वाक्य किसी भी पाठकको न भूल सकेंगेः—एक तो ललिताके ही वचन हैं और दूसरे ललिताके विषयमें।

"अब मैं यही सिद्ध करूँगी कि मैंने जो कुछ किया है, वह प्रत्येक नारी करती है। अच्छा अब मैं यही चाहती हूँ कि मुझसे जो कुछ हुआ है, वह समाजमें पवित्र कर्त्तव्य माना जाय।"

"आज भी ललिताके अपने कुटुम्बीजन उसे व्यभिचारिणी समझते होंगे।"

ललिताके जीवनका उद्देश्य ही इस पुस्तकके रचनेका उद्देश्य कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी।

बाजपेयीजीके उपन्यासके मुख्य नायक और नायिका देश भक्त विजयसिंह और एलिस हैं पर जिस प्रकार रामचरित मानसमें मुख्य चरित्र-नायक रामके होते हुए भी श्री भरतजी का चरित्र सर्वश्रेष्ठ अङ्कित किया गया है, उसी प्रकार उपनायिका ललिता ही बाजपेयी जी की कल्पना की सर्वोत्कृष्ट उपज है। कुछ दिनों पूर्व बाजपेयी जी ने अन्य दो सहकारियोंके साथ माठी चुटकी नामक उपन्यास लिखा था। उसमें भी मुख्य नायिका की अपेक्षा गुलबदनका चरित्र आत्म-समर्पण एवं अदृष्ट, और अज्ञात प्रेमके कारण सर्वोत्तम अङ्कित किया गया था। गुलबदन और ललिताके प्रेमोंने कभी साकार रूप नहीं धारण किया। बाजपेयी जी के दोनों उपन्यासोंसे यही प्रकट होता है कि बाजपेयी जी की रुचि इस ओर अवश्य है कि किसी एक नायकसे दो नायिकाओं का प्रेम हो जाय पर सौतियाडाह न उत्पन्न हो, और अन्तमें कोई एक दूसरी के लिये सहर्ष अपना आत्मसमर्पण करदे। पाश्चात्य उपन्यासोंमें बहुधा इसका उलटा पाया जाता है। वहाँ एक नायिका के कई प्रेमी होते हैं और सबके सब एक दूसरेके प्रतिद्वन्दी। बाजपेयीजी के उपन्यासकी इस विशेषताको साहित्यमें एक विशेष स्थान मिलना चाहिये।

यह उपन्यास दुःखान्त-सुखान्त है। अन्तमें ललिताका करुणोत्पादक परन्तु वीरोचित वियोग एलिस-विजय संयोगका कारण होता है। पाश्चात्य उपन्यास भी इस प्रकार के होते हैं। वहाँ एक नायकका अन्त होता है पर द्वेष भावसे न कि आत्मसमर्पण के भाव से।

इस छोटे से उपन्यासमें जो राष्ट्रीयता प्रदर्शित की गयी है वह आज कल की कम्यूनिस्ट-धर-पकड़ की याद दिलाती है। पर विजय निर्दोष पकड़ा जाता है। मुझे विजयके जीवनमें राष्ट्रीयोत्साहकी बहुत ही कम झलक मिली। एलिसके प्रति कहे हुए उसके ये शब्द कि 'यदि मेरी उद्देश्य पूर्तिमें सहायता देने और इस क्षेत्रमें आगे बढ़नेमें प्रोत्साहित करने वाला साथी मुझे मिल जाय तो मैं व्याह कर सकता हूँ'—केवल राष्ट्रीयताके बहाने ही हैं।

एलिससे विजयको प्रेम हुआ, एलिसके कहने पर विजय ने डूबती ललिताको बचाया, ललिता भी धीरे धीरे विजयसे प्रेम करने लगी। ललिताने एलिस को आजन्म कालेपानीसे छुटाया, एलिस की शुद्धि हुई और उसका विजयसे विवाह हो गया। बस यह उपन्यासका सारांश है। साहित्यिक उपन्यासोंमें शुद्धिकी सामयिकता सबसे पहले बाजपेयी जी ने ही अपनायी है। इस शुद्धिका कारण धर्म-ग्लानि नहीं वरन् पारस्परिक प्रेम है। साधारणतः हिन्दू समाजमें जब कोई हिन्दू विधर्मी कन्यासे प्रेम करने लगता है तो वह भी विधर्मी हो जाता है। पर उपन्यासमें इस प्रथाको परि-

वर्त्तित करनेका यत्न किया गया है जो श्रेयस्कर ही है।

मुसकान उपन्यास छोटा ही है पर यह अनेक दृष्टियासे पठनीय है। उपन्यासकलाके विचार से भी इसका निबाह भली प्रकार हुआ है। इसको पढ़नेसे शरद्‌बाबूके बंगाली उपन्यासों की याद आजाती है। वाजपेयी जी का भविष्य बहुत ही उज्वल है। अभी तक हिन्दी जगत्‌में प्रेमचन्द जी को छोड़ कर मौलिक उपन्यास लेखक और हैं ही नहीं। कुछ लेखक केवल बंगाली और मराठीके उपन्यासोंके अनुवादसे ही हिन्दी साहित्यकी कलेवर वृद्धि करना चाहते हैं। जिस प्रकार प्रेम चन्द जी अपने बड़े बड़े उपन्यासों और बड़ी बड़ी गल्पोंके कारण साहित्यमें अमर रहेंगे उसी प्रकार वाजपेयी जी भी छोटे छोटे उपन्यासों और छोटी गल्पोंको लिखकर अपना नाम अवश्य चिरस्थायी कर जायंगे। हमें आशा है कि 'मुसकान' का समुचित आदर किया जायग। इसकी भाषा आडम्बर शून्य सरस और स्वस्थ है। हम वाजपेयी जी को उनकी रचनाके लिये बधाई देते हैं।

—सत्यप्रकाश

हम्फ्रीडेवी की शताब्दी

इंगलैण्डके प्रसिद्ध रसायनज्ञ सर हम्फ्री डेवीकी मृत्यु २९ मई सन् १८२९ को हुई थी। इस प्रकार उनके देहावसानको अब पूरे १०० वर्ष हो चुके हैं जिसके उपलक्षमें एक जुबली मनाई गई है। सर हम्फ्रीडेवीको वस्तुतः ऐसा प्रथम रसायनज्ञ समझना चाहिये जिन्होंने विद्युत्‌विद्याका रसायनमें उपयोग किया। डेवी की 'सेफ्टी लम्प' आज भी बड़े महत्व का मानी जाती है। खानोंमें काम करने वाले जानते हैं कि खानों के अन्दर बहुधा जलन शील गैसें विद्यमान रहती हैं जो ज़रासी भी आग पाकर भभक उठती हैं। अतः इन स्थानोंमें प्रकाश पहुँचानेके लिये विशेष आयोजनाकी आवश्यकता थी। डेवीने इसी समस्या को हल करनेके लिये एक विशेष दीपक बनाया जिसे सेफ्टी लम्प कहा जाता जाता है। उनके इस आविष्कारके उपलक्षमें खानों के काम करने वालों ने ११ अक्टूबर सन् १८१७ को सर डेवी को १२०० पौंड (१८०००० रुपये) की एक तश्तरी भेंट की थी और रुसके सम्राट ने भी उन्हें पुरस्कृत किया था।

सर डेवी ने सैन्धकम् और पांशुजम् तत्वोंका अन्वेषण किया। ये तत्व उन्होंने सैन्धक और पांशुजक्षारोंका विद्युत् विश्लेषण करके प्राप्त किये थे। डेवीके पूर्व हरिन् गैस यौगिक समझी जाती थी पर डेवीने सिद्ध कर दिया कि यह यौगिक नहीं प्रत्युत एक तत्व है।

सर डेवीका जन्म १७ दिसम्बर १७७८ को हुआ था। सन् १८१२ में उसे सरकी उपाधि मिली, सन् १८१८ में वह बैरन बनाया गया, ३० नवम्बर १८२० ई० को वह रायल सोसायटीकी सभापति निर्वाचित हुआ।

डेवी एक महान व्यक्ति था। वह केवल रसायनज्ञ हो नहीं प्रत्युत सुन्दर कवि था, केवल दार्शनिक ही नहीं, वह खिलाड़ी भी था।

उसकी 'हंसाने वाली गैस' ने औषधालयोंमें उचित स्थान पाया है।

वैज्ञानिक पुस्तकें

विज्ञान परिषद् ग्रन्थमाला

१—विज्ञान प्रवेशिका भाग १—ले० प्रो० रामदास गौड़, एम. ए., तथा प्रो० सालिग्राम, एम.एस-सी. ।)
२—मिफताह-उल-फ़नून—(वि० प्र० भाग १ का उर्दू भाषान्तर) अनु० प्रो० सैयद मोहम्मद अली नामी, एम. ए. ... ... ।)
३—ताप—ले० प्रो० प्रेमवल्लभ जोषी, एम. ए. ।=)
४—हरारत—(तापका उर्दू भाषान्तर) अनु० प्रो० मेहदी हुसेन नासिरी, एम. ए. ... ।)
५—विज्ञान प्रवेशिका भाग २—ले० अध्यापक महावीर प्रसाद, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद १)
६—मनोरंजक रसायन—ले० प्रो० गोपालस्वरूप भार्गव एम. एस-सी.। इसमें साइन्सकी बहुत सी मनोहर बातें लिखी हैं। जो लोग साइन्स-की बातें हिन्दीमें जानना चाहते हैं वे इस पुस्तक को जरूर पढ़ें। ... १॥
७—सूर्य सिद्धान्त विज्ञान भाष्य—ले० श्री० महावीर प्रसाद श्रीवास्तव, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद
मध्यमाधिकार ... ... ॥=)
स्पष्टाधिकार ... ... ।॥)
त्रिप्रश्नाधिकार ... ... १॥)
चन्द्रग्रहणाधिकार ... ... १॥)

'विज्ञान' ग्रन्थमाला

१—पशुपक्षियोंका शृङ्गार रहस्य—ले० प्रो० शालिग्राम वर्मा, एम.ए., बी. एस-सी. ... -)
२—ज़ीनत वहश व तयर—अनु० प्रो० मेहदी-हुसैन नासिरी, एम. ए. ... ... -)
३—केला—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली =)
४—सुवर्णकारी—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली ।)
५—गुरुदेवके साथ यात्रा—ले० अध्या० महावीर प्रसाद, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद ।=)
६—शिक्षितोंका स्वास्थ्य व्यतिक्रम—ले० स्वर्गीय पं० गोपाल नारायण सेन सिंह, बी.ए., एल.टी. ।)
७—चुम्बक—ले० प्रो० सालिग्राम भार्गव, एम. एस-सी. ... ... ।=)
८—क्षयरोग—ले० डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा, बी. एस. सी, एम-बी. बी. एस ...
९—दियासलाई और फ़ास्फ़ोरस—ले० प्रो० रामदास गौड़, एम. ए. ... ... =)
१०—वैज्ञानिक परिमाण—ले० डा० निहाल करण सेठी, डी. एस. सी तथा श्री सत्य-प्रकाश, एम. एस-सी० ... ... १॥)
११—कृत्रिम काष्ठ—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली =)
१२—आलू—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली ... ।)
१३—फसल के शत्रु—ले० श्री० शङ्करराव जोषी ।=)
१४—ज्वर निदान और शुश्रूषा—ले० डा० बी० के० मित्र, एल. एम. एस. ... ... ।)
१५—कार्बनिक रसायन—ले० श्री० सत्य-प्रकाश एम-एस-सी० ... ... २॥)
१६—कपास और भारतवर्ष—ले० पं० तेज शङ्कर कोचक, बी. ए., एस-सी. ... -)
१७—मनुष्यका आहार—ले० श्री० गोपीनाथ गुप्त वैद्य ... ... १)
१८—वर्षा और वनस्पति—ले० शङ्कर राव जोषी ।)
१९—सुन्दरी मनोरमाकी करुण कथा—अनु० श्री नवनिद्धिराय, एम. ए. ... ... -)॥

अन्य वैज्ञानिक पुस्तकें

हमारे शरीरकी रचना—ले० डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा, बी. एस-सी., एम. बी., बी. एस.
भाग १ ... ... २॥)
भाग २ ... ... ४)
चिकित्सा-सोपान—ले० डा० बी० के० मित्र, एल. एम. एस. ... ... १)
भारी भ्रम—ले० प्रो० रामदास गौड़ ... १।)
वैज्ञानिक अद्वैतवाद—ले० प्रो० रामदास गौड़ १॥=)
वैज्ञानिक कोष— ... ... ४)
गृह-शिल्प— ... ... ।)
खादका उपयोग— ... ... ।)

मंत्री
विज्ञान परिषत्, प्रयाग

मुद्रक—सूरजप्रसाद खन्ना, हिन्दी-साहित्य प्रेस, प्रयाग

विषय-सूची

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५॥

भाग २६ } सिंह संवत् १९८६ { संख्या ५

शून्य समूहके तत्त्व

ELEMENTS OF ZERO GROUP

(ले० श्री० सत्यप्रकाश, एम० एस-सी०)

अन्वेषणका इतिहास

मैंडलीफ़ने जिस संविभाग-की रचना की थी उसमें शून्य समूह न था। पर हिमजन (Helium), नूतनम् (neon), आलसीम् (argon) गुप्तम् (krypton), अन्यजन (Xenon) और नीटन (Niton) नामक तत्त्वों-के अन्वेषणसे एक नया शून्य समूह बनाना पड़ा। उपर्युक्त तत्त्वोंके अन्वेषणका इतिहास बड़ा ही मनोरञ्जक है। अतः यहां उसका वर्णन करना अनुपयुक्त न होगा।

सं० १८४२ वि० में कैवण्डिश नामक वैज्ञानिक ने वायुके विषयमें कुछ प्रयोग किये। उसने वायुको एक बड़े बन्द बर्तनमें लिया और विद्युत-शक्तिसे नोषसाम्ल उत्पन्न किया। साधारणतः वायुमें ओषजन और नोषजन नामक दो तत्त्व माने जाते हैं। इन दोनों तत्त्वोंके संयोगसे ही नोषसाम्ल बना। कैवण्डिशने अपने प्रयोगमें एक बात देखी कि वायु का $\frac{1}{120}$ वाँ भाग बिना संयोगके शेष रह जाता है और बाकी सब भाग नोषसाम्लमें परिणत हो जाता है। इस $\frac{1}{120}$ वें भाग के रह जाने का कारण क्या है, इस ओर उस ने कुछ ध्यान न दिया। इस प्रयोग के सौ वर्ष पश्चात्तक किसी ने इस प्रयोग से उचित परिणाम निकालने की चेष्टा नहीं की।

सं० १९५१ वि० में लार्ड रेले नामक वैज्ञानिक-

ने अनेक विधियों से नोषजन उत्पन्न किया और सब विधियों द्वारा जनित नोषजन का घनत्त्व निकाला। यह गैस दो प्रकार से प्राप्त हो सकती है, (१) रासायनिक प्रक्रियाओं से और (२) वायुसे। दोनों विधियों द्वारा प्राप्त गैसका घनत्व परस्पर में भिन्न था। वायुसे जो नोषजन मिला था वह रासायनिक विधियोंसे मिले हुए नोषजनसे अधिक भारी था जैसा कि निम्न अंकोंसे प्रत्यक्ष है:—

१. रासायनिक विधि—

नोषिक ओषिद्से प्राप्त नोषजनका एक बड़े गोले-
में भार = २.३०००८ ग्राम

नोषस ओषिद „ „ = २.२९९०४ „

अमोनियम नोषित „ „ = २.२९८६९ „

औसत = २.२९९२७ „

२. वायुसे प्राप्त—

रक्त तप्त ताम्र द्वारा „ = २·३१०२६ „

रक्त तप्त लोहस द्वारा „ = २·३१००३ „

लोहस उद्-ओषिद द्वारा „ = २·३१०२० „

औसत = २·३१०१६ „

दोनों औसतोंमें (२·३१०१६—२·२९९२७) = ०·०१०८९ ग्रामका अन्तर है। रैलेने यह भी दिखा दिया कि रासायनिक विधि द्वारा प्राप्त नोषजनमें कोई उदजनके समान हलकी वस्तु भी विद्यमान नहीं है जिससे इसका भार हलका हो गया हो। अतः यही परिणाम निकाला जा सकता है कि वायुके नोषजनमें कोई अन्य तत्त्व विद्यमान है। इस प्रकार यहां से हमारे पूर्ववर्ती विचारों में विकट परिवर्त्तन हुआ। लार्ड रैलेके इस प्रयोग से पूर्व कोई भी व्यक्ति वायु प्रदत्त नोषजनके एक-रस होने पर सन्देह नहीं करता था। इस प्रयोग ने कैविण्डिश के परिणामों का भी समर्थन कर दिया। वैज्ञानिकों ने उसके प्रयोग को विस्तार से फिर दुहराया और बड़ी सावधानी से वायु के संपूर्ण नोषजन और ओषजनको पृथक् कर लिया। ऐसा करने पर उन्हें भी कुछ अवशिष्ट गैस मिली। इस गैस का किरण-चित्रविश्लेषण किया गया जिससे यह सिद्ध हो गया कि यह अवशिष्ट पदार्थ नोषजन अथवा कोई अन्य ज्ञात तत्त्व नहीं हो सकता है। इससे यह स्वाभाविक ही था कि यह कल्पना करली जाय कि वायुके नोषजन में कोई नया तत्त्व अवश्य विद्यमान है।

लार्डरैलेको अब यह चिन्ता हुई कि कोई ऐसी युक्ति सोचनी चाहिये जिससे यह नया पदार्थ समुचित मात्रामें प्राप्त हो सके और इसके गुण की परीक्षाकी जा सके। सर विलियम रैमजे और लार्ड रैलेने इस विषयपर साथ साथ कार्य्य आरंभ किया। इसके लिए दो विधियाँ सोची गईं—(१) वायुके संपूर्ण नोषजनको रक्त-तप्त मगनीसम् द्वारा शोषित कर लिया जाय। ऐसा करनेसे मगनीसम् और नोषजन द्वारा मगनीस नोषिद यौगिक बन जायगा। इसी प्रकार रक्त तप्त ताम्र द्वारा शोषित करके ओषजनको भी पृथक् कर लिया जाय। २. क्षारकी उपस्थितिमें नोषजन को विद्युत-चिनगारी द्वारा ओषजनसे संयुक्त करके नोषिकाम्लमें परिणत कर दिया जाय। इन दोनों युक्तियोंके सञ्चालनमें रैमज़े और रैलेको पूर्ण सफलता प्राप्त हुई। इस नवीन पदार्थका वाष्प-घनत्व २० था अतः इसका अणुभार ४० हुआ। भिन्न भिन्न प्रयोगोंसे यह भी सिद्ध कर दिया गया कि इस नवीन तत्वके अणुमें एकही परमाणु है अर्थात् यह एक-अणुक है अतः इसका परमाणु-भार भी ४० माना गया। यह तत्व किसी भी अन्य तत्त्वसे संयुक्त नहीं हो सकता है अतः इसका अंग्रेज़ी नाम आर्गन रक्खा गया। ग्रीक भाषामें आर्गस आलसीको कहते हैं। इसके आलसी होने के कारण हमभी इसका नाम 'आलसीम्' रखते हैं।

हिमजन की खोज

सं० १९२५ वि० में भारतवर्ष में सूर्य्य ग्रहण पड़ा था। पूर्ण ग्रहणकी अवस्थामें इसके वर्ण-मंडलका किरण-विश्लेषण किया गया। ऐसा

करने पर एक पीली रेखा उपलब्ध हुई जो अभी तक पहले प्राप्त नहीं हुई थी। यह सैन्धकम् की ड-रेखा पर पूर्णतः पराच्छादित नहीं होती थी। जानसीन नामक वैज्ञानिकने इसका नाम $ड_3$ रक्खा। फ्रैंकलैएड और लौकयर महोदयने इस नवीन रेखासे यह अनुमान लगाया कि यह किसी ऐसे नवीन तत्वकी सूचक है जो पृथ्वीपर नहीं पाया जाता है, प्रत्युत सूर्यमें अवश्य विद्यमान है। उन्होंने इसका नाम हीलियम् रक्खा क्योंकि ग्रीक भाषामें हेलियस सूर्यको कहते कहते हैं। इस का हिन्दी नाम हिमजन है क्योंकि इसकी सहायतामे बहुत से पदार्थ ठंडे किये जा सकते हैं। लौकयरके विचारानुसार यह तत्व भूमिपर दुष्प्राप्य समझा गया। पालमायरी नामक अन्वेषकके लेखोंसे यह प्रतीत होता है कि उसने ज्वालामुखी वेसूवियसके लावा के अन्वेषणमें इस तत्व की विद्यमानता पायी थी। निस्सन्देह अब यह सिद्ध हो गया है कि उक्त ज्वालामुखीके सन्निकट हिमजन विद्यमान है, पर यह समझमें नहीं आता है कि पालमायरीने किस प्रयोगसे उसकी परीक्षा की थी। कदाचित् उसे किसी अन्य पदार्थका भ्रम हो गया हो।

यह लिखा जा चुका है कि रैले और रैमज़ेने आलसम्की खोजकी। अबतक इस तत्वका एक मात्र स्रोत वायुमंडल ही था। रैमज़े इस बातकी खोजमें था कि कदाचित् अन्य खनिज पदार्थोंमें यह तत्व विद्यमान हो। इस विचारसे उसने अनेक खनिजोंकी परीक्षाकी। उसने मायर्स नामक व्यक्तिके प्रस्तावपर सं० १६५१ वि० में क्लीवाइट या युरेनाइट नामक खनिज द्वारा जनित गैसकी परीक्षाकी ओर ध्यान दियो। सं० १६४५ वि० में हिल्लेब्राण्ड वैज्ञानिकने भी इस वायव्यका अनुशीलन किया था। यह नोषजनके समान निश्चेष्ट पदार्थ था अतः उसने यही निश्चय किया कि यह नोषजन ही है। यह ठीक है कि जिस समय वह प्रयोग कर रहा था उसने और उसके सहायकने हास्यमें यह कहा था कि कहीं यह कोई नया तत्व तो नहीं है। पर हास्यकी बात हास्य हीमें रह गई। उन्होंने इस ओर फिर कुछ ध्यान नहीं दिया। कौन जानता था कि जो बात हँसीमें कही जारही है वह भविष्यमें सत्य प्रमाणित होगी। अस्तु, हिल्लेब्राण्डने प्रयोगकी महत्ताको न समझकर अमूल्य अवसर खो दिया। उसने इस गैसका नोषस ओषिद् और अमोनिया बनाया। यह असंदिग्ध है कि नवीन गैसके साथ नोषजन अवश्य विद्यमान था पर शुद्ध नोषजन जिस शीघ्रतासे नोषस ओषिद् और अमोनिया बनाता है उतनी शीघ्रतासे इस नवीन गैस द्वारा उक्त पदार्थ नही बनते हैं। इससे यह सिद्ध ही है कि नवीन गैसमें नोषजनके अतिरिक्त और कुछ मिला हुआ है। पर इस बातपर कुछ भी ध्यान नहीं दिया गया।

अस्तु, मायर्सके प्रस्तावपर रैमज़ेने क्लीवाइट द्वारा प्रदत्त गैसकी परीक्षा प्रारम्भ की। उसने क्लीवाइटको हलके गन्धकाम्लसे शून्यमें गरम किया और सोडाके ऊपर जनित गैसको ओषजनसे विद्युत-चिनगारी द्वारा संयुक्त किया। इस प्रकार उक्त गैस का सम्पूर्ण नोषजन पृथक् हो गया। थोड़ासा ओषजन शेष रह गया। उसे क्षारीय परमोजूफलेत (pyrogallate) द्वारा शोषित कर लिया गया। गैसको धोकर और पूर्णरूपसे सुखाकर अर्थात् इसके सम्पूर्ण जल कण पृथक् करके उपलब्ध पदार्थके किरण-चित्रकी परीक्षा की गई। इस समय रासायनिक जगत्में किरण-चित्र-परीक्षा में सर विलियम क्रूक्ससे बढ़कर कोई अधिक चतुर नहीं समझा जाता था अतः रैमज़ेने यह कार्य उन्हें ही सौंप दिया। प्रयोग करनेपर क्रूक्सको एक पीली रेखा मिली जिसकी स्थिति जानसीनकी $ड_3$ रेखासे पूर्णतः पराच्छादित होती थी। अतः सिद्ध हो गया कि क्लीवाइटकी गैसमें वही तत्व विद्यमान है जो सूर्य मण्डलमें पाया गया था। सर विलियम रैमज़ेके अविरत परिश्रमसे यह प्रमाणित हो गया कि हिमजन तत्त्व भूमण्डलमें भी

प्राप्त हो सकता है। इस तत्त्वकी खोज का श्रेय रैमज़ेको मिला। वैज्ञानिक जगत्में रैमज़ेकी अमिट कीर्त्ति सदाके लिए व्यापक हो गयी। यह सफलता सं० १९५२ वि० में प्राप्त हुई। इस तत्त्व का वाष्प-घनत्व १·०९९ निकाला गया जिसके अनुसार इसका परमाणुभार ४ माना गया। यह तत्त्व भी एक अणुक है।

नूतनम्, गुप्तम् और अन्यजन

मैण्डलीफ़के आवर्त्त संविभागमें आलसीम् और हिमजनके अन्वेषण होने पर एक नया समूह बनाया गया जिसका नाम शून्य समूह पड़ा। नये समूह बनानेके कारणों पर हम आगे विचार करेंगे। परमाणु भारके अनुसार जब संविभागमें आलसीम् और हिमजनको स्थान दे दिया गया तो उन दोनोंके बीचमें एक स्थान रिक्त रह गया जिससे यह स्पष्ट है कि इन दोनोंके बीचमें एक नवीन तत्व अवश्य स्थित है। जूलियस टामसन नामक वैज्ञानिक संविभागके आवर्त्त नियमका प्रयोग करके सं० १९५३ वि० में यह अनुमान प्रकाशित किया कि इस शून्य समूहमें ६ तत्त्व होंगे जिनके परमाणुभार क्रमानुसार ४, २०, ३६, ८४, १३२ और २१२ होंगे।

रैमज़े और ट्रैवर्स वैज्ञानिक हिमजन और आलसीम्के बीचके तत्त्व ढूँढनेमें संलग्न हुए यह कहनेकी कोई आवश्यकता नहीं है कि हिमजन और आलसीम् दोनों तत्व वायु मंडलमें विद्यमान हैं अतः यह भी सम्भव है कि इन दोनोंके बीचका तीसरा तत्त्व भी कदाचित् वायुसे प्राप्त हो सके। यह कहा जा चुका है कि वायुमें नोषजन और ओषजनके शोषणके पश्चात् एक पदार्थ रह जाता है जिसे आलसीम् माना गया था। यह कल्पना की जा सकती है कि यह पदार्थ शुद्ध आलसीम् न हो और इसमें कोई दूसरा अन्य तत्त्व भी विद्यमान हो, इस कल्पनाका आश्रय लेकर रैमज़े और ट्रैवर्सने १८ लिटर आलसीम् लिया और उसे द्रवीभूत किया। तत्पश्चात् क्षीण दबाव (reduced pressure) के आधारसे उसे विभाजित किया। इस प्रक्रियाको इस प्रकार समझा जा सकता है। कल्पना करो कि द्रवको किसी तापक्रम त°शपर उबालने के लिए द१ दबावकी आवश्यकता पड़ती है। तथा किसी अन्य द्रव क२ को उसी तापक्रम त°शपर उबालनेके लिये द२ दबावकी आवश्यकता पड़ती है। मान लो कि द२ से द१ कम है। अतः जब दोनों द्रवों-क१ और क२ को मिला दिया जाय और धीरे धीरे दबाव क्षीण (कम) किया जाय तो जब दबाव द२ पर पहुँचेगा तो क२ द्रव उबलने लगेगा और यह वाष्पीभूत हो जायगा। इसके वाष्पको पृथक् किया जा सकता है। दबावको और कम करनेसे द१ के बराबर किया जा सकता है। द२ दबावपर क१ द्रव वाष्पीभूत नहीं हो रहा था। पर द२ पर क१ तत्व भी वाष्पीभूत होगा और अलग किया जा सकेगा। इस प्रकार वे पदार्थ जो भिन्न भिन्न दबावपर वाष्पीभूत होते हैं, उन्हें क्षीण दबावकी प्रक्रियासे पृथक् किया जा सकता है।

द्रव आलसीम्के विषयमें इसी सिद्धान्तका किया गया। यदि इसमें दो पदार्थ मिले हुए हैं तो दोनों भिन्न भिन्न दबावोंपर वाष्पभूत होंगे। इस प्रकार दबावको नियमित करनेसे उन दोनों को पृथक् किया जा सकता है। रैमज़े और ट्रैवर्स को इस विधिसे सफलता प्राप्त हुई। उन्होंने द्रव आलसीम्मेंसे एक नया तत्व पृथक् किया। इस नये तत्वका नाम नूतनम् रक्खा गया। नूतनम् शब्दका अर्थ 'नया' है। इसके किरण चित्र परीक्षण ने प्रमाणित कर दिया कि यह एक नया तत्त्व है। इसका वाष्प घनत्व १०·१ निकला जिसके अनुसार इसका परमाणु भार २०·२ माना गया।

वायु मंडलमेंसे आलसीम् प्राप्त करनेके लिये रैमज़े और ट्रैवर्सने बहुत सा वायु द्रवीभूत किया और क्षीण दबावके आधारसे उसे विभाजित किया। इस प्रक्रियाके करने पर एक और

नया तत्व प्राप्त हुआ जिसका वाष्प घनत्व ४१.४०६ था, अतः इसका परमाणु भार ८३ माना गया। इसका नाम गुप्तम् रक्खा गया। संस्कृतमें गुप्त का अर्थ छिपा हुआ है। यह तत्व वायुमें छिपा हुआ था और कठिनतासे प्राप्त हुआ अतः यह नाम सर्वथा उपयुक्त है।

क्षीण दबावके आधारसे अवशिष्ट द्रववायुमें-से एक नया तत्व अन्यजन प्राप्त हुआ जिसका घनात्व ६५.१ था अतः इसका परमाणुभार १३०.२ माना गया। लेडनवर्ग और क्रूजल वैज्ञानिकोंने द्रव वायुके ८५० लिटर वाष्पीभूत किये और सबसे अन्तमें वाष्पीभूत होनेवाले भागको सञ्चित किया। इसे फिर द्रववायुके तापक्रमतक ठण्डा किया एवं वाष्पीभूत करके विभाजित किया। इस प्रकार उन्होंने अन्यजन और गुप्तम् दोनों तत्वोंको अलग कर लिया।

संविभाग में स्थान

इस प्रकार सं० १९५१ वि० से १९५५ वि० तक रैमज़ेके प्रयत्नसे पाँच नवीन तत्वोंका आविष्कार हो गया। इन तत्वोंके नाम, परमाणुभार और परमाणु संख्या निम्न अङ्कोंसे स्पष्ट हैं:—

सप्तम समूह	परमाणुभार	पर० स०	शून्य समूह	परमाणु भार	पर० संख्या	प्रथम स०	परमाणुभार	पर० सं०
			हिमजन (हि)	४·००	२			
प्लविन्	१९	९	नूतनम् (नू)	२०·२	१०	सैन्धकम्	२३	११
हरिन्	३·५४६	१७	आलसीम् (आ)	३९·९	१८	पांशुजम्	३९·१	१९
अरुणिन्	७९·९२	३५	गुप्तम् (गु)	८२·९२	३६	लालम्	८५.४५	३७
नैलिन्	१२६·९२	५३	अन्यजन(अ)	१३०·२	५४	श्यामम्	१३२.८१	५५

इन अङ्कोंसे यह स्पष्ट है कि परमाणु भार और परमाणु संख्याओंके विचारसे शुन्य समूही तत्व सप्तम् और प्रथम समूही तत्वोंके बीचमें पड़ते हैं। जिस समय रैले और रैमज़ेने आलसीम् तत्वका आविष्कार किया था उस समय यह प्रश्न बड़ा विकट उपस्थित हुआ था कि संविभागमें इसे कहांपर स्थान दिया जाय। आलसीम्का परमाणु भार ३९·९ निकाला गया था। परमाणु भारका ध्यान रखनेपर आलसीम् पांशुजम् (३९·१) और खटिकम् (४०·०७) के बीचमें रखना चाहिये था। पर ऐसा करनेमें दो आपत्तियां थीं। पहली तो यह थी कि पांशुजम् और खटिकम्के बीचमें कोई स्थान ही रिक्त नहीं है। दूसरी आपत्ति यह थी कि इस नवीन तत्वके गुण न तो पांशुजम्के समान थे, न खटिकम्के समान। यही नहीं, यह तत्व इतना निश्चेष्ट था कि किसी भी अन्य तत्वसे संयुक्त ही न होता था। उस समय तक जितने भी तत्व ज्ञात हुए थे, उन सबसे यह विलक्षण था। ऐसी अवस्थामें मैण्डलीफके संविभागमें कहीं भी इसे स्थान नहीं दिया जा सकता था।

जिस समय आलसीम् सम्बन्धी यह विकट प्रश्न उपस्थित हुआ था उसके कुछ समय पश्चात् हो हिमजन नामक तत्वका अन्वेषण घोषित किया गया। इसका परमाणु भार ४ निकला जिसके अनुसार इसे उद्जन (१·००८) और शोणम् (६·९४) के

बीच में रखना पड़ेगा। इससे यह स्पष्ट होगया कि प्रबल ऋणात्मक सप्तम समूह और प्रबल धनात्मक प्रथम समूहके बीचमें एक नया समूह अवश्य स्थित है जिसके तत्व न धनात्मक हैं और न ऋणात्मक, जिनकी संयोग शक्ति शून्य है और जो सर्वथा निश्चेष्ट हैं। आलसीम् भी इसी समूहका व्यक्ति है। परमाणु भारकी अपेक्षा करके इसे अवश्य हिमजन समूहमें रखना चाहिये। ऐसे अपवाद कोबल्टनकलम्. और थलम्में विद्यमान थे ही। अतः ऐसा करना कुछ अस्वाभाविक नहीं है। इस प्रकार आलसीम्को पांशुजम्के पूर्व शून्य समूहमें स्थान दिया गया। जब नूतनम् गुप्तम् तथा अन्यजनका आविष्कार हुआ तो शून्य समूहकी सत्यता सदाके लिये प्रमाणित होगई।

रैमज़ेके समयमें परमाणु संख्याका आविष्कार नहीं हुआ था। पर जब मोसलेने इसका उद्घाटन किया और हरिन् और पांशुजम्की परमाणु संख्या क्रमानुसार १७ और १६ निकाली गई, तो आलसीम्की स्थिति और भी दृढ़ हो गई और इसकी परमाणु संख्या १८ मानी गई। यहां यह कह देना चाहिये कि प्रयोग द्वारा परमाणुसंख्या उन्हीं तत्वोंकी निकाली जा सकती है जो या तो स्वयं रवेदार ठोस हैं अथवा जिनके रवेदार ठोस यौगिक प्राप्त हो सकते हैं। पर शून्य समूही तत्व न तो रवेदार ठोस किये जा सकते हैं और न उनके कोई यौगिक मिलनेकी ही सम्भावना है। अतः इनकी परमाणु संख्या प्रयोग द्वारा नहीं निकाली जा सकती। इस विषयमें केवल अनुमान का ही आश्रय लेना पड़ता है।

वायु में निश्चेष्टतत्त्व

हम यह लिख आये हैं कि प्रथम समूही निश्चेष्ट तत्व वायुमें पाये जाते हैं। साधारणतया वायु मण्डलमें चार पदार्थ अधिक मात्रामें पाये जाते हैं—नोषजन, ओषजन; जलकण और कर्बनद्विओषिद। ये निश्चेष्ट तत्व वायुमें बहुत कम मात्रामें पाये जाते हैं जैसा कि निम्न अङ्कोंसे प्रकट है। इसमें वायुको जलकण और कर्बनद्विओषिद्से रहित मानकर गणना की गई है।

आलसीम्—वायुके	१००	भाग में	०·६४१	भाग
नूतनम्	”	५५०००	”	१ ”
हिमजन	”	१८५०००	”	१ ”
गुप्तम्	”	२००००००	”	१ ”
अन्यजन	”	१७००००००	”	१ ”

इन अङ्कोंसे स्पष्ट है कि ये तत्व वायुमें कितने कम पाये जाते हैं। इसलिये इन तत्वोंको दुष्प्राप्य वायव्य भी कहा गया है। यह अवस्था देखते हुए हम सर विलियम रैमज़ेकी बुद्धिकी असीम चतुरताकी प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकते। लोगोंका यह कहना सर्वांशतः शुद्ध है कि रैमज़ेके बराबर सावधानीसे कार्य करने वाला कोई भी वैज्ञानिक उत्पन्न नहीं हुआ है। इसकी कार्य कुशलता इस बातसे स्पष्ट है कि वह अत्यन्ततम न्यूनमात्राको लेकर सब प्रकारके प्रयोग जैसे घनत्व, परमाणुभार, आपेक्षिक ताप, द्रवांक, कथनांक; आदि सब कर सकता था।

प्राप्ति स्थान

रैमज़ेने अधिकतर वायुसे ही ये तत्त्व प्राप्त किये थे। परन्तु इनके अतिरिक्त अन्य भी ऐसे स्थान हैं जहाँ से ये तत्त्व उपलब्ध हो सकते हैं। बहुतसे निर्झर ऐसे पाये गए हैं जिनके जलमें ये तत्व शोषित हैं। हिमजन बहुतसे झरनोंमें पाया गया है। इसके अतिरिक्त यह क्लीवाइट, मोनेज़ाइट थोरियनाइट आदि खनिजोंमें भी व्यापक है। यह लिखा जा चुका है कि ये तत्त्व यौगिक नहीं बना सकते हैं। अतः खनिजोंमें ये यौगिक रूपमें नहीं मिलते हैं। खनिजोंके परमाणुओंके बीचके अवकाशमें ये शोषित रहते हैं। नूतनम् गरम निर्झरोंमें पाया जाता है।

आर्गन भी निर्झरोंके जलोंमें पाया गया है। यह पौधों और पशुओंमें भी शुद्धतासे पाया गया

है। खनिजोंमेंसे भी इसकी प्राप्ति हो सकती है। यह कदाचित् हिमजनके समान रश्मिम्का अवयव-पदार्थ (disintegration product) हो सकता है। कारण यह है कि जिन खनिजोंमें रश्मिम् पाया जाता है उनमें आलसीम् और हिमजनकीभी विद्यमानता बहुधा देखी गई है। इससे यह यह अनुमान होता है कि धीरे धीरे रश्मिम् अपनी शक्तिको क्षीण करके हिमजन और आलसीम्में परिणत होगया है। गुप्तम् और अन्यजनभी कुछ खनिजों और निर्झरोंमें पाये गये हैं।

तत्वोंका पृथक्करण और शुद्धिकरण

खनिज पदार्थोंमेंसे तथा वायुमेंसे दुष्प्राप्य वायव्योंके पृथक् करनेकी अनेक विधियाँ हैं। इनका अब हम सूक्ष्मतः वर्णन करेंगे। पहले हम यहां तीन सामान्य विधियों का सारांशमें वर्णन करेंगे जिनके द्वारा पाँचों तत्वोंके मिश्रणमेंसे प्रत्येक वायव्य पृथक् किया जा सकता है।

पहली विधि—पांचों वायव्य, हिमजन, नूतनम् आलसीम् गुप्तम् और अन्यजनके मिश्रणको क्षीण दबावमें उबलते हुए द्रव वायु द्वारा द्रवीभूत किया जाता है, इस प्रकार हिमजन द्रवीभूत हो जाते हैं और नोषजन ओषजन आदि अलग हो जाते हैं। इनका फिर आंशिक-स्रवण (fractional distillatian) किया जाता है। ऐसा करनेसे गुप्तम् और अन्यजन द्रवावस्थामें रह जाते हैं और हिमजन, आलसीम्, नूतनम् मिश्रण वाष्पीभूत हो जाता है। गुप्तम् और अन्यजनका पुनः आंशिक स्रवण करके पृथक्कर लिया जाता है। हिमजन नूतनम् और आलसीम्का मिश्रण फिर द्रवीभूत किया जाता है और साधारण दबाव पर उबलते हुए द्रववायुके तापक्रमपर इसका फिर वाष्पीकरण किया जाता है। इस प्रकार आलसीम् द्रवावस्थामें रह जाते हैं और हिमजन नूतनम्का मिश्रण वायव्य अवस्थामें रहता है। इस मिश्रणको उबलते हुए द्रव-उदजनके तापक्रमपर रक्खा जाता है। ऐसा करने से नूतनम् ठोस हो जाता है और हिमजन वायव्य रूपमें पृथक् हो जाता है। निम्न सारिणीसे यह विधि भली प्रकार स्पष्ट है।

(देखो सारिणी १)

द्वितीय विधि—आलसीम्, गुप्तम् और अन्यजनके मिश्रणके विश्लेषण करनेमें यह विधि भी उपयोगी प्रमाणित हुई है। जलकण और कर्बन द्विओषिदसे रहित वायु उबलते हुए द्रववायुसे ठंडा किया जाता है। दवाव गुप्तम्के वाष्प दबावसे कम रक्खा जाता है। ऐसा करनेसे गुप्तम्, अन्यजन और आलसीम् द्रव अथवा ठोस अवस्थामें परिणत हो जाते हैं। इनका फिर आंशिक वाष्पीकरण करने पर पहले आलसीम् पृथक् होता है। और गुप्तम् और अन्यजनका मिश्रण रह जाता है। यह मिश्रण पहले १७ सहस्रांश मीटर दबावपर रखा जाता है जिसपर गुप्तम् पृथक् हो जाता है और फिर ०.१७ सहस्रांशमीटर दबावपर रखनेसे अन्यजन पृथक् हो जाता है। इसे पृथक्-दबाव प्रक्रिया (partial pressure method) कहते हैं। निम्न सारिणीसे [२] यह विधि प्रकटकी गई है।

तीसरी विधि—यह तीसरी विधि जिसका हम अब वर्णन करते हैं सबसे अधिक उपयोगी है। इस विधिमें गोला या गरीके कोयलेका विशेष उपयोग किया जाता है। इस पदार्थका महत्व इस बातमें है कि यह भिन्न भिन्न तापक्रमपर भिन्न भिन्न गैसोंको शोषित कर सकता है। जब सब दुष्प्राप्य निश्चेष्ट गैसोंका मिश्रण—१००°श तापक्रमपर इस कोयलेके संसर्गमें लाया जाता है तो आलसीम्, गुप्तम्, और अन्यजन वायव्य तो पूर्णतः शोषित हो जाते हैं। पर हिमजन् और नूतनम्का अधिकांश भाग वायव्य रूपमें शेष रहा जाता है। इस अवशिष्ट मिश्रणको पृथक् कर लिया जाता है। इस हिमजन्-नूतनम् मिश्रणको कोयलेके संसर्गमें द्रववायुके तापक्रमपर (—१८०° से—१६०° श) लाया जाता है जिसके प्रभावसे नूतनम् सम्पूर्णतः शोषित हो जाता है

[सारिणी १]
मिश्रण वायव्य
क्षीण दबाव में उबलते हुए द्रव
वायु द्वारा द्रवीभूत
ओषजन
नोषजन
द्रव आलसीम् मिश्रण
(हि, नू, गु, अ, आ)
आंशिक वाष्पीकरण
वायव्य
हि, नू, आ
द्रव
गु, अ,
पुनर्द्रवीभूत, साधारण
दबावपर उबलते हुए द्रव वायु
के ताप क्रमपर आंशिक वाष्पीकरण
आंशिक वाष्पीकरण
गुप्तम्
अन्यजन
द्रव
आलसीम्
वायव्य
नूतनम + हिमजन् मिश्रण
उबलते हुए द्रव उदजनके
तापक्रमपर रखनेसे
ठोस
नूतनम्
वायव्य
हिमजन
[सारिणी २]
जलकण और कर्बन द्विओषिद रहित
वायु
उबलते हुए द्रव वायुसे
ठण्डा करने पर
द्रव या ठोस मिश्रण
(गु, अ, आ,)
आंशिक वाष्पीकरण
प्रथम अंश
आलसीम्
द्वितीय अंश
मिश्रण
(गु + अ)
पृथक् दबाव प्रक्रियासे
आंशिक वाष्पीकरण
गुप्तम्
१७ स. म.
दबावपर
अन्यजन
०·०१७ स. म.
दबावपर

और हिमजन वायव्य रूपमें पृथक् हो जाता है। जब कोयलेको सामान्य तापक्रम तक गरम करते हैं तो नूतनम् शुद्ध रूपमें उपलब्ध होता है।

यह लिखा जा चुका है कि —१००°श पर कोयले-ने आलसीम्, गुप्तम् और अन्यजनको पूर्णतः शोषित कर लिया था। इस कोयलेको दूसरे कोयलेके गोलेके संसर्गमें रक्खा जाता है। ऐसा करनेसे आलसीम् दूसरे कोयलेके गोलेमें चला जाता है। इस कोयलेके गोलेको सामान्य तापक्रमतक गरम करनेसे शुद्ध आलसीम् प्राप्त हो सकता है। पहले कोयलेमें गुप्तम् और अन्यजनका मिश्रण रह जाता है। इसका—८०°श तक तापक्रम बढ़ानेसे कुछ गुप्तम् प्राप्त हो सकता है। तापक्रमको और बढ़ानेसे गुप्तम् और अन्यजनका मिश्रण मिलने लगता है। दोनोंके मिश्रणको फिर—१५०°श तापक्रमपर कोयलेके संसर्गमें लाया जाता है। फिर यह कोयलेका गोला दूसरे कोयलेके गोलेके संसर्गमें रख दिया जाता है जिसका तापक्रम —१८०°श होता है। ऐसा करनेसे गुप्तम् दूसरे कोयलेमें चला जाता है और पहले कोयलेमें अन्यजन रह जाता है। गरम करने पर दोनों पृथक् पृथक् शुद्धावस्था में प्राप्त हो सकते हैं। सारिणी द्वारा यह विधि भी स्पष्ट की जा सकती है।

इन तीनों विधियोंके उपयोगसे ही हमको सम्पूर्ण निश्चेष्ठ वायव्योंके उपलब्ध करनेकी विधि ज्ञात हो सकती है। अब हम कुछ प्रयोगोंका वर्णन करेंगे जिनसे भिन्न भिन्न वायव्य उपलब्ध किये गये हैं।

हिमजनकी प्राप्ति

यह लिखा जा चुका है कि हिमजन क्लीवाइट आदि खनिजोंसे भी उपलब्ध हो सकता है। खनिजको या तो अकेले ही गरम किया जाता है या इसके साथ पांशुज उद्जन गन्धेत मिला कर गरम करते हैं। इस प्रक्रियाके लिये काँचकी एक मोटी नलिका लीजाती है जिसमें खनिज रक्त-तप्त किया जाता है। इस नलिकाका अग्रिम भाग जल प्रवाह द्वारा शीतल रखा जाता है। गरम होनेसे जो वायव्य पदार्थ उपलब्ध होते हैं उन्हें एक वायुशून्य नलिकामें ले जाया जाता है। इस नलिकाका सम्बन्ध एक दबावमापक (manometer) से होता है और साथही साथ एक बर्तन दूसरेसे भी रहता है जिसमें दाहक पांशुज क्षार रहता है। यह क्षार कर्बन द्विओषिद् शोषित कर लेता है। इस कर्बनसे निकला हुआ हिमजन पारद संचक (mercury reservoir) के ऊपर एकत्रित कर लिया जाता है।

खनिजसे हिमजन प्राप्त करनेकी दूसरी विधि साधारण है। एक बड़े काँचकी बोतल में थोड़ा सा खनिज रक्खा जाता है। और लम्ब नलिका-कीप (thistle funnel) से बूंद बूंद करके हलका गन्धकाम्ल डाला जाता है। ऐसा करनेसे हिमजन गैस उत्पन्न होती है। यह निश्चय है कि इसके साथ उद्जन, नोषजन आदिकी अशुद्धियाँ भी विद्यमान रहती हैं। इन दोनों विधियोंमें यदि मोनोज़ाइट खनिजका उपयोग किया जाय तो निस्सन्देह शुद्ध हिमजन प्राप्त हो सकता है।

अशुद्ध हिमजनसे शुद्ध हिमजनके पृथक् करनेकी कई विधियाँ हैं। तप्त चूने तथा मगनीसम् चूर्णके ऊपर यह अशुद्ध मिश्रण प्रवाहित किया जाता है। इसके उपरान्त रक्त तप्त लोहके ऊपर इसे प्रवाहित करते हैं। ऐसा करनेसे नोषजन और उद्जन उक्त पदार्थों द्वारा शोषित हो जाते हैं। यदि हिमजन के साथ आलसीम् भी विद्यमान हो तो क्षीण दबावमें उबलते हुए द्रव वायु-द्वारा शीतल करके आलसीम् और नोषजन पृथक् किये जाते हैं। यदि नूतनम् भी विद्यमान हो तो 'प्रथम-विधि' के अनुसार इसे शुद्ध कर सकते हैं।

दूसरी विधि डीवार नामक वैज्ञानिककी निकाली हुई है जिसका हम तीसरी विधिके अन्तर्गत वर्णन कर आये हैं। गरीका कोयला द्रव-वायु-तापक्रमपर हिमजनके अतिरिक्त सम्पूर्ण वायव्योंको शोषित कर लेता है। एक और विधि भी शुद्धिकरणके हेतु उपयुक्त प्रमाणित हुई है। महीन चूर्ण पररौप्यम् एक शून्य-नलिकाकी दीवारों पर जमा किया जाता है और विद्युत प्रवाह संचालित किया जाता है। ऐसा करनेसे केवल हिमजनकी समुचित मात्रा दीवारोंमें शोषित हो जाती है। अन्य वायव्य शोषित नहीं होते। दीवारोंको गरम करनेसे स्वतन्त्र हिमजन पृथक् हो जाता है। जेकुरेड और पेरटने भी एक ऐसीही विधि निकाली है। उसका सिद्धान्त यह है कि ११००° श तापक्रम पर द्रवित कार्टज पत्थर हिमजन और उद्जन द्वारा ही भेदनशील है, अन्य द्वारा नहीं। इसके आधार पर कार्टज पत्थरका एक गोला जिसे पम्प-द्वारा शून्य कर लिया गया है लिया जाता है। इस गोलेके चारों ओर एक दूसरी नलिका होती है जिसमें क्लीवाइटसे निकला हुआ वायव्य-मिश्रण रक्खा जाता है। कार्टजको उक्त तापक्रम तक गरम किया जाता है। इस तापक्रम पर उद्जन और हिमजन कार्टजके गोलेमें चले जाते हैं तथा अन्य वायव्य बाहरकी नलिकामें शेष रह जाते हैं।

आर्गन की प्राप्ति

हम आरम्भमें लिख आये हैं कि रैमज़े और

रैलेने आलसीम्की प्राप्तिके लिये दो युक्तियाँ निकाली थीं। पहिली युक्तिमें वायुका नोषजन रक्त तप्त मगनीसम् द्वारा शोषित कर लिया जाता है। इसका प्रयोग इस प्रकार किया गया था। वायुसे
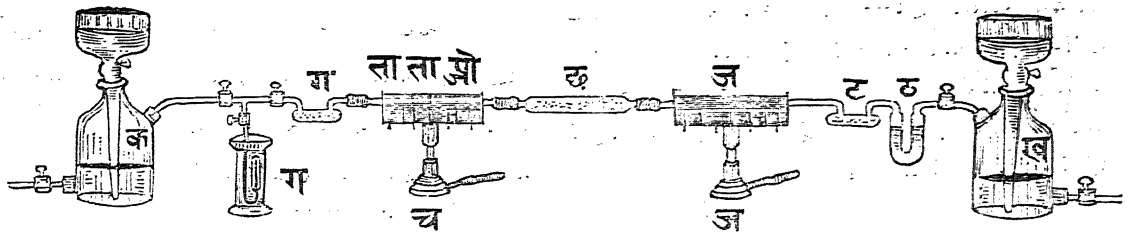
प्राप्त नोषजन-मिश्रण एक बड़े संचक(क) में रक्खा जाता है, जिसमें से इस मिश्रणको कई अन्य-नलिकाओंमें ले जाया जाता है जहाँ यह शुष्क होजाता है। फिर तप्त ताम्र और ताम्र ओषिद मिश्रण पर (च) प्रवाहित करनेसे इसमें ओषजन (जो नोषजनके साथ कदाचित वर्तमान हो) शोषित हो जाता है। फिर वायव्य-मिश्रण सोडा चूर्ण (छ) (दाहक सैन्धक क्षार और चूनेका मिश्रण) पर प्रवाहित किया जाता है जिससे कर्बन द्विओषिद शोषित हो जाता है। तदुपरान्त रक्ततप्त मगनीसम्के ऊपर (ज) प्रवाहित करनेसे मगनीस नोषिद ($म_3नो_2$) बन जाता है। इसके पश्चात् स्फुर पञ्चोषिद 'ट' ($स्फु_2 ओ_5$) द्वारा जलकण भी पृथक कर लिये जाते हैं। एक बड़े संचक 'ख' में आलसीम् मिश्रण संकलित कर लिया जाता है। इस मिश्रणमें दुष्प्राप्य नूतनम्, हिमजन, गुप्तम् आदि सभी विद्यमान रहते हैं। यदि शुद्ध आलसीम् प्राप्त करना हो तो—'तत्वोंके शुद्धिकरण तथा पृथक्करण' शीर्षक पहली विधि द्वारा प्रयोग करना चाहिये।

दूसरी विधि यह थी। नोषजनको विद्युत-शक्ति द्वारा ओषजनसे संयुक्त किया जाता है और क्षारकी उपस्थितिमें नोषिकाम्ल बना लिया जाता है। इस प्रयोगके लिये ५० लिटरका कांचका गोला लिया जाता है जिसमें आयतनसे ११ भाग ओषजन और ९ भाग वायु रक्खा जाता है। इसमें पररौप्यम्के भारी बिजलोद (electrode) लगे रहते हैं। ६००० से ८००० वोल्टकी विद्युत् प्रवाहितकी जाती है। और गोलेके अन्तरीय भागमें दाहक सैन्धक क्षारकी तीव्रधार छोड़ी जाती है। इस प्रकार एक अश्वबल (horse-power) के व्ययसे एक घंटेमें २० लिटर वायव्य शोषित हो जाता है। अवशिष्ट ओषजनको परमाजूफलोल और क्षार-द्वारा शोषित कर लिया जाता है। यह विधि कैवण्डिशकी विधिका परिमार्जित रूप है।
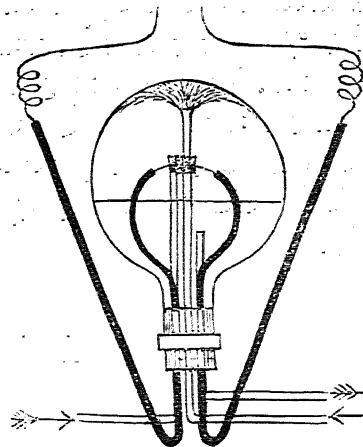
आजकल व्यापारिक सफलताके लिये फिशर और रिङ्गेकी विधि कार्य्यमें लायी जाती है। वायुको ९० भाग खटिक कर्बिद और १० भाग खटिक हरिदके मिश्रणमें प्रवाहित किया जाता है। यह प्रयोग लोहेके भपकेमें किया जाता है और तापक्रम ८००°का रहता है। नोषजन खटिक श्यामेमिदमें (cyanamide) परिणत हो जाता है, ओषजनका खटिक कर्बनेत बन जाता है :—

१. $ख क_2 + नो_2 = ख क नो_2 + क$
(खटिक श्यामेमिद)

२. $क + ओ_2 = क ओ_2$

३. २ खक$_2$ + ३ क ओ$_2$ = २ खक ओ$_3$ + ५ क
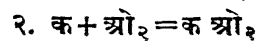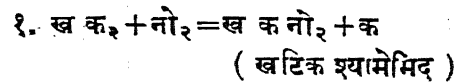
समीकरण २ के साथ-साथ कर्बन-एक-ओषिद भी बन जाता है :—क + ओ = क ओ। अवशिष्ट वायव्य और कर्बन-एक-ओषिद ताम्र ओषिद पर प्रवाहित किये जाते हैं जिसमें कर्बन-एक-ओषिदका कर्बन-द्विओषिद बन जाता है, जिसे दाहक पांशुज द्वार शोषित कर लेता है।
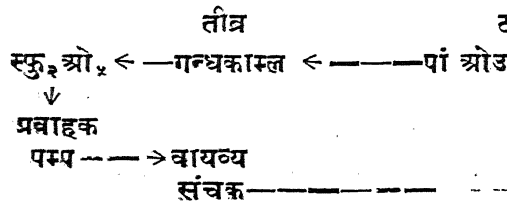
४. क ओ + ता ओ = क ओ$_2$ + ता

५. क ओ$_2$ + २ पां ओ उ = पां$_2$ क ओ$_3$ + उ$_2$ ओ

अवशिष्ट वायव्यको गन्धकाम्ल और स्फुर पञ्चोषिदमें प्रवाहित करके शुष्क किया जा सकता है। जलकण इनमें शोषित हो जाते हैं। निम्न प्रकारसे यह विधि प्रदर्शितकी जा सकती है।
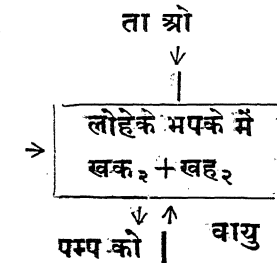
बाजारू ओषजनमें नोषजन बहुतही कम होता है पर इसमें ३०°/ आलसीम् रहता है। तप्त ताम्र से ओषजन और मगनीसम्से नोषजन पृथक करके आलीसम् मिश्रण प्राप्त हो सकता है। उपर्युक्त विधियोंसे प्राप्त आलसीम्में अन्य दुष्प्राय वायव्य भी होते हैं जिन्हें पूर्वोक्त-विधियोंसे पृथक् किया जा सकता है।

वायव्योंके भौतिक गुण

इन तत्वोंके भौतिक गुण प्रकट करनेके लिये यहाँ एक सारिणी दी जाती है। यह कहनेकी आवश्यकता नहीं है कि इन गुणोंकी परीक्षा करनेके लिये बड़ा परिश्रम उठाना पड़ा था।

	हिमजन He	नूतनम् Ne	आलसीम् Ar	गुप्तम् Kr	अन्यजन Xe	नीटन
रंग, गन्ध, स्वाद	कोई नहीं	नहीं	नहीं	नहीं	नहीं	नहीं
$\frac{\text{ता}_\text{द}}{\text{ता}_\text{आ}} = \text{ग} \frac{Cp}{Cv}$	१·६५२	१·६४२	१·६५	१·६८९	१·६६६	—
घनत्व (ओ=१६)	१·९९९	१०·१	१९·९५	४१·५०६	६५·३५	१११·५
अणुभार=परमाणुभार	३·९९	२०·२	३९·९	८२·९२	१३०·२२	२२२·४
क्वथनांक	४·५° के	२५° के	८६° के	१२२°के	१६३°·९ के	२११°के
द्रवांक	—	—२५०°श ?	—१८९·६°श	—१६९°	—१४०° श	७१°श

हिमजन के गुण

हिमजन हलका वायव्य है। एक लिटर हिमजन का भार सामान्य दबाव पर ०·१७८५९ ग्राम होता है। बायलने गैसोंके सम्बन्धमें यह सिद्धान्त निश्चित किया था कि आदर्श गैसके दबाव और आयतन का गुणनफल सदा एक स्थिरमात्रा होती है अर्थात् द × आ = स्थिरमात्रा। हिमजन गैस इस नियमका पालन १४७ स॰ म॰ से ८३८ स॰ म॰ दबाव के बीचमें करती है। इस प्रकार ग्रेहम नामक वैज्ञानिकने वायव्योंके विषयमें सं० १८९० वि० में यह सिद्धान्त निकला था वायव्यके निस्सरण (biffusion) का वेग उसके घनत्व के वर्गमूलका व्युत्क्रम अनुपात होता है। अर्थात् यदि किसी

गैसका घनत्व घ है तो वेग = $\sqrt{\frac{१}{घ}}$

पर यदि हिमजनके विषयमें प्रयोग किया जाय तो पता चलेगा कि यह वायव्य इस नियमका पालन नहीं करता है। उदजनके स्थानमें हिमजनका उपयोग गुब्बारोंमें किया जाने लगा है क्योंकि इस गैसमें आग लग जानेका कोई डर नहीं है।

नूतनम् के गुण

इसके किरणचित्रमें लाल और नारंगी प्रदेशोंमें रेखाएं हैं। जब किसी नलिका में यह गैस पारदके साथ मिलाई जाती है तो एक लाल चिनगारी दिखाई देती है जो १२० से २०० स॰ म॰ दबावतक उतनीही चमकीली रहती है जितनी सामान्य वायु मण्डलके दबावपर। ऐसी-ऐसी नलिकायें तैयार की गई है जिनमें किसी किसी स्थान पर तो प्रकाश प्रकट हो और किसी पर नहीं। इसका कारण यह है कि भिन्न भिन्न स्थानोंमें नलिकायें भिन्न भिन्न मात्रातक गरम की गई हैं।

आलसीम्‌के गुण

आलसीम् भी ग्रेहमके वायु-निस्सरण नियमका पालन नहीं करता है। इसके निस्सरणका वेग उक्त नियम द्वारा सूचित नियमसे अधिक है। लोगोंने बहुत यत्न किया कि यह अन्य-तत्त्वोंसे संयुक्त हो जाय पर सभी प्रयोगोंमें असफलता प्राप्त हुई। मगनीसम्, खटिकम्, शोणम्, खटिक-कर्बिद, ओषजन, पांशुजम्, ताम्र-ओषिद, टिटेनम्, पिनाकम्, उदजन, हरिन्, गन्धक, स्फुर आदि अनेक तत्त्वोंके साथ संयुक्त करनेकी चेष्ठा की गई पर आशाजनक सफलता नहीं प्राप्त हुई है। पारद भी ८००° श तापक्रमपर एक अणुक हो जाता है और किसी भी तत्वसे संयुक्त नहीं हो सकता है। अतः यह सम्भव हो सकता है कि तत्वोंकी निश्चेष्टताका तापक्रमसे कुछ सम्बन्ध हो। कुछ प्रयोग ऐसे किये गये हैं जिनसे अनुमान होता है कि आलसीम् अवश्य कुछ यौगिक बनाता है। इस अनुमानकी सत्यता के विषयमें अभी कुछ नहीं कहा जा सकता।

गुप्तम् और अन्यजन गुण

विद्युत संचार करनेपर गुप्तम् पीली-बैंगनी रोशनी देता है। इसका किरण चित्र विद्युत संचार की अवस्था पर निर्भर है। किरण चित्र की कुछ रेखायें 'ओरोरा बोरियेलिस' (मेरु ज्योति) की रेखाओं से मिलती जुलती हैं।

अन्यजन गैस पानी में समुचित मात्रा में घुलनशील है। हिमजन और नूतनम्‌के समान इसके भी दो किरण-चित्र होते हैं।

द्रवी-करण

इन दुष्प्राप्य वायव्योंके द्रवीकरणका अधिकांश श्रेय केमरलिंग ओन्सको है। ओन्स महोदय ने मोनेज़ाइट रेणुकासे हिमजन उपलब्ध किया और डीवारकी प्रक्रियासे कोयले द्वारा इसे शुद्ध किया। तदुपरान्त गैस एक यंत्रमें प्रवाहित की जाती है जहां यह द्रव-वायुके तापक्रमतक ठण्डी की जाती है। और तत्पश्चात् ९० स. मा. दबावमें उबलते हुए द्रव उदजन द्वारा इसका तापक्रम १५° के कर लिया जाता है। फिर यह गैस हैम्पसनके यन्त्र विशेषमें प्रवाहित की जाती है। इस प्रकार तीन

घंटेमें ३०० लिटर गैससे ६० घन. श. द्रव हिमजन प्राप्त हो जाता है। इसका घनत्व ०·१५४ है। यह रंगरहित पदार्थ है। इससे अधिक हल्का कोई द्रव या ठोस नहीं पाया गया है। क्वथनांक ४·३° केल्विन है। क्षीण-दबावमें उबलनेसे इसका तापक्रम ०,८०० केल्विनतक गिर जाता है तिसपर भी यह द्रवही बना रहता है। इस तापक्रमपर धातुओंकी विद्युत् बाधा बिल्कुल नष्ट हो जाती है और जनित विद्युत् धारा कई दिनों तक बराबर चल सकती है। इसका विपुल तापक्रम २६७·८४° है और विपुलदबाव २·२६ वायु मण्डल है।

द्रव उद्जनके उबलते हुए तापक्रमपर सामान्य दबावसे नूतनम् द्रवीभूत हो सकता है। इसका विपुल तापक्रम—२२८·७१ है और विपुल दबाव २६·८६ वायुमण्डल है। आलसीम् द्रवीभूत भी हो सकता है और ठोस भी। इस कार्य्यमें कुछ सरलता इसलिये होती है कि इसका द्रवांक और क्वथनांक ताजा बनाये हुये द्रववायु और कुछ समय रक्खे हुए द्रव-वायुके बीचमें है। द्रव आलसीम् रंग रहित पारदर्शक है। क्वथनांक (—१८६° श) पर इसका घनत्व १·४०४६ है। गुप्तम् उबलते हुए द्रव-वायुके तापक्रमके ऊपरही द्रवीभूत हो जाता द्रववायुमें ठण्डा करनेसे यह ठोस भी हो सकता है।

रेडियो

(विज्ञान भाग २८ सं० १ पृष्ठ १७ से आगे)

[ले०—श्री गोविन्दराम तोशनीवाल, एम एस-सी]
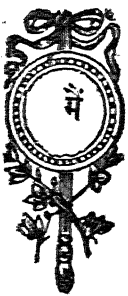
आपको पूर्व लेख में बतला चुका हूँ कि आकाश वाणी पकड़ने का कार्य कई वस्तुओं द्वारा हो सकताहै। जैसे किः—

(१) शोधक तड़ित् खंड (Rectifying spark gaps)

(२) कोहिरर (Coherers)

(३) चुम्बकीय सूचक (Magnetic detectors)

(४) विश्लेषण सूचक (Electrolytic detectors).

(५) तनाव सूचक (Capillary detectors)

(६) रवा (Crystal)

(७) कपाट (Thermionic valve)

(८) पारा चाप सूचक (Mercury arc detectors)

इनमें से कपाट को छोड़ कर सबसे सरल उत्तम वस्तु रवा है, जिस का वर्णन हम आपको पहले दे चुके हैं। इस लेख में हम कपाट को छोड़ कर और सब का संक्षिप्त में वर्णन करेंगे।

(१) शोधक तड़ित् खंड—यह प्रयोग से सिद्ध किया जा चुका है कि दो धातु के गोलों के बीच की बाधा धारा की दिशा पर निर्भर है। (क) यदि दोनों गोले समान है और उनमें से एक गर्म और दूसरा ठंडा है तो धारा ठंडे गोले की ओर अधिक आसानी से बहेगी। अर्थात् इसकी बाधा कम होगी। (ख) यही बात दोनों गोलों के छोटे बड़े होने पर भी पाई जाती है। इस प्रकार इन गोलों पर समान अवस्था भेद धन अथवा ऋण उत्पन्न करने से हमको शोधित धारा मिल सकती है।

श्री विलार्ड (Villard) ने एक शीशे के गोले में एक पतला तार और दूसरी तरफ एक मोटा सर्पल लगा कर इसमें से हवा निकाल ली। फिर यह बतलाया कि तार के सर्पल की तरफ बहने वाली धारा के लिये तड़ित खंड की बाधा कम होती है परन्तु धारा के बदलने पर बाधा बढ़

जाती है। इससे मालूम होता है कि पतले तार से चलकर सर्पल से टकराने पर धनाणु (Positive-ions) सर्पल से बहुत से ऋणाणु छुटा देते हैं। इस लिये इस समय बाधा कम होती है। परन्तु जब धारा उलटी दिशा में बहती है तो धनाणु छोटे तार से टकराते हैं और छोटे तार की सतह (Surface) कम होने के कारण ऋणाणु की मात्रा कम होती है।

(२) कोहिरर—एक शीशेकी नली (Tube) में धातुके बिजलोदोंके बीचमें लोह चूर्ण भर दिया जाता है। तो यह पाया गया है इस प्रकारकी नली की बाधा धाराकी दिशा पर निर्भर है परन्तु थोड़े समयके पश्चात जब लोहेके छोटे २ टुकड़े एक दूसरेसे बहुत अच्छी तरह जुड जाते हैं और यह निकम्मा हो जाता है। इसलिये समय समय पर इसे थोड़ा थोड़ा थपथपानेकी आवश्यकता होती है।

(३) चुम्बकीय सूचक—इस विधिमें मारकोनी ने एक नर्म लोहेके तारके दोनों सिरोंको जोड कर चर्खियों पर इस प्रकार घुमाया कि उसका कुछ हिस्सा हर समय चुम्बकीय क्षेत्र(magnetic field) में से गुजरता था। इसलिये यह चुम्बक बन जाता था। यही हिस्सा एक ऐसी वेठनमें से गुजरता था कि जिसका एक सिरा आकाशी तारसे और दूसरा पृथ्वीसे जोड़ दिया गया था। लोहे को चुम्बक बनानेमें परमाणुओंको एक दिशामें करनेकी आवश्यकता होती है। इस लिये अगर झूलन धारा इस वेठनमें से होकर बहती है तो लोहे के परमाणुभी धाराके साथ साथ झूलनेकी कोशिश करेंगे। और इस प्रकारकी गड़बड़से तार का चुम्बकत्व जाता रहेगा। इसका फल यह होगा कि उप-वेठनमें, जिसके साथ वाणी ग्राहक जुड़ा हुआ है धारा उत्पन्न होगी और आवाज निकलेगी।
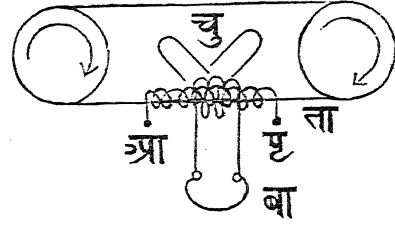
(चित्र नं० १)

चु—चुम्बक

ता—नर्म लोहे लोहे का तार

आ—वेठन का आकाशी तारको जाने वाला सिरा

पृ—वेठन का पृथ्वीको जाने वाला सिरा।

वा—वाणी ग्राहक।

(४) विश्लेषण सूचक—हम यह भली भांति जानते हैं कि जब हम तारों द्वारा किसी वाहक घोलमें से विद्युत धारा वहाते हैं तो हवा के छोटे छोटे बुद बुदे निकल कर बिजलोदोंके चारों तरफ लिपट जाते हैं। और घोलकी बाधा अधिक हो जाती हैं। इसको बाधकीय (polarised) दशा कहते हैं। अब यदि धाराकी दिशा बदली जाती है तो बाधकता (polarisation)के घटनेसे घोलकी बाधा कमहोजाती है। इस प्रकार इस तरह का घोलभी झूलन धाराको सीधी धारामें परिवर्तन करने योग्य हो जाता है।
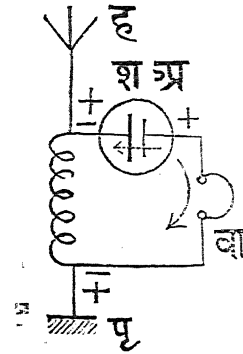
चित्र नं० २

ह—हवाई तार।

पृ—पृथ्वी।

श—शीशा का विजलोद्।
अ—स्फटम् का विजलोद्।
वा—वाणी ग्राहक।

(४) तनावसूचक—जब झूलन अवस्था भेद किसी दो वाहक द्रवों (conducting liquids) के मिलने वाले पृष्ठ पर उत्पन्न किया जाता है, तो सतह पर पृष्टतनाव (surface tension) अवस्थाके साथ बदलता है और थोड़ेसे स्थित अवस्था भेद (steady potential) की मोजूदगीमें पृष्ठ तनाव बराबर मात्रामें कम या अधिक नहीं होता। फलतः एक दिशामें तनाव अधिक होनेसे पृष्ठ (meniscus) एक दिशामें थोड़ासा हट जाता है।
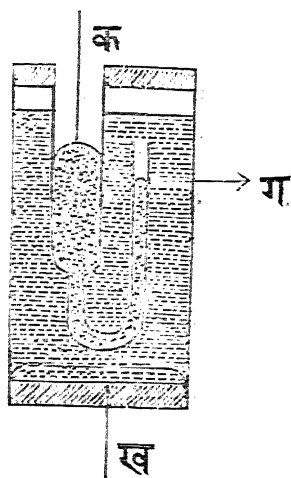
(चित्र नं० ३)

(५) लिपमैन तनावसूचक (Lippmann capillary detector) दिखाया गया है। एक शीशेके बरतनके पेंदेमें थोड़ा सा पारा डालकर ऊपर थोड़ा सा गंधक के तेज़ाब का हलका घोल भर दिया जाता है इसमें एक U सूरतकी नाली है इसका एक हिस्सा मोटा है और दूसरा बहुत पतला। इसमें पारा भर दिया जाता है। क और ख दो विजलोद् एक अवस्था मापक यंत्र से जोड़ दिए जाते हैं। अब यदि क और ख केबीचमें झूलन अवस्था उत्पन्न कीजावे तो ग नीचे आने लगता है।

(६) रवा—विज्ञान भाग २८ सं० १ पृष्ट १७ में देखो।

(७) कपाट—आगामी अंकमें दिया जावेगा।

(८) पारा चाप शोधकः—एक कांचकी नली मेंथोड़ा पारा भर कर दो बिजलोद दोनों ओर से डालने के बाद इस नलीमेंसे हवा निकाल कर इसे बंद कर देते हैं। अब अगर पारेसे छूने वाले विजलोदको एक बाटरीके ऋण सिरेसे और दूसरेको धन सिरेसे लगाकर नलीको थोड़ा टेढ़ा करके अगर नलीको फिरसे सीधी करते हैं तो गरमी पाकर पारा भाप रूप होजावेगा और एक चाप (arc) बनकर तेज प्रकाश देने लगेगा। यदि बाटरीका वोलटेज बदलते जावें और नलीमें होकर बहने वाली धारा नापी जावे तो मालूम होगा कि धारा थोड़ी देर बाद वोलटेजके साथ बढ़ना बंदकर देती है अर्थात् सम्पृक्त दशा (saturation) को पहुँच जाती है। इसलिए यह स्पष्ट है कि इससे हमको शोधित (rectified) धारा मिल सकती है।

जल-लोक

[लेखक—सत्यप्रकाश एम० एस-सी०]
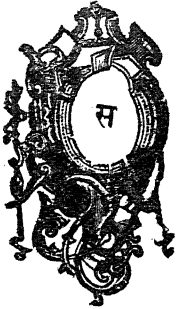
म्पूर्ण पृथ्वीको हम उत्तरी गोलार्ध और दक्षिणीगोलार्धमें बांट सकते हैं। उत्तरीगोलार्धका अधिकांश स्थल है पर दक्षिणीगोलार्धमें स्थलकी अपेक्षा जलका भाग कहीं अधिक है। यह जल इस सृष्टिकी एक परमोपयोगी वस्तु है और यह कई रूपमें पाया जाता है।

हम प्रत्येक दिन जलका व्यवहार करते हैं। भोजनके पचानेमें एवं शरीरको शुद्ध और स्वस्थ रखनेमें यह हमारे काममें आता है। जलके तीन मुख्य रूप हैं। जिस जलको हम पीते हैं, या जो जल नदियों और समुद्रोंमें है वह बहनेवाला पदार्थ है। उसको आप एक वर्तनसे दूसरे वर्तनमें उँडेल सकते हैं। उसको बूँद-बूँद करके टपका सकते हैं। जल ढाल पाकर बहने लगता है, इसी लिये सड़कोंकी नालियाँ ढाल देकर बनाई जाती हैं। मकानोंके आंगनोंमें भी ढाल दिया जाता है जिससे कि पानी सम्पूर्ण आंगनमें जमा न हो जाय, प्रत्युत बहकर नालीसे निकल जाय। ढाल पाकर वह निकलना पानीका मुख्य गुण है। इस प्रकारके जलको द्रव-जल कहते हैं।

जलका एक दूसरा रूपभी आपने देखा होगा। गरमीके दिनोंमें शर्बत बनाते और पानीको ठंडा करनेके लिये बर्फ़का उपयोग किया जाता है। यह वर्फभी पानीसेही बनाई जाती है। इस वर्फमें पानीके समान बहनेका गुण नहीं है। पानीको जिस वर्तनमें रखियेगा वह उसीका रूप धारण कर लेगा। लोटेमें पानीका रूप लोटेका-सा हो जायगा और गिलासमें गिलासका-सा। पर वर्फमें यह बात नहीं है। वर्फका टुकड़ा यदि गलकर पानी न वन जाय तो इसका रूप प्रत्येक वर्तनमें एक-सा ही रहेगा। पानीके टुकड़े नहीं किये जा सकते हैं पर वर्फको आप तोड़ सकते हैं। पानीकी बूंदे टपकाई जा सकती है पर बर्फकी बूंदे नहीं होती हैं। पर यह वर्फ पानीहीका दूसरा रूप है। वर्फके गल जानेपर पानी ही शेष रहता है। पानीको शीघ्र ठंडा करके बर्फमें परिणत कर सकते हैं। जलके इस दूसरे रूपको ठोसजल कहते हैं।

गरमियोंमें छोटे-छोटे तालाव और नदियाँ सूख जाती हैं। बड़ी नदियोंमें भी पानी कम रह जाता है। भीगे हुए कपड़े धूपमें फैलानेपर सूख जाते हैं। इन सब पदार्थोंका जल गरमी पाकर कहाँ चला जाता है? वस्तुतः यह जल नष्ट नहीं हो जाता है, पर यह दूसरा रूपधारण कर लेता है। यह भाप वनकर उड़ जाता है। भापको हम देख नहीं सकते हैं। पतीलीमें पानी गरम करनेसे भी भाप वनती है। इस भापको ठंडा करनेसे पानी फिर मिलता है। भाप हवासे हलकी होती है अतः हवामें ऊपर उठने लगती है। यह भाप पानीका तीसरा रूप है। इसे वायव्य जल कहते हैं।

जाड़ेके दिनों में कोहरा छाया रहता है। प्रातःकाल और सायंकालके समय तथा रातमें जब ठंडक अधिक पड़ती है, वायुमंडलमें भापके अदृष्ट कण ठंडे होकर ठोस जलमें परिवर्तित होते रहते हैं। ठोस जलके ये कणही कोहरा कहलाते हैं। इसी प्रकार ओला भी ठोस जल है।

हमारे देशमें जाड़ेके दिनोंमें जलका तापक्रम बहुधा १०°श से २५°श तक रहता है और गर्मीमें २५° श से ३५°शतांश तक इसका तापक्रम हो जाता है। ठंडे प्रदेशोंमें शीत कालमें वायु-मंडलका तापक्रम ०°से १०° श तक कम हो जाता है और ऐसी अवस्थामें वहां जाड़ेकी ऋतुमें सर्वत्र बर्फ जम जाती है। वर्फका तापक्रम ०°श माना जाता है।

पानी प्रत्येक तापक्रम पर ही कुछ न कुछ भाप बनकर उड़ा करता है। पतीलीका पानी १००° श तापक्रमपर उबलने लगता है और उबलनेके पश्चात्

ही भाप बनकर उड़ता है पर तालाब और नदियों-को जो गरमीके दिनोंमें सूख जाते हैं हमने कभी उबलते हुए नहीं देखा। इनके पानीका तापक्रम ३०°—४०° श से ऊपर तो शायदही कभी जाता होगा। अतः यह बात ध्यानमें रखनी चाहिये कि पानी प्रत्येक तापक्रमपर भाप बनता रहता है।

पानीका उबलना वायुमंडलके दवावपर निर्भर है। वायुमंडलका दवाव प्रत्येक स्थानपर भिन्न-भिन्न होता है। पृथ्वीके निकट वायुमंडलका दवाव अधिक होता है और हम ज्यों-ज्यों ऊँचे किसी पर्वत पर चढ़ते जायँगे, यह दवाव कम होता जायगा। भूमंडलपर पानी १००° श का ताप देने-पर गरम होता है तो ऊँचे पर्वतोंपर यह ८०° श परही उबलने लगेगा।

पृथ्वीके इस जल-लोकमें जलके उपर्युक्त तीन रूपोंका विशेष महत्व है। सागरोंका द्रव जल सब ऋतुओंमें और ग्रीष्म ऋतुमें विशेषतः भाप बन कर आकाशमें ऊपर चढ़ जाता है। यह भाप ऊपर सर्वत्र फैल जाती है। ज्यों-ज्यों भाप ऊपर चढ़ती जाती है, ठंडी होती जाती है। एक विशेष अवस्था तक ठंडीहोनेपर भापके कण द्रव जलकी बूँदोंमें परिवर्तित होने लगते हैं। यह द्रव बूँदें और भापका मिश्रणही बादल कहलाते हैं। भाप स्वयं अदृश्य है अतः आकाशके काले-काले बादलोंको केवल भाप न सम-झना चाहिये प्रत्युन द्रव जलकी बूँदें हैं जो शेष भापके सहारे आकाशमें भ्रमण कर रही हैं! यह भाप और जलका मिश्रण और अधिक ठंडा होनेपर पूर्णतः द्रव जल बन जाता है और मूसलाधार पानीके रूपमें बर-सने लगता है। यदि यह पानी कहीं और भी अधिक ठंडा हो गया तो श्वेत ओलोंकी वर्षा होने लगती है।

इस प्रकार सागरोंका द्रव जल नित्य प्रति बादल बनकर उड़ने लगता है और ये बादल फिर द्रव जलमें परिवर्तित होकर हमारी भूमि पर बरसते हैं। पानीके ठोस रूप बरफसे भी हमें नित्य काम पड़ता है। जाड़ेके दिनोंमें पर्वतों पर बर्फ जमा हो जाती है और गरमीके दिनोंमें यह पिघलने लगती है। जितनी बड़ी-बड़ी नदियाँ इन हिमच्छा-दित पर्वतोंसे निकलती हैं, वे गरमीके दिनोंमें भी सूखने नहीं पाती हैं। शीत ऋतुमें जमी हुई बरफ गरमीमें पिघल-पिघल कर गंगा-यमुना ऐसी नदियोंको पानी प्रदान करती है।

पानीका मुख्य गुण बहना है। यह बहना दो कारणों से होता है। पहला कारण ढाल है। पानी जिधरको ढाल पाता है उधरही बह निकलता है। गंगा, यमुना, गोमती, सरयू आदि संयुक्त प्रान्तकी नदियाँ उत्तर पश्चिमसे निकलकर कुछ दक्षिणकी ओर चलती हैं और फिर पूर्वकी ओर बहने लगती है। इससे मालूम होता है कि संयुक्त प्रान्त और फिर बिहारके प्रदेशका ढाल पूर्वकी ओरको है। पंजाबकी नदियाँ पहले तो कुछ उत्तर पश्चिमको बहती हैं और फिर दक्षिण पश्चिम दिशामें मुड़ जाती हैं। उनके इस बहावसे उस प्रान्तके ढालका कुछ अनुमान हो सकता है।

समुद्रमें धाराएँ बहा करती हैं। इनके बहनेका मुख्य कारण ढाल नहीं होता है। इस कारणको समझनेके लिये हमें एक दूसरे दृश्य पर ध्यान देना होगा। सब लोग यह जानते हैं कि गरम करने पर प्रत्येक पदार्थमें वृद्धिहो जाती है। इसी प्रकार पानीभी गरम करने पर आयतनमें बढ़जाता है। आयतन बढ़ जानेका अर्थ यह है कि गरम पानी ठंडे पानीकी अपेक्षा घनत्वमें हलका पड़ जाता है। यह भी सब जानते हैं कि हलकी वस्तु भारी वस्तु पर तैरती है। लकड़ी पानीसे हलकी होती है अतः यह पानी पर तैर सकती है। तैल भी पानी पर हलके होनेके कारण तैरता है। इसी प्रकार यदि गरम पानी और ठंडा पानी लिया जाय तो गरम पानीकी सतह ठंडे पानी-की सतहके ऊपर जानेका यत्न करेगी और ठंडे पानीकी सतह गरम पानीके नीचे आ जावेगी।

एक गिलासमें ठंडा पानी लीजिये और इसकी पेंदीको एक सिरे पर गरम कीजिये। गरम करने पर पेंदीके पासका पानी गरम हो जावेगा और गरम हो जानेके कारण यह हलका पड़ जावेगा। हलका गरम पानी भारी ठंडे पानीके ऊपर उठने लगेगा और दूसरे सिरपर ठंडा पानी नीचे पेंदीकी ओर बहने लगेगा। जबतक सब पानी एकसा गरम न हो जायगा, ऊपरसे नीचे और नीचेसे ऊपर बहनेकी यह प्रक्रिया होती रहेगी।

समुद्रकी धाराओंके बहनेका भी यही कारण है। भूमध्य रेखाके निकटके समुद्र प्रत्येक ऋतुमें ही अधिक ताप पाते हैं और उत्तरी तथा दक्षिणी कटिबन्धके समुद्रोंका जल ठंडा रहता है। अतः भूमध्यरेखाके निकटके समुद्रोंका जल गरम हो जानेके कारण हलका पड़ जाता है और यह उत्तर और दक्षिणकी ओर गरम धाराओंके रूपमें बहने लगता है। इसी समय उत्तर और दक्षिणके शीत कटिबन्धोंका ठंडा जल इस गरम जलके रिक्त स्थानकी पूर्तिके लिये उत्तर और दक्षिणसे भूमध्यरेखाकी ओर ठंडी धाराओंके रूपमें जाने लगता है। इस प्रकार तापक्रमके भेदके कारण समुद्रोंमें गरम और ठंडी धाराओंका जन्म होता है। गरम धारायें जिन शीत प्रधान देशोंके समीप बहने लगती हैं वहाँकी जलवायुको कुछ गरम बना देती हैं। इसी प्रकार शीत धारायें निकटस्थके गरम प्रदेशोंको कुछ ठंडा कर देती हैं। इस गुणके कारण इन धाराओंका विशेष महत्व है।

समुद्रके जलमें धाराओंकी गतिके अतिरिक्त दो प्रकारकी और भी गतियाँ होती हैं। जिस समय किसी शान्त तालाब या नदीके अन्दर एक छोटासा कंकड़ डाला जाता है उसी समय जलमें वृत्ताकार तरंगे उठने लगती हैं। जिस स्थानपर कंकड़ गिरा था वह स्थान इन वृत्तोंका केन्द्र हो जाता है; इन वृत्तोंका व्यास बढ़ता ही जाता है और ये तरंगे तालाबके किनारे तक पहुँच जाती हैं। जिस समय इस प्रकार की तरंगे उठ रही हों उस समय देखनेमें ऐसा प्रतीत होता है कि तालाबका सम्पूर्ण जल किनारेकी ओर हटता जा रहा है। पर वास्तविक बात यह है कि सम्पूर्ण जल अपनी पहले जगह परही ऊपर नीचे हिलरहा है और केवल गति-उत्पादक सामर्थ्य (Energy) ही किनारेकी ओर जा रही है। इस प्रकारकी गतिको तरंग कहते हैं। प्रचंड वायुके प्रवाहसे समुद्रका जल नित्य-प्रति विक्षुब्ध होता रहता है। इसके अतिरिक्त जलजीवोंकी किलोलें भी इस प्रकार विक्षोभ उत्पन्न करती हैं। इन सबका फल यह होता है कि समुद्रमें सर्वदा तरंगें उठा करती हैं। जब कई जगहों पर एक साथही विक्षोभ होता है तो कई स्थानोंसे उत्पन्न तरंगे परस्परमें मिश्रित होकर अनेक रूप धारण कर लेती हैं और इनसे कभी-कभी इस प्रकारके भयंकर चक्र पैदा होजाते हैं जिन्हें भंवर कहते हैं। पूर्व कालमें जहाज़ और नाव इन भंवरोंमें पड़कर डूब जाते थे पर आजकल वाष्पजहाजोंको इन भँवरोंका अधिक भय नहीं रह गया है।

सागरोंके जलकी तीसरे प्रकारकी गतिका नाम ज्वारभाटा है। भूगोलसे परिचित पाठक इनकी उत्पतिका कारण भली प्रकार जानते हैं। हमारी पृथ्वीके चारों ओर चन्द्रमा भ्रमण करता रहता है। चन्द्रमा अपनी आकर्षण शक्ति द्वारा पृथ्वीके पदार्थोंको अपनी ओर खींचता है। पृथ्वीके दृढ़ स्थलों पर इस आकर्षणका कम प्रभाव होता है पर जल-भाग पर यह प्रभाव विशेष रूपसे पड़ता है। इसी आकर्षणके कारण जलका चन्दमाकी ओर उत्थान होने लगता है। पृथ्वीके अन्य आधे भागका जल जहाँ इस समय चन्द्रमाका उदय नहीं है, पृथ्वीके इस भागमें खिंच आता है। इस प्रकार वहां के जलमें पतन होने लाता है। पृथ्वीके जलका इस प्रकार ६—१२ घंटे उत्तरोत्तर उत्थान या पतन होता रहता है। इस गतिको ज्वारभाटा कहते हैं।

इस प्रकार हमने अब तक जल सम्बन्धी साधारण आवश्यक बातोंका उल्लेख किया हैं। बहुतसे लोगोंका कदाचित् ऐसा विचार हो सकता है सृष्टिके आरम्भमें सर्वत्र जलही जल था और धीरे धीरे उस जलमें से थल भागका जन्म हुआ है। पर वास्तविक बात इसकी उलटी ही है।

इसमें सन्देह नहीं है सृष्टिके आरम्भसे ही कुछ न कुछ जल पृथ्वीके पृष्ठ तल पर विद्यमान था पर पृथ्वीके पृष्ठपर आदि अवस्थामें उतना जल नहीं था जितना इस समय है। धीरे-धीरे ज्वालामुखी पर्वतों एवं तप्त झरनों और स्रोतों द्वारा पृथ्वीके थल भागके अन्दर भिदा हुआ जल बाहर निकलना आरम्भ हुआ और समुद्रोंके आकार बढ़ने लगे। स्वेस नामक भूगर्भ वेत्ता का कहना है कि पृथ्वीने अपने शरीरमें से सागरोंको जन्म दिया है। इस प्रकार यह न समझना चाहिये कि पृथ्वीके आरम्भमें सर्वत्र जलही जल था और कालान्तरमें कुछ जल पृथ्वीके अन्दर भिद गया, थल भाग निकल आये।

पृथ्वीके सम्पूर्ण जल कोषको कई भागोंमें विभक्त किया जा सकता है—

१ महासागर—oceans.

२ भूमध्य सागर—mediterraneans.

३ तटस्थ सागर—epicontinental seas.

४ आन्तरिक सागर—epeiric sears.

इसी पृथ्वीपर पांच महासागर हैं—हिन्द महासागर, शान्तमहासागर, (पैसिफिक महासागर) एटलाण्टिक महासागर, उत्तरी (या आर्कटिक) महासागर, दक्षिणी (या एण्टार्टिक) महासागर। शान्त महासागर इन सब महासागरोंका पिता है क्योंकि यह सबसे पुराना और सबसे बड़ा है। दक्षिणी महासागरभी बहुत बड़ा है। दक्षिणी और शान्त महासागरही सबसे अधिक गहरे हैं यद्यपि एटलाण्टिक और हिन्द महासागरभी बहुत पुराने हैं फिर भी उनका आधुनिक रूप अन्य महासागरोंकी अपेक्षा नया ही है। उत्तरी महासागर यद्यपि प्राचीन अवश्य है पर यह अन्य महासागरोंकी अपेक्षा अधिक उथला है।

भूमध्यसागरोंको भी महासागरोंके समानही समझना चाहिये क्योंकि ये भी बहुत बड़े और उनके समानही बहुत गहरे हैं। भूमध्य सागर उन सागरोंको कहते हैं जो कई महाद्वीपोंके बीचमें घिरे हुए हैं। यूरोपके दक्षिण और अफ्रीकाके उत्तर तथा एशिया माइनर पश्चिममें घिरा हुआ एक इसी प्रकारका भूमध्य सागर है। यह बहुत प्रसिद्ध है। इसे रोमन भूमध्यसागर भी कहा जाता है क्योंकि इसके तटस्थ देश किसी समय रोमराज्यके आधीन थे। इसी प्रकार ऊत्तरी और दक्षिणी अमरीका तथा इनके पूर्वके द्वीपोंके बीचमें घिरे हुए समुद्रको भी अमरीकन भूमध्यसागर कहते हैं। उत्तरी महासागरको भी भूमध्यसागर समझा जा सकता है क्योंकि यह यूरेशिया और उत्तरी अमरीकाके बीच में घिरा हुआ है।

महाद्वीपोंके तटके निकट बहुतसे छोटे-छोटे समुद्र हैं जो कम गहरे हैं। इन्हें तटस्थ सागर कहा जाता है। चीन सागर, जापान सागर ओखोट्स्क सागर, बंगालकी खाड़ी, अरबका सागर आदि इसी प्रकारके तटस्थ सागर हैं।

इनके अतिरिक्त बहुतसे छोटे छोटे समुद्र ऐसे हैं जो महाद्वीपों के स्थल प्रदेशका ही भाग कहे जासकते हैं। ये बहुत कम गहरे हैं। इन्हें आन्तरिक सागर कहते हैं। कचकी खाड़ी, हडसन या लारेन्सकी खाड़ी इसी प्रकारके आन्तरिक सागरोंमें है।

मरे नामक भूगोलवेत्ताके कथनके अनुसार पृथ्वीके सम्पूर्ण जल प्रदेशका क्षेत्रफल १३९२९५०००

वर्ग मील है। गहराईके हिसाबसे क्षेत्रफलका विवरण इस प्रकार है।

गहराई फुटोंमें	क्षेत्रफल वर्गमीलों में	प्रतिशत
०—६००	६७५००६५	७·०
६००—३०००	६६६४७५०	५·०
३०००—६०००	५०१०१८५	३·६
६०००—१२०००	२६६१५०००	१६·३
१२०००—१८०००	८१३८१०००	५८·४५
१८०००—२४०००	६०५८०००	६·५
२४०००—३१६१४	२१६०००	०·१५
	१३६२६५०००	१००·००

इस सारिणीसे पता चलता है कि सागरोंका अधिकांश भाग ६००० फुटसे भी अधिक और ६५ प्रतिशतके लगभगतो १२००० फुटसे अधिक गहरा है।

समुद्रका जल हमारे कुओंकी अपेक्षा वहुत खारी होता है। इसमें नमककी समुचित मात्रा विद्यमान है। यदि सागरोंके क्षेत्रफल १४ करोड़ वर्गमीलके लगभग (ऊपर की सारिणीके अनुसार) मान लिया जाय और समुद्रोंकी औसत गहराई १३ हज़ार फुट यानी २.४ मील जाय तो समुद्रके सम्पूर्ण जलका आयतन [(१४ × २·४) =] ३३·६ करोड़ घनमील मानना होगा। समुद्रके जलमें १ प्रतिशतकसे लेकर ५ प्रतिशतकके लगभग नमक होता है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि नमककी औसत ३·५% प्रतिशतक है अर्थात् यदि १०० सेर समुद्रका पानी गरम करके वाष्पीभूत किया जाय तो उसमें साढ़े तीन सेर नमक मिलेगा। अभी हम कह चुके हैं कि समुद्रके जलका आयतन ३३·६ करोड़ घनमील है। इतने जलमें यह अनुमान किया जाता है लगभग ४८००००० वर्ग मील नमक होगा। इसका अर्थ यह है कि यदि सब समुद्र सुखा दिये जायँ और उनका नमक लगभग २२०० मील लम्बी और २२०० मील चौड़ी भूमिमें बिछा दिया जाय तो नमककी १ मील मोटी तह मिलेगी। जिस प्रगतिसे प्रति वर्ष नमककी मात्रा समुद्रमें बढ़ रही है उससे यह अनुमान किया जा सकता है कि समुद्रमें इतना नमक आठ या नौ करोड़ वर्षोंमें इकट्ठा हुआ होगा। नमकके अतिरिक्त समुद्रके पानीमें ओषजन और कर्वन-द्विओषिद वायव्य भी घुले हुए हैं।

समुद्रके जलके अन्दर वनस्पति और प्राणियों का जीवन कुछ सीमा तकही सम्भव है।

प्राणियोंको अपने शरीर निर्माणके लिये कर्बन, ओष-जन, नोषजन, उद्जन और स्फुर तत्त्वोंकी आवश्य-कता पड़ती है। यह कहा जा चुका है कि समुद्रके जलमें कर्बनद्विओषिद् वायव्य और हवा घुली रहती है। हवामें ओषजन और नोषजन दोनों होते हैं। इसके अतिरिक्त जलमें बहुतसे लवण जिनमें स्फुर भी होता है घुले हुए पाये जाते हैं। इस प्रकार प्राणियोंकी सम्पूर्ण आवश्यकतायें कुछ न कुछ मात्रामें जलमें अवश्य विद्यमान रहती हैं। पर पौधों और प्राणियोंके जीवनके लिये एक और भी अधिक आवश्यक पदार्थ या सामर्थ्य है जिसे प्रकाश कहते हैं। यदि प्रकाश न हो तो उपर्युक्त सब तत्त्वोंके होते हुए भी शरीर निर्माण नहीं हो सकेगा। अब यह देखना चाहिये कि समुद्रमें किस गहराई तक प्रकाश पहुँच सकता है। उष्णकटिबन्धके प्रदेशोंमें जहां सूर्य्यकी किरणें सीधी पड़ती हैं १५०—२०० फुट नीची गहराई तक की ज़मीन आंखोंसे साफ़ दिखाई पड़ सकती है पर ६७° उत्तर की ओर सूर्य्यकी किरणें तिरछी पड़नेके कारण केवल ८० फुटकी गहराईकी ज़मीनही साफ़ दिखाई पड़ेगी। पर फोटोग्राफीके प्लेटों (चित्र लेनेके पटों) द्वारा यह सिद्ध किया गया है कि ३२५० फुट नीचे तक प्रकाशका कुछ भाग अवश्य पानीके अन्दर प्रविष्ट हो जाता है और ३२५ फुट तक तो साधारण प्रकाशका सम्पूर्ण भाग प्रविष्ट हो जाता है। ऐसा अनुमान किया गया है कि ५०० फुट गहराई तक प्रकाशका इतना अंश अवश्य पानीके अन्दर प्रविष्ट हो जाता है जहाँ पौधे जीवित रह सकें। अतः यह स्पष्ट है कि ५०० फुट नीचे तकही पौधे पाये जा-सकते हैं। पर मछलियोंके समान जलचरोंके लिये यह आवश्यक नहीं है कि वे ५०० फुट नीचे तक ही रहें।

सर जान मरे ने इन जलजीवोंका विस्तृत विवरण दिया है। हज़ारों प्रकारके जलचर समुद्रों-में पाये गये हैं। उनके विवरणके अनुसार नीचे यह दिया गया है कि कितनी गहराई तक कितने जल जीव पाये जाते हैं।

गहराई	जलचरों की जातियों की संख्या
६५० फुट	५००० से अधिक जातियाँ
६५०० फुट	६०० के लगभग जातियाँ
१३००० फुट	४०० " " "
१६२५० फुट	१५० " " "

समुद्रकी तलैटीमें ज़मीन है उसका भी कुछ वृत्तान्त जान लेना अनुचित न होगा। समुद्र तट-पर गहराई कम होती है और ज्यों-ज्यों समुद्र तटसे दूर हटते जाते हैं, गहराई अधिक होती जाती है। ६०० फुट गहराई तकका भाग समुद्र का तटस्थ-भाग (continental edge) कहा जाता है। इसका कारण यह है कि समुद्रकी तूफानी तरंगोंका प्रभाव ६०० फुटसे अधिक गहरी तलैटीपर कुछ भी नहीं पड़ता है। ६०० फुट तकके गहरे समुद्रके पानीमें कीचड़ और धूलके कण बिखरे होते हैं। इस गहराई की तलैटीमें कीचड़ विशेष रूपसे होता है पर इससे अधिक गहराईमें हरे नीले और लाल रंगकी सूक्ष्म रेणुका पायी जाती है, और अधिक गहराईकी तलैटीमें जल जीवों द्वारा त्यक्त वितष्ठा पाया जाता है और पौधोंके अव-शेष तथा जीवोंके अस्थिपिञ्जर भी पाये जाते हैं। इनके अतिरिक्त महाद्वीपोंके तटों पर कहीं कहीं ज्वालामुखी पर्वत भी होते हैं। इनकी ज्वालाओंमें से निकले हुए अनेक पदार्थ उड़कर समुद्रमें जा गिरते हैं। ये भी समुद्रकी तलैटीमें पाये जाते हैं।

१६००० फुटसे अधिक गहरे समुद्रोंकी तलैटीमें लाल कीचड़ पाया जाता है। इस कीचड़में लोहेके परमाणु मिले रहते हैं इसी लिये यह लाल दिखाई देता है।

अब हम छोटे-छोटे समुद्रों के विषय में थोड़ासा उल्लेख और करके जललोकका वर्णन समाप्त करेंगे। ये तटस्थ और अन्तरिक समुद्र पृथ्वीके सम्पूर्ण पृष्ठतल का ५·१ प्रतिशत भाग अर्थात् १०००००० वर्गमील का क्षेत्र फल घेरे हुए हैं। इनकी तलैटीतक सूर्यका प्रकाश पूर्णतः पहुँच जाता है अतः इनमें जल पौधे समुचित मात्रामें होते हैं जिनपर अनेक जलचर अपना जीवन निर्भर करते हैं। ये मुख्यतः महाद्वीपोंके तटपर स्थित हैं, अतः नदियों द्वारा इनमें स्थल भागका जल आकर गिरा करता है और इसलिये स्थलके अनेक प्रकारके पदार्थभी इनमें पाये जाते हैं।

समुद्रोंको उनकी गहराई और तलैटीके स्वभावके अनुसार कई भागोंमें विभाजित किया जा सकता है। समुद्रका एक भाग तट (Strand) कहलाता है। ज्वार भाटाओंका वर्णन पहले किया जा चुका है। जिस समय ज्वार भाटाका उत्थान होता है यह तट पानीसे भर जाता है पर ज्वार भाटा के पतन होनेपर तट खाली हो जाता है। यहाँकी भूमिमें तरह-तरहके पदार्थ होते हैं जो जल तरंगोंके निरन्तर प्रहारके कारण सूक्ष्म रेणुकाके रूपमें परिणत हो जाते हैं।

तटके आगे समुद्रका एक भाग होता है जिसे उपतट (littoral sea) कहते हैं। यह गहरे समुद्र और तटके बीचका उथला भाग है। यहां भी तरंगों का वेग अति प्रचंड रहता है अतः इन तरंगों द्वारा पदार्थोंके मोटे-मोटे टुकड़े तट पर फिक जाते हैं और सूक्ष्मकण गहरे समुद्रोंकी तलैटीमें बह जाते हैं। उष्ण कटिबन्धकी मूँगाओंकी भितियाँ समुद्रके इसी भागमें पायी जाती हैं। मूँगेकी ये भित्तियाँ शीत प्रदेशोंमें नहीं होती हैं।

उपतट के पश्चात् रेणु समुद्र (pelitic seas) आता है। यह १५० से ६०० फुट गहरा होता है। इसकी तलैटी में मिट्टी और पत्थर के सूक्ष्मकण संचित रहते हैं। इसी लिये इसे रेणु समुद्र कहा जाता है। ज्यों ज्यों गहराई बढ़ती जाती है, हरे हरे सामुद्रिक नरकुल पौधे कम होते जाते हैं और लाल या भूरे रंग के अलगाई (algae) अधिक मिलने लगते हैं।

इन समुद्रों के अतिरिक्त कुछ अवशिष्ट समुद्र (relic seas) और झीलें भी पायी जाती हैं। काला सागर (ब्लैकसी) और कास्पियन सागर इसी प्रकार के समुद्र हैं। ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि प्राचीन काल में एक बड़ा भारी भूमध्य सागर था जो उत्तर में उत्तरी महा सागर से और दूसरी ओर आजकल के रोमन भूमध्य सागर से मिला हुआ था। पर अब बीच में स्थल प्रदेश के उभड़ आने से कास्पियन सागर चारों ओर ज़मीन से घिर गया है। इसका पृष्ठतल १७०००० वर्ग मील है और समुद्र तट से यह ८३ फुट नीचे है।

परिमाण-क्रिया सिद्धांत

(Law of Mass action.)

लेखक—श्री वा. वि. भागवत एम. एस-सी

भूमिका

सायनिक क्रिया क्यों होती है? इसका उत्तर अणु या चलन सिद्धांतके द्वारा (kinetic or Molecular theory) देना कठिन है। यदि 'क' और 'ख' तत्वोंसे 'कख' यौगिक बना हुवा हो, और 'त' मूलतत्व 'ख' की जगह लेकर 'कत' यौगिक बनाता हो; तो इस प्रकारकी क्रियाका कारण बहुत दिनोंसे यह बतलाया जाता है कि 'क' के प्रति ख की

अपेक्षा 'त' का रासायनिक—आकर्षण (chemical affinity) अधिक है। लेकिन इस प्रकारके उत्तरसे कुछ बोध नहीं होता। आकर्षण (affinity) का ज्ञान इससे समझमें नहीं आता। आकर्षण क्या है? इसका सत्यज्ञान थोड़ेही दिनों पहिले इस नवयुगमें वानटाफने प्राप्त किया। तथापि इस विषयमें विचार करनेकी जगह यह नहीं है। रासायनिक क्रिया क्यों होती है, इस विषयमें इतना ही कहा जा सकता है कि यह बात मालाके (system) गत्यर्थक तथा स्थिर (potential) सामर्थ्य (energy) के ऊपर निर्भर है। हमें इतनाही समझना उचित है कि रासायनिक क्रिया तब तक होती रहती है जब तक पूरी नहीं होती। जब कोई क्रिया पूरी नहीं होती अर्थात् जनक तथा जन्य (resultants) पदार्थ दोनोंही उपस्थित रहते हैं और क्रिया वहीं रुक जाती है तब ऐसी क्रियाको 'समक्रिया' (equilibrium-reaction) कहते हैं, और उस अवस्थाको उस तापक्रम तथा दबाव परकी साम्यावस्था (equilibrium-point) कहते हैं। जब कोई क्रिया एक-रस मालामें (Homogeneous system) होती है तब इस समत्वका (equilibrium) कारण क्या है इस बातका विचार इस लेखमें किया जावेगा। उन मालाओंको एकरस कहते हैं जिनमें एकही कला (phase) होती है। जैसे वायव्योंका मिश्रण। मिश्रितमाला (Heterogeneous systems) उनको कहते हैं जिनमें एकसे अधिक कलाएँ (phases) रहती हैं। जैसे पानी और उसकी भाप।

एकरस मालाओंके सम्बन्धमें महत्व पूर्ण कार्य, सर्व प्रथम विलहेल्मीने किया। उसने उदहरिकाम्ल और नोषिकाम्लोंको उत्प्रेरकके रूपमें उपयोग करके 'शर्करा—विपर्यय' (sugar-inversion) का वेग (velocity) निकाला। उत्प्रेरक उसको कहते हैं जो क्रियामें कुछ भी भाग नहीं लेता तथापि उस क्रियाकी गति को बढ़ाता है। शर्करा—विपर्ययमें जितना अम्ल प्रथम लिया था उतनाही विपर्यय के बाद रहता है। इस लिये उसकी साधारण समीकरणों में कुछ जरूरत नहीं है।

$$क_{१२} उ_{२२} ओ_{११} + उ_{२} = ओ\ क_{६} उ_{१२} ओ_{६} + क_{६} उ_{१२} ओ_{६}$$
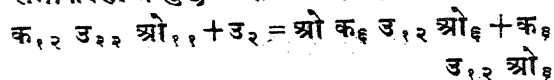
शर्करा पानी दक्षिणोज़ उत्तरोज़

शर्करा-घोल से दिक्प्रधान किरण दहने तरफ़ घूम जाती हैं। अर्थात् शर्करा घोल. दक्षिण-भ्रामक है लेकिन दक्षिणोज़ और उत्तरोज़ का मिश्रण उत्तर भ्रामक है। बिल हेल्मी ने यह जान कर भ्रामकता-मापक (polarimeter) की सहायता से समय समय पर कोणमें (angle) क्या अन्तर होता है यह देख कर शर्करा विपर्यय की गति निकाली। उसने यह कल्पना की कि गति शर्कराके परिमाण पर अवलंबित है। यह बात परिमाण-क्रिया सिद्धान्त की आत्मा है। यदि कुछ देरके बात शर्कराके 'य' भाग का विपर्यय हुआ हो और पहिले शर्करा का भाग 'क' हो तो क—य का विपर्यय नहीं हुआ। इस लिये शर्करा-विपर्ययकी

$$गति = \frac{-तय}{तस} = न\ (क - य)$$ बराबर है, जहां पर

'न' को गतिस्थिरांक (velocity constant) कहते हैं।

$$-\frac{तय}{तस} = न\ (क - य)$$

और चलन के बाद $$न = \frac{१}{स}\ ल \frac{क}{क - य}$$

या $$न_{१} = \frac{१}{स}\ ल_{१०} \frac{क}{क - य}$$

जहाँ पर $न = २.३०३ न_{१}$

ऊपर दिया हुआ स्थिरांक निकालने का समीकरण विलहेल्मी ने ही प्रथम निकाला था।

नोषिकाम्ल (Nitric acid) को उत्प्रेरक बन कर १५° श तापक्रम पर शर्करा विपर्यय की गति

निकाल कर विलहेल्मी ने ऊपर दिये हुये समीकरण की सत्यता स्थापित की।

समय मिनटों में	(क—य) $(a-x)$ polarimeter भ्रामकता मापकका कोण अंश	ल $\frac{क}{क-य}$	न$_1$ = $\frac{१}{स}$ ल$_{१०}$ $\frac{क}{क-य}$
०	६४·४५	०·	—
४५	५६·६५	०·०६०५	०·००१३४
९०	४९·४५	०·१२१७	०·००१३५
१५०	४०·७०	०·१९४१	०·००१३२
२१०	३३·७०	०·२८७०	०·००१३७
२७०	२६·९५	०·३८५१	०·००१४२

विलहेल्मी का सिद्धांत न की स्थिरता से सिद्ध होता है।

रासायनिक क्रिया परिवर्तनात्मक (reversible) होती है यह बात प्रथम बर्थोले ने मालूम की। उसके बाद इसी बातका अध्ययन सन् १८५३ में मेलागटीने किया। उसका कहना यह है। कि "दो विरुद्ध क्रियाओंकी गति का बराबर होना रासायनिक समत्वका कारण है। मेलागटी ने यह सिद्धान्त मिश्रित-क्रियाकी (Heterogeneous reactions) सहायतासे स्थापित किया। तथापि यह बात सम-क्रियाओंके (Homogeneous reactions) विषयमें भी सत्य है। परिवर्तनात्मक रासायनिक क्रियाका अध्ययन मेलागटी ने भार गन्धेत (Barium-sulphate) और क्षार कर्बनेत दोनों की रासायनिक क्रियाके द्वारा किया।

भ क ओ$_3$ + सै$_2$ ग ओ$_4$ $\rightleftharpoons$ भ ग ओ$_4$ + सै$_2$ क ओ$_3$
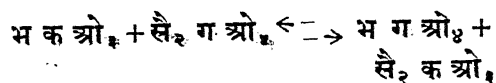
यह क्रिया परिवर्तनात्मक है। भार गन्धेत और सैन्धककर्बनेत से भार कर्बनेत और सैन्धक गन्धेत मिलते हैं वैसेही भार कर्बनेत और सैन्धक गन्धेत का परिवर्तन भार गन्धेत और सैन्धक कर्बनेतमें भी होता है। इस क्रियाका १८वीं शताब्दी में मारग्रेफने अध्ययन किया। मिश्रित क्रियाके समत्व के विषय में बहुत कुछ मालूम हुआ है। जैसे कि ख क ओ$_3$ $\rightleftharpoons$ ख ओ + क ओ$_2$ इसमें जब खटिक कर्बनेतगरम किया जाता है तब इससे खटिकओषिद तथा कर्बनद्विओषिद निकलता है। वैसेही अधिक कर्बनद्विओषिद से खटिक कर्बनेत बनता है। अर्थात् यह क्रिया परिवर्तनात्मक है।

इस बारेमें ऐमी (Aimee) (१८३७) कहता है कि जब कोई चीज तापसे विच्छिन्नकी जाय तब यह विच्छिन्नता किसी भी वायव्य तथा वाष्पके दबाव से वंद नहींहो सकती, लेकिन इसके रोकनेके लिये, विच्छिन्नतामें जो वायव्य निकलता है वही होना

आवश्यक है। जिस दबाव पर यह क्रिया समत्व पर पहुँचती है उसको उस विच्छिन्न वस्तुका 'विच्छिन्न दबाव' (dissociation pressure) कहते हैं। इसीके ऊपर ग्रोव्ज़, सेंट क्लेअर डेवील, और डित्रे, ने काम किया और यह निकाला कि—

(१) हर एक तापक्रम पर ठोस पदार्थों (solid) का 'विच्छिन्न दबाव' स्थिर ही रहता है।

(२) यह 'विच्छिन्न दबाव' तापक्रमके साथ बढ़ता है।

(३) यह 'विच्छिन्न' दबाव–जब तक थोड़ा भी ठोस पदार्थ रहे-पदार्थके परिमाण पर अवलंबित नहीं है।

जिनके कार्य से परिमाण-क्रिया सिद्धान्त पूर्णतः सिद्ध हुआ उनमें बर्थोले, पीन-डी-सेंट जीलीस, हारकोर्ट, एसौन और विशेषतः गुलबर्ग और वेग प्रमुख हैं।

वैज्ञानिकीय

संसार का सूक्ष्मतम पदार्थ

[ले०—श्री रमेशप्रसाद बी० एस-सी०]

आधुनिक विज्ञानकी गति इतनी तीव्र हो गई है कि कोई भी बात या सिद्धान्त निश्चय के साथ नहीं स्थापित किया जा सकता। आज जिस नए आविष्कारको संसार आश्चर्य की दृष्टिसे देखता है, कल वही इतना पुराना समझा जाने लगता है कि लोग उसकी चर्चाही छोड़ देते हैं। आज जिस आविष्कारसे सारे संसारमें तहलका मच जाता है, कल वही साधारण लोगोंके लिएभी कोई आकर्षण नहीं रखता। आज जो पदार्थ केवल प्रयोगशालामें ही स्थान पाए हुए है, कल वही सबके घरोंमें विराज रहा है। अभी उस दिनकी बात है, लोग परमाणु (Atom) को पदार्थका सबसे छोटा टुकड़ा समझते थे। तत्त्व एक अभाज्य वस्तु मानी जाती थी। लोग प्रत्येक तत्त्वको एक भिन्न पदार्थही माने बैठे थे। किन्तु अब इस धारणामें बड़े ज़ोरोंसे परिवर्तन होने लगा है। अब कोईभी वैज्ञानिक अणुओंको किसी पदार्थका सूक्ष्मतम पदार्थ नहीं मानता। अस्तु, यहाँ अणुओंके विषयमें कुछ ज्ञातव्य बातोंकी चर्चा अप्रासंगिक न होगी।

आपके सामने ताँबेका एक टुकड़ा पड़ा हुआ है। आप उसके रंगकी सराहना करते हैं। उसे हाथमें उठाते हैं, तो वह काफ़ी ठोस (Solid) जान पड़ता है। किन्तु यदि मैं आपसे यह कहूँ कि यह टुकड़ा स्पंजकी तरह सूराख़दार है, तो शायद आप मेरी बात पर विश्वास नहीं करेंगे। किन्तु बात सच्ची है। यह बड़ेही छोटे-छोटे द्रुत गतिसे धूर्णमान टुकड़ोंसे बना है। डा० पाल डी० फ्रूटके कथनानुसार एक सेर ताँबेमें ८६० अणुवर्तमान हैं। क्या यह कल्पनाके बाहरकी बात नहीं है? आप पूछ सकते हैं, डा० पालके कथनकी सत्यता क्या है? क्या उन्होंने परमाणुओंको देखा या उन्हें गिना है? नहीं, परमाणुओंको देखना आजकलके शक्तिशाली अणुवीक्षण यंत्र द्वाराभी संभव नहीं। फिर उनके गिननेका साहस

कौन कर सकता है? किन्तु हाँ, आजकलके गिने सिद्धांतों पर लोग काम करने लगे हैं, वे इतने दुरुस्त हैं कि उन पर अवलंबन कर जो बातें कही जाती हैं, वे कभी गलत नहीं होसकतीं। रासायनिकोंका विश्वास है कि वे एक एक परमाणुको तौल सकते हैं। सबसे हलके उउजनके परमाणु होते हैं, उनमेंसे एकका वज़न एक ग्रेन का २,५०,००,००,००,००,००,००,००,००,००,००,००० वां भाग होता है। प्रसिद्ध अँगरेज़ वैज्ञानिक सर आलिवर लाजको कौन नहीं जानता। वही इस संख्या तक पहुँचे हैं। परमाणुओंके विशेषज्ञ सर अर्नेस्ट रदरफ़ोर्ड का कहना है कि एक घन-इंच हिमजन-गैसमें ७,७०,००,००,००,००,००,००,००,००,००,००० परमाणु होते हैं।

परमाणुओंसे बड़े अणु होते हैं। उनके विषय में भी एक दो बातें सुन लीजिए। प्रो० आर० ए० मिलिकन का कहना कि हम लोग किसी पदार्थके अणुओंको जितना निश्चयात्मक रूपसे गिन सकते हैं, उतना किसी शहरकी आबादीको नहीं। आपने एक घन शतांमीटर हवाके अणुओंको गिनकर बतलाया कि उसमें २,७०,००,००,००,००,००,००० अणु थे।

इधर डेनिश जादूगर निएल्स बोहर (Niels-Bohr) और रदरफ़ोर्ड परमाणुओंके आंतरिक रहस्यके उद्घाटनमें लगे हुए थे, और उधर स्विस वैज्ञानिक लावे उनका फ़ोटो खींचनेमें लगा था। उसने कई फोटो लिए भी। अणुओंके वे सबसे पहले फोटो थे। इनसे यह मालूम हुआ कि अणु परमाणुओंके समूह-मात्र हैं।

किंतु परमाणु सबसे सूक्ष्म पदार्थ नहीं है। इससे भी छोटे पदार्थ विद्यमान हैं। आपने देख लिया कि परमाणु कितने सूक्ष्म पदार्थ होते हैं। बेल-टेलीफ़ोन-प्रयोगशालाके प्रो० एच्० ई० इवसने तो उनकी मोटाईभी नाप डाली है। उनका कहना है कि प्रत्येक परमाणुकी मोटाई एक इंचका ५०,००,००,००० वाँ भाग होती है किंतु इसका १,८०० वाँ हिस्सा 'ऋण-कण' इलेक्ट्रोन कहा जाता है, और इलेक्ट्रोनसे भी सूक्ष्म पदार्थ प्रोटोन (धनाणु) होता है। आधुनिक वैज्ञानिकों का कहना है कि प्रत्येक परमाणुमें एक धनाणु होता है, जिसके चारो ओर एक या अधिक ऋणाणु चक्कर लगाया करते हैं। इस समयका सबसे हलका पदार्थ उदजन है। इसके प्रत्येक परमाणुमें एक धनाणु और ऋणाणु होता है। हिमजनका नंबर इसके बाद आता है है, प्रत्येककी संख्या चार-चार है। ये विद्युत्-संपन्न पदार्थ होते हैं, जो सूर्य और नक्षत्रोंकी तरह विद्यमान रहते हैं। हम कह सकते हैं कि इस सूक्ष्म संसारके सौर-मंडल परमाणु हैं, और नक्षत्र ऋणाणु, जो निरंतर चक्कर लगा रहे हैं, एक दूसरेसे टकरा रहे हैं, और गेंद-जैसे उछल रहे हैं, एक मंडलका सूर्य 'धनकेन्द्र' है। धनकेन्द्र धन-विद्युत् संपन्न और ऋणाणु ऋण विद्युत् संपन्न होते हैं। किन्तु जे० जे० टामसनका कहना है कि ये टुकड़े भी परमाणुओंके सभी कार्योंका कारण कहलानेमें सम नहीं हैं। इन्हीं-सा विचार रखने वालेके कैप्टेन टी० जे० जे० सी (See) का कहना है कि इनके भी छोटे टुकड़े हैं, जिनका नाम आपने इथरोन दिया है। ये इतने छोटे होते हैं कि आसानीसे सारी पृथ्वीको पार कर जाते हैं, अर्थात् इनका बाधक संसार में कोई भी पदार्थ नहीं है। इस छोटे पदार्थका भी आप अंदाज़ लगा लीजिए। यदि हम किसी मामूली गैसके परमाणुको नारंगी समझ लें, तो ऋणाणु बालूका एक छोटा कण है, और इथरोन सिगरेटसे निकलते हुए धुएँका एक कण। अब आपही बतलाइए कि यह पदार्थ कितना सूक्ष्म होगा।

किन्तु इथरोनको ही हम संसारका सबसे सूक्ष्म पदार्थ कैसे मानें, जब हम देखते हैं कि वैज्ञानिकोंकी विचार-धारा दूसरीही दिशामें प्रवा-

हित होरही है। कुछ वैज्ञानिकोंकी धारणा है कि संसारमें किरण या दूसरे शब्दोंमें ज्योतिही सब कुछ है। किरणभी एक प्रकारकी नहीं है। उनके भी भेद हैं। कुछ दृश्य हैं और अधिकांश अदृश्य; कुछकी तरंगें छोटी और कुछकी बड़ी हैं। सबसे बड़ी तरंगे रेडियोकी होती हैं और सबसे छोटी तरंगें "कास्मिक-किरण या आकाशीय किरण या मिलिकन-किरणों"की हैं। दोनोंकी तरंगोंमें उतनाही फ़र्क़ समझना चाहिये, जितना समुद्रकी तरंगों और चायके प्यालेकी तरंगोंमें है। इन दोनोंके बीचके दृश्य उष्णताकी किरण, दृश्य प्रकाशकी किरण, + — किरण रेडियमकी किरण आदिका स्थान हैं अब तक रेडियमकी किरण अन्य किरणों की अपेक्षा शक्तिशाली समझी जाती थी। उनकी भेदनशीलता अन्य किरणोंकी अपेक्षा अधिक मानी जाती थी। किन्तु मिलिकनने आकाशीय किरणोंका आविष्कार कर उसेही प्रधानता दी है। चूँकि मिलिकन-किरणही इस समय संसारका सबसे सूक्ष्म पदार्थ मानी जाने लगी है, अतः इसके विषयमें कुछ विस्तारसे लिखना अप्रासंगिक न होगा।

डा० राबर्ट एंड्रूज़ मिलिकनने पदार्थोंसे अणुकण अलग कर वैज्ञानिक संसारमें काफ़ी नाम पैदा कर लिया है। इसके लिए सन् १९२३ ई० में इन्हें नोबेल-पुरस्कार भी मिल चुका है। बादको आप एडिसन-मेडल प्राप्त कर अधिक यशके भागी हुए। इन्होंने आकाशीय किरणका आविष्कार कर विज्ञानके आविष्कारकोंके लिये एक नया मार्ग खोल दिया है। आपका कहना है कि ये किरणें सृष्टिके अदृश्य दूत हैं। सृष्टिका अभी अंत नहीं हुआ। केवल नई दुनिया या उसमें रहने वाले प्राणियोंकी ही सृष्टि नहीं होरही है, किन्तु पत्थरके एक छोटे टुकड़ेसे लेकर पशुओं तककी सृष्टि होरही है। इन किरणों के अध्ययनसे पता लगा है कि पृथ्वी परही नहीं, किन्तु ताराओंमें भी सिर्फ़ दो तत्त्व गैसें—उदजन और हिमजन—से संसारके चार पदार्थ सदा बन रहे हैं, जिनमें एक प्राण-वायु या ओषजन है, दूसरा मगनीसियम धातु, जिसके तीव्र प्रकाशमें रातमें भी फ़ोटो लेना संभव है, तीसरा शैलम्, जिससे मिट्टी, शीशा, बालू आदि बनते हैं, और चौथा लोहा है। ये रहस्यमय किरणें हमें यह बतलाती हैं कि सृष्टि का ह्रास नहीं हो रहा है, बल्कि नई-दुनियाएँ सौर-मंडल या उसके बाहर भी बन रहीं हैं।

डा० मिलिकन का यह आविष्कार पारस पत्थरकी खोजसे कम महत्त्व-पूर्ण नहीं है। संसारके सामने यदि कोई आविष्कारक लोहेको सोना बनने का तरीक़ा रखता, तो लोग उतने आश्चर्य-चकित न होते, जितना मिलिकनके आविष्कारसे; क्योंकि इन्होंने सारी सृष्टिकी जड़ दो ही वस्तुओंमें निहित करदी है। इन्हीं दो वस्तुओंसे संसारके सारे पदार्थोंकी उत्पत्ति है।

इस समयभी कुछ लोग आकाशीय किरणोंके गुणोंके क़ायल नहीं हैं; किन्तु यह कोई नई बात नहीं है। पहले पहल जब धन-किरण, रेडियम किरण पराकासनी (Ultra violet) किरण, रेडियो-तरंगका आविष्कार हुआ था, तब आम लोग उन्हें वैज्ञानिकोंके खेलकी सामग्री समझते थे। आज वे मनुष्य के जीवनमें किस प्रकार सहायता दे रही हैं, यह किसीसे कहने की आवश्यकता नहीं है। इन्हीं किरणों-जैसी ये आकाशीय किरणेंभी आगे चलकर उपयोगी हो सकती हैं। हाँ उनकी शक्ति। इतनी शक्तिशाली हैं कि बीस फ़ीट मोटी सीसे (Lead) की दीवाल को उसी प्रकार पार कर जाती हैं, जिस प्रकार साधारण प्रकाश खिड़कीके शीशे को। जंगी जहाज़ों की मोटी-मोटी मज़बूत लोहेकी चादरें इस प्रकाश के सामने चलनी-जैसी हैं। यह सर्व-व्यापी हैं। इस लेखको पढ़ते समयभी आपके शरीरमें ये किरणें

प्रवेश कर रही हैं। मैं इस समय लिख रहा हूँ, मेरे शरीर में भी वे आ-जा रही हैं। ऊँची जगहों पर उनकी शक्ति बढ़ जाती है। समुद्रकी सतह पर से तीनगुना तेज़ वे पहाड़ों पर होती हैं। इस किरण की करोड़ों तरंगोंको एक लाइनमें जमा करने से सिगरेटके कागज़की मोटाईकी हो सकती हैं। धन किरण से ये बहुत कुछ मिलतीं-जुलती हैं; किंतु उनसे हज़ारोंगुना अधिक शक्तिशाली होती हैं।

डा० मिलिकन को यह प्रमाणित करने में कितने वर्ष लग गए कि ये किरणें आकाशीय किरणें हैं आकाश-स्थित सूर्य और तारोंमें उनकी उत्पत्ति है, और वहींसे बड़ी तेज़ीके साथ वे पृथ्वी पर आती हैं। लोग पूछने लगे, इनकी उत्पत्ति कैसे होती है ? डा० मिलिकन ने कई परीक्षाओं द्वारा प्रमाणित किया कि जब उद्जन या हिमजन जैसे साधारण पदार्थ अधिक गूढ़ पदार्थ जैसे शैलम् या लोहेमें परिवर्तित होते हैं, तब उनसे एक प्रकार की शक्ति निर्गत होती है, जो यह आकाशीय किरण हैं। डाक्टर साहब इसे यों समझाते हैं—"हिमजन का एक परमाणु उद्जनके प्रायः चार परमाणुओंसे बना होता है। जब उद्जनके चार परमाणु एक साथ मिलते हैं, तब उद्जनके परमाणुका एक हिस्सा बचा रह जाता है, जो शक्तिके रूपमें प्रकट होता है, और पृथ्वी पर आकाशीय किरणके रूपमें पहुँचता है। परमाणुओंका टूटना और दूसरा आकार ग्रहण करना, जिस ऊँचे ताप-क्रम पर होता है, उसे पृथ्वी पर अब तक कृत्रिम रूपमें उत्पन्न करनेका साधन नहीं है। हो सकता है, जो घटना सूर्य या ताराओंमें प्रति क्षण घट रही है, पृथ्वीके अंदर भी होती हो; किंतु अभी तक इसका किसी को पता नहीं है।"

इसी आकाशीय किरणको लोग संसारका सबसे सूक्ष्म पदार्थ मानने लगें, तो आश्चर्य ही क्या ? किंतु यह किरण है क्या ? यह एक शक्ति है, एक ज्योति है। आधुनिक वैज्ञानिक आज उसी निश्चय पर पहुँचे हैं, जिसे हमारे पौराणिकोंने हज़ारों वर्ष पहले कहा था—"ज्योतिर्मय।"

('सुधा' से)

बिना तार का तार

[ले०—श्री नरेन्द्र कुमार गर्ग]

संसार विचित्रताओं का भांडार है। इस सुरम्य भूमंडल के गर्भ में ऐसी-ऐसी अद्भुत शक्तियाँ तथा चमत्कार भरे पड़े हैं; जिन्हें मनुष्य स्वप्नावस्था में भी नहीं सोच सकता—उन्हें मालूम करना तो दूर रहा। दिन-पर-दिन ऐसी-ऐसी बातों का पता चल रहा है, जिन्हें सुनकर आश्चर्य-चकित होना पड़ता है। न-मालूम कितने अनमोल रत्न, जिन्हें हम अपने लिये लाभदायक बना सकते हैं, इस प्रकृति-नटी के अनंत गर्भ में छिपे पड़े हैं। लगभग ५०० वर्ष पूर्व से मनुष्यों का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ है, और वे अभी इस प्राकृतिक प्रयोगशाला का अन्वेषण करने में लगे हुए हैं, तथा अपने अटूट परिश्रम के पश्चात् उन्होंने कुछ बातें मालूम भी कर ली हैं। विमान, विद्युत्-शक्ति, वाष्प-शक्ति आदि ज्ञात हुई, जिन्होंने मनुष्य-जीवन में एकदम परिवर्तन पैदा कर दिया। इसी से मेटीरियलिज़्म (Materialism) अथवा तत्ववाद का जन्म हुआ। वैज्ञानिक लोग बराबर चेष्टा करते गए, और उन्हें नई-नई बातों का ज्ञान होता रहा।

वैज्ञानिकों द्वारा प्राप्त किए हुए रत्नों में बेतार का तार (Wireless telegraphy) भी एक उज्ज्वल रत्न है, इसके द्वारा एक ही सेकंड में हज़ारों मील

की ख़बर मिल जाती है। पहले तो मनुष्य तारबर्की को ही देख कर चकित हुए थे कि एक ठोस तार द्वारा ख़बर किस प्रकार आ जाती है; पर जब उन्हों ने देखा कि तार की भी आवश्यकता नहीं है, वे तो इसका कारण भी जानते हैं; पर साधारण जनता इन बातों से अनभिज्ञ है, और इस कारण वे इसे तांत्रिक विद्या समझते हैं। इस कारण उनके हितार्थ मैं कुछ इस विषय पर लिखता हूँ।

विना तार के तार का जन्म सन् १८७० ई० से कहा जा सकता है। इसी समय प्रसिद्ध वैज्ञानिक जेम्स क्लार्क मैक्सवैल (James Clerk Maxwell) को ज्ञात हुआ कि इस आकाश में विद्यु त्-तरंगें उपस्थित हैं, जो कभी-कभी ब्राह्मांड में चक्कर लगाया करती हैं, और फिर लोप हो जाती हैं। इस पर लोग यह प्रश्न कर सकते हैं कि यह विद्युत्-तरंगें क्या हैं, किस प्रकार उत्पन्न हुईं और यह किस प्रकार चलती हैं। बड़े-बड़े वैज्ञानिकों ने खोज के बाद मालूम किया है कि यह अपार विश्व एक ऐसे हलके तथा सूक्ष्म पदार्थ से भरा हुआ है, जिसे हम किसी प्रकार न जान ही सकते हैं, और न देखही सकते हैं। यह सूक्ष्म पदार्थ सर्व-व्यापी है। कोई भी ऐसा स्थान नहीं, जहाँ पर यह न हो। उन लोगोंने इस पदार्थका नाम ईथर (Ether) रख दिया। मनुष्य कुछ दिन पहलेसे इस बातको मालुम करना चाहते थे कि सूर्यसे प्रकाश और उष्णता किस प्रकार पृथ्वी पर आती है। ईथरके ज्ञात होतेही यह सब रहस्य खुल गया। उन्हें इनका कारण ज्ञातहो गया, और यह भी ज्ञात हो गया कि संसारकी जितनी भी शक्तियाँ हैं, वे सब किस प्रकार उत्पन्न होकर कार्य करती हैं। उन लोगोंका मत है कि जिस प्रकार वायुमें तरंगें उत्पन्नहो जानेसे शब्द उत्पन्न हो जाता है उसी प्रकार ईथरमें तरंगे उत्पन्न कर देनेसे प्रकाश, गरमी, विद्युत्, आकर्षण आदि शक्तियांका आविर्भाव होता है। प्रकाश या गरमी आदिका आकार उत्पन्न तरंगोंके आकार पर निर्भर है। इसमें कई आकारकी तरंगें उत्पन्न की जा सकती हैं। किसीकी तरंग लंबाई (Wave Length) बड़ी और किसी की छोटी। यह सब शक्तियाँ एकही मूल-कारणसे उत्पन्न होती हैं; पर तरंगोंके आकारमें भिन्नता होनेके कारण ये भिन्न-भिन्न शक्तियोंमें परिणतहो जाती हैं। जो सबसे बड़े आकारवाली तरंगें होती हैं, वे ही बेतारकी तरंगों (Wireless Waves) का करती कार्य हैं। इससे छोटे आकार वाली गरमी का, उससे छोटी प्रकाशका और सबसे छोटी तरंगें, जो अबतक ज्ञात हुई हैं, एलफा, बीटा और रौञ्जन किरणों (एक्स-रे) का कार्य करती हैं।

यह सब तरंगें ईथरमें १,८८,००० मील प्रति-सेकंडके वेगसे चलती हैं। जिस प्रकार तालाबमें एक पत्थर डाल देनेसे तरंगें चारों ओर फैल जाती हैं, उसी प्रकार एक ईथरकी तरंगें चारों ओर फैल जाती हैं। हम इन तरंगोंको मालूम कर सकते हैं। प्रकाशकी और गरमीकी तरंगोंको हम अपने शरीर द्वारा ज्ञात कर सकते हैं; पर बाक़ीकी सब तरंगें हम और-और साधनोंका आश्रय लेकर ज्ञात कर सकते हैं। सन् १८८८ में प्रोफ़ेसर हरट्ज़ (Hertz) को अचानक एक बात ज्ञात हुई। एक दिन वह अपनी प्रयोगशालामें बैठे हुए विद्युत्-संबंधी कोई प्रयोग कर रहे थे। उसमें उन्हें एक विद्युत्-की चिनगारी (Spark) लेना था। जैसे ही उन्होंने विद्युत्की चिनगारी उत्पन्न की वैसेही पासके रक्खे हुए एक तारके चक्करके दोनों सिरोंके बीचमें भी चिनगारी उत्पन्न हो गई, और प्रयोग करते-करते उन्हें यह ज्ञात हुआ कि विद्युत्, चिनगारी उत्पन्न होनेसे एक प्रकारकी शक्ति चारों ओर फैल जाती है। प्रोफ़ेसरने इस बातसे यह नतीजा निकाला कि विद्युत्-चिनगारीके उत्पन्न होनेसे पासके ईथरमें तरंगें उत्पन्न होकर चारों ओर फैल गईं, और फिर धीरे धीरे प्रयोग द्वारा यह भी ज्ञात हुआ कि बड़ी विद्युत्-चिनगारियोंसे

अधिक शक्तिशाली तरंगें उत्पन्न होती हैं; और छोटीसे कम शक्तिशाली।

इस प्रकार पता चलता है कि यदि इस प्रकारके कोई यंत्र बना लिए जायँ, जिनसे ईथर में तरंगें उत्पन्नकी जा सकें और जिससे ईथरमें स्थित तरंगोंको मालूम किया जा सके, तो एक दूरके स्थानसे भी अपने समीप यंत्र रखकर बातचीतकी जा सकती है। बेतारके तार का मूल-तत्त्व ज्ञातहो जाने पर ऐसे यंत्र बनाना कुछ अधिक कठिन कार्य नहीं रह गया। कुछ वर्षों पश्चात् वैज्ञानिकोंने इस प्रकारके यंत्र बना लिए। एकसे तो विद्युत्-शक्ति द्वारा ईथरमें तरंगें उत्पन्न करदी जा सकती हैं, और दूसरेसे उन्हें मालूम किया जा सकता है। हरटज़के तत्त्वानुसार बड़ी विद्युत्-चिनगारीसे शक्तिशाली तरंगें और छोटीसे कम शक्तिशाली तरंगें उत्पन्न होती हैं। इसी तत्त्वका आश्रय मोर्स प्रणाली (Morse System of Telegraphy) द्वारा आपस में बातचीतकी जा सकती है, जिसमें कि (—.) इनदो चिह्नों द्वारा शब्द कहे जा सकते हैं। इसमें (—) यह चिह्नतो उस तरंगके लिये काममें लाया जाता है, जो बड़ी विद्युत्-चिनगारी द्वारा उत्पन्न होती है, और (.) यह चिह्न उस तरंगके लिये, जो छोटी विद्युत् तरंग द्वारा उत्पन्न होती है। जिस प्रकार तार में इन्हीं (.—) के द्वारा बातचीतहो सकती है, उसी प्रकार बेतारके तार द्वारा भीहो सकती है।

मैंने इस लेखमें इन तरंगोंके उत्पन्न करने और मालूम करनेके यंत्रोंका हाल लेखके विस्तारभय के कारण नहीं दिया है।

('माधुरी' से)

———

वायुयान द्वारा उत्तरी ध्रुव की यात्रा

उत्तरी ध्रुव के निकटस्थ प्रदेशों का वृत्तान्त जानने के लिये वायुयानोंका उपयोग किया जाने का विचार है। डा० फ्रिटजोफ नानसेन के नेतृत्वमें इस कार्यके लिये एक अन्तर्जातीय समिति बनाई गई है। ग्राफ ज़ैपेलिन नामक वायुयान पर इस काम के लिये प्रबन्ध किया जा रहा है। आगामी पहिली एप्रिल को उत्तरी नार्वे प्रदेशसे यह यान उड़ना आरंभ करेगा। इस यात्राकी असुविधाओंको विचारमें रखकर अनेक प्रबन्ध किये जा रहे हैं हैं। डा० नानसेनके साथ जगत्प्रसिद्ध १५ वैज्ञानिक भी रहेंगे। ये वैज्ञानिक उत्तरी ध्रुवस्थ प्रदेश की परिस्थितियों का वैज्ञानिक रूपसे अध्ययन करेंगे, वहाँ के वायुमंडल की अवस्था, और रेडियो पर इसका प्रभाव, चुम्बकीय और विद्युत् सम्बन्धी अन्य उपयोगी बातों की समीक्षा की जावेगी।

शान्त महासागरकी गहराई

पैसिफिक या शान्त महासागरमें अनेकस्थल ऐसे हैं जिनकी गहराई अभी तक ज्ञात नहीं हुई है। कार्नेगी इन्सटीट्यूट के अन्वेषकोंने अभी हाल में इस महासागरके छः अत्यन्त गहरे स्थलोंका पता लगाया है

१. मिण्डानाओ खड्ड...३४००० फीट गहरा
२. टस्कारोरा खड्ड...३२००० "
३. मेरियान खड्ड...३१००० "
४. करमेडेक खड्ड...३१००० "
(न्यूज़ी लेण्डसे ३०० मील उत्तर पूर्व)
५. सोलोमन खड्ड...३०००० "
६. फ्लेमिंग खड्ड..२८००० "

अटलाण्टिक महासागरकी सबसे अधिक गहराई पोर्टोरिको द्वीपके पास २७६०० फीट पाई गई है, हिन्द महासागरकी अधिकतम गहराई २२६६८ फीट ही है। मलयासागरकी २१३४२ फीट, वेरिंग की १३४२८ उत्तरीसागर १३२०० और भूमध्य सागर की अधिकतम गहराई १२१७६ फुट है।

यह गहराई ध्वनि विज्ञानके सिद्धान्तोंके अनुसार निकाली गई है। समुद्रके सतहपर कुछ ध्वनिकी गई और उसकी प्रतिध्वनि जितने समय के पश्चात् वापस आई वह समय मालूम कर लिया गया। जलके अन्दर ध्वनि का वेग मालूम ही है अतः इस प्रकार समुद्रके उक्त स्थलकी गहराई का अनुमान लगाया जा सकता है। यह विधि पूर्व प्रचलित विधियों से अधिक विश्वसनीय है। पहले समुद्र की गहराई निकालनेके लिये किसी भारी धातु (सीसा आदि) का लंगर पानीमें फेंकते थे और उससे गहराई नापी जाती थी।

गव्य पदार्थोंकी रासायनिक उपयोगिता

[लेखक—श्री लक्ष्मणसिंह भाटिया एम. एस-सी.]
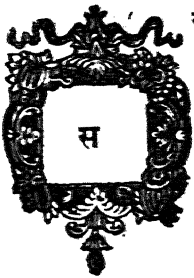
सर्व साधारणको चाहे विश्वास न आये परन्तु यह बात ठीक है कि प्राचीन समयमें जितने बड़े रसशास्त्री हो गये हैं उतने अब नहीं है और इस कलिकाल में हमारी इस असाधारण विद्या का उत्थान होनेके बदले पतन ही होता जा रहा है।

मुझे आपको बतलानेमें तथा आपको जाननेमें आनन्द होना चाहिये कि हमारे देशके कुछ पुरुषोंने इस विद्याकी ओर ध्यान दिया है और वह इसको एक बहुत सुदृढ़ नीव पर लाना चाहते हैं और इस बातका प्रयत्न कर रहे हैं कि यह विद्या बहुत जल्द उन्नतिके शिखर पर पहुँच जाय परन्तु खेदके साथ यहभी लिखना पड़ता है कि वह आर्थिक सहायता न पानेसे अपने प्रयत्नमें सफलीभूत नहीं हो रहे हैं और यह प्रत्यक्ष है कि यदि हमारे देशके राजा महाराजा तथा धनी पुरुष इस तरफ ध्यान न देंगे तो इस विद्याका सर्वथा लोप हो जायगा। ईश्वरेच्छा !

इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है कि यदि हमारी प्राचीन चिकित्सक कालिका आज कलके डाक्टरोंको एक असाधारण बात मालूम हो पर उसमें जीवधारी (Animal) फलफूल तथा खनिज संसार (Mineral Kingdom) से सम्बन्ध रखने वाली सब ओषधियोंकी पूर्ण रूपसे व्यहार व उपयोगिता दी हुई है और यह सुचार-रूपसे दर्शाया गया है कि कौन कौन खाद्य पदार्थ शरीरके हेतु लाभदायक हैं। किनके उपयोगसे शरीर सुन्दर तथा शक्तिवान होता है" (गो-डोलके ठाकुरसाहबकी आर्य्यरसका एक छोटा इतिहास नामक पुस्तकसे उधृत्-यह पुस्तक अंग्रेजीमें लिखी है।)

यह प्रसिद्ध है कि हमारे आर्य्य पुरषा हर एक कलाओंके ज्ञाता थे, विशेष कर वैद्यकके और ज्ञानका भंडार खोज करनेकी इच्छा से जो अन्वेषण उन्होंने इस विद्याको शिखरोन्नत पर पहुँचानेके लिये किये वे असंख्य हैं।

हमारी चिकित्सक कालिका कितनी आश्चर्यजनक है इस बातका निर्णय इसीसे हो सकता है कि आजकल की ऐलोपैथिक विधिमें जो बातें इतने कष्ट तथा अन्वेषण के वाद पाई गई हैं तथा नेत्र चिकित्सा जो इतने दिनों बाद सफल हुई है हमारे पुरुष उन सब बातोंमें कितना आगे बढ़े हुये थे और किस प्रकार रोगोंकी जांच कर मनुष्योंके दुखों को सरलता से दूर कर देते थे।

अब हम लोग अपने पुरुषाओंकी चिकित्सक रीतियोंको गँवारू कहते हैं और उनका प्रयोग नहीं करते हैं जैसेकि उन्होंने गोबरकी पुलटिसके रूपमें प्रयोग करनेको कहा है परन्तु हम उसको हानि कारक तथा जंगली रीति समझ कर नहीं प्रयोग करते हैं परन्तु अब पाश्चात्य रस कला के विद्वान इस बातका अन्वेषण कर रहे है और उन्होंने ने प्रयोग द्वारा इस बातका निर्णय किया है कि जो हमारे पुरुषाओं ने बताया था सो बिलकुल ठीक था।

इस लेखमें और बातें न लिखकर मैं सिर्फ गव्य वस्तुओंके विषयमें ही बतलाऊँगा। दुग्ध, गोमूत्र तथा गोबरका वर्णन करूँगा तथा एक एक कर उनका आर्य्य रसकलामें स्थान निर्णय करूँगा।

तत्पश्चात् इस बातको आप लोगोंके सामने रक्खूँगा कि अंग्रेज़ी पद्धति द्वारा किये गये अन्वेषणोंसे कहां तक यह बात प्रमाणित होती है कि हमारे पुरुषाओंकी कार्य्य प्रणाली ठीक थी। माता (चेचक) के टीके और उसके कारण गायके जीवन के ऊपर जो टैक्स पड़ता है वह आप लोगोंकी सुगमताके हेतु इस जगह वर्णन किया गया है।

गायका बहुत शुद्ध दूध पीनेसे ताकत आती है यह बात सब जानते हैं।

यह बात पूर्णरूपसे प्रमाणितकी गई है कि गायका दूध माँके दूधसे ज्यादा पौष्टिक तथा लाभदायक होता हैं।

दोनोंके विश्लेषणांश नीचे दिये जाते हैं। उनके पिलाने पर स्वयं मालूम हो सकता है कि कौनसा दूध अधिक उत्तम है।

मा का दूध

प्रोटीड्स (एक प्रकारका तरल पदार्थ है जोकि जीव धारियोंके स्नायुओंमें पाया जाता है) २°/.

चरबी (मक्खन) ३·५५°/.

दुग्धशर्करा (दूध चीनी अर्थात् वह चीनी जो दूधका एक हिस्सा है) ६·२°/.

नमक २·५° . पानी ८५·७°/.

गायका दूध

प्रोटीड्स	—	४, प्रतिशतक
चरबी	—	३·६०
दुग्धशर्करा	—	४·०२
नमक	—	०·७३
पानी	—	८६·२०
घनत्व	—	१·०३०

यह बिलकुल प्रत्यक्ष है कि यदि दूध काफी मिल सके तो पानीकी तरह इस्तेमाल हो सकता है अर्थात् पानीके बदले व्यवहारमें लाया जा सकता है और कोई हानि नहीं करेगा।

यह यथार्थमें ठीक है कि भारतवर्ष ऐसे देशमें जहाँ कि बालक शक्तिहीन होते हैं तथा अधिक संख्यामें मरते हैं, दुग्ध एक अमूल्य पदार्थ हैं। दूध एक बहुतही शक्तिवर्धक वस्तु है तथा वह शारीरिक तथा मानसिक दोनोंहीकी उन्नतिके लिये एक अत्यन्त लाभदायक वस्तु है और यहभी कहा जाता है कि दूधसे शारीरिक व मानसिक शोधनभी होता है अर्थात् दूधके उपयोग करनेसे सब विकार दूर होसकते हैं।

यह बात पुराणोंसे सिद्ध है कि गव्य (गाय द्वार प्राप्त) वस्तुयें शुद्धिके हेतु उपयोगकी जाती हैं और गाय के ऊपर चारो लोक निर्भर हैं। विष्णु पुराणकी सनातन रीतियोंमें यह बात पाई जाती थी तथा यहभी लिखा है कि आदमी यदि दीर्घायु होना चाहता है तो प्रातः काल उठकर पहला काम जो उसको करना चाहिये वह यह है दही व घीको देखे। अब हम यदि दूधकी सब अच्छाइयोंको इकट्ठा करें तो हमें

मालूम होगा कि दूध कितना शक्तिवर्धक है तथा विकारोंका नाश करने वाला तथा......गायका दूध वीर्य्यको अधिक व शक्तिवान बनाता है। दूधकी अच्छाइयें गायके रंग व चारेके अच्छेपन पर बहुत निर्भर हैं।

दूधसे बहुत सी चीज़े बनती है। दही जो कि दस्तोंके लिये बहुत लाभदायक औषधि है। तक्र (मट्ठा) जो बहुत स्वादिष्ट होता है, नवनीत (मक्खन) भी कब्ज़के लिये लाभदायक है। घी एक औषध है जो ठंडक पहुँचाता है तथा शक्तिवर्धक है। संतनिक (मलाई) शक्तिवर्धक होती है।

आर्य्य रसकला में जो चीरा-फाड़ीकी प्रथा है उसके अनुसार ज़ख्मोंका ठीक समय पर उपचार होना आवश्यक है। ज़ख्ममें दर्द हो तो एक कपड़ा अधगरम घीमें डबोके रख देनेसे आराम पहुंचता है, दर्द बन्द होजाता है तथा ज़ख्म जल्दी पुर जाता है। इस समय यहाँ पर दूध तथा उससे बनने वाली वस्तुओंके बारेमें इतना लिखना काफी होगा।

कुछ विद्वानोंका मत है कि यदि शरीर के भीतर कोई विकार उत्पन्न होजाय तो वह पंचगव्यके उपयोगसे सरलतासे दूर होसकता है और इससे अच्छा और कोई उपचार नहीं है।

पारसी सभ्यताके अनुसार गोमूत्रसे अधिक उपयोगी वस्तु दूसरी नहीं होती है तथा हमारी पवित्र पुस्तकोंमें भी यह बात बतलाई गई है जो मूत्रसे अधिक शरीर शुद्धिके लिये कोई वस्तु लाभदायक नहीं होती है सारांश यह है कि गोमूत्र गवोत्पादक ६ वस्तुओंमें एक ऐसी वस्तु है जिसके बिना काम चलही नहीं सकता "गोमूत्र गंगा जलके तुल्य होता है"

गोमूत्र क्यों इस कदर उपयोगमें लाया जाता है इस बातके ढूँढ़नेके लिये ज्यादा कष्ट नहीं उठाना पड़ेगा।

हिन्दू सभ्यताके अनुसार गोमूत्र एक बहुत अच्छी चीज़ है तथा औषधके रूपमें बहुत उपयोगकी जाती है। गोमूत्र शरीरके अन्द तथा बाहर दोनों उपयोगमें लाया जाता है। यह कौलिक (वह दर्द जो बदहज़मीके कारण कलेजेके नीचे होने लगता है।) दर्दमें एक बहुत लाभदायक वस्तु बताई गई है। यह और बहुतसे रोगोंके लिये लाभदायक है। गोमूत्र धातुओंके शोधनमें काममें लाया जाता है। टीनके शोधनमें गोमूत्र बहुत उपयुक्त वस्तु है।

खनिज पदार्थोंके शोधनमें चाहे वह अकेले हो या मिश्रित रूपमें हो गायका पित्त तथा मूत्र बहुत उपयुक्त तथा लाभदायक है तथा इससे बढ़ कर और कोई चीज़ नहीं है, यह उपर्युक्त कार्य्यके लिये एक अमूल्य वस्तु है।

गायके दांत तथा सींगोंके चूरेके उपयोगसे धातुमें वह मुलामियत आ जाती है जिसको कि स्तम्भ कहते हैं। कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र नामक पुस्तकमें इस बातको बहुत अच्छी तरह दर्शाया है और कई बातें बतलाई हैं जिनमें गोबर वा गोमूत्रका उपयोग होता है तथा वह खनिज धातुओंके शोधनमें कार्य लाये जाते हैं।

यह कहना ठीक न होगा कि यह सब तरीके गन्दे व जंगली हैं क्योंकि यदि हम आज कलकी वर्त्तमान रस पद्धति देखें व धातुओंके निकालनेके तरीकोंका निरीक्षण करें तो हमें मालूम होगा कि हमारे पुरषाओं ने क्या क्या किया। वर्त्तमान विज्ञान इस बातको साबित कर रहा है कि हमारे पुरुषाओंकी कार्य्य योग्यता कितनी दूर तक बढ़ी हुई थी।

गोबरके विषयमें यह कहना अनुचित न होगा

कि बहुत देशोंके गावोंमें यह पुलटिस रूपमें काममें लाया जाता है लेकिन हिन्दुस्तानमें चूँ कि गाय को लोग बहुत पवित्र मानते हैं इस वास्ते इसके उपयोग करनेमें दो लाभ होते हैं। पहला कि इसको धार्मिक रूपमें पवित्र मान कर लगाते हैं, दूसरे इसमें रासायनिक उपयोगिता पहले से ही है, इस वास्ते यह अधिक लाभदायक होता है। उपर्युक्त कथन धर्म्मशास्त्र द्वारा बिलकुल प्रमाणित किये जा सकते है। विष्णु पुराण में यह लिखा है कि यदि घर को शुद्ध करना हो तो गोबर से लीपा (पोता) जावे और यदि किसी पुस्तक को पवित्र करना हो तो ज़रा सा गोबर ले कर पानीमें मिला कर उसके ऊपर छिड़क देना चाहिये। आर्य्य रस शास्त्रमें गोबरकी बड़ी महिमा बतलाई है।

पुरिशा (गोबर) बदनके उस हिस्से पर लगाया जाता है जहाँ सूजन आ गई हो अथवा उस जगहका रंग बिगड़ गया हो। यह दवाके तरीके पर खाया नहीं जाता है। इसके जमीन या दीवाल पर लीपने से कीड़े मकोड़े मर जाते हैं। गोबरका हिन्दुस्तानमें ही बहुत उपयोग होता है। गोबरकी राख तथा गोबर दोनों काममें आते हैं।

गोबर यह एक बहुत उपयुक्त तथा लाभ दायक वस्तु है। पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने इस बातकी पुष्टि की है। यह बात सब जानते हैं कि गाँवमें कच्ची दीवारों पर सीमेण्टकी जगह गोबर दिया जाता है और कुछ दिन बाद जब कुछ कुछ खराब हो जाता है तो फिर गोबरसे लीप देते हैं। लीपते वक्त जो बदबू रहती है वह बहुत थोड़ी देरमें चली जाती है और जगह को ठंडा ताज़ा व सुगन्धमय बना जाती है। पाश्चात्य देशीय बड़े पुरुष व वैज्ञानिक हमारे पूर्वजोंकी इस प्रथा तथा उपयोगकी प्रशंसा करते हैं। वे इसे अच्छा कहा करते हैं परन्तु शोकके साथ कहना पड़ता है कि हम लोग इस बातको बुरा समझते हैं। हम अब आपको पाश्चात्य वैज्ञानिकोंकी अनेक बातोंको बतलायेंगे जिसमें उन लोगोंने इस बातको प्रमाणित किया है कि हमारे पूर्वजोंने जो गोबर व गोमूत्रका उपयोग बताया था सो बिलकुल ठीक है।

मूत्रमें एक रासायनिक पदार्थ मूत्रिया (यूरिया) नामक पाया जाता है। बेलफास्टके प्रोफेसर श्रीमान स्मद्सने तथा डलस्टर प्रोफसर श्रीमान कर्कने अपने अन्वेषणों से इस बातको प्रमाणित किया है कि मूत्रिया बीमारीके लिये कितना लाभदायक है। इस बातने पाश्चात्य देशी सज्जनों को चकित कर दिया तथा हमारे पुरषायों का मान बढ़ाया क्योंकि यह बात वह लोग पहिले ही से जानते थे। उन्होंने सात बातें बतलाई हैं, जिसमें मूत्रियाका उपयोग होता है।

(१) मूत्रिया जब रुधिरमें मिला होता है तो कीड़े पड़ने व उसको गंदगी से बचाता है अर्थात् रोग कीटाणु नाशक गुण है।

(२) जीवधारियोंके अंगों को हानि नहीं पहुँचाता है।

(३) जिस मात्रामें यह ज़ख्मों पर उपयोग किया जाता है उस मात्रामें हानि नहीं पहुंचाता है [क्योंकि ज्यादा मात्रायें विष हो जाती हैं]।

(४) इसके उपयोगमें आधी मिहनत बच जाती है जितनी दूसरी चीजके इस्तेमाल करने में लगेगी।

(५) इसके उपयोग करते समय प्रकृति की मददमें कोई रुकावट नहीं पड़ती। इसका अर्थ यह है कि कुदरत जो सहायता पहुँचाती है व एक ज़ख्मकी पुरनेमें मदद देती है उसमें इसके उपयोगसे किसी प्रकारकी बाधा न होगी।

(६) इससे बहुत फायदा है अगर इसको हम पहले उपयोगमें लावें।

(७) ज़ख्ममें खून खराब होनेसे सूजन आ-जाती है। यदि ऐसे ज़ख्म पर यह उपयोगमें लाया जावे तो सूजनको दूर कर देता है।

प्रोफेसर स्मट्स ने इस बातको दर्शाया है कि मूत्रिया सूखी हालतमें बिलकुल ठीक रहता है। उड़ता नहीं है तथा बहुधा यह विष भी है और बहुत कम मात्रा यहां तक कि सिर्फ ३°/॰ ही लाभ पहुँचाता है और यह बात, खून इत्यादि तथा ऐसे तरल पदार्थके संसर्गमें ज्यादा लाभ करता है।

डाक्टर क्रोफोर्ड हेमिलटन और अमेरिकाके डाक्टर मोर्फनश ने इस बात के प्रमाणित किया है कि यदि दिलके धड़कनकी बीमारी ज्यादा बढ़ जाये तो मूत्रिया लाभदायक प्रतीत हुआ है। यहां पर यह कहना अनुचित न होगा कि हमारे पूर्वज पंच गव्यको बहुत काममें लाते थे। पंच गव्यमें दूध गोमूत्र, मीठा मट्ठा, घृत तथा गोरोचन (गऊलोचन) —एक पदार्थ जो गऊके पित्त व मूत्र से तैयार किया जाता है, हैं।

अब मैं यहाँ पर माता (चेचक)के टीकेके बारेमें लिखकर लेखको समाप्त करूंगा।

यह बात ठीक मालूम होती है, कि माताका टीका बहुत पहले से प्रचलित था और एडवर्ड जेंनर के पैदा होनेसे पहले भारतवर्षमें कई जातियां इस बातको जानती थीं। तथा माता (चेचक) की पपड़ी (अर्थात् पपड़ी जो कि माता के अच्छे हो जाने पर छूटती है) रख लेते थे तथा जब टीका लगानेकी ज़रूरत समझते थे तो वही पपड़ी ज़रासी बाँह पर रख कर सूईसे छेद कर देते थे इस प्रकार वह हलका ज़हर शरीरमें मिट जाता था तथा इतना बलवान बन जाता था कि चेचकके निकास को रोक सके। डाक्टर डुलिटने जो पहले पांडेचिरीमें थे इस बातकी प्रमाणित किया है कि यह माताका टीका तथा उसकी रीति धनवन्तरि नामक वैद्यको मालूम थी और यह हिपीकोटसके भी पहले हुये।

चेचकके टीके के लिये जो दवा तैयारकी जाती उसकी वज़हसे भारत वर्षमें गायके जीवनके ऊपर एक बहुत बड़ा टैक्स पड़ता है, अर्थात् उनको बहुत दुःख पहुँचता है। यहां पर यह बताना अनुचित न होगा कि यह दवा किस प्रकार तैयारकी जाती है। गायके पेट परके बाल साफ किये जाते है, फिर माताकी बीमारीके कीटाणु उसके अन्दर पहुँचाये जाते हैं जिसकी वजहसे उस साफ जगह चेचक निकल आती है और उन्हीं दानोंसे दवा खींची जाती है और फिर कई प्रकारसे शुद्ध करके जनताके उपयोगके हेतु छोटी २ नलियोंमें भर कर उपयोग में आती है।

उपर्युक्त क्रियाके कारण गाय जिसको कि काम में लाया जाता है फिर उसी तरहसे अच्छी नहीं रहती जिस तरह कि पहले थी। इस प्रथाके कारण दोनों को बड़ा कष्ट पहुँचता है गायको भी तथा मनुष्यको भी। पेरिसकी संस्था [जो वही कार्य्य करती है जो कि यू० पी० की कसौलीकी संस्था] के डाक्टर वेसरिडका को धन्यवाद देना चाहिये जिसके कारण गायोंका कष्ट बहुत कम होगया है। उन्होंने इस बातको साबित किया है कि माताके कीटाणु जिस जगह होते हैं उसीके आसपास रहते हैं। इस हेतु बाँहमें छेद करवा कर टीका लगवाना तथा शरीरमें लहूके प्रवाह को गड़बड़ करना बिलकुल व्यर्थ है और इसलिये दवा जो तैयारकी जाती है उसको हम लगा सकते हैं। डाक्टर वेसरिडका के तरीकेमें कोई हानिकारक बात नहीं है। उनकी दवा गोली के रूपमें खायी जासकती है। आज कल जो माताके टीका लगता है वह इसलिये कि तमाम शरीर इस बीमारीसे बचा रहे लेकिन डाक्टर का कहना कि माता के कीटाणु भिन्न भिन्न रीतिसे भिन्न भिन्न हिस्सों पर हमला करते हैं। इस वदनके वास्ते हर एकके लिये अलग दवाई देना चाहिये।

उपर्युक्त डाक्टरकी दवा बिलकुल नयी है और शनैः शनैः उपयोगमें आरही है। यदि उपर्युक्त दवा भारतवर्षमें प्रचलित होगई तो जानवरोंकी जीवन की रक्षा होसकती है उपर्युक्त रीतिसे सर्व साधारणको मालूम होगा कि गाय कितना लाभदायक पशु है और हमें उसका कितना आदर करना चाहिये।

रदरफोर्ड और सौडी सिद्धान्त
तथा
रश्मिमूकी आयु

[लेखक-श्रीरघुनाथ सहाय भार्गव एम०-एस-सी०]

१९०२ ई० में रदर फोर्ड सौडीने रश्मिशाक्तिक पदार्थों का सिद्धान्त वैज्ञानिकोंके समक्ष रक्खा। वह इतना महत्वपूर्ण था कि सर्वतः स्वीकार किया गया। इनके सिद्धान्तके अनुसार ऐसी वस्तुओंके परमाणु स्थिर नहीं रहते हैं वह सदैव क्षय होते रहते हैं जिनमेंसे एलफा या बीटाकण पृथक् होते रहते हैं परन्तु यह दोनों प्रकारके कण एक साथ नहीं निकलते हैं। इनके पृथक् होनेपर वह पदार्थ एक दूसरे पदार्थमें बदल जाता है जिसके गुण मूल-पदार्थसे पूर्णतया भिन्न होते हैं। यदि हम कल्पना करें कि किसी वस्तुमें उसके परमाणुओंकी संख्या "न". है तो उन परमाणुओंकी संख्या जो प्रति सेकंड क्षय होते हैं "न". पर निर्भर होगी। इस सिद्धान्तको इसप्रकार प्रगट करते हैं।

$$\frac{\text{ता न}}{\text{तास}} = -\text{र न}$$

इस समीकरणमें "र" एक स्थिर संख्या है जिसको रश्मिशक्तिका स्थिरांक (Radioactive const) कहते हैं।

अब

$$\int \frac{\text{ता न}}{\text{न}} = \int -\text{ता स}$$

$$\text{ल न} = -\text{र स} + \text{क}$$

$$\text{जब समय} = \text{स} = 0 \text{ तो न} = \text{न}_0$$

$$\text{ल न}_0 = 0 + \text{क}$$

$$\therefore \text{ ल न} - \text{ल न}_0 = -\text{र स}$$

$$\text{या ल}\frac{\text{न}}{\text{न}_0} = -\text{र स} \quad \therefore \text{न} = \text{न}_0 \text{इ}^{-\text{र स}}$$

यदि किसी रश्मिशाक्तिक पदार्थके क्षय होने पर एलफा कण निकलते हैं तो नई वस्तुका परमाणु भार मूल-पदार्थ की अपेक्षा ४ इकाई कम हो जाता है। यदि पदार्थमेंसे बीटाकण निकल रहे हैं तो नई वस्तु और मूल वस्तुके परमाणुभारमें कोई अन्तर नहीं होता है। इसका कारण यह है कि एक बीटाकण का भार जो ऋणाणु होता है उद्जन परमाणुभारका $\frac{१}{१८००}$ अंश होता है जिसकी मात्रा इतनी कम है कि यदि सिहावमें न लायें तो कोई विशेष त्रुटि उपस्थित नहीं होगी परमाणुके शनि ढांचेके अनुसार परमाणुके धन विद्युन्मय पिंडके चारों ओर ऋणाणु भिन्न-भिन्न मार्गोंमें चक्कर लगाते रहते हैं। यह माना जाता है कि रश्मिशाक्तिक वस्तुमें पिंडका क्षय होता रहता है इसलिये जिस समय एक एलफ़ाकण पृथक् होता है तो पिंडकी धन मात्रा (२ ई) कम हो जाती है जो एक एलफ़ाकणकी विद्युत मात्रा है जिस समय एक बीटाकण निकलता है तो पिंडकी मात्रा बढ़ जाती है क्योंकि एक बीटाकणकी मात्रा (—ई) होती है।

जिस समय एलफ़ाकण परमाणुसे पृथक् होता है तो परमाणुओंकी धन मात्रा २ इकाईसे कम हो जाती है इस कारण जिस समय तक दो ऋणाणु

इस परमाणुसे न निकलेंगे वह विद्युतहीन न होगा। इसी भावसे वह परमाणु जिसमेंसे एक ऋणाणु पृथक् होता है उस समय तक वह विद्युतहीन नहीं होगा जबतक वह एक ऋणाणु प्राप्त न करले। चूँकि पिंड मात्रा वस्तुके परमाणु संख्याके बराबर होती है इसलिये एक एल्फ़ाकण निकलने पर नये परमाणुका स्थान मूल परमाणुके स्थानसे मैन्डलीफ़के आवर्त्त संविभागमें दो नम्बर पीछे हो जावेगा और एक बीटाकण निकलने पर एक नम्बर आगे बढ़ जावेगा। यदि किसी वस्तुसे एक बार एक एलफ़ाकण निकलता है और दूसरे अवसर पर दो बीटाकण निकलते हैं तो उसका स्थान स्वयं वही रहेगा।

यदि हम कल्पना करें कि आरम्भमें परमाणुकी संख्या 'न' है और यह परमाणु बराबर क्षीण होकर नई नई वस्तुओंमें उस समय तक बदलते रहते हैं जबतक कि एक रश्मिशक्तिहीन वस्तु न बन जावे। ऐसे समय पर यदि $\text{न}_1, \text{न}_2, \text{न}_0, \cdots \text{न}_\text{न}$ पहली दूसरी तीसरी नई वस्तुकी परमाणु संख्या है और इसी प्रकार $\text{न}_\text{न}$ अन्तिम वस्तुकी परमाणु संख्या है तो

$$\frac{\text{ता न}_1}{\text{ता स}} = -\text{र}_1\,\text{न}_1 \cdots\cdots\cdots \quad (१)$$

$$\frac{\text{ता न}_2}{\text{ता न}_2} = \text{र}_1\,\text{न}_1 - \text{र}_2\,\text{न}_1 \cdots \quad (२)$$

$$\frac{\text{ता न}_3}{\text{ता स}} = \text{र}_2\,\text{न}_2 - \text{र}_3\,\text{न}_3 \cdots \quad (३)$$

$$\frac{\text{त न}_\text{न}}{\text{ता स}} = \text{र}_{\text{न}-1}\,\text{न}_{\text{न}-1} - \text{र}_\text{न}\,\text{न}_\text{न} \ldots\ldots (\text{न})$$

बाईं हाथकी ओरका जोड़ शून्यके बराबर है जिससे यह प्रत्यक्ष है कि परमाणुकी पूर्ण संख्या स्थिर रहती है जो सत्य प्रतीत होता है।

अब हमको यह दिखलाना है कि साम्यावस्था (equili brium State) में $\text{न}_1\text{र}_1 = \text{न}_2\text{र}_2 = \text{न}_3\text{र}_3 = \text{न}_4\text{र}_4 = \cdots$

अब पहिले समीकरण का परिमाण जैसा हम पहले दिखला चुके हैं

समीकरण २ से $\quad \text{न} = \text{न}_0 \text{इ}^{-\text{र}_1 \text{स}}$

$$\frac{\text{ता न}_2}{\text{ता स}} = \text{र}_1\,\text{न}_1 - \text{र}_2\,\text{न}_2$$

लेकिन साम्यावस्थामें $\text{र}_1\,\text{न}_1 = \text{स्थिर संख्या} = \text{क}_2$

अब $\frac{\text{ता न}_2}{\text{ता स}} = \text{क}_2 - \text{र}_2\,\text{न}_2$

$$\int \frac{\text{ता न}_2}{\text{क}_2 - \text{र}_2\,\text{न}_2} = \int \text{ता स}$$

या $\frac{१}{\text{ल}_2}$ लाग $(\text{क}_2 - \text{ल}_2\,\text{न}_2) = \text{स} - \text{क}'$

या लाग $(\text{क}_2 - \text{ल}_2\,\text{न}_2) = -\text{ल}_2\,\text{स} + \text{क}_2''$

जिस समय $\text{स} = 0$ तो $\text{न} = 0$

$\therefore \text{क}'' = \text{लाग क}_2$

$\therefore$ लाग $(\text{क}_2 - \text{ज़}_2\text{न}_2) - \text{लाग क}_2 = -\text{ज़}_2\text{स}$

या $\quad$ लाग $\frac{\text{क}_2 - \text{ल}_2\text{न}_2}{\text{क}_2} = -\text{ल}_2\,\text{स}$

या $\quad \frac{\text{क}_2 - \text{ल}_2\,\text{न}_2}{\text{क}_2} = \text{इ}^{-\text{ल}_2\text{स}}$

$\therefore \text{न}_2 = \frac{\text{न}_1\text{ल}_1}{\text{ल}_2}\left[१ - \text{इ}^{-\text{ल}_2\,\text{स}}\right]$

इसीलिये न_2 का अधिकतम मूल्य $= \frac{\text{न}_1\,\text{ल}_1}{\text{ल}_2}$

या $\quad \text{न}_1\,\text{ल}_1 = \text{न}_2\,\text{ल}_2$

इसी प्रकार $\frac{\text{ता न}_3}{\text{तास}} = \text{ल}_2\,\text{न}_2 - \text{ल}_3\,\text{न}_3$

$= \text{ल}_1\,\text{न}_1 - \text{ल}_3\,\text{न}_3$

$= \text{क}_2 - \text{ल}_3\,\text{न}_3$

पहिली रीतिसे यह दिखलाया जा सकता है कि

$$\text{न}_3 = \frac{\text{न}_1\,\text{ल}_1}{\text{ल}_3}\left[१ - \text{इ}^{-\text{ल}_2\,\text{स}}\right]$$

इसीलिये न_3 का अधिकतम मूल्य $= \frac{\text{न}_1\,\text{ल}_1}{\text{ल}_3}$

$\therefore \text{न}_3\,\text{ल}_3 = \text{न}_1\,\text{ल}_1$

इसी प्रकार हम यह दिखला सकते हैं कि $\text{न}_1\,\text{ल}_1 = \text{न}_2\,\text{ल}_2 = \text{न}_3\,\text{ल}_3 = \text{न}_4\,\text{ल}_4 = \cdots\cdots$

इसी प्रकार वस्तु छीजते छीजते ऐसी दशाको पहुँचती है कि उनमें से हर प्रकार के कण निकलने

बन्द हो जाते हैं। वह एक अरश्मिशाक्तिकके (non-radioactive substance) रूपमें प्रगट होती है। दूसरे शब्दोंमें यह कहिये कि (Radioactive) रश्मि शाक्तिक वस्तुकी आयु पूरी हो जाती है। ऐसी वस्तुकी आयुका अनुभव हमारी जोग आयुसे कम है हम भली भांति कर सकते हैं।' हमारे जीवनमें जिस समय इनमेंसे एलफा या बीटाकण निकलने बन्द हो जायँगे तो हम समझने लगे कि अमुक वस्तुकी आयु पूरी होगई है परन्तु रश्मिम् जैसी वस्तुकी आयु जो २००० वर्षसे अधिक है इस साधारण रीतिसे निकालनेमें निष्फल होंगे यदि सफलताकी नीयतसे एक दूसरेके बाद क्रमशः जांच करते जावें तो इसमें सफल अवश्य होंगे परन्तु अधिक समयकी आवश्यकता है। ऐसी रीतियों पर सन्तुष्ट रहना भौतिक शास्त्रके जीवनके लिये घातक होगा इसलिये वैज्ञानिकों ने ऐसीके वस्तुके भिन्न २ गुण उपयोगमें लाकर आयुका ज्ञान प्राप्त करने की भिन्नभिन्न रीतियां दी हैं जैसे रश्मिशाक्तिक परमाणुओंके क्षयकी गति (rate of disintegration of the Radioacive atom)

इस समय हम अनेक रीतियोंपर विचार न कर कर उनमेंसे एक रीति पर जो रदरफोर्ड तथा गैगरके नामसे प्रसिद्ध है विचार करेंगे। दूसरी रीतियोंकी अपेक्षा इस रीतिसे रश्मिम्की आयुका अनुभव अधिक ठीक होता है।

इस रीतिमें मुख्यतम भाव एलफा कणोंकी संख्याका जो वस्तुसे प्रति सैकंड निकलते रहते हैं ज्ञान प्राप्त करना है। इस विषय पर रैगेनरने कुछ प्रयोग किये थे उन्होंने ऐसा प्रबन्ध किया था कि ये कण वस्तुसे निकल कर एक चमकने वाले परदे पर टकराते थे। टकराने पर एक चमक पैदा होती थी। यदि हम मानलें कि एक कण एक बार चमक पैदा करता है तो जितनी वार चमक पैदा होगी उतने ही कण एक समयमें वस्तुमेंसे निकलेंगे। उन्होंने ऐसे कणकी विद्युत् मात्रा भी फ़ैरेडे बेलनाकार (Cylinder) बकस द्वारा निकाली थी इस प्रकार उसकी मात्रा जो रैगेनर निकाली थी ६'५८ × १०⁻¹⁰ है।

उस समय इस कथनमें कि एक एलफाकण परदे पर टकरानेमें एक वार चमक पैदा करता है सन्देह होनेके कारण वैज्ञानिकों ने इस पर विश्वास नहीं किया। यह प्रयोग रदरफ़ोर्ड ने दुबारा किया। इस अवसरपर उन्होंने परदे को कण पहिचानने वाला नहीं रखा परन्तु उसके स्थान पर यापन रीतिको काममें लाये। उनके यंत्र का चित्र नीचे दिखलाया गया है।
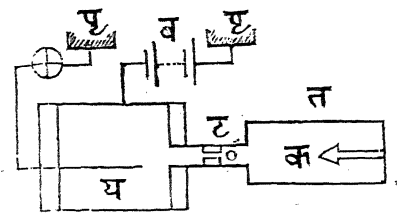
इस पहिचाननेवालेका मुख्य भाग एक, लम्बी नली "त" और यापन बक्स "य" है। इनका सम्बन्ध एक छोटी नली द्वारा है जिसमें "ट" एक टोंटी लगी हुई है। इस टोंटी की सहायतासे हम जिस समय चाहें एलफ़ा कण को जो "क" नौक पर रखी हुई वस्तु से निकल कर "य" में जा रहे हैं जाने से रोक सकते हैं। इस नली में एक रोक "र" और लगा हुआ है। इसके कारण टोंटी खोलने पर सिर्फ़ वही कण यापन बक्स में पहुंच कसते हैं जो वस्तु से उस शंकु (cone) में चलते हैं जो यह रोक "क" पर बनाता है।

यदि हम मान लें कि हमने एक ग्राम, का कुछ अंश यानी $\frac{1}{x}$ ग्राम रश्मिम् "क" पर रखा है तो उसमें से एलफाकण "न₁" प्रति सेकेन्ड चारों ओर निकल रहे हैं। यदि "र" पर ठोस कोण

"$र_१$" है तो उन कणों की संख्या जो यापन वक्स में जावेंगे "$न_२$" होगी जहां

$$न_२ = \frac{न_१ \, र_१}{४\pi}$$

या $$न_१ = \frac{न_२ \times ४\pi}{र_१}$$

यदि न=कण संख्या प्रीति सैकंड प्रति ग्राम तो

$$न = न_१ \times म$$
$$= \frac{न_२ \times ४ \times \pi म}{र_१}$$

'न' का मान मालूम करने के वास्ते हमको "$र_१$", "म" तथ "$न_२$" का मान मालूम होना चाहिये। इस प्रयोग में रदरफोर्ड तथा गैगर ने 'क ट' मार्ग १५० शतांश मीटर लिया था यदि हम को रोक "ट" की चौड़ाई मालूम है तो हम को, '$र_१$' का मान सरलता से मालूम हो सकता है। वस्तुका भार 'म' जो नोकपर रखा है प्रयोग आरम्भ करनेसे पहिले तोल-कर मालूम हो सकता है। सब से कठिन और आव-श्यक "$न_२$" का मान मालूम करना है। यह यापन वक्स द्वारा किया जाता है जो चित्रमें "य" दिखाया गया है। इस बक्स के बीचमें एक सीधा तार है। यह तार "क" की ओर नोकीला है। यह नोंक रखनी आवश्यक है जिसका कोई कारण इसके उपरान्त नहीं दे सकते हैं कि अभ्यासमें इसको अच्छा काम करते हुए पाया है। इस तारका सम्बन्ध विद्युत मापकके एक (Quadrant) चतुरांश से कर दिया जाता है जो स्वयं धरती से एक बहुत बड़ी बाधा द्वारा जुड़ा हुआ है। इस वक्सकी दीवार का सम्बन्ध एक बाटरी "ब" से है जिसका दूसरा विजलोद धरती से सम्बन्धित है तार और दीवार के बीचमें अवस्था भेद लगभग ३०० वोल्ट रखा जाता है।

वक्स में दबाव ऐसा रखना चाहिये कि अमुक अवस्था भेद पर बची हुई गैसमें काफ़ी यापन करने योग्य है।

ऐसे बक्स में यवन उपस्थित हैं जिसके कारण तार और दीवार के बीच में बिजली बहती रहती है जिसका परिणाम विद्युत मापक देगा। परन्तु जिस समय बक्समें एलफ़ाकण आवेगा तो वह बक्समें यवनोंकी संख्या शीघ्र बढ़ा देगा। इस संख्याके बढ़ने पर विद्युत मापकमें एक साथ झटका लगेगा। यदि इन झटकों को हम सरलतासे गिन सकते हैं तो एलफ़ाकणकी संख्या जो यापनवक्समें आते हैं मालूम हो सकती है।

विद्युत मापकका संबन्ध धरतीसे इस कारणकर दिया है कि इसके न होनेसे मापकमें बिजली इकट्ठी होने लगती है जिसकी इस समय कोई विशेष आवश्यकता नहीं है। इस कारण उसको बड़ी बाधक द्वारा निकले देते हैं। इस प्रकार $न_२$ का मान मालूम कर सकते।

यदि हम मान लें कि समय की इकाई वर्ष है तो

$$\bar{न} = न \times ६० \times ६० \times २४ \times ३६५$$

चूँकि प्रयोग द्वारा यह सिद्ध कर दिया गया है कि प्रत्येक परमाणु एक एल्फ़ाकण देता है इसलिये

$$\bar{न} = \frac{ता \, न}{ता \, स}$$

=कणकी संख्या जो प्रति सैकन्ड दी जाती है

ये हम जानते हैं कि वस्तु के १ ग्राम अणु का आयतन २२·४ लिटर होता है

इस लिये एक लिटर उदजन का भार

$$= \frac{१}{२२·४ \times १०^४} \text{ ग्राम}$$
$$= ८·९६ \times १०^{-५} \text{ ग्राम}$$

एक ग्राम (Molecule) अणु में २२·४ लिटर होते हैं और एक ग्राम अणु में ६·६ × $१०^{२१}$ (Molecules) अणु होते हैं

इस लिये १ घ.शम.उदजनमें $\frac{६.६ \times १०^{२३}}{२२.४}$ (Molecule) अणु होंगे।

परन्तु उदजनके एक (Molecule) अणुमें दो परमाणु होते हैं इस लिये एक ग्राम उदजनमें $\frac{२ \times ६.६ \times १०^{२३}}{२२.४ \times ८.९६ \times १९^{-५}}$ परमाणु होंगे लेकिन रश्मिम् का परमाणु भार=२२५ इस लिये एक ग्राम रश्मिम्में $\frac{२ \times ६.६ \times १०^{२३}}{२२.४ \times ८.९६ \times १०^{-५} \times २२५}$ परमाणु होंगे $= ३.६ \times १०^{२१}$

$$अब \quad \frac{ता\ न}{ता\ स} = —ल\ \bar{न}$$

$$य \quad \bar{न} = —ल \times ३.६ \times १०^{२१}$$

$$\therefore ल = \frac{\bar{न}}{३.६ \times १०^{२१}}$$

रदरफ़ोर्ड और गैरार के प्रयोगमें $\bar{न}$ का मान ३.४×१०^{१०} प्रति सेकेन्ड मिला है

इसलिये

$$\therefore \bar{न} = ३.४ \times १०^{१०} \times ६० \times ६० \times २४ \times ३६५$$
$$= १.०७ \times १०^{१८} \text{ प्रति वर्ष}$$
$$अब \quad ल = \frac{१.०७ \times १०^{१८}}{३.६ \times १०^{२१}}$$
$$= ३ \times १०^{-४}$$
$$लेकिन\ आयु = \frac{१}{ल}$$
$$= \frac{१}{३ \times १०^{-४}} = ३.३ \times १०^{३} \text{ वर्ष}$$
$$= ३३०० \text{ वर्ष}$$

सर विलियम रैमज़े

[लें० श्री हीरालाल, एम० एस-सी०]

मैं आपसे उस महान रसायनिकका जीवन चरित्र वर्णन करूंगा जिसकी विलक्षण बुद्धि, प्रयोग कुशलता व वैज्ञानिक उन्नतिके लिये उसके अन्य वैज्ञानिक साथियोंको उसकी स्मृति अभी बिलकुल ही ताज़ी है।

सर विलियम रैमज़ेके पिताका नाम विलियम रैमज़े था। उन्होंने लगभग चालीस वर्षकी आयुमें केथराइन राबर्टसनसे पाणि-ग्रहण किया जिनकी उम्र भी लगभग चालीस वर्षकी। सर विलियम रैमज़ेके पितामह व पिता आदि रंगनेका काम करते थे और उसकी माताके घरमें वैद्यक होती थी।

इस महा पुरुषका जन्म दूसरी अक्टूबर सन् १८५२ ईस्वीमें विलायत में ग्लासगो नामक शहरमें हुआ था। अपने माता पिताका इकलौता बेटा होनेके कारण उसका बालकाल बड़ेही आनन्दमें बीता। उसे खेल-कूदसे अधिक प्रेम न था वह छुटपनहीसे जानवरोंसे बड़ा प्रेम करता था और सदैव अपने साथ एक कुत्ता रखता था। उसे संगीतसे भी बहुत प्रेम था और उसने स्कूलहीमें नहीं वरन बादमेंभी संगीत विद्याको डाक्टर ए० एल० पीस से जो कि ग्लासगो गिरजाके संगीताचार्यथे सीखा। उसमें नाना प्रकारकी भाषाओंको सीखनेकीभी बड़ी शक्ति थी। जबकि रैमज़े बालकही था तबही उसने फ्रेंच व जर्मन भाषाएँ बहुत कुछ सीखली थीं!

सर विलियम की प्रारम्भिक शिक्षा ग्लासगोकी एक शालामें आरम्भ हुई। वह खेलकूदमें भाग नहीं लेता था और न उसे कोई पुरष्कारही मिला। सन्

१८६६ के नवम्बर मासमें वह विश्वविद्यालयमें भर्ती हुआ। विश्व-विद्यालयमें उसने रसायन शास्त्रका अध्ययन कभी नहीं किया। उसका साथी व मित्र एच. बी. फाइफ़ (H. B. Fyfe) लिखता है कि कालेज़में आनेके थोड़ीही दिनोंबाद हम दोनोंमें मित्रता हो गई। उस समय रैमज़े रसायन शास्त्रसे बिलकुलही अनभिज्ञ था परन्तु घरमें वह कई प्रयोग किया करता था। वह अपने सोनेके कमरेमें काम किया करता था और वहां पर कई शीशियां रक्खी रहती थीं। किसीमें तेज़ाब, किसीमें पारा, तो किसीमें लवण आदि रक्खे रहते थे, दोपहरके समय वह मेरे घर पर आता और हम दोनों कुछ प्रयोग करते जैसे कि उद्‌जन और ओषजन बनाना और कई सरल यौगिक बनाते थे जैसे कि शक्करसे काष्ठिकाम्ल। हम लोगोंने कांचका भी बहुत काम सीखा। अपने काममें आने वाले करीब करीब सभी यंत्र बनाए, केवल कुप्पियाँ, भभके और गिलास न बना सके।

सर विलियम रैमज़ेने सन् १८६९ ईस्वीसे ठीक तौरसे रसायन शास्त्रका अध्ययन आरम्भ किया। वह कालेज़के बाद मिस्टर टेटलाककी प्रयोगशालामें काम करने जाया करता था। इसके सिवाय वह संगीत और फ्रेंच व जर्मन भाषायें भी सीखा करता था।

रैमज़ेकी वैज्ञानिक रुचिका मूल कारण उसका पिता था जिसे हर एक-वैज्ञानिक विषयमें शौक था और वह उनके विषयमें हमेशा चर्चा किया करता था।

रैमज़ेने एक वर्ष तक टेटलाककी प्रयोगशालामें विश्लेषण कार्य किया और फिर प्रोफेसर टोमस एण्डरसन और जानफरगुसनसे रसायन शास्त्रकी शिक्षा ली। इसके बाद वह जर्मनीमें बुनसनके पास जो-कि हेडलवर्गमें था विद्याध्ययनके लिए जाना चाहता था मगर जर्मनी और फ्रांसके बीच युद्ध होनेके कारण सन् १८७० ईस्वी तक न जा सका। १८७० ईस्वीमें कुछ समय तक रैमज़ेने हेडलवर्गमें काम किया और सन् १८७१ के वसंतऋतुमें वह टूबिञ्जन में प्रोफेसर फिटिगके पास गया जहां पर कि उसे दूसरेही साल पी० एच० डी० की उपाधि मिल गई, जर्मनीसे लौट आने पर रैमज़े अपनी जीवन यात्रा आरम्भ करनेके लिए अपने मस्तिष्क तथा बाहुबलसे पूर्ण रूपसे तैयार था। वह बिना किसी कठिनाईके एक दिनमें ४० मील चल सकता था, वह बड़ा भारी तैराक भी था। उसके मित्र उसकी दयालुताकी बड़ी प्रसंशा करते थे।

जर्मनीसे लौटकर रैमज़े एण्डरसन कालेज़ ग्लासगोमें औद्योगिक रसायनके असिस्टेंट प्रोफेसर नियुक्त हुए। वहां पर वे १८८० ईस्वी तक रहे। इसके बाद वे ब्रिसटल कालेज़में रसायन शास्त्रके प्रोफेसर हुए जोकि रैमज़ेके बाद विश्वविद्यालयमें परिणत हुआ। यह वह समय था जबकि विलायतमें यह जागृति होरही थी कि उच्च प्रकारकी शिक्षा दीजाय और जो विद्यार्थी पुराने विश्वविद्यालयोंमें कई कारणोंसे भरती न होसके थे उनकी शिक्षाका प्रबन्ध किया जावे। उस समय विलायतकी समाज इन बातोंमें अरुचि रखती थी व धनकीभी कमी थी और प्रबन्ध कर्त्ताओंके विचार शिक्षा प्रणाली व अन्वेषणके लिए बहुतही छोटे थे, उस समयके अध्यापकोंको कालेजमें बहुत काम होनेके कारण अपने आपकी उन्नति व अन्वेषणके लिए बहुतही कम समय मिलता था। प्रोफेसरका वेतनभी बहुत कम था। ब्रिस्टलमें ३०० पौ० सालाना वेतन था और कुछ भाग विद्यार्थियोंकी फीससेभी दिया जाता था। प्रोफेसरको दिनमें संध्याको विद्यार्थियोंको लेक्चर देना पड़ता था व आसपासके गावोंमेंभी वहांकी कलाकौशलकी उन्नतिके लिए कुछ शिक्षा देनी होती थी। रैमज़े वहां पर कपड़े रंगनेके विषयमें शिक्षा दिया करता था। १८८१ में

रैमज़े ब्रिस्टल कालेजका मुख्य अध्यापक होगया, इस कारण उसे कार्यका और भी भार होगया! परन्तु वह काम से डरने वाला नहीं था और उसकी प्रयोग शाला में बराबर काम होता रहता था।

सन् १८८७ में रैमज़े लंडन विश्वविद्यालयके कालेजमें रसायन शास्त्र के प्रधान अध्यापक नियुक्त हुए, इसके बाद ही वह एफ. आर. एस.के लिए चुने गए। रैमज़ेके विचार शिक्षा प्रणालीकी ओर बहुत ही दृढ़ थे। वह विद्यार्थियोंको अन्वेषण कार्य्य से परिचित करानेका लाभ भलीभांति जानते थे। वह जानते थे कि अन्वेषणके बिना कोई भी विज्ञान व देश उन्नति नहीं कर सकता है। रैमज़े ने अपने विद्यार्थियों को अन्वेषणके लिए उत्तेजित करनेमें काफी सफलता पाई।

रैमज़े की इतनी विख्याति वायुमंडलके वायव्यों की छानबीन करनेके ही कारण है। उसने उन वायव्यों की खोज की व उनके रासायनिक, और भौतिक गुण भी ढूँढ निकाले जिनका कि पता किसी को भी न था। ये वायव्यें वायुमंडलमें नाममात्र ही हैं। रैमज़े ने अपनी हाथ की सफाईसे पाँच वायव्यों को जिनका कि नाम हिमजन, नूतनम् आलसीम्, गुप्तम् और अन्यजन है, ढूँढ निकाला। ये वायव्यें १००० घ. शम. वायुमंडलमें इस प्रकार है।

	हिमजन	नूतनम्	आलसीम्	गुप्तम्	अन्यजन
घ. शम.	०.००१४	०.०१५	६.३७	०.००००५	०.००००००६

अब आपको ज्ञात हो जावेगा कि इनका ढूँढ निकालना कितना कठिन है मगर धन्य है उस महापुरुष को।

इन पांचों वायव्योंमेंसे हिमजन, नूतनम्, और आलसीम् का कुछ उपयोग हुआ है। हिमजनका घनत्व उद्जन से दूना है और वह उद्जनके समान नहीं है क्योंकि हिमजन जलता नहीं है। इस कारण वह गुब्बारों व हवाईजहाजोंके लिए बहुत ही उपयोगी हैं। आलसीम् और नूतनम्के बिजलीके लेम्प होते हैं जो कि प्रयोगशालाओंमें काम आते हैं।

रैमज़ेने रश्मिशक्तित्वमें भी काम किया है। रैमज़े और साडी ने किरण चित्र दर्शक यंत्रसे देखा कि रश्मिम्के विच्छिन्न होनेसे हिमजन वायव्य निकलती है और उन्होंने यह भी मालूम किया कि कितने एमेनेशनमें कितना हिमजन निकलता है। रैमज़ेने एमेनेशन का घनत्वभी बड़ी ही बुद्धिमत्तासे निकाला और इससे उसका अणुभार भी मालूम हो गया। रैमज़ेने इस एमेनेशन का नाम नीटन रक्खा और उसे हिमजन ही के समूहमें रक्खा।

भारत सरकारने सन् १६०० में रैमज़ेसे प्रर्थनाकी कि वह भारत में आकर सलाह दे कि जो रुपया मिस्टर जमशेद जी नसरवानजी टाटाने दिया है उस का उपयोग किस प्रकार किया जावे। उस रुपएसे भारतमें एक ऐसी शाला खोलनी थी कि जिसमें उच्च प्रकारका वैज्ञानिक कार्य किया जासके। इसके लिए यह तय करना था कि किस जगह वह शाला स्थापितकी जावे। इसके लिए रैमज़ेने पूना व बेंगलोर चुना और आखीरमें बेंगलोरही में उस शालाका स्थापन हुआ जो कि आज कल 'इण्डियन इन्स्टीट्यूट आव् साइन्स' के नामसे प्रसिद्ध है। सन् १६०५ में रैमज़ेको नोबल पुरस्कार मिला। उसी सन्में वह सोसायटी आव् केमिकल इण्डस्ट्रीके सभापति चुने गए और उस साल उसका वार्षिक सम्मेलन न्यूयार्कमें हुआ था। इस समय रैमज़े ने 'अकार्बनिक रसायनकी आधुनिक समस्यायें' पर एक व्याख्यान दिया था।

१६०८ और १६०६ में वह 'केमिकल सोसायटी' के सभापति रहे और १६०६ में वह—औद्योगिक रसायनकी अन्तर जातीय कांग्रेसके सभापति चुने गए जिसकी सभा लंडनमें हुई थी।

रैमज़े इस पदके लिए उपयुक्त भी थे क्योंकि उनसे और दूसरे देशोंके प्रसिद्ध रसायनिकोंसे अधिक परिचय था तथा उन्होंने विज्ञानमें बहुतही उपयोगी और प्रसिद्ध कार्य किए थे। दूसरी विदेशी भाषाओंकी शीघ्रतासे सीख लेनेकी उनमें अद्भुत शक्ति थी। इस ईश्वरीय देनीसे रैमज़े किसीभी विदेशी भाषाको इतनी जल्दी सीख लेते थे कि वह थोड़ेही समयमें उस भाषामें पत्र व्यवहार सरलतासे कर सकते थे। जबकि रैमज़े भारतवर्षमें आये थे उस समय उन्होंने उर्दू सीखी थी। इस कांग्रेस की बैठकमें रैमज़ेने विदेशी प्रतिनिधियोंको जर्मनी, फ्रेंच, व इटेलियन भाषाओंमें स्वागत किया था।

रैमज़ेकी मस्तिष्क शक्ति, मौलिकता, परिश्रम आदिही उसके कार्यकी सफलताके कारण हैं। डेवी के समयसे आज तक किसीने भी रसायनमें इतने महत्वका कार्य नहीं किया और न किसीने इतना मानही पाया जितना कि सर विलियम रैमज़ेने। पदवियोंके भारसे वह दब गया था, १९०२ में उसे K.C.B. की पदवी मिली और वह प्रसिद्ध २ समिति व विश्वविद्यालयोंका मेम्बर था व उसे बहुतसी आनरेरी उपाधियाँ मिली थीं।

उसके मित्र उसके हृदयकी प्रसन्नता, दया, पवित्रता सरलता आदिसे चकितहो जाते थे। वह अपने पुराने मित्रोंको कभी नहीं भूलता था इतनी बड़ी २ वैज्ञानिक उन्नतियों व बड़ा मान सत्कार पाते हुए भी रैमज़े छोटी कक्षाके विद्यार्थी से व किसीसे भी चाहे वह अपरिचित मनुष्यही क्यों न हो बड़े प्रेमसे मिलनेको सदैव तैयार रहता था।

जिस समय इंगलैंड महायुद्धके बीच फंसा हुआ था उस समय रैमज़े अपनी विद्यासे अपनी मातृभूमि की सेवा कर सकता था परन्तु ऐसे समयमें वह अपना शरीर सन् १९१६ की २३वीं जूलाईके प्रभात कालमें तज कर उस "महा वैज्ञानिक" की भेंटको चला गया।

समालोचना

व्रण बन्धन वा पट्टियाँ

लेखक कविराज श्री शिवशरण वर्मा, वैद्यरत्न; प्रकाशक, आचार्य धन्वन्तरि मण्डल, फगवाड़ा (कपूर स्थला स्टेट) पृष्ठ सं० १३२ मूल्य अजिल्द १।=), सजिल्द १॥=)। छपाई कागज़ उत्तम।

श्री शिवशरण जी वर्मा की लिखी हुई दो पुस्तकों की आलोचना पहले दी जा चुकी है। आप चिकित्सा सम्बन्धी विषयोंपर उपयोगी पुस्तकें लिखकर हिन्दी-साहित्य की अभिवृद्धि कर रहे हैं। प्रस्तुत पुस्तक पट्टियाँ बांधने (बैण्डेजिंग) के सम्बन्ध में है। इसमें ७० चित्र दिये गये हैं जिससे पुस्तक की शोभा एवं उपयोगिता और भी बढ़ गई है। सब चित्र हाफटोन और आर्टपेपर पर हैं। घावों के अच्छे होनेमें तथा बाह्यदूषित प्रभावोंसे सुरक्षित रखनेके लिये पट्टियोंका उपयोग कितना आवश्यक है, इस विषयमें कुछ कहनेकी आवश्यकता नहीं हैं। कविराज वर्मा जी ने इस विषय पर इस सुन्दर ग्रन्थकी रचना करके हिन्दी-साहित्य का बड़ा उपकार किया है। हमारा यह अनुरोध है

कि विद्यालयों, सम्मेलन की परीक्षाओं और अन्य राष्ट्रीय शिक्षणालयोंमें इस पुस्तक को अवश्य स्थान मिलना चाहिये । 'फर्स्ट-एड' के पाठ्य क्रम में इसका उचित उपयोग किया जा सकता है ।

स्काउट-मण्डलियों और सेवा समिति के स्वयं सेवकों का ध्यान हम इस पुस्तक की ओर आकर्षित करते हैं । यह पुस्तक उनके बड़े काम की है ।

इस पुस्तक में निम्न बन्धनों का विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है ।—

१ शिर बन्धन, २ नेत्रबन्धन

३ ऊर्ध्व शाखा के बन्धन, ४ वक्ष के बन्धन

५ अधोशाखा के बन्धन ६ त्रिकोन बन्धन

७ स्प्लिण्ट बन्धन ८ स्थायी बन्धन

इनके अतिरिक्त, रुई, स्पञ्ज, धज्जियाँ, मलमल, फलालेन आदि के उपयोगके विषयमें भी यथोचित टिप्पणियाँ देदी गई हैं । प्रत्येक बन्धन के विषय में चौड़ाई, क्षेत्र, प्रयोजन तथा विधि ये चार विभाग किये गये हैं जो सर्वथा उपयुक्त हैं ।

हम कविराज वर्मा जी को इस उपयोगी और अत्यावश्यक पुस्तक लिखने के लिये बधाई देते हैं । हिन्दी साहित्य में यह इस विषय की प्रथम पुस्तक है अतः लेखक का परिश्रम और भी अधिक अभिनन्दनीय है ।

सत्यप्रकाश

महारथी का प्रताप अंक

संपादक श्री रामचन्द्र शर्मा बी. ए., चांदनी चौक दिल्ली । मूल्य ॥।)

महारथी के मई मास का अंक प्रतापांक निकाला गया है । महाराणा प्रताप की पुण्य स्मृति में यह बहुत ही सुन्दर अंक निकला है । सुन्दर कागज़ पर रंग बिरंगी रोशनाई से विभूषित एवं अनेक भव्य चित्रों से सुसज्जित प्रतापांक निकाल कर महारथी ने हिन्दी जनता का ध्यान भारत के चिर स्मरणीय वीर की ओर कराने का यत्न किया है । अंक के लेख, कवितायें और सम्पादकीय टिप्पणियाँ सभी अच्छी हैं । इसके छोटे छोटे संवाद एवं कथानक तो बहुत ही प्रभावशाली हैं । हम उनके लेखकों, विनोद शंकर व्यास, शम्भूदयाल सक सेना-वृषभ चरण, कालिका प्रसाद तथा विद्याभास्कर शुक्ल को इसके लिये विशेष बधाई देते हैं । अन्य लेख भी अच्छे हैं । प्रसाद की 'पेशोला के प्रति' नामक कविता जितनी सुन्दर छपी है उतनी अच्छी नहीं है । महाराणा प्रताप का सचित्र जीवन चरित्र बहुत ही प्रभाव शाली है । 'दीपक की लाज' देखते ही बनती है । सम्पादक महोदय को हम इस सुन्दर अंक के लिये बधाई देते हैं ।

सत्यप्रकाश

वैज्ञानिक और संसार

[ले० श्री धर्मनाथ प्रसाद कोहली; एम० एस-सी०]

प्रायः लोग कहा करते हैं कि संसारका कल्याण उन्हींके द्वारा होता है जो प्रयोग करते हैं और लाभदायक यंत्रोंका आविष्कार करते हैं । जन-समुदाय उन्हींका मान करता है और उन्हींके नामसे परिचित होता है अधिकतर मनुष्य उन्हें जानते ही नहीं जो मौन धर अपने कमरेमें बैठ कर गूढ़ विषयोंका अवलोकन और मनन करते हैं । उनके कार्यकी महत्ताका ज्ञान विरलेही को होता है और उनका नाम थोड़े ही लोग जानते हैं । उनके जीवनसे भिज्ञ होना, उनके चरित्रकी उत्तम तथा प्रभावशाली बातोंका जानना तो उन्हींका सौभाग्य है जो उनके समीप

रहते हैं और उनको समझनेका प्रयत्न करते हैं। आईन्स्टाइनका नाम तो प्रायः सबने सुना होगा। उस क्रान्तिकारी भौतिक शास्त्र वेत्ताने जगमें ख्याति प्राप्तकी है। उन्होंने कुछ अद्भुत और नवीन बातें कहीं है यह सब जानते हैं किन्तु वास्तवमें वे क्या हैं यह थोड़े ही, बहुत कम ऐसे हों जो पूर्णतया उनके कार्यको समझते हैं। वार्तालाप करते समय आइंस्टाइनके विषयमें कुछ न जानना अशिष्टताका सूचक है, और प्रायः यही कारण है कि लोग कुछ बातें जाननेका प्रयत्न करते हैं। इस संसारमें—स्वार्थी संसारमें—सदासे ऐसा ही होता आया है। कभी किसीने गांवके बाहर पड़े रहने वाले भिखारीसे पूछा है कि वह कौन है? उत्तरमें लोग कहेंगे कि संसारमें सबको जानना असम्भव है। ठीकहै किन्तु ऐसा तो न होना चाहिये कि कार्य किसीका हो और उसका पुरस्कार किसीको मिले।

'विज्ञान' के प्रारम्भसे लेकर आज तक अधिकतर सैद्धान्तिकों ने ही नई पद्धति चलाई है, नये मार्ग दिखाये हैं, और द्वार खोल कर प्रथम स्वयम ही इस पथ पर चले हैं। जो लोग पीछे गये हैं उन्होंने प्रयोग कर उससे लाभ उठाया है और संसारने भी उसका अनुकरण किया है। संसार फिर उन्हींको याद रखता है जिन्होंने प्रयोग कर दिखाया था और सूत्रधारको भूलही जाता है।

'बेतारके तार' अथवा 'आकाश वाणी' सुनते समय लोगोंको मारकोनी और उसके प्रसिद्ध पेटेन्ट ७७७७ का स्मरणतो अवश्य हो जाता है, किन्तु हर्ट्स का ध्यान भी नहीं रहता। यदि १८८७ में हर्ट्स प्रकाश और विद्युत् चुम्बकीय लहरोंकी एकता न दिखाते तो मार्कोनीका यह कार्य दुस्तर होता। और हर्ट्सका अन्वेषण मैक्सवेलके सिद्धान्त पर निर्भर है जिसने १८६५ में वैज्ञानिकों को चकित कर दिया था। ये सैद्धान्तिक भौतिक शास्त्री मैक्सवेल जन साधारणमें कम प्रसिद्ध हैं यद्यपि मानसिक परिश्रम इन्हींका था, पथ प्रदर्शक ये ही थे।

और देखिये सर जे. जे. टामसनके महत्त्व पूर्ण कार्यको जो उन्होंने ऋणाणुओं पर किया था लोग भूलते जाते हैं, किन्तु उससेही निकली हुई रोञ्जन किरणोंको प्रायः प्रत्येक मनुष्य जानता है। रोञ्जनका नाम सबने सुना है और उसके बारे में लोग जानतेभी हैं किन्तु टामसनकी किसीको परवाहभी नहीं। यद्यपि यह निर्विवाद है कि उनके विना रोञ्जनका कार्य असम्भव नहीं तो दुष्कर अवश्य था।

इसी प्रकार विज्ञान क्षेत्रमें और भी उदाहरण दिये जा सकते हैं। कहनेका तात्पर्य यह है कि संसारमें सदाही उन लोगोंका मान होता आया है जिनसे आर्थिक लाभ हुआ हो अथवा होनेकी सम्भावना हो। किन्तु वे जो कठिनसे परिश्रम करते हैं योंही छोड़ दिये जाते हैं। सच है यंत्र-विज्ञान का यह एक नियम है कि कितनाभी प्रयत्न करो, पसीनेमें तर हो जाओ, किन्तु 'कार्य' तब तक न होगा, जब तक कुछ गति न हो। किन्तु जो वास्तवमें विज्ञानके प्रेमी हैं वे संसार से न नाम चाहते हैं न पुरस्कार; उन्हें अपने कार्य में तत्परतासे लगे रहनेमें जो सान्त्वना मिलती है वह वे ही जानते हैं। प्रयत्न करनाही उनका उद्देश्य है, उनका ध्येय है और उनके जीवनका अन्त है।

मिट्टीके गुण

हां उस मिट्टीके कुछ गुणोंका वर्णन किया जावेगा जिसको कुम्हार लोग घड़े, मटके, सकोरे और प्याले बनानेके काममें लाते हैं और खिलौने बनाने वाले व्यापारी जिसको इच्छानुसार गूँधकर भिन्न भिन्न रूपमें ढाल लेते हैं। प्रत्येक स्थानकी मिट्टी इन कामोंमें नहीं लाई जा

सकती है। कुम्हार लोग इस बातको भली भांति जानते हैं कि उन्हें किस मिट्टीका उपयोग करना चाहिये। बहुतसे स्थानोंकी मिट्टी बलुही होती है। उससे संभव नहीं है कि दृढ़ बर्तन या खिलोने बन सकें। ईटोंके भट्टोंमें जो ईंटे तैयारकी जाती हैं। वे भी मिट्टीके गुणके अनुसार अच्छी या बुरी होती हैं। आगमें पकाने पर भी भिन्न भिन्न प्रकारकी मिट्टी प्रथक् प्रथक् रूपमें ही पकती है। अग्निमें पकाना भी कई प्रकारका होता है। ईटोंके पकाने वाले जानते हैं कि एक ही भट्टेमें से कई प्रकारकी ईंटें, खङ्गर, अव्वल, दोयम, सोम, सभी प्रकारकी निकल आती है जिसका कारण केवल यही है कि कच्ची ईंटोंके ढेरके ढेरमें एक ही प्रकारकी आंच नहीं लगने पाती है। कहींकी ईंटे अधिक दबाव पर धीमी धीमी गरम होती हैं और कहीं एकदम बहुत गरमी पहुँचती हैं। इस प्रकार मिट्टीका सबसे उपयोगी गुण यह है कि वह आगके प्रति किस प्रकार परिवर्त्तित होती है।

अच्छी मिट्टीमें बहुधा स्फट-शैलेतके भिन्न भिन्न उदेत होते हैं जैसे स्फ$_2$ ओ$_3$, २ शैओ २ उ$_2$ ओ। इस मिट्टीका गुण यह है कि थोड़ा सा पानी डाल कर यह हाथसे दबा कर गूँधी जा सकती है, और हाथसे जिस प्रकार चाहें पिचकाई जासकती हैं। हाथ हटा लेने पर यह अपना रूप स्थिर रख सकती है। आंच देने पर यह पक कर पत्थरके समान कड़ी हो जाती है और गीली मिट्टीके अन्दर का पानी गरमी पाकर उड़ जाता है अतः पकी मिट्टीमें छोटे छोटे छेद हो जाते हैं, अर्थात पकने पर मिट्टी रन्ध्रमय हो जाती है। ये छेद साधारणतः आंखसे नहीं दिखाई देते हैं, पर यदि किसी नई ईंट पर या नये घड़ेमें पानी डाला जाय तो छन छनकी आवाज़ सुनाई पड़ेगी और थोड़ी देरमें पानी सूख जायगा। इसका तात्पर्य्य यह है कि ईंट या घड़ेमें अनेक छोटे छोटे छिद्र हैं जिनमें हवा घुसी हुई है। पानी डालने पर यह हवा बाहर निकलने लगती है जिसके कारण सनसनाहट सुनाई देती है और थोड़ी देरमें पक्की मिट्टी पानी को सोख लेती है। इन्हीं छेदोंके कारण नई मटकियोंमें घी या तैल नहीं रखते हैं, क्योंकि बहुत सा तेल इनमें भिद जावेगा और उसका उपयोग न हो सकेगा। पर जिन मलियोंमें बहुत दिनोंसे घी रखा जा रहा है और जो चिकनाहट पी पीकर तृप्त हो चुकी हैं, वे फिर और घी नहीं सोखेंगी। हमारे देशमें प्रत्येक घरमें ही इस प्रकारके चिकने बर्तन मिलेंगे। अचार, घी और तेल रखनेमें इनका उपयोग किया जाता है। वृद्धा स्त्रियाँ इन चिकने बर्तनोंका मोल जानती हैं अतः वे उन्हें बड़ी सावधानीसे सुरक्षित रखती हैं, क्योंकि चिकने बर्तन वर्षोंके परिश्रमके पश्चात् तैयार होते हैं।

अस्तु, जब मिट्टी पकाई जाती है तो वह रन्ध्रमय हो जाती है।

मिट्टीके विषय निम्न बातें जानने योग्य हैं :—

१—कणोंका गठन
२—खनिजोंकी विद्यमानता
३—रासायनिक संगठन
४—पानीमें घोल
५—गूँधनेके सम्बन्धमें उसके गुण
६—सूख जाने पर गुँधी मिट्टीके गुण
७—आँच देकर तपाने पर उनमें परिवर्तन
८—तापका अन्य प्रभाव
९—मिट्टीकी जातियाँ (चीनी मिट्टी, पोर्सलिन आदि)

पृथ्वीकी भौगर्भिक अवस्था पर मिट्टीके कणोंका गठन बहुत कुछ निर्भर है। मकानकी नींव खोदने वाले तथा कुँओंके खोदने वाले यह भली प्रकार जानते हैं कि ऊपरसे नीचे जाते समय उन्हें तरह तरहकी मिट्टी मिलती है। मकानकी नींव तब तक खोदते हैं, जब तक 'पक्की ज़मीन' न मिल जावे। इस 'पक्की ज़मीन' में अति कठोर मिट्टी होती हैं। नदियोंके किनारोंकी मिट्टी बलुही होती है। मिट्टीमें निम्न रासायानिक पदार्थोंके कुछ न कुछ अन्श अवश्य पाया जाता है—कार्ट्ज़, सेरी-

साइट, पाइराइट, कैलसाइट, सिडेराइट, गिप्सम, फेल्सपार। इनके अतिरिक्त इसमें अनेक कार्बनिक पदार्थ भी पाये जाते है।

पानीमें मिट्टी घोलने पर उसी प्रकारका घोल नहीं मिलता है जैसा कि नमक और पानीका घोल अर्थात् यह घोल वास्तविक घोल नहीं है। इसमें पानीमें छोटे छोटे कण छितरे रहते हैं जिन्हें छन्नेसे भी अलग नहीं किया जा सकता है। खटिक या स्फट गन्धेत लवण घोलको अधिक अस्थायी बना देते हैं। अर्थात् मिट्टीके कण इन लवणोंकी विद्यमानतामें नीचे बैठने लगते हैं और पानी साफ हो जाता है।

मिट्टीको गरम करने पर क्या होता है? अगर १००° श तापक्रमके ऊपर मिट्टीको गरम किया जाय तो २५२° श तक मिट्टीकी तौलमें कमी होती जाती है क्योंकि इसके अन्दरका जल वाष्परूपमें उड़ जाता है। इसके पश्चात् ५००° श तक तौल स्थिर रहती है। ५००° श तापक्रमसे ६५०° श तापक्रम तकके लगभग यह तौल फिर कम होने लगता है। इस कमीका कारण यह है कि मिट्टीके अणुविभाजित होने लगते हैं और अणुओंमें रासायनिक रूपमें संयुक्त जल पृथक् होने लगता है। इस समय मिट्टीमें विशेष परिवर्त्तन हो जाता है। अब इस मिट्टीमें पानी मिलाकर पहलेकी मिट्टीप्राप्त नहींकी जा सकती है। इस समय आयतनमें भी आरम्भके आयतनका ४.६ प्रतिशतक वृद्धि हो जाती है, यद्यपि इसकी तौल १३.९ प्रतिशतक कम होजाती है। इस प्रकार प्राप्त अनार्द्र मिट्टी क्षार तथा पार्थिव क्षारोंके प्रति विशेष आकर्षण रखती है। इसमें यदि खटिक उदौषिद मिला दिया जाय तो सीमेंटका काम दे सकती है। साधारण मिट्टीकी अपेक्षा यह मिट्टी अम्लोंमें अधिक घुलन शील है। इस मिट्टीमें एक विशेष उत्प्रेरक गुण भी आ जाता है। भापकी विद्यमानतामें यह गन्धक द्विओषिदको त्रिओषिदमें परिणत होनेमें सहायता देती है। यह पानीको भी सोखनेका विशेष गुण रखती है।

यदि मिट्टीका तापक्रम और अधिक बढ़ा दिया जाय तो ये सब गुण नष्ट होने लगते हैं। भट्टीमें अधिक तपाने पर इसकी रन्ध्रता भी कम होने लगती है और आयतनमें भी संकोचन आरम्भ हो जाता है।

आँचमें तपी हुई मिट्टीका आपेक्षिक ताप ०.२०० से ०.२३५ तक होता है। प्रत्येक तापक्रमके अनुसार यह परिवर्त्तित होता जाता है। पक्की ईंटेके किसी तापक्रमके लिये बैडशा और इमेरीने यह समीकरण दिया है।

आपे० ता० = ०.१९३ + ०.०००७५ त
त से तात्पर्य्य तापक्रमसे है।

मिट्टीमें लोहके लवणोंके कण मिले रहते हैं। जब मिट्टी गरमकी जाती है तो ये लवण लोह ओषिदमें परिणत हो जाते हैं। इस कारण पकी हुई ईंटे लाल दिखाई देने पड़ती है। कहीं कहीं मिट्टीमें खड़िया मिट्टी मिलाकर तपाते हैं। इस प्रकार पीली ईंटें प्राप्त होती हैं। दक्षिण-इंगलैण्ड में इनका उपयोग किया जाता है। पोर्सिलेन एक विशेष चीनी मिट्टीसे बनाई जाती है जिसमें केओलिन नामक पदार्थ होता है। इसमें लोह-कण बिलकुल नहीं होते हैं। बर्लिन पोर्सिलेनमें ५५ भाग केओलिन, २२.५ भाग शुद्ध कार्ट्ज और २२.५ भाग फेल्सपार होता है। इस मिश्रणको पहले ९००° श तक तपाया जाता है और तब चमक लाकर तापक्रम १४००°-१५००° तक कर दिया जाता है। पोर्सिलेन बनानेकी विस्तृत विधियाँ अनेक है जिनका फिर कभी उल्लेख किया जावेगा।

—सत्यप्रकाश

वैज्ञानिक पुस्तकें

विज्ञान परिषद् ग्रन्थमाला

१—विज्ञान प्रवेशिका भाग १—ले० प्रो० रामदास गौड़, एम. ए., तथा प्रो० सालिग्राम, एम.एस-सी. ।)

२—मिफताह-उल-फ़नून—(वि० प्र० भाग १ का उर्दू भाषान्तर) अनु० प्रो० सैयद मोहम्मद अली नामी, एम. ए. ... ... ।)

३—ताप—ले० प्रो० प्रेमवल्लभ जोषी, एम. ए. ।=)

४—हरारत—(तापका उर्दू भाषान्तर) अनु० प्रो० मेहदी हुसेन नासिरी, एम. ए. ... ।)

५—विज्ञान प्रवेशिका भाग २—ले० अध्यापक महावीर प्रसाद, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद १)

६—मनोरंजक रसायन—ले० प्रो० गोपालस्वरूप भार्गव एम. एस-सी. । इसमें साइन्सकी बहुत सी मनोहर बातें लिखी हैं। जो लोग साइन्स-की बातें हिन्दीमें जानना चाहते हैं वे इस पुस्तक को जरूर पढ़ें। ... १॥

७—सूर्य सिद्धान्त विज्ञान भाष्य—ले० श्री० महावीर प्रसाद श्रीवास्तव, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद

- मध्यमाधिकार ... ... ॥=)
- स्पष्टाधिकार ... ... ।॥)
- त्रिप्रश्नाधिकार ... ... १॥)
- चन्द्रग्रहणाधिकार ... ... १॥)

८—क्षयरोग—ले० डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा, बी. एस. सी, एम-बी. बी. एस ... -)

९—दियासलाई और फ़ास्फ़ोरस—ले० प्रो० रामदास गौड़, एम. ए. ... ... -)

१०—वैज्ञानिक परिमाण—ले० डा० निहाल करण सेठी, डी. एस. सी. तथा श्री सत्य-प्रकाश, एम. एस-सी० ... ... १॥)

११—कृत्रिम काष्ठ—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली -)

१२—आलू—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली ... ।)

१३—फसल के शत्रु—ले० श्री० शङ्करराव जोषी ।-)

१४—ज्वर निदान और शुश्रूषा—ले० डा० बी० के० मित्र, एल. एम. एस. ... ... ।)

१५—कार्बनिक रसायन—ले० श्री० सत्य-प्रकाश एम-एस-सी० ... ... २॥)

१६—कपास और भारतवर्ष—ले० पं० तेज शङ्कर कोचक, बी. ए., एस-सी. ... -)

१७—मनुष्यका आहार—ले० श्री० गोपीनाथ गुप्त वैद्य ... ... ।)

१८—वर्षा और वनस्पति—ले० शङ्कर राव जोषी ।)

१९—सुन्दरी मनोरमाकी करुण कथा—अनु० श्री नवनिद्धिराय, एम. ए. ... ... -)॥

'विज्ञान' ग्रन्थमाला

१—पशुपक्षियोंका शृङ्गार रहस्य—ले० प्र० सालिग्राम वर्मा, एम.ए., बी. एस-सी. ... -)

२—ज़ीनत वहश व तयर—अनु० प्रो० मेहदी-हुसैन नासिरी, एम. ए. ... ... -)

३—केला—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली -)

४—सुवर्णकारी—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली ।)

५—गुरुदेवके साथ यात्रा—ले० अध्या० महावीर प्रसाद, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद ।=)

६—शिक्षितोंका स्वास्थ्य व्यतिक्रम—ले० स्वर्गीय पं० गोपाल नारायण सेन सिंह, बी.ए., एल.टी. ।)

७—चुम्बक—ले० प्रो० सालिग्राम भार्गव, एम. एस-सी. ... ... ।=)

अन्य वैज्ञानिक पुस्तकें

हमारे शरीरकी रचना—ले० डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा, बी. एस-सी., एम. बी., बी. एस.

- भाग १ ... ... २॥)
- भाग २ ... ... ४)

चिकित्सा-सोपान—ले० डा० बी० के० मित्र, एल. एम. एस. ... ... १)

भारी भ्रम—ले० प्रो० रामदास गौड़ ... १।)

वैज्ञानिक अद्वैतवाद—ले० प्रो० रामदास गौड़ १॥=)

वैज्ञानिक कोष— ... ... ॥)

गृह-शिल्प— ... ... ॥)

[illegible] उपयोग— ... ... १)

मंत्री

विज्ञान परिषत्, प्रायग

मुद्रक—सूरजप्रसाद खन्ना, हिन्दी-साहित्य प्रेस, प्रयाग

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces for use in Schools and Libraries.

पूर्ण संख्या—१७४

Reg. No. A.708

भाग २९ Vol. 29.

कन्या संवत् १९८६

सितम्बर १९२९

संख्या ६ No. 6

प्रयागकी विज्ञानपरिषत्‌का मुखपत्र

Vijnana the Hindi Organ of the Vernacular Scientific Society, Allahabad

अवैतनिक सम्पादक

व्रजराज

एम. ए., बी. एस-सी., एल-एल. बी.

सत्यप्रकाश,

एम. एस-सी., विशारद.

प्रकाशक

वार्षिक मूल्य ३)] विज्ञान-परिषत्, प्रयाग [१ प्रतिका मूल्य ।)

विषय-सूची

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५॥

भाग २९ } कन्या, संवत् १९८६ { संख्या ६

भूकवच

[ले०—श्री पं० शंकरराव जोशी]
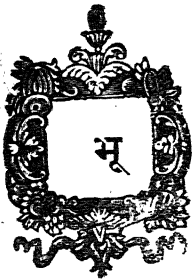
भूस्तर शास्त्र वह विद्या है, जिसके द्वारा भूकवचकी रचना एवं उसके घटकावयवका ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। लोगोंका अनुमान है कि भूस्तर शास्त्र केवल खनिज पदार्थों, भाँति-भाँतिकी चट्टानोंके वर्णन परही समाप्त है। परन्तु ऐसा सोचना भ्रम पूर्ण है। प्राचीन एवं अर्वाचीनकालमें पाये जानेवाले प्राणियों और वनस्पतियोंका परिचय भी भूस्तर-शास्त्रमें शामिल है।

पृथ्वीका ठोस भाग मिट्टी, खरिया मिट्टी, वालू, चूनेका पत्थर, कोयला, बिल्लौरी पत्थर आदि भिन्न-भिन्न प्रकारकी चट्टानोंसे बना है। अब यह बात सिद्ध हो चुकी है कि पृथ्वीका बाह्यभाग एक साथ, एकही प्रकारसे और एकही समयमें नहीं बना है। वरन् उसका भिन्न-भिन्न भाग भिन्न-भिन्न परिस्थितिमें भिन्न-भिन्न युगोंमें बना है। भिन्न-भिन्न युगोंमें भिन्न-भिन्न प्रकारके जीव और वनस्पति, जल और थलमें पैदा हुए थे, जिनके अवशेष अब भी भूकवचमें गड़े हुए पाये जाते हैं।

भूकवच—पृथ्वी एक बड़ा भारी गोला है। इस गोलेका व्यास आठ हज़ार मील है। पृथ्वीके पृष्ठपर जल और थलका अनुपात ११:४ है। गोलेके भीतर क्या है? यह हम नहीं जानते। कारण कि हमारे अनुसंधानकी मर्यादा बहुतही परिमित है। गहरीसे गहरी खान भी आधमीलसे ज़्यादा गहरी नहीं है। तथापि इस गोलेके लगभग २० मीलकी गहराई तकके भागका अनुसंधान किया जा सका है। इसमें केवल पर्वत पार्श्वों, नदीतटके करारों; समुद्र

तटके टीलों और खनकों द्वारा खोदे हुए भूभागकी बनावटही नहीं, वरन भूगोलका वह सब भाग शामिल है, जिसका अनुसंधान किया जा चुका है। भूकवचसे हमारा तात्पर्य इसी बीस मीलकी गहराई तकके भूभागसे है। भूकवचकी रचना और उसके भिन्न-भिन्न युगोंके परिवर्तनोंसे हम पृथ्वीकी पूर्व स्थिति और उसपर पाये जानेवाले प्राणियों और वनस्पतियोंका ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

भूकवचकी चट्टानोंमें पाये जानेवाले अवशेषों से हम पाषाण-युगसे पहले की बातें जान सकते हैं। उस ज़मानेमें इस भूगोलपर मानव प्राणीका निवास न था। उन दिनों पृथ्वीपर जितने भी प्राणी निवास करते थे, वे सब बहुत ही क्षुद्र और सृष्ट-पदार्थोंमें कनिष्ठ कोटि के थे।

'भूकवच' में पायेजाने वाले अवशेषोंपर विचार करनेसे पहले हम उन शक्तियोंके सम्बंधमें कुछ लिखेंगे, जिन शक्तियों द्वारा 'भूकवच'का निरन्तर परिवर्तन होता रहता है। ये शक्तियाँ हैं —वायु, जल, अग्नि, प्राणी, वनस्पति, बर्फ, तापमान और तुषार।

वायु

भूपृष्ठपर फैली हुई धूल हवा द्वारा उड़ कर बहुत दूर-दूरके प्रदेशोंमें फैल जाती है। भारतवर्षमें गरमीके मौसममें कभी कभी-हवासे इतनी धूल उड़ती है कि सूर्यका तेज फीका पड़ जाता है। मध्य एशियामें कभी-कभी आकाशमें इतनी धूल छा जाती है कि भरी दोपहरीमें सूर्यका तेज़ धुँधला पड़ जाता है। हवाका वेग कम हो जानेपर यह धूल एक बड़े भूभाग पर जम जाती है इस प्रकार धीरे-धीरे कई सदियोंमें सैकड़ों फुट मोटा धूलका स्तर जम जाता है। बेबिलन नगरके समान अति प्राचीन नगर वायुके प्रतापसे— हजारों फुट मोटे धूलके स्तरके नीचे दब गये हैं।

हवाके कारण होने वाले परिवर्तन बड़े-बड़े मैदानोंमें विशेष रूपसे स्पष्ट दृष्टि गोचर होते हैं। समुद्र तटकी रेती उड़कर दूर-दूरके प्रदेशोंमें फैल जाती हैं। कभी-कभी इस रेतीके जम जानेसे समुद्र तटके समानान्तर छोटी-छोटी पहाड़ियाँ बन जाती हैं। इन पहाड़ियोंकी ऊंचाई कभी-कभी २५० फुटतक पहुँच जाती है। हवाके योगसे उड़ी हुई रेतीके नीचे कभी-कभी सड़कें, नगर और बड़े-बड़े जंगल दब जाते हैं।

यूरोपके पश्चिमी तटपर हवाका प्रभाव खूब नज़र आता है। एक विद्वानका अनुमान है कि वहाँ रेतीके टीले बीस फुट प्रति वर्षके हिसाबसे पूर्वकी ओरको बढ़ते जा रहे हैं। स्काटलैंडकी 'ग्रेनरी आफ मरे, नामक अति उपजाऊ भूमि— सत्रहवीं सदीके मध्यकालमें रेतके अंदर दब गई। आजकल इस भूमिपर सौ फुटसे भी ज्यादा मोटी रेतकी तह जमी हुई है। अमेरिका, अरब, आस्ट्रेलिया आदि देशोंके रेगिस्तानोंमें रेतके टीलोंका स्थानान्तर होता रहता है। यह स्थानान्तर हवाके कारण ही होता है।

जल

भूपृष्ठका अधिकांश जलसे व्याप्त है। सूर्यकी गरमीसे यह जल वाष्प बनकर उड़ता और बादल बनता है। और फिर बादल जलके रूपमें बरस पड़ता है। ऊंचे ऊंचे पहाड़ोंवाले प्रदेशोंमें पानी ज्यादा बरसता है। बरसा हुआ जल असंख्य नदी-नालों और प्रवाहोंके रूपमें बहकर समुद्रमें जा मिलता है।

वर्षाका जल ज़मीनपर गिरते ही अपना कार्य आरंभकर देता है। धूल आदि घुलनेवाले पदार्थ जलमें घुल जाते हैं इस भूमंडलपर हज़ारों नदी-नाले हैं। ये नदी-नाले दो प्रकारके कार्य करते हैं। एक तो भूमिमें नाली-सी बनाकर उसके क्षयमें सहायता पहुँचाते हैं और दूसरे, जलके

साथ बहकर आये हुए पदार्थोंको समुद्रमें पहुँचाते या तट की भूमि पर जमा कर देते हैं।

वर्षाका जल भूमिपर गिरनेके समय वातावरणमें हो कर आता है। और वातावरण में से ओषजन और कर्वनिकाम्ल ग्रहणकर लेता है। इन गैसों के कारण बर्षाके जलमें—चट्टानों को क्षय करनेकी शक्ति आ जाती है। सबसे अधिक क्षय कारी प्रभाव खटिक कर्बनेत (कार्बोनेट आफ लाइम) संयुक्त चूना, खड़िया, संगमरमर आदि की चट्टानोंपर दृष्टि गोचरहोता है कर्वनिकाम्ल के योग के कारण बर्षा के जलसे इन चट्टानोंका क्षय जल्दी होता है। वर्षा के पानी से कठिनसे कठिन चूनेका पत्थर भी घुलकर समुद्र में बह जाता है। बहुतसे समुद्रवासी जीव इससे अपने रहनेके घर बनाते हैं।

भूमि पर गिरते ही बर्षा का जल ह्यूमस (Humous) नामक क्षार, जोकि वनस्पति के सड़ने से बनता है। ग्रहण कर लेता है। इस क्षारके कारण वर्षाके जलकी विनाशक शक्ति और भी वढ़ जाती है, नदी-नालों और प्रवाहोंके रूपमें वहता हुआ यह जल तलीके चट्टानोंका क्षय करता रहता है। किन्तु उसका यह कार्य हम देख नहीं सकते हैं। ह्यूमस क्षार युत जलका चूनेकी चट्टानपर खूब असर पड़ता है—वे इस जलमें जल्दी घुल जाती हैं।

नदीके प्रवाह के कारण तलीके कंकर पत्थर एक दूसरेसे टकराते हैं और घिसने लगते हैं, जिससे वे धीरे-धीरे रेतीमें बदल जाते हैं। इन्हीं कंकर पत्थरकी रगड़से नदी तलकी भूमिमें गढ़े पड़ जाते हैं। यह क्रिया निरन्तर जारी रहती है, जिससे नदीका पात्र धीरे-धीरे गहरा होता जाता है।

बरसातमें नदी नालों और प्रवाहोंका जल गदला होता है। यदि यह पानी एक वरतनमें भरकर रहने दिया जाय, तो कुछ समयमें बरतनकी तलीमें गाद जम जायगी। यह गाद और कुछ नहीं, पहाड़ों परसे पानीके साथ बह कर आई हुई मिट्टी ही है। गदले पानीके प्रवाहका वेग कम हो जाने से मिट्टी, रेत आदि पदार्थ गुरुत्वाकर्षणसे तलीमें बैठ जाते हैं। इस प्रकार रेत, मिट्टी आदिके स्तर एक पर एक जम जाते हैं।

नदी नालोंके प्रवाहके वेगपर गादका तलीमें बैठना न बैठना अवलम्बित रहता है। नदीका वेग जितना अधिक होगा, वह उतनीहो अधिक गाद वहा ले जायगी और उतनेही भारी पत्थर वह लुढ़का सकेगी। भूमि जितनीही ढालू होगी, नदी नालोंका वेग भी उतना ही अधिक होगा। नदीके प्रवाहका वेग कम होते ही उसकी गाद बहा ले जानेकी शक्ति घट जाती है। अतएव प्रवाह रुक जानेपर जलमें तैरनेवाले पदार्थ तलीमें बैठ जाते हैं। प्रत्यक नदी नालेमें प्रवाहका वेग, जमीनका ढाल कम हो जानेसे, घट जाता है। दो प्रवाहोंके संगमपर भी वेग न्यून हो जाता है जिससे गाद तलीमें जम जाती है। इस प्रकार प्रतिवर्ष नदियों की तलीमें गादके स्तर एक पर एक जमते रहते हैं।

जलके प्रवाहके साथ कंकर, रेत, और गादही वह कर नहीं आती वरन् झाड़-झंखाड़, कीड़े मकोड़े और अन्य प्राणियोंके शव और हड्डियां भी बह कर आती हैं। वेग न्यून हो जाने पर यह पदार्थ भी गादके साथ तलीमें बैठ जाते हैं। अतएव स्तरोंमें बनस्पतियों और प्राणियोंके शव भी पाये जाते हैं।

बहुतसे नाले मीठे जलाशयोंमें गिरते हैं। इनके जलके साथ बहकर आये हुए पदार्थ नालेके मुखके पास जमते रहते हैं। कुछ वर्षोंमें तालाव मिट्टी से भर जाता है। तब नाला उसमें से होकर आगे बहता हुआ दूसरे बड़े नाले या नदीमें जा मिलता है।

छोटे-छोटे प्रवाहों द्वारा मिट्टीसे भरे हुए तालावोंकी तलीमें एक गढ़ा खोदा जाय, तो भिन्न-

भिन्न स्तर दीख पड़ेंगे। शायद पहला स्तर महीन-मिट्टीका होगा, दूसरा महीन रेतीका और तीसरा-शंख, सीपी या मोटी रेतीका। इसके बाद चौथा स्तर पुनः महीन मिट्टी का मिलेगा। ये स्तर प्रतिवर्ष जमते रहते हैं। और यही कारण है कि चार-पाँच स्तरों के बाद पुनः वही स्तर जमे मिलते हैं; यदि कुछ दूरीपर दूसरा गढ़ा खोदा जाय, तो सम्भव है स्तरोंके अनुक्रममें कुछ फर्क पाया जाय। स्तरोंकी मुटाई भी कम ज्यादा होगी। यही बात समुद्रमें भी पाई जाती है। नदीके मुखके पास एक पर एक स्तर जमते रहते हैं। यह क्रम सतत जारी रहता है।
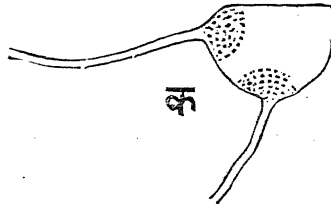
क—नालेके मुखके पास गाद जमी हुई है।
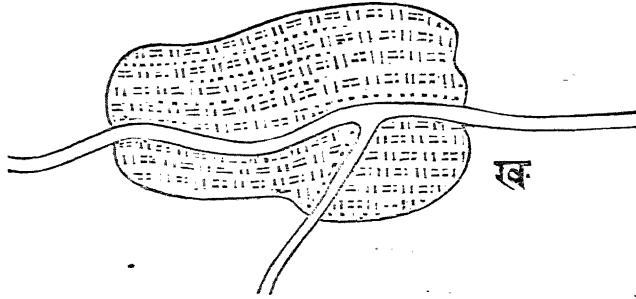
ख—गादसे तालाब भर गया है जिससे नाला उसमेंसे होकर आगे बढ़ गया है।

एक बड़ी नदी एक वर्षमें अधिक जड़ पदार्थ समुद्रमें बहा ले जाती है। एक विद्वानका अनुमान है कि गंगा नदी प्रतिवर्ष लगभग ३५५३-६२००० टन जड़ पदार्थ समुद्रमें डालती है। यह तो हुई गंगा नदीकी बात; किन्तु इसके अलावा सिंधु, ब्रह्मपुत्रा, ईरावदी, आदि बड़ी-बड़ी नदियाँ भी तो प्रतिवर्ष करोड़ों टन जड़ पदार्थ समुद्रमें फेंकती हैं। इससे अनुमान किया जा सकता है कि पहाड़ों और मैदानोंका कितना बड़ा भाग धुलकर प्रतिवर्ष समुद्रमें जा गिरता है। अनुमान किया गया है कि एक सदीमें एक वर्गमील भूमि $\frac{९}{१००}$ इंच नीची हो जाती है। यदि मान लें कि भूगोल समुद्रकी सतहसे २१२० फुट ऊंचा है, तो मिसिसीपी नदी सब भूभागको १२७५०००० वर्षोंमें समुद्रमें मिला देगी।

जिन चट्टानोंसे समुद्रकी लहरें टकराती हैं और जिन पर वे निरंतर बहती रहती हैं, उनका भी क्षय होता रहता है। समुद्र तटके टीलोंका जलकी सतहके पासका भाग लहरोंके टकरानेसे कटता

रहता है और कुछ वर्षोंमें ये टीले जलमें आ गिरते हैं। कंकर पत्थर और मोटी रेती तो किनारेके पास जलमें ही पड़ी रहती है और महीन रेती लहरोंके साथ बह कर तलीमें जा विराजती है। मोटी रेती जब लहरोंके टकरानेसे धीरे-धीरे महीन रेतीमें बदल कर समुद्र तलमें जा विराजती है। यह क्रिया रात-दिन जारी रहती है।

पदार्थ अविनाशी हैं। जो पदार्थ नदियोंके जलके साथ बहकर समुद्रमें जा गिरते हैं, उनका नाश नहीं होता, रूपान्तर होता है। नदीके जलके साथ बहकर समुद्रमें गिरनेवाले पदार्थ उसके मुखसे कुछ दूरी पर इकट्ठे होते हैं और उस स्थान पर एक त्रिकोणका भूभाग बन जाता है, जिसे डेल्टा कहते हैं।

सर-सी० लायलका अनुमान है कि मिसिसीपी नदीके डेल्टा में प्रतिवर्ष २० खर्व १७ करोड़ घनफुट मिट्टी जमा होती है। उसके मतसे मिसिसीपी नदी का डेल्टा, जिसका क्षेत्रफल करीब १४ हजार वर्ग मील है। साठ हजार वर्षोंमें बना है।

अग्नि

पृथ्वीके उदरमें एक भयंकर शक्ति निवास करती है, यद्यपि इस शक्तिका परिणाम सर्वत्र देखा जाता है। परन्तु इस शक्तिके सम्बन्धमें बहुत कम बातें मालूम हो पाई हैं। और जोकुछ मालूम हुआ है, वह सब कल्पनाके बल पर। संभव है, ये कल्पनाएं असत्य भी हों।

आज तक जितनी बातें मालूम हुई हैं। उनसे अनुमान किया जाता है कि पृथ्वीके उदरमें अत्युष्ण प्रवाही पदार्थ भरा है, गहरी खानोंमें किये हुए प्रयोगोंसे पता चलता है कि पृथ्वीके पृष्ठ भागसे हम ज्यों-ज्यों नीचे उतरते जाते हैं त्यों त्यों उष्णता बढ़ती जाती है। यह परिमाण प्रति ६४ फुट पीछे एक अंश फैरनहीट है। यदि इसी हिसाबसे तापक्रम बढ़ रहा हो तो दस मीलकी गहराई पर इतनी अधिक उष्णता होगी कि भूकवचकी कठिनसे कठिन चट्टान भी शीघ्रही पानी-पानी हो जायगी।

पहले लिखा जा चुका है कि पृथ्वीके उदरमें अत्युष्ण प्रवाही पदार्थ भरा है। यही पदार्थ ज्वाला मुखी पर्वतोंके मुखोंमेंसे होकर आस-पासके प्रदेशोंमें फैल जाता है। भूकम्प भी इसी शक्तिके कारण होता है।

पृथ्वीके भिन्न-भिन्न भागोंमें कई ज्वालामुखी हैं। अकेले प्रशान्त महासागरके दीपोंमेंही उनकी संख्या तीनसौके लगभग है। समुद्र तलमेंभी कई जागृत ज्वालामुखी हैं। सम्भव है, इनकी संख्या भूपृष्ठके ज्वालामुखियोंकी संख्यासे अत्यधिक हो। ज्वालामुखी पर्वतोंके स्फोटसे भूकवचमें पुष्कल फेरफार होते रहते हैं।

भूकम्पसेभी भूकवचमें भयंकर परिवर्तन होते हैं। इसके कारण बड़े-बड़े भूभाग पृथ्वीके अन्दर धँस जाते हैं और सरोवरोंके स्थानपर बड़े-बड़े पर्वत बन जाते हैं।

भूकम्पसे जमीन एक दम ऊपर उठ आती या नीचे धँस जाती है और इससे हमें यह बात अचरज भरी मालूम होती है। परन्तु जमीन को धीरे-धीरे ऊंची उठते या नीची धँसते देख कर हमें आश्चर्य नहीं होता है। भूकवचके भागोंका यह परिवर्तन हमारे ध्यानमें जल्दी नहीं आता। यहां तक कि उस पर रहनेवाले मनुष्य भी उसे जान नहीं सकते हैं। तथापि अब विद्वान लोगोंका ध्यान उधर आकर्षित हुआ है और अनुसंधान किया जा रहा है।

पृथ्वी

जिन प्राणियों की कृतिसे भूकवचमें परिवर्तन होते हैं, वे प्रवाल कीटक और पालिप नामक कीड़े आदि हैं। ये प्राणी समुद्रके जलमें घुला हुआ खटिक कर्बनेत (कार्बोनेट आफ लाइम)

नामक पदार्थ निकाल कर उससे अपना घर बनाते हैं। इन प्राणियोंके सतत व्यापारके कारण समुद्रमें बड़े-बड़े टीले बन जाते हैं और नवीन द्वीप निर्मित हो जाते हैं। शान्त महासागरमें कई प्रवाल द्वीप हैं।

दूसरे अनेक प्रकारके प्राणी भी समुद्र जलके खटिक कर्बनेतसे सीपी, शंख आदि बनाते हैं। इन प्राणियोंके मर जाने पर बहुत सी शंख और सीपियां समुद्र तलमें बैठ जाती हैं। और तब इन स्तरोंके एकके बाद एक जमनेसे, धीरे-धीरे टीले बन जाते हैं। भारतवर्षमें कई चूनेकी चट्टानें हैं। ये सब फोरानिफरा नामक सूक्ष्म मछलियोंकी सीपियोंसे बनी हैं। नमुलाइट नामक छोटी-छोटी मछलियोंकी सीपियोंके स्तरोंसे नम्युलिटिक नामक चूनेके पत्थर बने हैं। ये पहले जलमें बने थे, परन्तु बादमें पृथ्वीकी भीतरी शक्ति अग्निकी सहायतासे वे जलसे बाहर निकल आये हैं। इस जातिकी चट्टाने काश्मीर और हिमालय पर्वतमें पाई जाती हैं। सिंधु नदीके किनारेके प्रदेशोंमें और कच्छ और काबुलके प्रदेशोंमें भी इस जातिकी चट्टानें पाई जाती हैं।

चूहे, न्यौले, दीमक आदि भी जमीनके भीतर से महीन मिट्टी बाहर निकालते हैं। डार्विन महोदयका अनुमान है कि इन प्राणियों द्वारा खोदी हुई मिट्टीकी मिकदार कभी कभी एक वर्षमें दस टन तक पहुँच जाती है। यह महीन-मिट्टी वर्षाके जलके साथबह कर दूर-दूरके प्रदेशोंमें फैल जाती है या हवाके योगसे एक बड़े भूभाग पर छा जाती है। कई स्थानों पर बड़े-बड़े पत्थर इस मिट्टीके अन्दर दब जाते हैं।

वनस्पति

वनस्पति भी चट्टानोंके क्षयमें पुष्कल सहायता करती है। वनस्पतियोंके सड़नेसे कुछ कार्वनिकाम्ल उत्पन्न होते हैं, जिनके योगसे जलकी विनाशक शक्ति-बहुत बढ़ जाती है। वनस्पतिकी जड़ें चट्टानोंके छेदों और दरारोंमें प्रवेश कर उन्हें टुकड़े-टुकड़े कर डालती हैं। इन टुकड़ों पर पानी, बर्फ आदि अपनी-अपनी शक्ति आजमाते हैं और ये टुकड़े-पिस जाते हैं।

समशीतोष्ण और शीत प्रधान देशोंमें बड़े-बड़े दल-दल पाये जाते हैं इन दल दलोंमें कई स्थानो पर पौदे उग आते हैं। दिन पूरे हो जानेपर ये पौदे वहीं गिर कर सड़ जाते हैं और उनके स्थान पर नवीन पौदे उग आते हैं। यह क्रम हमेशा चला करता है। कई वर्षोंके बाद ये दलदल 'पीट-क्षेत्र' बन जाते हैं। यूरोप अमेरिका और आयर्लैंडमें पीट के बड़े-बड़े क्षेत्र हैं। पीटके क्षेत्रोंमें प्राणियोंके शव आदि—अवशेष भी पाये जाते हैं। दलदलके कीचड़में फँसकर नीचे धँसे हुए प्राणियोंके शव ही इनमें मिलते हैं।

समुद्र तटके छिछले भागमें कई प्रकारके पौदे उग आते हैं जिनसे जलमें जाल-सा छा जाता है। भूमि से जलके साथ बह कर आई हुई मिट्टी, रेत आदि वस्तुएं इन पौदोंकी जड़ोंके कारण रुक कर वहीं जम जाती हैं। इन पदार्थोंके जम जानेसे धीरे-धीरे समुद्रका छिछला भाग ऊपर उठने लगता है। इस प्रकार भूभागकी वृद्धि होती जाती है। फ्लारिडाके समुद्र तट पर वनस्पतिका यह जंगल ५ से लगाकर २० फुटकी चौड़ाई तकफैला हुआ है।

समुद्र जलमें उगी हुई वनस्पति तट पर या नदीके मुख पर रेतके अन्दर दब कर पीटमें परिणत हो जाती है। समुद्रमें उगी हुई वनस्पति जलमें से खटिक कर्बनेत चूसती है। उम्र खतम हो जाने पर ये पौदे किनारेकी ओर बह जाते और लहरोंसे टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं। ये टुकड़े धीरे-धीरे चूना-मय रेतके कणोंमें बदल जाते हैं, और रेत वायुके वेगसे उड़ कर भूमि पर छोटी-छोटी पहाड़ियोंके रूपमें इकट्ठा हो जाती है। वर्षाके जलसे यह चूना-मय-रेत ढेलेके रूपमें बँध जाता है।

जिससे उसके नीचेका रेत हवामें उड़ नहीं पाता है। वर्षाका जल ऊपरके रेतमें होकर नीचे उतकेरता और नीचेके रेतके ढेलेमें बाँध देता है, जिससे एक मज़बूत सफेद चट्टान-सी बन जाती है।

बर्फ

जिस प्रकार शीत प्रधान देशोंमें ठंडसे नदी और तालाबोंका जल जम जाता है। उसी प्रकार उष्ण देशोंमें शीतकाल में पहाड़ों परर्फब जम जाती है। गर्मीके दिनोंमें बर्फ पिघलने लगती है। बर्फकी चट्टानोंमें कंकर पत्थर और रेत भी शामिल रहती है। ये चट्टानें पिघल कर पानी पानी होनेके पहले-नदी के प्रवाहके साथ बह कर सैकड़ों मीलकी दूरी पर चली जाती हैं। इन बर्फ-की चट्टानोंके पिघलने पर रेत आदि पदार्थनदीकी तलीमें बैठ जाते हैं। सेंट लारेंस और लेब्रेडोरके तटके पास बर्फके साथ आये हुए पदार्थोंके जम जानेसे कई छोटे द्वीप बन गये हैं। हिमाच्छादित पहाड़ोंसे आने वाली नदियोंके द्वारा बर्फके साथ बह कर आये हुए कंकर पत्थरोंके जम जानेसे भी छोटे-छोटे टापू बन जाते हैं। कई स्थानोंपर बर्फके साथ बह कर आई हुई मिट्टी और रेतके जम जाने से नदीकी धाराका मार्ग रुक जाता है। ऐसी अवस्थामें धारा नवीन मार्गका अनुसरण कर आगे बढ़ती है।

गर्मीके दिनोंमें बर्फके पिघलनेसे बड़ी-बड़ी बर्फकी चट्टानें पर्वत शिखरों परसे नीचेको लुढ़कने लगती हैं। इनके साथ बड़े-बड़े पत्थर भी लुढ़कने लगते हैं। जिस प्रकार गरम देशोंमें बरसातके दिनोंमें नदियोंमें जलकी बाढ़ आती है, उसी प्रकार शीत प्रधान देशोंकी नदियोंमें ग्रीष्म ऋतुमें बाढ़ आती है। परन्तु जलके साथ बहुतसा बर्फ भी बहता आता है। कभी-कभी बर्फकी बड़ी-बड़ी चट्टानें पानीमें तैरती-रहती हैं। पिघलने पर गुरुत्वाकर्षणके कारण, बर्फ बड़े वेगसे नीचेकी ओरको बहने लगती है। इस बर्फके संघर्षणसे पहाड़ोंके कंकड़ पत्थर उखड़ कर बड़े वेगसे नीचेकी ओर जाने लगते हैं, जिससे चट्टानें नंगी हो जाती हैं। और तब वर्षा आदि अन्य शक्तियाँ उसे सहज ही क्षय कर सकती हैं।

तापमान

उन देशोंमें जहां दिनको बहुत ज्यादा गरमी और रातको अत्यधिक ठंड पड़ती है, तापमानका परिणाम अच्छी तरह दीख पड़ता है। आफ्रिकाके समान उष्णता प्रधान देशोंमें दिन में चट्टानें १३० अंश फारेनहीट तक गरम हो जाती हैं और रातमें वही चट्टानें बड़ी शीघ्रतासे ठंडी होने लगती हैं। यह एक सर्व सम्मत सिद्धान्त है कि गरमीसे पदार्थोंका प्रसारण होता है और सरदीसे संकोचन इसी सिद्धान्तके अनुसार चट्टानोंका भी संकोचन और प्रसारण होता है। यह क्रिया हमेशा होती रहती है। दिनको अत्यधिक गरमी पड़ती है, जिससे चट्टानोंका प्रसारण होता है और रातको बड़ी शीघ्रतासे उनका संकोचन होता है। प्रतिदिन इस क्रियाके जारी रहनेसे चट्टानें टूट जाती हैं। चट्टानोंमें दरारोंके पड़ते ही वर्षा और वनस्पतिका कार्य आरंभ हो जाता है, जिससे थोड़े ही वर्षों में वह समुद्र तलमें जा विराजती है।

तुषार

तुषार भी भूकवचके परिवर्तनमें सहायता पहुँचाता है। तापमानके प्रभावसे चट्टानोंमें दरारें पड़ जाती हैं। तुषार इन चट्टानोंमें जम जाता है। यह एक सर्वमान्य सिद्धान्त है कि जल की अपेक्षा बर्फको ज्यादा जगहकी जरूरत होती है। बरसातका पानी या तुषार चट्टानकी दरारोंमें जम कर बर्फ बन जाता है जिससे चट्टानोंके टुकड़े हिल जाते हैं। धीरे-धीरे ये टुकड़े उखड़ जाते हैं। और तब जल या बर्फके साथ बह कर नदियों में जा विराजते हैं। वहीं जलके वेगसे और पत्थरोंके

पारस्परिक संघर्षणसे धीरे-धीरे उनका क्षय होने लगता है।

उपर्युक्त शक्तियोंका कार्य पृथ्वीके आदि कालसे चल रहा है। इन शक्तियोंके कारण आज तक भूकवचमें विलक्षण परिवर्तन हुए हैं, हो रहे हैं और प्रलय काल तक होते रहेंगे।*

उद्भिजका आहार

[ले०—श्री एन०के० चटर्जी एम० एस-सी०]

डाओनिया मसिपुला (Dionoea Muscipula):—
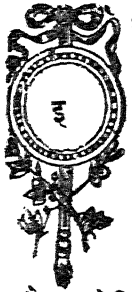
इस पौधेको बोल-चालकी भाषामें कीड़े-माकोड़े पकड़नेका जाल, (Venus fly trap) भी कहते हैं। यह इतनी तेज़ी और फुर्तीके साथ अपने कार्यको कर लेता है कि पृथ्वीके आश्चर्यमय पौधोंमें इसकी गिनती है। यह पौधा ड्रोसेरा जातिके पौधोंके अन्तर्गत है और अमेरिकाके दक्षिण भागके तर स्थानोंमें पाया जाता है। इसकी बहुत छोटी-छोटी जड़ होती हैं और इसकी पत्तियां बीचसे विभाजित रहती हैं। पत्र-डंठल पत्तियोंके समान चपटे होते हैं। दोनों भाग जोड़ पर एक दूसरेकी ओर समकोण (Right angle) से भी कम दूरी पर झुके रहते हैं। तीन या चार और कभी-कभी दो काँटे सूक्ष्म नुकीली कीलकी भाँति पत्तियों के दोनों भागोंमें त्रिभुजाकारमें लगे रहते हैं और जो कि ज़रासे छूनेसे ही सचेतन हो उठते हैं। पत्तेके किनारे छोटे-छोटे मजबूत काँटोंमें विभक्त रहते हैं और यह काँटे इस प्रकारसे रहते हैं कि जब दोनों भाग जुड़ जाते हैं, तो ये काँटे चूहे पकड़नेकी कलके समान आपसमें जकड़ जाते हैं। पत्तेके बीचवाली नसें खूब मज़बूत और निकली हुई रहती हैं।

किनारेको छोड़कर पत्तेका ऊपरी भाग, छोटी-छोटी लाल ग्रन्थियों (glands) से भरा हुआ रहता है और ये इतने महीन-महीन डंठलों पर सधी हुई रहती हैं कि दिखाई नहीं पड़तीं। इन ग्रन्थियोंसे नोषजनीय (nitrogenons) पदार्थका प्रभाव पड़नेसे एक प्रकारका रस निकलता है जिसमें पाचक-शक्ति भी होती है। समस्त पत्तियों और काटों पर लाल लाल बारीक फूलसे नोंक निकले रहते हैं और इतने सचेतन (sensitive) होते हैं कि एक महीन बालके छुआव ही से पत्तेके दोनों भाग बन्द हो जाते हैं।

ड्रोसेराके समान इन परभी ज़ोरकी आँधी या ज़ोरके मेहका कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

कीड़े पकड़ने की रीति :—यह बात भली भाँति ज्ञात नहीं है कि कीड़े क्यों और किस प्रकारसे पौधों की ओर आकर्षित होते हैं। शायद पत्तोंका रंग कीड़ों को आकर्षित करनेमें समर्थ होता है; परन्तु यह देखा गया है कि जैसेही कोई कीड़ा इन बारीक काटों पर आ बैठता है त्योंही पत्तेके दोनों भाग बड़ी तेज़ी और फुर्तीके साथ बन्द हो जाते हैं और चूँकि ये आपसमें एक दूसरे से समकोणसे भी दूरी पर झुके रहते हैं इसलिये कोई भी अनधिकार प्रवेश करनेवाला कीड़ा बड़ी सुगमताके साथ पकड़ा जा सकता है। पत्तीके बीचकी नसों द्वारा पत्ती मुड़नेमें समर्थ होती है। किनारोंके काटें पहले पहल पत्तीके मुड़ने पर एक दूसरेमें भिच कर मिल जाते हैं और बादको काँटोंके नीचेके भाग तकको भलीभाँति जकड़ लेते हैं और तब पत्ती बिलकुल बन्द हो जाती है और भीतर एक खोहसी (cavity) बन जाती है। लेकिन यदि पत्ती अनावश्यकीय या इत्तिफाकसे किसी चीज़के छूनेसे बन्द हो जाय या यदि कोई नोषजनीय पदार्थ भीतर बन्द न हो तो पत्ती बिलकुल नहीं

*लेखककी 'भूकवच' नामक अप्रकाशित पुस्तकके एक परिच्छेद के आधार पर लिखित—

मुड़ती। यह सिर्फ थोड़ी देरके लिये मुड़ी हुई अवस्थामें रहनेके बाद २४ घंटेके भीतरही खुल जाती है, और यह क्रिया इन पौधोंके लिये बहुत आवश्यक है क्योंकि यदि ये अनावश्यकीय आस-पासके घास फूसके लगनेसे बंद होजायँ तो फिर कीड़े पकड़नेके काम नहीं आ सकतीं इसलिए ये उस हालतमें थोड़ी देर रहनेके बाद फिर आपसे आप खुल जाती हैं। लेकिन यदि कोई नोषजनीय पदार्थ भीतर बंद हो जाय तो पत्तीके भाग आपसमें इतने जोरके साथ जकड़ जाते हैं कि बड़े कीड़ेका आकार पत्तीके बाहरसेभी मालूम पड़ जाता है; और कभी २ ऐसा कीड़ा इन पौधोंकी पत्तियोंसे पकड़ लिया जाता है तो पत्तीका भाग फिर ज़ोर लगानेसेभी बड़ी मुश्किलसे खुलता है। यह देखा गया है कि यदि पच्चर द्वारा पत्तीको खोलनेका प्रयत्न किया जाय तो पत्ती खुलनेकी जगह अधिकतर फट जाती है—
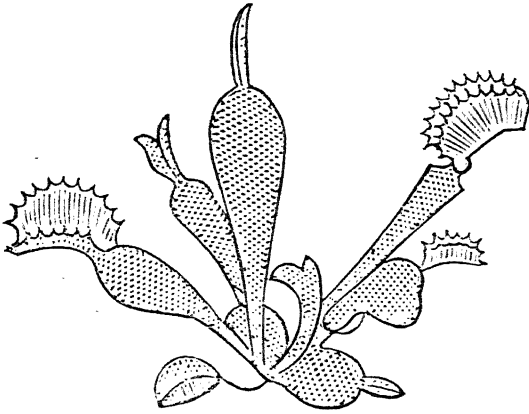
(चित्र १)

और यदि खुलभी जाय तो पच्चरको हटा लेनेसे फिर बड़ी तेजीके साथ बंद हो जाती है।

उपरोक्त घटना द्वारा इस सिद्धान्त पर आया जा सकता है कि नोकोंके छूनेसेही पत्ती मुड़ जाती है लेकिन नोषजनीय पदार्थके सोखनेहीसे पत्ती पर असर पड़कर बिलकुल जकड़ कर बंदहो जाती है।

किनारोंके काटें जोकि विशेष प्रकारसे दृष्टि आकर्षित करते हैं और जोकि ऊपरी दिखावटसे किसी विशेष कामके नहीं मालूम होते असलमें कीड़े-मकोड़े पकड़ने में बहुत सहायता करते हैं। पत्ती के दोनों भाग जब मुढ़ना आरम्भ करते हैं तो ये किनारोंके काटोंके नोंक पहले पहल एक दूसरेके बीचमें आ जाते हैं और क्रमशः अधिकतर मुड़नेका प्रयत्न करते हैं यहां तक कि पत्तीके दोनों भागों मे किनारे आपसमें बिलकुल मिल जाते हैं; परंतु पत्तीके दोनों भागोंके मुड़नेके पहले काटोंके बीचमें थोड़ी थोड़ी जगह खाली रह जाती है, इस प्रकार जो कीड़े बिलकुल छोटे छोटे होते हैं, और जिनके पौधेको उसकी मेहनतके बराबर लाभ नहीं मिलता, आसानीसे काटोंके बीचके इन छोटे छोटे छेदों द्वारा भाग निकलते हैं; परंतु यदि कोई बड़ा कीड़ा फँस जाय और यदि वह निकलनेका प्रयत्न करे तो किनारेके काटोंसे टकरा कर फिर उसी अन्धकूप में जा पड़ता है; और काटोंसे टकरानेसे कुल पत्ती पर नोषजनीय पदार्थका प्रभाव पड़कर पत्ती और भली भाँति मुड़ने लगती है। इस प्रकारये पौधे एक छोटे से कीड़े पर इतना समय और मेहनत बरबाद करनेसे बच जाते हैं। क्योंकि एक बार मुड़नेसे पत्तीको दुबारा खुलनेमें कुछ समय लगता है। इस लिये यह कहा जा सकता है कि किनारे के ये काटें एक प्रकारसे मछलीपकड़नेकेजालकी तरह हैं—जैसे जालके छेदोंसे छोटी छोटी मछलियाँ भाग निकलती हैं और बड़ी बड़ी मछलियां फँस जाती हैं; उसी प्रकार इन किनारोंके काँटोंके आपसमें मिल जानेसे जो छोटे छोटे छेद बन जाते हैं उनमेंसे छोटे छोटे कीड़े भाग निकलते हैं।

ड्रोसेरा (drosera) के विषय में यह कहा गया था कि जब कोई कीड़ा उस पौधेकी छोटी-छोटी ग्रन्थियों पर जा बैठता है तो वह कीड़ा ग्रन्थियोंके गाढ़े चिपकने रससे लिपट कर जुड़ जाता है और कीड़ाके दबावसे सारे डंठलों पर एक लहर उत्पन्न हो जाती है और तब ये डंठल उस कीड़े पर

मुड़ जाते हैं; लेकिन डायोनिया (Dionoea) के डंठलोंमें न तो छोटी छोटी ग्रन्थियां पाई गई हैं और न उन डंठलोंमें से गाढ़ा चिपकता हुआ रस निकलता है; और कीड़े मकोड़े, केवल उनके छुआवहीसे पकड़े जाते हैं। डाओनियाके डंठलमें प्रबल स्पर्शगुण होता है। छुआवहीसे पत्तियों के दोनों भाग (lobes) बंद हो जाते हैं और यह छुआवका प्रभाव केवल ठोस नोषजनीय पदार्थ द्वारा ही पड़ता है; जलीय या वाष्पीय पदार्थका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता। सूर्यकी किरणें ताल (lens) द्वारा संग्रह करने परभी कुछ प्रभाव नहीं डाल सकतीं।

पौधेके वृत्तान्त देनेके समय यह कहा गया है कि पत्तीके दोनों भागोंके ऊपरी हिस्सेमें छोटे छोटे लाल फूल की सी ग्रन्थियां दिखाई पड़ती हैं, और इन ग्रन्थियोंमें रसस्राव और सोखनेकी शक्ति होती है और यह ग्रन्थियां नोषजनीय पदार्थकी प्रत्यक्षतासेही रसस्राव करनेमें समर्थ होती हैं।

यह निरीक्षण किया गया है कि यदि एक गीला मांसका टुकड़ा व एक दबी हुई मक्खी पत्तीके ऊपर रख दी जाय तो थोड़ी देरके बाद ग्रन्थियोंमें रसस्राव (secretion) की क्रिया आरम्भ होजाती है और इस हालतमें केवल उन्ही ग्रन्थियोंसे रस निकलना आरम्भ होता है जोकि मांस व मक्खीको छुये हुए रहती हैं और शेष ग्रन्थियोंमेंसे रसस्राव नहीं होता; परंतु यदि पत्ती मांसके टुकड़े या किसी मक्खी को फांसनेके लिये बंद हो जाय तो उस समय पत्तीकी समस्त ग्रन्थियोंसे रस निकलता है। इससे यह जान पड़ता है कि ग्रन्थियोंके रसमें घुले हुए नोषजनीय पदार्थ सूचिकाकर्षण (Cappillary attraction) द्वारा समस्त पत्ती पर फैलकर नयी ग्रन्थियोंसे रस निकालनेमें समर्थ होते हैं।

डाओनिया (Dionoea) में ड्रोसेरा (Drosera) से कहीं अधिक अम्ल (Acidic) होता है और डाओनियाका रस कभी कभी इतना अधिक होता है कि पत्ती से चूकर पृथ्वी पर टपकता रहता है। यह देखा गया है कि इन पत्तियों पर सूखे नोषजनीय पदार्थका बहुत कम प्रभाव पड़ता है। तरी या नम (damp) नोषजनीय पदार्थ बहुत जल्द क्रियाको अग्रसर कर देते हैं। यह मान लिया जा सकता है कि जब कोई कीड़ा स्वाभाविक रूपसे पत्ती द्वारा पकड़ा जाता है तो पत्तीके दोनों भाग इतनी तेज़ी और ज़ोरके साथ मुड़ते हैं कि कीड़ोंके दोनों सिरोंसे (Extremity) कुछ जलीय पदार्थ निकलनेकी की संभवाना रहती है और इतनाही घुला हुआ नोषजनीय पदार्थ समस्त ग्रंथियोंमें रसस्राव आरंभ करनेके लिये काफी होता है।

इन पौधोंकी पत्तियाँ जब किसी जीवित वस्तु पर मुड़ जाती हैं तो उनकी तुलना जीवोंके पेटके साथ की जा सकती है। पाचन क्रिया ड्रोसेराके लिखे हुए वर्णनके समान होती है।

एल्ड्रोवैण्डा वेसिक्युलोसा

(Aldrovanda vesiculosa)

इस पौधेको जलीय छोटा डाओनिया भी कहा जा सकता है; इन पौधोंकी पत्तियोंके कुछ हिस्सोंमें कभी-कभी हवा भरी हुई रहती है जिससे ये देखनेमें छोटी छोटी थैलीसे मालूम पड़ती हैं इसलिये वेसुक्युलोसा नाम दिया गया है। प्रोफेसर कोहेन (Prof. Cohen) ने इस पौधेकी मुड़ी हुई पत्तियोंमें बहुतसे जलीय छोटे छोटे कीड़े फँसे हुए पाये थे।

इन पौधोंकी जड़ नहीं होती और यह जल पर तैरते हुए पाये जाते हैं। इनके पत्तोंका गुच्छा एक जगह टिहनी (Stem) के आसपास होता है। पत्तोंके डंठल चौड़े होते हैं जिनके शेष भागोंमें ४ या ६ काँटेसे निकले रहते हैं और प्रत्येक काँटे पर एक छोटा और मज़बूत रोंआँ (tisler) लगा रहता है। डाओनियाके समान इसकी पत्ती भी दो भागोंमें विभक्त रहती है और पत्तीके बीचके सिरेके शेष भागमें भी एक मज़बूत रोंआँ लगा रहता है;

जो कि पत्तीके नोकोंके बीचमें रहता है और ये नोंके उसको बाहरी दुर्घटनासे बचाये रखती हैं।
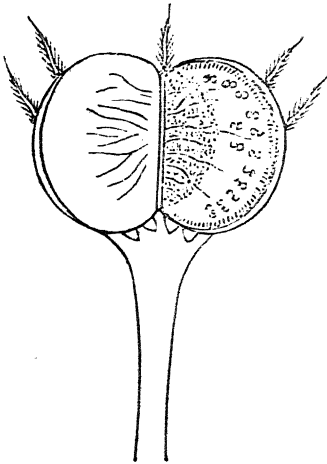
ऐल्ड्रोवैण्डा की पत्ती
(चित्र २)

पत्तीके दोनों भाग इतने मुलायम और पतले होते हैं कि उसके भीतरसे रोशनी दिखाई पड़ती है और ये दोनों भाग एक दूसरेकी ओर एक समकोण से कम दूरी पर झुके हुए रहते हैं जिससे कि जलीय कीड़े बड़ी सुगमताके साथ पकड़े जाते हैं। पत्तीके प्रत्येक भागके अन्दरका हिस्सा छोटे-छोटे डंठल युक्त ग्रन्थियोंसे भरा हुआ होता है। ऊपरी हिस्सेमें बिल्कुल ग्रन्थियां नहीं होतीं और उनकी ज़गह छोटी छोटी नोंक दिखाई देती हैं।

पत्तीके अन्दरके हिस्सेमें ग्रन्थियोंके अलावा महीन नोकीले बाल रहते हैं। ये बाल मुख्यतया पत्तीके बीचकी नसमें अधिकतर दिखाई पड़ते हैं। ये बाल बड़े सचेतन होते हैं और इनके छूनेसे ही पत्तियां बंद हो जाती हैं।

इस कक्षाके पौधे तीन प्रकारके होते हैं, जोकि क़रीब क़रीब इससे मिलते जुलते हैं; पाचन क्रिया डाओनियाके समान ही होती है।

ये पौधे बड़े दुर्लभ हैं क्योंकि ये केवल पुर्तुगाल में ही उगते हैं। इसको लोग मक्खी-पकड़हा (Fly-catcher) भी कहते हैं और लोग अपने मकानों पर मक्खी मारने के लिये इसको लटका रखते हैं। इनमें बहुत छोटी छोटी जड़ होती हैं और पत्तियां काफी लंबी होती हैं। पत्तीकी ऊपरी सतह खुखली नतोदर (concave) होती है और नीचे वाली सतह उन्नतोदर (convex) होती है जिसके कारण बीचमें एक पतला नाला ऐसा बन जाता है। पत्तीकी सतह पर सिर्फ नालेके अलावा छोटी छोटी डंठलयुक्त ग्रन्थियां होती हैं जो कि ड्रोसेरासे बहुत मिलती जुलती होती हैं लेकिन ये मुड़ फिर नहीं सकती। ये ग्रन्थियां रंगमें लाल होनेसे मक्खियोंको आकर्षित करती हैं। इन ग्रन्थियोंसे एक प्रकारका गाढ़ा चिपकता हुआ रस निकलता है। इन बड़ी बड़ी ग्रन्थियोंके अलावा बहुतसी छोटी छोटी ग्रन्थियाँ भी होती हैं जो कि बहुत मुशकिलसे खाली आँखोंसे दिखाई पड़ती हैं। ये छोटी छोटी ग्रन्थियाँ बिलकुल पत्तीकी सतहसे मिली होती हैं और उनमें डंठल नहीं होते। इस पौधेके ग्रन्थियोंके रसमें आगे लिखे हुए सब पौधोंके रससे अधिक अम्ल होता है और यह देखा गया है कि इन ग्रन्थियों का रस इतना अधिक चिपकना होता है कि यदि सुईके द्वारा कोई छोटासा पदार्थ भी इन ग्रन्थियों पर रक्खा जाय तो सुईके साथही साथ ग्रन्थियोंका रस भी लिपट जाता है। इस प्रकार जब कोई मक्खी इन पौधोंकी पत्तीके ऊपर जा बैठती है तो रसकी बूँद मक्खीके पर, पैर, या बदनके किसी जगह पर लग जाती है और वह ग्रन्थियोंसे खींच ली जाती है। मक्खी तब दूसरी जगह चलनेका प्रयत्न करती है और इस प्रकार दूसरी ग्रन्थिका रस उसके बदन पर लग जाती है और अन्तमें वह मक्खी बिलकुल रससे नहा जाती है और चलने फिरनेसे असमर्थ होकर पत्तीके ऊपर जुड़कर मर जाती है, लेकिन इस समय पोधेकी छोटी छोटी

ग्रन्थियां काम करती हैं क्योंकि अब उन छोटी छोटी ग्रन्थियोंसे रसस्राव होता है।

ड्रोसेरा और इस पौधेमें इतना अन्तर है कि ड्रोसेराकी डंठलदार ग्रन्थियां मक्खीको बीचमें गेंदकी भाँति लुढ़का कर लानेके बाद वे डंठलदार ग्रन्थियां मक्खीको दबा रखती हैं, परन्तु ड्रोसेफाईलममें मक्खी अपने जान बचानेके प्रयत्नमें खुद लुढ़क लुढ़क कर अपनी बदनमें ग्रन्थियोंका रस लगा लेती है और इस प्रकार अपनी मृत्यु आप ही बुला लेती है। ड्रोसेरामें ग्रन्थियोंसे बहुत अधिक रस निकलता है क्योंकि वह पाचन क्रियामें सहायता करते हैं। लेकिन इस पौधेमें पाचन क्रिया (absorption) का कार्य्य छोटी छोटी ग्रन्थियों द्वारा होता है और ये बड़ी बड़ी ग्रन्थियां केवल मक्खीको चिपकानेके कार्यमें आती हैं इसलिये इनका रसस्राव बहुत कम होता है। मक्खीके बदनमें रस लग जानेके बाद वे ग्रन्थियाँ फिर २० घण्टेके बाद रसके बिन्दुसे भर जाती हैं।

इस कक्षामें दो और पौधे हैं जिनका वर्णन इसीके समान है :—

निपेनथेसी (Nepenthaceae)

इस कक्षाके पौधे पुरानी दुनियामें सीमाके आस-पास पाये जाते हैं और मलाया आर्चिपिलेगो (Malay Archipelago) में बहुत अधिकताके साथ उगते हैं। इनके पत्ते बहुत बड़े, लगभग गज भरके होते हैं पत्तीका शेष भाग बेल (tendril) के आकारमें किसीके सहारे लिपटकर सीधे नीचे उतर आता है और अंतमें एक सुराही (pitcher) के आकारका हो जाता है। कुछ पौधोंमें ये सुराही काफी बड़ी होती हैं और कुछ पौधोंमें छोटी होती हैं। पत्तीके शेष भागपर एक ढक्कन होता है जोकि सुराहीके मुँहके पास लगा रहता है सुराही साधारणतः लाल व बैंजनी रंगकी होती है और कीड़े मकोड़े इन्हीं रंगोंसे आकर्षित होते हैं। सुराही पत्ते हीसे बनती है और वह पत्ते हीका एक भाग है। यह सुराही प्रत्येक पत्ती द्वारा नहीं बनती। गोबेल (Goebel) ने यह निरीक्षण किया है कि पत्तियोंकी बेल अनुकूल सहारा पाने हीसे सुराही बनाती हैं। बेल समस्त पौधेको उठाये नहीं रखतीं, यह सिर्फ सुराहीके सहारेके लिये ही हैं क्योंकि वह सुराहियाँ जलीय पदार्थसे भरी रहनेके हेतु काफी भारी होती हैं।
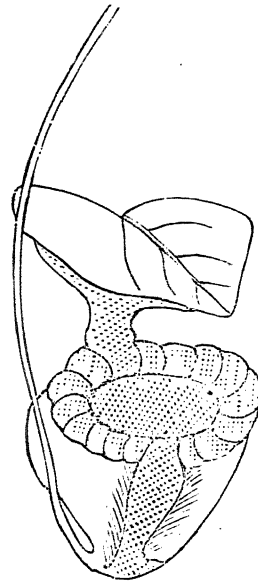
निपेनथेसी की सुराही
(piteher of N•panthaceae)
(चित्र ३)

सुराही मजबूतीके हेतु एक दृढ़ गोल किनारे द्वारा घिरी हुई रहती है। सुराहीका मुँह पूरा खुला हुआ रहता है और सुराहीकी भीतरी दीवारकी बनावट काफ़ी जटिल होती है। यह दीवार दो हिस्सेमें विभक्त हो सकती है। भीतरी दीवारके ऊपरी हिस्सेमें मोम ऐसी चिकनी वस्तुकी तह चढ़ी रहती है और नीचेके हिस्सेमें छोटी छोटी ग्रन्थियोंसे भरी होती है और चमकती रहती है। ये ग्रन्थियां भीतरकी ओर धसी हुई होती हैं और

इनसे रस निकल कर सुराही सर्वदा आधी भरी रहती है। ढक्कनके भीतरी भागमें और सुराहीके किनारेमें भी ग्रन्थियां पाई जाती हैं और इनमेंसे मधु निकलता रहता है, इस मधुके पीनेके लिये कीड़े मकोड़े आकर इन सुराहियोंमें फंस जाते हैं।

बिना-ग्रन्थिवाली मटकीके ऊपरी हिस्सेके कोष्ट चिकने तो होते ही हैं परन्तु कुछमें से छोटे छोटे नोक निकले रहते हैं और ये नोक नीचेकी ओर झुके हुए होते हैं। सुराहीके इन हिस्सोंको कीड़े मकोड़े पकड़नेका जाल समझना चाहिये। यदि कोई कीड़ा मधुकी खोजमें भटक कर इस हिस्से पर आजाय तो इस स्थान पर उसे कुछ सहारा न मिलनेसे वह फिसल कर सुराहीके भीतर बड़ी तेज़ीके साथ गिर पड़ता है और सुराहीके भीतर जलीय पदार्थ भरे रहनेके कारण उसमें डूब जाता है।

इस फिसलावके स्थानपर कीड़े पकड़नेका कार्य्य बड़े सुगमताके होता है और नोल (Knoll) ने बड़े ध्यानके साथ इसका निरीक्षण किया है। उन्होंने बिना परवाली चीटियाँ जिनके पैरके पंजे मुड़े होते हुए हैं और जो बड़ी सुगमतासे चिकने काँचके ऊपर भी चढ़ सकती हैं, सुराहीके किनारों पर छोड़ कर देखा है कि वे भी इस हिस्सेसे निकल नहीं सकतीं और अंतमें सुराहीके भीतर गिर पड़ती हैं। मुड़े हुए पंजों द्वारा ये चीटियाँ मोमके ऊपर भी चढ़ सकती हैं लेकिन सुराहीके भीतरवाला मोम साधारण मोमसे भिन्न प्रकारका होता है। और यह मोम पजोंमें चिपक कर उन्हें चिकना बना देता है जिससे चिटियां स्थानको जकड़ कर पकड़ नहीं सकतीं और पंजेसे मोम साफ करने का अवसर न पाकर सुराहीमें गिर पड़ती हैं।

इस कक्षाके कुछ पौधोंकी सुराही बिलकुल ज़मीनसे लगी हुई या ज़मीनके अंदर धसी हुई होती है—ये सुराहियाँ ज़मीन पर रेंगते हुये कीड़े-मकोड़ोंको सुगमताके साथ फंसा लेती हैं।

सुराहीका जलीय पदार्थ शिकार मिलनेके पहले शिथिल (Neutral) होता है। और इनमें कोई प्रेरक जीव (Enzyme) नहीं होता। परन्तु किसी कीड़े-मकोड़े या नोषजनीय पदार्थके छूनेसेही ग्रन्थियाँ उत्तेजित होकर अम्ल रस और प्रेरक जीव देना आरम्भ करती हैं। ये प्रेरक जीव पेपटिक (peptic) और प्रोटीन (protein) पदार्थको पेपटोन (peptone) बनानेमें समर्थ होते हैं जो आसानीके साथ सोख लिया जाता है। इसके अलावा इस जलीय पदार्थमें कोई कीटाणु इत्यादि उत्पन्न नहीं हो सकता।

सारासिनियेसी (Saraceniacae)

इस कक्षाके पौधे अमेरिकाको अयन सीमाके आस-पास दल-दलमें पाये जाते हैं। इनके पत्ते गोलाकारमें टेहनीके आस-पास लगे हुए रहते हैं। तैयार (active) पत्तियाँ सुराहीका रूप धारण करती हैं यह सुराहियाँ या तो सीधी खड़ी रहती हैं या कभी-कभी आड़े तौरसे लगी हुई रहती हैं लेकिन दोनों दशामें सुराहियोंका मुँह सर्वदा टहनीसे बाहरकी ओर झुका हुआ रहता है। निपेनथ्समें सुराहियाँ पत्तियोंका कुछ अँश हुआ करता है लेकिन सारासिनेसीमें यह सुराहियाँ छोटे डंठलके सिवा पूरी पत्तियोंका रूपान्तर मात्र हैं। निपेनथेसीके समान इनकी सुराहियोंमेंभी एक किनारा रहता है लेकिन यह बाहरकी ओर बढ़करएक ढक्कन बना लेता है जो सुराहीके मुँहकी रक्षा करता है। सुराहीके किनारे ढक्कन, और कभी-कभी सुराही की बाहरी तह पर मधु ग्रन्थियां (Nectarglands) पाये जाते हैं जिनसे कि मीठारस निकलता है; कुछ पौधोंकी इन ग्रन्थियोंसे इतना रस-स्राव होता है कि सुराहीका सारा किनारा मधुसे भरा हुआ रहता है। कीड़े मकोड़े जोकि मधुके खोजमें आते हैं इन मटकियों फंसा लिये जाते हैं।
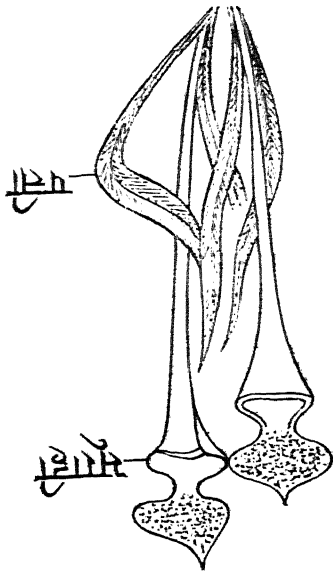
सारासिनिया का पौधा
(चित्र ४)

सुराहीकी भीतरी दीवारका उपरी हिस्सा निपेनथ्सकी तरह चिकना और फिसलानेवाला होता है लेकिन इसकी बनावट कुछ भिन्न प्रकारकी होती है। यह स्थान देखनेमें मकानों पर छप्पर लगी हुई छतके समान होता है। इसके नीचेके हिस्सेमें लंबे-लंबे काँटे होते है जिनका मुँह नीचेकी ओर झुका हुआ है। और भीतरी दिवार परभी मधु ग्रन्थियां पाई जाती हैं और इन्हींसे कीड़े आकर्षित होकर सुराहियोंमें आ गिरते हैं। कीड़े और मकोड़े जोकि मधुकी खोजमे आते हैं बड़ी तेज़ी और फुर्ती के साथ सुराहियोंमें आ गिरते हैं और एकबार गिरनेसे उनके लिये मृत्यु निश्चितहो जाती है। सुराही के भीतरका निचला हिस्सा ग्रन्थि-और कांटा युक्त नहीं होता। सुराहियां सर्व्वदा जलीय पदार्थसे भरी हुई होती हैं लेकिन यह सन्देह मय है कि यह समस्त जलीय पदार्थ इन्ही सुराहियोंकी ग्रन्थियोंका ही रसस्राव है क्योंकि सुराहियोंका मुँह सर्वदा भली भांति ढका हुआ नहीं होता और वर्षाका पानीभी इन सुराहियोंके भीतर जा सकता है। यह देखा गया है कि भली भाँति ढकी हुई सुराहियोंके अन्दर जलीय पदार्थ कम होते हैं। यह जलीय पदार्थ जीवाणु नाशक (antiseptic) नहीं होता और इनमें जीवाणु अधिकताके साथ पाये जाते हैं और इन्हीं जीवाणु द्वारा जीवित वृक्षकी पाचन क्रिया संपन्न होती है उसके बाद पचित द्रव्य पौधोंसे सोख लिया जाता है। सारासिनेसीकी बनावट निपेनथ्सके निम्न स्तर पर है क्योंकि इनकी सुराहियोंको भली-भाँति सहारा नहीं मिलता। इनमें जलीय पदार्थ कम होता है। कीड़े पकड़नेका जालभी यथायोग्य नहीं है और पाचन क्रियाभी असम्पूर्ण है।

सिफेलोटेसी (Cephalotaceae)

इस कक्षाका एक पौधा पश्चिम अस्ट्रेलियामें पाया जाता है। इस पौधेकी सुराहियाँ निपनेथ्स और सारासिनेसीके समान होती है और वे उसी प्रकार कीड़े पकड़ा करती हैं।

मेटाक्लेमिडी—(Metachla mydae)

(क) पिनगुईकुला (pinguicula)—ये पौधे पहाड़के दलदलोंमें उगते हैं। इनमें आठ (८ पत्तियाँ होती हैं और प्रत्येक लगभग १½ इंचके लम्बी होती हैं। पत्तियोंके किनारे भीतरकी तरफ मुड़े होते हैं और ऊपरी भाग दो प्रकारके ग्रन्थियुक्तवालोंसे भरे होते हैं जिनमेंसे एक प्रकारके तो बड़े होते हैं और दूसरे बहुत छोटे हैं। इन ग्रन्थियोंसे गाढ़ा चिपकता हुआ रस सर्व्वदा निकलता है और जो कीड़े मकोड़े इनपर उड़कर आ बैठते हैं रसोंसे लिपट जाते हैं।
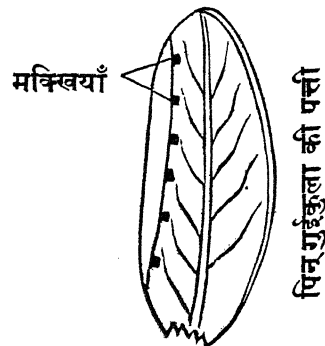
(चित्र ५)

कीड़े मकोड़ेके चिपकने के बाद पत्तियोंके किनारे मुड़ कर एक चम्मच का आकार धारण करलेते हैं। छोटी छोटी ग्रन्थियोंमेंसे रसस्राव होना आरंभ हो जाता है और वे कीड़ों मकोड़ोंको उसी रसमें घोल डालते हैं। ग्रन्थियोंका रस पहले पहल शिथिल होता है लेकिन कीड़े मकोड़ोंकी विद्यमानतासे वे अम्लीय हो जाते हैं। कीड़े मकोड़े रसमें घुल जानेके बाद उन्हीं ग्रन्थियोंसे फिर सोख लिये जाते हैं। कुछ पौधोंकी पत्तियाँ स्वाभाविक प्रकारसे ही मुड़ी हुई होती हैं लेकिन अधिकतर पौधोंमें कीड़े मकोड़ोंके आनेके बाद वे मुड़ जाती हैं। प्रत्येक दोनों अवस्थामें पत्तियोंके मुड़ने का मुख्य उद्देश्य कीड़े मकोड़ों का वर्षाके पानीसे धुलकर नीचे न गिर जाने ही का है।
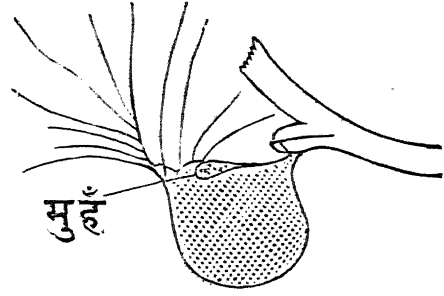
(ख) अरटिकुलेरिया (Urticularia)—इस जाति के पौधे जलके ऊपर दिखाई देते हैं और इनमें बिलकुल जड़ नहीं होती। बहुतसी डिब्बाकार छोटी छोटी थैलियां इन पौधोंमें पायी जाती हैं जोकि जल पर तैरा करती हैं। ये थैलियां पौधेको पानीके ऊपर तैराकर रखती तो हैं पर इसके अतिरिक्त ये जलीय कीड़े मकोड़े पकड़नेमें भी समर्थ होती हैं। थैलियोंके मुँहके आस पास लम्बे लम्बे बाल हुआ करते हैं और इन बालोंके नीचे सबसे मुख्य इन्द्रिय होती हैं। यानी कीड़े मकोड़ेके घुसने की जगह और एक छोटा और पतला परदा। इस परदेकी बनावट बड़ी अद्भुत होती है। यह मुँहके आसपास एक ओरके सिवाय सब तरफसे जुड़ा हुआ होता है और परदे का कुछ अंश थैलीके खोहके भीतर घुसा हुआ रहता है। थैली का मुँह परदेसे एक ओर खुला होनेसे वह एक पतला और लम्बे छेदका आकार धारण करती है—और इसी छेद द्वारा कीड़े थैलियों के भीतर घुसते हैं। यह परदा रबरके समान तनता है और लचीला होता है।

साधारणतः शाकाहारी जलीय कीड़े थैलियोंके मुँह पर लगे हुए बालोंके खानेके लिये आया करती

अरटिकुलेरिया की थैली

(चित्र ६)

हैं क्योंकि ये कीड़े इन बालोंको खाना पसंद करते है और अचानक उनमेंसे बहुतसे इन छेदों द्वारा थैली के भीतर घुस जाते हैं। लेकिन यह कहा जासकता है कि छोटे छोटे जलीय कीड़े सर्व्वदा भोजनकी खोज में दरारमे घुसनेका प्रयत्न किया करते हैं और इसी प्रकार इन थैलियोंमें भी भोजनकी खोजमें घुसते हैं। ये कीड़े मुँहके परदेको नीचे दबाकर भीतर घुसते हैं लेकिन परदेके बहुत लचीला होनेके कारण वह फिर मुँहको बंदकर लेता है। थैलीके मुँहका किनारा बहुत पतला होता है और परदा इस मुँह पर बिलकुल चिपट कर बैठता है इसलिये कीड़े मकोड़े एक थैलीमें घुसनेके बाद फिर निकल नहीं सक्ते। परदा थैलीके मुँहपर इस प्रकार मजबूतीसे चिपट बैठता है कि अक्सर कुछ कीड़े आधे बाहर और आधे थैलीके भीतर पाये गये हैं।

जब कोई कीड़ा थैलीके भीतर फँस जाता है तो थैलीके अन्दर समस्त ओषजन का उपयोग हो जानेके बाद ओषजनकी शून्यतामें कीड़े मर जाते हैं। थैलीके भीतर ग्रन्थियाँ कीड़े मर जानेके बाद उसको घोल कर फिर सोख लेती हैं।

इसी जातिका और एक पौधा स्थलमें उगता है। इस पौधेमे भीतर जानेका एक रास्ता होता है

जहाँ कीड़े मधुकी खोजमें जाते हैं। उसके बाद छेदके नीचेका मार्ग इतना जटिल और घुमेरदार होता है कि कीड़े मकोड़े एकबार उसके भीतर घुसनेके बाद रास्ता भूलकर भीतर ही भीतर भटका करते हैं। अंतमें ग्रन्थियोंके रससे घुलाकर सोख लिये जाते हैं।

आयुर्वेद की उन्नति के रहस्य

[लेखक—श्री कविराज शिवशरण वर्मा जी]

युर्वेद की उन्नति कैसे हो ? यह एक ऐसा प्रश्न है जिस का उत्तर देना तो सरल है पर उसे क्रियात्मक रूप में परिवर्तित करना कुछ कठिन प्रतीत होता है। पर यदि पाठक वृन्द मेरे विचारों को ध्यान पूर्वक पढ़ कर थोड़ा सी भी मनन करेंगे, तो इस समस्या को हल करना सुगम हो जावेगा।

इस में किसी को भी सन्देह नहीं कि आयुर्वेद वेदाङ्ग है। इसकी खोज को गम्भीर बनाने के लिये असंख्य भिषगवरों ने भाग लिया। उन्होंने अपने अपने समयमें अपने अपने मतानुसार ग्रन्थ वा संहितायें रचीं, आयुर्वेद को अधिक उपयोगी, सर्वप्रिय वा सरल बनानेके लिये इसे—शल्य, शालाक्य, काय, भूत, अागद, कौमार—भृत्य, रसायन और वाजीकरण इन अष्ट भागों में विभाजित किया गया गया। इन सबमें से सर्वोपरि, सर्वोच्च विषय शल्य वा शालाक्य शास्त्र का ही था।

उपर्युक्त विषयों पर कई ग्रंथ रचे गये होंगे, पर वर्तमान कालमें हमें दो चारके अतिरिक्त अन्य नहीं मिलते। जो मिलते भी हैं उन के प्रति भी हमें सन्देह है कि क्या वे वही आर्षग्रन्थ हैं जो कि ब्रह्मा, विष्णु, धन्वन्तरि, अश्विनीकुमारादि महर्षियोंने रचे थे अथवा वे कोई भिन्न पुस्तकें हैं। शल्य वा शालाक्य के विषय पर आज सुश्रुत संहिता मिलती है। उसके तय्यार होने का समय त्रेतायुग कहा जाता है। कई विद्वानों का मत है कि असली सुश्रुतसंहिता लुप्त हो चुकी है। आधुनिक कालमें इस नाम का जो ग्रंथ मिलता है उसके संग्रहकर्ता नागार्जुन जी हैं, पर नागार्जुन भी तीनथे, अतः निश्चय रूपसे नहीं कहा जासका कि कौनसे नागार्जुन ने इसे संग्रह किया, अतः इनग्रंथोंमें किन्हीं एक अनावश्यक, अवैज्ञानिक वा असत्य बातोंका समावेश हो जाना कोई असम्भव न था।

भारतीय प्राचीन वैद्यवर इस विद्या में पूर्णतया निपुण थे, वे किसी भी दशा में शस्त्रविद्या कि अनभिज्ञ नहीं ठहराये जासक्ते। वे ज्ञानके समुद्र थे, जगत्गुरु थे। हमें अब भी कई एक ऐसे भारतीय व्यक्ति मिलते हैं जो व्रण वा अर्श चिकित्सामें सिद्ध-हस्त हैं। पाश्चात्य प्रणाली द्वारा असाध्य माने हुये तथा त्यागे हुये व्रणों को निवारण कर देना उनके लिये साधारण सा कार्य है। यूरोप वा अन्य देशों के सभी के सभी विद्वान उन प्राचीन पंडितों की विद्वता को स्वीकार कर चुके हैं। वेबर महाशय ने अपनी सार गर्भित लेखनी द्वारा 'History of the Indian Literature' में स्पष्ट लिख दिया है—"In Surgery, too, the Indians seem to have attained a special proficiency and in this department, Europeon surgeons, might perhaps, even at the present day still learn something from them as indeed they have already borrowed from them the operation of Rhinoplasty."

इस बात के होते हुये भी क्या अब हम इसी बात पर सन्तोष कर बैठें कि हमारे पूर्वज अति विद्वान थे, परन्तु ऐ उन्नतियम्बक वा सत्यके खोजक

वीर! तनिक सोच वा सत्य हृदयसे विचार-पूर्वक उत्तर दे कि क्या इस बातका हमें विशेष लाभ भी है? लाभ तो तभी प्रतीत हो न, जब कि भारतीय सरकार की दृष्टिमें वैद्यवर तथा डाक्टर लोग एक समान समझे जावें। दशा नितान्त प्रतिकूल है। इस बात की दोषी भारतीय सरकार अथवा कोई अन्य संस्था नहीं ठहराई जा सकती, प्रत्युत इसके दोषी स्वयं हम हैं। हमने ही अपने आलस्य तथा प्रमादके कारण शल्य वा शालाक्यके विषय को एक घृणित कार्य समझा, परिणाम यह हुआ कि विद्या योग्य हाथोंसे निकलकर अशिक्षित व्यक्तियोंके हाथोंमें चली गई। यदि अब भी विद्वान वैद्य तथा आयुर्वेद के प्रेमी सर्जरी में निपुण हो जावें तो फिर डाक्टर नेलसन सरीखे व्यक्तियों को आयुर्वेद पर आक्षेप करने वा कुठाराघात करने का अवकाश ही न मिले। अब कार्य-क्षेत्रमें निकलने का समय है, नेत्र मूंद गद्दी पर तकियेका आश्रय लिये लेटनेका समय नहीं।

प्रश्न हो सकता है कि वैद्योंने शस्त्र चिकित्सा से क्यों मुख मोड़ा, उनके इसके प्रति उदासीन होने के क्या कारण थे? एक समय था जब कि सर्जरी की विद्या को संसार का गौरव समझा जाता था, यहीं तक नहीं प्रत्युत इसे राजकीय विद्या समझी जाती थी। उदाहरणार्थ काशीके राजा दिवोदास ने इसका अध्ययन कर योग्यता प्राप्तकी और अपने समयमें शल्य चिकित्साके सर्वमान्य चिकित्सक समझे जाते थे। सुश्रुत इस बात का साक्षी है।

दिन बीतते देर नहीं लगती, बौद्ध वा जैनमतका प्रचार हुआ, दशा बदल गई, कर्मके केन्द्रमें मालाने आ डेरा जमाया। जनताने अहिंसाका अनूठा पाठ पढ़ना शुरू किया। यह पाठ यहां तक बढ़ा कि व्रणशोध को चीरा देना भी हिंसा समझा जाने लगा। मजहबी दीवानों ने शल्य चिकित्सा के विपरीत प्रचार करना शुरू किया तथा मतावलम्बी-नरेशों ने शवव्यवच्छेद का कानूनन प्रतिरोध किया। जहां तहां इन नवीन मतों का प्रचार था, वहां २ इनका दुष्प्रभाव पड़ा। सम्राट अशोक पर इस का सब से अधिक उत्तरदायित्व है, फिर क्या था जब आयुर्वेदिक महाविद्यालयों से शव-व्यवच्छेद को ही एक दम स्थगित कर दिया गया तो इस का जो दुष्परिणाम हुआ वह सब विदित ही है।

कईयों की सम्मति है कि यवन शासनका भी इस पर प्रभाव पड़ा, वह इस रूपमें न था कि उन्होंने अहिंसाका प्रचारकर जनताको इस ओरसे अरुचि दिलाई अथवा न्यायकी आड़ लेकर शव-व्यवच्छेदको महाविद्यालयोंसे स्थगितकर दिया गया, प्रत्युत मुसलिम शास्त्रोंका हिन्दू पोथियोंको हम्मामों तले जलानाही इसका कारण समझा जाता है। परन्तु मैं इस विचारके सर्वथा विरुद्ध हूँ, कारण कि मुसलिम शासनके बहुत पहले बौद्ध कालमेंही शस्त्र चिकित्सा रसातलको पहुँच चुकी थी। आयुर्वेदके सिद्धान्तों परही यूनानी चिकित्साकी नींव रक्खी गई थी। यदि यह कहा जावे कि यूनानी चिकित्सा पद्धतिकी पुस्तकें प्राचीन आयुर्वेदीय ग्रंथोंका भाषान्तर अथवा रूपान्तर हैं तो अनुचित न होगा। यवन लोग शल्य-चिकित्साके विपरीत न थे। यूनान वासियोंको आयुर्वेदकीजोभी पुस्तकें मिलीं, उनका उक्त भाषामें अनुवाद किया गया। चूँकि वर्तमानकालमें हमें यूनानकी भाषामेंभी शस्त्र चिकित्सा पर कोई सर्व-प्रसिद्ध ग्रंथ नहीं मिलते, अतः कहना पड़ता है कि आयुर्वेदिक शास्त्रोंमें शल्य-चिकित्साका अभावसा होनेसे यूनानी शास्त्रभी इस त्रुटिसे न बच सके।

हिन्दू पंडितोंकी हृदय-संकीर्णताभी इसका कारण समझी जाती है। जो गुण किसी व्यक्ति अथवा विद्वानमें मौजूद था, वह उसके हृदय पटसे बाहर न आसका—मृत्युके साथ उसकीभी इतिश्री होगयी। मस्तिष्कके मस्तीका चोला धारण करतेही उक्त विज्ञान आनेवाली सन्तानके लिये स्वप्न मात्रसा बन गया। उनके संकुचित हृदयोंमें

गुणको गुप्त रखनेका भूत सवार था। वह दोष अबभी विद्यमान है ! हा ! वह दिवस कब आयेगा जब कि हममें उदारताके भाव पैदा होंगे और हम अपने विज्ञानको संसारके सम्मुख रखनेका साहस करेंगे।

इसी दोषको दूर करनेके लिये भारतीय नेताओंकी दृष्टि इस ओर हुई है। कालेज स्थापित कर प्राचीन तथा पाश्चात्य विद्याको तुलनात्मक दृष्टिसे पढ़ानेका प्रबन्ध किया जारहा है ताकि विद्यार्थियोंमें रीसर्चका भाव पैदा हो और आयुर्वेदकी कठिनसे कठिन समस्याको सरलसे सरल विधि द्वारा सिद्ध किया जा सके वा प्रत्यक्ष रूपसे रक्खा जा सके। आयुर्वेदके गौरवको स्थिर रखते हुये भारतीय सरकारको बाध्य किया जावे कि वह अपने प्रचलित विद्यालयों वा विश्वविद्यालयोंमें आयुर्वेदको वही स्थान दें जो कि एलोपेथीको दिया जाता है और आयुर्वेदकी उन्नतिके लिये उतना ही रुपया व्यय करें जितना कि मेडीकल कालेजोंके लिये किया जाता है।

पर क्या भारतीय सरकारसे कह देने मात्रसे ही वह हमारे उद्देश्योंको सफल वा कामनाओंको पूर्ण कर देगी—कदापि नहीं। वह हमारी बात न सुनेगी जब तक कि उसे सुनानेका भरसक यत्न न किया जावे। इस प्रयोजनार्थ.........

(१) आयुर्वेदके साहित्यका उन्नत किया जावे। जिस-जिस विषय की पुस्तकोंका हमारे यहां अभाव है उस-उस विषय की प्रमाणिक अंग्रेज़ी पुस्तकोंका सरल हिन्दी वा संस्कृत भाषामें अनुवाद किया जावे। हमारा साहित्य इस प्रकारके अनुवादसे बिगड़ेगा नहीं प्रत्युत उत्तम होगा।

(२) आयुर्वेदीय शब्द कोशका अभाव—आयुर्वेदीय वैज्ञानिक शब्द-कोषका अभाव होनेसे ऐसे लेखकों तथा अनुवादकोंको अत्यन्त कठिनता उपस्थित होती है। उन्हें पारिभाषिक-शब्द स्वयं गढ़ने पड़ते हैं, यही कारण है कि किन्हीं भी दो पुस्तकोंमें एकसे पारिभाषिक-शब्द प्रयोगमें नहीं लाये जाते। परिणाम रूप पाठक जोकि एक पुस्तकके विशेष प्रकार की शब्दावलीसे परिचित हो चुका है, किसी अन्य लेखक द्वारा रचित पुस्तकमें प्रयुक्त भिन्न शब्दावलीको समझनेमें असमर्थसा रह जाता है।

आयुर्वेद क्षेत्रमें इस प्रकारकी त्रुटिका रहना तबतक अनिवार्य है, जब तक भारतवर्षके प्रसिद्ध प्रसिद्ध विद्वान वैद्यों की एक चुनी हुई समिति स्थिर-वैद्यक-शब्दावली संस्कृत, हिन्दी, बंगाली मराठी, गुजराती आदि भाषियोंको मान्य होगी।

(३) आयुर्वेदके सर्व-विषयों (मुख्यतया 'शस्त्र चिकित्सा वा धात्री विद्या) के अनुसन्धानके लिये विद्वान वा आलस्यद्वेषी रिसर्चस्कालर्ज़ नियुक्त किये जावें। और जो नवयुवक इस प्रकारका कार्य पहलेसे ही कर रहे हैं, उन्हें उत्साहित किया जावे।

(४) सुश्रुतोक्त व्रणोपचार पद्धतिको आयुर्वेदीय शस्त्रचिकित्सालयों वा दातव्य औषधालयोंमें चालू किया जावे।

(५) धनाढ्य व्यक्तियोंकी सहायतासे दो भिन्न भिन्न पत्रिकायें निकाली जावें, जिनमेंसे एक शस्त्र चिकित्साके विषय पर और दूसरी धात्री विद्याके विषय पर प्रकाश डालें। यदि आज मिस मेयो हमारी अल्हड़ मूर्ख शिक्षित एवं ज्ञानशून्य दाईयोंका अपनी पुस्तक मदर इंडियामें फोटो खींच कर हिन्दु जाति वा वैद्य समाजको चेतावनी देना चाहती है तो हमें उसे बुरा न मनाना चाहिये, प्रत्युत उन्हें सुधारने का यत्न करना चाहिये।

आज तक जितनी भी आयुर्वेदीय पत्रिकायें निकल रही हैं, वे इस घाटेको पूर्ण नहीं कर रहीं। उनका उद्देश्य केवल अपनी पेटेण्ट औषधियोंके चटकीले विज्ञापन देकर बेचारी भोली भाली जनताका द्रव हड़प करना है। क्या अमुक पत्रिकायें आयुर्वेदके साहित्यको उन्नत करनेमें कुछ लाभकारी सिद्ध हो सकती हैं ?

केवल शिक्षित वैद्योंको ही चिकित्सा करनेकी आज्ञा होनी चाहिये। गवर्नमेन्टको ऐसे कानून बनाने चाहिये जिसके द्वारा अशिक्षित वैद्य, हकीम वा छद्मचर डाक्टर चिकित्सा न कर सकें।

विज्ञानके अध्ययन की आवश्यकता

(प्रो० रोलेंडका व्याख्यान, अमेरिकन फिज़िकल सोसायटी में)

[अनुवादक—श्री रघुनन्दन लाल भार्गव]

म लोगोंसे बहुधा पूछा जाता है कि वर्षमें कौनसा समय अच्छा है। मैं तो वसन्त ऋतुको ही पसन्द करता हूं। प्रकृति जाड़ेके दुष्ट पंजेसे छूट कर नये जीवनमें प्रवेश करती है। पेड़ोंमे पत्तियाँ आती है, कलियाँ खिलतीं है, और हमभी एक नये जीवन काल में जाते हैं। परन्तु यह हर समय नहीं रहता है, पत्तियाँ झड़ने लगती हैं और कलियाँ खिलकर मुरझा जाती हैं। तब हम सोचते हैं कि क्या यह सब खेल निष्फल हैं।

हम लोगोंके सुन्दर व उत्तम देशने ही वसन्त ऋतु की बराबरी की है। जंगल काट दिये गये, शहरोंकी नींव डाली, व महान् प्रबल राष्ट्र इस पृथ्वी पर बनाया। हमें इस बातका, ऐसे शहरोंका, गर्व होना चाहिये जोकि ऐसे समयमें ऐसी जगह पर बने जहाँ कि कुछही वर्ष पहले लाल आदमी भैंसोंका शिकार करते थे। हमें यहभी सोचना चाहिये कि यह हमारे देशका वसन्त है। हम लोगोंको भविष्यके लिये खिन्न नहीं होना चाहिये क्योंकि पत्तियां व कलियां कितनी ही सुन्दर हों, अंतमें वे फूल व पत्तियां ही हैं। हम लोगोंको भविष्यका ही सोचना चाहिये कि इसका क्या परिणाम होगा। यदि हम एक कार्यको समयपर करते हैं तो एक ऐसे जन्तुका पता लगाते हैं जो कि पके हुये फल व ऊसर जगहको फसल न होनेके कारण तर्जित करता है।

मुझसे इस सभामें भौतिक विज्ञान पर व्याख्यान देनेके लिये कहा गया है। यदि इस विषय पर कुछभी बोल सका, जो २ वृद्धियाँ इस देशके लोगोने इस विषय पर की हैं बतला सका, तो मुझे अत्यन्त ही आनन्द होगा। एक व्यक्ति इकट्ठा करनेके लिये जाता है लेकिन तिनकोंके अतिरिक्त कुछ नहीं पाता। खेतोंमें यहां वहां धान्य है परन्तु थोड़ा है, फिरभी हमारे देशके लोग अच्छी फसल कहते हैं। अमेरिका-विज्ञान भविष्यकी वस्तु है न कि भूत व वर्तमानकी—मेरे स्थान पर आसीन व्यक्ति का यही कर्तव्य होगा कि वह बतलावे कि इसदेशमें विज्ञान शुरू किस तरह किया जाय, सिवाय इसके कि वह तार, बिजली की रोशनी या ऐसीही आरामकी वस्तुओंको विज्ञान कहे। मैं इन चीज़ोंको तुच्छ नहीं कहता क्योंकि संसारकी वृद्धि इस परही है और उसे भाग्यशाली कहना चाहिये जो इनका पता लगाता है। इसलिये एक रसोइया जो नई व स्वादिष्ट तश्तरीका पता लगाता है संसारको लाभही पहुँचाता है। परन्तु उसे हम रासायनिक कहकर सम्बोधित नहीं कर सकते। अमेरिकाके समाचार पत्रोंका 'उपयोगी-विज्ञान' को शुद्ध विज्ञान (pure science) से मिला देना साधारण बात है। एक अमेरिकन जिसने किसी प्रसिद्ध आदमीके विचार ले लिये हों और उनके प्रयोगसे लाभ उठाता है व धन उपार्जित करता है तो उस पुरुषकी उस आदमीकी अपेक्षा जिसने कि इन्हें सोच कर निकाले अधिक प्रशंसाकी जाती है। मुझसे पूछा गया कि उपयोगी-विज्ञान (applied Science) अच्छा है या शुद्ध विज्ञान (Pure science) विज्ञान केप्रयोग करनेके लिये विज्ञानका जीवित रहना आवश्यक है। यदि हम उसमें उन्नति न करें और केवल

उसका प्रयोग ही करें, तो हम उसी प्रकार गिरी दशाको पहुँच जायेंगे जैसे चीनके निवासी, जिन्होंने कुछ भी उन्नति नहीं की और विज्ञान प्रयोगसे ही सन्तुष्ट रहे। उन्हें आग्नेय-चूर्णका पता कई शताब्दियोंसे था और उससे रासायनिक-विज्ञानकी उन्नति तो होती ही। लेकिन भौतिक की भी कुछ उन्नति हो ही जाती, परन्तु वे इसके विस्फुटन गुणमें ही संतुष्ट रहे और कुछ परिश्रम न किया। इसीलिये वे दुनियांकी उन्नति करनेमें असमर्थ हुये। ऐसे ही पुराने राष्ट्रोंको हम असभ्य कहते हैं और इसी दशामें हमारा देशभी है। परन्तु हम लोग उन लोगोंकी अपेक्षा अच्छी दशामें हैं क्योंकि हमने विज्ञानका कुछ प्रयोग किया है।

आज-कलके सभ्य देशोंके लिये विज्ञानका उपयोग आवश्यक है और इस विषयमें यह देश कुछ सीमा तक सफल हुआ है। संसार में कई ऐसे देश हैं जहाँ शुद्ध विज्ञान (Pure science) का प्रयोग किया गया है और किया जा रहा है। परन्तु ऐसे देश बहुत कम हैं जहाँ प्रकृतिका अध्ययन करना अच्छा कार्य समझा जाता है। जो लोग शुद्ध विज्ञानका प्रचार करना चाहते हैं वे जन-समूहके तर्कका सामना करनेके लिये तैयार हो जायें जिसके लिये साहस की आवश्यकता है। वे हर एक चतुर अन्वेषकोंसे नीचा देखनेके लिये तैयार हो जायँ, जो कि अल्प-मति हैं, जिनका उद्देश्य "पैसा पैदा करना ही है और जिसने पैसा कमा-लिया वह सफल हो गया ही है।"

हर एक पुरुषको लाखों रुपयोंके लेनेका अधिकार है परन्तु कितने आदमी विज्ञानकी उन्नतिको समझ सकते हैं जब कि उसका समझना कठिन होजाता है। इतने थोड़े मनुष्य इस बड़े काममें क्यों हैं यह एक कारण हो सकता है। मनुष्य एक सामाजिक जीव है और अपने सुखके लिये दूसरोंका पात्र रहता है। ऐसे व्यक्तियोंका मिलना कठिन है जो दूसरे जीवों पर अवलम्बित न रहते हों। पुराने समयमें पुरुष आजकलकी अपेक्षा अधिक नियुक्त रहा करता था। इसीलिये वह समय जब कि बड़ी बड़ी प्रतिमायें, कवितायें व चित्र बने, नियत काल कहलाता है। हर एक मनुष्य अपने विचारोंमें स्वतंत्र था और परिणाम यह हुआ कि अपूर्व व अद्वितीय काम किये गये। आजकल रेल, तार, पुस्तकें व समाचार-पत्रोंने मनुष्य व बाकी संसार एक कर दिया है। हरएक मनुष्योंके मतोंमें भेद है। वह बाहरी संसार पर इतना निर्भर है कि उसने अपनी अपूर्व रचनाशक्ति भी खोदी और अपूर्व व अद्वितीय चीजोंकी व्यवस्था करनेके योग्य नहीं रहा। मनुष्य जो पुराने समयमें बुद्धिहीन होता,आज गर्वके साथ स्वाभाविक बुद्धिमानोंको कि वे किस तरहसे बाहरी देशोंमें समान हो सकते हैं उपदेश देता हैं। उसके हृदयमें नया विचार कभी न आया हो परन्तु वह कमसे कम अपनी मानसिक-कमीको किसी प्रकार भी पूर्ण कर सकता है। पुराने समयके विद्वान पुरुष इस लिये यह शीघ्रही जान लेते हैं कि मेरे उच्च विचार संसारसे प्रशंसनीय होनेके योग्य नहीं है, अर्थात् वे अधिक ऊंचे है। उसकी बुद्धि व विचार शक्ति घटते २ बराबर आगई है। हरएक स्वाभाविक शक्ति दबादी गई और वह संसारके बराबर आ गया। जहाँकि पुराने समयमें सुन्दर व शोभायमान बादलोंसे लगा हुआ पहाड़ था व वह गहराई थी जिसकी प्रशंसा करना निष्फल है वहां आज शान्ति व गंभीरता है। गहराई भर दी गई, पहाड़ बराबर कर दिये गये और वे सुन्दर दृश्य कारखानों व लहलहाते हुये खेतकी फसलसे दब गये।

सामान्य पुरुषोंकी दृष्टिमें यह परिवर्तन अच्छा है। मनुष्य जीवन कहीं अधिक सुखमय होगया है उसकी मानसिक शक्ति पहलेकी अपेक्षा अधिक है परन्तु वह प्राकृतिक-शक्ति जो दृश्योंके देखनेसे मिलती थी खो बैठे। हम सामान्य-दशाओं व दृश्योंको देखकर थक जाते हैं और हमें यह देखकर अत्यन्त आश्चर्य होता है कि हमारे निपुण कला-

कार आज एक अवनति दशाको प्राप्त हो गये और कांग्रेससे विनती कर रहे हैं कि दूसरे देशोंकी स्पर्धा से हमें बचाओ। हम यह सुनते २ कि हमारे देशके मनुष्योंने विज्ञानका ज्ञान बाहरसे पाया और उससे धन उपार्जित करते हैं, थक गये। हम अपने अध्यापकों को शुद्ध विज्ञान की अपेक्षा विज्ञान प्रयोगसे गिरता हुआ देखकर, उन्हें आलसी बैठा देखकर जबकि सारा संसार कुछ न कुछ खोज करने के लिये तत्पर है, थक गये। हम इस देशमें अधिक सभ्यताकी इच्छा रखते हैं। चारों ओरसे गूढ़ रहस्योंका पता लगानेके लिये ही हमें कल्पना-शक्ति प्रदानकी गई है। प्रकृति अपनी ओर अध्ययन करनेके लिये बुलाती है और हमारे विचारभी उसी तरफ आकर्षित हो जाते हैं।

बहुत थोड़ेही नवयुवकोंने प्रकृतिके रहस्योंको जाननेके लिये जोकि प्रशंसनीय समझा जाता है विज्ञान-क्षेत्रमें प्रवेश किया है। उनमेंसे कुछ दरिद्र थे, और कुछ धनाढ्य परन्तु उन सबमें एक अभिलाषा थी और वह थी प्रकृतिके निमित्त प्रेम। उनमें से बहुतही थोड़े पुरुषोंको अपने कार्यका पारितोषिक मिला होगा और ऐसे पुरुषोंकाही संसार ऋणी है। फेरेडे (Faraday) का जिसने बिजलीकी रोशनीकी मशीनें, बिजलीकी रेल व और कई मशीनें एक शक्तिको दूसरी शक्तिमें परिवर्त्तन करनेकी निकाली, और जिससे सारा संसार लाभ उठा रहा है उसका स्वर्गवास दारिद्रय अवस्थामें ही हुआ। ऐसाही भाग्य उस पुरुषका होगा जोकि फेरेडेका अनुचर है।

भविष्यमें ऐसे पुरुषभी होंगे जोकि प्रकृतिका अध्ययन अत्यन्त प्रेम-पूर्वक करेंगे और उन्हींकी प्रतीक्षा वह पारितोषक जो किसीको नहीं मिला है, कर रहा है। हमने अभीही विज्ञानका अध्ययन शुरू किया है। हम उपग्रहोंकी चाल आकर्षण-शक्ति (Law of gratavition) से समझाते हैं। पर यह कौन समझावेगा कि दो चीज़ जोकि सैकड़ों मीलकी दूरी पर हैं एक दूसरेको अपनी ओर किसी शक्तिसे खींचनेका परिश्रम कर रही है। हम कितनी सुगमतासे बिजली व उसकी गतिको नाप सकते हैं जैसे कि कोई साधारण वस्तुको, पर क्या कभी लोगोंने बिजलीके अद्भुत्वको समझानेका परिश्रम किया? प्रकाश एक तरंगित (undulatory motion) चाल है पर क्या हम जानते हैं कि वह क्या वस्तु है जो तरंगित होती है? उष्णता गति पर वह क्या चीज़ है जो चलती है?

सब पुरुषोंको इस महान् कार्य-क्षेत्रमें सम्मिलित होनेकी आवश्यकता है और कई जातियां तो सम्मिलित होरही हैं। यह कार्य मिनटोंमें होने वाला नहीं है वरन् इसमें निपुण लोगोंकी बहुत बड़े काल तक आवश्यकता है।

क्या यह देश इसीमें सन्तुष्ट रहेगा जबकि और देशकी जातियां उन्नति कर रही हैं। क्या हम इसी अवनति दशामेंही पड़े रहेंगे और उच्छिष्ट वस्तुको उठाकर धनवान समझेंगे? पर यह नहीं जानते कि औरोंके पास मूल वस्तु है। क्या हम शूकर हैं जिसे दाने व तुष (husk) मोतियोंकी अपेक्षा अधिक मूल्यवान है? यदि हम समय-समयके लांछन पढ़ें तो हम इस दशामें अधिक नहीं रहेंगे, इस दशामें पड़े-पड़े हम अन्धे होगये हैं पर स्वस्थ होसकते हैं। इस देशमें जीवन सम्बन्धी आवश्यकताएं पहले पूरी होनी चाहिये। आदमका आप मनुष्य-जीवपर है और अपने जीवनके लिये परिश्रम करना हमारा पहला कार्य होना चाहिये।

उपयोगी विज्ञान का उद्देश्य संसारको सुगम बना देना है। मुझे एक यहाँ पढ़ी हुई कहानी याद आ गई जिससे उक्त-विज्ञान (ap- plied science) का हाल मालूम होता है। "एक लड़का जिसे काम करनेकी अपेक्षा पढ़नेका अधिक अनुराग था इंजिनका वाल्व घुमानेके लिये नौकर रखा गया। उसके पढ़नेमें उसे बाधा मालूम होने लगी और उसे कुछ युक्तियां सोचनी पड़ीं। उसने शीघ्रही सोच निकाला कि वह इस

कामसे बच सकता है यदि वह वाल्वको इंजिनके किसी ऐसे भागसे जोड़दे जो स्वयंभी चलता हो और वाल्वको भी चलावे"। इसलिये मैं सोचता हूँ कि मनुष्यकी मानसिक-शक्तिका विकास करने वाली वस्तु उद्यमही है। विज्ञानकी भिन्न २ शाखाओंका ज्ञान, कलाओंका ज्ञान, बड़ी २ बातोंकी योजना यह सब मनुष्यकी सबसे श्रेष्ठ वृत्तियां हैं। वाणिज्य विज्ञानके ज्ञानसे धन उपार्जन करना कोई बुराकर्म नहीं है परन्तु उनके लिये बुरा ही है जिनके विचार पवित्र व गंभीर हैं और लाभ-दायक उनको है जिन्हें उच्च लक्ष्य (higher pursuit) का ज्ञान नहीं है।

जैसे २ विज्ञानका विकास होता है वैसे २ जीवन सुखमय होता जाता है और जीवन सम्बन्धी आवश्यकताएं छोड़ कर और वृत्तियोंका सोचना सम्भव होजाता है।

परन्तु धनवान होनेके साथही नीति शास्त्रका ज्ञानभी आवश्यक है। एक मूर्ति व चित्र बनाने वालेको द्रव्य तभी प्राप्त होता है जबकि उसकी मूर्त्ति व चित्र सुन्दर बना हो। उपन्यास लेखक, कवि, संगीतज्ञको द्रव्यकी प्राप्ति तभी होती है जबकि अपने २ कर्तव्यमें वे सफल हो चुके हों। वैज्ञानिकोंके व गणितज्ञोंके लिये ऐसा कोईभी प्रलोभन नहीं है। उन्हें अपनी जीविका किसी और ही उद्यम द्वारा पैदा करनी चाहिये क्योंकि उन्हें वेतन बहुतही कम मिलता है। यंत्र व पुस्तकोंका ठीक प्रबन्ध न होनेके कारण वे बहुधा अपना अधिक समय उपयोगी विज्ञान (applied science) में व वेतनवृद्धिमें लगाते हैं।

हम उन पुरुषोंका जिन्होंने संसारकी सब तरहकी कठिनाईयोंका सामना करते हुये संसारको एक ऐसा अमूल्य रत्न दिया, किस तरह आदर करें। उन्होंने शुद्ध विज्ञान (pure science) की उन्नति करके हजारों लाखोंका लाभ पहुँचाया। कई पुरुष ऐसेभी हैं जिन्हें विज्ञानकी उन्नति करने की हर प्रकारकी सुलभता हैं, जिन्हें उचित वेतन मिलता है, तबभी उन्नति करनेकी अपेक्षा वे व्यापारिक सम्बन्धी धन्धोंमें व आय बढ़ानेके कार्यमें ही लगे। रहते हैं। ऐसे पुरुष अध्यापक कहलाना छोड़ कर भौतिक व रासायनिक आलोच कहें तो ठीक होगा। ऐसे मनुष्योंकी समाजमें आवश्यकता है। परन्तु अध्यापककी जगह प्रसिद्ध कालेजमें लेते हुये अपनी शक्ति व बुद्धि को व्यापारिक धन्धोंमें लगाना अत्यन्त निन्दित कर्म है। यह विज्ञानवृद्धिमें दारुण व्यथा है।

कई नवयुवक काम करनेकी इच्छासे इस आदर्श जीवनपर दृष्टि डालते हैं और यह मालूम करलेते हैं कि धन उपार्जन करनेकी अपेक्षा और भी कई वस्तु प्रशंसनीय हैं। इसलिये वह भी इसी तरह जीवन व्यतीत करनेकी व्यवस्था करते हैं और उस अध्यापककी जिसने इन्हें इस पथ पर लगाया प्रशंसा करते हैं।

मैं इस विषयमें अन्यथा सम्भावित नहीं होना चाहता। युक्ति, कल्पना वा कोई व्यवहार या वैज्ञानिक द्वारा धन-उपार्जन करना अपमान-जनक नहीं है परन्तु अध्यापकोंका उद्देश्य यह नहीं होना चाहिये। यदि उन लोगोंका उद्देश्य धन-उपार्जन करनाही है तो उसमें उन लोगोंको तनमनसे लग जाना चाहिये और दूसरोंसे बराबरी करना चाहिये। यदि हमारा उद्देश्य श्रेष्ठ है तो हमें उनके अनुसार दरिद्र व धनाढ्य जैसा अवसर हो, होकर रहना चाहिये।

व्याख्यान देनेमें शक्तिका घटना आवश्यक है और कई पुरुष वैज्ञानिक-क्षेत्रमें कार्य न करनेका यह एक कारण बतलाते हैं। परन्तु यह कहावत है कि 'जहाँ चाह वहां राह'। कुछ अध्यापक इस देशमें इतना काम करते हैं जितना कि जर्मन अध्यापक, जोकि व्याख्यान व उपदेश देनेकी अपेक्षा लेखोंके लिये भी प्रसिद्ध होते हैं। मैं कहता हूँ और मुझे पूर्ण आशा है कि यदि वैज्ञानिक सम्बन्धी खोज

करने की मनुष्य युक्ति करे तो उसे समय मिल सकता है।

यहां फिर हमारे देश के मध्यमताका श्राप। हमारे कालेज व स्कूल कदाचितही प्रसिद्ध व श्रेष्ठ पुरुषोंको बुलाते हैं। मैंने एक प्रसिद्ध कालेजके योग्य पुरुषसे सुना कि "कोई अध्यापक अनुसंन्धान (Reoearch) के काममें न लगे क्योंकि इससे समय नष्ट होता है" पर तुरन्तही यह सुन कर अत्यन्त हर्ष हुआ कि कई पुरुष उसके विषय पर उससे सहमत नहीं थे।

यह कहना सत्य है कि शिक्षा अत्यन्तही आवश्यक वस्तु है। सफल अध्यापक सम्मान करने योग्य है पर साथही साथ यदि वह अपने शिष्योंको उचित राह पर नहीं लाता है तो दूषितभी है। इसलिये हमें विश्व-विद्यालय व कालेजों पर दृष्टि डालकर देखने दो कि किसने क्या-क्या काम किये।

एक व्यक्ति जिसे हम रस्किनका शिष्य कहेंगे कहता था कि जब वह इस देशमें था उस समय कई नामोंसे पुकारा जाता था जैसे कप्तान, कर्नल व अध्यापक यह वार्तालाप ठीक हो या न हों लेकिन हम अपने देशकी रीति जानते हैं कि वे सामान्य सिद्धान्तों पर किसीसे भी वाद-विवाद नहीं करते। सब मनुष्य बराबर पैदा हुये हैं और कुछ मनुष्योंको कर्नल, कप्तान व अध्यापककी पदवी मिली हैं। तर्क न्याय पूर्ण है और यही युक्ति हमारे देशके विश्वविद्यालय व कालेजों को लगती हैं। मैंने १८८० के विद्या-विभागके कमिश्नरकी रिपोर्ट पढ़ी है। जो कालेज व विश्वविद्यालयोंके नामसे प्रसिद्ध हैं। मुझे यह देखकर आश्चर्य होता है कि यह देश प्रथम-श्रेणीकी इतनी संस्थाओं का बोझ उठा रहा है। मध्यमता का श्राप उन लोगों पर होना चाहिये जोकि इन संस्थाओंमें सम्मिलित हैं। उन्हें गरुड़के समूहकी अपेक्षा मच्छरोंका झुण्ड कहना चाहिये। आगे चलकर यह ज्ञान होता है कि उसमेंसे एक तिहाई विश्वविद्यालय कहलानेकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। एक संस्था जिसमें दो अध्यापक व १८ लड़के थे, व दूसरी जिसमें १२ लड़के व तीन अध्यापक थे विश्वविद्यालय कहलाती थीं। इस देशमें ऐसे उदाहरणोंकी कमी नहीं है। ऐसी संस्थायें व शालायें बहुत अधिक होंगी जोकि विश्व-विद्यालय कहलाती हैं। इन संस्थाओंकी स्थितिका पूर्ण-रूपसे विचार करना अत्यन्त कठिन कार्य है। इसमें किसे भ्रम होगा कि वह संस्था जिसमें ८०० लड़के व ७० विभाग (faculty) है उस संस्थासे जिसमें १० या २० लड़के हैं और २ या ३ विभाग (faculty) है, उच्च श्रेणीकी होगी। परन्तु यह अनुमान ठीक भी नहीं हो सकता है क्योंकि मुझे मालूम हुआ कि एक संस्था जिसमें ५०० से अधिक लड़के थे एक हाईस्कूलकी श्रेणीका था। इनकी गणना दोष युक्त है और यदि मैं इस विषयपर कुछ विस्तारमें कहूँ तो मेरा भाषण उत्साह रहित हो जायगा। मैं नीचे ३३० संस्थाओंका ब्योरा देता हूँ जोकि विश्वविद्यालय व कालेज कहलाती थीं।

२१८ संस्थाओंमें १ से लेकर १०० लड़के।
८८ संस्थाओं में १०० से लेकर २०० लड़के।
१२ संस्थाओं में २०० से लेकर ३०० तक

६ संस्थाओंमें ३०० से लेकर ५०० तक तथा ६ संस्थाओं में ५०० से अधिक लड़के थे। और ३२२ कालेज व विश्वविद्यालयों में

२०६ में शून्यसे लेकर १० विभाग (faculty)
६६ में १० से लेकर २० विभाग (faculty)
१७ में २० से अधिक विभाग (faculty) थे

यह सब संस्थाएँ आजकलकी विद्याकी स्थितिको बतलाती हैं। संस्थाओंकी स्थितिका का पता पूँजीसे लगता है। इस पूँजीमें मैंने ज़मीनकी व मकानोंकी कीमत सम्मिलित नहीं की है क्योंकि इससे संस्थाके भविष्य

या वर्तमान पर कोई प्रभाव नहीं क्योंकि परिश्रमी पुरुष भवनमेंभी उतनाही काम कर सकता है जितना कि एक झोपड़ीमें।

२३४ संस्थाओंमें ५००,००० डालरसे नीचेका व्यय

८ संस्थाओंमें ५००,००० से १००००००
डालरका

तथा ८ संस्थाओंमें १०००००० डालरसे ऊपरका व्यय

इस बातका उत्तर दायित्व उच्च शिक्षापरही है। इसके सिवाय कोई कारण नहीं है। एक व्यक्तिके पढ़ानेमें उससे तिगुना या चौगुना व्यय होता है जितना कि वह संस्थाको देता है। हर एक कालेज विश्व-विद्यालयको यह जान लेना चाहिये कि व्यय उससे अधिकही होगा जितनी कि आमदनी होगी। ऊपर लिखे हुये अंकोंसे पता चलता है कि १६ कालेज व विश्व-विद्यालयोंमें ५०००००० डालरसे अधिकका व्यय है और ८ कालेजोंमें १०००००० डालरसे अधिकका व्यय है। एक ऐसी संस्थाको जिसमें १०००००० डालरसे कम है, विश्व-विद्यालय कहना अपमान जनक है। सौसे ऊपर हमारे देशकी संस्थाओंने विश्व-विद्यालय कहलाकर इस 'विश्व-विद्यालय' शब्दका अपमान किया है। अच्छी संस्थाओंको जिन्हें द्रव्यकी आवश्यकता है, द्रव्य देनेकी व अध्यापकों की वृत्ति बढ़ानेका परिश्रम करना चाहिये।

हमें उस समाजको क्या कहना चाहिये जिसने संस्था का व्यय जिसमें १८ लड़के व तीन अध्यापक थे २७००० डालर का व दूसरी संस्था का व्यय जिसमें १२ लड़के व दो अध्यापक थे २०००० डालर बतलाया। ऐसी संस्थाएं बहुत हैं जिनमें १४ या १५ लड़के और २ या तीन अध्यापक हैं और इसी तरह व्यय होता है।

यह बात प्रजातंत्रीय देशहीमें पायी जाती है, जहाँके पुरुष घमंडी होते हैं। यह उस देशमें थोड़े ही काल तक पायी जाती है क्योंकि विद्वान पुरुष शीघ्रही मालूम कर लेते हैं कि किस चीजको बुरा कहना व अच्छा कहना चाहिये। तबभी सत्यता हर एक राष्ट्रोंके नवयुवकोंको सिखलानी चाहिये। यह कहा जा सकता हैं कि ये सब संस्थाएं विद्या-क्षेत्रमें अच्छा कार्य कर रही हैं। इन संस्थाओंमें कई ऐसे नवयुवकोंको पढ़ाया जाता है जोकि विश्वविद्यालयोंमें जानेके लिये बिलकुलही असमर्थ हैं। मुझे शिक्षाके विरुद्ध कोई भ्रम नहीं है क्योंकि यह मेरे विषयके बाहर है। परन्तु मैं नवयुवकोंके विचारोंके निमित्त अनुरोध करूँगा। उन्हें यह ज्ञान होना चाहिये कि वे स्कूल जा रहे हैं न कि कालेज। उन्हें मालूम होना चाहिये कि स्कूल से कालेज व कालेजसे विश्वविद्यालयका पद ऊंचा है। उन्हें मालूम होना चाहिये कि वे केवल अशिक्षितही हैं और संसारमें ऐसे पुरुषभी हैं जिनके सामने वे तुच्छ वस्तु हैं।

छोटी छोटी संस्थाओंका उच्च श्रेणीमें होना सम्भव हैं परन्तु इसमें किसको संदेह होगा कि दो तिहाई से अधिक संस्थाएं इस नामके योग्य नहीं हैं। इन सब संस्थाओं में अध्यापक हैं पर हैं नीची श्रेणी के। नीची श्रेणी के अध्यापक की स्थिति भी प्रशंसनीय है पर तबभी उन्हें झूठी उपाधि देकर संमानित क्यों किया जाय? उपाधियों की बाहुलयता और उनका सुगमता से प्राप्त होना। एक व्यक्ति जो कि ज्ञानवान शक्तिमान बुद्धिमान है व वहीं पदवी और लाभ प्राप्त करता है जोकि एक साधारण अल्प बुद्धि पुरुष अध्यापकका कार्य करता है—इसलिये नहीं कि वह इसके योग्य है वरन् इसलिये कि वह दूसरोंसे व्यापारिक धंधोंमें बराबरी नहीं कर सकता। तब मैं कहूँगा कि ज्ञान-वान पुरुषके अध्यापक न बननेका एक कारण यहभी है।

जबकि योग्यता व कार्य दक्षता दोनोंही की आवश्यकता है और अध्यापकसे यहभी आशाकी

जाती है कि वह अपनेविषयमें उन्नति करे और जबकि वह इन्हीं कारणोंसे नियत किया जाता है तब इस पदार्थके लिये प्रयत्न करना उचित होगा और उस सफल-प्रति पत्नीकी यथा योग्य प्रशंसाकी जायेगी। वह वीरभाव जिसने फेरेडे को प्रकृतिके अध्ययनमें आजीवन लगा दिया था कदाचित् वही भाव कुछ पुरुषोंको वैज्ञानिक-क्षेत्रमें जीवन समर्पण करनेके लिये उत्साहित करे। यदि हम वैज्ञानिक-क्षेत्रमें योग्य पुरुष पैदा करना चाहते हैं तो उनके लिये उचित स्थान रखना चाहिये।

जैनी लिंड (Jainy Lind) अपनी सुवाणीमें इस भावका वितरण अपने काममें कर सकती थी परन्तु उससे यह आशा कबकी जाती थी कि वह संसारका भ्रमण कर अपने गीत व्यर्थही अलापेगी। वह यदि इसके लिये इच्छाभी करती तोभी नहीं कर सकती थी। इसलिये हर एक वैज्ञानिकको चाहे वह कैसीही प्रकृतिका मनुष्य हो, उसे यंत्र, पुस्तकालय और उचित वेतन—इसके पूर्व कि वह अपनी बुद्धिका विकास करे—आवश्यक है। हर एक विभागकी उन्नतिके लिये यह वस्तुएं आवश्यक हैं। इस देशमें कई पुरुष ऐसेभी हैं जिन्हें उचित वेतन मिलता है। वे धनाढय कालेजमें हैं और इतना होते हुयेभी उन्होंने किसी विषय पर उन्नति नहीं की। इस देशमें ऐसे पुरुषोंकी संख्या अधिक है जिन्हें उचित वेतन मिलता है; कालेजमें अध्यापक हैं और विज्ञान के लिये कुछभी नहीं कर रहें हैं वरन् उसे व्यापारिक व्यवसायमें लगा कर अपनी बढ़ी हुई आय की वृद्धि कर रहें हैं। सब कार्य अपने अपने स्थानों पर ही अच्छे लगते हैं। अध्यापक का काम विज्ञानकी उन्नति करना है और संसारके सामने विज्ञानके प्रति सच्चे व शुद्ध अनुराग का उदाहरण देना है, जिससे शिष्योंको विदित हो जाय कि जीवनमें और भी कोई वस्तु उच्च व सभ्य है। धनवान् पुरुष प्रतिष्ठित अवश्य होते हैं लेकिन वेभी मंदिरोंमें व्यापार करनेके हेतु डाँट दिये जा सकते हैं।

यह मनुष्य जीव ही है जिसमें किसी भी प्रकारकी शक्ति पैदा हो सकती है और वह उसे शिष्य को प्रदान कर सकता है। वह संसार-क्षेत्रमें प्रवेश करता है और किसी पद को प्राप्त करता है। उसके विचार उन आदर्शोंसे प्रभावित होते हैं जिन्हें उसने अपने अभ्यास-कालमें ग्रहण किया था। यदि उनके अध्यापक अपने विचारोंमें, व्यवसायमें उत्तम हैं जिन्होंने किसी भी विषय की उन्नति करना श्रेष्ठ समझा है और जो बुद्धि व ज्ञानकेलिये प्रसिद्ध हैं, तब उनके शिष्य भी उसी प्रकार के विचारों के होते हैं और आदर्श बनने का उद्यम करते हैं परन्तु एक अध्यापकसे जोकि शिष्यसे कुछ ही अधिक बुद्धि रखता है और कभी कभी तो शिष्य भी तुच्छ दृष्टि से अध्यापक की ओर देख लेता है तब कौन कहेगा कि शिष्यके विचार उत्तम होंगे? वह सोचता है कि मैं कुछ ही अधिक परिश्रमसे एक ऐसे पुरुषको जिसे विश्वविद्यालयने सर्वोच्चसम्मान प्रदान किया है नीचा दिखला सकता हूँ। वह सोचता है कि मैं विद्वान हूँ जिससे उसकी काम करने की रुचि हटजाती है।

विश्वविद्यालयोंमें केवल विद्वान् पुरुषोंका ही होना आवश्यक नहीं है वरन् उसमें कई अध्यापकों व सहकारी अध्यापकोंका होना अत्यन्त आवश्यक है जो बड़े बड़े कार्यों में शिष्योंको उत्साहित करें।

पुराने समयमें भौतिक व रसायन के प्रधान प्रधान प्रयोग बहुत ही सरल यंत्रों द्वारा किये जाते थे। इसी लिये हम बहुत कम पाते हैं कि वालस्टन तथा फेरेडे को कभी भी किसी यंत्रकी आवश्यकता पड़ी। सरल यंत्रों द्वारा आजकल भी बहुतसा कार्य हो सकता है। वही पुरुष यंत्रोंकी उस कार्यमें प्रतीक्षा करेगा जिस कार्यमें यंत्र अनिवार्य हैं। परन्तु सच यह है कि मनुष्यके हाथमें यंत्र-शालाके सिवाय उचित धन की आवश्यकता है। ज्योतिष-शास्त्र जोकि विज्ञानकी एक शाखा है इस दशाको प्राप्त हो गई है कि उसमें कोई पुरुषभी बिना वेध ग्रह-शाला व सह-

कारियों की उचित संख्याके कुछभी उन्नति नहीं कर सकता। इस छोटेसे विषय पर कई मतभेद हैं। हमारे देशमें कई उत्तमोत्तम वेधशालाऐं हैं परन्तु उनमें बहुतही कम उन्नति करने वाले पुरुष हैं क्योंकि वहाँ कार्य करनेके लिये कोई विधान नहीं हैं। केवल ६ दूर दर्शीय-यंत्र भिन्न भिन्न पुरुषोंको देनेसे ही ज्योतिष शास्त्रकी बहुत कुछ उन्नति होसकती है। इस देशकी आवश्यकता को आप लोग नीचे लिखे हुये वाक्य से समझ जावेगें "एक विषयी बूढ़ा केनेडा का रहने वाला अरुना हंटिंगटन मरते समय २००००० डालर छोड़ गया था जोकि जनताके स्कूलोंमें बाँटा गया। हर एक ज़िलेमें १० डालर दिये गये जिससे विद्याकी उन्नति कुछभी न होसकी"

क्या यह संभव है कि चार सौ कालेज व विश्व-विद्यालयोंमें से दो चार एक साथ मिलकर एक बड़ी संस्था स्थापित करें? इन कालेजोंमें कोईभी सच्चे नामसे कहलानेके योग्य नहीं हैं। मुझे यह पूर्ण आशा है कि हर एक संस्था जोकि आजकल जाग्रत अवस्थामें नहीं है एक न एक दिन प्रशंसनीय होगी। कई संस्थाऐं धार्मिक संस्थाऐं हैं और बड़ी होनेकी अभिलाषा रखती हैं।

जनताकी मति बदलना क्या संभव है? कोईभी कालेज जिसमें १०००००० डालरसे कम हैं व विश्व विद्यालय जिसमें इससे तिगुना व चौगुने से कम होगा स्थापित न किया जाना चाहिये। शिक्षा-विभागके कमिश्नरकी रिपोर्टसे मालूम होता है कि यह नियम होने वाला है। बड़ी संस्थाओंकी ओर यह प्रवृत्ति बढ़ रही है। छोटी २ संस्थाओंको जोकि पश्चिमकी ओर हैं डरना चाहिये और पूर्वतो इसके लिये कटिबद्ध ही हैं।

कुल धन १८८० ई० में कुल कालेज व विश्व-विद्यालयका मिलाकर लगभग ४०,०००,००० डालर का था और ४३०००००० भिन्न २ विभागों में था। यह रकम एक बड़े विश्व-विद्यालयके लिये तथा ३० कालेजोंके लिये उचित है। परन्तु यह होना असम्भव है। गवर्नमेन्टके प्रस्तावकी तो कोई बातही नहीं क्योंकि राजनैतिक चालाकी आदर्श संस्था के आस-पास आ ही नहीं सकती।

सन १८८० ई० में स्कूल व कालेजोंमें जो दान दिया गया था वह ५५००००० डालरके लगभग था जिसमें एक दान १२५०८० डालरका था। तबभी यह रकम बहुतही कम थी। इससे यहभी विदित होता है कि आय एक वर्षमें ५० लाख डालरके लगभग थी जिसमेंसे आधेके लगभग स्कूल व कालेजों को देदी गई थी। ऊपरकी आयसे ज्ञात होता है कि अमेरिकाके पुरुष दानी हैं और इसलिये वे देशके आभारी हैं। हम लोगोंको इसरीतिसे रहना चाहिये जिससे मालूम हो कि हम लोगोंको धनकी आवश्यकता है इसलिये नहीं कि हम भिक्षा माँगते हैं वरन् इसलिये कि हमने एक ऐसी वस्तु निकाली है जिसने संसारको उन्नतिके शिखर पर पहुँचा दिया है और पहुँचा देगी। हम लोगोंको ऐसा जीवन व्यतीत करना चाहिये जिससे ऐसे मनुष्योंका प्रभाव जिन्होंने अपना व्यवसाय अवनति दशाको पहुँचा दिया है जाता रहे। हममेंसे ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है जोकि वैज्ञानिक-क्षेत्रमें जीवन व्यतीत कर सके। हर एक व्यक्तिको हर तरहकी कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता है और मैं यह नहीं समझता कि इस स्थितिसे पुरुषकी प्रकृति बदल सकती है। यदि किसी व्यक्तिकी अनुसंधान करनेकी स्वाभाविक प्रकृति है तब वह किसी न किसी रूपमें दृष्टि-गोचर होजायेगी चाहे स्थिति कैसीभी हो।

अमेरिकाके पुरुषोंने छोटी-छोटी वस्तुओं पर अनुसंधान किया है और यही सब अनुसंधान एकत्र होकर मनुष्यको काम करनेके लिये उत्साहित करते हैं। एक तार-वाला जिसे विद्युतका बहुतही कम ज्ञान है कभी-कभी यंत्रोंको सुधारनेका उद्योग करता है और वह इसी छोटेसे क्षेत्रमें कार्य करता है। परन्तु जैसे-जैसे उसकी बुद्धि बढ़ती है और अधिक चीज़ोंसे परि-

चित होता है व विद्युत् चुम्बकीय सिद्धान्त (Electromagnetic theory) का अभ्यास करता वैसे-वैसे उसका ज्ञान रूपी अंधकार दूर होता है और वही यंत्र उसके लिये खिलौना होजाता है और उसे नई वस्तुके अनुसंधानकी इच्छा होती है।

जब तक विज्ञान पर पूर्ण अधिकार न होजाय तबतक उसमें खोज (Research) करना निष्फल है। जब तक उस पुरुषके हृदयमें प्रबल इच्छा नहीं है तबतक वह उसके किसीभी विभाग पर पूर्ण अधिकार नहीं पासकता। आजकलके विज्ञानके विचारों पर ध्यान देनेसे, व समाचार पत्रोंके पढ़नेसे हर एक व्यक्तिके मनमें कार्य करनेकी अभिलाषा होती है। मैंने ऐसे पुरुषोंसे वाद-विवाद किया जो बोलनेमें चतुर थे परन्तु वैज्ञानिक क्षेत्रमें शून्य। मुझे ऐसे मनुष्यों पर जो कहते हैं कि मुझे समय नहीं मिला, व हम कर लेते पर समय नहीं मिला या करलेंगे अगर समय आगया, विश्वास नहीं है। ऐसे मनुष्य धूर्त होते हैं। यदि किसी आदमीकी प्रकृति कार्य करनेकी है तो वह उसके लिये समय निकाल सकता है।

विज्ञानमें खोज करने वाले अध्यापकही होते हैं। उन्हें दोनों कार्य करना चाहिये यानी-अध्यापकका व खोज का। इस विषय पर बहुत वाद-विवाद हुआ है कि दोनों कार्य एकही व्यक्ति करें या दो। बहुतोंका मत है कि पढ़ानेका कार्य खोज करनेकी अपेक्षा अधिक प्रशंसनीय है। मेराभी यही मत है और मैं हर एक दिन के व्याख्यान (Lecture) को कदापि नहीं छोड़ूँगा। साथही साथ ध्यान रखना चाहिये कि कार्य अधिक न हो। कई पुरुषोंमें सोचनेकी शक्ति काम करनेकी शक्तिकी अपेक्षा अधिक होती है। जीवन काल थोड़ा है और बुढ़ापा शीघ्रही आजाता है। कार्यजो हमकर सकते हैं बहुत कम है। वह दुकान व कारखाना कैसा होगा जिसमें एक-ही व्यक्ति दो-हाथों से काम करता है। यह स्वाभाविक बात है जिसे कोई नहीं बदलसकता कि 'सब पुरुष बराबर नहीं हैं' किसीमें बुद्धि है व किसी में बल। संसारकी इसविधिको कोई नहीं पलट सकता।

मैंने कोई ऐसी संस्था नहीं देखी जिसमें सहकारी अध्यापक खोज (Research) केलिए दिये जाते हों। भौतिक-विभागमें कई ऐसे प्रयोग हैं जिनमें यथार्थ परिमाणकी आवश्यकता है और बिना सहकारियों के उत्तमसे उत्तम यंत्रों द्वारा भी नहीं होसकता। ऐसे प्रयोग रैग्नाल्ट प्रयोग (Ragnaults experiments) हैं जोकि वायु व भापसे सम्बन्ध रखते हैं और जो ४०वर्ष पहले फ्रेञ्च-गवर्नमेंट की सहायता द्वारा किये गये थे। परन्तुवे आजकल बहुत ही उपयुक्त हैं और प्रमाणिक (Standard) समझे जाते हैं।

बिना वेधशालाके ज्योतिष-शास्त्रने क्या किया? उसीके आधारपर उसने इतनी उन्नति की है। इसमें संशय नहीं कि और कई शाखायें व पूर्ण विज्ञान विभाग ही किसी संस्थाद्वारा किसी दिन उन्नति करेगा। भौतिक विज्ञान भी अध्यापकोंके द्वारा इसी तरह प्रकाशित होगा जैसे कि ज्योतिषशास्त्र हुआ है। यंत्र-शालाओं की प्रतिष्ठा उसके श्रेष्ठ-अध्यापक पर निर्भर है। ऐसे मनुष्य संसारमें कम हैं और मिलना कठिन है।

विद्वान पुरुषोंका मिलना कठिन है तबभी उन्हें सोच-विचार करके ही पद देना चाहिये और पद देने वाले भी ऐसे हों जो हरएक प्रार्थी के कार्यों को भलीभाँति समझ सकें।

ऐसी बड़ी यंत्रशाला जैसी कि मैं ऊपर कह आया हूँ संसार में नहीं है। ज्योतिष-शास्त्र को अबतक दान मिलनेमें कोई कठिनाई नहीं हुई और उसके यंत्र-शालाकी सभी प्रशंसा करते हैं। लेकिन अब वह उस स्थितिको पहुँचगया है जबकि उसे यंत्रोंकी आवश्यकता है। भौतिक-विज्ञान का क्षेत्र इतना बड़ा है कि उसमें कई कार्य बाकी हैं और वह समय

आगया है जबकि एक बड़ी यंत्र शाला की आवश्यकता है। क्या हमारा देश इस विषयमें अग्रसर होगा या दूसरोंके सम्मुख हाथ पसारेगा ?

कई संस्थाओंमें यंत्र शालाएं हैं लेकिन वह सब शिष्यों के ही लिये हैं और उनसे हमें कोई आशा नहीं रखना चाहिये। परन्तु इतना होने पर भी वे उन्नति कर रही हैं और यदि इसी प्रकार कार्य रहा तो हम अपने जीवन के अन्त तक बड़ा भारी परिवर्तन पायेंगे।

मनुष्य जिनसे उसका कार्य रहता है उनके प्रभाव से प्रभावित रहता है। जनताके मत को बदलना कठिन कार्य है और हमें इसमें हरएक समय अग्रसर होना चाहिये। वैज्ञानिकों को सभ्य देशोंमें भ्रमण करना नहीं चाहिये परन्तु जंगलों में अज्ञात स्थानों में भ्रमण करनेके लिये जहाँ कि उन्नतिकी आशा है जाना चाहिये। हम लोगोंको जनता का मत धीरे धीरे अपनी ओर आकार्षित करना चाहिये। वैज्ञानिकों को इस देश को ही नहीं वरन् सारे संसारको उत्साहित करना चाहिये। सब पुरुषोंको एक हो जाना चाहिये और किसी ऐसी वस्तुकी योजना करना चाहिये जिससे संसार लाभ उठावे।

जबकि समाज मध्य श्रेणीके पुरुषोंकी सहायता करता है उनके छोटे छोटे प्रयोगोंकी प्रशंसा करता है तब समाज पर मुझे कुछ संशय है और उसका प्रभाव हानिकारक है। एक युवक ऐसे समाजमें प्रवेश करते ही विचार बदल देता है। उसके लिये पहाड़ एक तुच्छ चीज़ है और पहाड़ी पहाड़ है। उस समाजके लिये एक छोटा-अविष्कार करने वाला पुरुष दूसरे देशोंके वैज्ञानिकोंसे कहीं अधिक माननीय है। वह सन्तुष्ट रहता है और यह नहीं समझता कि वह इस संसारमें तुच्छ वस्तु है।

सब पुरुष बुद्धिमान तो नहीं हो सकते पर वे दूसरोंकी त्रुटियां बतला सकते हैं। हमलोग विज्ञान की उन्नति करें या न करें पर हमारे विचार प्रशंसनीय होने चाहिये। देशकी उन्नति, मनुष्यजाति की उन्नति, व संसारकी उन्नति, नवयुवकों पर ही निर्भर रहती है। हमरा उद्देश्य श्रेष्ठ व प्रशंसनीय होना चाहिये।

बहुधा कहा जाता है कि मनुष्यको अपनी इच्छाओं पर अधिकार है लेकिन यह बात एक निर्जन-स्थानमें रहने वाले ही के लिये सम्भव है। जब वह किसी विषय पर अपना मत प्रगट करता है तो उसके लिये वह उत्तरदायी है। उसे एक छोटी-सी वस्तुको बड़ी कहनेका अधिकार नहीं।

अब मुझे वैज्ञानिक समाज पर ध्यान देना चाहिये। यहां कई समाज हैं जिनका नाम बड़ा है लेकिन यथार्थ में वे उस योग्य नहीं हैं। कई ऐसे विद्यालय भी हैं जो कि विद्याके केन्द्र हैं और ठीक रीतिसे कार्यभी कर रहे हैं। अमेरिकन असोसियेशन (American Association) जिसमें हम लोग उपस्थित हैं कोई वैज्ञानिक-विद्यालय नहीं हैं वरन् ऐसे पुरुषोंका समूह है, जो विज्ञानके प्रति श्रद्धा रखते हैं। वैज्ञानिक राष्ट्रीय संघ (National Academy of Science) श्रेष्ठ व प्रतिष्ठित पुरुषोंका समूह है। वह केवल गवर्नमेन्टको विज्ञान सम्बन्धी कार्योंमें उपदेशके निमित्त बनाया गया है। उसमें कोई भवन व पुस्तकालय नहीं है। उसका अमेरिकाके विज्ञान पर कोई प्रभाव नहीं है लेकिन गवर्नमेन्टके उदार होनेसे उसने कई कार्य अच्छे कर दिये हैं। वह ग्रेटरायल सोसायटी (Geat Royal Society) की या विज्ञान-विद्यालयोंकी जो पेरिस, वर्लिन, वीना, सेन्टपीटर्सवर्ग व म्यूनिच व अन्य कई शहरोंमें है बराबरी नहीं कर सकती। इन सोसाइटियों (समूह) का सदस्य होना श्रेष्ठ समझा जाता है। ये हर एक सदस्यको, बड़े २ वैज्ञानिकों को श्रेष्ठ कार्य बतलाती हैं।

हमारे देशकी विज्ञान-परिषद् (Academy of science) ने इन समाजोंकी कुछ सीमातक बराबरी

की है परन्तु सदस्यों की संख्या परिमित होनेके कारण राष्ट्रीय स्वभाव पर (National Character) प्रभाव नहीं रखती हैं।

हमारा उद्देश्य विज्ञानकी उन्नति करना व आदर्श बनना है और विज्ञान कोई एक देशकी या शहरकी वस्तु नहीं है इसलिये हम लोगोंको समाचार पत्र, दूसरे देशों व समाजोंका विधान, आचार व कार्य पढ़ना, आवश्यक है। ऐसे समाचार पत्रोंका उस संस्थाके पुस्तकालयमें होना आवश्क है जिसमें विज्ञानकी शिक्षा दी जाती है। यदि ये उन्हें पढ़नेके लिये न मिले तो अध्यापकोंको यह मालूम होना कि भूतकालमें क्या आविष्कार हुआ व अब क्या हो रहा है असम्भव है। वह संस्था जो कि विश्व-विद्यालय कहलाती है और जिसमें समाचार पत्र, व भिन्न भिन समाजोंके विज्ञान-क्षेत्रके कार्य नहीं हैं, उन्नति करनेमें बाधा डालती है।

हम इस देशको स्वतंत्र देश कहते हैं तब भी शिक्षा पर कर है। इस देशमें न तो कोई ऐसी पुस्तक छपी है न छपने वाली है। इतना होने पर भी हरएक अध्यापक को अपने वेतनमें से कुछ भाग पुस्तक लेनेमें गवर्नमेन्टको देना पड़ता है। इससे विज्ञानकी उन्नतिमें बाधा पहुँचती है और जो कुछ भी एक व्यक्ति कर सकने के योग्य होता है नहीं करने पाता। शुद्ध विज्ञान (Pure science) की गिरी दशाका कारण हमारे देशके नवयुवक ही हैं कुछ लोगों का मत है कि दूसरे देशोंकी पुस्तकें बिना मूल्यही मिलना चाहिये। इस विषय पर हमारे वैज्ञानिक समाजों व समूहों को गंभीर होजाना चाहिये।

अंतमें मैं यह कहता हूँ कि इस दशामें हमारे देशको नहीं रहना चाहिये। भौतिक-विज्ञानकी जिसके लिये यह देश प्रसिद्ध है उन्नति करना चाहिये और सब देशोंकी आंखोंमें माननीय होना चाहिये। यह विषय कठिन अवश्य है तवभी हम इसदेश की उस गतिको जानते हैं जिससे यह इस उन्नतिकी दशाको प्राप्त हुआ है। अब इस देशमें यंत्रशालाएँ बन रही हैं और उच्च अध्यापकों की आवश्यकता बढ़रही है। हमें पूर्ण आशा है कि हमारा देश अवश्य ही उन्नति करेगा।

यदि हमारा प्रण यही है तो हमारा उद्देश्य भी योग्य होना चाहिये। संसारमें कोईभी कार्य बिना परिश्रमके व बिना शारीरिक व मानसिक शक्तिके सफल नहीं हो सकता। किसी भी व्यक्तिको 'घोड़ों की दौड़' में अपने घोड़ेकी जीतनेकी आशा नहीं होती है जब तक कि वह सिखाया न गया हो, चाहे वह कितनाही सुशील हो। हम लोगोंका विषय दौड़से कहीं बढ़कर है जिसे पूर्व साधनाके बिना प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है। श्रेष्ठ पदक सबसे अधिक परिश्रमी व बुद्धिमानके लिये रक्षित है। यंत्र मिल सकते हैं बुद्धि जन्मसेही होसकती है, परन्तु मानसिक-शक्ति, गणित व विज्ञानका ज्ञान, प्रयोग करनेकी योग्यता, परिश्रम करनेसेही आती है। हम लोग बुद्धि-ज्ञान व शक्ति एकही व्यक्तिमें तो चाहते हैं पर इसके सिवाय हम वह भाव व उत्साहभी चाहते है जिसके आधारसे मनुष्य सब कठिनाइयोंका सामना करते हुये प्रकृतिके विषय पर परिश्रम करता रहे। ऐसे व्यक्तियोंको संसार क्षेत्रमें विजयी और अग्रसर होने दो।

सारा संसार हमारे सन्मुख है। परिश्रमी पुरुषोंने बहुत ही थोड़े ज्ञान रूपी मोती दिये हैं और अनन्त गहरा समुद्र ज्ञान रूप मोतियों व हीरोंसे भरा हमारे सामने हैं। संसारिक विषयोंका समझना कठिन है और हमें केवल एक परिमाणुकी गूढताही छल सकती है। जैसे-जैसे हम उन्नति करते हैं आविष्कार-क्षेत्र उतना-उतनाही बढ़ता है और हम आश्चर्य चकित होजाते हैं। क्या हम इस कार्यक्षेत्रमें उन्नति करेंगे? क्या हमारा देश इस

कार्यमें अग्र भाग लेगा या दूसरे देशों परही निर्भर रहेगा ?

[नोट—अमेरिकाके विज्ञानकी उन्नतिके लिये जो व्याख्यान १५ अगस्त १८८३ में मिनिया पोलिस-मिनोसोटामें दिया था उसका अनुवाद]।

अणुओंकी खोज

[ले०—श्री दत्तात्रय श्रीधर जोग एम० एस-सी०]
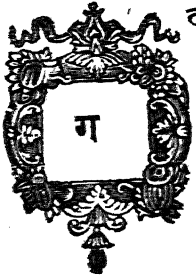
गत लेखमें सन् १८७५ तकके परमाणुवादके इतिहासका अवलोकन किया गया था। उसके बाद आज तक इन ५०-६० वर्षोंमें परमाणु-वादमें कैसा-कैसा परिवर्त्तन हुआ और आज उसका क्या स्वरूप है इन बातोंका इसके आगेके लेखोंमें विचार करनेकी इच्छा है। सन् १८६० के पहिले तो यह बात बिलकुलही निश्चित मानी गयी थी की परमाणुही पदार्थका सबसे छोटेसे छोटा विभाग होसकता है। इससे सूक्ष्म विभाग करना किसी प्रकारसे सम्भव नहीं है अतः परमाणु बिलकुल अभेद्य है। इस सम्बन्धमें वैज्ञानिकोंका मत निश्चित हुआ था परन्तु सन् १८५९ में प्लुकर (Plucker) ने और सन् १८६९-१८७० में जो प्रयोग इंग्लंडमें क्रूक्स (Crookes) और हिटार्फ (Hittorf) ने किये वे इस सम्बन्धमें वैज्ञानिकोंके विश्वास कम करनेके कारण हुए और उसके बाद २५-३० वर्ष तक उसी विषय पर बहुतसे आश्चर्य-कारक तथा महत्व पूर्ण प्रयोग हुए जिनसे तो यह विश्वास पूराही उड़ गया। इन सब प्रयोगोंके सम्बन्धमें विस्तार पूर्वक कुछ कहना इन लेखोंमें सम्भव नहीं है। उसके लिये तो एक बड़ी स्वतंत्र पुस्तकही आवश्यक होगी। अंग्रेजीमें और सब पाश्चात्य भाषाओंमें इसी विषय पर बड़े भारी-भारी ग्रंथ लिखे गये हैं। इन लेखोंमें तो बहुतही आवश्यक बातोंका थोड़ा-थोड़ा निर्देश करके इस परमाणु-वादमें ५०-६० वर्षोंके पहिलेसे आज तक क्या और कैसा परिवर्तन होता गया है यह देखना है। परन्तु इस विषयको आरंभ करनेके पहिले इसी सम्बन्धमें कुछ उपयोगी एक दो बातोंका वर्णन कर देना आवश्यक है।

परमाणुओंके सम्बन्धमें पहिले कहा गया था कि ये पदार्थ अत्यन्तही सूक्ष्म विभाग हैं। परन्तु उनकी सूक्ष्मताकी कुछ कल्पना तब नहीं दी गयी थी। उस बातका यहाँ विचार किया जायगा। परमाणु अत्यन्त सूक्ष्म है तो कितना सूक्ष्म है। उसको आंखोंसे देखनेकी आशा तो बिलकुलही न थी परन्तु बड़े भारी-भारी सूक्ष्म दर्शक यंत्रोंसे (microscopes) देखना सम्भव है या नहीं इत्यादि प्रश्न पाठकोंके मनमें अवश्यही उपस्थित होरहे होंगे। यह तो सत्यही है कि परमाणुओंको केवल आंखोंसे देखना तो अशक्यही है। हम आंखोंसे जिन वस्तुओंको देख सकते हैं उनके और विभाग करना कठिन नहीं हैं। परमाणु तो इनसे बहुतही सूक्ष्म अवश्य है इसलिये उसको केवल आँखोंसे देखना सम्भव नहीं। यह तो क्या परन्तु तात्विक विचारसेभी यह बात सिद्ध होगयी है कि भारीसे भारी सूक्ष्म दर्शक यंत्र जो आज तक बने हैं किंवा आगे किसी कालमें बननेकी आशा है उनसेभी परमाणुको देखनेकी संभावना नहीं है। इसके कारणका विचार इस थोड़ी जगहमें कर नहीं सकते परन्तु इतनाही कहना उचित है कि जिस प्रकाशकी सहायतासे आदमी देख सकता है उसकी किरणोंकी लहर-लंबाईसे परमाणु लगभग १००० अंश छोटा है। इसलिये यह बात असंभव है। अब यह बात निश्चयसे मालूम हुई है कि परमाणुका आकार (Diameter) अनुमानतः १×१०^{-८} श०म० है। यह तो ठीक है

परन्तु इससे उसके आकारका अंदाज होना बड़ाही कठिन है। एक तुलनात्मक परिमाणसे इसका कुछ अधिक अनुमान होनेकी संभावना है। पृथ्वी और गेंदके आकारोंमें जो निष्पत्ति है वही परमाणु और एक बूँद पानी के आकारमें है। इस तुलनासेभी कुछभी ठीक कल्पना नहीं होसकती है। परन्तु इस बातका कोई अन्य उपाय नहीं है। इतने परही संतोष कर लेना पड़ेगा। प्लूकर (Plucker) ने १८५८ में और सन् १८६९ में हिटार्फ Hittorf) और क्रूक्स (Crooks) वैज्ञानिकोंने स्वतंत्र प्रयोग किये। इन प्रयोगोंसे प्रथमही यह मालूम हुआ कि पदार्थकी परमाणुसेभी अधिक सूक्ष्म अवस्था होसकती है। पर २०, २५ वर्षो तक तो परमाणुको बहुत लोग अभेद्यही मानते रहे। १८९५ में पेरां (Perrin) और टामसनके (Thomson) प्रयोगोंसे यह सिद्ध हुआ कि परमाणुसेभी सूक्ष्म कण होते हैं। प्लूकर व हिटार्फके और क्रूक्सके प्रयोगोंसे ऋणोद (कैथोड) किरणोंकी खोज होनेसे और उनसे परमाणुकी अभेद्यताके सम्बन्धमें प्रथम शंका उपस्थित होनेसे पेरां और टामसनके प्रयोगोंमें परमाणुसे अधिक सूक्ष्म कणोंका अस्तित्व निश्चित सिद्ध होने तक इन २५—३० वर्षोंके अवसरमें ऋणोद किरणोंके गुणोंका ज्ञान प्राप्त कर लेनेके विषयमें बहुत से वैज्ञानिक लगे हुए थे। उन्होंने बड़ी चतुरतासे अनेक प्रयोग करकेइन किरणों के बहुतसे गुणधर्म मालुम कर लिये। इन्हीं प्रयोगोंसे धीरे धीरे अंतमें १८९५ में टामसनके प्रयोगके बाद यह बात निश्चयपूर्वक सिद्ध हुई कि परमाणुही सबसे सूक्ष्म नहीं है, उससेभी बहुत सूक्ष्मतर कणहो सकते हैं।

हिटार्फ और क्रूक्सके प्रयोग

इन प्रयोगोंमें यह विशेषता है कि वे बहुतही सीधे हैं परंतु उतनेही मनोरञ्जकभी हैं। किसीभी प्रयोग शालामें मामूली उपकरणोंसे ये प्रयोग किये जासकते हैं। चित्र १ में एक विशेष प्रकारकी बनी हुई कांच की नली दिखाई गई है। यह दोनों तरफसे बंद है। ब, ब ये दो बिजलोद (electrode) हैं, म यह एक दूसरी छोटीसी नली बड़ी नलीके मध्यभागमे जुड़ी हुई है। इसको पंपके साथ जोड़कर पंप
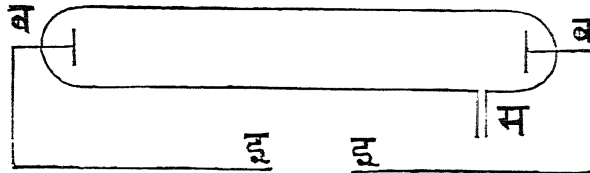
चलानेसे बड़ी नलीकी हवा निकाली जा सकती है। ब और ब बिजलोद आवेश वेठन (Induction coil) के सिरोंके साथ जोड़ दिये जाते हैं। पंप चलानेके पूर्व यदि आवेश वेठन चला दिया जाय तो नली के अंदर ब और ब में विद्युत प्रवाह नहीं होगा। हवामेंसे इतने अंतर तक विद्युत् प्रवाह होना अत्यंतही कठिन है। परंतु आवेश वेठनको चलाकर अब पंप चलाया जाय तो नलीकी हवा ज्यों ज्यों कम होती जायगी वैसेही बड़ी ही आश्चर्य जनक और मजेदार बातें होती हुई दिखाई पड़ेंगी। प्रथमतो थोड़ी देर तक कुछभी भेद नहीं मालूम होगा। नलीमें विद्युत् प्रवाह नहीं होगा। परंतु उसकी हवा कम होते होते एक ऐसी अवस्था आजायगी कि जब थोड़ा थोड़ा विद्युत् प्रवाह होना शुरू होगा। इस प्रवाहसे नलीके अंदरकी हवा चमकने लगेगी। जिस मार्गसे यह प्रवाह चलता है वह मार्गभी प्रकाशहीन होने लगेगा। प्रथम अवस्था में यह मार्ग एक बहुत पतली और वक्र रेखाके समान होगा। हवा और कम होनेपर एककी जगह दो, तीन,चार इस प्रकार रेखाओंकी संख्या बढ़ती

हुई चली जायगी और वे मोटीभी होती जावेंगी। उन रेखाओंकी संख्या और मोटापन बढते बढते कुछ देरके बाद वह संपूर्ण नली प्रकाशसे भर जायगी। इसके बाद एक बड़ाही विचित्र दृश्य दिखाई देगा। प्रकाशसे पूर्ण भरी हुई नलीमें अब परिवर्तन हो जायगा। नलीमे प्रकाशकी पतली पतली टिकलियाँ दिखाई देंगी। पहिलेतो नलीमें अखंड (continuous) प्रकाश था पर अब कुछ हिस्सोंमें प्रकाश अधिक होगा (जो टिकलियोंसा दीखता है) और इन टिकलिओंके बीचमें बहुतही कम प्रकाश दिखाई देगा। प्रथम तो ये टिकलियाँ बहुत पतली होती हैं परंतु वे धीरे-धीरे मोटी होती जाती हैं और उनका अंतरभी बढ़ता जाता है। ये टिकलियाँ स्थिर नहीं रहती हैं। वे एक बिजलोदकी ओर चलती हुई मालूम देती हैं। इस अवस्थामें ऋणोदके पास कुछ अंतर तक टिकलियाँ नहीं होती हैं। वहाँ साधारणतः अंधेराही रहता है। इसको कूक्स श्याम पुट (dark space) कहा जाता है। इन टिकलियोंके बाद एक और ऐसी बहुत कम प्रकाश की जगह होती है। उसको फैरेडे श्याम पुट कहा जाता है, (चित्र २ देखिये) कूक्सकी चौड़ाई नलीकी शून्यावस्थापर अवलंबित होती है। नलीमें जितना अधिक शून्य होता है उतनाही यह कूक्स श्याम पुट बढ़ती जाती है। टिकलियोंकी मोटाई और उनका अंतर भी साथही बढ़ता जाता है। इस अवस्थामें नलीके अंदरके प्रकाशका रंगभी बदलने लगता है। पहले जो लालमोतिया रंगका प्रकाश था उसका अब सफेद रंगहो जाता है। नलीको और अधिक शून्य करने पर कूक्स श्याम पुटबढ़तीजाती है और एक अवस्था ऐसी प्राप्त होती है कि जिसमें यह पूरी नलीभर में फैल जाती है। तब नलीके अंदर तो बहुतही थोडा प्रकाश दिखाई देता है। परन्तु नलीकी दीवालपर एक हरी पीलीसी चमक दीखने लगती है। यह चमक थोडी थोडी बढ़ती जाती है। ये ही रौञ्जन किरणें (X-rays) कही जाती हैं, और ये ऋणोदसे निकलती हुई एक प्रकारकी प्रकाश किरणोंके नलीकी दीवालपर गिरनेके कारण उत्पन्न होती हैं। इस अवस्थामेंसे निकलने वाली इन किरणोंको ही ऋणोद किरण कहा जाता है। इन्हीं ऋणोद किरणोंको प्लूकरने प्रथम १८५९ में और हिटार्फ तथा क्रूकसने १८६९ में प्रयोग द्वारा मालूम किया था। इन्हीं किरणोंका ज्ञान होनेपर भौतिक शास्त्रकी गत ६०-७० बरसोंमें इतनी आश्चर्य जनक प्रगति हुई और पदार्थकी अंतर-रचना जोकि केवल रसायन शास्त्रज्ञोंकाही विषय था पदार्थ विज्ञान शास्त्रज्ञोंका विषय बनकर आज ऐसी दृढ़ता को प्राप्त हुई है कि परमाणुओंकी रचनाके विषयमें पदार्थ विज्ञान शास्त्रज्ञोंका मतही प्रमाणिक माना जाता है इन ऋणोद किरणोंका इतना बड़ा भारी महत्व है। इन किरणोंके अन्वेषणका श्रेय भौतिक शास्त्रज्ञोंकोही है। इन किरणोंकी खोज होनेके बाद उनके गुणोंका ज्ञान प्राप्त करनेका प्रयत्न बड़े-बड़े वैज्ञानिकोंने आरंभ किया। बहुतसे गुणोंका ज्ञान होने परभी एक बातका निश्चय सन् १८९५ तक न होसका कि ये किरण सर्व साधारण प्रकाश किरणोंके समान केवल प्रकाश लहर ही हैं या वे पदार्थकेही अत्यन्त सूक्ष्म कणोंकी बनी हुई हैं। बहुतसे वैज्ञानिक पहिले मतके थे, और बहुतसे दूसरे मतके। १८९५ में पेराँ और टामसनके (J. J. Thomson) बाद इस बातका ठीक निश्चय हो सका, उन्होंने अपने प्रयोगोंसे इन किरणोंका एक नयाही गुण मालूम किया जिससे उनका सच्चा स्वरूप निश्चयसे मालूम होगया। इनके पहिले जो बहुतसे प्रयोग हुए थे उनसे ये बातें मालूम हुई थीं कि :—

१—ऋणोद किरणें ऋणोदसे निकलने पर सरल रेखाओंमें चलती हैं।

२—वे ऋणोदसे लम्ब मार्गमें निकलती हैं और यदि ऋणोदको उचित आकार दिया जाय (अर्थात् वर्तुलाकार या परवलयाकार) तो

उसके पृष्ठसे निकलने वाली ऋणोद किरणें एक विन्दु पर केन्द्रीभूतकी जासकती हैं।

३—उनमें सामर्थ्य रहती है, और उनके मार्गमें कोई वस्तु रखी जाय तो वे उसपर गिरनेमें उस वस्तुको धक्का देकर हटानेका प्रयत्न करती हैं और यदि वे उस वस्तुको हटा न सकें तो उस वस्तु पर गिरनेके कारण उसको इतना गरम कर देती हैं कि वस्तु गरम होकर लाल पड़ जाती है।

४—लोहचुंबक समीप लाने पर ये किरणें झुक जाती हैं। उत्तर ध्रुव पास लानेसे एक तरफ और दक्षिण ध्रुवसे उसके उलटी तरफ झुकती हैं।

५—सन् १८९४ में लेनार्ड नामक वैज्ञानिकने यह देखा कि ये किरण धातुके पतले-पतले चद्दरों-मेंसेभी आर-पार निकल जाती है !

६—ये किरण जब किसी ठोस वस्तु पर गिरते हैं तो वह गरम तो होताही है परन्तु उसमेंसे एक विशेष गुणके किरण निकलते हैं जिनको रौञ्जन किरण कहा जाता है । रौञ्जन (Rontgen) नामक वैज्ञानिकने इन्हें सर्व प्रथम निकाला था। अतः उनके नाम पर इनको रौञ्जन किरण कहा जाता है। देखिये रौञ्जन किरण जोकि आधुनिक विज्ञान अत्यन्तही सहायता देती है और इसी कारण जिनका नाम बहुतसे लोग भली प्रकार जानते हैं उनके अन्वेषणका श्रेय ऋणोद किरणोंकोही है। इनके अन्वेषणका विवरण इतिहासमें स्वर्णाक्षरोंमें लिखने योग्य है।

अभी कहा जा चुका है कि ऋणोद किरणोंके ये सब गुण मालूम होनेपर भी इस बातका निश्चय न हो सका कि ये किरण सूक्ष्म कणोंके बने हुए हैं या साधारण प्रकाशके समान केवल प्रकाश लहर ही हैं। क्योंकि ऊपर लिखे हुए सब गुण प्रकाश लहर और सूक्ष्म कण दोनोंके ही हो सकते हैं । सरल रेखामें चलना, किसी वस्तुपर गिरनेपर उस वस्तुको गरम करना, या उसको धक्का देना इत्यादि गुण सूक्ष्म कणोंके समान प्रकाश लहरमेंभी होते हैं। इसलिये इनसे इस बातका निश्चय नहीं हो सकता था। परन्तु सन् १८९५ में पेरां और उनके बाद जे० जे० टामसनने प्रयोग द्वारा यह बात सिद्धकी कि ऋणोद किरणों पर ऋणात्मक विद्युत् संचार होता है। अब यह तो बिलकुल निश्चित रूपसे मालूम हो गया था कि प्रकाश लहरोंमें विद्युत् संचार कभी नहीं हो सकता, इसलिये ऋणोद किरण प्रकाश लहर नहीं हैं, ये अत्यन्त सूक्ष्म कणोंकी बनी हुई हैं।

यह बात सिद्ध होनेपर वैज्ञानिकोंका ध्यान इन कणोंके और भी गुणोंका अन्वेषण करनेकी तरफ हुआ। उसके लिये उन्होंने जो प्रयोग किये उनसे एकसे एक महान आश्चर्य पूर्ण और महत्वके सिद्धान्त निकले। ऋणोद किरण विद्युन्मात्रा कण है परन्तु यह विद्युन्मात्रा कितनी है, सब कणों-पर समानही होती है या भिन्न, इन कणोंका भार कितना है, इत्यादि विषयमें बहुत प्रयोग हुए। इन सब प्रयोगोंका यहाँ विचार करना अशक्य है। उनसे स्थापित हुये मतोंका ही निर्देश किया जा सकता है । इन प्रयोगोंसे नीचे लिखे हुए सिद्धांत स्थापित हुए।

१—ऋणोद किरण ऋणात्मक संचारयुक्त कणों का समुच्चय है।

२—इनके सब कणोंपर समानही विद्युन्मात्रा रहती है।

३—यह विन्द्युन्मात्रा विद्युतकी परम इकाई है। इससे कम मात्रा अभी तक नहीं मिल सकी और प्रत्येक विद्युत् मात्रा इस मात्राका पूर्ण गुणक (Integral multiple) होती है।

४—किरणोंके सब कणोंका भार भी बिलकुल समान होता है।

५—यह भार बहुतही थोड़ा होता है, तत्त्वोंके (elements) परमाणुओंमें सबसे हलके भारका परमाणु उदजन (Hydrogen) का है, उसके $\frac{1}{1850}$ अंश इस कणका भार होता है।

इन सब सिद्धांतोंसे यह बात बिलकुलही निश्चित होगयी है कि पहिले लोगोंका जो विश्वास था कि परमाणु अभेद्य है उससे अधिक सूक्ष्म अवस्था असंभव है वह ठीक नहीं। परमाणु अभेद्य नहीं है, उससे बहुतही सूक्ष्मतर अवस्था होती है, यह बात निर्विवाद सिद्ध हो गयी है।

ऋणोद किरण जिन कणोंके बने हैं उनको ऋणाणु कहा जाता है। पदार्थ विज्ञान-शास्त्रकी दूसरी शाखाओंमें जो प्रयोग हो रहे थे उनसे और भी बड़े महत्वका एक सिद्धान्त निकला।

ऋणोद किरणोंमें जैसे अत्यंत सूक्ष्म कण (ऋणाणु) निकलते हैं वैसेही और भी बहुत अवसरोंमें पदार्थोंसे निकलते हुए मिलते हैं। और आश्चर्यकी बात यह है कि ये सूक्ष्म कण ऋणोद किरणोंके ऋणाणुओंसे सभी गुणोंमें बिलकुल मिलते हैं। उनका भार व विद्युत् संचार, ऋणाणुओंसे बराबर ही होता है। अर्थात् वे भी ऋणाणु होते हैं। ये ऋणाणु नीचे लिखे द्वारा प्रसंगों पर और इसके सिवाय दूसरे और भी प्रसंगों पर निकलते हैं।

१—रश्मिशक्ति पदार्थोंसे (जैसे रश्मिम् तत्त्व) आप ही आप बीटा किरण (β-rays) निकलते हैं ये ऋणाणु हैं।

२—किसी धातुके तारको गरम करने पर भी ऋणाणु निकलते हैं।

३—किसी धातुकी चद्दर (sheet)को प्रकाशित करने पर उससे ऋणाणु निकलते हैं। इत्यादि इत्यादि। इन सब बातोंसे यह निश्चित हुआ कि ऋणाणु यदि सब तरहके पदार्थोंसे निकल सकते हैं तो वे हरएक पदार्थमें अवश्य होने चाहिये अर्थात् ऋणाणु हर एक परमाणुका एक आवश्यक अंग है। परमाणु अभेद्य नहीं है यह निश्चित होनेपर परमाणु रचनाके सम्बंधमें पहली महत्त्वकी यह बात मालुम हुई कि हरएक परमाणुमें एक या अधिक ऋणाणु अवश्य होते हैं। परंतु परमाणुओंमें इनकी कितनी संख्या होती है, भिन्न-भिन्न परिमाणुओंमें भिन्न-भिन्न संख्या होती है, क्या इसका कोई नियम है या नहीं? परमाणुके और भी दूसरे अंग क्या होते हैं? इनकी रचना परमाणुमें किस तरह होती है इन विषयोंका विचार आगे लेखोंमें किया जायगा।

शिलायें और प्रस्तर

[ले० श्री सत्यप्रकाश, एम० एस-सी०]

गत लेख (विज्ञान २६ कर्क १९८६, १८४) में यह कहा जा चुका है कि शिलायें दो प्रकारकी होती हैं—मुख्य और गौण शिलायें। पृथ्वीके बनते समय पिघले हुए भागके ठंडे होनेसे जो शिलायें बनी थीं उन्हें मुख्य शिलायें कहते हैं। इन मुख्य शिलाओंमें कई कारणोंसे परिवर्तन हुए, ये और टुकड़े टुकड़े होगईं। ये टुकड़े फिर आपसमें मिल कर नई शिलाओंके रूपमें जम गये। इस प्रकार गौण शिलाओंकी उत्पत्ति हुई। वस्तुतः ये शिलायें कई प्रकारकी मुख्य शिलाओंसे बनाई गई हैं। मुख्य और गौण शिलाओंकी अवस्थाओंमें चार विशेष भेद हैं:—

[क]—मुख्य शिलायें रवेदार पदार्थों की बनी होती हैं। जिस प्रकार किसी द्रव घोलको धीरे धीरे ठंडा करनेसे रवे जमने लगते हैं, इसी प्रकार

आदि अवस्था वाली पृथ्वीके द्रव जब ठंडे होने लगे तो रवोंके रूपमें पदार्थ पृथक् होने लगे और इनसेही बड़ी बड़ी शिलायें बन गईं। गौण शिलायें मुख्य शिलाओंके टुकड़ोंसे बनी होती हैं।

[ख] मुख्य शिलायें आरम्भमें अति उच्च तापक्रमके गरम द्रवके रूपमें थीं, और बादको धीरे धीरे ठंडी होकर ठोस होगईं। इन्हें इस कारण आग्नेय शिलायें कहते हैं। गौण शिलायें अधिकतर जलके प्रभाव द्वारा बनी हैं अतः इन्हें कभी कभी जलीय शिलायें भी कहते हैं। पर जो गौण शिलायें मुख्य शिलाओं पर हवाके झोंकोंसे परिवर्तित होकर बनी हैं उन्हें वात-शिलायें (aeolian) कहते हैं।

[ग] गौण शिलायें मुख्यतः जल अथवा वायु के प्रभावों से बनती हैं अतः बहुधा ये चौड़ी चौड़ी लम्बी तहों में जम जाती हैं। ऐसी शिलाओं को 'प्रस्तर' कहते हैं क्योंकि 'स्तर' शब्द का अर्थ 'सतह' है। ऐसी शिलाओं में एक के ऊपर लगे हुये दूसरे स्तर दिखाई देंगे। मुख्य शिलाओं में इस प्रकारके स्तर नहीं होते हैं।

[घ] मुख्य शिलायें तप्त द्रवावस्था से ठोस होकर बनी हैं अतः इन शिलाओं में प्राणियों, वनस्पतियों आदिके अवशेष नहीं पाये जाते हैं। कारण यह है कि जहाँ ये चट्टानें बनी थीं वहाँ किसी भी प्राणी का जीवन संभव नहीं है। पर गौण शिलाओंमें उन जानवरों और वनस्पतियों के अवशेष पाये जाते हैं जो उस समय वहां विद्यमान थे जब कि ये शिलायें बन रही थीं। उन अवशेषों की परीक्षा करने से ज्ञात हो सकता है कि ये शिलायें स्थल भाग पर बनी हैं या जलके अन्दर। यदि जल के अन्दर रहने वाले जीवोंके अस्थि-पिंजर प्राप्त हुए तो समझना चाहिये कि ये जलके अन्दर बनी हैं पर यदि स्थल प्रान्तके जीवों और वनस्पतियों के अवशेष मिले तो यह निश्चय पूर्वक कहा जा सकता है कि इनका निर्माण स्थल भाग में ही हुआ है।

अब हम इन शिलाओंका कुछ विस्तृत वर्णन देंगे। ये सब शिलायें निम्न प्रकार कई भागों में विभाजित की जा सकती हैं।
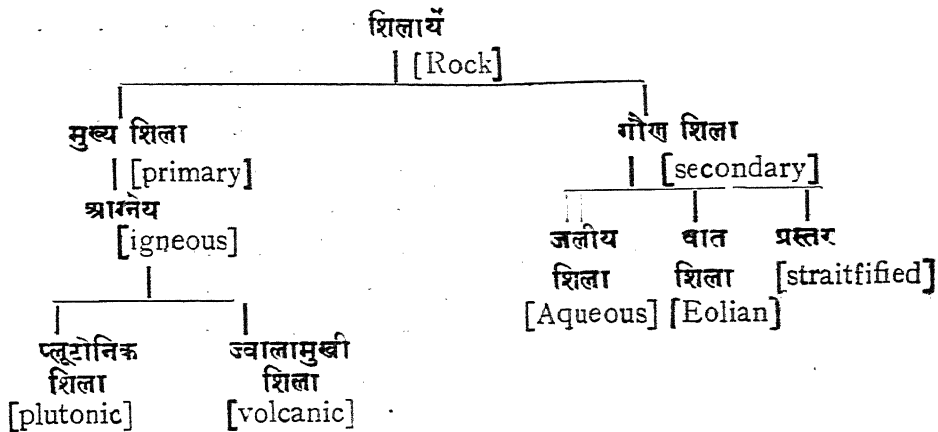
इन सब प्रकारकी शिलाओं की सूक्ष्म परिभाषा यहाँ एकत्रित कर देना अनावश्यक न होगा।

मुख्य शिला—वे शिलायें मुख्य शिलायें कहीं जाती हैं तो द्रव पदार्थोंके घनीकरण द्वारा बनी हैं। सबसे पहले इन्हीं शिलाओं की उत्पत्ति होती है।

गौण शिला—मुख्य शिलाओंके विभाजन होनेके पश्चात् कणोंके नये रूपमें इकट्ठा होनेसे जो

शिलायें बनती हैं उन्हें गौण शिलायें कहते हैं

आग्नेय शिला—मुख्य शिलाओंकोही बहुधा आग्नेय शिला भी कहा जाता है। आग्नेय कहनेका तात्पर्य्य यह है कि ये बहुधा आरम्भमें प्रचंड तप्त द्रवके रूपमें थीं।

प्लूटोनिक शिला—इन आग्नेय शिलाओंमें से जो शिलायें पृथ्वीके सबसे भीतरी भागमें बनीं, उन्हें प्लूटोनिक शिला कहा जाता है।

ज्वालामुखी शिला—वे आग्नेय शिला जो पृथ्वीके अन्दरके द्रवके बाहर निकल आनेके कारण पृष्ठ तल पर बनी ज्वाला मुखी शिलायें कही जाती हैं।

जलीय शिला—ये वे गौण शिलायें हैं जो मुख्य शिलाओं पर जलके प्रभाव पड़नेसे बनी हैं।

वात शिला—जब मुख्य शिलायें वायु या हवा द्वारा विभाजित हो जाती हैं और इनके कण दूसरे रूपमें इकट्ठा होकर जम जाते हैं तब ये वात शिलायें कही जाती हैं।

प्रस्तर—गौण शिलायेंही बहुधा एक पर दूसरी कई सतहोंमें जम जाती हैं अतः इन्हें प्रस्तर भी कहते हैं।

इन सब शिलाओंके विभागकी ओर दृष्टि डालने से पता चल जावेगा कि शिलाओंका कोई आदर्श विभाग नहीं किया जा सकता है। मुख्य शिला और गौण शिला-ये दो विभाग करना ही अधिक उचित प्रतीत होता है।

गौण शिलाओंमें चार प्रकारके पदार्थ सम्मिलित हैंः—

१—बालूके पत्थर
२—मिट्टी
३—चूनेके पत्थर
४—कोयला

बालूके पत्थरकी बनी हुई शिलाओंमें बालूके कण होते हैं। गौण शिलाओंकी आरम्भिक अवस्था-में बालू होती है जो वायु अथवा जलके प्रभावद्वारा मुख्य शिलाओंके परिवर्तित होनेसे बनती है। आ-रम्भमें बालूके कण बहुत छोटे-छोटे होते हैं। धीरे-धीरे यह छोटेछोटे कण आपसमें मिलने लगते हैं और बड़ा रूप धारण कर लेते हैं। कालान्तरमें यही बालूके पत्थरोंमें परिणत हो जाते हैं। जब ये बहुत ही दृढ़तासे आपसमें मिल जाते हैं तो ये कार्ट्ज़ कहलाने लगते हैं।

बालूके ये पत्थर कभी-कभी ढेलोंके रूपमें आप-से जुड़ जाते हैं। इनका रचना क्रम और रूप निय-मित नहीं होता है, ऐसी अवस्थामें इन्हें 'कंकड़' कहा जाता है। बालूके पत्थरोंमें बालूके सूक्ष्मतम कणका व्यास ०·००५ स. म· (मिलीमीटर) होता है। यदि किसी प्रकार ये कण इतनेसे भी और अधिक छोटे हो जायँ तो ये 'मिट्टी' कहलाने लगते हैं। इस प्रकार मिट्टी और बालूमें कोई विशेष रासायनिक भेद नहीं है। भेद केवल कणोंके आकारका है।

मिट्टी भी कई प्रकारकी होती है। चिकनी मिट्टी, बलुही मिट्टी, स्लेट आदि। स्लेटकी मिट्टीमें कण एक विशेष क्रममें नियमित रहते हैं और ये अत्यन्त दवाबके अन्दर दबाये जाते हैं। मिट्टी बहुतही उपयोगी पदार्थ है क्योंकि यह बहुत नरम होती है। कृषि आदिके लिये इसकी उपयोगिता बहुत ही अधिक है। मिट्टीका बड़ा गुण यह भी है कि यह पानीको अपने अन्दर प्रविष्ट नहीं होने देती है। इसका लाभ यह है कि वर्षाका पानी पृथ्वीके अन्दर अधिक गहरी सतह तक प्रविष्ट होकर बेकार नहीं होने पाता है। नीचे मिट्टीके ऊपर कुएँके अन्दर बहता रहता है। कभी-कभी स्रोतोंके रूपमें बाहर भी निकल आता है।

गौण शिलाओंका तीसरा भाग चूनेका पत्थर है। इसका रासायनिक नाम खटिक-कर्बनेत है। यह खड़ियाके रूपमें या संगमरमर पत्थरके रूपमें पाया जाता है। जल और कर्बन द्विओषिदके प्रभावसे यह अर्धकर्बनेतमें परिणत होकर पेड़ों और जलजीवोंके व्यवहारमें आता है। जब ये पेड़ या जीव नष्ट हो जाते हैं तो इनके अस्थि-पिंजर एवं अवशेष इकट्ठा होजाते हैं। और इन्हींसे कालान्तरमें चूनेके पत्थरभी बन जाते हैं। चूनेके पत्थरकी उपयोगिताका वर्णन देना अनावश्यकही है क्योंकि इसका व्यवहार नित्य प्रति मकानोंके बनानेमें किया जाता है। पृथ्वीके उपजाऊ बनानेमेंभी यह सहायता देता है।

गौण शिलाओंका अन्तिम अंग कोयला है। कोयलेका मुख्य भाग कर्बन कहा जाता है। कभी-कभी बड़े-बड़े जंगल पृथ्वीके अन्दर दब जाते हैं और वहाँ इनका विभाजन आरम्भ होता है। क्षीण होते-होते इनका कोयला शेष रह जाता है। कोयला या कर्बनके कई रूप होते हैं। साधारण कोयला, पत्थरका कोयला, ग्रेफाइट या लेखनिक जिसकी पैंसिलें बनती हैं, धुँआका कर्बन जो मैदाके समान चिकना होता है, और सबसे अनमोल कर्बन जो हीरा कहलाता है। हीराभी कोयलेका एक रूपही है।

कोयला पांच प्रकारका प्राप्त होता है:—

१—भूरा कोयला या लिग्नाइट—यह भूरे रंगका गरम कोयला होता है। यह हालका ही बना होता है।

२—घरेलू कोयला—जो घरमें अंगीठी आदिके जलानेमें काममें आता है। यह कठोर, काला और भंजन शील होता है।

३—गैस-कोयला—यह कोयला ऐसी गैस देता है जो तीव्र श्वेत ज्वालासे जल सकती है। रोशनी करनेके लिये पहले इसका बहुत व्यवहार किया जाता था।

४—तैल-कोयला (आयल-शेल)—इसमें बहुतसे पार्थिव पदार्थभी मिले रहते हैं। यदि इसको धीरे-धीरे गरम किया जाय तो इसमेंसे तैल स्रवित होने लगता है।

५—एन्थ्रेसाइट कोयला—यह आगके लिये सबसे उपयुक्त कोयला है। इसमें अन्य कोयलोंकी अपेक्षा कर्बनकी अधिक मात्रा होती है। यह बिना ज्वाला या धुंआके जलता है।

खाण्डका व्यवसाय

(ले० ब्र० श्री भीमसेनजी)

खाण्डको शुद्ध करने तथा रंग उड़ानेकी विधियों द्वारा खाण्ड तय्यार करनेके व्यवसाय पर विचार करनेसे पूर्व यह विचार कर लेना कि "भारत वर्षमें खाण्डका व्यवसाय उन्नतहो सकता है या नहीं, और भारतवर्षमें नीरङ्गीकरण की प्रक्रियाकी आवश्यकता है या नहीं" आवश्यक प्रतीत होता है।

भारतवर्षमें गन्ना अनादि कालसे बोया जाता है, और यही इसकी जन्म भूमि है, इसमें तनिकभी सन्देह नहीं। हमारे देशकी धार्मिक पुस्तक वेदमें जिसे कि हम अनादि मानना धर्मका चिह्न समझते हैं—एक छोटासा सूक्त आया है जिसमें यह स्पष्ट शब्दोंके वर्णित है कि अमृत वृक्ष गन्ना खाण्डकी प्राप्तिका साधन है। मंत्र और उसका अर्थ निम्न प्रकार है—

इयं वीरुन्मधु जाता मधुनात्वा खनामसि, ।
मध्धोरधि प्रजातासि सानो मधुमत स्कृधि
अथर्व काण्ड १ अध्याय ६ सूक्त ३४ ।

अर्थ—यह वीरुध (गन्ना) मधु (जल) द्वारा पैदा हुई है। मधु (मिठास) के उद्देश्यसे तुझे हम खोदते हैं। मधु (गन्नेकी पोरी) से तू पैदा हुई है—वह तू हमें माधुर्य्य गुण सम्पन्न कर।

अथर्वके ऊपरके मन्त्रमें बहुत स्पष्ट और उत्तम शब्दोंमें गन्नेका बोना, उसके उपयोग तथा गुण बताये गये हैं। वहां यहभी कहा गया है कि "मधुनात्वा खनामसि" अर्थात् (मिठास) यानी खाण्डके उद्देश्यसे हम तुझे उखाड़ते हैं।

इस प्रकार वैदिक उपपत्ति द्वारा यह ज्ञात हो गया कि गन्नेसे खाण्डकी प्राप्ति करना कोई नवीन सभ्यताका आविष्कार नहीं अपितु यह पूर्वकालसे ही हमारे देशमें प्रचलित है। इस विषयमें कि गन्ना भारतवर्षकी ही उपज है और यहांके निवासीही खाण्डके आदि निर्माण कर्ता हैं इतिहासकी साक्षी लेना भी अनिवार्य है। कतिपय इतिहास लेखकोंका यह कथन है कि पश्चिममें गन्ना भारतवर्षसेही गया। वे इस घटनाको यों बताते हैं कि दिग् विजयी सिकन्दर जिस समय देश देशान्तरोंका विजय करते हुए भारतमें आये तो उन्हें इस मीठे बांसको देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ, तथा उनको यह वृक्ष परम प्रिय लगा। जब वे यहांसे वापिस जाने लगे तो वे इस वृक्षको अपने साथ लेते गये और इस प्रकार यूनानसे यह खाण्डका वृक्ष सारे योरुपमें पहुँच गया।

कई इतिहास लेखकजो भारतीय सभ्यताके विद्वेशी हैं यह कहते हैं कि गन्ना चीन देशसे भारतवर्षमें लाया गया और खाण्डको सबसे प्रथम तय्यार करने वाला देश चीन ही है। किन्तु यह बात सर्वथा असत्य है। इस बातका प्रमाण चीन देशके एक बहुत प्राचीन ग्रन्थसे ही प्राप्त होजाता है। सम्भवतः इतिहास लेखकने "चीनी" और "चीन" यह नामकी साम्यता देखकरही यह लिखने का साहस किया हो। परन्तु इस नाम की साम्यतासे ऊपरका परिणाम निकालना निराधार और अयुक्त है। शब्द शास्त्रके अध्ययनसे यह प्रतीत होता है कि चीन देश तथा मिसरमें भी भारतवर्षसे ही खाण्ड का व्यवसाय पहुँचा। चीनी खाण्ड और मिसरी खाण्ड यह दोनों शब्द आम भाषामें प्रयुक्त होते हैं। उससे भी यही पता चलता है कि चीनी और मिसरी खाण्डके विशेषण हैं और यह विशेषण देश विशेष में बनाई हुई खाण्डको विशिष्ट करने के लिये ही दिये गये हैं। यदि शब्द शास्त्रका अध्ययन और गम्भीरतासे किया जाय और प्रत्येक देशका खाण्डका पर्य्याय वाची शब्द देखा जाय तो उसका मूल संस्कृत भाषाही मालूम होती है। शर्करा और खाण्ड यह दोनों शब्द संस्कृतमें पर्य्याय वाची हैं और दानेके लिये प्रयुक्त होते हैं। इन्हीं दोनोंके अपभ्रंशही सभी भाषाओंमें दानेदार खाण्ड या खाण्डके लिये प्रयुक्त करते हैं। अरबी और फ़ारसी में कन्द शब्द खाण्डके लिये आता है और यह स्पष्ट खाण्डका अपभ्रंश है। शक्कर शब्दभी शर्कराका ही अपभ्रंश है, और यह प्राकृतके नियमोंसे सिद्ध भी है। जैसे "ब्राह्मण वर्ग" का प्राकृत रूप "बह्म वग्ग" है, ठीक इसी प्रकार इसी नियमसे रेफ़से अगले शब्द को द्वित्व करने और रेफका लोप करनेसे "शर्करा" "शक्कर" में परिवर्तित होजाता है। अस्तु, कुछ भी हो हम उस ग्रन्थ का एक उदाहरण ही ऊपरके परिमाण को असत्य सिद्धकरने के लिये देना पर्य्याप्त समझते हैं जोकि एक चीनी इतिहासवेत्ता ने लिखा है। उस ग्रन्थ का नाम "पेन्शाकंगम्" (Pentiaokangam) है। सीशीजिन (Si-Shi-tjin) नामक विद्वान् उसमें लिखते हैं "कि महाराज ताइशांग (Tai-Tsung) ने जिन्होंने चीनजैसे शिल्पविद्या विशारद देशमें ६८३ से ७०६ सम्बत् तक राज सिंहासन को शोभित किया था, कुछ चीनी गुणवानोंको भारतवर्ष में इस अभिप्राय से भेजाथा कि वे वहाँ जा कर सीखें कि भारतवासी गन्ने से खांड किस प्रकार बनाते हैं। वे लोग यहाँ आकर विहार प्रान्त में ठहरे और यहाँ से खाण्ड बनाना सीखकर पुनः अपने देशको लौट गये।"

इस प्रकार यह सिद्ध है कि गन्नेकी जन्म भूमि भारतवर्ष ही है और खाण्ड जैसे स्वर्गीय पदार्थका निर्म्माणकर्ता भी यही बुड्ढा भारतवर्ष है।

भारतीय खाण्डके व्यवसायका ह्रास

प्राचीन इतिहास की गूढ़ आलोचना करनेसे पता लगता है कि भारतवर्ष न केवल खाण्ड बनानेके व्यवसाय का क्रियात्मक ज्ञानमात्र ही रखता था अपितु यह इस व्यवसायमें सर्वोच्च रहा है।

१९०७-८ सम्वत्में २२ लाख मन खांड अन्यान्य देशोंमें भारतवर्षसे गई और जिसमेंसे लगभग २१ लाख मन केवल ग्रेटब्रिटेन को ही गयी। इसके अनन्तर १९६७ सम्वत्में गणना द्वारा पता लगाया गया कि सारे संसार में ८५ लाख ६३ हज़ार टन कच्ची खांड बनाई गई जिसमेंसे—

*भारतवर्षमें	२१२५०३० टन,
क्यूबामें	१८०४००० टन,
जावामें	१२७८००० टन,
हवाईमें	४६३००० टन,
अमेरिकामें	३३५००० टन,
मारीशसमें	२५२००० टन,
फार्मोसामें	२३०००० टन
नैटालमें	६५००० टन
चीनमें	६०००० टन
मिश्रमें	५९००० टन
जापानमें	४०००० टन

ऊपरकी सारिणीसे हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि भारतवर्षमें १९६७ सम्वत् तकभी सारे संसारके प्रसिद्ध खाँडके व्यवसायी देशोंकी अपेक्षा बहुत अधिक मात्रामें खांड तैयारकी गयी। कच्ची खांडके साथ-साथ दानेदार खांडभी यहांसे विदेशोंको भेजी जाती रही है।

‡ वर्ष	दानेदार खांड	कच्ची खांड तथा गुड़
	मन.	मन.
१९६४	२८०८७	२७१५९०
१९६५	२८३०७	२३८३९३
१९६६	२९२३२	१६८६००
१९६७	३६५१२	२३९१५४
१९६८	३४६७६	२४०२४६

हम अभी ऊपर बता आये हैं कि १९०७-८ सम्वत्में भारतवर्षसे २२ लाख मन दानेदार खांड विदेशमें भेजी गयी थी। इसका स्पष्ट तात्पर्य यही है कि भारतमें पहिलेसे ही दानेदार श्वेत खांड बनानेकी प्रथा पर्याप्त प्रचलित थी। परन्तु धीरे-धीरे ज्यों-ज्यों अन्यान्य देशोंने इसका व्यवसाय अपनाना आरम्भ किया त्यों-त्यों हमारे देशका व्यवसाय घटता गया। १९४० सम्वत्के बाद ही जावावासियोंने गन्ना बोने तथा खांड बनानेमें उन्नति करना आरम्भ किया है। और उन्होंने इस व्यव-

* "गन्ना और शक्कर" लेखक एस० सी० बैनर्जी, एफ० सी० एस० (लन्दन)

‡ "गन्ना और शक्कर" लेखक एस० सी० बैनर्जी, एफ० सी० एस० (लन्दन)

सायमें पर्याप्त उन्नतिकी है। निम्नलिखित सारिणीसे पाठकोंको भली-भाँति ज्ञात हो जायगा कि इतने थोड़ेसे वर्षोंमें ही जावा-निवासियोंने कितनी आश्चर्य-जनक उन्नतिकी है :—

* वर्ष	क्षेत्रफल, जिसमें गन्ने की खेती हुई (एकड़)	उपज गन्ना, प्रतिएकड़ (मन)	उपज खांड प्रतिएकड़ (मन)	खांड प्रति १०० भाग गन्नेमें-
१८५१	१८५५०५	८४०	८२	—
१८५६	२२०४४०	६२७	८६	६.५७
१८६१	२६०४१२	१०३४	१०७	१०.३७
१८६६	३१४३३५	१०६६	११०	१०.३३
१८६७	३३५५८१	११४६	११७	१०.२६

जावावालोंकी देखा-देखी क्यूवा आदि प्रदेशोंमें भी खांडका व्यवसाय दिन-प्रति-दिन उन्नत होता जा रहा है। १८७१-२ की रिपोर्ट बताती है कि जावामें १८७१-२ में १८८ शर्कराज्ञय थे जिनमें १५ लाखटन शक्कर बनती थी। शर्कराकी मात्राभी ९९.८ प्रतिशतक शुद्ध होती है। वर्तमान समयमें तो जावामें दो ढाई सौ शर्कराज्ञय नवीन वैज्ञानिक साधनोंसे सुसज्जित वर्तमान हैं। यह सत्य है कि जावा जर्मनी आदि देशोंकी तय्यारकी हुई शर्करा सफेद अवश्य होती है और सस्तीभी होती है परन्तु उसमें मिठास कम होती है। इसके साथ-साथ वह कल कारखानोंकी सहायतासे तय्यारकी गयी होती है और इसीलिये सस्तीभी होती है। परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि हम भारतीयभी सस्ता देख कर उसे खरीदें। हमारा देश उन अवस्थाओंमें नहीं है जिनमें विदेशी लोग रहते हैं। कलकी उपयोगिता ही यही है कि वह अकेली ही थोड़े कालमें अनेक मनुष्योंका काम कर दे और बड़ी मात्रामें माल उत्पन्न करे। अतः स्वभावतः कालोंकी आवश्यकता उन्हीं देशोंमें है जहाँ मनुष्य कम हैं। और मज़दूर कम मिलते हैं। भारतवर्षमें आदमियोंकी कमी नहीं है। काम न मिलनेसे ही विचारे संसारके अनेक भागोंमें नाना विपत्तियां झेलते और लाखों करोड़ोंकी संख्यामें गुलामी करते देखे जाते हैं। और तमाशा यह है कि फ़िजी, डमरेरा, मारीशस तथा गायना आदि देशोंमें गन्नेकी खेती करनेके लिये और उससे खांड बनानेके लिये जाते हैं। यह सिल-सिला तबसे ही चला है जबसे कल कारखानोंकी बढ़ती हुई है। इसलिये मज़दूर और कृषि-प्रधान भारतमें बेकारी बढ़ गयी और इसके साथ-साथ व्यवसायी लोगभी विदेशी खांडके व्यापारकी होड़में पिछड़ गये। उनके हाथसे कताई बुनाईका काम मिलोंने छीन लिया और खांडसालोंका कल-कारखानोंने। धीरे-धीरे भारतका खांडका व्यवसायभी नष्ट होता गया। भारतीय खांडके व्यवसायके ह्रासका सबसे बड़ा कारण यही है। इसे हटानेके लिये खांडवालोंका प्रचार गांव-गांवमें किया जाव तभी देशका कल्याण है। खांडसालें निकम्मे किसानोंको काम देती हैं और उनके निजू व्यवसायिक उन्नति के साथ-साथ उनकी आजीविकाका प्रश्नभी हल हो जाता है।

* "गन्ना और शक्कर" लेखक एस० सी० बैनर्जी, एफ० सी० एस० (लन्दन)

कल, कारखाना और घरेलू धन्धा

भारत जैसे देशमें सौभाग्यसे इसके पूर्वजों नेही कुछ इस प्रकार की प्रणाली जारीकी है कि यहांके मनुष्य स्वावलम्बी और परिश्रमी पाये जाते हैं। अन्य धनी देशोंकी तरह यहां के निवासी आराम तलब और विलासी नहीं देखे जाते। यदि इसका कारण कोई यह बतावे कि यहाँ तो धनही नहीं, यहां वाले तो सदासे ही घिसड़ते रहे हैं, और गुलामीका जीवन व्यतीत करते रहे हैं—ये किसान क्या जानें जीवनके आनन्द और सुखको, 'बन्दर क्या जाने अदरकका स्वाद' तो उन महानुभावोंसे मुझे यही कहना है कि एक तो हमारे देश की कौड़ी कौड़ी तक समेट कर लेगये और तिस पर वाग् वाणका प्रहार। इसीको कहते हैं 'जले पर नमक छिड़कना'। हमारी बदौलत तो इतने ऊंचे उठे और लगे फिर हमेंही उल्टी सीधी सुनाने। यह भारत तो सुवर्णकी चिड़िया नामसे मशहूर था। बारी २ से सभीदेशोंके आक्रान्ता यहांसे मनचांहा खज़ाना लूट पाट कर लेगये, परन्तु इसका अक्षय कोश कभी नहीं घुटा, प्रकृति माताकी अपार कृपा से यहाँ प्रत्येक धातुका अपरिमित खजाना कानोंमें पाया जाता है। हाँ यह अवश्य सत्य है कि यहांकी सम्पत्तिका उपभोग विलासके साधनोंको जुटानेमें व्यय नहीं किया जाता था। यहाँके निवासी धनिक होते हुए भी सम्पत्तिका उपयोग दानादिमें करते थे, इस कारण यहाँ पर यद्यपि कलादि की इतनी अधिक उन्नति न थी तो भी सादे उपायोंसे यहाँका हर प्रकारका व्यवसाय पूर्ण उन्नति पर था। पहिले बड़ी २ कलें न थीं अतः ढाके की मलमल जोकि संसार प्रसिद्ध थी भारतमें नहीं पायी जाती थी, यह कथन तो नितान्त अस्वाभाविक और असत्य है। हाँ यह अवश्य है कि जन संख्याकी बहुतायत से प्रत्येक कार्य मनुष्य अपने हाथसे ही सम्पादित करते थे अतः अपने दैनिक व्यवहारमें आने वाली वस्तुओंको तय्यार करनेमें धनादिका अपव्यय करना वे नहीं जानते थे। वैसेभी भारतकी परिस्थितियाँही कुछ ऐसी हैं कि यहाँ पर मिल आदिका प्रयोग बुद्धिमत्ता का परिचायक नहीं है।

अर्थशास्त्रके अध्ययनसे पता चलता है कि भारतमें पूंजी है तो बहुत परन्तु वह कुछ इने गिने लक्षपतियोंके पासही है। लक्ष्मी देवीभी अपने सहज-धर्म चपलताका परित्याग कर उनके यहाँ सुख पूर्वक वास करती है अतः यहाँकी जन संख्या का बड़ा भाग मध्यम वर्गमें गिना जासकता है। प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह अच्छा तकड़ा ज़मींदारभी क्यों न हो, रुपयेकी दृष्टिसे निर्धन ही होता है अर्थात् यहाँ नगद रुपया जमा रखनेकी बातही नहीं। अतः प्रत्येक किसानके लिये यह दुर्लभ है कि वह बड़े २ यन्त्र कलादिका प्रयोग किसीभी व्यवसायमें कर सके। इस कारण भारतीय परिस्थितियोंको दृष्टिमें रखते हुए कहना पड़ेगा कि वही हमारी देसी विधियाँ हमारे लिये अधिक उपयुक्त हैं।

पूंजीके सवालके अतिरिक्त अन्यभी कई एक समस्याएँ हैं, जोकि भारतीय हितोंके लिये विघातक हैं। मानभी लिया जायकि कुछ मनुष्य मिलकर दस या ५०००० के हिस्से (Shares) लेकर कुछ पूंजी एकत्र करके नवीन विज्ञानसे आविष्कृत यंत्र कलादि विदेशसे मगा भी लेते हैं तथापि उन यंत्रादिका जीवन काल (Guarrenty) २० या तीस वर्ष होता है। इस दीर्घ कालमें वे प्रायः संसारकी होड़में पिछड़ जाती हैं और फैशन के बाहर (out of fashion) करार दी जाती हैं। उनको पुनः प्रयोगके लायक करनेके लिये तकड़ी राशि व्यय करके यातो नये पुर्जे आदि मंगाये जाते हैं या नई मशीन खरीदनी होती है। इसके अतिरिक्त उनकी समय २ पर मरम्मत आदिभी करवानी लाज़मी होती है। इन झंझटोंके मारे कमसे कम हमतो यही कहेंगे कि भारतीय हितों और परिस्थितियोंको दृष्टिमें रखते हुए मिलोंका प्रयोग हानिकर और सर्वथा अनुपयोगी है।

तृतीय बात एक और है जो कि देसी विधियों-के पक्ष में कही जा सकती है। वहभी जन संख्या प्रधान देश भारतके लिये अनिवार्य है। वह है आजीविकाका प्रश्न। गन्नेकी फसल वर्षमें एक वार होती है अतः कारखाने जो गन्नेसे खांड बनाते हैं सालमें ६ मास तक ही ज़ोर शोरसे काम करते हैं। मज़दूरोंकी संख्या पर्य्याप्त मात्रामें वहाँ उन दिनों काम करती है परन्तु जब गन्नेकी मौसम ढलने लगती है तो मज़दूरोंको भी रोज़ी मिलनी बन्द होजाती है। उन्हें लगातार वर्ष भर का काम नहीं मिलता और वे छः मास बेकार पड़े रहते हैं। इस बेकारी में न केवल यही कि वे निकम्मे होते हैं और कुछ कमाते नहीं अपितु गत छः मास की कमाई को उड़ाना और बर्बाद करना आरम्भ-करते हैं। 'एक तो कड़ुआ और वह भी नीम चढ़ा,' फिर क्या कहना। वे अशिक्षा और दुर्व्यसनों के मारे अपने जीवन को नित्य प्रति अवनति के मयं कर गर्तमें ढकेलते जाते हैं। इसके विपरीत खांड-साले गरीब किसानों को आजीविका देती हैं किसान वर्षमेंसे लगभग ५, छः मास ख़ाली होते हैं। उन दिनों वेभी पासके गांवोंकी खाण्डसालोंमें काम करसकते हैं और अपने पांच ६ मास मज़ेमें गुज़ार सकते हैं। खाण्ड सालोंकी प्रणाली में यह बहुत प्रबल युक्ति है। हिसाब लगानेसे पता लगता है कि भारतीय कारखानों और मिलोंमें जितनी शक्ति व्यय हो रही है वह ४ लाख मनुष्योंकी शक्तिके बराबर है। इसका तात्पर्य्य यही है कि हम यदि कल कारखानोंका प्रयोग करते हैं तो ४ लाख मनुष्यों की आजीविकाका साधन नष्ट करते हैं और इस प्रकारसे इन्हींकी मृत्युका पाप मोल लेते हैं।

इन ऊपरकी बातों को दृष्टिमें रखते हुए हम यही कहेंगे कि भारतमें यदि खाण्डका व्यवसाय लाभप्रद हो सकता है और यदि किसी भी अवस्था-में यह व्यवसाय भारतके लिए हितकर हो सकता है तो उसका उपाय केवल एक ही है। और वह यह कि इन मिलों तथा कारखानों को तिलांजलि देकर अपनी स्वदेशी प्रणाली को अपनाया जाय और विदेशी वस्त्रोंके वहिष्कारकी भांति विदेशी खाण्डका भी वहिष्कार किया जाय।

परन्तु कई व्यापार प्रिय अर्थ-शास्त्रज्ञ यह कह सकते हैं कि भारतीय खाण्ड का व्यवसाय जब तक इस सम्मुनत जगतकी एक मात्र उपज मशीनरीका आश्रय न लेगा तब तक यह विदेशी खाण्ड के व्यवसायके टक्करमें भी नहीं खड़ा हो सकता। यहाँकी देसी विधि न तो इतनी बड़ी मात्रामें ही खांड तैयार करती है कि वह भारतकी मांगको पूरा कर सके और न जितनी भी खाण्ड यहाँ तय्यार होती है वह इतनी शुद्ध होती है कि ग्राहक विदेशी तथा सस्ती खाण्डके होते हुए हमारी स्वदेशी, मैलो और महंगी खाण्डको खरीदने पर उद्यत होंगे। हम उनकी इन दोनों बातोंसे सहमत हैं परन्तु कुछ थोड़ा सा हमें इन पर भी कहना है। वह यह कि यह यह सोलहों आने ठीक है कि हमारे देशमें वर्तमान समयमें खाण्ड इतनी मात्रामें तय्यार नहीं होती कि वह भारतकी मांगको पूरा कर सके और इसीलिये वह मंहगी भी है पर तो भी हम देश निवासियोंका यह कर्तव्य है कि मँहगी होते हुए भी हम उसीको ही खरीदें। यहाँ व्यापारिक लाभका विचार छोड़ देना ही हमारे लिए कल्याण-कारी है, और जिस समय हम विदेशी खाण्डको खरीदेंगे ही नहीं उस समय विदेशी स्वयमेव खाण्ड को ला-लाकर हमारे देश में बेचना बंद कर देंगे। और इस प्रकार स्वदेशी व्यवसाय का गला दबोचने वाले विदेशी व्यवसाय फिर हमारे देश में अपना निष्कंटक और निस्प्रतिद्वन्दी राज्य का अपयोग न कर सकेंगे।

साथही हम उस बातका भी अपने देशवासियों को स्मरण करा देना चाहते हैं कि यदि हममें अपने देशके व्यवसायको समुन्नत करनेका सच्चा प्रेम है

यदि हमें अपने देशके व्यवसायको जीवित रखना है और यदि हममें देश प्रेमका कुछ भी माद्दा है तो हमें भी जर्मनीका उदाहरण अपनी दृष्टिके सामने सदैव ही रखना चाहिए। जिस समय जर्मनीने चाहा कि उसका खाण्डका व्यवसाय उन्नत हो, जब जर्मनीने अपने उद्योगको उन्नत करना चाहा तो वहाँके राज्य कोशकी ओरसे खाण्डके व्यवसाय को १५°/。 से २०°/。 रियायत (Bounty) दी गई उसका फल यह हुआ कि १८०)रु० की जो खाण्ड वे भारतमें बेचनेको लाते थे वह १००) रु० की खाण्डके बराबर होती थी। इस प्रकार दो से २० रुपया प्रतिशत उनको मुनाफा होजाता था, उस अवस्था में यह स्वाभाविक ही था कि हमारे देशका व्यवसाय मन्द पड़जाता। परन्तु अब जब कि हम अपने आपको समझने लगे हैं, अपने को स्वराज्यके योग्य बताते हैं, हमारा भी यह कर्तव्य हो जाता है कि हमें यदि राज्य कोशकी ओरसे कोई रियायत (Bounty) नहीं मिलती तो हमारे धनिकों को, नहीं नहीं प्रत्येक व्यक्तिको जो कि खाण्डका उपयोग करता है स्वदेशी खाण्डके व्यवसाय को महंगी व्यवहार होते हुए भी खरीदने की रियायत देनी चाहिये। यह त्याग ही रियायत समझी जायेगी। और यही उपाय या युक्ति है जिससे हमारे स्वदेशी व्यवसायको यत्किंचित् प्रोत्साहन मिल सकता है, और जिसकी सहायता से हमारा स्वदेशी व्यवसाय भी विदेशी व्यवसायकी टक्कर ले सकता है। रही बात मैली और शुद्धकी, वह भी अधिक भार नहीं रखती। एक तो भारतकी ६०°/。 जन संख्या गांवोंमें रहनेवाली है और उनमें भी बड़ी मात्रा गुड़, राब और शक्करका व्यवहार करती है अतः उनके निकट मैली और सफ़ेदकी समस्या ही नहीं। रहे गिने-चुने पूँजीपति सो वे देशकी दशाको दृष्टिमें रखकर प्रथम बातको यदि ध्यानमें रक्खेंगे तो मैली और शुद्धका सवाल ही नहीं रह जाता। इसके अतिरिक्त परीक्षाओंसे यह पता लगाया गया है कि कल-कारखानोंसे तैयारकी गई खांड सफ़ेद निःसन्देह होती है पर उसमें मिठासकी मात्रा कम होती है, इसके विपरीत स्वदेशी खाण्डमें मिठास अधिक होता है इस दृष्टिसे भी स्वदेशी प्रणाली ही लाभ प्रद सिद्ध होती है।

अब तक तो हमने भारतीय परिस्थितियोंको दृष्टिमें रखते हुए विचार किया। और हम इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि यदि गम्भीर आलोचना कल-कारखानों और देशी घरेलू धन्धोंके बीचकी जाय तो हर तरहसे स्वदेशी घरेलू धन्धा ही लाभकारी सिद्ध होता है। अब ज़रासा वर्तमान कल-कारखानोंकी अवस्था पर भी प्रकाश डालना हम अपना कर्तव्य समझते हैं। यह आलोचना कुछ मिल-मालिकोंको कड़वी और धृष्टता पूर्ण प्रतीत हो सकती है तो भी कल-कारखानोंमें हमारे देशके किसानोंके साथ कैसा सद्व्यवहार किया जाता है यह बताना आवश्यक है। उदाहरणके लिये गोरखपुरका ज़िला लिया जा सकता है।

श्री परमहंस बाबा राघवदासजी 'स्वदेश' में (१६ दिसम्बर १६२८) लिखते हैं:—"ईश्वरकी कृपासे गोरखपुरका ज़िला एक बड़ा सौभाग्यशाली ज़िला है। भगवान बुद्धदेवके जन्म तथा निर्वाणसे तो यह पुनीत है ही। ज़मीनके उपजाऊ होनेके नाते भी दूसरे ज़िले इसकी तुलनामें खड़े नहीं हो सकते। सब तरहकी पैदावार और वह भी अधिकतासे होते देखकर किसको प्रसन्नता न होगी और कौन न इस अपनी पुण्य भूमि पर इतरायेगा। पर जब हम इस ज़िलेकी अतुल सम्पत्तिको मिट्टीके मोल बेचते हुए देखते हैं तो एक बार तो हृदय दहल ही जाता है। मिसाल के लिये गोरखपुरका चीनीका ही रोज़गार लीजिये। इस रोज़गारके होते हुए गोरखपुरकी सम्पत्ति कितनी बढ़नी चाहिये। इसका अन्दाज़ा साधारणसे साधारण मनुष्य भी कर सकता है पर वास्तविक स्थिति ऐसी नहीं है। इस ईखकी फसलसे लोगोंको लाभकी अपेक्षा हानि ही अधिक होती है और वह इस प्रकारसे। आज ३,४

सालोंसे हम देखते हैं कि गोरखपुर तथा उसके पार्श्ववर्त्ती छपरा, बस्ती, बलिया, आजमगढ़ आदि ज़िलों में ईख ५, या कभी-कभी ६ आना मनके हिसाबसे बेची जाती है और यहभी सब जानते हैं कि ईखको खोइया गरीब किसान २½, ३ आने मनके हिसाबसे खरीदते हैं। दुनियामें इससे बढ़कर भयंकर लूट किसी रोज़गारमें न होगी। सच पूछा जाय तो आज चार, पांच आना मन घासभी नहीं बिक सकती। पर अभागे किसानोंकी साल भरकी कमाईकी ईखको बेदर्द मिलवाले ५, ६ आना मन खरीदनेमें जराभी नहीं हिचकते। इसका एक मात्र कारण है—मिलवालोंका थोड़े होनेके कारण सुदृढ़ संगठन और ईखकी खेती करनेवाले किसानोंमें संगठनका सर्वथा अभाव। हमें अच्छी तरहसे मालूम है कि एक दो बार कुछ मिलवालोंने सात आठ आना मन ईख खरीदनेका प्रस्ताव किया था, पर धन मदोन्मत्त निठुर मिलवालोंने उस प्रस्तावको ठुकरा दिया और गरीब किसानोंकी गाढ़ी कमाई कौड़ियोंके मोल खरीदनेका अपना निश्चय किया।

इन मिलवालोंकी क्रूरता और भी रंग लाती है। जब इनके द्वारा संचालित काँटों पर जहां ग़रीब किसान अपना ईख बैल-गड़ियों पर लाद तोलनेके लिये जाते हैं, कांटों पर काम करने वाले मिलवालोंके एजेंट और उनके गुमाश्ते किस बेमुरौवतीसे गरीब किसानोंके साथ पेश आते हैं, उनको किस प्रकार धोखा दिया जाता है, यह देखनेसे ही सम्बन्ध रखता है। दो चार मील कभी-कभी चार पांच कोसका सफर करके गरीब किसान अपनी ईख लेकर कांटे पर जाता है। वहांका बाबू पहिले उसका ईख तोल देता है, कांटेका तोल झोपड़ीके अन्दर होनेसे किसान तो यह नहीं जान पाता कि तोल कितना है, वह इतना पढ़ा-लिखा नहीं कि कांटेका अंग्रेज़ी अंक पढ़ सके, इसलिये कांटेका खून चूस बाबू २५ मन ईख होनेपर भी बीस बाईस मनकी तोल लिखकर किसानको काग़ज़ बना देता है। यह हुआ एक ढंग। दूसरे दयालु महाशय ऐसे भी हैं जो किसानको यह कह करके कि तुम्हारी ईख अच्छी नहीं है, उसमें मट्टी लगी है ५ आनेके बदले ४ या ४½ आनेके हिसाबसे भाव काटकर कागज़ बनाते हैं। गरीब किसान ईख वापिस ले जानेकी कठिनाई देखकर इसी पर राजी हो जाता है। कभी-कभी कांटे वाले यह भी करते हैं कि पांच आनेसेभी सस्ते भावमें ईख खरीदनेके लिये गाड़ीवानोंसे, जो कांटे पर पहुंचे हुए होते हैं, कह देते हैं चूँकि मालगाड़ी नहीं मिल रही है, मिल बन्द है, इसलिये ईख नहीं खरीदी जायगी। गरीब किसान दो तीन दिन तक परीक्षा करता हुआ लालचमें उसी कांटे पर पड़ा रहता है। जब निठुर कांटेवाले यह देख लेते कि अब तो गरीब फंस ही जायगा तब जानने वाले जानते हैं कि वे किसानोंसे ३ या ३½ आने परही ईख खरीद लेते हैं। दो तीन दिनमें ईख सूख जानेसे उसको जो घाटा उठाना पड़ता है वह तो होता ही है, पर इसपर तुर्रा यह कि काँटा-बाबू की मामूली चोरी रहती ही है।

मिलवालोंकी ओरसे एक और बातकी भी मेहरबानी हो जाती है-वह है परदेशियोंको ठेका देना। पिछले वर्ष पिपराइच काँटेका ठेका किसी लखनऊ वालेको दिया गया था। उसने २२ हज़ार मन ईख का दाम आज कल करके खालिया। गरीब किसान जिनमें किसीने ५० मन, किसीने १०० मन बेचा था यह कहकर चुप रहे कि जितना ईखका दाम न ीं उससे दस गुनातो मुक़दमेमें ही लग जावेगा पर हम इन मिलवालोंसे पूछते हैं कि उन्होंने इस अत्याचारका कुछभी विचार किया? यदि नहीं, तो इस वर्ष उन्होंने ऐसे परदेशी धौलधप्पोंके लिये क्या प्रबन्ध किया है? काँटे पर इक्षुके जानेसे किसानोंके बाल बच्चे जोदिन रात मेहनत करके ईखकी रक्षा करते हैं, उनको मुट्ठी भर चाना अथवा दस ईख चूसनेको मिलना अब दुर्लभ ही होरहा है।

पर उनकी गाढ़ी कमाईको मिट्टी मोल खरीदने वाले इन कांटे वालोंकी काली करतूतोंकोदेखकर हम क्या कहें, यह बात हमारी समझमें नहीं आती। एक बात और है, वह यह कि मिलवाले बिना पूँजीके रोजगार करके भी किसानोंकी उचित मज़दूरी देनेमें भी साहसनहीं दिखाते। हमें अच्छी तरहसे मालूम है कि किसानोंको ईखके दाम १५—१५, १६—१८ दिनके बाद मिलते हैं। इसका अर्थ यह है कि मिलवाले किसानोंकी ईख साख़ पर लेते हैं, उसके पेरते हैं उसकी चीनी बनाते हैं; गाहकको बेचते हैं और उससे जो रुपया पाते हैं १५ वें १६ वें दिन किसानोंको बांटते हैं। क्या यह मिल वालोंका घोर अन्याय नहीं है ?

इसलिये अब यह सीधा प्रश्न है कि मिलवालोंका यह ज़ुल्म कब तक चलने दिया जायगा ? क्या ईख बोने वाले किसान अपनी भी एक संस्था बनाकर मिलवालोंकी निर्दयताका उत्तर नहीं देंगे। साथही हम ज़िलोंके प्रतिष्ठित नागरिकोंका ध्यान इस ओर आकर्षित करना चाहते हैं कि क्या मिलवालों द्वारा होनेवाले अत्याचारका प्रतिकार करनेके लिये कोई प्रबन्ध करनेकीआयोजना वे न करेंगे। चीनीका व्यापार संयुक्त प्रान्तका एक ख़ास व्यापार है। और इसमें मिलवालोंको कितना लाभ हो रहा है इसके प्रमाणमें इतनाही लिख देना काफी है कि प्रतिवर्ष एकदो नई मिलें तय्यारहो जाती हैं। इससे बढ़कर और दूसरा प्रमाण क्या हो सकता है। अन्तमें हम यही कहते हैं कि इन अवस्थाओं के होते हुए क्या कोई बुद्धिमान् यह अनुमति देने का साहस कर सकता है कि भारतीय कृषकोंको घरेलू धन्धा छोड़कर कल कारखानोंकी शरण लेनी चाहिये ? नहीं, कभी नहीं ; यह दशा देखकर हमें निश्चय कर लेना चाहिये कि हम स्वदेशी प्रणाली द्वारा ही खांडका उद्योग आरम्भ करें। यही हमारे लिये कल्याणकारी पथ है।

समालोचना

जीव विज्ञान

ले० श्री पं० बल्देव प्रसाद मिश्र, एम० ए०, एल०एल० बी०। प्रकाशक पं० बलभद्र प्रसाद मिश्र जनरल कंट्रैक्टर राजनांद गाँव, सी० पी०, मूल्य सजिल्द ३); अजिल्द २॥)। पृ० सं० १५+४२५। छपाई, कागज अत्युत्तम।

इस पुस्तकका दूसरा नाम जीव-सूत्रभी है। प्राचीन दर्शनोंकी प्रणाली का अनुसरण करते हुए इस ग्रन्थ की भी सूत्र बद्ध रचना की गई है और सुयोग्य लेखकने प्रत्येक सूत्र का विशद और विवरणात्मक भाष्यभी कर दिया है। प्रस्तुत पुस्तकका विषय जीव-मीमांसा है। पहला सूत्र 'अथातो जीव-जिज्ञासा' है। पुस्तक में सात प्रकरण हैं:— जिज्ञासा, परिभाषा, शरीर, बुद्धि, मन, चित्त और अहंकार, और सब मिलाकर केवल २५ सूत्र हैं अतः अन्य भारतीय दर्शनों की अपेक्षा यह बहुत ही छोटा है।

दर्शन-कार मिश्र जी के शब्दों में 'पूर्णत्वे स्फूर्तिमान् व्यक्तित्व विशिष्ट चैतन्यः जीवः' यह जीवकी परिभाषा है। पूर्णत्वकी व्याख्या इसके आगे के सूत्र में इस प्रकार की गई है कि 'तत्पूर्णत्वम् सच्चिदानन्दम्'। इसके आगे के दो सूत्रों में ही मिश्रजी की सम्पूर्ण दार्शनिकता सीमित हो जाती है—पूर्णत्वे स्फूर्तिरेव विकासः तथा विकासे ऽहंकारिणो जीवस्य मनो-बुद्धि-चित्तमेव रूपत्रयम्।

लेखक का कहना है कि 'आज कल विज्ञान का ज़माना है इस लिये इस जीव विज्ञान शास्त्रकी आड़ में भारतीय धर्म और दर्शन के गूढ़ तत्त्वों को वैज्ञानिक ढंग से समझाने की चेष्टा की गई है।' सम्भवतः यदि लेखक की यह प्रतिज्ञा न होती तो पुस्तक और अधिक उपयोगी तथा युक्ति पूर्ण होती। सम्पूर्ण पुस्तकको पढ़ जाने के पश्चात् भी पाठक को यह संशय रह जाता है कि लेखक-वर की जीव के स्वरूप के विषय में कोई निश्चित धारणा है भी या नहीं। लेखक न तो पूर्णतः प्राच्य जीव विचार के अनुयायी प्रतीत होते हैं और न विकास वाद के 'जीव' की ही वे पुष्टि करते हैं। कभी कभी वे प्रेतवादियों के जीवों की सहायता लेने के लिये भी अग्रसर हो जाते हैं, और फिर आप अद्वैतवाद के अगम्य तत्वों में परिप्लावित हो जाते हैं। निम्न स्थलों से लेखक के कुछ विचारों का पता चल सकता है:—

"अमीबा सरीखे सूक्ष्म प्राणी स्वयं अपना शरीर बढ़ा कर एक से दो और दो से चार हो जाया करते हैं। तो क्या इससे यह समझना चाहिये कि एक जीव के भी अनेक खण्ड हो जाया करते हैं? ऐसा कदापि नहीं होता। असल में तो शरीरोंका (अथवा पदार्थों का) जीवन चैतन्य के कारण है, न कि जीव के कारण। चैतन्य (आत्मा) एक व्यापक शब्द है और जीव एक संकीर्ण शब्द है। पहिले आत्माके प्रभाव से शरीर जीवित होता है (अर्थात् सचेतन होता है) तब फिर उस जीवित शरीर के व्यक्तित्व की भावना के कारण उसके जीव का निर्माण होता है। [व्यक्तित्व के कारण जीव का निर्माण होता है या जीव के कारण व्यक्तित्व का आरोप होता है दोनों ही क्यों नहीं कहे जा सकते? स० प्र०] यह मानना ठीक नहीं कि प्रत्येक जीवित पदार्थ में शरीर से भिन्न और शरीर से अधिक काल तक जीवित रहने वाले एक जीव का होना अनिवार्य्यही है। इसी दृष्टि से हम वीर्य्य कीटों, वृक्ष की शाखाओं, अथवा केंचुए के अंगों को जीवित मानते हुए तथा उनसे हम वैसे ही शरीरों की उत्पत्ति बतलाते हुए यह नहीं मानसकते कि उनमें से प्रत्येक में अलग अलग जीव था। हाँ फिर अलग अलग शरीर पाकर अलग अलग जीव का निर्माण हो जाय, यह दूसरी बात है।

[पृ० ४८-४९]

इनभावों के औचित्य के विषय में कुछ भी कहना कठिन है। 'जीव का निर्माण होना' विचित्र कल्पना है। यह निर्माण क्यों, कब और कैसे होता है. इसकी मीमांसा दार्शनिक मिश्र जी के ग्रन्थ से स्पष्ट नहीं होती है।

चौरासी लाख योनियों के विषय में मिश्रजी के ये वाक्य सर्वथा उपादेय ही हैं—

"भारतीय आचार्यों ने जीवों की चौरासी लाख योनियाँ मानी हैं। शेष सब योनियाँ चैतन्यके प्रभाव से जीवित भले ही हों परन्तु उनमें विभिन्न सत्ता वाले जीव का अस्तित्व नहीं है।" [५०] हमारे योग्य दार्शनिक अन्ध विश्वास के माया जाल से भी मुक्त नहीं प्रतीत होते हैं:— स्वामी विशुद्धानन्द जी की मनोनीत वार्त्ता का उल्लेख करते हुए लिखते हैं:—

"उक्त स्वामी जी केवल सूर्य्यरश्मियों की प्रक्रिया से चूहे और इसी कोटिके प्राणियों का निर्माण कर देते हैं, निर्जीव पदार्थो (कपूर, कोलतार) आदि को बना देना तथा क्षुद्र कोटि के मृत शरीरों—चिड़ियों, मक्खियों आदि—को जीवित करदेना तो उनके बायें हाथ का खेल है। ऐसी सृष्टि एकदम भौतिक विज्ञान से सम्बन्ध रखती है। मानसी सृष्टि या मैथुनी सृष्टि से यह भिन्न है" [नहीं महोदय, ऐसी सृष्टि केवल धूर्त्त-विज्ञान से ही संबन्ध रख सकती है। स० प्र०]

मिश्रजी यह भी मानते हैं कि शरीर त्यागने के उपरान्त प्रत्येक जीव कुछ न कुछ काल तक अवश्य प्रेत योनि का उपभोग करता है। [पृ० ५५]। प्रेतात्माओं के फोटे लेने और उनसे वार्त्तालाप आदि करने पर भी लेखक को विश्वास है, यद्यपि मनन शीलव्यक्तियों को इसमें छल-कपट और धोखेवाजी के अतिरिक्त कुछ न मिलेगा। इस धूर्त विद्या की अनेक बार पोल खोली जा चुकी है।

जीवका निवास-स्थान मस्तिष्क है अथवा हृदय, इसके सम्बन्ध में भी विवाद रहता है। लेखक महोदय मस्तिष्क में जीव का अस्तित्व मानते हैं। आप लिखते हैं कि 'ज्ञान-क्रिया-तन्तु-जालमूले मस्तिष्के जीव निवासः'। कदाचित् प्राच्य दर्शन कार हृदय प्रदेश में ही जीव की स्थिति मानते हैं।

मन, बुद्धि, और चित्त का भेद इस प्रकार किया गया है-चेतना शीला बुद्धि, क्रिया शीलं मनः तथा भावशीलं चित्तम्।

पुस्तकमें ब्रह्मजीव, और माया पर एक परिशिष्ट भी है जिसके विचारों में भी अस्पष्टता की झलक है। सम्पूर्ण ग्रन्थ में सब मतों को ही ठीक मानने का प्रयत्न किया गया है। आप लिखते हैं कि निर्गुण ब्रह्म सगुण कब हुआ, इसका कोई उत्तर नहीं क्योंकि 'कब' का भाव भी सगुण होने के पश्चात् ही उत्पन्न हो सकता है। ब्रह्म सगुण क्यों हुआ-इसका उत्तर यह दिया गया है कि जिस प्रकार सोने के पश्चात् जगना मनुष्य की प्रकृति है, इसी प्रकार सगुण होना और सगुण रहना भी निर्गुण ब्रह्म का स्वभाव है। क्या खूब! ब्रह्म तो निर्गुण हो और स्वभाव हो उसका सगुण होना और सगुण रहना-अच्छा तर्क है!

निर्गुण ब्रह्म सगुण कैसे हुआ, इसके उत्तर देने में आपने भौतिक-वेत्ताओं की ऐलेक्ट्रोन सिद्धान्त का आश्रय लेकर एक मज़ेदार बात कहडाली है:—

"चैतन्य की वह चित् शक्ति ही वैज्ञानिकों द्वारा वर्णित आदि-विद्युत्-शक्ति है। इसे ही हम माया कहते हैं।" माया भी एक अजब पहेली है जिसे हमारे दार्शनिक लालबुझक्कड़ लोगों ने खूब बूझा है। मायावादियों के समान आप मानते हैं कि आत्मा एक है, अनादि है और अनन्त है परन्तु चिदाभास अथवा जीव अनेक हैं, परिच्छिन्न हैं। ममत्व भावना या अहंकार वासना ही जीव की उत्पत्ति का कारण है।

आपकी एक नवीन कल्पना इस प्रकार है:— 'प्राणिमात्र तो आत्मा के प्रभाव से ही जीवित रहते हैं परन्तु यदि उनमें अपनेपन का भाव नहीं है अर्थात् यदि उनमें मनोमय कोष आदि का विकास नहीं हुआ है तो यह मानना होगा कि वे जीवित अर्थात् चैतन्य होते हुए भी जीवहीन अर्थात् विशिष्ट चैतन्य-सत्ता हीन हैं। अनेक कृमि कीटाणु इसी प्रकार के हैं। वे जब तक जिये तब तक जिये। बाद उसी एक सत्तामें लीन हो गये। शेष कहीं कुछ न रहा।

पुस्तकमें दो साधारण परिशिष्ट और भी है, अन्त में वर्ण विषयों के वृत्त, तथा शब्द कोष भी दे दिये गये हैं। यद्यपि हम ग्रन्थकार के अनेक विचारों से सह-मत नहीं हैं तब भी लेखक की इस मनोरञ्जक पुस्तक को पाठकों के लिये परमोपयोगी समझते हैं। इस पुस्तक के पढ़ने से पाठकों को अनेक नये भावों का पता चल जावेगा। मिश्रजी की यह पुस्तक उपयुक्त मौलिक भावों से ओत-प्रोत है अतः हम उन्हें इस साहस के लिये बधाई देते हैं। पुस्तक की भाषा रोचक, सरस और स्वस्थ है। आशा है कि इस ग्रन्थ का जनता में आदर होगा।

—सत्य प्रकाश

———

भूगोल का अफगानिस्तान-अंक

[सम्पादक,—पं० रामनारायण मिश्र, बी० ए०,]

ईविंग क्रश्चियन कालेज, प्रयाग, मूल्य १), पृ० सं० ७२ + ३४ + २३।

मई, जून और जूलाईका यह संयुक्तांक है। सुन्दर कागज़पर अनेक चित्रोंसे सुसज्जित यह अंक बालकोंके लिये बड़ा मनोरञ्जक होगा। इसमें अफगानिस्तानकी भौगोलिक परिस्थिति, कारीगरी, रहन, सहन, आचार, व्यवहार, सभ्यता, संक्षिप्त इतिहास, और युद्धोंका वर्णन तथा वर्त्तमान क्रान्तिका उल्लेख किया गया है। अफगानियोंकी कहावतों और कहानियोंका भी समावेश कर दिया गया है। इस सुन्दर अंकके लिये हम मिश्रजी के कृतज्ञ हैं। भूगोल मिश्रजीका ही आरोपित पौधा है औरअब तक वे ही उसे सींच रहे हैं। इस सम्पूर्ण अंकमें जितने भी लेख हैं वे मिश्रजी की ही लेखनीसे लिखे गये हैं। अतः इस भूगोलांकको मिश्रजी की लिखी छोटी पुस्तक समझनी चाहिये न कि पत्रिका।

—सत्यप्रकाश

सुप्रभातम्

(वैदिकाङ्क) सम्पादक, श्री पं० केदारनाथ शर्मा सारस्वत। काशी। वार्षिक मूल्य ३)।

वैशाख-ज्येष्ठ का संयुक्तांक वैदिकाङ्क निकाला गया है। इसमें अनेक संस्कृत साहित्य वेत्ताओंके चित्रभी दिये गये हैं। श्री बाबू भगवान दासजी ने धनराज शास्त्री के प्रणववाद के आधार पर अ-उ-म् की त्रैत संज्ञा पर कुछ प्रकाश डाला है। वेदेऽप्सरो गन्धर्वाः, वेदाः वर्तमाने विज्ञानञ्च, तथा मालवीयजी का 'ब्राह्मणादीनां परस्परं सहभोजव्यवस्था' आदि उल्लेखनीय लेख हैं। मालवीयजी ने स्मृतियों के आधार पर ही यह लेख लिखा है। लेख अभी समाप्त नहीं हुा है, अतः इसके विषय में कुछ नहीं कहा जासकता है। पत्रके लेखकों के विचार प्रायः उदार हैं अतः आशा है कि पण्डित मण्डली की विचार-संकीर्णता दूर करने में यह पत्र सफल होगा। हम इस पत्र की हृदय से उन्नति चाहते हैं। संस्कृत-प्रेमियों को इसका आदर करना चाहिये।

—सत्यप्रकाश

प्रयागकी विज्ञानपरिषत्‌का मुखपत्र

Vijnana, the Hindi Organ of the Vernacular Scientific Society Allahabad.

अवैतनिक सम्पादक

प्रोफ़ेसर ब्रजराज,

एम० ए०, बी० एस-सी०, एल० एल० बी०

भाग २९

मेष—कन्या १९८६

प्रकाशक

विज्ञान परिषत् प्रयाग।

वार्षिक मूल्य, तीन रुपये

विषयानुक्रमणिका

औद्योगिक रसायन

जीवन चरित्र

ज्योतिष

भूगर्भ शास्त्र

भौतिक विज्ञान

रसायन शास्त्र

वनस्पति शास्त्र

वैद्यक शास्त्र

मिश्रित

वैज्ञानिक पुस्तकें

विज्ञान परिषद् ग्रन्थमाला

१—विज्ञान प्रवेशिका भाग १—ले० प्रो० रामदास गौड़, एम. ए., तथा प्रो० सालिग्राम, एम.एस-सी. ।)

२—मिफ़ताह-उल-फ़नून—(वि० प्र० भाग १ का उर्दू भाषान्तर) अनु० प्रो० सैयद मोहम्मद अली नामी, एम. ए. ... ... ।)

३—ताप—ले० प्रो० प्रेमवल्लभ जोषी, एम. ए. ।=)

४—हरारत—(तापका उर्दू भाषान्तर) अनु० प्रो० मेहदी हुसेन नासिरी, एम. ए. ... ।)

५—विज्ञान प्रवेशिका भाग २—ले अध्यापक महावीर प्रसाद, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद १)

६—मनोरंजक रसायन—ले० प्रो० गोपालस्वरूप भार्गव एम. एस-सी. । इसमें साइन्सकी बहुत सी मनोहर बातें लिखी हैं। जो लोग साइन्स-की बातें हिन्दीमें जानना चाहते हैं वे इस पुस्तक को जरूर पढ़ें। ... १॥)

७—सूर्य सिद्धान्त विज्ञान भाष्य—ले० श्री० महावीर प्रसाद श्रीवास्तव, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद

- मध्यमाधिकार ... ... ॥=)
- स्पष्टाधिकार ... ... ।॥)
- त्रिप्रश्नाधिकार ... ... १॥)
- चन्द्रग्रहणाधिकारसेउदयास्ताधिकारतक १॥)

'विज्ञान' ग्रन्थमाला

१—पशुपक्षियोंका शृङ्गार रहस्य—ले० अ० शालिग्राम वर्मा, एम.ए., बी. एस-सी. ... -)

२—ज़ीनत वहश व तयर—अनु० प्रो० मेहदी-हुसैन नासिरी, एम. ए. ... ... -)

३—केला—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली -)

४—सुवर्णकारी—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली ।)

५—गुरुदेवके साथ यात्रा—ले० अध्या० महावीर प्रसाद, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद ।=)

६—शिक्षितोंका स्वास्थ्य व्यतिक्रम—ले०स्वर्गीय पं० गोपाल नारायण सेन सिंह, बी.ए., एल.टी. ।)

७—चुम्बक—ले० प्रो० सालिग्राम भार्गव, एम. एस-सी. ... ... ।=)

८—क्षयरोग—ले० डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा, बी. एस. सी, एम-बी. बी. एस ... -)

९—दियासलाई और फ़ास्फ़ोरस—ले० प्रो० रामदास गौड़, एम. ए. ... ... -)

१०—वैज्ञानिक परिमाण—ले० डा० निहाल करण सेठी, डी. एस. सी. तथा श्री सत्य-प्रकाश, एम. एस-सी० ... ... १॥)

११—कृत्रिम काष्ठ—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली -)

१२—आलू—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली ... ।)

१३—फसल के शत्रु—ले० श्री० शङ्करराव जोषी ।-)

१४—ज्वर निदान और शुश्रूषा—ले० डा० बी० के० मित्र, एल. एम. एस. ... ... ।)

१५—कार्बनिक रसायन—ले० श्री० सत्य-प्रकाश एम-एस-सी० ... ... २॥)

१६—कपास और भारतवर्ष—ले० पं० तेज शङ्कर कोचक, बी. ए., एस-सी. ... -)

१७—मनुष्यका आहार—ले० श्री० गोपीनाथ गुप्त वैद्य ... ... १)

१८—वर्षा और वनस्पति—ले० शङ्कर राव जोषी ।)

१९—सुन्दरी मनोरमाकी करुण कथा—अनु० श्री नवनिद्धिराय, एम. ए. ... ... -)॥

अन्य वैज्ञानिक पुस्तकें

हमारे शरीरकी रचना—ले० डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा, बी. एस-सी., एम. बी., बी. एस.

- भाग १ ... ... २॥।)
- भाग २ ... ... ४)

चिकित्सा-सोपान—ले० डा० बी० के० मित्र, एल. एम. एस. ... ... १)

भारी भ्रम—ले० प्रो० रामदास गौड़ ... १।)

वैज्ञानिक अद्वैतवाद—ले० प्रो० रामदास गौड़ १॥।=)

वैज्ञानिक कोष— ... ... ४)

गृह-शिल्प— ... ... ॥)

खादका उपयोग— ... ... १)

मंत्री

विज्ञान परिषत्, प्रयाग

मुद्रक—सूरजप्रसाद खन्ना, हिन्दी-साहित्य प्रेस, प्रयाग

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces for use in Schools and Libraries.

पूर्ण संख्या—१७५ Reg. No. A.708

भाग ३० Vol. 30. | तुला, संवत् १९८६ | संख्या १ No. 1

अक्टूबर १९२९

विज्ञान

प्रयागकी विज्ञानपरिषत्‌का मुखपत्र

Vijnana, the Hindi Organ of the Vernacular Scientific Society, Allahabad

अवैतनिक सम्पादक

ब्रजराज

एम. ए., बी. एस-सी., एल-एल, बी.

सत्यप्रकाश,

एम. एस-सी., विशारद.

प्रकाशक

वार्षिक मूल्य ३)] विज्ञान-परिषत्, प्रयाग [१ प्रतिका मूल्य ।)

विषय-सूची

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५॥

भाग ३० | तुला, संवत् १९८६ | संख्या १

खाण्डका व्यवसाय

[ले०—श्री ब्र० भीमसेन जी]

[२]

गत लेखमें खाण्डको तैय्यार करनेकी स्वदेशी तथा विदेशी प्रणालीके भेद तथा लाभालाभपर विचार किया गया था। अब खाण्डको शुद्ध तथा श्वेत बनानेके लिये देशी तथा विदेशी विधियोंपर विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है। इस प्रयोजनके लिये सबसे प्रथम "रस की रसायन" का जानना अत्यावश्यक है।

रसकी रसायन—रस जैसा कोल्हूसे निकलता है मटमैलासा घोल होता है। इसमें अधिकांश तो इक्षोज (Sucrose) होता है। इसके सिवाय अज्ञात रसायनिक संघटनके गोंदीले पदार्थ (Gums) भी होते हैं। कार्बनिक एवं अकार्बनिक अम्लोंके लवण भी थोड़ी बहुत मात्रामें पाये जाते हैं। रसमें जो रंजक पदार्थ होता है उसमें मुख्य भाग पांशुजके लवणोंका है। इनके साथ साथ निम्न लिखित अशुद्धियां प्रायः सभी रसोंमें पाई जाती हैं।

(१) पर्णहरिन् (Chlorophyll).—रसका हरा पीलासा रंग इसीके कारण होता है। इसमें कलार्द्रकण होते हैं जो इतने सूक्ष्म होते हैं कि साधारणतया छानने मात्रसे ही उन्हें पृथक् नहीं किया जा सकता।

(२) सेकैरेटिन (Saccharatin).—यह रेशेको पीलासा रंग देती है। यह पानीमें अत्यन्त घुलन शील होनेके कारण बहुधा शीरेतक जाती है परन्तु इसकी मात्रा कम होनेके कारण खाण्डको पृथक् करनेमें बहुत बाधा नहीं डालती।

(३) एन्थो साइनीन (Anthocynain).—खाण्ड तय्यार करते हुए रसका रंग काला पड़ जाता है। यह इसीके कारण होता है। शीरेमें उपस्थित लोहेके साथ मिलकर यह यौगिक बना देती है जिसके कारण शीरेका रंग काला पड़ जाता है।

(४) मुक्त शर्करिकाम्ल (Saccharic Acid).—यह रसमें सीधा गन्ने से ही आता है। खाण्ड का खमीरण इस अम्लकी उपस्थितिके कारण होता है जिसका फल यह होता है कि खाण्ड तैयार करते समय जब रस को गर्म किया जाता है तो विपर्यय हो जाता है, अर्थात् खांड द्राक्षोज (Glucose) और फलोज (Fructose) में बदल जाती है।

$$\text{क}_{12}\,\text{उ}_{22}\,\text{ओ}_{11} + \text{उ}_2\,\text{ओ} = \text{क}_6\,\text{उ}_{12}\,\text{ओ}_6 + \text{क}_6\,\text{उ}_{12}\,\text{ओ}_6$$

(५) मुक्त स्फुरिकाम्ल (Free phosphoric-acid):—इसकी उपस्थिति के भी वही परिणाम होते हैं जो मुक्त शर्करिकाम्ल के हैं।

(६) प्रेरकजीव (enzyme):—यह एक प्रकारके कृमि होते हैं। यह इतने सूक्ष्म होते हैं कि बड़ी भारी तादादमें उपस्थित होते हुए भी इनको पृथक् नहीं किया जा सकता है। यह खमीरण (fermentation) अति शीघ्रतासे आरम्भ करते हैं जिससे खांडमें रवा नहीं पड़ता और शीरा लतपत हो जाता है। यदि कुछ दाना पड़ भी जाता है तो शीरा अत्यधिक चिपकने वाला होने के कारण खाण्डको पूर्णतया पृथक् नहीं होने देता।

(७) अण्डसित पदार्थ (Albuminious matter):—इसके कारण रसमें चिपचिपाहट और मटमैलापन होता है अतः इसे भी पृथक् करना आवश्यक है।

(८) कलाद्र:—द्रव्य यह पदार्थ भी कुछ मात्रा में रसमें उपस्थित रहता है।

इन मलिनताओंको दूर करनेके लिए रसकी क्षारों तथा अम्लोंके साथ क्रिया कराई जाती है। रसको गर्म करनेसे भी कुछ मलिनताएँ दूरकी जा सकती हैं।

रसपर चूनेका प्रभाव—यह बात प्रायः देखी जाती है कि जब रसको चूनादि से क्षारीय किया जाता है तो यह शीघ्रतासे छनने लगता है। जब खौलते हुए रसमें, साफ़ करनेके लिये चूनेका पानी डालते हैं तो बर्तनके तलेमें मैलासा कीचड़ बैठ जाता है। उसका अधिकांश अवयव मोमसा पदार्थ होता है। विश्लेषण द्वारा पता लगा है कि उनमें चार्बिक अम्लोंकी राशि बड़ी मात्रामें होती है। चूनेके संयोगसे इन अम्लोंका साबुनी-करण (Saponification) हो जाता है। इसके अतिरिक्त रसमें जो भी कोई मुक्त-अम्ल उपस्थित होते हैं वे चूनेके साथ मिलकर अनघुल लवण बनाकर अवक्षेपित हो जाते हैं। चूना बराबर देते रहनेसे कलाद्र पदार्थोंका अधःक्षेपण होने लगता है। स्फुरिकाम्ल और कुछ अण्डसित् पदार्थ और लोहेके ओषिद भी अवक्षेपित हो जाते हैं। पर्ण हरिन्, इक्षुमोम और कुछ अन्य रंग भी कटकर अलग हो जाते हैं। चूनेकी विविध मात्राओंसे जो-जो अवक्षेप प्राप्त हुए हैं वे नीचेकी सारिणीमें दिये जाते हैं—

३·२ घ० शम० प्रमित प्रति १०० घ० शम० के अम्लत्ववाले रसमें दिव्योलथलीन् (फिनौलथेलीन) को सूचककी तरह प्रयुक्त करके नीचे लिखी मात्रामें चूना डाला गया और अवक्षेप तोल लिया गया।

*रसकी अम्लता प्रमित घ॰ शम॰ प्रति १०० घ॰ शम॰ में	प्रति १०० घ॰ शम॰ के लिये चूना, खओ, की मात्रा ग्राममें	प्रति १०० घ॰ शम॰ के लिये अवक्षेप का भार	अवक्षेपमें राखका भार
३·२	०	०·२४२	०·०१२
२·७	०·०१३	०·२४८	०·०१४
२·३	०·०२६	०·२६४	०·०२४
१·८	०·०३९	०·२८८	०·०३०
१·४	०·०५२	०·३२०	०·०४४
०·९	०·०६५	०·३४०	०·०७०
०·५	०·०७९	०·३७०	०·०८८
०	०·०९२	०·४०८	०·१०४
०·५ (क्षारीय)	०·१०४	०·४०६	०·११२

* नील डीयरकी 'Cane sugar' नामी पुस्तकसे ।

ऊपरकी सरिणीसे पता चलता है कि सबसे अधिक अवक्षेप तब आता है जब "दिव्योलथलीन" के लिये रस क्षारीय हो जाता है परन्तु यह ध्यान रखना चाहिए कि लिटमस्के लिये पूर्ण शिथिलही हो।

रसपर गरमीका प्रभाव—आंचका प्रभाव मुख्य तथा यही होता है कि अवक्षेप आदि शीघ्रता और सरलतासे बैठने लगते हैं। आगे चलकर स्पष्ट पता लगेगा कि ताप छाननेमें बड़ा सहायक है। ४०° श ताप-क्रमपर इक्षोजमें कुछ परिवर्तन और करामलीकरण हो जाता है। इसके अतिरिक्त रसमें जो प्रेरकजीव और कीटाणु उपस्थित रहते हैं वे भी गर्मीके आधिक्यमें नष्ट हो जाते हैं और इसीलिये विपर्यय आदिका भय नहीं रहता।

इन दोनों प्रभावोंको दृष्टिमें रखते हुए यह सरलतासे कहा जा सकता है कि गर्मी और चूनेका प्रभाव टकराता है अतः सबसे उत्तम रीति वही समझी जानी चाहिए जिसमें कड़ाहेके ताप-क्रमपर चूनेकी क्रियाकी जांचकी जाय। रसकी शुद्धता इसीमें है कि घोलमेंसे अशर्करा निकाल दी जाय। यह शुद्धता तैरनेवाले ठोस पदार्थोंको केवल छानकर अलगा लेनेसे ही प्राप्त नहीं होती, पितु छाननेके बाद चूना और गर्मी दोनोंके सम्मिलित प्रयोगसे प्राप्तकी जाती है। इसी क्रियाको परिशोधन (Defecation) की प्रक्रियाके नामसे कहा जाता है।

परिशोधनका प्रयोजन रसकी मोटी-मोटी अशुद्धियोंको दूर करना है। वे अशुद्धियाँ पहिले गिनायी जा चुकी हैं। इस विधिमें चूना ध्यानसे डालना चाहिये, और इतना डालना चाहिये कि रस लिटमस पत्रके लिये ठीक शिथिल हो जाय। ध्यान रहे कि जो चूना प्रयोगके लिये लिया गया हो वह शुद्ध हो, और साथही इसके गर्म रसमें ही चूनेका दूध देना उत्तम है अन्यथा पहिले उदासीन करके पुनः गर्म करनेसे कुछ क्षारीय हो जानेका भय है। चूना प्रायः २°/॰ डाला जाता है परन्तु यह मात्रा रसकी तथा चूनेकी शुद्धता पर बहुत कुछ निर्भर है। यदि रसमें मुक्त मज्जिकाम्ल अधिक मात्रामें उपस्थित होंगे तो चूनेको भी अधिक मात्रा आवश्यक होगी, साधारणतया मात्रा २°/॰ ही है। परन्तु लिटमस द्वारा परीक्षा करके ही चूना डालना चाहिये।

इस प्रक्रियाके लिये परिशोधन यंत्र (Defecating tanks) बने होते हैं। हैटन का परिशोधक (Hatton's continuous defecator) विशेषतया उल्लेखनीय है।

एक गहरासा कड़ाहा लिया जाता है जिसके नीचे भाप प्रवाहित होनेके लिए खोल बना होता है। एक ओरसे इसमें भाप प्रवाहितकी जाती है। पासवाले नलके "क" से चूनेका पानी परिमित मात्रामें डाला जाता है; दूसरी ओरसे रस लगातार कड़ाहेमें आता रहता है। इस कड़ाहेके बीचमें 'द' बर्तन तार जालोंके आश्रयसे लटकाया जाता है। यह गिलासके आकारका बर्तन है। रस जो कि चूनेके पानीके साथ मिलकर साफ़ और हलका हो जाता है तार-जालोंमेंसे छन छन कर इस 'द' पात्रमें भर जाता है। इस बर्तनके ऊपर भी रस भरा रहता है। परन्तु कड़ाहेके बीचमें लगा होनेके कारण बर्तनमें
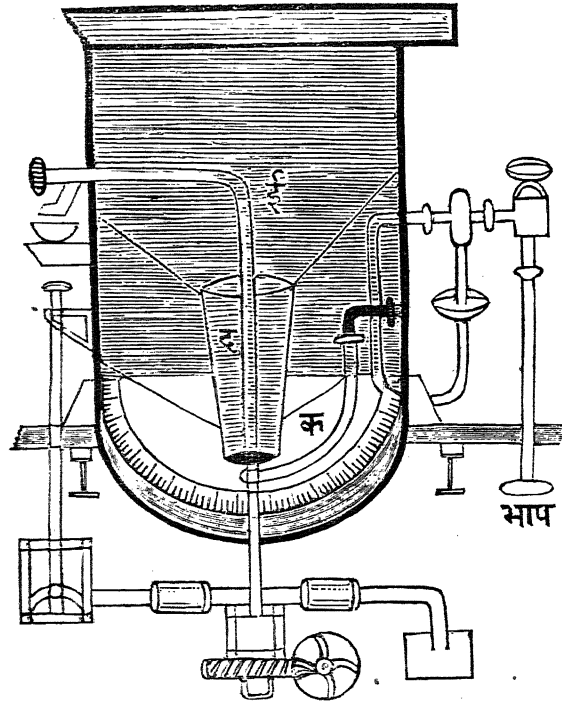
रस बिलकुल शुद्ध अवस्थामें ही आता है। जितना रस कड़ाहेमें आता है उतना ही क्रमशः 'द' पात्रमें से 'ई' नल द्वारा निकलता भी रहता है। इस प्रकार लगातार रस चूनेके सम्पर्कमें आ आ कर परिशोधित होता रहता है। मैल जब बहुत अवक्षेपित हो जाता है तो नीचेके मार्गसे निकाल दिया जाता है। इसी प्रकारके अन्य परिशोधक भी प्रयोगमें लाये जाते हैं जिनका वर्णन विस्तार भयसे यहां नहीं दिया जाता।

इस प्रक्रियाको करानेके लिये हमारे देशमें सादा उपकरण प्रयोगमें लाया जाता है। एक कड़ाहमें चूना २°/॰ डालकर रसको खूब खौलाया जाता है। मैल ऊपर आकर चकत्तेके रूपमें इकट्ठा होने लगता है। उसे पौनीसे निकालकर अलगकर लेते हैं। इस प्रकारसे छारणादि की भी विशेष आवश्यकता नहीं रहती। कभी कभी चूनेके स्थानपर सज्जीका भी प्रयोग करते हैं। इसकी मात्रा तीन या चार मन रसमें एक छटांकसे अधिक न होनी चाहिये। अधिक

सज्जी पड़नेसे गुड़ बरसातमें ढीला पड़ जाता है, और स्वाद भी बिगड़ने लगता है। उबालते समय यदि झाग अधिक उभरे तो एरण्डीके बीजके दूधके छींटे देने चाहियें।

इस प्रयोजनके लिये एक और भी विधि है। यह विधि आज कल भी खांडसालोंमें प्रायः प्रयोगमें आती है। उसमें जहाँ रसका शोधीकरण (clarification) होता है वहां नीरंगीकरण (Bleaching) भी साथ २ ही हो जाता है। पहिले कढ़ाह को अच्छी तरह साफ़कर लेते हैं। इसके पश्चात् एक गाढ़ेके टुकड़ेमें रस छानकर कढ़ाहेमें छोड़ देते हैं और आंच लगाकर चलाते हैं जब रस गर्म होने लगता है तब एक सेर भिण्डीके छिलकेका पानी अथवा चुकलईका पानी एक डोई में भरकर कढ़ाह के बीचों बीच रख बहुत धीरेसे उलट देते हैं। तदनन्तर लगातार आंच देते हैं जिससे मैल ऊपर आ जाता है और कुछ कालमें पककर फटनेलगता है। मैल ज्योंही फटनेलगे त्योंही पौनेसे उतारकर एक नाँदमें जिसके मुखपर एक चौखटा रहता है और उसपर एक झौआ रखा रहता है जिसपर गाढ़ेका एक टुकड़ा बंधा होता है उस टुकड़ेपर मैल ढाल दिया जाता है जिससे रस छनकर नाँदमें चला जाता है और मैल कपड़ेपर रह जाता है। इसप्रकार छने हुए रसको भी कढ़ाहमें डालते रहते हैं। दुबारा भी यही क्रिया दुहराई जाती है। रस बिलकुल पारदर्शक हलके पीलेसे रंगका हो जाता है। इसके पश्चात् लगातार आंच लगाते हैं और गाढ़ा करते हैं। यदि फेना अधिक उठे तो अण्डीका तेल अथवा अथवा अण्डी पानीमें कुचलकर उबलते हुए माल पर छिड़क देते हैं। इस प्रकार रस बिलकुल साफ हो जाता है।

भिण्डी का पानी बनाने की रीति—

भिण्डी, चुकलई आदि जिसका भी पानी बनाना अभीष्ट हो उसकी छाल ली जाती है और उसे कुचलकर नाँदमें पानीमें घोलते हैं और कूट कर मिलाते जाते हैं। जब पानी लसदार और गाढ़ा होजाता है तब वह उपर्युक्त प्रयोगमें लाया जाता है।

नीरङ्गीकरण (Bleaching)

इसके अनन्तर नीरंगीकरण और शुद्धिकरणका प्रकरण आरम्भ होता है। प्रायः यह दोनों कियाएं कच्ची खांडके साथ कराई जाती हैं। इस प्रयोजन के लिये नवीन तथा प्राचीन विधियाँ निम्न हैं परन्तु विधियों पर विस्तारसे विचार करने से पूर्व इनके सिद्धान्तपर विचार करना असंगत न होगा।

रस पर अम्ल का प्रभाव—अम्ल से इक्षोज (Sucrose) द्राक्षोज (Glucose) और फलोज (Fructose) में परिणत हो जाता है। समीकरण निम्न है—

$$क_{१२}\ उ_{२२}\ ओ_{११} + उ_{२}\ ओ = क_{६}\ उ_{१२}\ ओ_{६} + क_{६}\ उ_{१२}\ ओ_{६}$$
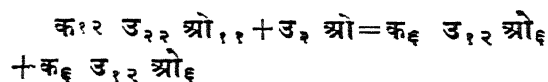
अंग्रेजी ढङ्ग पर चलाये गये कारखानोंमें ही अम्लका प्रयोग किया जाता है परन्तु देसी खाडंसालोंमें अम्ल प्रयोग नहीं किया जाता। न तो रस इतने कालतक रक्खा जाता है कि उसमें उठान (Fermentalion) होकर स्वयं कोई अम्ल बनजावे और न विदेशी प्रणालीके अनुसार अम्लका बाह्य प्रयोगही कियाजाता है तोभी शुद्धिकरणकेविचारसे गन्धसाम्ल और कार्बनिकाम्लका प्रयोग लाभप्रद ही सिद्ध हुआ है। अतः इन दोनों प्रक्रियाओंका भी संक्षिप्त वर्णन आवश्यक प्रतीत होता है। इनमें प्रथमका नाम गन्धित-करण (Sulphitation) और द्वितीयका नाम कर्बनेत-करण (Carbonation) है। नीरङ्गी करणके प्रकरणमें यही विशेषता गिनाई जासकती हैं।

गन्धितकरण विधि

परिशोधन की प्रकियामें यदि चूना अधिक मात्रामें पड़जाय तो खाण्डकी बड़ी मात्राभी खटिक शर्करेतके रूपमें अवक्षेपित होजाती है अतः चूने

को गन्धेतके (sulphate) रूपमें अवक्षेपित करने केलिये गन्धसाम्लका (गओ₂ के रूपमें) प्रयोग किया जाता है। यह कहना कठिन है कि गन्धक द्विओषिद्की रसपर क्या क्रिया होती है परन्तु परीक्षणों तथा अनुभवोंसे बिलकुल ठीक मालूम होता है कि गन्धक द्विओषिद्की क्रियासे रसपर निम्न प्रभाव होते हैं।

(१) रसके छननेमें सरलता हो जाती है।
(२) अशुद्धियाँ शीघ्रतासे बैठने लगती हैं।
(३) खमीरण बिलकुल बन्द हो जाती है।
(४) अधः क्षेपण शीघ्रतासे होता है।
(५) स्निग्धता बहुत कम हो जाती है।
(६) चिपचिपाहट भी बहुत कम हो जाती है।
(७) रस का रंग भी कट जाता है।

गन्धक द्विओषिद्की बहुत अधिक मात्रा प्रवाहित नहीं करनी चाहिए। लेकिन उसके साथ रस कोई अम्लीयता न दे परन्तु द्विव्योलथलीनके साथ अम्लीयता देनेपर गन्धक द्विओषिद्की मात्रा ठीक प्रवाहितकी गई है या नहीं यह पहिचाना जा सकता है। कई कारखानोंमें पहिले गन्धक द्विओषिद प्रवाहितकी जाती है और फिर चूने द्वारा उसे शिथिल किया जाता है। गन्धक द्विओषिद तैय्यार करनेके लिये गन्धकको वायुके साथ जलाते हैं। निम्न उपकरण प्रयोगमें लाये जाते हैं—
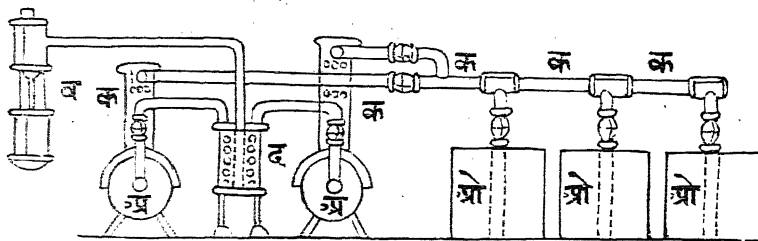
अ 'अ' दो कुप्पियाँ शुण्डा लगी हुई हैं इनमें गन्धक द्विओषिद डाला जाता है। नीचेसे ताप दिया जाता है। साथमें रखे हुए 'द' कमरेसे खटिक हरिद द्वारा शुद्धकी हुई या चूनेके पत्थर द्वारा शुद्धकी हुई वायु इन कुप्पिओंमें आती है। वहाँ गन्धक वायु के सम्पर्कमें आकर गन्धक द्विओषिद रूपमें परिणत हो जाता है। इन कुप्पियोंके ऊपर एक डबल प्लेट लगा होता है। उसमेंसे एक ओरसे ठण्डा पानी आता है और दूसरी ओरसे गर्म होकर निकल जाता है। यह पानी इसलिये प्रवाहित किया जाता है कि ठोस रूपमें कुप्पीसे जो गन्धक बाहर जा रहा है वह ठंडा होकर पुनः कुप्पीमें गिर जाय। कुप्पियोंके मुख पर भी चूनेके पत्थर रखे जाते हैं। जिनसे गैस बिलकुल शुद्ध हो जाती है इस प्रकार बिलकुल शुद्ध होकर 'इ' 'इ' बेलनमें चली जाती है। चित्र पिछले पृष्ठपर दिखाया गया है। बड़ी मात्रामें तैय्यार करनेके लिये निम्न चित्रमें दिखाये गये उपकरणका प्रयोग किया जा सकताहै। इसमें सिद्धान्त वही है।

(चित्र, देखिये ७वें पृष्ट पर)

गन्धित-करणमें रसको ७०° से ऊपर नहीं गरम करना चाहिये। अधिक गन्धक द्विओषिद भी न प्रवाहित करना चाहिए क्योंकि खटिक अर्ध गन्धित बन जाता है। यदि ठीक मात्रा होगी तो खटिक गन्धेत ही बनेगा। यदि गन्धक द्विओषिद अधिक हो जाय तो भाप द्वारा हटाया जा सकता है। यदि बहुत अधिक होती पुनः चूना डाला जाता है जब क्रिया पूर्ण होजाय तो रस पूर्णता शिथिल होना चाहिए!

कर्बनेतकरणविधि

परिशोधन में यदि चूना अधिक पड़ जाय

तो उसे इस विधि द्वारा भी अवक्षेपित किया जा सकता है। वहविधि पहले पहिल जर्मनीने चुकन्दर के लिये प्रयुक्तकी थी परन्तु इसका प्रयोग गन्नेपर जावाके लोगोंने ही पहिले पहिल किया। इस क्रिया से शर्करिकाम्ल पूरी तरहसे हटाया जासकता है। यहाँ तक कि थोड़ासा द्राक्षोज या खाण्ड भी
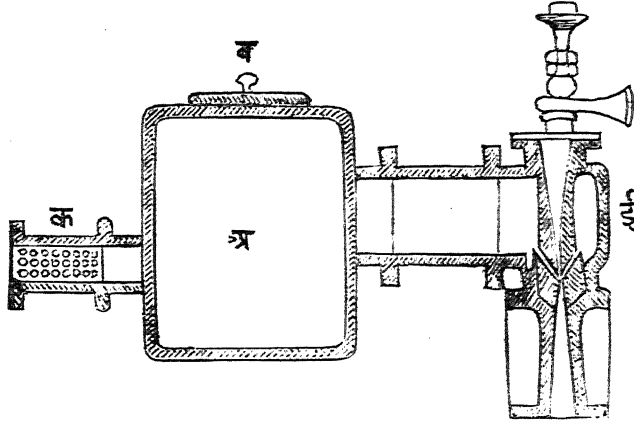
अवक्षेपित हो जाती है। केवल परिशोधन में यह संभव नहीं क्योंकि चूने की अधिकमात्रा विना खटकेके नहीं डाली जा सकती। कर्बनेतकरण दो प्रकारका होता है—

(i) अकेला

(ii) दोहरा

(i) अकेला— इस क्रियामें तापांश ९०° से ऊपर नहीं होने दिया जाता। यदि तापांश ९०° से ऊपर होजाय तो खटिकम्के लवण पुनः घुल जाते हैं। चूना गन्नेके भारके अनुपातमें एकसे १½ °/. डाला जाता है इससे चूनेकी मात्रा कुछ अधिक हो जाती है फिर दश मिनटके लिये ५५ श ताप पर कर्बनद्विओषिद् प्रवाहितकी जाती है और पुनः ९०° तक गर्म करते हैं तत्पश्चात् रसको निथार लेते हैं।

(ii) दोहराः—दोहरी कर्बनेतकरणकी बिधि का लाभ यह है कि प्रथम क्रियामें जो खटिकम्के लवण घुलने लगते हैं, उन्हें घुलनेसे रोकती है और गोंद तथा बिरोज़ेकी वस्तुएँ चूनेकी अधिक मात्रासे अवक्षेपित भी हो जाती हैं। यह माना जाता है कि साफ़ करनेमें चूना अधिक मात्रामें डालना चाहिये और चूनेको बाद में अवक्षेपित कर लेना चाहिए। पुनः कर्बन द्विओषिद् प्रवाहित किया जाता है ताकि क्षारीयता ०·५°/. रह जाय। फिर रसको खौलाया जाता है और फिर कर्बन द्विओषिद गुज़ारा जाता है। अबके रसको बिलकुल शिथिल होना चाहिये। इसकी परीक्षाके लिये स/१०० दाहक पांशुजक्षारमें दिव्योलथलीन सूचकके तौरपर डालकर रसको डाला जाता है। यदि रसकी मात्रा १० घ. शम. से कम है तो रस अम्लीय है अतः संख्या इससे ऊंची होनी चाहिये। इस क्रियाके निम्न लाभ हैं—

(१) रस शुद्ध हो जाने से चिपकता कम है।

(२) छारण बड़ी सुगमतासे होता है।

(३) यदि परिशोधनक्रिया की गई हो तो रसमें दहीका सा पदार्थ आ जाता है और उसमेंसे भाप अवश्य प्रवाहित करनी पड़ती है, अन्यथा अवक्षेप शीघ्रतासे नहीं बैठता परन्तु इसमें यह बात नहीं है।

(४) गन्धितकरण से शुद्ध किया हुआ रस बैठनेमें बहुत समय लेता है परन्तु इस विधिसे रस

शीघ्रतासे ही निथारा जा सकता है।

ये दोनों विधियाँ ही कारखानोंमें प्रयुक्त होती हैं। खाण्डसालोंमें तो भिण्डीके पानीसे ही सब कुछ हो जाता है।

संशोधन (Refining)

गन्धितकरण और कर्बनेतकरणकी प्रक्रियासे रसका रंग बहुत कुछ कट जाता है और अवक्षेप भी शीघ्रतासे बैठने लगता है, इससे छाननेमें तथा रवोंके पृथक्करणमें पर्याप्त सरलता हो जाती है तो भी बिलकुल श्वेत खाण्ड तय्यार करनेके लिये 'संशोधन' की प्रक्रिया अत्यावश्यक और अनिवार्य है। योरूप और जावामें इस प्रयोजनके लिये हड्डीके कोयले (Animal charcoal) का प्रयोग किया जाता है। हड्डीका कोयला रंगका ८०°/. भाग चूस लेता है। कई वैज्ञानिक हड्डी के कोयले के चूर्णको रसमें डालते हैं और खौलाते हैं परन्तु इससे इतना लाभ नहीं होता रंग विनाशकी क्रिया कराके टाटके छन्नों (Bagfilters) मेंसे छाननेके बाद यदि रसको हड्डीके कोयले अथवा वानस्पतिक कोयलाके लम्बे स्तूपोंमेंसे छाना जाय तो रंगका बड़ा हिस्सा शीघ्र ही कट जाता है। इस क्रियाको सहज करनेके लिये छाननेके उपयोगी सिद्धान्तोंका प्रयोग करना चाहिए क्योंकि कोयलेके छन्ने बहुत लम्बे गहरेपर कम चौड़े होते हैं अतः वस्तु धीरे-धीरे छनती है, इसलिये शून्य या अधिक दबाव डालकर छारणकी क्रियाको जल्दी कराया जाता है। अवस्थाओंके अनुकूल दोनों उपायोंमेंसे किसी एकका अवलम्बन किया जासकता है। संशोधनकी प्रक्रिया रङ्गविनाशके साथ ही कर लेनी चाहिये नहीं तो व्यर्थमें क्रिया लम्बी, और तापका व्यय होता है। पहिले कच्ची या अशुद्ध खांड बनानेके लिये वाष्पीकरण करानेमें तापका व्यय करना पड़ता है और पुनः संशोधनके लिये कच्ची खांडको द्रावक (Melter) आदिमें पिघलाकर उसका घोल बनानेमें और उसके वाष्पीकरणमें सारी प्रक्रिया दुहरानी पड़ती है। यदि रंग विनाशके साथ-साथ संशोधनका कार्य भी किया जाय तो इस सबकी कोई आवश्यकता नहीं रहती। इसी कारण देशी विधियों के अनुसार 'Melter Blowups' आदि उपकरणोंकी समस्या भी सामने उपस्थित नहीं होती। एक विदेशी संशोधनालय में निम्न वस्तुएँ आवश्यक होंगी और निम्न प्रक्रिया होगी।

१—पानी—पानी पर्य्याप्त मात्रामें और मृदु (Soft) होना चाहिए। भपकों (Boilers) तथा धोने आदिके काममें इसके बिना कठिनता होती है। साथही साथ छन्नोंके धोनेमें पानी बड़ी मात्रा में व्यय होता है।

२—पानी की सहायतासे कच्ची और अशुद्ध खाण्ड का १'०२५ घनत्ववाला घोल जिसमें ५५°/. ठोस पदार्थ उपस्थित हो बनाया जाता है और फिर इस घोलको द्रावक (melter) में डालकर जो खांड पिघली नहीं होती वह भापकी सहायतासे पिघलाई जाती है। वस्तुको खूब चलाया जाता है, और तापक्रम १७०° श कर देते हैं। इस प्रकारका घोल तैय्यार करके पम्पोंकी सहायतासे ब्लोअप्स में पहुँचाया जाता है। यह ब्लोअप्स एक प्रकार की शोधन टंकियाँ (Defecating tanks) होती हैं जो कि वाष्प कुण्डलियों (Steam coils) की सहायतासे गर्म की जाती हैं। प्रत्येक ब्लोअप्स में एक कुंडली खुली हुई भी होती है जिसमेंसे वायु प्रवाहितकी जाती है। यह वायु सम्पूर्ण वस्तु को हिलाती है। इनका तापक्रम १६०° रखा जाता है। यदि खाण्ड बहुत खराब और जली हुई ली गई हो तो तापक्रम ऊँचा भी किया जा सकता है। इस शोधन का प्रयोजन यही होता है कि कार्बनिकअम्ल तथा अन्यान्य अवलम्बनस्थ मल दूर हो जांय। चूना, फिटकरी, सज्जी, घुलन शील स्फुरेत और हड्डीका कोयला प्रयोगमें लाया जाता है जिस खाण्डमें द्राक्षोजकी मात्रा अधिक हो उसमें चूनादि भी अधिक व्यय होगा। खूनके प्रयोगसे भी निर्मलीकरण कराया

जा सकता है परन्तु इसका प्रयोग अमानुषिक तथा घृणास्पद मालूम होता है। चूनेका स्फुरेत वस्तुके भारके अनुपातमें ०.५ °/₀ मात्रामें डाला जाता है। रसको २० मिनट तक खौलाकर चूने से पूर्णतया शिथिलकर लेते हैं। तापक्रम २१२° फ करके वायु प्रवाहित करना बन्दकर देते हैं, जिसका परिणाम यह होता है कि मैल खूब पककर ऊपर इकट्ठी हो जाती है। जब मैलमें दो तीन दराड़ें पड़ जावें तब क्रिया समाप्त कर देनी चाहिये और द्रवको पृथक् कर लेना चाहिये।

३—मैल तथा रसको पृथक् करनेके लिये थैलेदार छन्नों (Bag filters) का प्रयोग उत्तम है। थैले, किरमिच या कैनवसके बने होते हैं। इनका व्यास ३" से ६" और लम्बाई ४' से ८' तक होती है। अन्दरकी ओर एक रस्सी बँधी होती है जिसके द्वारा थैले खींचकर लौटाये जा सकते हैं। और मलके आधिक्य होनेपर धोलिये जाते हैं। इस प्रकारके थैलोंकी संख्या कोई निश्चित नहीं। आवश्यकतानुसार भिन्न-भिन्न कारखानोंमें थैलों-की संख्या भिन्न-भिन्न होती है। जिस कमरेमें थैले लटकाये जाते हैं उसका तापक्रम १८०° होता है। पहिला द्रव मैला होता है और उसे फिर छाना जाता है। जब द्रव साफ़ आने लगता है तो उसे टंकियोंमें इकट्ठा कर लेते हैं। थैलोंमें मैल बहुत जमा हो जाता है अतः द्रव धीमें-धीमें छनता है और छारण २० घण्टेमें समाप्त होता है। थैले लौटाकर धो लिये जाते हैं। इस मैलमें भी २०°/₀ खाण्ड होती है, अतः यह छारण यंत्रों (Fitter presses) में दबा कर निचोड़ ली जाती है अथवा टंकियोंकी वस्तुके साथ मिला दी जाती है और सारी प्रक्रिया पुनः दोहराई जाती है। जब मैलमें केवल २°/₀ खाण्ड बच रहती है जो कि पृथक् नहीं की जा सकती तो मैल खादके रूपमें खेतोंमें डाल दी जाती है। इस प्रकार छने हुए द्रवका रंग तिनकेके रंग जैसा होता है।

४—यह क्रिया कोयलेके छन्नोंकी है। हड्डीके कोयलेके स्तूप बनाये जाते हैं जो कि २४' गहरे और ८ फ़ीट चौड़े होते हैं। कोयले के टुकड़े छोटे-छोटे होने चाहिये। परन्तु यह ध्यान रहे कि वे इतने छोटे न हों कि छारणके छेद ही बन्द हो जावें और वस्तुका छनना भी कठिनता से हो या न हो। और न इतने बड़े होने चाहिये कि क्रिया भी ठीक तरह न हो पाये अन्यथा रंग पूरा पूरा नहीं उड़ेगा। अतः टुकड़े मध्यम दर्जेके लिये जाते हैं। यदि बिलकुल चूरा होगा तो रसके मिठासका बड़ा भाग वहीं अधिशोषित हो जावेगा परीक्षणसे पता चला है कि ५ श. म. के दाने और बिलकुल बारीक पिसे हुए कोयले में मिठासका अनुपात आधा था। एक पौण्ड खाण्डके घोलके लिये एक पौण्ड कोयला काम में आता है। छः घण्टेमें छानन आना आरम्भ होता है। यदि १५०° फ तापक्रम हो तो छारण शीघ्रतासे होता है। पहिले द्रव शुद्ध पानी जैसा नीरंग आता है परन्तु कुछ देर बाद हलका तिनकेका सा रंग आ जाता है। कोयला पीछेसे शुद्ध पानीसे धो दिया जाता है और इस धोवनको भी जब तक इसमें २°/₀ खांड बच रहती है इकट्ठा करते रहते हैं। इसके बाद इसे फेंक देते हैं। इस प्रकार रसको शोध करके गाढ़ा किया जाता है।

भारतीय परिस्थितियोंके अनुसार तो इतने अधिक शोधनकी आवश्यकता ही नहीं रहती क्योंकि यहाँ के ९०°/₀ मनुष्य ग्राम निवासी हैं और उनमें भी बड़ी भारी जन-संख्या राब, शकर और गुड़ ही प्रयोगमें लाती है परन्तु हाँ विदेशी व्यापारके साथ टक्कर लेनेके लिये अवश्य यह प्रक्रिया कराई जा सकती है। क्योंकि आजकल खाण्डका दाम भी रंगपर आश्रित है अतः हमारे देशके लिये हड्डीके कोयलेके स्थानपर वानस्पतिक कोयलेका प्रयोग किया जाय तो सम्भवतः बहुत लाभ हो, धर्म सम्बन्धी समस्याके अलावा परीक्षणों द्वारा यह भी पता लगा है कि वानस्पतिक कोयले और हड्डीके कोयलेका रसपर लगभग समान ही प्रभाव है। हड्डीके कोयलेकी भाँति वानस्पतिक कोयलेके भी स्तम्भ बनाये जाते हैं और रसके साथ इसे खौलाया

भी जाता है। परन्तु यह कोयला लकड़ीको साधारणतया जलानेसे ही तैय्यार नहीं किया जा सकता। इसको तैय्यार करनेकी विधि, गुण तथा रसायन निम्न हैं—

सन् १९१० के करीब बहुतसे इस प्रकारके कर्बन (Carbons) बज़ारमें आने लगे जिनके विषयमें बहुतसे रहस्योंकी प्रतिज्ञा दिलाई जाती थी। यदि कोयलेको साधारण तरीकेसे बनाया जाय तो उसमें रंग चूसनेका कोई भी गुण नहीं होता परन्तु यह गुण उसमें लाया जा सकता है। कोयलेको ४००° पर वायुकी उपस्थितिमें गर्म किया जाता है। परितप्त-वाष्प (super heated) की उपस्थितिमें ८००° से १०००° तक भी गर्म किया जा सकता है।

यदि कोयला बनानेवाली वस्तुको चूना, दस्त-हरिद, खटिकहरिद, मगनीसहरीद, सोडा, गन्धकाम्ल आदिके साथ सींच दिया जाय और फिर थोड़े तापक्रमपर उसका कोयला बनाया जाय तो एक बहुतही तेज़ क्रियाशील कर्बन (Carbon) प्राप्त होता है। इनके सिद्धान्त लैम्ब विलसन और कैननने इस प्रकार बताये हैं—

१. चूर्ण-कर्बन दो प्रकार का होता है:—

(i) मुख्य

(ii) गौण

मुख्य कर्बन ऊंचे तापक्रमपर बनता है और लेखनिक रूपका होता है और क्रियाशील नहीं बनाया जा सकता। जब कोयला लड़कीको जलाकर तैय्यार किया जाता है तो तापक्रम एक दम बहुत ऊंचा होता है और उसमें बहुतसे उदकर्बन अधिशोषित हो जाते हैं और इसीलिये निष्क्रिय (Inactive) कर्बन बनता है । इनको क्रिया-शील करना इन उदकर्बनों का निकालनाही है। उन्हें निकालनेकी क्रिया ताप द्वारा कराई जाती है और यह एक प्रकारकी कुछ हद तक स्रवण और कुछ अंशमें ओषदीकरण है। इस बातकी सावधानी रखनी चाहिये कि ताप न तो बहुत थोड़ाहो और न बहुत अधिक। यदि ताप थोड़ा होगा तो उदकर्बन पूर्णतया नहीं हटाये जासकेंगे; और यदि बहुत होगा तो गौण निष्क्रिय लेखनिक कर्बन बन जानेकी सम्भावना है अतः विधिका वास्तविक रहस्य तापके नियमित रखनेमें है।

२. सींचने वाली विधियोंमें यदि इनके गुणों की ओर देख जाय तो पता लगेगा कि वे पानी सोखने वाली वस्तुएँ हैं अतः यह कर्बन-युक्त पदार्थोंमें केवल कोयलाही छोड़ती हैं और उदकर्बन बनने ही नहीं देती। गर्म तथा थोड़ा धोनेसे ही ये वस्तुएँ हटाई जासकती है और कर्मण्य कर्बन प्राप्त होता है।

३. गौण क्रिया यह भी हो सकती है कि वस्तु अन्दर सिँच जाती है और गर्म किये जानेपर पृष्ठतल बढ़ जाता है और इसलिये रंग शीघ्रता और सरलतासे चूस लिया जाता है।

इस प्रकारका कोयला तैयार करनेके लिये लकड़ी के छोटे-छोटे टुकड़े काट लिए जाते है और उन्हें उपर्युक्त पदार्थोंमें सींचकर एक कढ़ाहीमें भूना जाता है। शनैः २ धीमी आँचपर सब लकड़ी भुनकर कोयला बन जाती है।

इस प्रकारके दोनों कोयले लिये गये और परीक्षाकी गई तो ज्ञात हुआ कि रंग काटनेकी शक्ति दोनोंमें पर्य्याप्त मात्रामें है । वानस्पतिक कोयलेके विषयमें यह बात ध्यानमें रखनी चाहिये कि जब उसका प्रयोग किया जाय तो उसे खूब गर्म-कर लिया जाय। क्योंकि जिस वस्तुमें उसे सींचा गया है वह वायुमेंसे पानी खींच लेती है और इसीलिये उसे बिना गर्म किये रंग उड़ानेके लिये प्रयुक्त करनेपर उतना लाभ न होगा जितना होना चाहिये।

परीक्षणोंसे पता लगा है कि वानस्पतिक कोयलेका प्रयोग सभी दृष्टियोंसे लाभकारी, सरल एवं सस्ता है और हम आशा हैं करते हैं कि सम्भवतः वानस्पतिक कोयला हड्डीके कोयलेका स्थान व्यापारमें ले ले। इस क्रियासे रसको नीरङ्ग किया जाता है।

खाण्ड तैय्यार करने की स्वदेशी प्रणाली

रसके नीरङ्गी करण और संशोधनकी विधि अभी बताई जा चुकी है। उस रससे खांड तय्यार करनेकेलिये निम्न विधिका प्रयोग किया जाता है। रस पूर्वोक्त प्रकारसे शुद्ध साफ़ करके गाढ़ा किया जाता है। अंग्रेज़ी विधिमें कई प्रकारके वाष्पीकरण यन्त्रों (Evaporator) का प्रयोग होता है, जो पेंचदार और महंगे होते हैं। उनमें रस गाढ़ा करके जब ५० भाग पानी उड़ जाता है तब शून्य कड़ाहों (Vaccum pans) में गाढ़ा किया जाता है। इस यंत्रका विशेष लाभ यही है कि द्रव शीघ्रता से वाष्पीभूत हो जाता है और जलनेका भय जाता रहता है। वाष्पकुंडलियोंमें इसे गर्म रक्खा जाता है और वायु निकाल ली जाती है। इस कारण थोड़े ही तापक्रमपर वस्तु खौलने लगती है। इसमें जब दाना पड़ जाता है तो वस्तु ठण्डी करके चक्र यन्त्रोंमें डाली जाती है इससे वे पृथक् हो जाते हैं। एक चक्र यन्त्र चलानेके लिये ३ अश्व-बल वाला इंजिन मंगाना होता है जिसमें प्रति २४ घंटा पीछे एक कनस्तर मट्टीका तेल व्यय होता है। इसके अतिरिक्त दो आदमी कार्य करते हैं। खाण्डको साफ़ करनेके लिये पानीकी पिचकारीसे छींटे भी लगाये जाते हैं। इससे यह हानि होती है कि खाण्ड की बड़ी राशि भी पानीमें घुल जाती है, और उस खाण्डको प्राप्त करनेके लिये फिर सारी प्रक्रिया दुहराई जाती है।

देसी विधिमें तो रसको गर्म करते हैं। ईंधनके लिये गन्नेका छिलका ही काममें लाया जाता है। मुरब्बेकी चाशनी तैयार होजाय अर्थात् चाशनी तीन तार देने लगे तब मटकोंमें रख दिया जाता है। दस दिनमें खूब दाना पड़ जाता है और राव तैयार हो जाती है। इसके पश्चात् इसे अड्डेमें डाला जाता है। अड्डा उस स्थानका नाम है जहाँ पर खाण्डसे शीरा पृथक् करनेके लिये रावको कम्बलोंके थैलोंमें भरकर दबाया जाता है, और शीरेकी बड़ी राशि निचोड़ ली जाती है। थैले एक दूसरेपर बाँध दिये जाते हैं, और ऊपर एक पत्थर रखकर एक आदमी उसपर चढ़ जाता है और खूब पैरोंसे दबाकर हिलकोले लगता है। इसके बाद रवोंको खेतमें डाला जाता है। यहाँ एक कोठी होती है जिसमें बांस आदिसे नीचे एक चलनीसी बनाकर उसपर बोरियां बिछा दी जाती हैं और उसके ऊपर अड्डेकी खांड भरदी जाती है। चारों ओरसे चटाइयों और बोरियोंकी दीवार होती हैं। उनपर ९ या दस फ़ीट ऊंची तह खांडकी लगाकर ऊपर सिवार (शैवाल) की ५" वा ६" मोटी तह लगा देते हैं और ऊपरसे दब्बन डाली जाती है। इसे आठ दिन तक छोड़ देते हैं। इससे गर्मी उत्पन्न होती है जो खांडमेंसे शीरा चुवा देती है। शीरा नीचेके गढ़ेमें इकट्ठा होता रहता है; ८ दिन बाद ऊपरकी सीवार उठाकर उसके नीचेकी खाण्ड तीन या चार अगुंल तक निकाली जाती है। यह खाण्ड चक्रयंत्रकी खांड जैसी होती है। सिवारकी दूसरी तह लगाकर तीन दिनके लिये खेतको फिर छोड़ देते हैं। चौथे दिन फिर सिवार हटाकर तीन चार अगुंल खांड उतार लेते हैं। इस प्रकार सारी खाण्ड सफ़ेद प्राप्त हो जाती है। फिर फ़र्शपर एक टाट डालकर उसपर इसे मसलते हैं और सुखा लेते हैं। खाण्ड बिलकुल श्वेत तैयार हो जाती है। निरीक्षणसे ज्ञात हुआ है कि यदि सिवार कुछ दिनतक और दबी रहने दी जाय तो खाण्ड बिलकुल मिश्रीके रूपमें भी प्राप्तकी जा सकती है।

गतांक में (विज्ञान, २९, १९२९, २८२) विचार करते हुए विदेशी प्रणाली की बहुतसी

हानियां दिखाई गई थी। दो एक और बातें भी हैं जिनके कारण विदेशी प्रणाली हमारे देशवासियोंके लिये विघातक है।

(१) कई मशीनें एक मास या इससे भी पहिले खराब हो जाती हैं और फिर उनकी मरम्मतमें कमसे कम एक मास लगजाता है इतने लम्बे अर्सेमें दो ही चारे हैं; या तो काम स्थगित कर दिया जाय अथवा देसी तरीके बर्ते जायं जिनके खराब होनेका कोई खतरा ही नहीं। यदि काम स्थगितकर दिया जाय तो मालको जमा करनेके लिये बड़े भारी गोदामकी ज़रूरत होती है और माल बिगड़ भी जाता है। यदि उसे गन्नेकी शकलमें खेतमें ही खड़ा रहने दें तो भी खाण्डकी बड़ी मात्रा नष्ट होजाती है। विद्वानोंने परीक्षा द्वारा यह सिद्धकर दिया है कि वृक्षोंमें जड़ों द्वारा जो आहार ऊपरको चढ़ता है वह उसकी पत्तियों-में पहुँचकर पाचन योग्य भोज बनता है। गन्ना अपनी जड़ों द्वारा जो आहार भूमिसे आकृष्ट करता है वह पत्तियों में पहुँचकर पहिले मांड अर्थात् नशास्ता (Starch) बनता है। तदुपरान्त यह मांड पुनः जड़ोंकी ओर लौटता है। उस लौटने-में ही यह द्राक्ष शर्कराके रूपमें परिवर्तित हो जाता है।

$$[\text{क}_{६}\,\text{उ}_{१०}\,\text{ओ}_{५}]_{\text{न}} + \text{न}\,(\text{उ}_{२}\,\text{ओ}) = \text{न}\,(\text{क}_{६}\text{-उ}_{१२}\,\text{ओ}_{६})$$

मांड+पानी=द्राक्ष शर्करा.

१६२ + १८ =१८०.

गन्ना जैसे २ पकता जाता है वैसे वैसे द्राक्ष शर्करा परिवर्तित होकर इक्षु शर्करा बनती जाती है परन्तु यदि किसी कारण पक्के गन्नेको खेतमें खड़ा रहने दें तो उसकी इक्षु शर्करा परिवर्तित होकर पुनः द्राक्ष-शर्करा बन जाती है।—

$$२\,\text{क}_{६}\,\text{उ}_{१२}\,\text{ओ}_{६} = \text{क}_{१२}\,\text{उ}_{२२}\,\text{ओ}_{११} + \text{उ}_{२}\,\text{ओ}.$$

द्राक्ष शर्करा=इक्षु शर्करा+पानी.

३६० = ३४२ + १८.

$$\text{और}\,\text{क}_{१२}\,\text{उ}_{२२}\,\text{ओ}_{११} + \text{उ}_{२}\,\text{ओ} = २\,\text{क}_{६}.\,\text{उ}_{१२}\,\text{ओ}_{६}.$$

इक्षु शर्करा + पानी = द्राक्ष शर्करा.

३४२ + १८ = ३६०

यहां तक कि यदि पक्का गन्ना कुछ काल तक खेतमें खड़ा रहे तो उसकी सम्पूर्ण इक्षु शर्करा ऊपर लिखे सिद्धान्तके अनुसार परिवर्तित होकर द्राक्ष शर्करा होजायेगी, और ऐसे गन्नेके रसके गुड़ अथवा रावमें दाना नहीं पड़ेगा और गुड़ लपटा हो जावेगा।

(२) शीरा भी उतना अधिक अलग नहीं होता जितना देसी विधियों से। विदेशी खांड तैय्यार करनेमें जितनाभी शीरा पृथक् होता है उससे अधिक शीरा सिवार के प्रयोगसे निकला जाता है। इसका पता तब चलता है जब हलवाई लोग खांडसे मिश्री बनाते हैं। देसी खांड तो झट मिसरीमें तबदील हो जाती है परन्तु विदेशी खांडसे सीधी मिश्री नहीं बन पाती। उसके लिये पहिले खांडको दुग्ध आदिसे शुद्ध करना पड़ता है। देखनेमें जो रंग नज़र आता है वह तो इसलिये होता है कि हमारे देशी भाई संशोधनकी प्रक्रिया करते ही नहीं।

(३) एक बात और है, वह यह कि खर्च इन विधियोंमें बहुत पड़ता है। मनुष्योंकी संख्या तो दोनोंमें लगभग बराबर ही रहती है परन्तु खरीदनेमें जो खर्च पड़ जाता है वह इतना अधिक होता है कि उसके सामनेजो लाभ होता है वह कुछ भी नहीं होता। रही बात शीघ्रतासे तैयार करनेकी सो उसका कोई विशेष लाभ नहीं प्रतीत होता इसलिये हमारी समझमें स्वदेशी प्रणाली ही सर्वोपयोगी और लाभकारी है।

———

बिजलीकी भट्टियाँ और उनका उपयोग

[ले०—श्रीहीरालाल दुबे, एम० एस-सी०]
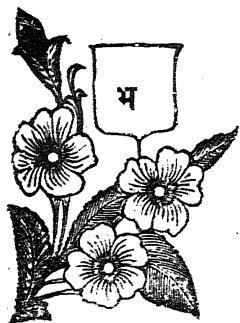
ट्टियोंका स्थान कला-कौशल व व्यापारमें बड़े ही महत्वका है। किसी भी देशकी उन्नति उसके व्यापार व कलाकौशल ही पर निर्भर है। इसलिए भट्टियोंको तुच्छ समझकर उनकी ओर ध्यान न देना बड़ी भारी गलती है। जो कि वस्तु बीस साल पहले पिघलाई न जा सकती थी तथा भाप के रूपमें परिणत न की जा सकती थी वह आज बड़ी सरलता से इन स्थितियों में पाई जाती हैं। विजली की भट्टियों द्वारा कई नई वस्तुएँ बनाई जाती हैं जो हमारे दैनिक व्यवहार में आती हैं। जैसे स्फट्म, खटिक कर्बिद इत्यादि। इसका श्रेय हेनरी मोयसाँ को है। सन् १८६२ में मोयसाँ पेरिस के सारबोन विश्वविद्यालयमें अध्यापक थे। इन्हीं दिनों उन्होंने बिजली की भट्टियों पर कार्य आरम्भ किया। उन्होंने अपने कार्यमें सफलता पाई और सारे संसार को चकित कर दिया कि हीरा भी प्रयोगशालाओंमें बनाया जासकता है। उन्होंने कई नई वस्तुएँ तैयार कीं और उनके आविष्कार से कलाकौशलमें बड़ी उन्नति हुई। जो वस्तुएँ उच्चतापक्रम (High temperature) न होनेके कारण न मिलती थीं वे बहुतायतसे तथा बिना किसी मिलावटके मिलने लगीं।

तीन कारणोंसे उच्चतापक्रम का अधिक मूल्य है। पहला-उच्चतापक्रमसे अधिकतर कई वस्तुएँ पिघल जाती हैं। और इस कारण उनको किसी प्रकारके सांचेमें ढाल सकते हैं दूसरा—पिघली हुई अवस्थामें मिलावट (Mixture) अच्छी प्रकार हो सकती है और रसायनिक परिवर्तन सरलतासे हो सकते हैं। तीसरा—कई वस्तुएँ तत्त्वोंमें परिणत हो जाती हैं और कई नए यौगिक बन जाते हैं। उच्चतापक्रम पानेके लिए वायव्यमिश्रणों की आवश्यकता होती है, जिसमें छोटे छोटे कण आपसमें अच्छी तरहसे मिल सकते हैं। बुनसन दग्धककी लौ में १८७०°श तापक्रम होताहै। उद्जन और ओषजन के मिलावटसे २०००°श तापक्रम होता है। सिरकीलिन और ओषजनके मिलावटसे २४००°श तापक्रम होता है। परन्तु इन साधनों से कोई भी वस्तु ऊपर लिखे हुए तापक्रमतक नहीं गरम की जा सकती क्योंकि बहुतसी उष्णता विकिरण, चलन, तथा वहन आदिके कारण विना काम आयेही नष्ट हो जाती है। इस उष्णताको नष्ट न होने देनेके लिए ज्वालाको सब ओरसे ऐसी वस्तु से ढाक देते हैं कि उसकी उष्णता बाहर ऊपर लिखे कारणोंसे न जासके। भट्टी का यही मुख्य फायदा है।

विद्युत्शक्तिको उष्णतामें इस प्रकार परिणत करते हैं। जब विद्युत् प्रवाह किसी चालकमें होता है तो उसमें कुछ उष्णता पैदा होती है और उस उष्णताके बराबर विद्युत्शक्ति कम हो जाती है। चालककी जितनी अधिक बाधा होगी उतनी ही अधिक उष्णता पैदा होगी। चालक जितनाही अधिक मोटा होगा उतना ही अधिक विद्युतप्रवाह होगा और उष्णता कम पैदा होगी, और जितना ही पतला होगा उतनी ही अधिक उष्णता होगी।

विद्युत्प्रवाहमें जो गर्मीकी शक्ति होती है वह उसकी शक्तिके वर्गके बराबर होती है। एक एम्पीयरकी अपेक्षा २ एम्पीयर विद्युत् प्रवाहमें चौगुनी उष्णता रहेगी और ३ एम्पीयरमें नौ गुनी उष्णता रहेगी। यदि बड़ी शक्तिवाली विद्युत् भट्टी तक मोटे २ ताँबेके तारों द्वारा प्रवाहित की जाय और फिर वह भट्टीमेंसे ऐसे पदार्थमें होकर प्रवाहितकी जावे जिसकी चालकता कम हो और बाधा अधिक हो तो वह पदार्थ थोड़े समयमें बहुत गरम

हो जावेगा। इस प्रकारकी भट्टियोंको—'बाधा-भट्टी' कहते हैं, क्योंकि जो उष्णता इसमें पैदा होती है वह पदार्थको बाधाहीके कारण है। इसी आधारपर सन् १८७६ में सर विलियम सीमन्सने व सन् १८८६ में काउलेज़ (Cowles) ने भट्टियां तैयार कीं।

सीमन्सकी भट्टी बहुत ही सादे प्रकारकी थी। उसमें केवल कर्बनकी घरिया थी जिसमें तार लगा हुआ था जिसके द्वारा विद्युत्शक्ति आती थी और दूसरा तार एक कर्बनकी पेंसिलसे लगा हुआ था जो उस पदार्थके भीतर थी जो पिघलानेके लिए था। इस भट्टीसे आध सेर लोहा एक घंटेमें पिघल जाता था। कई दूसरे प्रयोगोंमें लानेसे उसकी उपयोगिता अधिक प्रतीत हुई। सीमन्सने 'चाप भट्टी' (arc furnace) भी बनाई थी। यह भट्टियां ज़्यादा कामकी नहीं थी क्योंकि इनमें बाधामें हेर फेर होता था, और वस्तुके भी संगठनमें भेद पड़ जाता था। इस कारण मोयसाँने दूसरे तरह की चाप-भट्टी बनाई। इसमें विद्युत्शक्ति दो कर्बनकी पेंसिलों द्वारा लाई जाती थी। पेंसिलें पदार्थके कुछ ही ऊपर रहती थीं। जब भट्टी आरम्भ करनी होती थी तब पेंसिलोंके मुंह मिला दिए जाते थे और जब विद्युत् प्रवाह शुरू हो जाता था तो वह उष्णताके कारण सफेद और चमकदार हो जाती थीं। तब वे एक दूसरेसे कुछ अलग करदी जाती थी। खाली जगहमें विद्युत् शक्तिका चक्र हो जाता था। इस चक्रके तापक्रमसे ज़्यादा तापक्रम अभी तक और नहीं मिला है।

मोयसाँकी भट्टी चूनेकी बनी थी। उस चूनेके टुकड़ेमें एक गड्ढा था जिसमें वस्तु रक्खी जाती थी जिसे पिघलाना होता था। यह गड्ढा दूसरे टुकड़ेसे ढाक दिया जाता था। इस कारण हवा भीतर न आ सकती थी तथा उष्णता भी बाहर न जा सकती थी। इस तरहसे उष्णता छोटीसी जगहमें एकत्रित रहती थी। चूनेकी कुचालक-प्रकृतिके कारण उष्णता का भी बचाव पूर्ण रूपसे रहता था। एक प्रयोगमें ढक्कन ३ श.म. मोटा था और विद्युत् प्रवाह करीब १० मिनट तक होता था। नीचेका भाग पिघल रहा था फिर भी वह हाथसे उठाया जा सकता था। मगनीशिया चूनेसे ज्यादा अच्छा है क्योंकि वह उच्च ताप-क्रम सह सकता है। दूसरे, वही केवल ऐसा ओषिद है जो भट्टीके ताप-क्रमपर भी कर्बनसे अवकृत नहीं होता। परन्तु इसमें एक ख़राबी है। वह उष्णता शीघ्रतासे ग्रहण-करलेता है। इन भट्टियोंमें ३५००° तकका ताप-क्रम रहता है।

वे धातुएं जो १०००° व १२००° के नीचे ही गल जाती हैं मोयसाँकी भट्टीमें उबलने लगती हैं। इन भट्टियोंमें १०३ ग्राम ताँबेमेंसे २६ ग्रा० पांच मिनटमें उड़ गया। और आधे गज़ लम्बी तांबेकी रंगकी ज्वाला उन छेदोंसे निकलीं जिनसे कर्बनकी पेंसिलें भट्टीमें जाती थीं।

इन भट्टियोंका उपयोग नीचे लिखी बातोंसे आपको पूर्ण रूपसे प्रतीत हो जावेगा। सीमन्सकी भट्टीमें एक पौंड लोहा गलानेके लिए एक घंटा लगता था तो मोयंसाकी भट्टीमें केवल कुछ मिनट लगने लगे। रागम् धातुका गलाना लोहेसे कहीं अधिक कठिन है पर वह भी एक घंटेमें ४ पौं० गलाया जाने लगा। कई दूसरी धातुएँ जैसे मांगनीज, तुनागम्, वुल्फ्रामम्, टिटेनम्, बलदम् और शैलम् धातुयें रसायनिक कौतुक थीं और जो पहिले कठिन परिश्रमसे भी थोड़ी ही मात्रामें पाई जाती थीं, वह आज बहुतायतसे मिलती हैं। कला-कौशलमें खासकर फौलादके भौतिक व रासायनिक गुणोंमें इनका बड़ा ही हाथ है।

आज आप जो बड़ी-बड़ी तोपें, बंदूकें, हथियार, रेल, मोटर, कल और पुरज़े मिल आदिमें देखते हैं ये सब इन्हीं धातुओंके कारण हैं जो फौलादको ऐसी मज़बूती देती हैं। इस प्रकार इन भट्टियों द्वारा

लोहेको गलाते समय उसमें दूसरी धातुएँ मिला देते हैं जैसे कि रागम्, सुनागम्, वुल्फ्रामम्, टिटेनम्, इत्यादि जो फौलादको अधिक कठोरता, दृढ़ता, स्वच्छता इत्यादि देती हैं; और कई दूसरे अवगुणोंको दूरकर देती हैं।

मोयसाँकी भट्टीसे केवल फौलादहीके कलाकौशलमें उन्नति नहीं हुई है। कई और व्यापार और नई वस्तुओंकी उन्नति व उत्पत्तिका श्रेय मोयसाँ ही को है। मोयसाँने बिजलीकी भट्टीसे लेखनिक (ग्रेफाइट) बनाया। जब मामूली कर्बन बिजलीकी भट्टीमें रक्खा जाता है और विद्युत् प्रवाह किया जाता है तो वह कर्बन लेखनिकमें परिणत हो जाता है। यह बहुतसे उपयोगोंमें आता है। दूसरी वस्तु जो कर्बन और शैलम्के मेलसे बनती है और जिसका सूत्र 'कशै' है कारबोरण्डम्के नामसे प्रसिद्ध है। यह बहुत ही कड़ी (Hard) वस्तु है। इसकी मज़बूती हीरेसे कुछ ही कम है। इससे धातुओंके खुरदरे किनारे सरलतासे चिकने किए जा सकते हैं।

सबसे अधिक महत्वकी वस्तु जो मोयसाँने बनाई है वह शायद खटिककर्बिद है। पानीके साथ यह वस्तु सिरकीलिन, क$_२$ उ$_२$, वायव्य देती है, जिसमें अधिक उष्णता व रोशनी होती है। यह मोटर व साइकिल आदिमें रोशनीके लिए बहुतायतसे काममें आता है। इसकी उष्णता ढालने व वस्तुओंके काटनेके उपयोगमें लाई जाती है।

खटिककर्बिद चूना और कर्बनको बिजलीकी भट्टीमें गरम करनेसे बनता है। यह करीब १०००° ताप-क्रमपर नोषजन ग्रहण कर लेता है और एक नई वस्तु बन जाती है जिसे खटिकश्यामेमिद कहते हैं। यह वस्तु खादके काममें आती है। इसे व्यापारी ""नाइट्रोलाइम" कहते हैं।

बिजलीकी भट्टियां कई प्रकारकी हैं और हर दिन उनमें उन्नति ही हो रही है। मोयसाँकी भट्टी अब उसी प्रकारकी नहीं है। जैसी उसने पहले उसमें कई प्रकारके सुधार हुए हैं परन्तु मुख्य सिद्धान्त वही हैं। इस छोटेसे लेखमें सब प्रकारकी भट्टियोंका वर्णन करना कठिन कार्य है।

बिजलीकी भट्टियोंके कुछ उपयोग

विद्युत्शक्तिसे फौलाद बनाना :—ऊपर लिख आए हैं कि इन भट्टियों द्वारा लोहेमें और धातुओंको जैसे रागम्, मांगनीज, सुनागम्, आदि मिलानेसे लोहेके गुणमें बहुत अन्तर हो जाता है। परन्तु अब इन भट्टियों द्वारा फौलादके बनाने व स्वच्छ करनेमें बहुत उन्नति हुई है। हेराल (Herault) की भट्टी फौलाद बनानेमें काम आती है। इस भट्टीका एक बिजलोद वह वस्तु है जो गलाई जावेगी और दूसरा बिजलोद दो बड़े, चौखूटे लेखनिकके टुकड़े हैं। ये फौलादमें डूबे रहते हैं। यदि ये बिजलोद इतने ऊपर उठाए जावें कि वे फौलादसे निकले ही हों और उसे छूते न हों तो विद्युत् प्रवाहके कारण दो चाप दिखाई देवेंगे। परंतु यदि वे पिघली धातुमें कर दिए जावें तो रुकावटके कारण उष्णता पैदा होगी। भट्टीके नीचेका हिस्सा मुड़ा हुआ है और यह इस तरहका बना है कि भट्टी गली हुई धातुके निकाल लेनेके लिए तिरछी की जासकती है। इसी प्रकारकी कई और भट्टियाँ बनाई गई हैं। इस भट्टीमें एक नुकसान है कि नए कर्बन बिजलोदके लगानेमें बहुत खर्च होता है। दूसरे, फौलादमें कुछ कर्बन भी मिल जाता है।

स्वेडनके इञ्जीनियरने जिसका नाम जेलिन (Kjellen) है एक भट्टी बनाई है। इसमें ऊपर लिखे हुए अवगुण नहीं हैं। इसका सिद्धान्त वही है जो आवेश बेठनमें होता है। इसमें परात (trough) के बीचमें मुलायम लोहेकी छड़ रहती है जो तारोंसे लपेटी रहती है। यह परात ऐसी वस्तुओंसे बनायी जाती है जो भट्टीके तापक्रममें भी नहीं पिघलतीं। इसी परातमें लोहा, फौलाद आदिके टुकड़े रहते हैं जिनसे कि फौलाद बनाई जाती है। यह परात चारों ओरसे पक्की मिट्टी (fire clay) से

ढंकी रहती है। जब उलटी-सीधी-विद्युत्धारा उस बेठनसे प्रवाहित होती है तो परातके फौलाद में भी बड़ी शक्तिसे विद्युत् प्रवाह होने लगता है, और कुछही समयमें वह पिघल जाती है। इस प्रकार फौलादके बनानेमें बहुत उन्नति हुई है।

विद्युत्शक्ति द्वारा नोषजन यौगिक बनाना

इसमें वायु मंडलसे नोषजनका लेना मुख्य उद्देश्य है। रसायनज्ञोंने हिसाब लगाया कि नोषेत आदि इस पृथ्वीसे सदा नहीं मिल सकते हैं। कुछ वर्षोंके बाद, ये समाप्त हो जावेंगे। आजकल चिली शोरेसे ही अधिक नोषेत आते हैं। मगर यह भाण्डार कुछही दिनोंके लिए है। इस कारण उन्होंने यह उपाय सोचा कि वायु मंडलसे नोषजन लिया जाय और उन्हें सफलता भी प्राप्त हुई। नोषेत आदि बहुत ही कामकी चीज़े हैं। इस धरती माताकी उपजशक्ति इन्हीं नोषेतों और नोषजन पर निर्भर है। इनसे सैकड़ों नई वस्तुएँ भी बनाई जाती हैं। सर विलियम क्रुकस्ने सन् १८६२ में दिखलाया कि विद्युत्शक्तिके चक्रमें जिसमें उलटा-सीधा-विद्युत्प्रवाह होता हो नोषजन और ओषजन आपसमें मिल जाते हैं। सन् १८६५ में लार्ड रेलेने आरगन तत्त्व पानेके लिए इसका उपयोग किया। उन्होंने एक बड़े कांचके गोलेको लिया जिसमें कि विद्युत्चाप पैदा करनेके लिए छड़ें थीं। इस गोलेमें एक नली द्वारा हवा और ओषजन पहुँचाया जाता था जो नोषजनसे मिल-कर उसके ओषिद् बनाता था। दूसरी नली द्वारा दाहक सैन्धकक्षारका घोल जाता था जिसमें नोष-जनके ओषिद् घुल जाते थे।

सन् १६०२ में सीमन्स और हाल्सके (Siemens and Halske) ने बर्लिनमें नया प्रयोग किया। इसमें हवा ज्वाला-चापमेंसे लाई जाती थी। उस चापको बड़ा करनेके लिए चुम्बककी सहायता ली गई जिससे अधिक हवा चापमें आ सके। जो नोषजनके ओषिद् बनते हैं वे पानी व क्षारोंमें घोले जा सकते हैं।

इस प्रकारसे भी वायुके नोषजनको बांध सकते हैं। और यह प्रथा बहुत प्रचलित भी है। इसमें नोषजन वायव्यको केवल पिसे हुए खटिक-कर्बिदमेंसे भेजते हैं। कभी-कभी कर्बिदमें खटिक-हरिद या प्लविद् भी मिला देते हैं। इसका ताप-क्रम ११००° का रहता है। यह या तो विद्युत्शक्तिसे कर्बनको छड़ों द्वारा गरम किया जाता है जो कर्बिद्के ढोल (drum) के अंदर रहती हैं। या इस मिश्रणको भट्टीके अंदर उलट-पुलट करते हैं जो विद्युत् चापसे गरमकी जाती है। खटिक-कर्बिद् और नोषजनके मेलसे जो पदार्थ बनता है वह खटिक-श्यामेमिद् नामसे प्रसिद्ध है। उसका सूत्र ख क नो₂ है। यह जब भापमें गरम किया जाता है तो इसमेंसे अमोनिया निकलता है।

$$\text{ख क नो}_2 + 3\ \text{उ}_2\ \text{ओ}$$

$$= \text{ख क ओ}_3 + 2\ \text{नो उ}_3$$

इसी प्रकार कई भट्टियां बनाई गई हैं जिनसे वायु-मंडलके नोषजनसे कई प्रकारके यौगिक बनाए जाते हैं। उनमेंसे हेबरकी विधि, बरकेलेंड-एडे भट्टी (Birkeland, Eyde Fiurnace) प्रसिद्ध हैं।

जब नोषजन मिल जाता है तब उससे कई प्रकारके यौगिक बनाए जा सकते हैं, जो मनुष्यके लिए बहुत ही लाभदायक हैं। नीचे लिखे हुए कुछ उदाहरणोंसे यह बिलकुल स्पष्ट हो जावेगा। खटिकम् और सैन्धकम्के नोषेत, चूनेके स्फुरेत और अमोनिया बहुत ही महत्वके व आवश्यक खाद हैं। पांशुज व अमोनियम-नोषेत भी खादके काममें आ सकते हैं। परन्तु उनसे और दूसरी वस्तुएं बनाई जाती हैं जिनसे अधिक रुपया मिल सकता है। अमोनियम-नोषेत भय रहित विस्फोटकोंके बनानेमें काम आता है। उससे 'हंसानेवाली गैस' भी बनती है जो कुछ समयके लिए स्थानिक-मूर्छा उत्पन्न करनेके काममें आती है। पांशुज-नोषेत बारूद बनानेके लिए आवश्यक है। रजत-नोषेत फोटोग्राफीमें

बहुतायतसे काममें आता है। स्फट-नोषेत कपड़े रंगने व केलिक-छपाईमें काम आता है।

भार और स्त्रंश-नोषेत आतिशवाज़ीके काम आता है। पहलेसे हरा व दूसरेसे लाल रंग मिलता है।

मधुरिन (ग्लैसरीन) या रुई नोषि काम्लसे मिलकर नोषो-मधुरिन या गन-काटनमें परिवर्तित हो जाती हैं। जब ये दोनों वस्तु मिला दी जाती हैं तो डाइनेमाइट बन जाता है जो बड़े-बड़े पहाड़ोंको कुछ ही मिनटोंमें चूर-चूर कर देता है।

गन-काटन (रूईकी बारूद) को मद्य और ज्वलकमें घोलनेसे जो घोल बनता है उसे कौलोडियन कहते हैं। यह फोटोग्राफी, डाक्टरी, और और प्रावार (मेंटल) बनानेमें काम आता है। इसको खुलेमें रखनेसे मद्य व ज्वलक उड़ जाते हैं और नोष-छिद्रोजकी झिल्ली रह जाती है जोकि बहुत ही मज़बूत होती है।

नोष-छिद्रोज और कपूरसे मिलकर छिद्रोद (Celluloid) बनता है, जिससे आज-कल सैकड़ों चीज़ें बनाई जाती है जैसे कंघे, खिलौने, कालर इत्यादि।

नकली रेशमके बनानेमें कौलोडियन काममें आता है। नोष-छिद्रोज भी काममें आता है। नोष-छिद्रोजको ज्वलकमें घोलते हैं और फिर बारीक छेदसे निकालते हैं। ज्वलक क्षणभरमें उड़ जाता है और बारीक डोरा नोष-छिद्रोज फिर जाता है, जो छिद्रोजमें परिणत होकर काता बुना जा सकता है। यह रेशम असली रेशमसे कुछ कमज़ोर होता है। आज-कल नोष-छिद्रोजके बदले छिद्रोज़का जैन्थेत काममें आता है।

डांवरके स्रवणकी वस्तुओंसे नोषि काम्लको मिलाकर कई लाभदायक वस्तुएं बनाई जा सकती हैं। सैकड़ों प्रकारके रंग, इत्र व सुगन्धित तैल बनाए जाते हैं। कई प्रकारकी दवाइयां बनाई जाती हैं। इससे आपको नोषजन व बिजलीकी भट्टियोंका महत्व मालूम हो गया।

बिजलीकी भट्टीसे स्फटम्का बनानाः—

सन् १८८६ में सी० एम० हाल (C. M. Hall) ने पता लगाया किया कि स्फटओषिद पिघले हुए क्रायोलाइटमें घुल जाता है। क्रायोलाइटमें सैन्धक-स्फट-प्लविद होता है। जब इस द्रवित पदार्थमें विद्युत्प्रवाह होता है तो एक विजलोद पर स्वच्छ स्फटम् एकत्रित हो जाता है। यह बिलकुल उसी प्रकारकी विधि है जैसे ताँबा आदि घोलमेंसे बिजली द्वारा एकत्रित कर सकते हैं। अभी तक भट्टियोंका जो वर्णन किया गया है उनमें विद्युत् शक्ति उष्णतामें परिणत होती है और यह उष्णता ही उन प्रक्रियाओंका कारण है। परन्तु स्फटम् बनानेकी भट्टीमें विद्युतशक्ति उसी प्रकार काममें आती है जिस प्रकार वह घोलसे ताँबा आदि एकत्रित करनेमें। यह बड़े आश्चर्यकी बात है कि जो वस्तु बहुतायतसे सामने पड़ी हो उसे पानेके लिए इतनी कठिनाइयां झेलनी पड़ें।

सब भट्टियों में १०% से लेकर २०% तक स्फटओषिद होता है। परंतु इससे स्फटम् निकालना बड़ा ही कठिन है, क्योंकि इसमेंसे दूसरे पदार्थों को अलग करना बड़ा ही कठिन काम है। इस कारण केवल बौक्साइट ही से संसार भरका स्फटम् बनाया जाता है। बौक्साइट मध्यप्रदेशमें बहुतायत से पायाजाता है। वह सब विदेश को भेज दिया जाता है जहांसे स्फटम् बन कर फिर यहांपर आता है।

सन् १८५५ में एक पौण्ड वज़न स्फटम्का मूल्य २८ पाउण्ड था और अब सबसे अच्छे एक पौण्ड-स्फटम्की कीमत एक शिलिंगके करीब

है। सन् १८३३ में ८३ पौण्ड स्फटम् बनाया गया था। सन् १८८५ में २८३ पौण्ड। इसके बाद ऊपर लिखे हुए प्रकारसे स्फटम् बनाया जाने लगा और सन् १९०२ में ८००० टन स्फटम् बनाया गया।

स्फटम्का हलकापन व उसके यौगिक ज़हरीले न होनेके कारण और अम्ल आदि जो खाद्य पदार्थोंमें होते हैं उनसे कोई असर न होनेके कारण स्फटम्का उपयोग बहुत बढ़ गया है। यह धातु गरीबसे लेकर अमीरके यहां तक पाई जाती है। विज्ञानमें भी इसका बहुत उपयोग है। यह मोटर, हवाईजहाज़ आदिमें भी काममें आती है जहां पर हलकेपनकी आवश्यकता होती है।

इतने महत्वकी वस्तुका कारण केवल बिजलीकी भट्टी ही है।

पृथ्वीपर परिवर्तन

[ले० श्री सत्यप्रकाश एम० एस-सी०]

स बातपर वैज्ञानिकोंमें बहुत विवाद चलता आ रहा है पृथ्वीके स्थल और जल भागोंमें कभी विनिमय हुआ है या नहीं। भूमिके इतिहासमें क्या कोई समय ऐसा भी था जब जहाँ आजकल समुद्र हैं वहाँ कभी महाद्वीप विद्यमान हों और जहाँ आजकल स्थल-भाग है वहाँ कभी जलही जल हो। भारतवर्षकी ही बात लीजिये। कुछ लोगोंकी यह कल्पना है कि आज कल जिस स्थानपर राजपूताने की मरुभूमि है, वहाँ पुराने समयमें समुद्र था। यही अवस्था अरबके रेगिस्तान और सहारा मरुभूमि के विषयमें भी कही जा सकती है।

प्राचीन सभ्यताके अवशेषोंके आधारपर इतिहास वेत्ताओंका यह भी अनुमान है कि एक समय ऐसा भी था जब भारतवर्ष दक्षिणमें अस्ट्रेलिया एवं अफ्रीकासे मिला हुआ था। एक ओर बाली, जावा, सुमात्रा, बोर्नियो, लंका आदि आज कलके द्वीप सब एक दूसरेसे मिले हुए थे और दूसरी ओर दक्षिण-पश्चिममें अरब सागरके स्थानमें स्थल भाग था जो मैडागास्कर आदिको मिलाता हुआ भारतवर्षका सम्बन्ध अफ्रीकासे करता था।

यूरोपके बहुतसे द्वीपोंके विषयमें भी यही कहा जा सकता है। यह बहुत सम्भव है कि इंगलैंड-स्काटलैंड और आयर्लैंडके द्वीप मुख्य यूरोपीय महाद्वीपसे मिले जुले हों और फ्रान्स और इंगलैंडके बीच के इंगलिश चैनलका पुराने समयमें अस्तित्व भी न हो। इसी प्रकार यह भी माना जा सकता है कि स्कैंडिनेवियाका भी सम्बन्ध ग्रेटब्रिटेनके द्वीपसे हो। भूमध्य सागरमें आज कल कई द्वीप पाये जाते हैं जो सम्भवतः किसी समय महाद्वीपके भाग ही होंगे, इटलीके पासका सिसेली तो अवश्य ही किसी समय प्रायद्वीपसे मिला हुआ था। यह भी संभव है कि यूरोप और अफ्रीकाके बीचका भूमध्य सागर अभी थोड़े दिनोंका ही हो, पहले दोनों महाद्वीप एक ही हों।

पृथ्वीके इतिहासमें थल और जल भागमें कुछ न कुछ विनिमय अवश्य हुआ होगा पर वैज्ञानिकोंका ऐसा विचार है कि पूर्णतः थल भाग कभी जल प्रदेशमें अथवा जल-भाग थल प्रदेशमें परिणत नहीं हुआ। शान्त और अशान्त महासागरों के बहुतसे गहरे भाग इसप्रकार के हैं जिनके लिये यह कहना कि यहाँ सृष्टिके इतिहासके किसी समयमें जल न था, अनुचित ही प्रतीत होता है।

इसी प्रकार यह भी विश्वास होना कठिन है कि हिमालय और तिब्बत प्रदेश, अथवा भारतका दक्षिणी प्लैटो किसी समय जलके अन्दर वर्तमान था।

वर्तमान समय की पृथ्वी कई महाद्वीपोंमें विभाजित कीगई है। इस पृथ्वीपर अनेकप्रकार के पशु, पक्षी और पौधे पायेजाते हैं। ये पशुपक्षी प्रत्येक स्थान और महाद्वीपमें अलग अलग जातियों के होते हैं। प्राणिशास्त्र विशारदोंने इन जीवोंका निरीक्षण करके सम्पूर्ण पृथ्वीको सात विभागोंमें विभाजित किया है।—

१. नव-उत्तरी प्रदेश जिसमें मैक्सिको तकफैला हुआ उत्तरी अमरीका सम्मिलित है।

२. नव-उष्ण प्रदेश जिसमें मध्य और दक्षिणी अमरीका की गिनती है

३. उपोत्तरी प्रदेश जिसमें समस्त यूरोप, दक्षिणपूर्वी भाग छोड़कर शेष एशिया और भारत और अफ्रीका के एटलस पर्वत की श्रेणियां हैं।

४. इथियोपियन प्रदेश (हबशदेश) जिसमें उपोत्तरी प्रदेशान्तरगत भाग को छोड़कर अफ्रीका का समस्त भाग सम्मिलित है।

५. प्राच्य प्रदेश, जिसमें भारतीय प्रायद्वीप, दक्षिण पूर्वीय एशिया और मलायाद्वीपसमूह सम्मिलित हैं।

६. आस्ट्रेलियन प्रदेश जिसमें अस्ट्रेलिया, टसमेनिया, न्यूगिनी, और निकटस्थ अन्यद्वीप हैं।

७. न्यूज़ीलैण्ड प्रदेश जिसको विचित्र पशु पक्षियोंके कारण एक स्वतंत्र ही विभाग समझा जासकता है।

ये सात विभाग विशेषतः पक्षियोंके निरीक्षणके आधारपर ही बनाये गये थे। पर अन्य पशुओंके लिये भी ये विभाग उपयुक्त हैं। एक प्रदेशके पशु दूसरे प्रदेशमें तभी जा सकते हैं जब कि दोनों प्रदेश एक दूसरेसे संयुक्त हों अथवा उनके जानेके लिये अन्य सुविधायें हों। अफ्रीका और दक्षिणी अमरीकाके पक्षियोंमें विभिन्नता इसी कारण है कि दोनोंके बीचमें अटलाण्टिक महासागर है और यह संभव नहीं है कि एक महाद्वीप के पक्षी दूसरे महाद्वीपमें इतने बड़े सागरको पार करके पहुँच सकें।

लाइडेकर (Lydekker) नामक वैज्ञानिकने दूध पीनेवाले पशुओंका निरीक्षण करके सम्पूर्ण पृथ्वी को तीन भागों में विभाजित किया था। पहला आर्क्टोजिया जिसमें उत्तरी अमरीका, अफ्रीका, और एशिया सम्मिलित हैं। दूसरा नीओजिया जिसमें दक्षिणी और मध्य अमरीका हैं और तीसरा नोटोजिया जिसमें अस्ट्रेलेशिया और पोलीनीशिया प्रदेश हैं।

पशुओं की विभिन्नता बहुत से देशों में पायी जाती है। थैलों में अपने बच्चों को लटका कर लेजाने वाले ऐसे पशु जिनके दो दाँत आगे दिखाई देते हैं केवल अस्ट्रेलिया अथवा उसके निकटस्थ द्वीपोंमें ही पाये जाते हैं। कंगारू-जीव इसी जाति के पशु हैं। विकास-वादियों का यह कहना है कि सृष्टि की ऐतिहासिक कालमें ऐसे जीव अस्ट्रेलिया, दक्षिणी अमरीका, और कदचित दक्षिणी एशिया और अफ्रीका में भी विद्यमान थे। दक्षिणी अमरीका और उत्तरी अमरीका के उत्तरी भाग में भी आजकल थैलों में अपने बच्चों को लटकाकर ले जाने वाले जीव, पर जिनके बीचके जबड़े में दो से अधिक दाँत आगे निकले दिखाई देते हैं, पाये जाते हैं। जीवन के संघर्ष में अन्य स्थानों के ऐसे जीवों का तो लोप ही होगया है। यूरोप और एशिया में ऐसे जीवों के केवल अवशेष पाये जाते है। इन प्रदेशों में उच्चश्रेणियों के पशुओं ने इनका नाश कर दिया। कदाचित् उस समय

जबकि उच्चश्रेणीके पशुओंका यूरोप और एशियामें विकास हुआ, अस्ट्रेलिया इन प्रदेशोंसे अलग था। अतः अस्ट्रेलियामें ये कंगारू अब तक पाये जाते हैं। ये जीव अब केवल अस्ट्रेलिया और दक्षिणी अमरीकामें पाये जाते हैं। इससे पता चलता है कि एक समय ऐसा था जब अस्ट्रेलिया और दक्षिणी अमरीका मिले हुए थे।

इसके अतिरिक्त बहुतसे ऐसे अन्य जीव भी हैं जो आजकल केवल अफ्रीका अस्ट्रेलिया और दक्षिणी अमरीकामें तो पाये जाते हैं पर जिनका उत्तरी गोलार्धके प्रदेशोंमें नाम तक नहीं पाया जाता है। इससे यही पता चलता है कि अस्ट्रेलिया, दक्षिणी अमरीका और अफ्रीका तीनोंको संयुक्त करने वाला एक थल मार्ग दक्षिणी गोलार्धमें अवश्य था जो कालान्तरमें समुद्रके नीचे विलीन हो गया। अंधे साँप जिन्हें टिफलोपीडा कहते हैं मध्य और दक्षिणी अमरीका, दक्षिणी और उष्ण-कटिबन्धस्थ अफ्रीका, तथा भारतमें ही पाये जाते हैं। ये यूरोप, अमरीका और एशियाके अन्य भागोंमें नहीं मिलते हैं।

यही हाल सिस्टिग-नेथीडा जातिके मेंढकोंका भी है। ये अस्ट्रेलिया, टस्मानिया, दक्षिणी फ्लोरिडा अमरीका और उत्तरी अमरीकामें केवल मैक्सिको और दक्षिणी फ्लोरिडा तक ही पाये जाते हैं, इसके और उत्तरकी ओर नहीं। एकेड़ी जातिकी एक विशेष तितली दक्षिणी अमरीका, दक्षिणी एशिया, अस्ट्रेलिया और दक्षिणा अफ्रीकामें ही पायी जाती है।

इस प्रकार यह निश्चय पूर्वक कहा जा सकता है कि दक्षिणी और उत्तरी गोलार्धके अनेक जीवोंमें भेद है और पृथ्वीके इतिहासमें एक ऐसा समय अवश्य था जब दक्षिणी अमरीका, अस्ट्रेलिया, भारत-वर्ष और दक्षिणी अफ्रीका एक दूसरेसे मिले हुए थे। ऊपर कहे गये पशु कभी उत्तरी गोलार्धमें नहीं बसे। यह अवश्य है कि कभी कभी भूमध्य रेखाको पार करके कुछ उत्तरकी ओर भारतवर्ष, उत्तरी अफ्रीका या मध्य अमरीकामें भी चले आये।

इसी प्रकार बहुतसे पशु ऐसे भी हैं जो केवल उत्तरी गोलार्धमें ही रहे हैं और दक्षिणी गोलार्धमें नहीं पहुँच सके। पुरातन जीवोंके अवशेष भी यही बताते हैं कि दक्षिणी गोलार्धके प्रदेश किसी समय एक दूसरेसे मिले हुए थे। एक ही प्रकारके बड़े बड़े दीर्घकाय कछुओंके अवशेष केवल अस्ट्रेलिया, एशिया, और पैटागोनियामें ही पाये जाते हैं, उत्तर में नहीं। यदि ये एक दूसरे देशोंमें उत्तरके प्रदेशोंसे गये होते तो उत्तरी प्रदेशोंमें भी इनकी उपस्थितिके कुछ चिह्न मिलते। ऐसे चिह्नोंके अभावमें तो यही मानना पड़ता है कि ये उत्तरी गोलार्धमें होकर नहीं गये। दक्षिणी गोलार्धके सब प्रदेश किसी समय एक दूसरेसे मिले हुए थे, अतः एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में इनका जाना आसान हो गया।

इन्हीं सब कारणों से यह माना गया है कि दक्षिणी गोलार्ध में एक बड़ा भारी महाद्वीप था जो अब समुद्र के नीचे दब गया है। इस महाद्वीप का नाम गोंडवानालैण्ड रखा गया है। प्राचीन समयके अनेक थल मार्ग आजकल जलमें विलीन हो गये हैं।

गत एक लेख (विज्ञान, जुलाई, १९२९, १७८) में यह लिखा जा चुका है कि समस्त सृष्टि का इतिहास ५ भौगर्भिक कालों (आदि, परिवर्तन, प्राचीन, माध्यमिक और आधुनिक) में विभाजित किया जा सकता है, अथवा समस्त ऐतिहासिक काल को १६ खंडों में भी बाँट सकते हैं। यहाँ अब हम इस बात का उल्लेख करेंगे कि किस किस समय सृष्टि केरूप में किस प्रकार का परिवर्तन होता गया।

सृष्टि के आदि काल (Eozoic) के सम्बन्ध में बहुत कम ज्ञात हुआ है। इस समय पृथ्वीकी भौगोलिक अवस्था क्या थी, यह कहना कठिन है। वस्तुतः इस समय पृथ्वी का कोई निश्चित रूप न था। इसकी शिलायें, चट्टानें और प्रस्तर बहुत शीघ्र ही अवस्था परिवर्तित कर रहे थे। इतना अवश्य कहा जासकता है कि उस समय पृथ्वी पर घनी झुर्रियाँ पड़ी हुई थीं। जब कोई सेव सूख जाता है तो उसके ऊपरी बक्कुल पर सिकुड़न आजाती है। इसी प्रकार की सिकुड़न या झुर्रियाँ पृथ्वी के पृष्ठतल पर भी थीं, इन झुर्रियों का कारण यह है कि सेब का बक्कुल बहुत पतला होता है। आरम्भ में पृथ्वी के पृष्ठतल की पपड़ी भी बहुत पतली थी अतः सूखने पर इसमें भी झुर्रियाँ पड़ गईं। नारंगी का बक्कल मोटा होता है अतः जब नारंगी सूखती है तो कहीं कहीं गड्ढे पड़ जाते हैं और इस लिये कुछ स्थान उठे हुये मालूम पड़ने लगते हैं। पृथ्वी की पपड़ी भी कुछ दिनों बाद मोटी होगई और फिर कुछ समय और बीतने पर इस का रूपभी परिवर्तित होने लगा कहीं बड़े बड़े गड्ढे पड़गये और कहीं कहीं ऊँचे पहाड़ निकल आये। इस प्रकार पृथ्वीके आदिकालमें पहले तो पृष्ठतल पर सिकुड़न पड़ीऔर फिर इसका रूप और विकृत होने लगा।

आगे के तीन कालों-परिवर्तन, प्राचीन और माध्यमिकमें ये परिवर्तन और विकट होने लगे। बारी बारी से पृथ्वी कभी गोल होती और फिर कुछ पिचकने लगती। अर्थात् कभी तो इसमें उभार होता और फिर इसके बाद यह धसने लगती। इस समयका इतिहास ज्वालामुखियोंकी अवस्थाके लिये प्रसिद्ध है। यद्यपि ऐसा कोई समय न आया होगा जब ज्वलामुखी पर्वत पूर्ण रूपसे शान्त होगये हों पर यह निश्चय पूर्वक कहा जासकता है कि किसी किसी समयमें इनका कोप विशेष रूप से था और फिर किसी किसी समय ये सापेक्षतः विशेष शान्त रहे हैं।

आदि काल एवं परिवर्तनकाल (archaeozoic) दोनो ही में ज्वालामुखियोंका विशेष प्रकोप था। कैम्ब्रियन खंडमें ये कुछ शान्त पड़ गये और केवल कुछ ज्वालामुखी ही यदा कदा कुपित दिखाई देते थे। इसके पश्चात् आर्डोवीसियन-खंड आया और इसमें ज्वालामुखी-पर्वतों का प्रकोप फिर एकवार बढ़ने लगा। सम्पूर्ण पृथ्वीपर ज्वालामुखी उत्तप्त पदार्थों को निकालने लगे। उनकी प्रचंड अवस्था के कारण भूमण्डल फिर अग्निमय होगया। इसके बाद सिलूरियन खंड का समय आया और भूमि फिर शान्त होगई और ज्वालामुखियों का प्रकोप बन्द होने लगा।

सिलूरियन के बाद डेवोनियन खंड में फिर ज्वालामुखियों की प्रचंडता बढ़ी। कर्बोनिफैरस खंडके आरम्भ में इंगलैण्ड और आयरलैंड में कर्बन (कोयला) उत्पन्न करने वाले चूनेके पत्थरों का जन्म हुआ। स्काटलैंडमें इस समय भी कुछ ज्वालामुखी सचेष्ठ थे पर अन्य प्रदेशों में ये शान्त होगये थे।

इस खंड के पश्चात् परमियन काल आया। इस समय ज्वालामुखी फिर सचेष्ट हो गये। इस समय पृथ्वीके अन्दर अनेक प्रकारकी गतियाँ होनी आरम्भ हुईं। संसारके अनेक भागोंमें पर्वतोंका जन्म इसी समय हुआ।

परमियन खंडके पश्चात् ट्रायजिक खंड बीता और फिर माध्यमिक (mesozoic) काल आया। इस कालमें ज्वालामुखी पर्वत विशेष रूपसे शान्त रहे। इस कालके अन्तिम खंड क्रीटेशसमें ज्वालामुखी फिर प्रचंड होने लगे इसीसमय इंगलैंडके दक्षिण पूर्व भागमें खड़िया मिट्टीका जन्म हुआ।

माध्यमिक कालके पश्चात् आधुनिक (Kainozoic) काल आया। इसके प्रथम खंड इओसीनमें अमरीका, भारत वर्ष, अफ्रिका, और आस्ट्रेलियामें विशेष रूपसे ज्वालामुखी कुपित

हुए। इसके बाद ओलिजोसीन खंडमें ज्वालामुखी कुछ शान्त अवश्य हुए पर मायोसीन खंडमें जाकर इनका प्रकोप बहुतही बढ़ गया। इसी समय आल्प और सरकमपेसिफिक पर्वतों की श्रेणियों का निर्माण हुआ।

इस इतिहाससे यह पता चलता है कि ज्वाला मुखी भिन्न भिन्न खंडोंमें बारी बारीसे सचेष्ट और निश्चेष्ट (कुपित और शान्त) होते रहते हैं। इस प्रकारके परिवर्तनोंसे भूमिका रूप भी परिवर्तन होता रहता है। ज्वालामुखी-प्रकोपों के साथ भूचाल भी आते हैं जिनका प्रभाव यह होता है कि कभी कहीं किसी जल भागमें से नई ज़मीन निकल आती है और कभी कोई थल भाग जलके अन्दर दब जाता है।

पृथ्वी पर और भी कई प्रकारके परिवर्तन होते रहते हैं। साधारणतः भूमि को नारंगी या गेंदके समान गोल मानते हैं; पर वस्तुतः पृथ्वीका रूप ऐसा बेडौल है कि इसके रूपकी किसीसे तुलना ही नहीं की जासकती है। यह एक विचित्र गोल-मटोल खिलौना है जो उत्तरी प्रदेश में चपटा, और दक्षिणी ध्रुव की ओर नुकीला होगया है। भूमध्य रेखा को भी पूर्ण रूपसे एक वृत्त नहीं कहा जासकता है।

इसके अतिरिक्त प्रति दिन-रात इसका रूप उभरता और सिकुड़ता रहता है। किसी समय थल भाग का कोई स्थान अपनी मर्यादा से कुछ ऊँचा उठ जाता है और कभी वही भाग कुछ नीचा आ जाता है। पृथ्वी की पपड़ी स्थायी नहीं है। इसकी स्थितिमें परिवर्तन होता रहता है। प्रोफेसर मिल्ने ने यह अनुभव किया है कि ज़ोरों की वर्षाके उपरान्त जापानका पश्चिमी भाग कुछ दब जाता है। सर जार्ज डार्विन ने यह निरीक्षण किया था कि जब इंग्लिशचैनल में ज्वारभाटा आता है तो पानीके बोझके कारण थल भाग कुछ नीचे दब जाता है। प्रोफेसर हेकर का कथन है कि सूर्य्य और चन्द्रके गुरुत्वाकर्षणके कारण ज्वारभाटाके समय थलभाग दबता और उठता रहता है। पृथ्वी के रूपमें बराबर परिवर्तन होते रहने का एक और भी कारण बताया जाता है, वह है पृथ्वीका अपनी कीली पर झुके हुए घूमना।

महाद्वीपों और महासागरोंके जो नकशे आज-कल विद्यार्थियों को दिखाये जाते हैं, वे भी सदासे ऐसे ही नहीं रहे हैं। हम कह चुके हैं कि अनेक काल ऐसे आये हैं, जब सृष्टिके उस भागमें जहाँ कि आजकल जल है पहले ज़मीन थी, अतः एशिया, यूरोप, अमरीका अस्ट्रेलिया आदिका जो रूप हम आजकल देख रहे हैं वह पहले ऐसा न था। कैम्ब्रि-यन समयमें भूमिकी जो अवस्था थी उसका एक आनुमानिक चित्र इस प्रकार कल्पित किया गया है। इस समय के जल और थल भागों की आयोजना आज कलकी आयेजनासे बहुत कुछ मिलती जुलती है। इस समय स्काट-लैण्ड, ग्रीन लैंड और उत्तरी अमरीका का पूर्वोत्तर भाग मिलाकर एक महाद्वीप बना था। इस भागमें आजकल जहाँ समुद्र है वहाँ पहले थल भाग था। आजकलके उत्तरी अमरीका का पच्छिमी किनारा जलमें डूबा हुआ था, दक्षिण अमरीकामें केवल ब्रेज़िल ही एक द्वीप था, शेष दक्षिणका प्रायद्वीप जल में था। अरब और सिन्धका भागभी जलमें था। आजकल जहाँ पैसिफिक महा-सागर है वहाँ बहुतसे भागमें एक महाद्वीप था जिसे पैसिफिक महाद्वीप कह सकते हैं। आस्ट्रेलिया का कुछ पश्चिमोत्तरी भाग छोड़कर शेषभी जला-न्तरगत ही था। पर इन साधारण परिवर्तनोंके होते हुए भी आजकलके जल-थल भाग में और कैम्ब्रियन कालीन भागमें विशेष अन्तर नहीं है।

पर यह अन्तर अन्य कालोंमें बहुत ही बढ़ गया। सिलूरियन कालमें तो इतना विकट परिव-र्तन हुआ कि उत्तरी अमरीका लगभग सबका सब
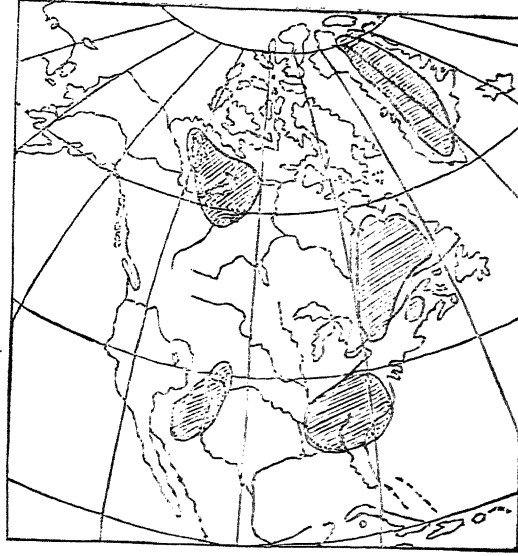
सिलूरियन समय का उत्तरी अमरीका।

घनी काली समानान्तर रेखाओं से आवृत्त भाग ही स्थल है। शेष सम्पूर्ण अमरीका समुद्र से घिरा हुआ है।
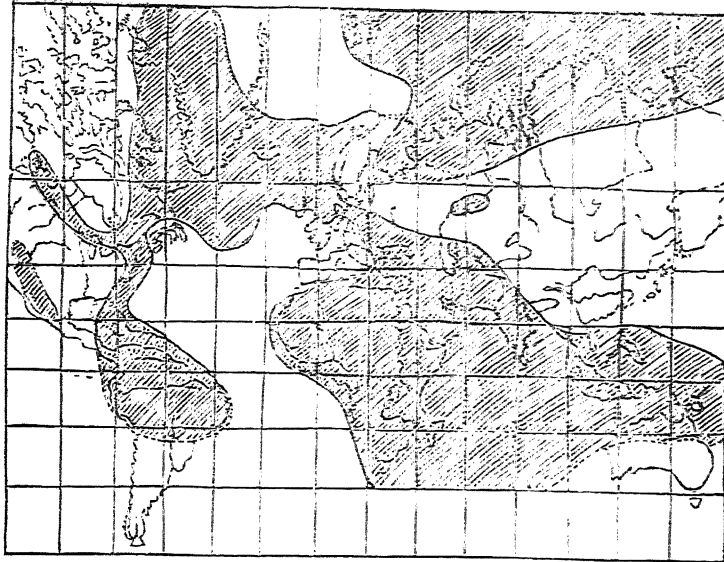
ओर्डोविसियन समय की पृथ्वी।

इसके स्थल भाग में घनी समानान्तर रेखायें खींच दी गई हैं। शेष भाग में जल है।

पानी में दब गया, ग्रीनलैण्डका कुछ भाग और युनाइटेड-स्टेट्सका दक्षिण पूर्वी कोना ही बच रहा।

यहाँ एक चित्र ऑर्डोविसियन कालका दिया जाता है जिसे प्रोफेसर फ्रेक (Frech) ने कुछ अनुमानोंके आधार पर तैयार किया है। इस ऑर्डो विसियन कालमें तो सम्पूर्ण पृथ्वीके जल-थल भाग में परिवर्तन हो गया दक्षिणी गोलार्धमें जहाँ आजकल जलका ही आधिक्य है, एक लम्बा चौड़ा महाद्वीप निकल आया यह महाद्वीप वर्तमान अफ्रीका, अरब, भारतवर्ष, हिन्दमहासागर, उत्तरी अस्ट्रेलिया आदि प्रदेशोंको लेकर बना था। आजकलकी बंगालकी खाड़ी, अरबसागर हिन्द महासागर आदि सब थलमय थे। कहीं जल भाग था ही नहीं। इसके विपरीत आजकलका चीन, जापान रूस, यूरोपके अनेक देश, उत्तरी अमरीकाका पूर्वीय तट छोड़कर शेष भाग तथा दक्षिणी अमरीका का दक्षिण भाग जलान्तरगत था। आजकल जहाँ उत्तरी महासागर है वहाँ ज़मीन थी। ग्रीन लैण्ड इंगलैण्ड से मिला हुआ था।

ऑर्डोवीसियन समयकी यह अवस्था सदा ऐसी न रही। सिलूरियन और डेवोनियन कालमें फिर दक्षिणी गोलार्धमें समुद्र की मात्रा और उत्तरी गोलार्धमें थल भागकी मात्रा बढ़ गई। कर्बोनिफेरस कालमें फिर एक बार उलट पुलट हुई। इससमत वर्तमान अस्ट्रेलिया, भारतवर्ष, अफ्रीका और दक्षिणी अमरीकाको सम्मिलित और संयुक्तकर देने वाला एक विशाल महाद्वीप फिर उत्पन्न होगया। इसका नाम जैसा पहले कहा जा चुका है गोंडवानालैण्ड पड़ा। इस महाद्वीपकी विशेषता इसकी विचित्र वनस्पतिओंके कारण थी जिन्हें ग्लोसोप्टेरिस (glossopteris) कहते हैं। यह गोंडवाना लैण्ड उत्तरी अमरीकासे पृथक् था। उससमय उत्तरी अमरीका उत्तरी महाद्वीपसे संयुक्त था। माध्यमिक कालमें पृथ्वी में अनेक क्षोभ आरंभ हुए। पृथ्वीकी पपड़ीके टूटनेके कारण इसीसमय अटलाण्टिक महासागर का वर्त्तमान उत्तरी भाग, तथा उत्तरी महासागर बने। ज्वालामुखियोंके प्रचंड प्रकोपके कारण इससमय ग्रीनलैण्ड और स्काटलैंडके बीचका भाग जलमें विलीन होगया और इस प्रकार ये दोनों प्रदेश एक दूसरेसे पृथक् हो गये। मायोसीन समयमें आल्प्स और हिमालयकी श्रेणियोंका जन्महुआ। इसी समय उत्तरी अमरीका के पश्चिमी पर्वत और दक्षिण अमरीका की एण्डीज़ श्रेणियांभी बनीं। इस समय एक और विशाल पर्वत श्रेणी बनी जिसका और भागतो समुद्रमें विलीन होगया, पर जिसकी चोटियां जापानसे लेकर न्यूज़ीलैण्ड तकके द्वीपोंके रूपमें पैसिफिक महासागर में आजभी विद्यमान है।

भारतवर्षके खनिज

[ले०—श्री सत्यप्रकाश एम० एस-सी०]

यद्यपि हमारे देशमें धातुओं और खनिजोंकी कमी नहीं हैं, तथापि हम अपने यहाँकी सम्पत्तिसे उतना लाभ नहीं उठा सकते हैं जितना कि अन्यदेश वाले। इसका कारण यह है कि खनिजों से धातु तथा अन्य पदार्थ प्राप्त करनेके लिये हमने अभी वैज्ञानिक विधियोंको नहीं अपनाया है, अतः इस देशके खनिजों को धातु आदिके लिये अन्य देशोंमें भेजना पड़ता है। इस-कार्य्य में व्यय अधिक होता है। यदि सब प्रकारके कारखाने हमारे ही देशमें होते तो हमें इतनी कठिनता न उठानी पड़ती और कम व्ययमें ही अपनी आवश्यक वस्तुयें तैयार कर लेते। आजकल विदेशी मालके सस्तेपनकी बराबरी करना हमारे लिये कठिन ही है।

हमारे देशी धन्धोंमें एक और भी कमी है। बाहरके देशवालोंके एक कारखानोंमें एक पदार्थसे सम्बन्ध रखनेवाली अनेक उप-वस्तुयें तैयार हो जाती हैं। इसप्रकार खनिजोंका कोईभी आवश्यक भाग बरबाद नहीं होने पाता है। यदि हमको किसी खनिजसे दाहकक्षार निकालना है और यदि उसमें कुछ अन्य अंश ऐसे हैं जिनके अन्य यौगिक भी मिल सकते हैं, तो हम देशी विधियोंमें उनकी ओर ध्यान नहीं देते। आजकल की रासायनिक विधियोंकी यह बड़ी भारी उपयोगिता है कि कम व्ययमें कम कठिनतासे एक कारखानेमें अनेक वस्तुयें तैयार करली जाती हैं। लोगों का कहना है कि भारत कृषि-प्रधान प्रदेश है पर यदि इसकी वास्तविक सम्पत्ति देखी जाय तो कोई आश्चर्य नहीं है, यह उद्योग-प्रधान देशभी बन सकता है।

हम यहाँ भारतवर्षके कुछ मुख्य धातु और खनिजोंका ही उल्लेख करेंगे। खनिज विज्ञानके अनुसार खनिजोंको छः विभागोंमें विभाजित किया जासकता है:—

[१] शुद्ध तत्त्व

१ भाग—धनात्मक या क्षारीय

(क) स्वर्ण समूह (स्वर्ण, चांदी, पांशुजम्, सैन्धकम् आदि)

(ख) लोह समूह (पररौप्यम्, पैलादम्, पारदम्, ताम्र, लोह, दस्तम्, सीसम्, कोबल्टम्, रागम्, आदि)।

२ भाग—ऋणात्मक या अम्लीय

(क) गन्धक समूह (थलम्, शशिम् सहित)

(ख) कर्बन-शैलम् समूह

[२] गन्धिद, संक्षीणिद और आंजनिद धातुओं के गन्धक, संक्षीणम् और आंजनम्के साथ यौगिक

[३] हरिद

[४] प्लविद

[५] ओषजन यौगिक

१. ओषिद (अनार्द्र और आर्द्र)

२. शैलेत

३. स्फुरेत, संक्षीणेत, नोषेत

४. टंकेत

५. वुल्फ्रामेत, सुनागेत

६. गन्धेत

७. कर्बनेत

[६] उदकर्बन यौगिक

इन सब समूहोंका विस्तार पूर्वक वर्णन तो यहाँ देना संभव नहीं है। सामान्य दृष्टिसे ही इन सबका उल्लेख यहाँ किया जावेगा।

सोना

भारतवर्षमें सोना शुद्ध रूपमें कार्ट्ज आदि पत्थरों के अन्दर या नदियोंकी बालूमें मिला हुआ पाया जाता है। मैसूर राज्यके कोलर प्रान्तकी धारवार शिलाओंमें यह विशेषतः मिलता है। यहाँ यह अभ्रक (कार्ट्ज) स्नायुओंमें होता है, जहाँसे यह पीस, कूटकर जलद्वारा ऐसे ताम्रपत्रोंपर प्रवाहित कियाजाता है जिनपर पारद लगा होता है। इस प्रकार पारद-विधिसे यह पृथक् किया जाता है। यहाँसे प्रतिबर्ष ५६०,००० औंस तैयार किया जाता है। निम्नस्थानोंसे भी सोना निकाला जाता है:-

निज़ाम राज्यकी हट्टी-खानसे २१००० औंस

मद्रासस्थ अनन्तपुर-खानसे २४००० "

इरावदीकी घाटीसे तथा मध्यप्रदेशकी नदियोंकी बालूमें भी यह पाया जाता है।

चांदी, सीसा, और दस्ता (जस्ता)

भारतमें चांदी बहुत कम पायी जाती है। यह कभी कभी सोनाके साथ संयुक्त भी पायी गई है। पर यहाँ कदाचित संसारमें सबसे अधिक चांदीका उपयोग होता है (प्रति वर्ष लगभग १५०,०००,००० रुपयेकी चांदी बाहरसे आती है) उत्तरी बर्माके शान राज्यस्थ बौडविनमें सीसा (गैलीना) से संयुक्त चांदी मिलती है जहाँसे प्रति वर्ष २८५००० औंस (साढ़े चार लाख रुपयेकी) चांदी तैयारकी जाती है।

सीसाभी भारतमें बहुत कम तैयार किया जाता है यद्यपि इसका खनिज गेलीना हिमालय, मद्रास, बंगाल तथा विन्ध्याके चूनेके पत्थरोंमें अवश्य पाया जाता है। हज़ारीबाग़, मानभूमि, और मध्य प्रदेशके कुछ प्रान्तोंमें सीसाके खनिज विशेष मात्रामें विद्यमान हैं पर खेद यही है कि इनका उपयोग नहीं किया जारहा है, क्योंकि विदेशोंसे हमें सस्ता सीसा प्राप्त हो ही जाता है। बौडविन (बर्मा) में इसका व्यवसाय अवश्य आरम्भ किया गया है।

इसी बौडविन स्थानसे दस्ता भी थोड़ी मात्रा में तैयार किया जाता है। दस्तब्लैएडी खनिज गेलीनासे मिश्रित यहाँ पाया जाता है।

ताँबा

ज़नस्कर नदीके प्रदेशमें काश्मीरमें शुद्ध तांबा पाया जाता है। सिँहभूमि, छोटा नागपुर, अजमेर, अलवर, उदयपुर, सिकिम, गढवाल आदि स्थानोंमें तांबेके खनिज पाये जाते हैं। सिंहभूमि प्रान्त में इसके खनिजका व्यवसाय सफलतासे हो रहा है जहाँ ८००० टन प्रतिवर्षके लगभग खनिज प्राप्त होता है। पर ३ करोड़ रुपयेका तांबा प्रतिवर्ष विदेशसे हमारे यहाँ आरहा है। राजपूताना में तांबा और कांसाके लिये कारखाने थे, अजमेर और जयपुरमें भी पहले तांबा तैयार किया जाता था पर ये धन्धे बहुत कुछ शिथिल पड़गये हैं। सिकिममें इसके व्यवसाय की आशाजनक संभावना है।

लोहा

लोहा भारतवर्षमें बहुतायतसे पाया जाता है। इसके ओषिद, हेमेटाइट और मैग्नेटाइट मुख्य खनिज हैं। दक्षिणी प्रायद्वीपमें (धारवार और कढ़ापा) में तो कहीं कहीं बहुतही अधिक पाया जाता है। बंगालके मयूरभंज राज्य, मध्य प्रदेशके रायपुर स्थान, बर्द्वान, सिंहभूमि, आदिमें लोहेके अच्छे खनिज पाये गये हैं। यहाँ पिग-लोहा २-½ लाख टन और इस्पात ७५००० टनके लगभग तैयार किया जाता है।

विदेशसे प्रतिवर्ष ३५ करोड़ रुपयेके लगभग (२६०००००० पौंड) का लोहा हमारे देशमें आता है। मद्रासमें सलेम, मदुरा, मैसूर, कढ़ापा, आदि स्थानोंमें, बंगालमें सिंहभूमि, मानभूमि, बर्द्वान, सम्बलपुर और मैसूर प्रान्त में लोहा मिलता है। मध्य प्रदेशके चाँद प्रान्तमें खानदेश्वर नामकी एक २५० फीट ऊँची पहाड़ी है जो मुख्यतः लोहेके खनिज की बनी हुई है।

स्फटम्

स्फटम्‌का खनिज बौक्साइट कटनी (जबलपुर) मध्यप्रदेशमें बहुत पाया जाता है। महाबलेश्वर भोपाल, पलनी पहाड़ियों और मद्रासके कुछ भागोंमें भी यह पाया जाता है। भारतवर्षमें विद्युत् भट्टियोंके लिये विशेष सुविधा नहीं हैं अतः बौक्साइटसे स्फटम् धातुका प्राप्त करना व्यापारिक रूपमें सफल नहीं होसकता है। विदेशोंमें यह बौक्साइट शुद्ध करके भेजा जासकता है। कटनीके कारखानेमें बौक्साइटका उपयोग सीमेंट बनानेमें किया जाता है।

मांगनीज

रूसको छोड़कर संसार भरमें भारतवर्षमें मांगनीज सबसे अधिक मात्रामें पाया जाता है। हमारे देशसे ८ लाख टनके लगभग प्रतिवर्ष मांगनीज के खनिज अन्य देशोंमें भेजे जाते हैं। इस खनिजसे हमारे यहाँ धातु प्राप्त करनेका कोई धन्धा नहीं है। बालघाट, छिंदवाड़ा, जबलपुर और नागपुरमें ६०% के लगभग मांगनीज खनिज पाये जाते हैं, सन्दुर, विज़गापट्टम, पंचमहाल (बंबई) गंगापुर (उड़ीसा) शिमोगा (मैसूर) में भी ये मिलते हैं। भारतके पाइरो लूसाइट, लोह मांगनीज खनिज आदि ३० रुपये टन के भाव से लंडन भेजे जाते हैं।

वंगम्

जबलपुरमें कैसेटेराइट खनिज पाया जाता है। पर भारतमें इसके खनिजकी अधिक मात्रा नहीं है। बर्मामें (मरगुई और टवोइमें) इसकी कुछ अच्छी मात्रा अवश्य पायी जाती है। वहाँ इस खनिजके व्यापारसे ७५००० रुपयेकी वार्षिक आय होती है।

वुलफ्रामम्

सन् १९१४ तक बर्मा संसार भरका एक तिहाई वुलफ्रामम्-खनिज देता था और तबसे इसका व्यापार और भी अधिक बढ़ गया है। वुल्फ्रेमाइट रूपमें यह (टवाइ) प्रान्त (दक्षिण बर्मा) में पाया जाता है। नागपुर, त्रिचनापली और राजपूताना में भी यह पाया जाता है पर इतनी मात्रामें नहीं कि इसका लाभप्रद व्यापार किया जा सके। बहुतसे स्थानोंमें यह सुनागम्से मिला पाया गया है। बर्मामें सन् १९१६ में ३६८० टन वुल्फ्राम जिसका मूल्य ७३ लाखके लगभग था, तैयार किया गया।

रागम्

यह क्रोमाइट (रागित) रूपमें बिलोचिस्तान, मैसूर और सिंह भूमिमें पाया जाता है। बिलोचिस्तान्में प्रति वर्ष ३२०० टन (५४००० रुपये) यह प्राप्त किया जाता है। मैसूर का क्रोमाइट कुछ कम शुद्ध होता है।

कोबल्टम्, नकलम् आदि।

कोबल्ट-नकलम् खनिज इतनी मात्रामें नहीं पाये जाते हैं कि कोई व्यापार किया जासके। इनके गन्धिद खेत्री, जयपुर (राजपूताना) में थोड़ी सी मात्रामें पाये जाते हैं। नीले इनेमल बनानेमें इनका उपयोग किया जाता है।

काश्मीरके दक्षिण पूर्वमें लाहौल प्रान्तके शीग्री ग्लेशियरके सिरे पर आंजन-गन्धिद (स्टिब्नाइट) की अच्छी मात्रा पायी जाती है। स्टिब्नाइट विज़गापट्टम और हज़ारीबाग़में भी पाया जाता है।

संक्षीणम्के गन्धिद (ओर्पीमैएट और रिअलगर) पश्चिमोत्तर सीमापर चित्रालमें और कुमाऊँमें अधिक मात्रामें पाये जाते हैं। पर इनसे संक्षीणम् धातु प्राप्त करनेका यत्न नहीं किया जारहा है।

रत्न और बहुमूल्य पत्थर

हीरा—हीराके लिये भारतवर्ष अतिप्राचीन कालसे प्रसिद्ध है। पर ब्रेज़िल और ट्रान्सवाल की हीरेकी खानों का पता चलनेसे अब हीरे का धन्धा उतने महत्वका नहीं रहा है। सम्राट अकबरके समय तक भारतमें इसका धन्धा विशेष उत्साहसे किया जाता था। बुन्देलखंड (पन्ना नामक हीरा), करनूल, कड़ापा, बेलारी, सम्बलपुर (मध्य प्रदेश), इसके विशेष स्थान थे। हीरे गोल गोल कंकड़ियोंके रूपमें पाये जाते हैं। यहाँके प्रसिद्ध हीरे ये हैं:—'कोहनूर' १८६ कैरेट; 'ग्रेट मोगल' २८० कैरेट; 'पिट' ४१० कैरेट। पिट को फिरसे तराश कर १३६$\frac{3}{4}$ कैरेट का किया गया जिसका मूल्य ४८०००० पौंड लगाया जाता है।

रूबी और सैफायर—(कोरण्डम) लाल और नीलम—लाल रंगके रूबी और नीले रंगके सैफायर अति प्रसिद्ध हैं। बर्माके रूबी मोगक प्रान्त

में पाये जाते हैं। ये आकारमें चौथाई रत्तीसे बहुधा कमही होते हैं। मोगक रूबीके कारण बहुत दिनोंसे जगत् प्रसिद्ध रहा है।

बर्मामें जहाँ रुबी (लाल मिलते हैं वहाँ नीलम (सैफायर) भी कुछ पाये जाते हैं। पर इसके लिये काश्मीर सबसे अधिक प्रसिद्ध है। यहांके किश्तवर प्रान्तमें ये पाये जाते थे। पर सन् १६०८ के बाद इनका मिलना बन्द हो गया। अब केवल नकली नीलमही रह गये हैं।

किशनगढ, जयपुर, दिल्ली, नेलोर आदिमें कुछ और प्रकारके मूल्यवान पत्थर (बेरील, गार्नेट, टूरमेलीन आदि) पाये जाते हैं। रतनपुर (राजपीपला स्टेट) में अगेट पत्थरकी जातिके पदार्थ भी मिलते हैं।

अन्य अदार्थ

नमक—भारतमें नमक तीन साधनोंसे पाया जाता है—(१) समुद्रके पानीसे (२) खारी कुएँ और खारी झीलोंसे, विशेषतया राजपूताना और संयुक्त प्रान्तमें (३) नमकके पर्वत (साल्टरेंञ्ज) से। बम्बई और मद्रासके समुद्र तटपर समुद्रके पानीसे नमक तैयार किया जाता है। छोटे छोटे गड्ढों और टंकियोंमें पानी भर दिया जाता है। और धूप में सूखने दिया जाता है। इसके बाद घोलमेंसे नमकका स्फटिकी करण कर लिया जाता है। कुओं और खारी सोतोंसे संयुक्त प्रान्त, बिहार, दिल्ली, आगरा, सिन्धुके डेल्टा, कच्च और राजपूतानेमें नमक तैयार करते हैं। सांभर नमक जयपुर, जोधपुर और बीकानेर में बनता है।

सैन्धक हरिदके नमकके शुद्ध रवे खेवड़ा (झेलम) में अनन्तराशिमें विद्यमान हैं। कोहाट प्रान्तमें भी नमककी खानें हैं। साल्टरेंञ्ज (नमक के पहाड़) में सैन्धकहरिदके अतिरिक्त मगनीसम् और पांशुजम्के भी कुछ लवण रहते हैं।

उत्तरी भारतमें जो 'रेह' प्राप्त होती है उसमें सैन्धक कर्बनेत और गन्धेत होते हैं। बुलडाना प्रान्त की लोनर झीलमें सैन्धक कर्बनेत बहुत होते हैं।

शोरा—पांशुजनोषेत—विहार प्रान्तसे शोरा पहले अमरीका और यूरोपमें बहुत भेजा जाता था। पर जबसे रासायनिक विधियोंसे यह तैयार किया जाने लगा है, तबसे बाहरकी मांग बन्द हो गई है। बिहारके समान घनी आबादके ऐसे कृषिप्रधान प्रान्तमें जहाँ जलवायु बारीबारीसे गरम और नम होती रहती है, शोराके अधिक मिलनेकी संभावना है। ग्रामोंके निकट विष्ठा, वनस्पति आदि जमा होकर सड़ने लगता है जिससे अमोनिया पैदा होती है। यह अमोनिया नोषस-कीटाणु द्वारा नोषिकाम्लमें परिणत होजाती है और फिर ओषदी कृत होकर नोषिकाम्ल बन जाती है। नोषिकाम्ल अन्य पांशुज लवणोंके साथ प्रक्रिया करके पांशुज नोषेत या शोरा बना देता है, यह शोरा वर्षाके जलमें घुलकर समस्त भूमिमें फैल जाता है और सूचिकाकर्षणके प्रभाव द्वारा ज़मीन, या दीवारों की ऊपरी सतह पर आजाता है। इसेही 'नोना' लगना (पुष्पण) कहते हैं। नोना मिट्टीमें यह शोरा अधिक मात्रामें होता है।

नोना इकट्ठा किया जाता है। इसे जलसे संचालित करते हैं और घोलको निथार कर वाष्पीभूत करते हैं। इस प्रकार शोरेका स्फटिकीकरण कर लिया जाता है। पहले अकेले विहारमें प्रति वर्ष बीस हज़ार टन शोरा तैयार किया जाता था पर अब बिहार, पंजाब, सिन्ध आदि प्रान्तोंको मिलाकर भी १७००० टन प्रतिवर्षसे अधिक (जिसका मूल्य ३८००००० रुपया समझा जा सकता है) शोरा नहीं तैयार किया जाता है।

शोराके तीन उपयोग हैं। गोला बारूद बनानेमें, गन्धकाम्लके व्यापारमें और खादके रूपमें।

फिटकरी—फिटकरी मुख्य रूपसे प्रकृतिमें नहीं बनती है, । यह गौण प्रक्रियाओंसे तैयारकी जाती है। भारतवर्षमें विशेषतया पांशुज और सैन्धक फिटकरियाँ तैयारकी जाती हैं। कच्छ, राजपूताना और पंजाबके कुछ स्थानोंमें पहले इसका अच्छा धन्धा था। अब केवल कालाबाग़ और कच्छमें ही यह रह गया है। इसका उपयोग रंगने और चमड़ेके व्यवसायमें किया जाता है।

सुहागा—सैन्धकटंकेत—पूगा घाटी (लद्दख) के गरम सोतोंमें यह अवक्षेपके रूपमें विद्यमान है। तिब्बतकी बहुतसी खारी झीलोंमें भी यह पाया जाता है। पानीको वाष्पीभूत करके यह प्राप्त किया जाता है। जबतक अमरीकामें खटिक टंकेत की प्रचुर राशिका पता न चला था, तब तक सुहागे का व्यापार हमारे देशमें बहुत होता था। पहले १६००० हंडरवेट सुहागा लद्दख और तिब्बतसे संयुक्तप्रान्त पंजाब और विदेशोंको जाता था पर अब केवल ४५०० हंडरवेट ही प्रतिवर्ष तैयार किया जाता है। इसका उपयोग कांच और कृत्रिम रत्नों के बनानेमें तथा साबुन और वार्निशमें किया जाता है।

अभ्रक (माइका, मसकोवाइट)—संसार भरमें सबसे अधिक अभ्रकका व्यापार भारतवर्षमें होता है। जितने बड़े और सुन्दर पत्र यहाँ पाये जाते हैं उतने और कहीं भी नहीं। निलोरकी खानोंसे तीन तीन गज़ लम्बे व्यासके ये पाये गये हैं। भारत का दक्षिणी प्रायद्वीप इसके लिये जगत् प्रसिद्ध है। प्रति वर्ष ५०००० हंडरवेट (मूल्य ४५००००० रुपया) के लग भग यह विदेशको भेजा जाता है। इसकी प्रसिद्ध खानें हज़ारीबाग, गया, मुंगेर, निलोर, अजमेर और मरवाड़ में हैं। बंगालमें यह सब से अधिक मात्रा में होता है।

कोरण्डम्—मैसूर और मद्रास में यह अधिक पाया जाता है। यहाँ के अतिरिक्त भारत और बर्मा की रवेदर चट्टानों में भी पाया जाता है। मोगक प्रान्त (उत्तरी बर्मा), आसाम की खासिया पहाड़ियाँ, बंगाल के कुछ भाग और काश्मीर की ज़न्सकर श्रेणियों में यह विशेषतः मिलता है। त्रिचनापली, नेलोर, सलेम, कोयम्बटूर और मद्रास में इसके विशेष स्थान हैं। यह अत्यन्त दृढ़ और कठोर होता है अतः इसका उपयोग रत्नों, और नगोंको काटने, तराशने और चिकनाने में किया जाता है। प्रतिवर्ष ६०००-७००० हंडरवेट (मूल्य ३०००० रुपये) के लगभग इसका व्यापार किया जाता है।

मोनेज़ाइट—यह दुष्प्राप्य पार्थिवों—सूजकम्, लीनम् इत्यादि का स्फुरेत है, पर इसमें थोड़े से थोर-ओषिद होने के कारण इसका मूल्य अधिक बढ़ गया है। पहले पहल यह ट्रावनकोर प्रान्त में पाया गया। कुमारी अन्तरीप से किलो तक के तट पर भी यह पाया जाता है। ट्रावनकोर के मोनेज़ाइट में ८ से १० प्रतिशत थोरिया होता है। सन् १९१३ में भारतने १४०० टन मोनेज़ाइट ६ लाख रुपये का बेचा था। थोरिया का उपयोग दीपकों के प्रावारों में किया जाता है।

लेखनिक (ग्रेफाइट)—उड़ीसा की खोण्डेलाइट शिलाओं में यह विशेषतः पाया जाता है। ट्रावनकोर की खानसे १३००० टन प्रतिवर्ष (मूल्य ७८०००० रुपया) प्राप्त किया जाता था पर अब यह धन्धा बन्द हो गया है। अब मारवाड़, सिकिम, कुर्ग और विज़गापट्टम में भी यह थोड़ी सी मात्रा में पाया गया है।

मगनीसाइट—सलेम प्रान्तमें यह विशेषतया मिलता है। इसके अतिरिक्त कोयम्बटूर, मैसूर और त्रिचनापली में भी पाया गया है। यह अत्यन्त कठिनता से गलाया जाने वाला पदार्थ है अतः इसका उपयोग ऐसे स्थानोंमें किया जाता है जहाँ उच्चतापक्रमके तापकी आवश्यकता होती है। कर्ब-

नद्रिओषिद्की प्राप्तिके लिये एवं सीमेण्ट बनानेके लियेभी इसका उपयोग किया जाता है

एस्बेस्टस—केवल दो स्थानोंपर यह उपयोगी मात्रामें पाया गया है, ईडर राज्य और सिंहभूमिके सरायकला राज्यमें।

पिचब्लैण्डी—गयाकी सिगर-अभ्रक खानोंमें पाया जाता है। इसमें अन्य पिनाक-खनिजभी मिले होते हैं। नेलोर और मैसूरमें समरस्काइट खनिजभी मिला है।

गन्धक—बैरनद्वीप (बंगालकी खाड़ी) और पश्चिमी बिलोचिस्तानके शान्त ज्वालामुखियों। यह कुछ मात्रामें पाया जाता है। गन्धकके बहुतसे सोतेभी यतस्ततः पहाड़ी स्थानोंमें पाये जाते हैं। लद्दखकी पूगा घाटीमें भी यह पाया जाता है।

कोयला—आजकल कोयला बड़े महत्वकी चीज़ माना जाता है। भारतवर्षके कई स्थानोंमें कई अच्छी खानें हैं। प्रतिवर्ष १६०००००० टनसे अधिक जिसका मूल्य ६००००००० रुपया है, कोयला पाया जाता है। सम्पूर्ण कोयलेका ६१.५°/० भाग बंगाल, बिहार, और उड़ीसाकी खानोंसे पाया जाता है। ३.५°/० हैदराबादकी सिंगरेनी खानसे; १.५°/० मध्य प्रान्तसे और १°/० सैन्ट्रेल इण्डियाकी उमरिया खानसे मिलता है।

रानीगंज	से	५०००००० टन
झरिया	से	६०००००० ,,
गिरीडडी	से	८३०००० ,,
उमरिया	से	१५०००० ,,

मध्यप्रान्तमें बेलारपुर, मोहपानी, कोरिया आदि में यह पाया जाता है।

संगमरमर—राजपूतानाकी अरावली श्रेणियोंमें यह विशेष रूपसे पाया जाता है। मकारना (जोधपुर), खड़वा (अजमेर) भैंसलाना (जयपुर), अलवर आदि स्थानोंमें इसका अच्छा व्यवसाय है। यहां कई रंग और कई जातियोंके अच्छे पत्थर पाये जाते हैं। मकरानाका पत्थर श्वेत, खाकी और लाल रंगका होता है। जैसलमेरमें पीला संगमरमर और मोतीपुरा (बड़ोदा राज्य) से अति सुन्दर हरे रंगका पत्थर मिलता है। किसनगढ़ राज्यमें लाल संगमरमर पाया जाता है।

भारतवर्षकी भौगर्भिक परिस्थिति

[ले०—सत्यप्रकाश एम० एस-सी०]

समस्त भारतवर्ष तीन या चार मुख्य भागोंमें विभाजित किया जा सकता है। (१) इसके उत्तर प्रान्तकी हिमालयकी विशाल श्रेणियां (२) इसके दक्षिण भागका अति प्राचीन प्लैटो, और (३) हिमालय और दक्षिण प्लैटोके बीचमें पंजाबसे लेकर बंगाल तककी सिन्धु-गंगा आदि नदियोंसे सिंचित विस्तृत उर्वरा भूमि। इसके साथ ही साथ यदि राजपूतानेकी मरुभूमिको भी एक अलग विभाग मानें तो भी कोई हानि नहीं है।

भारतकी उत्तरी पर्वत श्रेणियाँ एक ओर पामीर प्लैटोसे निकलकर अफ़गानिस्तानकी ओर गई हैं और दूसरी ओर काश्मीर, पंजाब, संयुक्तप्रान्त, बिहार और बंगालके उत्तरमें होती हुई बर्मामें भी पहुँच गई हैं। बर्मामें ये उत्तरसे दक्षिणको फैली हुई हैं। पर भारतीय प्रदेशोंमें इनका विस्तार अधिकतर पूर्व-पश्चिम दिशामें ही है। हिमालयके अन्तर्गत बहुत ऐसे स्थान हैं जिनके विषयमें अभी हमें कुछ भी ज्ञात नहीं हुआ है। एवेरेस्ट पर्वतके शिखर तक पहुंचनेका कईबार प्रयत्न किया गया

पर अत्यन्त शीत पड़ने तथा यात्राकी अनेक असुविधायोंके कारण इस प्रकारका प्रयास अभी असफल ही रहा है। तिब्बत और भारतके बीचमें इन पर्वतोंकी क्या अवस्था है, यह केवल अनुमानसे ही ज्ञात हो सकता है। वस्तुतः हिमालय इतनी ऊँची, चौड़ी और पक्की दीवार है जिसे आजतक कोई पार नहीं कर सका है।

भूगर्भशास्त्र-वेताओंके लिये दक्षिणका त्रिकोणाकार प्लैटो अत्यन्त ही महत्वका प्रदेश है। यह उत्तरकी सम-भूमि और पर्वतोंसे अनेक आवश्यक बातोंमें भिन्न है। यह कहना तो संभव नहीं है कि पृथ्वीके आदिकाल (लेविसियन और टोरिडोनियन खंडों) में भारतकी क्या अवस्था थी, क्योंकि पृथ्वी इस समय अत्यन्त उग्र, तप्त और विचित्र अवस्थामें थी। ज्वाला-मुखियोंका प्रकोप भी आरम्भ हो गया था, पृथ्वीकी दशा प्रतिघड़ी बदलती रहती थी, यह वह समय था जब पृथ्वी जल और थल भागोंमें विभाजित भी नहींकी जा सकती थी, क्योंकि अत्यन्त-तापके कारण वह जल जो आजकल महासागरोंके रूपमें दिखाई दे रहा है भापके रूपमें वायुमंडलमें विद्यमान था। अतः इस आदि कालीन भारतके विषयमें यह कहना कि इसका कितना भाग जल था और कितना थल असंगत ही है। इस समय पृथ्वीपर पर्वतोंका भी निर्माण नहीं हुआ था, पृथ्वीके शिला-कोष और धातु-कोष बन रहे थे। पृथ्वीकी पपड़ीका निर्माण होना आरम्भ ही हुआ था। कहीं-कहीं कुछ ठंडा होनेपर सिकुड़न भी पड़ने लगी थीं। अस्तु, लेविसियन और टोरिडोनियन कालके भारतवर्षमें न तो पहाड़ थे, न महासागर, या अन्य सागर थे और कदाचित् दक्षिणका प्लैटो भी उस रूपमें नहीं था, जैसा आजकल है, और न यहाँ गंगा, सिन्धु आदि नदियाँ ही थीं। एक विचित्र अवस्था थी, समस्त पृथ्वी आगकी धधकती गेंद थी और भारतवर्ष भी उसी गेंदका एक कोना था।

आदि-कालके पश्चात् परिवर्तन-काल आया। पृथ्वीमें इस समयसे विशेष परिवर्तन होने लगे। वस्तुतः परिवर्तन काल टोरिडोनियन समयसे ही आरम्भ हो जाता है पर मुख्य परिवर्तन कैम्ब्रियन खंडसे आरम्भ होते हैं। भारतवर्षके दक्षिणी प्लैटोका जन्म इसी समय होता है। यह कहना अनुचित न होगा कि यह दक्षिणी प्लैटो संसारभरके सब थल भागोंसे अति पुराना है। पृथ्वीके अन्य थलभाग तो भौगर्भिक इतिहासके अन्य कालोंमें जलमें भी डूब चुके हैं, पर दक्षिणी प्लैटो कैम्ब्रियन कालसे लेकर आजतक कभी भी जलमें नहीं डूबा है, यह दूसरी बात है कि इसके सीमान्त प्रदेश कभी जलमें प्लावित हो गये हों। भौगर्भिक इतिहासमें दक्षिणी प्लैटोकी यह एक बड़ी विशेषता है।

इस प्लैटोकी दूसरी विशेषता यह है कि इसकी शिलायें अन्य प्रान्तोंकी शिलाओंकी अपेक्षा भिन्न प्रकारसे क्रम-बद्धकी गई हैं। पर्वतोंमें चट्टानें दो प्रकारसे लगी पायी जाती हैं, एक पड़ी, दूसरी खड़ी। पड़ी चट्टानें एकपर दूसरी रक्खी होती हैं और खड़ी चट्टानें एक दूसरेसे मिली हुई सटी रक्खी होती हैं। दक्षिणी—प्लैटोकी चट्टानें अधिकतर पहले ही प्रकारकी हैं। एकपर दूसरी पड़ी चट्टानें इस दृढ़तासे रखी हुई हैं कि कैम्ब्रियन कालसे आजतक ये वैसी की वैसीही बनी हुई हैं।

तीसरी बात जो इस प्लैटोके सम्बन्धमें उल्लेखनीय है वह यह कि इस प्लैटोपर जो पहाड़ मिलते भी हैं उन्हें वस्तुतः पहाड़ नहीं समझना चाहिये। यह प्लैटोके अवशिष्ट (बचे हुए) अंश हैं। वस्तुतः यह प्लैटो प्राचीन समयमें बहुत ही विस्तृत था, उसके कुछ अंश कालान्तरमें कटकर नष्ट होगये और कुछ अंश यतस्ततः टीलोंके रूपमें अबतक खड़े रह गये हैं। प्राचीन अति उच्च प्लैटोके वे अंशही दक्षिणके पहाड़ हैं।

उत्तर भारतके पहाड़ इस प्रकारके नहीं हैं।

उनके पर्वत वस्तुतः पर्वत है। इसभेदको समझनेके लिये हमें इसबातपर ध्यान देनेकी आवश्यकता है कि हम जानें कि पहाड़ किस प्रकार बनते हैं। पहाड़ोंके बननेकी तीन विधियाँ हैं। कल्पना करो कि एक विस्तृत मैदान है। अब यदि इस मैदानकी ज़मीन इधर उधर कुछ स्थानोंपर नीचे धंस जाय तो फिर देखनेमें यह मालूम होगा कि कुछ स्थानोंकी अपेक्षा दूसरे स्थान अति ऊँचे उठे हुए हैं। यदि आप नीचे धंसे हुए भाग पर खड़े हुए हैं तो वे भाग ऊँचे टीलोंके रूपमें दिखाई देंगे। इनको ही पहाड़ समझा जा सकता है। अतः पहाड़ोंके बननेकी पहली विधि यह है कि यदि किसी स्थानके चारों ओरकी ज़मीन कट जाय, या धंस जाय तो वह दृढ़ अपरिवर्तित स्थान ही पर्वत हो जायगा।

पहाड़ोंके बननेकी दूसरी विधि पहली विधिकी बिलकुल उलटी है। किसी मैदानकी ओर फिर दृष्टि डालिये। इस मैदानकी भूमिके नीचे अनेक परिवर्तन हो रहे हैं, और अनेक प्रकार के पदार्थ हैं। अधिक गरमी आदिके प्रभावसे कल्पना कीजिये, कि कुछ पदार्थ ज़मीनको फाड़कर बाहर निकलनेका प्रयत्न कर रहे हैं। इसका प्रभाव यह होगा कि वे ज़ोर लगायेंगे और यह भी संभव है कि इस ज़ोरके कारण पृथ्वीका कुछ भाग ऊपर उठना आरम्भ हो, और इस प्रकार कुछदिनों बाद मैदानपर उठा हुआ टीला मालूम होने लगेगा। बस, पहाड़ भी इसी प्रकार बन सकते हैं। ज़मीनके अन्दरसे ज़ोर लगनेके कारण कुछ भूमि उभड़ने लगी और यही पर्वतोंके रूपमें होगई।

पर्वत बननेका एक तीसरा कारण भी है। मान लीजिये कि ज़मीनके किसी टुकड़ेके दो विपरीत सिरों पर ज़ोर लगाया गया। एक तरफकी शक्ति टुकड़ेको एकओर ढकेलती है और दूसरी शक्ति उसे अपनी दृढ़ताके कारण उस ओर ढकेलने नहीं देती है। इसका परिणाम यह होगा कि वह ज़मीनका टुकड़ा रोक पाकर ऊपर उठने लगेगा और ऊँचा टीला बन जावेगा।

कहा जाता है कि हिमालयका जन्म भी इसी प्रकार हुआ। भारतके उत्तरमें तिब्बतका दृढ़ प्लैटो है। इस प्लैटोने ज़मीनका कुछ भाग दक्षिणकी ओर खिसकाना चाहा। पर दक्षिणमें भारतके दक्षिणी प्लैटोके दृढ़ प्रस्तरथे। अतः उस ओर यह ढकेलनेमें सफल न हुआ। परिणाम यह हुआ कि दोनों प्लैटोंके बीचकी ज़मीन ऊपर उठने लगी। वही इससमय हिमालयके पर्वतके रूपमें विद्यमान है।

दो ओरसे दबाव पड़नेके कारण जो पर्वत बनेंगे उनकी चट्टानें खड़े क्रममें लगी होंगी। दूसरी विधिसे जो पर्वत बने होंगे उनकी शिलायें एक दूसरेपर पड़ी होंगी। दक्षिणके प्लैटोके स्तर एक दूसरेपर पड़े हुए हैं।

दक्षिणी प्लैटोके पर्वतोंको पर्वत नहीं समझना चाहिये। यह अभी कहा जाचुका है। यह दक्षिणी प्रायद्वीप किस प्रकार बना यह आगे बताया जावेगा।

गंगा-सिन्धु नदियोंसे सिंचित भारतकी भूमि भी सदासे वर्तमान न थी। कहा जाता है कि इस स्थानपर पहले समुद्र था। हिमालय इस समुद्रके उत्तरमें था। इसविशाल पर्वत श्रेणीपर नदियों और स्रोतोंका जन्म हुआ। इन नदियोंने हिमालयके पत्थरोंको चूर-चूर करना आरम्भ कर दिया और ये नीचेकी ओर बहने लगीं। पर्वतोंको काट काट कर इन्होंने बालू बनाई। यह मिट्टी और बालू हिमालयके दक्षिणमें स्थित समुद्रको धीरे धीरे पाटने लगीं। नदियाँ इस प्रकारकी मिट्टीको अपने दोनों किनारोंपर जमा करती जाती हैं और उसके बीचमें से बहने लगती हैं। बस गंगा, यमुना, सिन्धु और ब्रह्मपुत्र द्वारा काटे गये हिमालय पर्वतके चूरेने ही समस्त समुद्रको पाट दिया और यही आजकल पंजाब, संयुक्त प्रान्त, बंगाल और बिहारके रूपमें

विद्यमान है। यह सदा स्मरण रखना चाहिये कि हमारे इस प्रदेशको इन नदियोंने ही बनाया है। यदि ये नदियाँ न होती, तो इस उर्वरा भूमिका आज कहीं नाम भी न होता।

राजपूताना कैसे बना ? यह एक बड़ा विवादास्पद विषय है। राजपूताना आजकल मरुभूमि है। लगभग उन्हीं अक्षांशोंपर अरब और सहाराकी भी मरुभूमि विद्यमान हैं। संभव है, राजपूताना दक्षिणी प्लैटोका ही कोई भाग हो, अथवा यहाँपर पहले कोई समुद्र हो। मरुभूमि होनेका कारण यहाँ मानसूनका अभाव है।

भूगोलके हिसाबसे हिमालयकी श्रेणियोंको तीन भागोंमें विभाजित किया जा सकता है—

(१) सबसे ऊँची श्रेणियाँ—जो २०००० फीटतक ऊँची हैं और जिनपर सदा बर्फ ढकी रहती है। एवेरेस्ट, किंचनचिंगा, धौलगिरि, नंगापर्वत, नंदादेवी आदि श्रेणियाँ इस भागमें आती हैं। (२) बीचकी श्रेणियाँ—जो १२००० से १५००० फीटतक ऊँची हैं, (३) नीची शिवालिक श्रेणियाँ—ये ३००० से ४००० फीटतककी ऊँचाईकी हैं।

इन श्रेणियोंकी भौगर्भिक अवस्थाके अनुसार भी तीन भाग किये जा सकते हैं।

(१) उत्तरीय तिब्बत प्रदेश—यह प्रदेश सबसे ऊँची श्रेणियोंके पीछे स्थित है और इसकी चट्टानोंके अवशेषोंसे पता चलता है कि ये प्राचीन-काल (Palaeozoic) के किसी खंडसे लेकर आधुनिक-कालके आरम्भिक इओसीन खंडतककी बनी हुई हैं।

(२) मध्य या हिमालय प्रदेश—इसमें उपर्युक्त हिमालयकी बीचकी श्रेणियोंका प्रदेश है। इसमें रवेदार गौण परिवर्तित शिलायें—जैसे ग्रेनाइट आदि हैं।

(३) निम्न हिमालय प्रदेश—इसमें हिमालयकी श्रेणियाँ सम्मिलित हैं। यह भाग बहुत कुछ नदियों द्वारा जमा किये हुए पर्वती-अंशसे बना हुआ है।

ग्लेशियर—हिमालय पर्वतपर भारतकी ओर निम्नतम हिम-रेखा पूर्वमें १४००० फीटसे पश्चिममें १६००० फीट ऊँचाईपर स्थित है अर्थात् १४०००-१६००० फीटसे अधिक ऊँचे भागपर बारहोमास बर्फ जमी रहती है। तिब्बतकी ओर यह रेखा तीन हज़ार फीटके लगभग और अधिक ऊँची है। लगभग बीस हज़ार फीट ऊँचाईपर हिमालयमें बहुतसे ग्लेशियर विद्यमान हैं। इनमें कुछ ग्लेशियर तो संसारभरके सबसे बड़े ग्लेशियरोंमें गिने जाते हैं। ग्लेशियरोंको बर्फकी नदी समझना चाहिये। हिमालय प्रान्तमें इनकी लम्बाई बहुधा दो-तीन मीलकी पायी गई है। पर कुछ तो चौबीस मीलसे भी अधिक लम्बे हैं जैसे कराकोरमकी हुञ्जा घाटीके हिस्पार और चोगो-लुंगमा ग्लेशियर। इसी स्थानपर बालटोरो और बिआफो ग्लेशियर तो लगभग ४० मील लम्बे हैं। ये २०००० फीटकी ऊँचाईसे बहकर काश्मीरमें सात या आठ हज़ार फीटकी ऊँचाई तक उतर आते हैं। पर सब ग्लेशियर इतने नीचे उतरते नहीं पाये गये हैं। किंचिन चिंगाके ग्लेशियर तेरह हज़ार फीटसे नीचे नहीं उतरते हैं। कितनी नीचाई तक कौन ग्लेशियर उतर सकता है, यह उस प्रदेशके अक्षांशपर भी निर्भर है, और इसके और भी कारण हैं।

हिमालयके ग्लेशियरोंमें एक विशेषता है जो अन्य स्थानोंके ग्लेशियरोंमें नहीं पायी जाती है। यहाँके ग्लेशियरों पर बहुत सी मिट्टी, गर्द, कीचड़ आदि जमा रहता है। यह इतनी मात्रामें होता है कि कभी कभी बरफ दिखाई भी नहीं पड़ती है। कश्मीरमें तो इस गर्दकी इतनी मोटी तह रहती है कि वहाँके गढ़रिये इसके ऊपर रहनेके लिये झोंपड़ी तक बनालेते हैं।

अब हम भारत वर्षके भौगर्भिक इतिहासका कुछ उल्लेख करना चाहते हैं। इस देशके ६ भौगर्भिक विभाग किये जा सकते हैं:—

(१) साल्ट रेन्ज (नमकका पहाड़)—इस प्रदेशकी ओर भूगर्भ वेत्ताओं का ध्यान सर्व प्रथम आकर्षित हुआ था।

(२) हिमालय—इसमें प्रत्येक ऐतिहासिक कालके अवशेष इस सुन्दरतासे पाये जाते हैं, कि इसका महत्व भूगर्भवेत्ताओंकी दृष्टिमें बहुत ही अधिक है।

(३) सिन्ध—इसमें क्रीटेशस खंडसे लेकर आधुनिक काल तकके अवशेष मिलते हैं।

(४) राजपूताना—इसकी मरुभूमिका जन्म अभी लाइस्टोसीन खंडमें हुआ है। मरुभूमिके अन्दर दबे हुए माध्यमिक कालके अवशेष इसमें पाये जाते हैं। अरावली श्रेणियोंका निर्माण और भी पुराने समय का प्रतीत होता है।

(५) बर्मा और बिलोचिस्तान—यद्यपि ये दो प्रदेश भारतकी दो विपरीत दिशाओंमें स्थित हैं तो भी इनकी भौगर्भिक अवस्था बहुतसे अज्ञात ऐतिहासिक कालीन समयोंका वृत्तान्त प्रदान करती है।

(६) तटस्थ प्रान्त—माध्यमिक और आधुनिक कालके कुछ वृत्तान्त पूर्वीतटकी पहाड़ियोंसे ज्ञात हो सकते हैं।

संसारके ऐतिहासिक कालको ५ कालों और १६ खंडोंमें विभाजित किया जाता है जैसा कि कई बार कहा जा चुका है। भारतवर्षके इतिहासकी समीक्षा करनेके लिये हम सुविधानुसार निम्न विभाग करना अच्छा समझते हैं :—

१—परिवर्तन-काल (Archean)

(१) धारवार-समूह
(२) कड़ापा समूह
(३) विन्ध्या समूह

२—प्राचीन-काल (Palaeozoic)

(४) कैम्ब्रियन समूह
(५) सिलूरियन,डेवोनियन, और कार्बोनिफेरस समूह
(६) गोंडवाना समूह
(७) परमियन समूह

३—माध्यमिक

(८) ट्रायज़िक समूह
(९) जूरेज़िक समूह
(१०) क्रीटेशस (दक्षिण) समूह,

४—आधुनिक

(११) इओसीन समूह
(१२) ओलिजोसीन-मायोसीन समूह
(१३) लायोसीन-शिवालिक समूह
(१४ लाइस्टोसीन और आधुनिक

परिवर्तन-कालकी रवेदार और 'नाइस' शिलायें (नाइस शिलामें अभ्रक, कार्ट्ज और फेल्सपार खनिज होते हैं) दक्षिणी प्रायद्वीप, उड़ीसा, मध्य-प्रदेश और छोटा नागपुरमें पायी जाती हैं, बुन्देलखण्डमें भी ये विद्यमान हैं। उत्तर पश्चिममें बड़ौदाके उत्तरसे लेकर अरावली पर्वत तक ये फैली हुई हैं। हिमालय पर्वतमें भी कराकोरम, और काश्मीरकी श्रेणियोंसे लेकर बर्माके पूर्व तक ये चली गई हैं। भारतकी 'नाइस (gneiss) शिलायें तीन प्रकार की हैं—बंगाल नाइस, बुन्देलखंड नाइस और नीलगिरी नाइस। बुन्देलखंडकी लाल रंगकी, नीलगिरीकी कालेरंगकी और बंगालकी मिश्रित नाइस होती हैं। इन तीनोंकी शिलाओंमें और भी बहुतसे भेद हैं जिनका उल्लेख करना यहां संभव नहीं है। इस प्रकार परिवर्तन कालके आरंभमें बुन्देलखंड, बंगाल, दक्षिणके नीलगिरि, पूराज तानेकी

अरावली आदि श्रेणियोंका तथा हिमालयके बहुतसे भागका निर्माण हुआ।

धारवार समूह—परिवर्तन कालके आरम्भकी इन श्रेणियोंके नष्ट भ्रष्ट तथा जीर्ण होनेसे धारवार की शिलाओंका जन्म हुआ। धारवार शिलायें गौण शिलायें हैं और इनमें अनेक प्रकारके खनिजोंकी शिलायें सम्मिलित हैं। अनेक प्रकारके चूनेके पत्थर इसी समयके हैं। कावेरीसे लेकर दक्षिण-प्लेटो के सिरे तक मुख्य धारवार प्रदेश है। मैसूर, बेलरी, कर्नाटक, छोटानागपुर, जबलपुर, अरावली और उत्तरी गुजरातमें एवं हिमालयके प्रान्तोंमें भी धारवार प्रान्तकी सी शिलायें पायी जाती हैं। रीवा, जबलपुर, जोधपुर, मकराना आदि स्थानोंके सुन्दर संगमरमर इस कालमें ही बने थे। एक धातु जिसे मांगनीज कहते हैं भारत वर्षमें अधिक पायी जाती है। इसके खनिज अधिकतर इन धारवार शिलाओं से ही प्राप्त होते हैं।

कढ़ापा समूह—धारवार-कालमें पृथ्वी पर बहुतसे पर्वत थे और ये बड़े विस्तारसे फैले हुए थे। इस कालके उपरान्त पृथ्वीमें बड़ा क्षोभ उत्पन्न हुआ जिससे बहुतसे धारवार कालीन पर्वत टूट गये और उनकी पृथक् पृथक् अनेक श्रेणियाँ बनगईं। अरावली पहाड़ भी इसी समय बना। इस समयके पश्चात् फिर बहुत दिनों बाद शिलाओं का बनना आरंभ हुआ। इस समय जो शिलायें बनी उन्हें कढ़ापा-समूह कहते हैं। इन शिलाओंके विभागका नाम कढ़ापा इस लिये रखा गया है कि इस जातिकी शिलाओं का सर्व प्रथम अध्ययन मद्रासके कढ़ापा प्रान्तमें किया गया था। यह जाति कढ़ापामें अति स्पष्ट है। कढ़ापा शिलाओंकी एक विशेषता यह भी है कि इनमें किसी प्रकारकी भी वनस्पति अथवा प्राणियोंके अवशेष नहीं मिलते हैं। यह क्यों! इसका कोई भी संन्तोष जनक उत्तर नहीं दिया जा सकता है। न तो समुद्री जीवोंके ही यहाँ चिह्न हैं, न थलचरों और न पक्षियोंके। क्या इससे यह कल्पना करली जाय कि इस भागमें किसी प्राणीका जन्म ही नहीं हुआ है, क्यों कि इसके अन्य परावर्ती समयोंमें जीवनके स्पष्ट चिह्न मिलते हैं? कढ़ापा शिलायें नल्लामलाइ श्रेणी (३४०० फीट) कृष्णा श्रेणी (२००० फीट), बिजावर, ग्वालियर आदि श्रेणियों में पायी जाती हैं। इन शिलाओंमें लोहा और मांगनीज़के खनिज मिलते हैं।

विन्ध्या समूह—शेल, बालू और चूनेके पत्थरोंका बना हुआ चौदह हज़ार फीट मोटा यह एक विस्तृत पर्वत समूह है। बालूके इन पत्थरोंके बीचमें सभी स्थानों पर इस प्रकारके चिह्न मिलते हैं जिनसे पता चलता है कि ये पत्थर कम गहराईके समुद्र द्वारा रची गई ज़मीन द्वारा बने हैं। समुद्रकी लहरोंके निशान भी इन पर्वतोंपर दिखाई देते हैं। भंडेर, रीवा, कैमूर, करनूल, भीमा, मलानी आदि श्रेणियोंमें विन्ध्या समूह विभाजित किये जा सकते हैं। मलानी श्रेणी (मारवाड़में जोधपुरके निकट) की विशेषता यह है कि यहाँ शिलाओंमें ज्वालामुखी पर्वतों द्वारा फेंके गये लावाके चिह्न पाये जाते हैं। इसी जातिकी शिलायें अनेक स्थानोंपर हिमालयमें फैली हुई भी पायी गई हैं।

विंध्या और अन्य दक्षिणी शिलाओंकी जातियोंका हिमालयमें पाया जाना यह बताता है कि आरम्भ-कालमें हिमालय और दक्षिणी प्रायद्वीप मिला हुआ था। बादकी पृथ्वीके गठनमें परिवर्तन हुआ जिसके कारण हिमालय अलग हो गया और बीचमें सिन्धु-गंगा-प्रदेश निकल आया।

कैम्ब्रियन समूह—कैम्ब्रियन-कालकी शिलायें जिनमें उस समयके प्राणियोंके अवशेष भी हैं, दो स्थानोंपर पायी गई हैं। पहला, साल्ट रेञ्ज (नमकके पहाड़) में और दूसरे कुमाऊँ प्रदेशके दूरस्थ स्पिती प्रान्तमें। इनमें इतने स्पष्ट अवशेष मिलते हैं कि उस समयकी आनुमानिक अवस्था बिना कठिनताके ही प्रत्यक्ष हो जाती है।

सालटरेञ्जकी श्रेणियोंमें सबसे नीचे नमककी तह है और उसके बाद और तहें इस प्रकार हैं :—

नमक और शेलकी तह ४५० फीट—लाल और हरे रंगकी

मगनीशियन बालूके पत्थरकी तह २५० फीट—श्वेतरंगकी

निओबोलस शेल १०० फीट—ख़ाकी या काले रंग की

लाल बालूके पत्थर ४५० फीट—लाल रंगकी
सालट मार्ल १५०० फीट—लाल रंगकी

सालट मार्लमें नमक, चूनेका कर्बनेत, और मगनीशिया मिला होते हैं।

सिलूरियन, डेवोनियन और कार्बोनिफेरस समूह:—स्पिती प्रान्त (कुमाऊँ) की कैम्ब्रियन शिलाओंमें १५०० फुट मोटी कार्ट्ज़की और फिर उसपर ५०० फुट मोटी चूनेके पत्थर और शेलकी चट्टानें हैं जिनमें पाये गये अवशेष सिलूरियन और डेवोनियन कालके सूचक हैं। बर्माके उत्तरी शान राज्योंमें सिलूरियनके आरम्भ समयकी अनेक रङ्गोंकी शेल चूनेके पत्थरोंसे युक्त पायी गई हैं। काश्मीरकी पंजल श्रेणियोंमें भी कदाचित् सिलूरियन कालकी शिलायें हैं।

डेवोनियन कालके अवशेष चित्राल और उत्तरी शान राज्योंमें पाये गये हैं, पर हिमालय और स्पितीमें इनकी विद्यमानता संदिग्ध ही है।

स्पिती घाटीके नीचे हिस्सेसे लगा हुआ ४००० फीट मोटा एक शेलका समूह है जो डेवोनियन और परमियन कालके बीचका बना हुआ माना जाता है। इसे आरम्भिक कर्बोनिफेरस समयका समझना चाहिये।

हिमालयकी समस्त श्रेणियों पर पूर्वसे पश्चिम तक बराबर अनेक स्थानोंपर ज्वालामुखी पर्वतों द्वारा बनी हुई चट्टानें उपस्थित हैं जिन्हें कर्बोनिफेरस कालका माना जाता है। अन्यस्थलोंमें भी ये पायी गई हैं।

गोंडवानाका समूह—नर्मदाके दक्षिणमें पहले गोंड राज्य थे। इस गोंड प्रान्तका निरीक्षण करते हुए भूगर्भ-वेत्ताओंको विशेष प्रकारके शिला-समूह मिले जिनमें उसी प्रकारके अवशेष विद्यमान थे जैसे अफ्रीका, मैडागास्कर, अस्ट्रेलिया और दक्षिणी अमरीकामें भी पाये गये थे। ये गोंडवाना चिह्न संसारके इतिहासमें बड़े महत्वके हैं। इनके आधार-पर भूगर्भवेत्ताओंकी एकमत सम्मति है कि पृथ्वीके इतिहासमें एक ऐसा समय अवश्य था जब भारतवर्ष एक ओर अफ्रीका और दूसरी ओर अस्ट्रेलिया और दक्षिणी अमरीकासे मिला हुआ था। इन सब प्रदेशोंसे मिलकर जो एक बड़ा महाद्वीप बनता है उसका नाम गोंडवानालैण्ड रखा गया है।

गोंडवाना शिलाओंके तलैटीकी चट्टानें ग्लेशियल (हिम) कालको द्योतक हैं। यह बात सिद्ध कर दीगई है कि परमियन कालमें पृथ्वीपर, विशेषतः गोंडवानालैण्डमें, ग्लेशियल काल था। इन चट्टानोंने ऊपर कोयलेकी शिलायें हैं जिनके बननेके लिये गरम जलवायुकी आवश्यकता है। अतः ये परमियन कालके बादकी हैं। इनके ऊपर फेलस-पारके ऐसे चिह्न हैं जो बताते हैं कि एक बार फिर गोंडवानालैण्ड में हिमकाल आया।

गोंडवाना शिलाओंमें वनस्पति, पशु, मछली, सर्प आदिके अनेक अवशेष पाये जाते हैं। भारतवर्षमें गोंडवाना जातिकी शिलायें बंगालकी दामोदर नदीकी घाटी और राजमहलमें, महानदीकी घाटी तक मध्य प्रान्तमें, काठियावाड़, कच, और पश्चिमी राजपूतानेमें पायी जाती हैं। रानीगञ्ज,

झेरिया आदि स्थानोंकी कोयलेकी खानें इसी समयकी हैं।

परमियन समूह—कार्बोनिफेरस कालके मध्यमें दक्षिण प्लैटोको छोड़कर शेष भारतकी भूमिमें प्रबल विक्षोभ आरम्भ हुआ। इस समय यूरोपका वर्तमान भूमध्यसागर उमड़कर उत्तरी भारत, तिब्बत और चीनमें आ गया। वस्तुतः यह भूमध्यसागर पृथ्वीके समस्त उत्तरी गोलार्धमें फैल गया। दक्षिणका प्लैटो मुख्य भारतसे पृथक् हो गया और इसका सम्बन्ध सीधे गोंडवाना-महाद्वीपसे था। दक्षिणका गोंडवाना महाद्वीप इस प्रकार उत्तरी गोलार्धके यूरेशिया प्रदेशसे पृथक् होगया।

परमियन कालके पत्थर साल्टरेञ्ज, अरावली, श्रेणियों, उत्तरी हिमालय, तिब्बत आदि प्रदेशोंमें पाये जाते हैं। इस समयके प्रस्तर मुख्यतया बालूके पत्थरके होते हैं, जिनपर अनेक स्थानोंमें विशेष प्रकारके नीले या मटमैले विन्दु या छींटे पड़ होते हैं (Speckled Sandstones)। इन प्रस्तरोंके तहमें बाउल्डर तहें (boulder) हैं जो हैम-कालकी उत्पन्न प्रतीत होती हैं। इस प्रकारकी शिलायें साल्टरेञ्ज, राजपूताना, उड़ीसा तथा अन्य प्रदेशोंमें जहाँ कहीं भी अन्तिम गोंडवाना कालकी चट्टानें होंगी बराबर पायी जाती हैं।

ट्रायज़िक समूह—हिमालयके इतिहासमें यह समय विशेष महत्वका है। स्पिती, गढ़वाल, कुमाऊँ और काश्मीरमें इस समयके ३००० फीट तक मोटे शिलाप्रस्तर पाये जाते हैं। साल्टरेञ्ज, बर्मा और बिलोचिस्तानमें भी ये बहुत कुछ मात्रामें पाये जाते हैं।

इन सब स्थानोंकी शिलाओंमें शेल, चूनेके पत्थर, स्लेट आदि पदार्थ होते हैं।

जूरेसिक समूह—ट्रायज़िक चट्टानोंके ऊपर हिमालयमें जूरेसिक समयकी शिलायें भी स्पष्ट दिखाई देती हैं। ये भी काफी मोटी हैं और शेल तथा चूनेके पर्वतकी बनी हुई हैं। इनमें घोंघे मछलियोंके अवशेष तथा सर्प, अमफीबिया आदि जीवोंके चिह्न पाये जाते हैं। स्पिती, गढ़वाल और कुमाऊँमें इस कालकी चूनेके पत्थरकी चट्टानें दो तीन हजार फीट मोटी हैं। इन पत्थरोंकी अवस्थापर विचार करनेसे यह पता चलता है कि ये समुद्रके तटपर बनी थीं और यह समुद्र काफ़ी गहरा था। इस समयके प्रस्तर बर्मा के उत्तरी शान-राज्यमें भी पाये जाते हैं।

विन्ध्या श्रेणियोंके निर्माणके पश्चात् जूरेसिक कालके आरम्भ तक दक्षिणी प्रायद्वीप स्थल रूपमें विद्यमान रहा। इस समय इस प्रायद्वीपमें वह समस्त भाग भी था जो आज-कल राजपूताना कहलाता है। यह अवश्य था कि कुछ भाग धीरे धीरे कटते जा रहे थे। जूरेसिक कालमें अब इस प्रायद्वीपके नीचे भाग जैसे राजपूताना आदिमें भी समुद्र उमड़ आया। कच प्रदेशमें जूरेसिक समयके विशेष प्रस्तर पाये जाते हैं जिनका भूगर्भ-वेत्ताओंने विस्तृत अध्ययन किया है।

क्रीटेशस समूहः—इस समयके प्रस्तर तो अनेक रूपोंमें भारतके भिन्न-भिन्न प्रान्तोंमें पाये जाते हैं। उत्तरी हिमालय, बिलोचिस्तान, साल्टरेञ्ज, कोरोमण्डल तट, नर्मदाकी घाटी, आदिमें ये विद्यमान हैं। इस समयके प्रस्तरोंका वृत्तान्त इतना विस्तृत है कि उसका उल्लेख इस छोटेसे स्थानपर नहीं किया जा सकता है।

परमियनकाल तक हिमालयसे समुद्रकी लहरें टकराती रहीं। उसके पश्चात् समुद्रकी तलैटी धीरे-धीरे उठने लगी और उत्तरी भारतका जल भाग कम होने लगा। हिमालय भी उठने लगा। इसके इतिहासमें तीन समय विशेष उल्लेखके हैं जब मुख्य परिवर्तन हुए—पहला इओसीनखण्डके मध्यमें, दूसरा—मायोसीनखण्डके बीचमें और तीसरा—लायोसीनकालमें।

क्रीटेशसकालके अन्तमें गोंडवानालैण्ड महाद्वीप भी खण्ड-खण्ड हो गया और भारतवर्षके प्रायद्वीपने वह रूप धारण किया जो इस समय है। इओसीनकालके बने प्रस्तर रानीकोट, और किरथर श्रेणियों में पाये जाते हैं। मयोसीन और लायोसीनकालमें बर्माकी मिट्टीके तैलकी खानोंका जन्म हुआ। लायोसीनकालमें सिन्धुगंगा प्रदेशका समुद्र पूर्णतः मुँद गया और वर्तमान स्थल भाग निकल आया।

लाइस्टोसीन कालके आरम्भमें पृथ्वीपर हिमकाल (ग्लेशियल) आया। यूरोप और अमरीका इस समय बर्फसे ढक गया। ग्रीनलैण्डके लिये आजकलभी हिमकाल ही है। भारतवर्षमें हिमकालका कहाँ और कितना प्रभाव पड़ा यह निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता है। हिमालयकी उच्च-श्रेणियोंपर निस्सन्देह हिमकाल विद्यमान था और अधिक ऊँचे शिखरों पर आजकल भी है। सम्भवतः भारतके मैदानों पर अधिक हिम न हो।

शनैः शनैः भारतने अपना वर्तमान रूप धारण कर लिया। आजकल भी थोड़े परिवर्तन हो रहे हैं। नदियां प्रतिवर्ष सहस्रों मन पत्थर काटकर समुद्रोंको पाट रही हैं। इसका भविष्यमें क्या प्रभाव होगा, यह कहना कठिन है। पृथ्वीके अन्दर क्या क्या गुप्त परिवर्तन हो रहे हैं, कौन कह सकता है। कभी-कभी अब भी भूचाल आ जाते हैं। काँगड़ाका भूचाल १६०५ में आया था जो अत्यन्त प्रबल था। इसी प्रकारके भूचाल पहले भी आते रहे हैं। दिल्लीका सन् १७२० का, कलकत्ते का सन् १७३७ का, पूर्वी बङ्गाल और अराकान तटका सन् १७६२ का, कचका १८१६ का, काश्मीर और बङ्गालका १८८५ का, और आसामका १८६७ का भूचाल भारतके इतिहासमें स्मरण रखने योग्य हैं। यद्यपि आजकल भारतमें ज्वाला-मुखियोंका नितान्त अभाव ही है पर कौन जानता है कि पृथ्वीके गर्भमें कोई प्रबल ज्वालामुखी बना रहा हो जिसके प्रकोपसे भारतवर्ष छिन्न-भिन्न हो जाय !! प्रलयके समय क्या होगा, कौन जान सकता है !!

भौतिक रसायनके पारिभाषिक शब्द

[ले०—श्री सत्यप्रकाश, एम० एस-सी०]

न वर्ष हुये, मैंने विज्ञान (२३, १६८३, ६७) में कार्बनिक रसायनके पारिभाषिक शब्द जनताके सम्मुख रक्खे थे। तत्पश्चात् गत-वर्ष मैंने उन शब्दोंके आधारपर कार्बनिक रसायन नामक एक पुस्तक भी प्रकाशितकी। इसी प्रकार विज्ञान (२२, १६८३,) में रसायनके तत्त्वोंके नाम भी प्रकाशित किये थे। इनका उपयोग मैंने अपनी 'साधारण रसायन' नामक अकार्बनिक रसायनके ग्रन्थमें किया। इसी शब्दावलीके आधार विज्ञान परिषद्ने 'वैज्ञानिक परिमाण' नामक एक और ग्रन्थ प्रकाशित किया है। जब तक पारिभाषिक शब्द पुस्तकमें व्यवहृत नहीं हो जाते हैं, तब तक उनकी उपयोगिता संदिग्ध ही रहती है। उपर्युक्त तीनों ग्रन्थोंको लिखकर मैंने यह परीक्षा करली है कि जो पारिभाषिक-शब्द विज्ञान परिषद् जनताके सम्मुख रखना चाहता है वे भाषाके लिये सर्वथा उपयुक्त हैं।

आज मैं यह भौतिक रसायनके पदोंकी सूची प्रस्तुत कर रहा हूँ। यह तो नहीं कहा जा सकता है कि यह सूची पूर्ण है; और न अनूदित शब्द ही सर्वथा दोष रहित हैं। जब तक उनका प्रयोग ग्रन्थ-रूपमें न हो जावेगा जब तक ये पूर्णतः निश्चित भी नहीं माने जा सकेंगे। भौतिक रसायनमें भौतिक और रसायन दोनों विज्ञानोंके शब्दोंका

प्रयोग किया जाता है। भौतिक शास्त्रके आवश्यक पारिभाषिक शब्दोंका प्रयोग वैज्ञानिक परिमाण नामक ग्रन्थमें किया गया है।

काशी नागरी प्रचारिणी सभाका सन् १९०६ का प्रकाशित कोष अब ऐतिहासिक महत्वका ही रह गया है। यह अपने उद्देश्यमें सफल हुआ और इसने वैज्ञानिक साहित्यकी अभिवृद्धिमें बहुत कुछ प्रोत्साहन दिया। कुछ दिन हुए, किसी सज्जनने काशीसे विद्युत् सम्बन्धी पारिभाषिक शब्दोंको प्रकाशित किया था। पर वह शब्दावली जनताका ध्यान आकर्षित करनेमें सर्वथा असमर्थ रही। अभी हालमें नागरीप्रचारिणी सभाने हिन्दी वैज्ञानिक शब्दावलीका परिशोधित संस्करण निकालनेके विचारसे भौतिक विज्ञान सम्बन्धी शब्दोंका अच्छा संग्रह प्रकाशित किया है। काशी विश्व-विद्यालय कुछ पाठ्य ग्रन्थ लिखवा रहा है। उन ग्रन्थोंमें इनका व्यवहार किया जावेगा। डा० निहालकरणसेठी और उनके सहकारियोंका यह कार्य अवश्य प्रशंसनीय है, पर इस संघर्षके समय यह कहना कठिन है कि अन्तमें कौनसी शब्दावली सर्वमान्य समझी जावेगी। भौतिक विज्ञान सम्बन्धी यह शब्दावली बहुत कुछ अपूर्ण है। इसकी उपयोगिता समय ही बतासकेगा।

रसायनके शब्दोंके निर्माण करनेका कार्य बंगाली और उर्दू भाषाओंमें भी हो रहा है। पर उनकी गतिकी अपेक्षा हम बहुत ही आगे हैं, यह हर्षकी बात है। आशा है कि यहाँ दिये गये भौतिक रसायनके पद वैज्ञानिक साहित्यके लिये हितकर होंगे। हो सकेगा तो भौतिक रसायनकी पुस्तक भी मैं जनताको भेंट करने का यत्न करूँगा।

A

Abnormality	असामान्यता
Absolute	निरपेक्ष
Absorption	शोषण
Acclimatisation	सहनशीलता, क्षमता
Actinometer	किरण क्रिया मापक
Active deposit	सचेष्ठ या क्रिया शील प्रक्षेप
Active mass	क्रिया शील मात्रा
Activity	क्रियाशीलता
Accumulator	परवर्त्तीय बाटरी
Additivity	योग शीलता
Adiabatic expansion	अतापन प्रसार
Adsorption	अधिशोषण
Affinity	स्नेह
After-effect	अनु-प्रभाव
Alcogel	मद्यिक जेली
Alcosol	मद्योपघोल
Allotropy	बहु रूपता
Alloy	धातुसंकर
Alpha particle	एल्फाकण
Alternating current	उलटी सीधी धारा
Amalgam	पारद-मेल (मिश्रण)
Ammeter	धारामापक, एम्पीयर-मापक
Amorphous	अमणिभ, बेरवा
Ampere	एम्पीयर
Amphoteric	द्वयरूपी
Analysis	परीक्षा, विश्लेषण
Angular	कोणीय
Anisotropic	सोंफाल रूपी (विषमदिग्)
Anode	धनोद
Antagonism	प्रतिरोधता
Approximation	सन्निकटी करण
Arc spectra	चाप-किरण चित्र
Artificial light	कृत्रिम प्रकाश
Associated liquids	सहवर्ती द्रव
Association	सहवर्तन
Atom	परमाणु
Attraction	आकर्षण
Autocatylitsis	स्वोत्प्रेरण

Average life	औसत जीवन
Axial	अक्षीय
Axis	अक्ष
Azimuthal quantum No.	दिगंशीय काण्टम संख्या (तन्मात्रिक संख्या)

B

Beta	बीटा
Bimetallic	अर्धधातविक
Bimolecular	द्वयणुक
Binary alloy	द्वयांशी धातुसंकर
Bi-refringence	अर्धावर्जनीयता
Boiling point	क्वथनांक
Bolometer	विकिरण-मापक
Boundary	सीमा, सतह
Bridge	सेतु
Bubble	बुलबुला
Buffer solutions	तुलनात्मकघोल

C

C_p/C_v	$ता_द/ता_आ$
Cadmium cell	संदस्तम् बाटरी
Calculation	गणना
Calomel electrode	केलोमल बिजलोद
Calorie	कलारी
Caloriemeter	कलारी मापक
Calorimetry	कलारी मापन
Capillary	सूचिका
Carnot cycle	कार्नो चक्र
Catalysis	उत्प्रेरण
Cataphoresis	ध्रुवागमन
Cathode	ऋणोद
Cell	बाटरी
Centrifuge	मथना
Chain reactions	शृंखला-बद्ध प्रक्रियायें
Characteristic	विशेष, मुख्य
Charge	संचार
Chemical	रासायनिक
Classical	प्राचीन
Closed solubility curve	घुलनशीलता सूचक बन्द वक्र
Cloud formation	बादल बनना
Coagulation	अधःक्षेपण
Cohesion	संसक्ति
Colligative	सम्बन्धी गुण
Collision	समाघात, संघर्षण
Colloid	कलोद
Colour	रंग
Combination	संयोग
Combustion	जलना
Common	समान
Complete	पूर्ण
Complex formation	संकीर्ण-रचना
Complex-ion	संकीर्ण-यवन
Component	अवयव
Composition	संगठन
Compound	यौगिक
Compressed	संकुचित
Compressibility	संकोचनीयता
Compression	संकोचन
Concentration	समाहरण, गाढ़ापन, शक्ति
Condensation	सलिलीकरण, द्रवीकरण, संयोग
Condensed systems	संयुक्तपद्धति
Conductance	चालकता
Coducting power	चालन-बल
Conduction	चालन
Conductivity	चालकता
Conductors	चालक
Conglomeration	उपचयन
Congruent Mt. pt.	सम्बद्ध द्रवांक

Conjugate	आबद्ध
Consecutive	क्रमागत
Conservation of energy	सामर्थ्य की अविनाशता
Constancy	स्थिरता
Constants	स्थिरांक
Constitution	संगठन
Contact potentials	संयोग अवस्थायें
Continuity	सातत्य
Contraction	संकोचन
Control of reactions	प्रक्रियाओं का निग्रह
Conventional	सांकेतिक, लोकसंमत
Cooling curves	शीतली भवन वक्र
Corresponding	सम्बद्ध, अनुरूप
Coulometer	कूलम्बमापक, कूलमापक
Covalence	समसंयोगशक्ति
Critical	विपुल
Cryohydrates	हैमउद्देत
Crystalline	रवेदार
Crystallography	मणिभ (रवे सम्बंधी)
Crystals	रवे
Crystallisation	स्फटिकीकरण
Crystalloid	स्फटोद
Cubical	घनीय
Cumulative	संचित
Current	धारा
Cyclic	चाक्रिक

D

Decomposition	विभाजन
Degeneration	जीर्णता
Degree of Dissociation	विश्लेषण-संख्या
— — Freedom	स्वातंत्र्यकी-संख्या
Density	घनत्व
Deposit	प्रक्षेप
Dessicating	शोषण
Desilverisation	चांदी अलगकरना
Deviations	हटाव
Devitrification	निष्काचाभकरण
Dialysis	निःश्लेषण
Diatomic	द्वयणुक
Dielectric Constant	माध्यमिक संख्या
Differential	भेद दर्शक
Diffusion	निस्सरण
Dilatometer	द्रवप्रसार मापक
Dilute	हलका
Dilutions	हलकेपन
Dimorphism	द्वयरूपता
Disperse phase	वितरण कला
Dispersion	वितरण
Displacement	स्थानान्तर
Dissociation	विश्लेषण
Distance	दूरी
Distribution	विस्तरण
Drops	बिन्दु, बूंदे
Dry	शुष्क
Dynamic	गत्यात्मक
Dyne	डाइन

E

Earth	पृथ्वी धर्ती
Effective	प्रभावशाली
Efflorescence	पुष्पण
Electrical	वैद्युतिक
Electricity	विद्युत्
Electroaffinity	विद्युत-स्नेह
Electrochemistry	विद्युत् रसायन
Electrode	बिजलोद
Electrolysis	विद्युत् विश्लेषण
Electrolyte	विद्युत् विश्लेष्य
Electrometer	विद्युत् मापक
Electromotive force	विद्युत् संचालक शक्ति

Electron अणाणु
Electrostatic स्थिर विद्युतीय
Element तत्त्व
Elliptic orbits दीर्घवृत्तीय परिधि
Emulsion पायस
Emulsoid पायसोद
Enatiotropism रूप-विनिमयता
Endosmosis अन्तराभिसार
Endothermic अन्तरतापिक
End point अन्त बिन्दु
Energetics सामर्थ्य गणना
Energy सामर्थ्य
Entropy यंत्र-समाई (अंत्रोपी)
Enzyme प्रेरक जीव
Equation समीकरण
Equilibrium समता, सामान्यावस्था
Equipartition सम-विभाग
Erg अर्ग
Esterification सम्मेलकरण
Eutectic pt. मिलन बिन्दु
Evaporation वाष्पी करण, भापबनना
Excitation उत्तेजना, गरमाना
Exothermic बाह्यतापिक
Expansion प्रसार
Explosion विस्फुटन
Extraction निष्कर्षण

F

False equilibrium साम्याभास
Fine structure सूक्ष्म रचना
First order प्रथमश्रेणी
Flocculation निक्षेपण
Flowing बहताहुआ
Fluorescence चमक
Fractional आंशिक
Free energy स्वतंत्र सामर्थ्य
Free path स्वतंत्रमार्ग
Freedom स्वतंत्रता
Freezing pt. द्रवांक
Frictional घर्षणोत्पादित
Fused salts गलित लवण
Fusion गलाना

G

Galvanic गलवानीय
Gamma rays गामा किरण
Gas } गैस, वायव्य
Gaseous } गैस, वायव्य
Grating ग्रेटिंग, वर्तन-पट
Gravity गुरुत्व

H

Half-life अर्ध जीवन
Haloes परिवेष
Halogen लवणजन
Harmonic motion आवर्तिक गति
Heat ताप
Heterogenous विषम
Hexagonal षष्ठभुजी
Homogeneous सम, पथ्रस
Hydrated उदित
Hydration उदकरण
Hydride उदिद

Hydrogel	उद्-जेली
Hydrogen	उद्जन
Hydrogenation	उद्जनीकरण
Hydrolysis	उद्लेषण
Hydrolytic	उद्लेषक
Hydrophile	उद्स्नेही
Hydrophobe	उद्विरोधी
Hysteresis	पिछड़न
Hydrous	आर्द्र

I

Ice calorimeter	बर्फकलारी मापक
Ideal	आदर्श
Indices	संख्या
Indicators	सूचक,द्योतक
Induction	आवेश
Infra red	परालाल
Inhibited reactions	निरोधित प्रक्रियायें
Inhibition	निरोध
Interatomic	अन्तर परमाणुक
Intercepts	अन्तरांश
Interface	अन्तरतल
Interfacial	अन्तरतलीय
Internal	आन्तरिक
Intra	अन्तर
Intrinsic	नैज, निज़ी,
Inversion	विपर्यय
Iodometry	नैलिन्मापकता
Ionic	यावनिक
Ionisation	यापन
Ionizing	यापक
Ions	यवन
Isoelectric	समवैद्युत
Isomerism	समरूपता
Isomorphism	समपरिवर्तन
Isothermal	समतापक्रमीय
Isotonic	सम-शाक्तिक
Isotopes	समस्थानिक

J

Junction	जोड़
Jelly	जेली

K

Kinetics	गत्यात्मक

L

Latent	गुप्त
Lattice	जाल
Law	नियम
Lead accumulator	सीसेकी परवर्तीयबाटरी
Life	जीवन
Light	प्रकाश
Limiting	अन्तिम, चरमसीमा
Line	रेखा
Link age	जोड़, बन्ध
Liquefaction	द्रवीकरण
Liquid	द्रव
Lowering	अवकर्ष
Luminescence	दीप्ति
Lyophile	उद्स्नेही
Lyophobe	उद्विरोधी

M

Mass action	परिमाण-क्रिया
Mass spectrograph	मात्रा चित्र लेखक

Maximum	अधिकतम
Mean free path	औसत स्वतंत्र मार्ग
Mechanical equivalent	यांत्रिक समसंख्या
Mechanism	रचना, योजना
Melting	द्रवण
Membrane	त्वचा, तबली
Mesomorphic	मध्यपरिवर्तक
Metallic	धात्विक
Metastable	अधस्थायी
Micelle	मिसेल, संघट्ट
Migration	भ्रमण
Mobility	रफतार
Molecular	आणविक
Molecule	अणु
Mol fraction	अणु-अंश
Moment of Inertia	मात्रा का घूर्ण
Monatomic	एक-परमाणुक
Monotropism	एकरूपता
Moving boundary	चलन शील सीमा
Multiple proportion	गुणक-अनुपात

N

Nature	स्वभाव
Natural	स्वाभाविक
Negative	ऋणात्मक
Neutral	शिथिल
Neutralisation	शिथिली करण
Nomenclature	परिभाषा
Non-aqueous	अजलीय
Nonconductors	कुचालक
Non-electrolyte	विद्युत् अविश्लेष्य
Nucleus	केन्द्र

O

Octave	सप्तक
Oilfilm	तैलकी तल या झिल्ली (पट)
Opposing reaction	विरोधी प्रक्रिया
Optical property	प्रकाश सम्बन्धी गुण
Orbit	परिधि, कक्षा
Order of reaction	प्रक्रिया की श्रेणी
Orientation	आयोजना
Oscillator	झूला, दोलक
Osmotic	निस्सारक
Oxidation	ओषदी करण

P

Partial	आंशिक
Particle	कण
Passivity	शिथिलता, निश्चेष्टता
Perfect gas	पूर्णवायव्य
Period	काल
Periodic classification	आवर्तसंविभाग
Permeability	प्रवेशता
Perpetual	सतत
P_h value	प$_u$संख्या
Phase	कला
Phase rule	कला-सिद्धान्त
Phosphorescence	दमक
Photo-chemical	प्रकाश रासायनिक
Photochemistry	प्रकाश रसायन
Photo decompositoin	प्रकाश विभाजन
Photosensitisation	प्रकाशोत्तेजन
Photosynthesis	प्रकाश संश्लेषण
Photography	फोटोग्राफी, चित्र खींचना-प्रकाशचित्रण

Photolysis	प्रकाश विश्लेषण
Poison	विष
Polar molecules	ध्रुवी अणु
Polarisation	दिग् प्रधानता
Polymorphism	बहुपरिवर्तन शीलता
Positive	धनात्मक
Potential	अवस्था
Potential difference	अवस्था भेद
Precipitate	अवक्षेप
Precipitation	अवक्षेपण
Pressure	दबाव
Principle	सिद्धान्त
Prism	त्रिपार्श्व
Probability	संभावना
Promoter	उद्दीपक, उत्साहक
Protective	संरक्षक
Proton	धनाणु

Q

Quantum	क्वाण्टम (तन्मात्रा)

R

Racemic	आंगूरिक
Radial	व्यासार्धिक
Radiation	विकिरण
Radioactive	रश्मिशाक्तिक
Radiometer	रश्मिशक्तिपमापक
Radium	रश्मिम्
Rapid	तीव्र, तेज
Rate of reaction	प्रक्रिया की गति
Reaction	प्रक्रिया
Reciprocal	व्युत्क्रम
Recoil	उछलना
Recording	अनुलेखन
Recrystallisation	पुनस्स्फटिकीकरण
Rectifier	शोधक
Reduction	अवकरण
Reflection	परावर्तन
Refraction	आवर्जन
Refractive index	आवर्जन संख्या
Reproducible	पुनरोत्पाद्य
Residual	शेष, अवशिष्ट
Resistance	बाधा
Resonance	अनुनाद
Reversible	विपर्यय
Rise	उत्थान, उत्कर्ष
Rotation	भ्रमण

S

Salt	नमक
Salting out	नमक डालकर रवे जमाना
Saponification	साबुनीकरण
Saturation	संपृक्तीकरण
Scattering	परिक्षेपण, प्रकीर्ण
Scintillation	जगमगाहट
Second law	द्वितीय सिद्धान्त
Second order	द्वितीय श्रेणी
Secondary	द्वितीय
Selection	निर्वाचन
Self-induction	स्वावेश
Semi-permeable	अर्ध प्रवेशनीय
Side-reaction	पार्श्व प्रक्रिया
Simultaneous reactions	सह-प्रक्रिया
Size	आकार
Soap	साबुन
Solid	ठोस
Solidus	ठोस सूचक
Sol	उपघोल
Solubility	घुलनशीलता
Solute	घुलनशील

Solution	घोल
Solvation	घोलन
Solvent	घोलक
Space lattice	मंडल जाल
Spark spectra	तडित् किरण-चित्र
Specific	विशिष्ट
Specific heat	आपेक्षिकताप
Spectral	किरण चित्री
Spectrometer	किरण चित्र मापक
Spectrum	किरण चित्र
Stability	स्थिरता, स्थायीपन
Standard cell	प्रामाणिक बाटरी
Static	स्थितिक
Stationary	स्थायी
Stirring	हिलाना, टारना
Strong electrolyte	प्रबल विश्लेष्य
Structure	रचना
Sublimation	ऊर्ध्वपातन
Supercooled	अतिशीतलीकृत
Supersaturation	अति संपृक्तीकरण
Surface	पृष्ठतल
Suface energy	पृष्ठ सामर्थ्य
Suface tension	पृष्ठ तनाव
Suspended	अवलम्बित
Suspensoid	अवलम्बघोल
Symbol	संकेत
Synthesis	संश्लेषण

T

Tautomeric	चल-रूपता
Temperature	तापक्रम
Ternary Tertiary	} तृतीय
Theory	सिद्धान्त
Thermal	ताप सम्बन्धी
Thermo-chemical	ताप-रासायनिक
Thermo-chemistry	ताप-रसायन
Thermocouple	ताप-विद्युत्-युगल
Thermodynamics	ताप गति विज्ञान
Thermometry	ताप मापकता
Thermopile	ताप युगल समूह
Threshold value	न्यूनांक
Titration	द्रवयोग मापक
Transition point	परिवर्तनांक
Translatory motion	स्थानान्तरीय गति
Transport number	वाहक संख्या
Trimolecular	त्रयणुक
Triple point	त्रियोग विन्दु

U

Ultrafiltration	अति-छानन
Ultramicroscope	अतिसूक्ष्म दर्शकयंत्र
Ultraviolet	पराकासनी
Undissociated	अविश्लेषित
Unhydrated	अनार्द्रित
Unipolar	एक-ध्रुवी

V

Valency	संयोग शक्ति
Vapour	वाष्प
Vapour pressure	वाष्प दबाव
Vaporisation	वाष्प भवन
Velocity	वेग,
Vibration	कम्पन, झूलन, स्पन्दन
Viscosity	स्निग्धता
Volt	वोल्ट
Voltage	वोल्टन
Voltmeter	वोल्टमापक
Voltameter	धारा मापक
Volume	आयतन

X etc,

X-ray	रोञ्जन किरण
Wave	लहर
Wavelength	लहर लंबाई
Zero	शून्य

समालोचना।

ज्योत्स्ना

रचयिता, श्रीविद्याभूषण 'विभु', प्रकाशक, रायसाहब रामदयाल अग्रवाल, कटरा, प्रयाग। पृ० सं० १०८, मूल्य ॥=) छपाई कागज़ उत्तम।

इस पुस्तकमें विभुजीकी ६७ कविताओंका संग्रह है। विभुजी पद्यपयोनिधि, चित्रकूट चित्रण, सोहराब और रुस्तम तथा कई बालोपयोगी कविता पुस्तकोंके रचयिता हैं। आपके इस नवीन संग्रहमें तरह तरहकी कवितायें हैं। सम्पूर्ण रचनायें विशुद्ध और स्वस्थ खड़ी बोलीमें लिखी गई हैं। प्राकृतिक निरीक्षण, सुकुमार कल्पनायें, विशद और विस्तृत विवरणात्मक वर्णन, सामाजिक और राष्ट्रीय उद्रेक, तथा व्यंगात्मक कटाक्ष सभी विभुजीकी रचनामें सजीव प्रतीत होते हैं।

'सूखी पत्ती' के दर्दका अनुभव करते हुए विभुजी लिखते हैं—'स्वर्गसे गिरकर पड़ी हूँ धूलमें', पर फिर भी उसे कई कारणोंसे सन्तोष है, जिनमें एक यह भी है:—

जो मुझे जल कर गँवाना प्राण हो,
तो किसी का उस झलक से त्राण हो,

ओला को विभुजी किस ज़ोर के साथ डांट रहे हैं:—

अपनी भूल देख अभिमानी
स्वयं हो रहा पानी पानी
घुल घुल कर तू मर जावेगा
दुख दे कर क्या सुख पावेगा

'पतंग' पर भी विभुजी की मनोहर रचना है जिसमें कवि इस परिणाम पर पहुँचता है कि 'जो उड़ाते रातदिन कट जायगी उनकी पतंग'। बंजारा वाली कविता तो अपनी सरलता और स्वाभाविकताके कारण बहुत ही अच्छी बन पड़ी है—'अय भटियारी! यह बंजारा सदा न टिकने वाला है' मर्म स्पर्शी शब्द हैं—'बहुत दिनोंसे यहाँ न कोई ऐसा बंजारा आया'—'भूल गई क्या भाड़ा ले ले बड़े सबेरे जावेगा,'।

विभुजीने अपनेको तरुओंसे तुलना करने का प्रयत्न किया पर अन्तमें कहना पड़ा—'इन तरुओंकी इस तुलना में विभु कम अपनेको पाता हूँ,'

सह्याद्रि, कार्लाकी कन्दरा, तातांकी नहर, मलाबारी पहाड़ीपर समुद्रतट आदिमें भारतके दक्षिणी दर्शनीय स्थानोंका निरीक्षण दिया गया है जो अच्छा ही है। लाला लाजपतराय, स्वामी श्रद्धानन्द, और दयानन्द जन्म शताब्दी, संगठन, लो० तिलक, जीजाबाई की लोरी आदि रचनायें भी सुन्दर और कवि के विस्तृत हृदय की परिचायक हैं।

विभुजीके कवित्त भी प्रभावशाली हैं। निम्न व्यंग बहुत पसन्द किये जावेंगे—

'कोट बूट धारी यह नर है कि नारी है'
'आह से अछूते पर कैसे रह पावेंगे'
'नाचना ही नाचना है विभु यहाँ आठो याम'
'दिल की मुराद पूरी होगी मुर्दों से नहीं'
'सब मतवाले धुनि वाले हैं निराले 'विभु'
देखते रहीम राम मदिराके प्यालेमें'

कई नवरत्न कवियोंपर विभुजीने कुछ लिखा है पर वह सामान्य है। विभुजी प्रौढ़ कवि हैं, उनकी जीती जागती कविता अवश्य आदर पावेगी।

—सत्य प्रकाश

मुद्रक—पूरजप्रसाद खन्ना, हिन्दी-साहित्य प्रेस, प्रयाग

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and
पूर्ण संख्या—१७५ *Central Provinces for use in Schools and Libraries.* Reg. No. A.708

वृश्चिक, संवत् १९८६

नवम्बर १९२९

संख्या २
No. 2

प्रयागकी विज्ञानपरिषत्‌का मुखपत्र

Vijnana, the Hindi Organ of the Vernacular Scientific Society, Allahabad.

अवैतनिक सम्पादक

ब्रजराज

एम. ए., बी. एस-सी., एल-एल, बी.

सत्यप्रकाश,

एम. एस-सी., विशारद.

प्रकाशक

वार्षिक मूल्य ३)] **विज्ञान-परिषत्, प्रयाग** [१ प्रतिका मूल्य ।)

विषय-सूची

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५॥

भाग ३० | वृश्चिक, संवत् १९८६ | संख्या २

रश्मि-शक्तित्व

[ले०—ब्रह्मचारी श्रीहरिश्चन्द्र]

वर्तमान लेखमें विज्ञानकी जिस शाखाके वर्णन करनेका प्रयत्न किया गया है, वह बहुत पुरानी नहीं है। हमें उन कार्य-कर्ताओंके परिश्रमका ऋणी होना चाहिये जिन्होंने निरन्तर परिश्रम कर इस शाखाकी अत्यधिक वृद्धिकी है। विज्ञानके इतिहासमें उनका नाम अमर रहेगा। रौञ्जनकी किरणोंने ही (जिन्हें आम तौरपर एक्स किरणें, कहते हैं) इस शाखाको प्रथमतः जन्म दिया है।

रौञ्जन किरणें—सन् १८९५ में रौञ्जनने इन किरणोंका अनुसन्धान किया। इनके असाधारण गुणोंने वैज्ञानिक संसारका ध्यान अपनी ओर आकृष्टकर लिया। जब ऋणोद किरणें किसी कांचकी तरहके ठोस धरातलसे वायु शून्य अवस्थामें टकराती हैं तो वह चमकने लगता है और वहांसे किरणें निकलने लगती हैं। इन किरणोंकी एक विशेषता यह है कि ये कुछ ऐसे पदार्थोंको जो साधारण प्रकाशमें अपारदर्शक होते हैं, भेदकर उनके आर-पार निकल जाती हैं। इसलिये यह देखा गया है कि एक लकड़ीके तख्तेके पीछे भी यदि चमकने वाला पर्दा रक्खा जावे तो चमकने लगता है। रौञ्जनने भिन्न भिन्न पदार्थोंमें इन किरणोंकी पारदर्शकताको जाननेके लिये परीक्षण प्रारम्भ किये। जब उसने इन किरणोंको शरीरमेंसे गुजारा, तो उसने देखा कि ये हड्डियोंको नहीं भेद सकतीं, किन्तु त्वचा मांसमेंसे ये आर-पार निकल जाती हैं। इस प्रकार हड्डियोंकी छायाको चित्र उतारनेके पटपर चित्रित करना सम्भव हो गया। यह अनुसन्धान चिकित्साशास्त्रके लिये बहुत उन्नतिकर सिद्ध हुआ—

क्योंकि इन किरणोंके प्रयोगसे शरीरमें प्रविष्ट गोली या किसी अन्य पदार्थका चित्र प्रकाश चित्रक पटपर लेकर यह जानना सुगम हो गया कि चीरा कहां लगाया जाय। एक बार एक बच्चा साईकलके खिलौनेसे खेलते हुये अचानक उसे निगल गया। वह उसके गलेमें अटक गया। तब डाक्टरने इन्हीं रौञ्जन किरणोंके प्रयोगसे उसका चित्र लेकर ऐसे नाजुक और खतरनाक स्थानपर भी चीरा लगानेमें अपूर्व सफलता प्राप्तकी थी।

बैकरल किरणें—इन किरणोंके ज्ञात हो जानेके बाद वैज्ञानिकगण यह विचारने लगे कि क्या किसी अन्य उपायसे भी ये किरणें पैदाकी जा सकती हैं ?

उन दिनों यह ज्ञात था कि पिनाकम् (यूरेनियम) के लवण नीले प्रकाशके प्रभावसे हरी-हरी चमक छोड़ने लगते हैं। पेरिसवासी प्रो० हेनरी बैकरलके मनमें यह विचार उठा कि ये लवण चमकते समय रौञ्जन किरणें छोड़ते हैं या नहीं। उसने काले कागज़में लिपटे हुए एक प्रकाश चित्र पट को चमकते लवणके सामने रक्खा। उसपर उनका चित्र आ गया। उस समय यह सोचना स्वाभाविक था कि लवणसे 'रौञ्जन किरणें' निकल रही हैं। पीछे यह ज्ञात हुआ कि ये पिनाकम् किरणें रौञ्जन किरणोंसे सर्वथा भिन्न हैं और इनको "बैकरल किरणें" कहने लगे।

यद्यपि बैकरल किरणें अपने स्वभाव और आधार-भूत गुणोंमें रौञ्जन-किरणोंसे बहुत भिन्न हैं, तो भी वे उनकी तरह प्रकाश चित्रपटपर असरकर देती हैं, तथा अपारदर्शक पदार्थोंके आर-पार निकल जाती हैं। दोनों ही किरणें गैसोंका 'यापन' कर देती हैं।

रश्मिम् (रेडियम) का अनुसन्धान

पिनाकम्के उपर्युक्तगुणोंको देखकर वैज्ञानिक इस बातकी परीक्षामें लग गये कि क्या किसी अन्य-तत्वमें भी ये गुण विद्यमान हैं। उस समय तक ज्ञात तत्वोंमेंसे केवल एकमें ही वे गुण पाये गये—यह तत्व था थोरम्।

उसी समय पैरिसकी एक महिला,—जिसका नाम क्युरी था—पिचब्लैण्डके साथ परीक्षाकर रही थी। "क्या इस खनिजमें भी पिनाकम्के गुण विद्यमान हैं ?" इस बातकी ओर उसने अपना ध्यान दिया। यह देखकर उसके आश्चर्यका ठिकाना न रहा कि अपनेमें वर्तमान पिनाकम्की मात्रासे भी कई गुणा ज्यादा ये गुण उस खनिजमें विद्यमान हैं। क्यूरी ने कल्पना की कि खनिजमें कोई अन्य रश्मिशाक्तिक तत्व है, जो पिनाकम्से कई गुणा ज्यादा शक्तिवान है।

पिचब्लैण्डमें अन्य कई तत्वोंके अतिरिक्त विशदम् और भारम् विद्यमान होते हैं। खनिजसे पृथक् कर लेने पर उनमें रश्मिशाक्तिक गुण पाया गया। क्या इससे हमें यह कल्पना कर लेनी चाहिये कि ये दोनों रश्मिशाक्तिक तत्व हैं। नहीं, क्योंकि अन्य स्रोतोंसे प्राप्त ये दोनों तत्व इस गुणसे सर्वथा विहीन होते हैं। इसलिये श्रीमान् और श्रीमती क्यूरीने अपने विश्लेषण को जारी रक्खा। संक्षेपमें इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि दो नये रश्मिशाक्तिक तत्व प्राप्त हुये। जो विशदम्से प्राप्त हुआ उसका नाम उन्होंने अपने देश प्रेमके कारण पोलोनियम रक्खा; और जो भारम्से उसका रश्मिम् (रेडियम्)। इन दो तत्वों के सिवाय उसी स्रोतसे ही एक और तत्व प्राप्त हुआ, जिसका नाम शक्तिनम् (एक्टिनियम) रक्खा गया।

इस प्रकार हमें पांच तत्व ज्ञात होगये जिनमें रश्मिशाक्तिक गुण विद्यमान हैं—पिनाकम्, थोरम् पोलोनियम, रश्मिम् और शक्तिनम्।

इस समय प्रत्येकके मनमें एक प्रश्न उपस्थित हो सकता है। रश्मिशाक्तिक तत्वके उस रहस्यमय

प्रभावमें क्या २ गुण हैं, जो चित्र लेनेवाले पटको परिवर्तितकर देता है, जो अपार दर्शक पदार्थोंके आर-पार चला जाता है, और जो धातुओं को भी पार करने के बाद विद्युत्के गुण धारण किये रहता है।

इस प्रश्नका उत्तर देनेसे पहले एक प्रयोग करना चाहिये। विकिरणकी प्रबलता उस समय-के द्वारा मापी जाती है जो कि वह न्यस्त विद्युद्दर्शकको विसर्जित करनेमें लेता है। विद्युद्दर्शकके पत्रोंके बन्द होनेमें जितना अधिक समय लगता है विकिरणकी प्रबलता उतनी ही कम होती है। यदि हम एक न्यस्त विद्युद्दर्शकके पास बहुत थोड़ासा रश्मिम्-का कोई लवण ले जायें तो उसके विसर्जित होनेमें बहुत ही थोड़ा समय लगेगा। परन्तु यदि रश्मिम् और विद्युद्दर्शकके बीचमें एक साधारण वंगम्के पत्र-का व्यवधान डालदें और प्रयोगको दोहरायें तो भी पत्र बन्द हो जायंगे; परन्तु पहलेकी तरह शीघ्र नहीं। इससे यह प्रगट होता है कि किसी तरहकी किरणें वंग पत्रसे रुक गई हैं। शायद इस समय विसर्जनकी दर पहले की $\frac{1}{10}$ होगी। यदि हम अब एक बार और वंग पत्रका व्यवधान डालकर प्रयोगको फिरसे दोहरायें तो विसर्जनकी दर अवशिष्ट की $\frac{1}{10}$ नहीं हो जायगी; परन्तु इसबार बहुत ही थोड़ा अन्तर आयगा। इससे यह स्पष्ट अनुमान हो सकता है कि जो रश्मिशक्ति वंग पत्रसे छनकर आ रही है वह उससे भिन्न है, जो वंग पत्र में रुक गई है। अब यदि हम सीसा की $\frac{1}{4}$" मोटी चादरका व्यवधान और डालदें तो रश्मिशक्ति पहलेसे बहुत कमज़ोर हो जायगी। यदि वैसी ही एक चादरका और व्यवधान डाल दिया जाय तो फिर रश्मि शक्तित्वमें कोई विशेष कमी नहीं आयेगी। एक दूसरी तरहकी किरणें छनकर सीसे की चादरसे रुक जाती हैं और एक और तीसरी तरहकी किरणें उनको पार करके अपना असर दिखाती हैं।

इस प्रकार हमने जाना कि रश्मिम्की रश्मि-शक्ति तीन प्रकारकी किरणोंसे मिलकर बनी है। इनके नाम क्रमशः 'एल्फ़ा, बीटा, और गामा' हैं। इनकी भेदन शक्ति उत्तरोत्तर प्रबल होती है।

किरणोंके गुण

श्रीमती क्युरी और कुछ अन्य कार्यकर्ताओंके निरन्तर प्रयत्नसे हम तीनों प्रकारकी किरणोंके गुणोंको अच्छी तरह जान गये हैं। एल्फ़ा किरणें प्रबल चुम्बककी शक्तिसे थोड़ीसी एक ओरको झुक जाती हैं। प्रयोगसे ज्ञात हुआ है कि प्रत्येक एल्फाकण उद्जनके एक परमाणुसे चारगुना भारी होता है; इसकी गति २०००० मील प्रति सैकिण्ड होती है। इन एल्फ़ाकणों की रश्मिशक्ति क्रूक्सके बनाये हुये रश्मिशक्ति दर्शक (स्पिनथेरिस्कोप) में स्पष्टतया देखीजा सकती है।

बीटाकण—ये ऋणाणु (Electrons) होते हैं। इनकी गति एक लाख मील प्रतिसैकण्ड होती है; इनके गुण ऋणोद किरणोंसे मिलते हैं। एक बीटाकणका साधारण भार उद्जनके एक परमाणुका १/१८०० होता है। यद्यपि छूटते समय इनका मार्ग सीधा होता है परन्तु वायुके भारी अवयवोंसे टकराकर तिरछा हो जाता है। ४शतांश मीटर चल चुकनेके बाद इनमें से आधे गुम होजाते हैं। ये एल्फ़ा-कणोंकी अपेक्षा अत्यधिक हलके होते हैं, इसलिये अल्पशक्ति चुम्बक क्षेत्रमें भी इनका मार्ग वास्तवमें दीर्घवृत्ताकार हो जाता है। इनके झुकावकी दिशा-एल्फ़ाकणों से उलटी होती है।

गामा किरणें—रौञ्जन किरणोंके तुल्य होती हैं और चारों तरफ़ उपस्थित पदार्थपर ऋणाणुओंके टकरानेसे उत्पन्न होती हैं। इनकी भेदन शक्ति सबसे अधिक होती है; तीनों प्रकारकी किरणों की भेदनशक्तिका (स्फटम्के लिये) ऐसा अनुमान है—एल्फ़ाः बीटाः गामा = $१०: १०^{३} : १०^{४}$। बहुत प्रबल चुम्बकका भी इनपर कोई असर नहीं होता।

इन किरणों द्वारा चमककी उत्पत्ति

एक और विचित्र गुण जो इन किरणोंमें है वह यह है कि इनके असरसे कुछ पदार्थ अन्धकारमें चमकने लगते हैं; यह होते हुये भी उनके तापक्रम में कोई अन्तर नहीं आता। हीरा भी इन पदार्थोंमें से एक है। यदि हम एक अन्धेरे कमरेमें रश्मिम् लवणके पास हीरा लेजायँ तो वह एकदम नीला नीला प्रकाश छोड़ने लगता है। यह चमक ही हीरे की उत्तमताकी परीक्षा है। इस से हम असली और नकली हीरेको पहिचान सकते हैं। नकली हीरे या तो यह चमक बिलकुल देतेही नहीं और यदि कोई देतेभी हैं तो वह असलीके मुकाबलेमें बहुत कम होती है।

अन्य पदार्थ जो ऐसी चमक दिखाते हैं वे दस्तगन्धिद्, और भारपररौप्यश्यामिद हैं। ऐसे पदार्थोंका एक बहुत मनोरञ्जक उदाहरण हमारे चक्षतन्तु हैं, इसीलिये यदि सामने रश्मिम् रक्खा हुआ हो तो आंखें बन्दकर लेनेपर भी हमें स्पष्ट चमक दिखाई पड़ती है।

किरणोंके रासायनिक गुण—जैसा कि पहले बताया जा चुका है किरणें प्रकाश चित्र पटको बदल देती हैं। इनके प्रभावसे पीला स्फुर लालमें बदल जाता है। रश्मिम्की तरहके तत्व कई प्रकारके रासायनिक गुणोंको धारण करते हैं। जब कोई रश्मिम् लवण जलमें घोला जाता है तो जल उदजन और ओषजनमें विभाजित हो जाता है। वायुका ओषजन इनके प्रभावसे ओषोन में परिवर्तित होजाता है। इनका असर रुधिर कोष्ठों (cells) को मार देता है। बहुतसे क्षारीय धातुओंके लवण इन किरणोंके प्रभावसे रंगीन हो जाते हैं—साधारण सेंधा नमक नीला हो जाता है और भारम्के लवण लाल होजाते हैं। इनके असरसे काँच कासनी रङ्गका हो जाता है, ऐसा विश्वास है कि इसका कारण काँचमें सूक्ष्मरूपमें विद्यमान क्षारोंकी उपस्थिति है।

रश्मिम्की सामर्थ्यका स्रोत

हमने अभी देखा है कि रश्मिशक्तिकतत्व रश्मि-शक्तिके रूपमें अनन्त सामर्थ्य छोड़ते रहते हैं। रश्मिम् एक घण्टेमें जितनी सामर्थ्य छोड़ना है, उससे उसका तुल्य-भार-जल द्रवांकसे क्थनांक बिन्दुतक गरम होसकता है। एक सहस्रांशग्राम रश्मिम् एक सहस्रवर्षमें इतनी सामर्थ्य छोड़ता है कि वह सबसे अधिक शक्तिशाली विस्फोटक पदार्थके २७½ मनमें निहित शक्तिके तुल्य होती है। अन्य रश्मिशक्तिक द्रव्य भी निरन्तर सामर्थ्य विसर्जित करते रहते हैं, परन्तु उनकी सामर्थ्य रश्मिम्की अपेक्षा होती कम है। प्रश्न यह उपस्थित होता है कि रश्मिम्में इतनी सामर्थ्य आती कहाँसे है? दो बातें सम्भव हैं या तो यह सामर्थ्य रश्मिम्में निजी है जो धीमे-धीमे समाप्त हो रही है और या रश्मिम्में वह गुण विद्यमान है जिससे वह बाहरकी सामर्थ्यको अपने अन्दर लेकर उन्हें बैकरल किरणोंके रूपमें परिवर्तित करके छोड़ता रहता है। प्रो० बैकरल दूसरी बातके विचारके थे। उनका मत था, कि जिस प्रकार खटिक गन्धिद दिनमें प्रकाशको अपने अन्दर ले लेता है और अँधेरेमें उसे छोड़ता है उसी प्रकार रश्मिशक्तिकतत्व दिनके प्रकाशको अन्तर्लीन करके उसे रश्मि-शक्तिके रूप में छोड़ते रहते हैं। परन्तु परीक्षणोंसे यह विचार भ्रमपूर्ण सिद्ध हुआ। रश्मिम्के लवणोंको निरन्तर कई दिनों तक अन्धकारमें रखनेके बाद भी उनसे, एवं अन्धकारमें तोड़े हुए खनिजके नये नये पृष्ठसे भी बैकरलकी किरणें ठीक उसी प्रकारसे निकलती हुई देखी गईं हैं।

दूसरोंका मत यह था कि ये तत्व अभितो-विद्यमान वायुके गतिशील अवयवोंकी शक्तिको अन्दर लेकर रश्मि-शक्तिके रूपमें बदल देते हैं। किन्तु हम देखते हैं कि शून्यमें भी उनकी रश्मि-शक्ति वैसी ही बनी रहती है।

उपर्युक्त दोनों कल्पनाओंमेंसे यदि कोई भी

सत्य होती है तो जो तत्व इस समय रश्मिशाक्तिक है उसे अनन्तकाल तक रश्मिशाक्तिक रहना चाहिये; परन्तु यह वास्तविकताके विरुद्ध है इसलिये हम दूसरी कल्पनाको ठीक नहीं मान सकते।

आधुनिक वैज्ञानिकोंके मतानुसार इन तत्वोंमें यह सामर्थ्य पहले ही से सुप्त रूपमें विद्यमान होती है परन्तु यह सामर्थ्य इस रश्मिशक्तिके रूपमें कैसे प्रगट होती है, इसका उन्होंने जो उत्तर दिया है, अब हम उसे लिखेंगे।

वैज्ञानिकोंके विचारानुसार रश्मिम् एक बिलकुल अस्थायी तत्व है; उसमें निरन्तर विघटन होता रहता है और उसीके परिणाम स्वरूप इतनी सामर्थ्यका प्रादुर्भाव होता है। यह परिवर्तन रश्मिम्के परमाणुओंमें होता है, उसके अणुओं में नहीं। यह देखा गया है कि विकिरणपर तापक्रमका कोई प्रभाव नहीं होता। इससे भी उपर्युक्त बातकी पुष्टि होती है। प्रो० रदरफोर्ड और सौडी, इस विभाजन सिद्धान्तके प्रतिष्ठाता हैं। सौडी ने अपनी पुस्तकमें परमाणुके विभाजनका इस प्रकार वर्णन किया है—एक एक परमाणुका भङ्ग एक विस्फोटमय क्रिया है, किन्तु परमाणु का विस्फोटन साधारण विस्फोटन की तरह अपने पड़ोसी परमाणुके विस्फोटनमें कोई बाधा नहीं पहुँचाता। इस स्वरूपका कारणस्वरूप कोई एक अज्ञात शक्ति है जो मनुष्यके अल्पज्ञानको बताती है। यह विभाजन एक निश्चित गतिसे होता रहता है, उसमें भी कोई परिवर्तन नहीं आता। इस विभाजनसे परमाणुके रासायनिक और भौतिक गुणोंमें कोई भी परिवर्तन नहीं होता, जब तक कि यह बदल कर किसी दूसरे तत्वका परमाणु नहीं बनजाता। सामर्थ्यका वह अनन्तभण्डार भी जो परमाणुकी आन्तरिक रचनामें बँधा हुआ है, इस रचनाके टूटनेके साथ साथ स्वतन्त्र होता है।

विकिरणके सहचारी परिवर्तन

यदि रश्मिम् लवणके घोलमें हवाको बुदबुदाया जाय तो हवामें भी विकिरणका गुण आ जाता है। इसका एक ही कारण समझमें आता है और वह यह है कि घोलमेंसे गुजरते समय हवाने किसी ऐसी वस्तुको ले लिया है जो कि ठोस नहीं है, परन्तु रश्मिशाक्तिक है। कुछ समय तक इस वस्तुके गुण अज्ञात रहे। पीछेसे यह वस्तु गैस निकली और रदरफोर्डने इसका नाम 'इमेनेशन' रक्खा। इसे हम तेजस् कह सकते हैं। रश्मि-अरुणिदको परखनलीमें गरम करके भी यह गैस प्राप्तकी जा सकती है। यह गैस रश्मिम्से कई बातोंमें हू-बहू मिलती है—यह बैकरलकी किरणें छोड़ती है; गैसोंका यापन कर देती है, प्रकाश चित्र पर असर कर देती है, इत्यादि इत्यादि। ५० सहस्रांश ग्राम रश्मि-अरुणिदसे जितना तेजस् निकलता है वह आयतनमें सुईकी नोकसे ज्यादा नहीं होता। किन्तु यह गैस इतनी अधिक क्रियाशील होती है कि अपनेसे लाखों गुणी वायुमें मिलकर भी यह अपने गुणोंका स्पष्ट परिचय दे सकती है। इसका परमाणु भार १०० होता है। हिमजन, नूतनम् और नोषजनकी तरह यह एक निष्क्रिय गैस है। इमेनेशन (तेजस्) स्थायी गैस नहीं है। धीमे-धीमे परिवर्तित होकर यह दूसरे तत्वोंमें बदलता रहता है। जितनी इसमेंसे एल्फा किरणें निकल जाती हैं उतना ही इसका भार घटता रहता है। इन परिवर्तनोंको निम्न प्रकार प्रगट कर सकते हैं—

रश्मिम् < एल्फा, बीटा और गामा किरण
रश्मिम् < इमेनेशन < एल्फाकण
इमेनेशन < क्रियाशील प्रक्षेप

क्रियाशील प्रक्षेपकी उत्पत्ति

जिस प्रकार रश्मिम्से तेजस्की उत्पत्ति होती है उसी प्रकार तेजस्से क्रियाशील प्रक्षेप की उत्पत्ति होती है। श्रीमान् और श्रीमती क्युरी ने देखा कि सीधी रश्मिशक्तिसे परदा करके भी जब पदार्थ रश्मिम्के पास रक्खे जाते हैं तो भी वे रश्मिशक्ति प्राप्त कर लेते हैं। किन्तु यदि रश्मिम्को कांच या अबरकमें बन्द कर दिया जाय तो इस प्रकार तेजस् के

भी बन्द हो जाने से उन पदार्थोंमें रश्मिशक्तिके कोई गुण नहीं आते। इससे हम अनुमान कर सकते हैं कि तेजस् एक प्रकारके ठोस विकिरणशील पदार्थ को पैदा करता है और खुले हुवे पदार्थोंके पृष्ठ पर इसके ही अवक्षिप्त हो जानेसे उनमें रश्मिशक्ति आ जाती है। रदर फोर्डने इसका नाम क्रियाशील प्रक्षेप (Active deposit) रक्खा। यह अच्छी तरह देखा गया है कि यदि इन पदार्थों के पृष्ठ को रेगमालसे घिस दें या नोषिकाम्लमें घोल दें तो उनकी यह क्रिया शीलता सर्वथा विलुप्त हो जाती है। इससे यह सिद्ध होता है कि यह क्रियाशीलता केवल उनके पृष्ठों पर ही सीमित थी।

यदि हम तेजस् को किसी कांच के पात्रमें बन्द कर दें और उसमें दो छड़ें एक ऋण विद्युत्से आविष्ट और दूसरी शिथिल प्रविष्ट कर दी जायें तो ऋण-विद्युत् संचार युक्त साराका सारा क्रिया शील-प्रक्षेप छड़पर ही आयगा और दूसरी पर बिलकुल भी नहीं जायगा। इससे सिद्ध होता है कि क्रियाशील प्रक्षेपमें धन विद्युत् संचार होता है।

क्रिया-शील प्रक्षेपमें जो परिवर्तन होते हैं वे रश्मिम् और तेजसकी अपेक्षा बहुत विषम और जटिल होते हैं। ऐसा देखा गया है कि पहले चार मिनटोंमें इसकी क्रियाशीलता बहुत शीघ्रतासे कम होती जाती है, फिर यह कुछ समयके लिये स्थिर रहती है। इसके अनन्तर यह फिर कम होनी शुरू होती है, यद्यपि इस बार इसका वेग पहलेका सा नहीं होता। प्रो० रदरफोर्ड और प्रो० सौडीने उन परिवर्तनोंकी व्याख्या करनेके लिये परीक्षणोंके आधार पर निम्न परिवर्तनोंकी कल्पनाकी—

१—रश्मिम्-क—तेजस् अपने आप एक ठोसमें परिवर्तित हो जाता है, इसे रश्मिम्-क कहते हैं। यह अपनी आधी क्रियाशीलता ३ मिनिटमें खो देता है। यह एल्फ़ा किरणें छोड़ता है।

२—रश्मिम्-ख—रश्मिम्-क रश्मिम्-खमें परिवर्तित हो जाता है। इसमेंसे बीटकण निकलते हैं यह अपनी आधी क्रिया शीलता २१ मिनटमें खो देता है।

३—रश्मिम्-ग—रश्मिम्-ख रश्मिम्-ग में परिवर्तित हो जाता है। इसका औसत जीवन २८ मिनिटका होता है। यह एल्फ़ा, बीटा और गामा तीनों प्रकारकी किरणें छोडता है।

ये परिवर्तन क्रमशः आगे भी होते रहते हैं। रदरफोर्डने इनका वर्णन इस प्रकार किया है—

४—रश्मिम्-घः—रश्मिम्-ग रश्मिम्-घ में बदल जाता है जो विकिरण रहित पदार्थ है और जिसका औसत जीवन २४ वर्षके लगभग होता है।

५—रश्मिम्-चः—रश्मिम्-घ बीटा किरण देकर रश्मिम्-च में परिवर्तित हो जाता है जिसका औसत जीवन ७.२ दिनका होता है।

रश्मिम्-छ—रश्मिम्-च एल्फ़ा किरण देनेवाले रश्मिम्-छमें बदल जाता है, जिसका काल १९६ दिन हैं। प्रोफेसर रदरफोर्डके विचारमें यह रश्मिम् परिवारका अन्तिम सदस्य है।

पिनाकम्में परिवर्तन

अन्य रश्मि-शाक्तिक तत्वोंमें भी ठीक इसी तरहके परिवर्तन होते हैं। उनका यहाँपर उल्लेख नहीं किया जायगा। हम यहाँ पर पिनाकम्के विषयमें कुछ लिखेंगे क्योंकि इससे हमें पिनाकम् और रश्मिम्के बीचके सम्बन्ध ज्ञात होनेमें सहायता मिलेगी। केवल एक ही परिवर्तन के बाद पिनाकम्की रश्मि-शक्ति कम हो जाती है। पिनाकम् लवणके घोलमें अमोनियमकर्बनेत डालनेसे भूरे रंगका अवक्षेप आता है। यह अपने तुल्य परिमाण के पिनाकम्से अधिक क्रियाशील होता है। इस भूरे अवक्षेपको पिनाकम्-य कहते हैं—पिनाकम् से इस अज्ञात पदार्थकी उत्पत्ति होती है।

रश्मिम्का जीवन और उसका मूल

यदि रश्मिम्का एक ग्राम स्वतन्त्र रख दिया जाय तो १२२० साल बाद यह आधा रह जायगा। अगले १२२० साल बाद एक चौथाई; इसी प्रकार क्रमशः इसकी मात्रा कम होती जायगी। अन्तमें एक समय आयेगा जब कियात्मक दृष्टिसे इसका सर्वथा विलोप हो जायगा। रदरफोर्डने गणना द्वारा यह जाना कि २४४०० साल बाद रश्मिम् का १० लाखवाँ हिस्सा बच रहेगा। यदि हमारी पृथिवी सम्पूर्णतः रश्मिम्से निर्मित होती तो २४४०० साल बाद इसमें पिचब्लैण्डके किसी धनी नमूनेसे ज्यादा रश्मिशक्ति न बची रहता।

प्रश्न यह उपस्थित होता है कि जिस तरह तेजस् और रश्मिम्-क इत्यादि रश्मिम्के विश्लेषणसे उत्तरोत्तर उत्पन्न होते चले जाते हैं उसी प्रकार क्या रश्मिम् भी किसी अन्य रश्मिशाक्तिक तत्वके विश्लेषणसे पैदा होता है या नहीं ?

रदरफोर्ड और सौडीने निर्देश किया कि रश्मिम् पिचब्लैण्डमें ही विद्यमान रश्मिशाक्तिक तत्वोंमेंसे किसी एकके विकिरणका फल हो सकता है। रश्मिम्के पिता होने योग्य सारी बातें पिनाकम् और थोरम् दोनों ही में पूर्णतया वर्तमान हैं। दोनों ही पिचब्लैण्डमें उपस्थित होते हैं, दोनों ही के परमाणु भार रश्मिम्की अपेक्षा अधिक हैं। ऐसा देखा गया है कि जिन खनिजोंमें रश्मिम् अधिक मात्रामें विद्यमान होता है उनमें थोरम्की अपेक्षा पिनाकम् अधिक मात्रामें उपस्थित होता है। इससे यह अनुमान होता है कि सम्भवतः पिनाकम् ही रश्मिम्का पिता है। यह सिद्धान्तात्मक परिणाम प्रत्यक्षसे और भी दृढ़ हो गया है।

सौडीने कुछ विशुद्ध पिनाकम् लेकर एक बन्द पात्रमें रख दिया। कुछ समय बीत जानेपर उसने देखा कि पात्रमें तेजस् विद्यमान है जो कि रश्मिम्की उत्पत्तिका दृढ़ प्रमाण है। ब्लौटवुड और रदरफोर्डके कुछ परीक्षणोंसे ज्ञात हुआ है कि प्रयोगोंसे सीधे ही रश्मिम्की उत्पत्ति नहीं होती। हमने अभी देखा था कि पिनाकम्से पिनाकम्-य की उत्पत्ति होती है। ब्लौटवुडने देखा कि पिनाकम्के घोलोंमें आयोनियम् पैदा हो जाता है। यह भी एक रश्मि-शाक्तिक तत्व है। बहुत सम्भवतः यह आयोनियम् ही है जिससे रश्मिम् की उत्पत्ति होती है।

पिनाकम् → पिनाकम्-य$_1$ → पिनाकम्-य$_2$ → पिनाकम्$_2$ → आयोनियम्।

रश्मिशक्ति के अनुसन्धान से वैज्ञानिक क्षेत्रों में हलचल

इस रश्मिशक्तिके अनुसन्धानसे मानव ज्ञान का जो विस्तार हुआ है वह अत्यधिक है। जहां इससे विज्ञान के कई सिद्धान्त और भी पुष्ट हो गये हैं, वहां पर विज्ञानके कई सुप्रतिष्ठित सिद्धान्तों की जड़ पर इसने कुठाराघात भी किया है। यहां पर हम एक दो का वर्णन करेंगे।

सूर्यका ताप

सूर्यका ताप बहुत कालसे भौतिक विज्ञानकी एक विषम समस्या हो रहा है। इसके लिये भिन्न-भिन्न समय में भिन्न-भिन्न विचार उपस्थित होते रहे हैं। उनका हम यहांपर उल्लेख करेंगे।

१—पहले पहल ऐसी कल्पनाकी गई थी कि सूर्य पिघले हुये पदार्थोंसे बना हुआ एक तप्त-पिण्ड है जो निरन्तर धीमे-धीमे ठण्डा होकर अपनी गरमी छोड़ रहा है। पृथिवी पर सूर्यसे प्रति-दिन कितना ताप पहुँचता है यह हम गणना द्वारा जान सकते हैं। गणना द्वारा ज्ञात होता है कि ताप की यह मात्रा इतनी अधिक है कि यदि सचमुच इतना ताप सूर्यसे निकले तो सूर्य प्रति-दिन इतना अधिक

ठण्डा होता जावेगा कि कुछ ही वर्षोंमें उसका ताप-भण्डार समाप्त हो जाता।

२—फिर कुछ विद्वानोंने यह विचार उपस्थित किया कि सूर्य ज्वलनशील पदार्थोंसे बना हुआ एक विशाल स्तूप है। इसका ज्वलन ही सूर्यके ताप और प्रकाशका कारण है। पीछे गणनाओं द्वारा ज्ञात हुआ कि यदि सूर्य वास्तवमें ज्वलनशील पदार्थोंका पिण्ड होता तो चार-पांच हज़ार वर्षमें जलकर बुझ जाता।

३—फिर विद्वानोंने यह कल्पनाकी कि जिस प्रकार हमारी पृथिवीपर प्रति-दिन हज़ारों छोटे बड़े उल्का पिण्ड गिरते हैं उसी प्रकार सूर्यपर भी प्रतिक्षण करोड़ों उल्का पिण्ड गिरते हैं और उन उल्काओंके गतिरोध और संघर्षसे उत्पन्न उष्णता ही सूर्यके ताप भण्डारको पूर्ण रखती है। परन्तु इस कल्पनाके अनुसार हज़ारों वर्षोंसे गिरते हुये उल्का पिण्ड सूर्यमें सञ्चित हो-होकर सूर्यके परिमाणको बढ़ा देते और फिर पुष्टावयव सूर्यके आकर्षणकी वृद्धि हो जानेके कारण इस सुव्यवस्थित विश्वमें विश्रृङ्खलताके चिह्न प्रगट होते। परन्तु हम देखते हैं कि इन हज़ार दो हज़ार वर्षोंमें न तो सूर्यके परिमाणमें वृद्धि हुई और न ग्रहोपग्रहोंकी सुव्यवस्था और गतिमें कोई अन्तर ही आया है।

४—पीछेसे जर्मनीके प्रसिद्ध वैज्ञानिक और गणितज्ञ हेलमहोज़ने अपने विचार वैज्ञानिकोंके सामने रक्खे। उनके मतसे सूर्यके आयतनमें निरन्तर संकोच होता रहता है, वह ही सूर्यके तापका कारण है। उन्होंने गणित द्वारा स्पष्ट सिद्धकर दिया कि इस संकोचका परिमाण इतना सूक्ष्म है कि दो-चार हज़ार वर्षोंके पर्यवेक्षणसे भी हम पृथिवीसे उसे नहीं देख सकते। विज्ञानरथी हेलमहोज़के इस संकुञ्चन सिद्धान्तको ही लार्ड केलविन आदि विज्ञानाचार्योंने सत्य समझा।

५—हमने अभी देखा है कि रश्मिशाक्तिक तत्व प्रतिक्षण अनन्त शक्ति छोड़ते रहते हैं। कई वैज्ञानिकोंके विचारमें सूर्यमें रश्मिशाक्तिक तत्वोंकी उपस्थिति ही उसके तापका निदान है। गणनासे ज्ञात हुआ है कि यदि सूर्यमें चार लाखवाँ हिस्सा भी रश्मिम् उपस्थित हो तो हमें सूर्यकी इस अनन्त तापराशिका कारण किसी अन्य वस्तुको माननेकी जरूरत नहीं। यद्यपि रश्मिपटदर्शकसे सूर्यमें रश्मिम्की उपस्थितिका कोई निशान नजर नहीं आता, तथापि इसी यन्त्रसे हमें ज्ञात है कि सूर्यमें हिमजन गैस उपस्थित है। हिमजनकी उत्पत्ति रश्मिम्से ही होती है इसलिये सूर्यमें हिमजनकी उत्पत्तिसे रश्मिम्की उपस्थितका अनुमान किया जा सकता है। इस सिद्धान्तके विरुद्ध एक प्रबल आपत्ति उठाई गई थी—यदि वास्तवमें सूर्यकी तापराशिका श्रेय रश्मिशाक्तिक तत्वोंको ही है तो क्यों धूपका विद्युद्दर्शकपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इसका उत्तर यह है कि सूर्यका विकरण जब वायुमण्डलमें प्रवेश करता है तो उसकी विद्युत्शक्ति वायुमण्डलकी उपरली स्तरोंका ही यापन करनेमें समाप्त हो जाती है।

पृथिवीकी आयु

जननी वसुन्धरा जिस समय प्राणियोंके निवासके योग्य हुई थी वह समय अज्ञानके गर्भमें छिपा हुआ है। इसलिये उस घटनाको अब कितना काल बीत चुका यह निर्धारण करना अत्यन्त जटिल समस्या है। विज्ञानके विकास होनेसे पूर्व कई लकीरके फ़कीर पृथ्वीकी आयु पांच छः हज़ारवर्षसे ज्यादा नहीं मानते थे। ईसाइयों की धर्मपुस्तक बाइबलमें लिखा है कि पृथ्वीको उत्पन्न हुये आज पांच छः हज़ारवर्ष से ज्यादा नहीं हुये हैं। कुछ समय पहले इसबात को बहुतसे लोग मानते थे ? परन्तु विज्ञानके विकासने इस अन्ध-विश्वासका समूलोच्छेद कर दिया। क्या भौतिक विज्ञान, क्या भूगर्भशास्त्र, क्या प्राणिविद्या ये सबके सब विज्ञान, पृथ्वीकी

आयु करोड़ों वर्षोंसे कम नहीं मानते। स्थानाभाव से यहांपर उनका वर्णन नहीं किया जासकता, इस लिये हम संक्षेपमें यहांपर यह दिखायेंगे कि रश्मि-शक्ति विज्ञान पृथिवी की आयुके विषयमें क्या कहता है।

हम जानते हैं कि सब रश्मिशाक्तिकपदार्थ विकिरण करते करते अन्तमें हिमजनमें परिवर्तित होजाते हैं। यही कारण है कि सब रश्मिशाक्तिक खनिजोंमें हिमजन की उपस्थिति देखा जाती है। प्रयोगों द्वारा हम यह जानगये हैं कि ज्ञातभार रश्मिशाक्तिकतत्वोंसे कितने समयमें कितना हिमजन पैदा होता है। इसलिये उस समयका निर्धारण करना मुश्किल नहीं है जो कि रश्मि शाक्तिक खनिजोंमें हिमजनकी उपस्थिति मात्राको पैदा होनेमें लगा है। इसे दूसरे शब्दोंमें यों कह सकते हैं कि इन खनिजोंकी आयु कमसेकम कितनी है यह मालूम किया जासकता है, क्योंकि उनमें जितना हिमजन विद्यमान है उसके अलावा कुछ हिमजन उड़भी गया होगा। इसआधारपर हम पृथिवीकी कमसेकम आयु कितनेवर्ष की है यह भी कह सकते हैं।

उपर्युक्त प्रकारसे कियेगये प्रयोगोंसे ज्ञात हुआ है कि पिनाकमूक फर्गुसानाइट और क्लैस्टनबरी खनिज कमसेकम ५०करोड़ साल पुराने हैं। थोरे-नाइट और पिचब्लैण्डकी आयु क्रमशः कमसे कम २५करोड़ और २८करोड़ वर्ष हैं। स्फेरोसिडेराइट, हेमैटाइट और स्फीनकी कमसेकम आयु क्रमशः ८४ लाख, ३करोड़ दसलाख, और ७१करोड़वर्ष है।

उपर्युक्तबातोंसे सिद्ध होता है कि पृथिवीकी आयुकमसेकम ७१ करोड़ वर्ष होनी चाहिये। परन्तु रश्मिशक्ति विज्ञानने इस प्रश्नका हल यहींतक नहीं किया है। पृथिवीकी आयु कमसेकम उतना तो जरूर होनी चाहिये जितना कि पिनाकमूकी है। गणनाद्वारा हमें मालूम है कि पिनाकमूकी आयु $५ \times १०^९ = ५$ अरब वर्ष है; सो पृथिवीकी आयु भी कम से कम पांच अरब वर्ष है।

नारीके शरीरका वैकृत धर्म्म (विपरिणाम) और प्रणाली विहीन ग्रंथियां

[ले० कविराज श्री शिवशरण वर्मा बी० डी०]

त्येक प्राणी की शारीरिक वा मानसिक बढ़ौत या विकाश उसकी अपनी प्रणाली-विहीन-ग्रंथियोंकी क्रिया या प्रतिक्रिया पर निर्भर है। इन ग्रंथियोंमें से एक प्रकार का स्राव (Secretion) निकलता रहता है जो प्रोके जीवन वा उसके अंगों प्रत्यंगों की बढ़ौत पर पर्याप्त प्रभाव डालता है।

मानव शरीर में पाई जाने वाली ग्रंथियों को दो मुख्य श्रेणियोंमें विभाजित किया जासका है:—(i) प्रणाली विहीन ग्रंथियां (ii) प्रणाली सहित ग्रंथियां।

चुल्लिका ग्रंथि (Thyroid gland), थाईमस (thymus) उपवृक्क (Suprarenal) वा हाईपोफि-सिस् (Hypophysis) प्रणाली विहीन ग्रंथियोंके उदाहरण हैं, यकृत, क्लोम, वृक्क, दुग्ध ग्रंथियां, लाला ग्रन्थियां वा लसीका ग्रन्थियां—प्रणालीयुक्त ग्रन्थियोंके उदाहरण हैं।

विपरिणाम (वैकृत धर्म्म Metabolism) से तात्पर्य है आत्मीकरण द्वारा आहार या शक्ति सम्पन्न पदार्थों को जीवित तंतुओं वा उनकी शक्ति में परिवर्तित करना और मलोत्सर्जन द्वारा अनाव-श्यक भाग को शरीरसे बाहर निकालना।

युवावस्थासे पूर्व बालकों वा बालिकाओंके शारीरिक वैकृतधर्म्म में कोई विशेष अन्तर नहीं होता, दोनों का जीवनी शक्ति उस समय तक देहवर्धन की ओर लगी होती है। यौवनके पदार्पण होते ही इस बातमें बड़ा भेद पड़ जाता है तथा आगामी बढ़ौत या विकाश पर जनन विषयक व्यापार (Reproductive function) की कार्य शक्ति विशेष प्रभाव डालती है। यह सिद्ध हो चुका है कि रजादर्शनसे रजानिवृत्ति पर्यन्त डिम्ब ग्रन्थियाँ स्त्रीके शारीरिक वा मानसिक बढ़ौतको अपने प्रभुत्वमें रखती हैं। इस बात का मुख्य प्रमाण यदि शरीर में ढूँढना चाहो तो स्त्री के श्रोणि चक्र को ही लिया जा सकता है कि किस भांति वह डिम्बक स्रावके कर्षित कृति-गुणोंसे प्रभावित हो कर एक विशेष प्रकार के आकार वा परिमाण को धारण कर लेता है।

रजोदर्शन का समय साधारणतया ११-१४ वर्ष की आयु और रजो निवृत्ति का समय ४५-५० वर्ष की आयु होता है।

यह प्रमाणित हो चुका है कि उपवृक्क, हाईपोफिसिस् वा चुल्लिका ग्रन्थि एक विशेष प्रकारके द्रव पदार्थ को उत्पन्न करता है और वह द्रव पदार्थ या स्राव खटिक (calcium) के आत्मी करण और विकाशको एक नियममें रखता है।

हाईपोफिसीज् ग्रन्थि इन्द्रिय व्यापार शास्त्रानुसार जीवनके लिये एक परमावश्यक अंग है। इसको यदि शरीर से बिलकुल निकाल दिया जावे तो प्राणी कुछ दिनोंके पश्चात् मर जाता है। यदि यौवनसे पूर्व इसपर शस्त्रक्रियाकी जावे तो उस व्यक्तिसे सन्तानोत्पत्तिकी आकाँक्षा रखना व्यर्थ है। हाईपोफिसीज् एक और भी असर पैदा करता है और वह यह कि बालक वा बालिकाओंमें उनकी बाल्यावस्था में रति सम्बन्धी ग्रन्थियों या अवयवोंको शीघ्र विकसित होने नहीं देता है।

साधारणतया यौवनके आरम्भ होते ही बढ़ौत वा वृद्धि बन्द हो जाती है, कारण कि स्राव द्वारा खटिक वा अन्य आवश्यक वस्तुयें, जोकि पहले शरीरकी वृद्धि या शक्तिके संचयमें व्यय होती थीं अब यथेष्ट मात्रामें बाहर निकलने लग जाती हैं। इन तत्वोंकी अब शरीरमें उस समय तक आवश्यकता नहीं होती, जब तक कि स्त्री गर्भवती न हो या उसे किसी शिशुको दूध पिलाना न पड़े।

उन स्त्रियोंके, जिनमें डिम्बिका स्राव अधिक देरसे पैदा होता है, मातृपदको प्राप्त होनेकी बड़ी कठिनतासे वा अधिक समयके पश्चात् सम्भावना होती है। उनकी बढ़ौतका क्रम भी अधिक मंद होता है। ऐसी स्त्रियां प्रायः कफ प्रकृतिवाली और मेदस्विनी हुआ करती हैं। अस्थियां बड़ी-बड़ी और श्रोणि पीकके सदृश ऊंची वा तंग होती है।

यदि डिम्ब ग्रंथि बहुत शीघ्र ही पक्वावस्थाको प्राप्त हो जावे तो परिणाम नितान्त विपरीत होता है अर्थात् कन्या मातृत्वके पदकी प्राप्तिके शीघ्र ही योग्य हो जाती है और श्रोणिकी समाई भी पर्याप्त होती है।

यदि यह ज्ञात हो जावे कि युवावस्थाके पूर्व तक प्रणाली विहीन ग्रंथियां एक नारीके शरीरमें क्या-क्या परिवर्तन कर चुकी हैं तो फिर उसके आगामी बढ़ौत या वृद्धिके सम्बन्धमें, यौवन-कालमें ही बहुत सीमा तक कल्पनाकी जासकती है। कारण कि बच्चेकी शारीरिक वा मानसिक शक्ति का विकाश उस की चुल्लिका ग्रंथि वा हाईपोफिसीज्की कार्य शक्ति वा तीव्रता पर निर्भर है। शरीरकी नियमित वृद्धिके लिये इन दोनों ग्रंथियोंके स्रावोंका अपनी-अपनी प्राकृत मात्रामें रहना नितान्त आवश्यक है। डिम्ब ग्रंथियोंकी बढ़ौतपर थाईमस ग्रंथिका भी विशेष प्रभाव पड़ा करता है।

यद्यपि इन सब ग्रंथियोंका प्रभाव कुछ-कुछ अवश्यक होता है, जैसा कि पीछे बत-

लाया जा चुका है अथवा आगे बतलाया जावेगा, तथापि इन सबमेंसे चुल्लिका ग्रंथिको ही शिरोमणि या प्रधान माना जाता है।

चुल्लिका ग्रन्थि:—यह ग्रथि ग्रीवा में स्वरयन्त्रके सम्मुख रहती है, इसका भार २¼ तोलाके लगभग होता है। स्मरण रहे कि पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में कुछ बड़ी होती है और उनके रजस्वला अथवा गर्भवती हो जाने की दशा में और भी बड़ी हो जाती है।

इसका रस रक्त द्वारा शरीर के सब भागों में पहुँचता है। इस रस के मात्रा से अधिक अथवा अल्प बननेसे नाना प्रकारके रोग बच्चों वा स्त्रियोंमें पैदा हो जाते हैं। यथा बच्चोंका मदबुद्धि होना, उनके वर्धनका ठीक न होना, दाँतोंका देरसे निकलना और उनका कमज़ोर होना, पेट फूला हुआ, चेहरा मुरझाया हुआ वा पीला होना इसके प्रधान प्रधान लक्षण हैं।

यह स्मरण रखने योग्य बात है कि चुल्लिका-ग्रन्थि न केवल खटिक विपरिणाम (Calcium metabolism) को ही वश में रखती है अपितु जीर्ण वा विशेष कोष्ठोंको तोड़नेकी क्रियाको सरल करने वा उनके विश्लेषण द्वारा उत्पन्न हुये मलोंको शरीरसे वहिर्गति करनेकी क्रियाको एक नियम वा अपने प्रभुत्वमें रखती है। इसके अतिरिक्त शरीरको अन्य विषाक्त पदार्थों वा रोगों से भी सुरक्षित रखती है वा रखनेका यत्न करती है। विषाक्त पदार्थ या तो उसके अपने द्रव्य-वैकृत-धर्म्मसे पैदा होते हैं अथवा रोगकीटों द्वारा पैदा हो सकते हैं इन वैकृतधर्म-प्रतिकीट प्रतिक्रियाओंके साथ साथ यह एक प्रकारके रस (मिश्रस्राव) को भी उसीके अभिसरण वा शोणित परिभ्रमणमें डालती रहतीहै। प्रतिकीट या प्रतिविष प्रक्रिया चुल्लिकाग्रन्थिका कोई पृथक् कार्य नहीं है,बल्कि इसको उसके शारीरिक वैकृतधर्मका नियन्त्रण करनेवाले कार्यका एक भाग समझना चाहिये। यह शारीरिक-कोष्ठों (सेलों) तथा अन्य शक्ति उत्पादक अवयवों (विशेषतया यकृत) की पोषण क्रिया को एक नियममें रखती हुई संरक्षक पदार्थों (Protective substances) की वृद्धि वा विकाशको यथाविधि करती है। और साथ ही शारीरिक रचनाकी प्रतिधारण-शक्तिको भी मर्यादानुकूल करती है। इसी यथार्थतासे प्रमाणित हो जाता है कि क्यों चुल्लिका ग्रन्थिको गर्भावस्थामें अपने प्राकृत स्वभाव में वा नियमानुकूल कार्य करना चाहिये। पाठकोंको स्मरण रहे कि गर्भावस्थाके आद्य वा अंतिम त्रैमासोंमें, तथा प्रसूतकालमें शरीरके, अपने वा आगन्तुक विषाक्त पदार्थोंसे प्रभावित होनेकी अधिक सम्भावना होती है और इन्हीं समयोंमें शारीरिक वैकृत धर्म्म अधिक वेग-पूर्वक होता है। अतः इन समयोंमें ग्रन्थिको अपने प्राकृत नियम में होनेकी विशेष आवश्यकता है।

ऊपर लिखित प्रमाणोंसे स्पष्ट है कि किस प्रकारसे गर्भधारणकी रीति चुल्लिकाग्रन्थिके नियमबद्ध कार्यपर आश्रित है। गर्भावस्थामें शरीरमें अधिक मल पैदा होता है और प्रकृतिका यह नियम है कि सबकी सब ग्रन्थियाँ उक्तमलको बहिर्गत करनेके लिये अधिक कार्य करें। चुल्लिका ग्रन्थिका सदोष कार्य उक्तप्रणालीविहीन ग्रन्थियोंके कार्यमें बाधा डाल देता है।

गर्भावस्थामें चुल्लिकाग्रन्थि अपने परिणाम वा तत्व पूर्तिमें थोड़ी बहुत बढ़ जाती है। पहलौठी प्रथम प्रसव) में उक्तवृद्धि कोई चतुर्थ मासमें वा अन्य स्त्रियोंमें इससे भी देरसे पैदा होती है। उक्त बढ़ौत या स्थूलता गर्भावस्थाके अंतिम दिवस तक बनी रहती है। प्रसवके पश्चात् साधारण स्त्रियोंमें यह शीघ्र ही छोटी होनी शुरू हो जाती है पर प्रसूतकालके अंत तक भी अपनी पूर्वावस्थाको पूर्णतया प्राप्त नहीं हो सकती। कभी कभी स्थूलता दुग्धप्रदानकालमें भी बनी रहती है।

तैलोंका उदजनीकरण

[Hydrogenation of oils]

[ले० श्री ब्रजबिहारीलाल दीक्षित एम० एस-सी०]

रतीय सभ्यताके अभावके साथ-साथ घी दूधका अभाव भी होता जाता है। जबसे मनुष्योंके हृदयमें गायके प्रति प्रेम नहीं रहा तभीसे उनके घरमें घी दूध भी अदृष्ट होने लगा। बिना घी के मनुष्य बलिष्ट तथा स्वस्थ अवस्थामें नहीं रहसकता। प्राचीन सनातन धर्मानुसार सम्पूर्ण संसार गायके सींगों पर रुका हुआ माना जाता है। जब गाय चली जावेगी तब संसार अपने स्थान पर न रुक सकेगा और प्रलय की संभावना होने लगेगी। इसमें अनेकानेक कारणोंके साथ एक कारण यह भी है कि जब गाय संसारमें न रहेगी तो मनुष्य बलिष्ठ न हो सकेंगे और फिर वह सांसारिक महायुद्धमें अपने को न संभाल सकेंगे।

वास्तवमें होता भी ऐसा ही, यदि रासायनिक वैज्ञानिक लोग मनुष्योंकी सहायता को न आजाते। जब जब किसी वस्तुकी संसारमें आवश्यकता पड़ती है तो भिन्न भिन्न विश्वविद्यालयोंमें अनेकानेक वैज्ञानिकोंका चित्त उसी ओर हो जाता है। घृत इत्यादि की आवश्यकता थी प्राचीनकाल से ही और विशेष कर भारतवर्ष ऐसे देशमें जहाँ चार्बिक तथा अचार्बिक वस्तुओं पर विशेष ध्यान दिया जाता है। अन्य देशोंमें तो अनेक जानवरोंका चर्बी घृत के स्थानमें प्रयोगकी जाती है। घी तो वहाँ एक बहुत ही अमूल्य पदार्थ समझा जाता है। परन्तु, भारतवर्षमें केवल दो ही चीज़ें भोजन सम्बन्धी सारिणीमें प्रस्तुतकी जा सकती हैं, एक तो घी, दूसरे तेल; जिसमें तेल साधारणतः निर्धन मनुष्योंका भी भोजन है। उनमें अनेक शारीरिक अवगुण भी होते हैं और किसी किसीमें गन्ध भी इतनी तीव्र आती है कि सही नहीं जा सकती। वैज्ञानिक वादानुसार चार्बिक अचार्बिक का विचार पूर्णतः निर्मूल है। प्रत्येक तेल चाहे किसी पशु से उपलब्ध किया जाय अथवा किसी वृक्षसे अथवा किसी वनस्पति से, उसका रासायनिक रूप एक ही सा होगा।

सभी तैल मधुरोलके साथ भिन्न भिन्न चार्बिकाम्लों (मज्जिकाम्लों) के यौगिक होते हैं और विभाजन से यही वस्तुएं—मधुरोल तथा मज्जिकाम्ल-उपलब्ध की जा सकती हैं। इनमें मधुरोल तो सब में ही सम्मिलित है, भेद केवल मज्जिकाम्ल, का है। भिन्न भिन्न मज्जिकाम्ल भी एक दूसरेसे बहुत कम विभिन्न होते हैं। रूप तो एक ही होता है। किसीमें एक कर्बन परमाणु कम होता है किसी में अधिक जैसे :—

खजूरिकाम्ल (Palmitic Acid)
$क_{१५} उ_{३१} क ओ ओ उ$

मार्गेनिकाम्ल (Marganic acid)
$क_{१६} उ_{३३} क ओ ओ उ$

चार्बिकाम्ल (Stearic Acid)
$क_{१७} उ_{३५} क ओ ओ उ$

बहुतोंमें एक या एकसे अधिक बन्ध (double bond) होते हैं और उनमें कर्बन परमाणु असंपृक्त होते हैं। बहुधा ऐसे अम्लों से उपलब्ध मज्जिक पदार्थ द्रव रूपमें होते हैं। यदि असंपृक्त अम्ल का भाग अधिक होता है, तो पदार्थ द्रव रूपमें होगा। यदि यह भाग थोड़ा ही होगा तो चार्बिक पदार्थ कुछ कुछ द्रव ही होगा। तैलों में अधिकतर ऐसे ही असंपृक्त पदार्थ होते हैं। ऐसे पदार्थोंमें एक अम्ल जैतूनिकाम्ल (oleic acid) भी है। तात्पर्य्य यह है कि चाहे कोई रसायनिक पदार्थ किसी भी प्रारम्भिक पदार्थसे उपलब्ध किया जावे, यदि उसका स्वरूप इस समुदायके रूपसे मिलेगा तो वह वस्तु

चार्बिक होगी; अन्यथा नहीं। मधुरोलमें तीन उदौषिद मूल होते हैं और इस कारण वह तीन अम्लिक मूलोंसे यौगिक बना सकता है। सृष्टिमें मधुरोलके जो यौगिक पाये जाते हैं उनमें यह तीनों ही मूल अम्लों द्वारा लवण रूपमें होते हैं और इन सभी पदार्थों को चार्बिक पदार्थ कहते हैं। प्रयोगशालामें तीनों ही क्रमके यौगिक तैयार किए जा सकते हैं और वह क्रमशः एको—द्वि—त्रि—के नामसे कहे जाते हैं जैसे मधुरोल तथा सिरकाम्लसे उपलब्ध पदार्थ

क उ$_{२}$—ओ उ	क उ$_{२}$—ओ उ	क उ$_{२}$—ओ—ओक क उ$_{३}$
।	।	।
क-उ ओ उ	कउ-ओ—ओक क उ$_{३}$	कउ—ओ—ओक क उ$_{३}$
।	।	।
क उ$_{२}$—ओ—ओक क उ$_{३}$	क उ$_{२}$—ओ—ओक क उ$_{३}$	क उ$_{२}$—ओ—ओक क उ$_{३}$
मधुरोल एको सिरकेत	मधुरोल द्विसिरकेत	मधुरोलत्रिसिरकेत
(एकोसिरकिन)	(द्विसिरकिन)	(त्रिसिरकिन)

होंगे त्रिसिरकिन एक चार्बिक पदार्थ है। इसी प्रकार अन्य चार्बिक पदार्थ भी हैं। सिरकाम्ल समुदायमें क उ$_{३}$ भागके स्थानमें क$_{२}$ उ$_{५}$, क$_{३}$ उ$_{७}$, अथवा अन्य कोई मूल हो सकता है !! इसी प्रकार

क उ$_{२}$—ओ—ओक क$_{१७}$ उ$_{३५}$	क उ$_{२}$—ओ—ओक क$_{१५}$ उ$_{३१}$
।	।
क उ—ओ—ओक क$_{१७}$ उ$_{३५}$	क उ—ओ—ओक क$_{१५}$ उ$_{३१}$
।	।
क उ$_{२}$—ओ—ओक क$_{१७}$ उ$_{३५}$	क उ$_{२}$—ओ—ओक क$_{१५}$ उ$_{३१}$
त्रिचर्बिन	त्रि-खजूरिन
(Tristearine)	(Tripalmitine)

इत्यादि हुईं यही स्वरूप घी, दूध, चर्बी इत्यादि सभी ऐसे पदार्थोंका होता है परन्तु फिर भी भारतवासी इस ओर अधिकसे अधिक कष्ट तथा हानि उठाते हैं। यद्यपि उनका प्राकृतिक पदार्थ घी, पशुसे उपलब्ध पदार्थ ही है परन्तु उसके स्थानमें अब केवल वनस्पतियोंसे उपलब्ध तैलोंके अतिरिक्त औ[illegible]का स्वीकार नहीं कर सकते। वस्तुतः घी अत्यन्त ही स्वादिष्ठ तथा अन्य सब चार्बिक-पदार्थोंसे गुणकारी होता है परन्तु फिर भी उसके अभावमें क्रय कर्त्ताओंको अपनी इस निर्बलताका परिचय देकर उन्हें अनुचित व्यवहारसे अनुचित लाभ उठानेका अवसर देना मुझे तो अभीष्ट नहीं प्रतीत होता है।

इस कठिनाईको दूर करनेके लिए वैज्ञानिकोंने कृत्रिम घृत भी बनाकर तैयार किये हैं और यह सब किसी न किसी वनस्पतिके तैल द्वारा ही तैयार किये जाते हैं ताकि भारतवासियोंके हृदयमें स्थान पासकें। इन वस्तुओंके निषेध करनेकी आवश्यकता नहीं है वरन् यह अवश्य है कि जो वस्तु है वह शुद्ध रूपमें समझकर खाना चाहिए, प्राकृतिक घृतमें कृत्रिम घृतका मिलना ठीक नहीं। परन्तु विक्रय कर्त्ता तो अपनी करतूतोंसे बाज आ नहीं सकते, इसलिए यदि खानेवाले ही कुछ अधिक ध्यान दें तो अच्छा है। जब उन्हें मिलावटमें घृतके भावमें यह तैल लेकर खाने पड़ते हैं तो शुद्ध तैल अथवा उनसे उपलब्ध कृत्रिम घृत ही प्रयोग करना लाभदायक होगा।

वनस्पति घृत केवल तैल ही होता है जो एक विचित्र रूपसे पूर्णतः स्वच्छ कर लिया जाता है और फिर उदजनीकृतकर दिया जाता है। उद-

जनीकरणमें एक उत्प्रेरक वस्तु (Catalyser) का प्रयोग होता है। इसकी विद्यमानतामें बड़ी ही सरलतासे और शीघ्र ही द्रव तैलीय पदार्थ ठोस पदार्थोंमें परिणत हो जाते हैं। प्रति-क्रियाका रासायनिक भाव भलीभाँति स्पष्ट नहीं हैं। प्रायः द्रव तैल, अथवा तैलोंके द्रव भाग, असम्पृक्त मांसज्ञक अम्ल होते हैं, उदजनीकरणसे यह सम्पृक्त हो जाते हैं। बहुधा देखा भी गया है कि असम्पृक्त पदार्थोंका कथनांक उन्हींके सम्पृक्त रूपोंकी अपेक्षा कम होता है इसीलिए इस क्रियाको 'तैलोंको कठोर करना' (Hardening of oils) भी कहते हैं।

प्रारम्भिक कालमें केवल मज्जिकाम्लकीवाष्प और उदजनका मिश्रण नकलम्के ऊपर प्रवाहित किया जाता था। नकलम् एक विशिष्ट कियासे तैयारकी जाती थी जो सैबेटियर साहबकी वैज्ञानिक प्रतिभाका एक चमत्कारिक उदाहरण है। लेकिन इस क्रियामें समस्त अम्ल वाष्प रूपमें परिणत करने पड़ते थे और यह एक साधारण कार्य न होनेके कारण तैलका उदजनीकरण अनेक वर्षों तक सफलतापूर्ण व्यापारिक कार्य न हो सका परन्तु बहुत समय न व्यतीत हो पाया था कि इसी विधिका एक ऐसा परिणत रूप निकल आया जिसने वैज्ञानिकोंको बड़ेही चमत्कारिक आश्चर्य्यमें डाल दिया जो बहुधा मनुष्यकी सफलताके बाद दूसरोंको हुआ करता है, और वह सोचने लगेकि यह विधि पहले उनकी समझमें न जाने क्यों न आई थी। विधि तो साधारण ही थी परन्तु हुआ वही जो "तींककी ओट पहाड़" की कहावतसे चरितार्थ होता है। एक छोटी सी ही विधिके निकाल लेनेसे समस्त व्यापारिक निराशा आशामें तथा असफलता सफलतामें परिवर्त्तित हो गई। वही सैबेटियर साहबका विशिष्ट नकलम्, उदजन और वही तैल परन्तु अब तैल का वाष्प रूप में परिणत किये जानेकी आवश्यकता न रही। नार्मन साहबने क्रियामें केवल यही विचित्रिताकी कि तैल और नकलम् पहिलेसेही एक बर्त्तनमें रख दिए और फिर उसमें उदजन प्रवाहित किया। उचित ताप तथा प्रेरक वस्तु (Catalyst) की सहायतासे तैल उदजनी-कृत हो गया और ठोस चार्बिक पदार्थ उपलब्ध होने लगे। यह क्रिया उसने सबसे पहिले सन् १९०३ ई० में निकाली थी। सबसे प्रथम यह क्रिया संसारमें व्यापारिका मात्रा पर सन् १९०४ ई० में, प्रयोग हुई और सन् १९१४ ई० में केवल पाँच ही महत्वपूर्ण मंडलियाँ इस व्यापार की थीं किन्तु इस परिवर्त्तित क्रियाका लाभ इतना हुआ कि सन् १९२५ ई०में पचाससे अधिक मंडलियाँ इस काय्यके लिये खुल गई। इसीसे नार्मन साहबकी हटाई हुई सींककी ओटके पहाड़के आकारका अनुमान किया जा सकता है।

इस समस्त क्रियामें उत्प्रेरक-वस्तु एक बड़ीही महत्वपूर्ण वस्तु है, और सदाकी भांति उसकी उत्प्रेरक शक्ति उसके पृष्ठतलके अनुसार होती है। इसी कारण जहाँ तक हो सके नकलम्के छोटेसे छोटे परमाणु उत्प्रेरक रूपमें प्रयोग किये जाते हैं। इस काय्यके लिए नकलम् धातु उसके ओषिदके अवकरणसे उपलब्धकी जाती है। इस अवकरणका तापभी कुछ कम महत्वकी बात नहीं है। यदि यह ७००° शसे नीचे होता है तो नकलम् सभी भांतिकी उदजनीकरण क्रियाओंमें प्रयोगकी जा सकती है परन्तु यदि अवकरण ७०० शसे ऊपरके ताप पर किया जावेगा तो नकलम् ऐसे पदार्थोंके उदजनीकरणमें प्रयोग नहीं हो सकती जिनमें बानजावीन केन्द्र हों और बहुधा केवल नोषत मूलोंके उदजनीकरणमें ही प्रयोग हो सकती है। प्रायः उत्प्रेरक नकलम् तीन रूपोंमें होती है, क,-ख,-तथा ग,-ग-नकलम् बहुत ही शक्तिशाली परन्तु अत्यन्त ही कम स्थाई होती है, केवल २६०° श के नीचे रह सकती है। इसके ऊपर यह ख-रूपमें परिणत हो जाती है जो उससे कम क्रियावान होती है ७००° श के ऊपर केवल क-रूपही स्थाई है और वह उदजनीकरणमें बेकारसा होता है। क-रूप अनेकानेक विषैली वस्तुओंके

प्रति बड़ा ही ज्ञानवान होता है और किञ्चिद्मात्र भी अशुद्धि होनेसे उसको शक्ति नष्ट हो जाती है। इसी कारण स्वच्छसे स्वच्छ पदार्थ प्रयोगमें लेना चाहिए। तैलोंकी स्वच्छताका एक श्रृङ्खला-बद्ध चिह्न यह है वह रासायनिक रूपसे शुद्ध होने पर निर्वर्ण, निस्स्वाद, तथा निर्गन्ध होते हैं। गन्ध, स्वाद तथा वर्ण केवल अशुद्धियां होती हैं जो तैलोंके साथ बीजोंमेंसे तथा तैल उपलब्धिकी क्रियाओं द्वारा तैलोंमें आ जाती हैं। समस्त अशुद्धियां चार भिन्न श्रेणियोंमें विभाजित की जा सकती हैं—

१—वसा-पदार्थ
२—अण्डसित् पदार्थ
३—मुक्त मज्जिकअम्ल
४—अन्य साधारण पदार्थ—गर्द मैल इत्यादि

इन समस्त पदार्थोंमें मुक्त मज्जिकाम्ल सबसे अधिक हानिकारक पदार्थ हैं। इनसे पाचन प्रणाली में बड़ी सनसनी मचने लगती है और गैस्ट्रिक रस (Gastric juice) का प्रवाह भी बढ़ जाता है। इस कारण इसको सबसे प्रथम निकाल देने की चेष्टा करनी चाहिए। विधि भी सरल ही है। केवल कोई क्षारीय पदार्थ डाल दिया जाता है—जिससे मुक्त अम्ल शिथिल हो जावे। शिथिल होने की ठीक सूचना द्रवयोग मापन क्रिया (titration) से लगाई जा सकती है। थोड़ा बहुत साबुन बह जावेगा। इस बात का ध्यान रहे कि साबुन केवल मुक्त अम्ल ही का बने कहीं तैल साबुनीकृत न हो जावे। यदि किञ्चिद्मात्र भी तैल साबुनीकृत हो गया तो इससे बहुत बड़ी व्यापारिक हानि की सम्भावना हो सकती है। यह क्रिया प्रथम थोड़ी थोड़ी मात्रामें भिन्न २ दशाओंमें भिन्न २ क्षारों के साथ करके यह पता लगालेना चाहिए कि कौनसा क्षार और उसकी कौनसी मात्रा अत्युत्तम रहती है और किस तापक्रम पर। तब तैल का शोधन अधिक मात्रा पर किया जाना चाहिए। बहुधा ८०-९०° श का तापक्रम हानिकारक नहीं होता है और क्षार का एक हलका घोल डालना चाहिए यदि अम्ल अधिक शक्तिमान न हो। अधिक शक्ति का होने पर क्षारके तीव्र घोलकी आवश्यकता पड़ती है। एक और कठिनता पड़ सकती है उसका भी ध्यान रखना चाहिए। साबुन इस विधि से बनाना चाहिएकि वह उपघोल रूप न धारण कर पावे जिससेकि साबुनके नन्हें २ टुकड़ों में तैल भी नन्हें नन्हें बूंदोंके रूपमें घस जावे और फिर बैठने में बहुत समय ले लेवे। तैल को नीचे शीघ्रही बैठ जाना चाहिए। अब मुक्त क्षार तथा साबुनको धो डालना चाहिये। इस हेतु ऊपरसे गर्म जलकी वर्षा की जाती है और तैल चलाया नहीं जाता है क्योंकि ज्योंही चालक हिला कि साबुन जो के एक बहुत ही सुन्दर उप-घोलक है समस्त तैलको उपघोलमें परिणत कर देता है और फिर उसके बैठनेमें बहुत समय लग जाता है। तत्पश्चात् लवणीय जलसे भी दो-तीन बार धो डाला जाता है जिससे मुक्त क्षार पूर्ण रूपमें घुलकर साफ़ हो जाता है। अब पृथक किया हुआ साबुन खनिजाम्लोंसे प्रतिकृत करके मुक्त अम्ल उपलब्ध करनेमें प्रयोग कर लिया जाता है या अम्ल और साबुनका मिश्रण साबुनके व्यापारियोंको जैसाका तैसा विक्रयकर दिया जाता है।

वर्ण पदार्थोंको दूर करनेके लिये या तो रासाय-निक विधि प्रयोगकी जा सकती है या भौतिक। खाद्यपदार्थोंमें रासायनिक विधि कभी भी प्रयोगमें न लानी चाहिए। केवल अधिशोषणकी भौतिक विधि ही उपयोगी रहती है और इसके लिए कोय-लेके टुकड़े प्रयोगमें लाये जाते हैं। तैल वायुके बहुत ही कम भारपर गर्म किया जाता है जिससे वह शीघ्र ही शुष्क हो जाता है फिर उसमें कोयला अथवा अन्य किसी प्रकारकी अधिशोषक मिट्टी डाल दी जाती है जिसकी शोषण शक्ति पूर्व प्रयोगोंसे निकाल ली गई है। अधिशोषणके पश्चात् यह मिट्टी निकाल ली जाती है और बहुत ही तीव्र तापमें तप्त की जानेसे फिर प्रयोगमें लाई जा सकती

है। परन्तु यह पदार्थ इतने कम मूल्यके होते हैं कि कोई भी व्यापारी इनको पुनः उपलब्ध करनेकी चेष्टा नहीं करता। वस्तुतः उनमेंका शोषित तैल ध्वलक इत्यादि अन्य घोलकों द्वारा खींच लिया जाता है और साबुन बनानेवाले तैलोंमें मिला दिया जाता है। रंग इत्यादि भी इन्हींमें मिले होते हैं और साबुनमें कोई विशेष हानि नहीं डालते।

अब रहे गन्ध पदार्थ। यह बहुधा उच्च श्रेणीके कीतोन तथा मद्यानाई होते हैं और भिन्न-भिन्न पदार्थोंमें अलग २ तरह के रहते हैं। यह भी जल-वाष्पमें वाष्पशील होते हैं परन्तु इस वाष्पस्रवण करनेमें समय लगता है। शीघ्रता करनेकी भी अनेक विधियां हैं, उदाहरणार्थ—अति तप्त जल वाष्पका प्रयोग, ताप-क्रमका बढ़ा देना और वायुभारका घटा देना; और जितना ही वायुका भार कम होता है क्रिया उतनी ही पूर्ण होती है। बहुधा तीनों ही बातें एक साथकी जाती हैं। अतितप्त जल-वाष्प अत्यन्त ही गरम तैलमें वायुके न्यूनभारपर प्रवाहितकी जाती है और समस्त गन्धमय पदार्थ वाष्प-स्रवित होकर न्यूनाधिक समयमें दूर हो जाते हैं। तैल किंचितमात्र भी वाष्पशील नहीं होते और उनके स्रवित हो जानेका कुछ भय नहीं होता वायुका भार घटानेमें जलवाष्पको ठण्डाकर देनेसे बड़ी सहायता मिलती है अथवा एक ऐसे भारी यन्त्रका आवश्यकता पड़ती है जिसका बनना असम्भव नहीं तो अति कठिन तो है ही। वाष्प-आशयसे जलवाष्पके साथ-साथ कुछ अन्य ऐसी वायु आती रहती हैं जो जम नहीं सकतीं और उनके लिए एक यन्त्र भी लगानेकी आवश्यकता पड़ती है, अन्यथा केवल जलवाष्पको ठण्डाकर देनेसे ही बिना किसी पम्पकी सहायतासे वायुका भार न्यूनातिन्यून हो सकता था। प्रयोगशालामें जलवाष्पका ठण्डा करनेका काम केवल लीबिग भभकेसे चल जाता है परन्तु व्यापारिक मात्रापर यह यन्त्र बहुत ही निष्फल रहेगा क्योंकि इसमें समय भी अधिक लग जाता है और मूल्य भी बहुत पड़ता है। इस कारण एक पृष्ठि-स्रविक यंत्रका प्रयोग किया जाता है जिसका रूप नीचेके चित्रसे स्पष्ट हो जावेगा।

इसमें तापक यन्त्रमेंसे जो वाष्प आती है वह ब मेंसे होकर इस यन्त्रमें प्रवेश करती है। ऊपरके छिद्र अ से होकर शीतल जल प्रवेश करता है और यह ऊपरको आती हुई जलवाष्पको शीतल करता हुआ य वर्त्तनमें भरता जाता है। जलवाष्पका अधिकांश ठंडा हो जाता है जो बचता है वह क के द्वारा बाहर निकल जाता है। यह नलिका वायुभारके शून्यकयंत्रसे सम्बन्धित रहती है जिसके द्वारा वायुभार बहुत ही न्यून रह जाता है। इस भारकी मात्रा जलाशय य में जलकी ऊंचाईसे ज्ञात होती रहती है। वायुका पूर्ण भार १० गज होता है। इसमेंसे इसकी लम्बाई घटा देनेसे यन्त्र जितने वायुभारपर कार्य कर रहा है उसका ज्ञात हो जावेगा। लम्बाई 'द स' उस पानीका भार है जो कि यन्त्र द्वारा खिंच रहा है। जलाशय य मेंसे जल कहीं भी भेजा जा सकता है तथा अन्य कार्य्यमें प्रयोग हो सकता है।
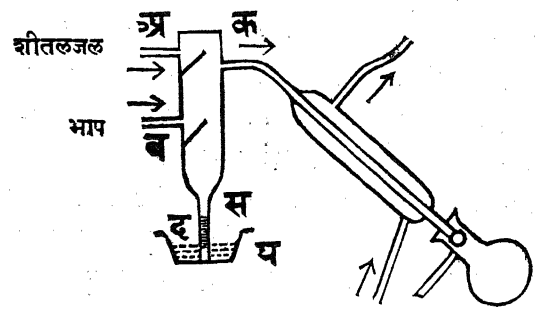
परन्तु भारतवर्षमें एक कठिनता और पड़ती है यहांकी जल-वायु बहुत ही उष्ण होनेके कारण भभकेमें जो जल प्रयोग किया जाता है वह कमसे कम ३२° श के तापपर होता है और इस तापपर वाष्प भार ४० स. म. होता है। यन्त्रमें भी कुछ न कुछ सांक इत्यादि रह ही जानेके कारण किसी भी रूपसे वायु-भार ५५° सम. से न्यून नहीं किया जा सकता। पूर्ण निर्गन्ध पदार्थ उपलब्ध करनेके

ये वायु-भार ११° सम. से कम होना चाहिए और इस कारणसे कार्य्यमें बड़ी गड़बड़ी पड़ती है हां एक बातकी जा सकती है कि ऊपर जिस स्रावक यन्त्रका विवरण दिया गया है वही प्रयोग किया जावे परन्तु उसके आगे एक बड़ा लीबिग स्रावक यन्त्र लगा दिया जावे। इस प्रकार जो यन्त्र बनेगा उसका रूप इस चित्रमें दिया गया है। लीबिग स्रावक यन्त्रमें शीतोत्पादक यन्त्र (Refrigerator) से शीत किया हुआ जल ०°श पर प्रयोग किया जा सकता है। समस्त स्रावक यन्त्रमें इस यन्त्र द्वारा शीत किया हुआ जल प्रयोग करना कुछ कठिन और मूल्य प्रद होगा। परन्तु इस यन्त्र भरमें काम देने लायक जलकी आवश्यकता पूरी करनेके लिए केवल एक छोटेसे शीतोत्पादक यन्त्रकी ही आवश्यकता है और वह इस व्यापारके चलानेवालोंके लिये वैसे भी अनिवार्य है। यदि तैल ११८°श तक तप्त करके उसमें ३००° श पर अतितप्त वाष्प १०-११ स. म. के दबाव पर प्रवाहितकी जावे तो कोई ५० मन गोलेका तेल ३ पहर भरमें ही निर्गन्ध किया जा सकता है। परन्तु भारतवर्षमें ताप इत्यादिकी कठिनताओंके कारण यह कार्य्य २-३ दिवसमें भी भली भाति नहीं हो पाता। गोलेके सिवाय अन्य तैलका निर्गन्ध करना प्रायः सरल है। पाश्चात्य देशोंमें इस प्रकार अनेकानेक तैल उदजनीकृत किये जाते हैं। जैतून का तैल सबसे अधिक स्वादिष्ट होता है और अधिक मूल्यवान भी होता है। इसको धनाढ्य लोग ही प्राप्त कर पाते हैं। अन्य तैल का मूल्य कुछ कम होता है और इससे निर्धन मनुष्यों का कार्य्य चलता है। खाद्य पदार्थ की भांति प्रयोग किए जानेसे पूर्व वह सब शुद्ध करके उदजनीकृत कर दिये जाते हैं।

अब प्रेरक वस्तुकी बात रही अनेक धातुयें प्रयोग की जाती हैं परन्तु सबसे अधिक कार्य्य कुशल नकलम् ही रहता है। इसमें एकता शुद्ध नकलम् होता है और दूसरा धारक होता है। उत्प्रेरण शक्ति पृष्ठ तलके अनुसार होती है और इसी कारण जहां तक हो सकता है अधिक से अधिक पृष्ठतल रखने की चेष्टा की जाती है। किसी भी नकलमके लवण को अवकृत करके चूर्णरूप नकलम् प्राप्त करते हैं और यह किसी धारक पर स्थाई कर दिया जाता है। इस कार्य्यके लिए कोई भी लवण प्रयोग किया जा सकता है। लवण सत्यतः ही सरलतासे अवकृत हो जाना चाहिये। टंकेत, काष्ठेन अथवा कर्बनेत इत्यादि भले रहते हैं। बहुधा कोई न कोई शिथिल मिट्टीके टुकड़े लवणमें भिगो लिये जाते हैं और फिर लवणमेंसे धातु किसी अवक्षेपक द्वारा अवक्षेपित करदी जाती है। इस प्रकार पृष्ठतल बहुत ही बढ़ जाता है। सन् १८२५ ई० में एक बहुत ही विचित्र विधि प्रयोगमें आने लगी। नकलम् लोहेके तारके जालोंमें भरदी जाती है और इसको विद्युत् प्रवाह द्वारा शक्तिशाली करते रहते हैं। यह क्रमशः अवकृत और उदजनीकृत होती रहती है। इसमें एक बड़ी विचित्र बात यह है कि तैल इस प्रकारके नकलमके जालमें एक ओरसे जलते जाते हैं और दूसरी ओर से निकलते जाते हैं। थोड़े समय बाद विद्युत प्रवाह द्वारा नकलम् को ओषदीकृत करके क्रियावान कर देते हैं और कार्य्य फिर चलता रहता है।

अब रही बात केवल उदजन की। यह अनेक विधियोंसे उत्पन्न किया जा सकता है। विधि अति मूल्यवान न होवे, इस हेतु जलको विद्युत् प्रवाह द्वारा विभाजित करते हैं और इस प्रकार उदजन तथा ओषजनमेंसे उदजन इस क्रियामें प्रयोग कर लिया जाता है। दोनों पदार्थ पृथक् पृथक् ही प्राप्त होते हैं और उनको पृथक् करने का कष्ट उठाना नहीं पड़ता। दूसरी विधिमें जल वाष्प को अति तप्त लौह चूर्ण पर प्रवाहित करते हैं। इस भांति जल विभाजित हो जाता है। लोहे का तो ओषिद बनजाता है और उदजन शुद्ध रूपमें प्रवाहित होता रहता है। इस प्रकार भी मूल्य बहुत ही कम रहता है

और क्रिया भी सरल ही है। कोई ५,००० घ० मीटर उदजन प्रत्येक घण्टेमें उत्पन्न किया जा सकता है। प्रयोग शालामें न्यूनाधिक उदजन प्राप्त करनेके लिए जो विधि प्रयोग की जाती है—दस्तम् तथा गन्ध काम्ल—वहतो पूर्णतः निष्फल रहेगी क्योंकि वह अधिक मूल्यवान होती है। सबसे सस्ती विधि जल वाष्प तथा लोहे वाली रहती है। उसमें दोनोंही पदार्थ अत्यन्त ही सस्ते हैं।

उदजनीकरण की वास्तविक क्रिया बड़ी ही सरल है और वह पूर्णतः प्रयोग शालाके प्रयोग किये जानेवाली वस्तुओंके ही आधार पर होती है। केवल इस बात का ध्यान रखना पड़ता है कि मिश्रणमें न्यूनता न रहे। इस कारण किसी भी बर्तनमें नकलम् चूर्ण (अथवा अन्य कोई प्रेरक वस्तु) भरदेते हैं। नीचेसे उदजन की धारा प्रवाहित की जाती है और ऊपरसे वर्षा रूपमें तैल प्रवाहित किया जाता है। शनैः शनैः तैल उदजनसे संयुक्त हो जाता है और थोड़ा जनित पदार्थ निकाल कर उसका द्रवांक देख लिया जाता है। यदि वह इच्छित वस्तुके अनुसार होता है तो कार्य्य समाप्त कर दिया जाता है अन्यथा वही क्रिया होती रहती है। यदि इच्छित वस्तु के द्रवांक का पूर्व ज्ञान न हो तो वस्तु समय समय पर निकालकर परीक्षकों को देदी जाती है और भिन्न भिन्न परीक्षाओं द्वारा यह ज्ञान प्राप्त करना पड़ता है कि वस्तु खानेके लिए सबसे अधिक सुन्दर, स्वादिष्ट तथा कार्य्य कुशल होगी। इस वस्तुका द्रवांक निकाल लिया जाता है और वह आगेको सहायता देता है। इसी कार्य्यकी एक अन्य विधि इस भाँति भी है कि बर्तनमें प्रेरक जीव भर कर उसमें तैल भर देते हैं और नीचेसे उदजन प्रवाहित करते हैं। उदजनके प्रवाहसे तैलमें बुलबुले उठते रहते हैं और मिश्रण स्वयम् होता रहता है।

इस प्रकार आज कल अनेक वस्तुएं व्यापारिक मात्रामें तैयारकी जाती हैं और यद्यपि उनमें से कोई भी घृतके समान लाभदायक कदापि नहीं कही जा सकती, तथापि उनको अज्ञान से बाज़ारसे घृत इत्यादि के मिश्रित रूपमें खानेसे उनको शुद्ध रूपमें खाना अत्यन्त ही लाभदायक है। इससे कुछ धन का मितव्यय भी होगा और अज्ञानता भी नहीं कही जावेगी। वास्तवमें यह शुद्ध तैल ही होते हैं जो भिन्न भिन्न वनस्पतियोंसे तथा वनस्पतिक पदार्थों से उपलब्ध किये जाते हैं। और उनमें पशुचार्विक पदार्थोंकी आशंका सर्वथा निमूल है। उदाहरणार्थ "लिली पुष्प" मरसेकका श्वेत घृत लीजिए यह पूर्णतः श्वेत होता है और मिट्टी इत्यादिका एक अणु भी नहीं होता। बड़ी ही वैज्ञानिक शुद्धताके साथ उपलब्ध किया जाता है और कोई भी इसमें वैज्ञानिक तथा वैद्यक दोष नहीं निकाल सकता। यह केवल बिनौलेका तैल होता है जो केवल उपर्युक्त विधिके अनुसार उदजनीकृत कर दिया गया है। मेरे समझसे इसको खाना उस बाजारके घृतसे अवश्य लाभदायक होगा जिसमें मिट्टी इत्यादि अनेकानेक अशुद्ध वस्तुएं मिश्रित होती हैं। सर्वथा गन्दे स्थानोंमें गन्दे मनुष्यों द्वारा उपलब्ध किया जाता है, जिसमें अनेकानेक रोगोत्पादक कीटाणुओंकी सम्भावना रहती है और जिनकी शुद्धताका भी कोई प्रमाण नहीं है। यह केवल धन नष्ट करना है। यदि शुद्ध घृतका स्वाद तथा लाभ चाहते हो तो, गाय इत्यादि पशु पाल कर घरमें यह पदार्थ तैयार करो और तब उनका प्रयोग करो। इसकी बराबरी कोई भी कृत्रिम पदार्थ नहीं कर सकता।

जीवन का आरम्भ

[ले० श्री सत्यप्रकाश एम० एस-सी०]

सम्पूर्ण सृष्टि के वर्तमान रूपधारण करनेमें कितना समय लगा, यह कहना कठिन है। इसका जो स्वरूप इस समय है वह भी स्थायी नहीं है। प्रतिदिवस इस में सूक्ष्मातिसूक्ष्म परिवर्तन होते ही रहते हैं, अतः कितने दिनों तक इसका यह रूप आगे रहेगा यह भी नहीं कहा जा सकता है।

जितनी भी सृष्टि हमें दृष्टिगत होती है वह सजीव और निर्जीव दो भागोंमें विभाजित की जा सकती है। सजीव और निर्जीवका क्या तात्पर्य्य है? भारतीय दार्शनिक कल्पनाओंके अनुसार जड़ और चेतन दो विभाग किये जाते हैं। चेतन पदार्थोंकी चेतनताका कारण 'जीव' माना गया है जिसे आत्मा भी कहते हैं। प्रत्येक प्राणीमें अलग अलग जीव होते हैं, इन जीवोंके आधार पर ही इन पदार्थोंका जीवन है, जब ये जीव शरीरको छोड़ देते हैं, तो कहा जाता है कि अमुक व्यक्तिकी मृत्यु हो गई। शरीरसे जीवके सम्बन्ध होनेका नाम ही जन्म है। जीव अजर, अमर, नित्य, और असंख्य हैं। ये इतने सूक्ष्म माने गये हैं कि वैज्ञानिक साधनों द्वारा उनका निरीक्षण एवं परीक्षण करना असंभव ही है।

वैज्ञानिक उपर्युक्त प्रकारके जीव की मीमांसा के प्रति उदासीन है। अर्थात् वे न तो इनका अस्तित्व स्वीकार ही करते हैं और न अस्वीकार। वे इस विचारको अज्ञेय मानते हैं।

दार्शनिक रूपसे सजीव और निर्जीव पदार्थोंमें चाहे कुछ भी भेद क्यों न हो, पर वैज्ञानिकोंके अनुसार इन दोनोंमें इस प्रकार भेद किया जा सकता है।

(१) सजीव पदार्थ अपने शरीर को सदा परिवर्तित करते रहते हैं। इस प्रकार उनका शरीर नया बनता रहता है।

(२) ये भोजन, वायु, आदि सेवन करके शक्ति उत्पन्न करते हैं जो इनके भिन्न भिन्न व्यापारोंमें काम आती है।

(३) परिस्थितियोंके परिवर्तित होने पर भी जहाँ तक हो सकता है ये अपनी दशा स्थिर रखनेका प्रयत्न करते हैं। उदाहरणतः वायुमण्डलका तापक्रम चाहे कुछ भी क्यों न हो मनुष्यके शरीरका तापक्रम ९८·५° फ होके लगभग रहता है।

(४) जहाँ तक हो सकता है, सजीव पदार्थ अन्य आघातक जीवोंसे अपनी रक्षा करनेका प्रयत्न करते हैं।

(५) सजीव पदार्थोंमें अन्दरसे वृद्धि होती है। निर्जीव पदार्थ की वृद्धि बाहरसे होती है न कि अन्दरसे।

(६) सजीव पदार्थोंमें प्रजनन-शक्ति होती है। इस प्रकार एक सजीव पदार्थसे उसी जातिके कई अन्य पदार्थोंका जन्म होता है।

(७) इनमें किसी न किसी प्रकारकी स्मृति अथवा बुद्धि होती है।

यहाँ सजीव पदार्थोंसे हमारा तात्पर्य सम्पूर्ण प्राणि जगत्, वनस्पति जगत् तथा उन छोटे छोटे नन्हें जीवोंसे हैं जिन्हें हम केवल सूक्ष्म-दर्शक, या अनुवीक्षण यंत्रद्वारा ही देख सकते हैं।

हमें अब यहाँ यह देखना है कि सृष्टिमें सबसे प्रथम जीवनका आरम्भ किस प्रकार हुआ। क्या यह संभव है कि निर्जीव पदार्थोंसे ही सजीव पदार्थोंकी उत्पत्ति हो गई हो? बहुतसे विचारशील वैज्ञानिक इस संभावनाको ठीक मानते हैं, उनका

जीवन का आरम्भ

[ले० श्री सत्यप्रकाश एम० एस-सी०]

सम्पूर्ण सृष्टि को वर्तमान रूपधारण करनेमें कितना समय लगा, यह कहना कठिन है। इसका जो स्वरूप इस समय है वह भी स्थायी नहीं है। प्रतिदिवस इस में सूक्ष्मातिसूक्ष्म परिवर्तन होते ही रहते हैं, अतः कितने दिनों तक इसका यह रूप आगे रहेगा यह भी नहीं कहा जा सकता है।

जितनी भी सृष्टि हमें दृष्टिगत होती है वह सजीव और निर्जीव दो भागोंमें विभाजित की जा सकती है। सजीव और निर्जीवका क्या तत्पर्य्य है? भारतीय दार्शनिक कल्पनाओंके अनुसार जड़ और चेतन दो विभाग किये जाते हैं। चेतन पदार्थोंकी चेतनताका कारण 'जीव' माना गया है जिसे आत्मा भी कहते हैं। प्रत्येक प्राणीमें अलग अलग जीव होते हैं, इन जीवोंके आधार पर ही इन पदार्थोंका जीवन है, जब ये जीव शरीरको छोड़ देते हैं, तो कहा जाता है कि अमुक व्यक्तिकी मृत्यु हो गई। शरीरसे जीवके सम्बन्ध होनेका नाम ही जन्म है। जीव अजर, अमर, नित्य, और असंख्य हैं। ये इतने सूक्ष्म माने गये हैं कि वैज्ञानिक साधनों द्वारा उनका निरीक्षण एवं परीक्षण करना असंभव ही है।

वैज्ञानिक उपर्युक्त प्रकारके जीव की मीमांसा के प्रति उदासीन है। अर्थात् वे न तो इनका अस्तित्व स्वीकार ही करते हैं और न अस्वीकार। वे इस विचारको अज्ञेय मानते हैं।

दार्शनिक रूपसे सजीव और निर्जीव पदार्थोंमें चाहे कुछ भी भेद क्यों न हो, पर वैज्ञानिकोंके अनुसार इन दोनोंमें इस प्रकार भेद किया जा सकता है।

(१) सजीव पदार्थ अपने शरीर को सदा परिवर्तित करते रहते हैं। इस प्रकार उनका शरीर नया बनता रहता है।

(२) ये भोजन, वायु, आदि सेवन करके शक्ति उत्पन्न करते हैं जो इनके भिन्न भिन्न व्यापारोंमें काम आती है।

(३) परिस्थितियोंके परिवर्तित होने पर भी जहाँ तक हो सकता है ये अपनी दशा स्थिर रखनेका प्रयत्न करते हैं। उदाहरणतः वायुमण्डलका तापक्रम चाहे कुछ भी क्यों न हो मनुष्यके शरीरका तापक्रम ६८·५° फ होके लगभग रहता है।

(४) जहाँ तक हो सकता है, सजीव पदार्थ अन्य आघातक जीवोंसे अपनी रक्षा करनेका प्रयत्न करते हैं।

(५) सजीव पदार्थोंमें अन्दरसे वृद्धि होती है। निर्जीव पदार्थ की वृद्धि बाहरसे होती है न कि अन्दरसे।

(६) सजीव पदार्थोंमें प्रजनन-शक्ति होती है। इस प्रकार एक सजीव पदार्थसे उसी जातिके कई अन्य पदार्थोंका जन्म होता है।

(७) इनमें किसी न किसी प्रकारकी स्मृति अथवा बुद्धि होती है।

यहाँ सजीव पदार्थोंसे हमारा तात्पर्य सम्पूर्ण प्राणि जगत्, वनस्पति जगत् तथा उन छोटे छोटे नन्हें जीवोंसे हैं जिन्हें हम केवल सूक्ष्म-दर्शक, या अनुवीक्षण यंत्रद्वारा ही देख सकते हैं।

हमें अब यहाँ यह देखना है कि सृष्टिमें सबसे प्रथम जीवनका आरम्भ किस प्रकार हुआ। क्या यह संभव है कि निर्जीव पदार्थोंसे ही सजीव पदार्थोंकी उत्पत्ति हो गई हो? बहुतसे विचारशील वैज्ञानिक इस संभावनाको ठीक मानते हैं, उनका

कहना यह है कि निर्जीव और सजीव सृष्टिमें वस्तुतः कोई अधिक भेद नहीं है। यह ठीक है कि हम अपनी प्रयागशालाओंमें अभी सजीव पदार्थ बनानेमें समर्थ नहीं हो सके हैं, पर भविष्यमें इस प्रकारके पदार्थोंक बननेकी संभावना हो सकती है। जीवनका मूल एक पदार्थ है जिसे प्रोटोप्लाज़्म या कललरस कहते हैं। यह वृक्ष और अन्य प्राणियोंमें पाया जाता है। इसमें कर्बन, उद्जन, ओषजन, नोषजन और गन्धक ये पाँच तत्त्व होते हैं। प्रत्येक जीवित पदार्थमें इसका होना आवश्यक है। यह कललरस अभी कृत्रिम साधनोंद्वारा तैयार नहींकिया जा सका है। पर इसको जातिके अन्य पदार्थ बनाये जासके हैं। अभी यह बात संदिग्ध ही है कि यदि प्रोटोप्लाज़्म भी रासायनिक विधियोंसे बना लिया गया तो उस कृत्रिम पदार्थमें जीवनदायिनीशक्ति होगी भी या नहीं? आध्यात्म-वादियों का विश्वास है कि यह कृत्रिम कललरस प्राकृतिक रससे अन्य सब बातोंमें चाहे मिलता जुलता हो पर जीवनदायिनी शक्ति इसमें न होगी।

पहले कुछ लोगोंका विश्वास था कि निर्जीव पदार्थोंसे सजीव सृष्टि उत्पन्न हो सकती है। दही और चूनेको मिलाकर बिच्छू बनना, इसी प्रकार अन्य जीवोंका तैयार करना भी सम्भव है। फ्रांसके प्रसिद्ध जीवरसायनज्ञ पास्टूरने इस प्रकारकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें अनेक प्रयोग किये। अन्तमें उसने दिखा दिया कि केवल निर्जीव पदार्थोंसे सजीव पदार्थोंकी सृष्टि होना अभी तक संभव नहीं है।

तो क्या जीवन शक्ति अनादि है? पृथ्वीके बनते समय यह कहाँ थी। यह देखा गया है कि किसी भी जीवित पदार्थ को अति उग्र तापक्रम पर रख दिया जाय तो उसके जीवनका अन्त हो जाता है, इस प्रकार यदि उसे अति ठंडे तापक्रम पर भी लाया जाय तो भी उसका जीवित रहना संभव नहीं है। यदि जीवन-शक्ति पृथ्वी पर आरम्भ कालमें ही भी तो वह यहाँ कैसे रह सकी क्योंकि पृथ्वी आरम्भिक अवस्थामें आगकी धधकती गेंद थी। भला इस तापक्रमपर इस जीवनका रहना कैसे संभव हो सका?

कुछ वैज्ञानिकोंका विचार है कि पृथ्वीपर यह जीवन अन्य ग्रहोंसे आया। लार्ड केल्विनका विचार है कि यह जीवन अन्य ग्रहोंसे उल्काओं द्वारा आया। यह कह जा चुका है कि पृथ्वीका जन्म ही इन उल्काओं द्वारा हुआ है। उल्काओंके आन्तरिक गुह्यस्थानोंमें यह जीवन प्रविष्ट था। इसी कारण यह अत्यन्त शीतको भी सहन कर सका क्योंकि उल्का बहुत ही ठंडे होते हैं। अन्दर छिपे रहनेके कारण इस जीवनशक्ति पर ठंडका प्रभाव न पड़सका। जब ये उल्का अन्य ग्रहोंसे पृथ्वी पर गिरने लगे तो अपने अन्दर जीवन शक्तिके सूक्ष्म कीटाणु भी छिपा कर ले आये ये कीटाणुही आजकल मनुष्य, पशु और वनस्पतियोंके रूपमें विकसित होगये। कभी कभी कई उल्काओं का परस्परमें विकट संघर्ष भी होता है, जिसके प्रभाव से ये उग्रतप्त हो जाते हैं। इस अवस्थामें जीवन-कीटाणुओंके जलभुनने की संभावना भी है पर यदि वे उल्का किसी आन्तरिक छिद्र में छिपे बैठे हों तो बच भी सकते हैं क्योंकि संघर्षकी गरमीसे उल्काओं की केवल ऊपरी सतह ही गरम हो जाती है।

प्रोफेसर स्वान्ते आरहीनियस ने भी गणितके सिद्धान्तोंके आधार पर यह कल्पना प्रस्तुत की है कि ये जीवन कीटाणु इतने सूक्ष्म होते हैं कि प्रकाश की किरणोंके दबावमें ही एक ग्रह से दूसरे ग्रहमें जा सकते हैं। प्रकाशकी किरणोंकी तरंगोंमें इतनी काफी शक्ति होती है कि जीवनाणु आसानीसे एक ग्रहसे दूसरे ग्रहमें ढकेले जासकते हैं। बहुतसे छोटे छोटे जीवनाणुओं को अत्यन्त ठंडे तापक्रमों पर

जैसे द्रववायु या द्रवओषजनके तापक्रम पर रखा गया, पर इनकी जीवन शक्ति का अन्त न हुआ अतः यह स्पष्ट है कि सूक्ष्म जीवनाणु समुचित शीत सहन कर सकते हैं। दो ग्रहोंके बीचमें जो आकाश है वह ओषजन और जलवाष्पसे रहित है अतः जीवनाणुओंके नष्ट होने की संभावना और भी कम हो जाती है।

पर लार्ड केलिवन और आरहीनियसके विचारों से यह समस्या हल नहीं होती है कि जीवनका सबसे पहले आरम्भ किस प्रकार हुआ। उनके सिद्धान्तों से केवल यही पता चलता है कि एक ग्रहसे दूसरे ग्रहमें जीव किस प्रकार जासकते हैं। यदि मान लिया जाय कि पृथ्वीमें जीव दूसरे ग्रहसे आये, तो प्रश्न यह होगा कि उस ग्रहमें जीव कहांसे आये थे। यदि जीवोंकी आरम्मिक सृष्टि किसी एक ग्रह में हो सकती है तो कोई कारण नहीं है कि पृथ्वी पर भी क्यों न होसके। यह हो सकता है कि बारी बारीसे एक ग्रहसे दूसरे ग्रहमें जीव जातेहों और सबग्रह एक साथ न बनते ही हैं और न बिगड़ते ही। तो फिर जब कोई नया ग्रह बनेगा तो उस समयके किसी स्थित ग्रहसे ये जीव प्रकाश की किरणों अथवा उल्काओं द्वारा उसमें पहुँच जायँगे। यह चक्र निरन्तर चलता रहेगा और इसका कभी अन्त न होगा।

अस्तु, हम इस विवादास्पद विषयको यहीं छोड़ते हैं कि जीवन का आरम्भ कब, कहाँ और कैसे हुआ? इन प्रश्नोंका कोई सन्तोष जनक उत्तर नहीं है। अभी हम ऊपर जीवित पदार्थोंके सात लक्षण कर आये हैं, पर यह आवश्यक नहीं है कि सब जीवोंमें यह सातो बातें पायी ही जाती हों, कमसे कम उन जीवोंमें जिनका जन्म आदि कालमें हुआ था, इन लक्षणोंमेंसे कई तो घट भी नहीं सकते। जो जीव सबसे पहले पैदा हुआ होगा उसके लिये यह समस्या ही न थी कि अन्य जीवोंके आक्रमणसे अपनी रक्षा करे। आरम्भमें इस जीव-में 'स्मृति' भी नहीं थी। आरम्भ की अवस्थामें पृथ्वी कर्बनद्विओषिद और वाष्पयुक्त अतिघने वायुमंडलसे आवृत्त थी। इस अवस्थामें इनजीवों की परिस्थितिमें भी बहुत समय तक कोई परिवर्तन न हुआ।

अब शेष रही तीन चार बातें, अर्थात् आवश्यकीय पदार्थ ग्रहण करना और अनावश्यक पदार्थ निकाल देना अर्थात् भोजन ग्रहण करना और मल त्याग करना। भोजन द्वारा शक्ति और सामर्थ्य उत्पन्न करना, जिससे अन्य काम किये जा सकें, तीसरी बात यह कि एक जीवसे कई कई जीवोंका उत्पन्न होना, और इन जीवोंके टुकड़े होकर फिर अन्य कई जीव बनना। पर ये तीनों बातें रवोंमें भी पायी जाती हैं जो बिलकुल निर्जीव पदार्थ समझे जाते हैं। तूतिया, फिटकरी, या नमकके रवे बनते और बढ़ते हुए सबने देखे होंगे। गरम करके फिटकरी का एक गाढ़ा घोल बनाइये। अब इसे ठंडा होने दीजिये, पहले एक छोटासा रवा पृथक् होगा। यह रवा घोलसे अपना भोजन ग्रहण करता हुआ अपने शरीरकी वृद्धि करता जायगा। यदि घोलमें कुछ अन्य अशुद्धियाँ या अनावश्यक पदार्थ मिला दिये जायं तो उनको यह ग्रहण न करेगा। जब एक रवा किसी हद तक बड़ा हो गया तो आगे इसकी वृद्धि रुक जायगी, और इसके टुकड़े होकर अन्य छोटे-छोटे रवे बनने लगेंगे। इन्हें पहले रवोंकी सन्तान कहा जा सकता है। ये सब रवे बिलकुल एक ही रूपके होते हैं, जिस प्रकार एक जातिकी सब सन्तानें अपने माता-पिताके अनुरूप होती हैं। प्रोफेसर जूडका कथन है कि इन रवोंकी स्मरण शक्ति भी विलक्षण होती है। इनमें कार्य्य-कारणी शक्ति और सामर्थ्य भी बहुत होती है। इसी शक्तिका उपयोग भोजन ग्रहण करने, अनावश्यक पदार्थोंको त्यागने और छोटे-छोटे रवोंको बनाने सन्तानोत्पादन में किया जाता है। इस प्रकार रवोंके बननेमें और जीवनाणुओंकी प्रक्रियाओंमें कोई आवश्यक भेद नहीं है।

एक भेद अवश्य बताया जाता है, वह यह कि रवोंकी वृद्धि ऊपरी सतहपर पदार्थके जमनेके कारण होती है, पर जीवाणुओंकी वृद्धि अन्दरसे होती है। यह भेद बहुधा सजीव और निर्जीव पदार्थोंके जीवनमें किया जाता है। पर यह भेद भी आवश्यक नहीं है। मोन्स. एस. लेडक (Mons. S. Leduc) ने निर्जीव पदार्थोंकी एक ऐसी आयोजना तैयारकी जिसकी वृद्धि बिल्कुल पेड़ोंके समान अन्दरसे होती थी। उसने शक्कर और तूतियाको मिलाकर बीजके समान छोटी-छोटी गोलियाँ बनाईं। और इन्हें एक घोलमें जिसमें चार प्रतिशत जिलेटिन, १ से १० प्रतिशत नमक, और दो से चार प्रतिशत तक पांशुज लोहो श्यामिद नामक पदार्थ थे, बोदिया। फिर क्या था, थोड़े ही देरमें निर्जीव वृक्ष उगने लगा। इस वृक्षकी वृद्धि अन्दरसे होती थी न कि बाहरसे।

इन सब बातोंसे स्पष्ट है कि निर्जीव सजीव पदार्थोंमें कोई विशेष भेद नहीं है। वस्तुतः मनुष्य और एक छोटेसे कीटाणुमें जीवनका जितना अन्तर है, उतना ही अन्तर निर्जीव कहे जानेवाले पदार्थों और इन कीटाणुओंमें भी है। कलोद (Colloid) रसायनपर अनेक प्रयोग करके डा० नीलरत्नधर प्रभृति रसायनाचार्योंने यह दिखा दिया है कि निर्जीव पदार्थोंमें भी जीर्णावस्था और मृत्यु मानी जा सकती है। पुराने निर्जीव पदार्थोंमें क्रियाशील शक्ति कम होती है, पर नये बनाये गये निर्जीव पदार्थ अधिक क्रियावान होते हैं। इस प्रकार निर्जीव और सजीव जगत्की शारीरिक प्रक्रियाओंमें इतना भेद नहीं है जितना साधारणतः समझा जाता है।

निर्जीव खनिज पदार्थ बहुधा धातुओंके शैलेत (Silicate) होते हैं, अर्थात् धातु और बालूसे मिलकर बने होते हैं। सजीव पदार्थोंमें बहुधा ये तत्व पाये जाते हैं:—कर्बन, उदजन, ओषजन और नोषजन, ये चार बहुत अधिक मात्रामें तथा हरिन्, गन्धक, स्फुर, पांशुजम्, सैन्धकम्, मगनीसम्, लोहम्, तथा खटिकम् धातुयें थोड़ीसी मात्रामें। अन्य तत्व बहुत ही थोड़ी मात्रामें होते हैं। आदि कालके सबसे पहले सजीव पदार्थोंमें तो केवल कर्बन, उदजन और ओषजन ही मुख्यतः था। यह आदि सजीव पदार्थ लचीला, और नरम था और पानीके साथ मिलकर जेलीके समान लचीली वस्तु देता था। जेली वैसलीनके समान पदार्थका नाम है।

आरम्भमें पृथ्वीका पृष्ठतल गरम और नम था, और यह अतिघने वायुमंडलसे घिरा हुआ था। इस वायुमंडलमें वाष्प, और कर्बन द्विओषिद्के बादल इस प्रकार घिरे हुए थे कि पृथ्वीके पृष्ठतलपरकी परिस्थिति बहुत कम परिवर्तित होती थी। दिन और रातमें एक ही ताप-क्रम रहता था। यही नहीं बल्कि वर्षकी प्रत्येक ऋतुमें भी ताप-क्रममें कोई भेद न पड़ता था। भूमिकी ऐसी विचित्र अवस्था थी। वायुमंडलमें अनेक अस्थायी संकीर्ण पदार्थ कर्बन, नोषजन और स्फुर तत्वोंसे बन रहे थे। पृथ्वीके तालाबोंके पानीमें भी इन पदार्थोंका संपृक्त घोल विद्यमान था। इन तालाबोंके किनारे जो कीचड़ था वह आरम्भिक जीवनके लिये सबसे उपयुक्त था, क्योंकि यहाँकी जलवायु और तापक्रम बहुत स्थायी था। कीचड़के नरम होनेके कारण आरम्भिक जीवनोत्पादक जेलीके आश्रयके लिये यह स्थान सर्वथा योग्य था। ऐसी अवस्थामें वायुमण्डलसे कर्बन आदि तत्वोंका बना हुआ वैसलीनके समान लचलचा पदार्थ इस पंकमयी भूमिमें अवतरित हुआ। यहाँ आकर यह नोषजन, हरिन, स्फुर आदि तत्त्वोंसे बने हुए यौगिकोंसे धीरे धीरे संयुक्त होने लगा, यही जीवनके अवतारकी कहानी है।

यह जेली पदार्थ कीचड़मेंसे अपना भोजन प्राप्त करने लगा, अनेक तत्त्वोंसे संयुक्त होकर बढ़ने लगा। एक विशेष सीमा तक इसमें वृद्धि हुई। फिर इसके दो या अधिक टुकड़े होगये। अनेक रासायनिक प्रक्रियाओंके कारण इनमें क्रियाशील शक्ति उत्पन्न होने लगी। धीरे धीरे चेतनताके लक्षण

स्पष्ट दिखाई देने लगे। पर अभी यह चेतनता केवल रासायनिक चेतनताके अतिरिक्त और कुछ न थी। अभी इसमें जीवनके चिह्न प्रकट होने आरम्भ नहीं हुए। इस प्रकार जो पदार्थ बना उसे **'आदि जीवनाणु'** (Protobion) कहना चाहिये।

रसायनशास्त्रके विद्यार्थी यह जानते हैं कि कभी कभी ऐसा होता है कि यदि दो पदार्थोंके बीचमें कोई प्रक्रिया आसानीसे न होती हो और यदि उसमें कोई तीसरा पदार्थ बहुत सूक्ष्म मात्रामें डाल दिया जाय तो प्रक्रियाकी गति बहुतही बढ़ जाती है। और साथ साथ विशेषता यह है कि इस तीसरे पदार्थमें स्वयं कुछ परिवर्तन नहीं होता है। ऐसे पदार्थोंको उत्प्रेरक (Catalyser) कहते हैं। पांशुजहरेत (पोटाशक्लोरेट) को गरम करनेसे ओषजन बड़ी कठिनतासे निकलता है, पर यदि इसमें थोड़ासा मांगनीज़ द्विओषिद डाल दिया जाय तो प्रक्रिया बहुत शीघ्र होने लगती है। यहाँ मांगनीज़ द्विओषिद उत्प्रेरकका काम करता है। इन उत्प्रेरकोंके तीन गुण होते हैं:—

(१) ये प्रक्रियाओंकी गतिको बहुत बढ़ा देते हैं, और इनकी उपस्थितिमें दो पदार्थोंके बीचमें संयोग आसानीसे होने लगता है।

(२) इनकी बहुत कम मात्राके उपयोगसे ही काम चल जाता है।

(३) इनमें स्वयं कोई परिवर्तन नहीं होता है, यद्यपि ये अन्य पदार्थोंके परिवर्तनमें सहायक होते हैं।

सजीव पदार्थोंकी चेतनता अथवा क्रियाशीलताका आरम्भ भी इन्हीं उत्प्रेरक पदार्थोंपर निर्भर है। आरंभमें इस आदि जीवनाणुको भी इन्हें उत्प्रेरकोंका आश्रय मिला। कीचड़में अनेक प्रकारके पदार्थ उपस्थित थे जहाँ पर जीवनका प्रथम अवतार हुआ। इनमेंसे कुछ पदार्थोंने उत्प्रेरकका काम किया जिनके कारण प्रक्रियायें शीघ्र होने लगीं। इसका प्रभाव यह हुआ कि जीवनाणुकी सामर्थ्य और कार्य्यकारिणी शक्ति बढ़ने लगी। इसी सामर्थ्यसे जीवनाणुका विभाजन हुआ। एक अणुसे दो अणु बने। ये फिर बढ़ने लगे। दोसे चार हुए; चारसे आठ; और आठसे सोलह, धीरे-धीरे ये इतने समर्थ हो गये कि एकके तीन-तीन, चार-चार टुकड़े होने लगे। इस प्रकार कालान्तरमें असंख्य जीवनाणुओंकी सृष्टि हो गई।

वनस्पतियोंका विकास

[ले० 'अज्ञात']

नस्पतियों और प्राणियों दोनोंमें ही जीवन है, जीवनसे तात्पर्य्य यह है कि ये सब अपने शरीर-निर्माणके लिये भोज्य पदार्थोंका ग्रहण करते हैं और उन्हें परिवर्तित करके अपने शरीरकी वृद्धिकर लेते हैं; इसी भोजनसे वे अपने शरीरकी रक्षा करते हैं, और सदा हरे अथवा जीवित रहते हैं। वृक्षोंकी आयु मनुष्यों अथवा अन्य प्राणियोंकी अपेक्षा बहुत अधिक भी हो सकती है। छोटे पशुओंसे लेकर भीमकाय हाथी तक सौ-दोसौ वर्षसे अधिक जीते नहीं पाये जाते हैं, कुछ पशु केवल चार-पांच या आठ-दस वर्षमें ही अपनी जीवनयात्रा समाप्त कर देते हैं। बरसाती कीड़े-मकोड़े तो और भी अल्पकालीन होते हैं। इतना ही नहीं, इस सृष्टिमें ऐसे भी जीव हैं जो प्रातः उत्पन्न होते, और दोपहर तक प्रौढ़ावस्थाको प्राप्त होकर सायंकाल तक मृत्युके ग्रास हो जाते हैं।

पर बहुतसे वृक्ष ऐसे अवश्य हैं जो कई सौ वर्ष जीवित रह सकते हैं। पीपल, बढ़ आदिके अति

वृद्ध वृक्ष प्रत्येक नगरमें देखनेको मिल सकते हैं। गौतम बुद्धके जीवनकालका बोध-वृक्ष अब भी बुद्ध-गयामें अपने प्राचीन इतिहासके स्मरण-रूप खड़ा हुआ है। जंगलोंमें इसी प्रकारके अनेक वृक्ष मिलेंगे जिनका जन्म आजसे कई शताब्दी पूर्व हुआ था।

पर बागके माली इस बातको भी जानते हैं कि अनेक पौधे थोड़े ही वर्ष जीवित रह सकते हैं। किसान जिस अन्नको बोता है, वह कुछ सप्ताहके पश्चात् अंकुर रूपमें निकल आता है। फिर धीरे-धीरे थोड़े दिनोंमें ही बढ़कर एक छोटासा पौधा हो जाता है। समय पाकर कुछ महीनोंमें ही इसमें फूल और अन्न आने आरम्भ हो जाते हैं। आठ-दस महीनेमें ही खेती लह-लहाने लगाती है। पर इसके बाद दाना पकने लगता है और साथ-साथ पौधा भी सूखने लगता है। एक सालका गेहूँका पौधा दूसरे साल गेहूँ नहीं देता है। यही हाल अन्य अन्नोंका भी है। प्रति वर्ष नये बीज बोने पड़ते हैं। पर अमरूद और आमके पेड़ोंमें दो-तीन वर्षके बाद फल लगने आरम्भ होते हैं, और फिर लगाभग प्रति वर्ष ही इनमें कुछ न कुछ फल आया करते हैं।

पेड़ या पौधे कई प्रकारके होते हैं। सबने देखा होगा कि बहुतसे पेड़ आम, जामुन, नीम, बरगद, पीपल आदिके समान होते हैं। कुछ पेड़ ताड़ या नारियलके समान छत्राकार होते हैं। इनके नीचे एक लम्बा मोटा पत्र-रहित तना होता है और कई गज की ऊँचाईपर कुछ कटे हुए पत्ते आते हैं और वहीं उनके फल होते हैं। केले या बांसके पेड़में यद्यपि इस प्रकारके छत्र नहीं होते हैं, प्रत्युत इनमें भी लगभग पत्र-रहित लम्बा तना होता है। कुछ पेड़ पुच्छाकार होते हैं। इनकी पेंदीके निकटसे ही कुछ विचित्र शाखें ऊपरको निकलनी आरम्भ होती हैं जो चंवर अथवा घोड़ेकी पूँछका रूप धारणकर लेती हैं। बागमें फूलोंके पौधे और ही प्रकारके होते हैं। इनके अतिरिक्त अनेक लतायें भी तो होती हैं जो पेड़ों, खिड़कियों, और छप्परोंपर चढ़ा दी जा सकती हैं। इनमेंसे बहुतसी लताओंमें तो इतने बड़े बड़े फल आते हैं जितने दृढ़ वृक्षोंमें भी नहीं लगते। लौकी, खीरा, ककड़ा, खरबूजा, तरबूज, कुम्हड़ा, तोरई आदि फल इन बेलोंमें लगते हैं। सिंघाड़ेकी लता पानीपर ही फैलती है।

पौधे या पेड़ोंके बोनेकी कई विधियाँ हैं। कुछ पौधे तो फलोंके बीजको मुलायम मिट्टीमें बोनेसे उगने लगते हैं। आम, गेहूँ, चना, आदि ऐसे ही हैं। कुछ पौधोंकी कलमें लगाकर भी काम चल सकता है। कलमी आम लोगोंने खाये होंगे। गुलाबका पौधा भी कलम लगानेसे उग सकता है। इसकी किसी उचित हरी डंडीको दूसरे स्थानमें गाड़नेसे यह थोड़े दिनोंमें सुन्दर पौधा बन जाता है। बहुतसे पौधे सूखे फूलोंको ज़मीनपर छितरा देनेसे ही उगने लगते हैं। गेंदेके फूलको मिसलकर धरतीपर छितार दो। थोड़े समयके बाद यह पौधा उगने लगता है।

इस पृथ्वीपर पौधों और वृक्षोंकी कितनी जातियाँ हैं, यह कहना अत्यन्त ही कठिन है। एक-एक जातिकी बहुतसी उपजातियाँ भी हैं। कई प्रकारके आम, कई प्रकारके बेर और कई प्रकारके खरबूज़े देखे होंगे। बगीचोंमें कई प्रकारके गुलाब, और कई तरहके गेंदे देखनेमें आते हैं। इस प्रकार कौन कह सकता है कि इस भूमण्डल पर कितने प्रकारकी जातियाँ और उपजातियाँ वृक्ष और अन्य वनस्पतियोंकी विद्यमान हैं। पत्थर पर लगी हुई काई भी तो एक भाँतिका विचित्र पौधा ही तो है। बहुतसे जन्तुओंका जीवन इसी पदार्थ पर निर्भर है।

अच्छा, पेड़ोंमें क्या होता है, यह भी तो सोच लेना चाहिये। साधारणतया ऊपरसे देखनेपर पेड़में मानो छाल, डंठल, पत्ते, फल, फूल ही दिखाई देते हैं। पर एक पत्तेके अन्दर और फूलोंकी

प्रत्येक पंखड़ीमें कितना सौन्दर्य्य भरा हुआ है, इसका तो अनुमान कीजिये। पत्तोंमें किस प्रकार छोटे छोटे छिद्र और नसें हैं। उनको तो सोचिये। इस पौधेके तनेके भीतर हमारे शरीरकी रुधिर-वाही नसों और सूक्ष्म नालियोंके समान इनमें भी लाखों नलिकायें होती हैं जिनमें होकर इनका जीवनरस प्रवाहित होता रहता है। वृक्ष भी पशुओंके समान अन्न और वायु ग्रहण करते हैं।

वृक्ष अपना भोजन जड़ों द्वारा जमीनसे लेते हैं। पर तो भी इसका मुख्य भाग इनको इस वायुमण्डलसे मिलता है। किसी वृक्षकी सूखी लकड़ीको जलाकर देखिये तो पता चल जायगा कि इसमें कितना कोयला होता है। क्या यह कोयला वृक्षको पृथ्वीसे प्राप्त होता है? कदापि नहीं, क्योंकि सब स्थानाकी मिट्टीमें कोयलेकी खान तो होती नहीं हैं। मिट्टीसे भी कोयला नहीं बन सकता है। आप मिट्टीको चाहें जितना गरम करें, या जलायें इसका कोयला न मिलेगा शुद्ध। मिट्टीको आप गमलेमें रख देते हैं, और पानी डालते हैं, फिर इसमें बीज बो देते हैं। थोड़े समयके उपरान्त यह बीज एक छोटासा पौधा बन जाता है। यह पौधा सूख जाने पर यदि धीरे धीरे जलाया जाय तो फिर कोयला दे देता है। आपने इस पौधेको केवल मिट्टी और पानी दिया था जिसमेंसे किसीमें भी कोयला नहीं है तो फिर इस पौधेको कोयला कहाँसे मिल गया। क्या आप इस बात पर विश्वास कर सकते हैं कि यह समस्त कोयला पौधेको वायुमण्डलसे ही प्राप्त हुआ है। विश्वास करना ही होगा क्योंकि अन्य किसी स्थानसे पौधेके पास यह कोयला पहुँच ही नहीं सकता है।

आप देखते होंगे कि पीपल, आम, नीम, बबूल, इमली आदिके वृक्षोंमें कितना कोयला विद्यमान है। क्या यह सम्भव है कि यह समस्त कोयला वृक्षोंको इस वायुमण्डलमें ही प्राप्त हुआ है? पर बात ऐसी है। वायुमण्डलकी वायुमें चार चीजें मुख्य हैं। एक तो ओषजन (आक्सीजन) जिसके कारण हमारा जीवन सम्भव है, दूसरी नोषजन (नाइट्रोजन) जो ओषजनके तीव्र और उग्र दाहक गुणको मन्द और धीमा करदेती है। तीसरी चीज़का नाम कर्बन-द्वि-ओषिद है जो कोयला और ओषजनसे मिलकर बनी है। चौथी चीज़ जलके वाष्पमय कण हैं।

भट्टियोंमें, और रोटी पकानेके चूल्होंमें कई मन लकड़ी प्रति मास प्रत्येक घर या दूकानमें जल जाती है। इंजनोंमें कितने सहस्र मन कोयला प्रतिदिन जलता रहता है। यह कोयला जल कर कहाँ चला जाता है। कोई भी चीज़ सर्वथा नष्ट नहीं हो सकती है। उसका केवल रूप ही परिवर्तित हो सकता है। यह कोयला जिसे हम जलाते हैं, वायुके ओषजनसे संयुक्त होकर एक गैस बनाता है जिसे कर्बनद्विओषिद कहते हैं। इस गैसके कोई रंग या रूप नहीं होता है, अतः कोयलाके जलनेके बाद जब यह गैस बनी और वायुमें पहुँच कर मिल गई तो चाहें कितनी भी अधिक मात्रामें यह उपस्थित क्यों न हो, इसे हम नहीं देख सकते हैं। इस प्रकार हमने यह देख लिया कि कोयला जल कर (अथवा यों कहिये कि वायुको ओषजनसे संयुक्त होकर, वायुमें प्रविष्ट हो जाता है।

जिस रोटीको हम खाते हैं, उसमें भी तो बहुत सा कोयला विद्यमान है। जब रोटी सेंकते समय आगमें जल जाती है तो कोयला बन कर काली पड़ जाती है, इससे स्पष्ट है कि हमारे आटामें भी कोयला है। यही हाल चावल, दाल और तरकारीका भी है। सबमें कोयला ही कोयला विद्यमान है। इन पदार्थोंके भोजन करनेका एक प्रकार तात्पर्य्य यही है कि हम भी प्रति दिवस उसी प्रकार कोयला खाते हैं, जिस प्रकार रेलगाड़ीका इंजन। यह भोजन शरीरके अन्दर पहुँचता है और हम इसके जलानेके लिये वायु श्वास द्वारा शरीरमें पहुँचाते हैं। जब हम सांस बाहरफेंकते को

हैं, तो इस सांस द्वारा कर्बनद्विओषिद बाहर निकल आता है सांसका बाहर फेंकना उसी प्रकारका है जैसे इंजनसे धुएँ का निकलना। कहनेका तात्पर्य्य यह है कि प्रतिदिवस हज़ारों मन कोयला भोजनके रूपमें या ईंधनके रूपमें खर्च होता है और खर्च होनेका मतलब ही यह है कि हवाके ओषजनसे संयुक्त होकर यह कर्बनद्विओषिद बना देता है। यह कर्बन द्विओषिद वायुमें फैल जाता है।

इस से यह बात समझमें आ जावेगी कि वायुमें कोयला कर्बनद्विओषिदके रूपमें विद्यमान है। अब सवाल यह है कि पेड उस कर्बन द्विओषिदको किस प्रकार ग्रहण करते हैं और फिर वे किस प्रकार इससे कोयला पृथक् करते हैं। पशुओं और वनस्पतियोंके जीवनमें एक बड़ा भेद है, वह यह कि पशु सदा श्वासद्वारा ओषजन शरीर के अन्दर ले जाते हैं और यह ओषजन उनको जीवनशक्ति प्रदान करता है। प्रश्वास द्वारा पशु कर्बनद्विओषिदको बाहर फेंकते हैं। कर्बनद्विओषिद पशुओंके जीवनके लिये हानिकारक है। यदि किसी जानवर या मनुष्यका ही क्यों न, किसी बन्द कमरेमें जिसमें कर्बनद्विओषिद भरा हो क़ैद करदें तो वह कुछ समयके पश्चात् मर जावेगा।

पर वनस्पतिकी अवस्था विलक्षण है। दिनको सूर्य्यके प्रकाशमें ये कर्बनद्विओषिदसे ही अपना जीवन प्राप्त करते हैं। पौधोंके हरे पत्ते सबने देखे होंगे। इन पत्तोंमें एक हरा पदार्थ होता है जिसे पर्णहरित या क्लोरोफिल कहते हैं। इस हरे पदार्थकी सहायतासे पौधे कर्बनद्विओषिदको सूर्य्यके प्रकाशमें कर्बन और ओषजनमें विभाजित कर देते हैं। इस मुक्त कर्बन या कोयलेसे ही उनके शरीरका निर्माण होता है, शेष रहा ओषजन, उसे ये प्राणियों और पशुओंके लाभके लिये बाहर फेंक देते हैं। इस प्रकार जो वायु हमारे लिये दूषित है वह वनस्पतियोंके लिये लाभप्रद हो जाती है। एक का दूसरेसे काम निकलता रहता है। यह स्मरण रखना चाहिये कि इस प्रकारकी प्रक्रियाओंके लिये सूर्य्यके प्रकाशकी बड़ी आवश्यकता है। यदि सूर्य्य का प्रकाश न हो तो वनस्पति बहुत शीघ्र ही मुर्झाने लगेंगी। इस प्रकाशकी विद्यमानतामें ही वे कर्बनद्विओषिदसे कर्बन और ओषजन पृथक् कर सकती हैं। रातको अँधेरेमें वनस्पतियाँ भी ओषजन ही ग्रहण करती और कर्बनद्विओषिद विसर्जित करती हैं, अतः रातको पेड़ोंके नीचे सोना हानिकर बताया गया है।

क्या यह भी जान लेना चाहिये कि इन वनस्पतियों का जन्म किस प्रकार हुआ। सृष्टिके इतिहास के किस कालमें इनकी उत्पत्ति हुई, यह कहना तो बहुत ही कठिन है। यह ठीक है कि पशुओंके अति प्राचीन अस्थिपिंजर पदार्थ चट्टानोंके बीचमें या भूमिके गर्भमें प्राप्त हो जाते हैं, पर पुरातन कालीन वृक्षोंके ऐसे चिह्न बहुत कम प्राप्त होते हैं। इसका कारण यह है कि प्राणियोंकी हड्डियां वनस्पतियोंकी लकड़ियों या ठठरियोंकी अपेक्षा कहीं अधिक स्थायी हैं अतः उनका सुरक्षित रहना भी अधिक संभव है। इसीलिये वृक्षोंके प्राचीन अस्थिपिंजर या अवशेषबहुत कम पाये जाते हैं।

यह अवश्य है कि कहीं कहीं चट्टानों पर पुराने वृक्षोंके पत्तों या डालियोंकी छाप अवश्य कुशलपूर्वक सुरक्षित हैं। ये छापें किस प्रकार बनती हैं? मान लीजिये कि किसी पुराने वृक्षकी डाल या पत्ता दो चट्टानोंके बीचमें दब गया। पत्तों और डालियोंमें हमारे शरीरके समान नसें होती हैं। मज़बूत नसें अन्य भागोंकी अपेक्षा अधिक कठोर होती हैं। मान लीजिये कि सम्पूर्ण पत्ता तो पहले नष्ट हो गया और उसकी कुछ नसें बनी रहीं। यदि नष्ट भागमें धूल या मिट्टी भर जाय और बादको नसें भी नष्ट हो जायँ तो नसोंके खाली स्थानकी वजहसे एक स्पष्ट चित्र बन जावेगा। इस प्रकारके चित्रोंको ही छाप कहते हैं, और संग्रह करके इन छापोंको

अध्ययन करनेसे हम पुराने वृक्षोंके विषयमें बहुत कुछ जान सकते हैं।

वनस्पति शास्त्र के विद्वानोंकी कल्पना है कि सबसे पहले एक-कोष्ठक पौधा जिसे प्रोटोकोकस कहते हैं, पैदा हुआ होगा। यह पौधा आजकल भी पाया जाता है। यदि किसी हड्डीको तोड़ कर देखें तो आपको उसके भीतर अनेक छोटी छोटी कोठरियां दिखाई देंगी। उन कोठरियों को कोष्ठ कहते हैं। ऐसे ही कोष्ठ या छिद्र वनस्पतियों में भी होते हैं। बड़े बड़े पौधों और वृक्षोंमें तो असंख्य कोष्ठ होते हैं जिनको गिना भी नहीं जा सकता है। इस एक-कोष्ठक या प्रोटोकोकस पौधेमें केवल एक ही कोठरी होती है। अतः इससे सूक्ष्म और पौधा मिलनाही असंभव है। यह पौधा जलमें पाया जाता है। इसमें एक कोष्ठ होता है जिसमें प्रोटोप्लाज़्म (कललरस), एक केन्द्र और थोड़ा सा हरा रंग होता है। थोड़े
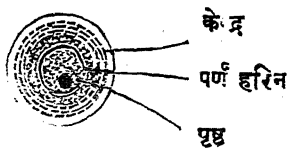
दिनों के पश्चात् इसके केन्द्र से चार कोष्ठों का जन्म होता है। जो कुछ समय तक तो उस एक-कोष्ठके अन्दर ही बन्द रहते हैं, पर बादको बाहर निकल आते हैं। इस प्रकार एक प्रोटोकोकससे चार प्रोटोकोकसोंका जन्म हो जाता है और यह प्रक्रिया निरन्तर ऐसी ही चलती रहती है। जहाँ पहले एक प्रोटोकोकस था वहाँ अब सहस्रों हो जाते हैं।

कभी कभी ऐसा भी हो सकता है कि एक प्रोटोकोकसके भीतर चार कोष्ठोंका जन्म तो हुआ पर परिस्थिति अनुकूल न होनेके कारण ये कोष्ट की दीवार खोलकर बाहर न निकल पाये। इसका प्रभाव यह होगा कि ये चारों कोष्ठ उस मुख्य कोष्ठके अन्दर ही स्थायी हो जावेंगे। इस प्रकार एक और जातिका पौधा बन जावेगा। एक कोष्ठ के पौधेसे अब चतुर्कोष्ठक पौधेकी उत्पत्ति होगई। अब इस पौधेको भविष्यमें सन्तानें होंगी उनमें प्रत्येक-में चार कोष्ठ मिलेंगे। पर विकासका क्रम इसी प्रकार परिस्थितिके अनुसार और आगे भी बढ़ सकता है। मान लीजिये कि यह चतुर्कोष्ठक पौधा भी एक साथ चार अपनी सी सन्तानें उत्पन्न करता है। जन्म होनेके पश्चात् कुछ समय तक ये चारों उस मुख्य पौधेके गर्भमें ही रहेंगे यदि परिस्थिति अनुकूल हुई तो ये बाहर निकल कर पृथक् चार सन्तानें हो जावेंगी। पर कभी कभी ऐसा भी हो सकता है कि परिस्थिति अनुकूल न हो। ऐसी अवस्थामें चारों अन्दर ही रहजावेंगी और अब सोलह कोष्ठ वाली जातिका एक नया पौधा तैयार हो जायगा। इस क्रमको और आगे चलाने से हमारी समझमें यह आ सकता है कि किस प्रकार आरम्भमें एक कोष्ठक पौधेका जन्म हुआ और वह बादको विकासके नियमानुसार भिन्न भिन्न परिस्थितियोंमें अनेक जातियोंके पौधोंमें परिणत होगया।

यद्यपि अति प्राचीन पौधे इस समय अपने प्रारम्भिक रूपमें इस समय नहीं पाये जाते हैं पर यह बात निस्सन्देह है कि प्रारम्भमें पौधे का जन्म जलके भीतर ही हुआ था। पानीमें उत्पन्न होने वाले सूक्ष्म पौधे अलगाई (algae) कहे जाते हैं उसी प्रकार थल पर पाये जाने वाले पौधोंमें सबसे आरम्भकी फफूँदी (fungi) हैं। इन पौधोंमें न तो तना ही होता है और न पत्ते ही। सम्पूर्ण शरीर छोटे छोटे कोष्ठोंका बना होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि एक कोष्ठ पौधों (प्रोटोकोकस) के जन्म के बाद बराबर इन अलगाई और फफूँदियोंसे ही पृथ्वीका धरातल आवृत्त था, और लाखों वर्ष तक इस पृथ्वी पर इसके अतिरिक्त और कोई पौधा ही न उगा। पृथ्वीकी आधीसे अधिक आयु ऐसे ही बीती। इस समयक जितने

पशुओंके अवशेष पाये जाते हैं वे अधिकतर जलके ही निवासी हैं, जिससे स्पष्ट है कि इस समय स्थल भाग प्राणियोंके निवासके अनुकूल न था।

इन अलगाइयोंसे ही अनेक पौधोंका जन्म हुआ। आजकल भी ये समुद्रों और अन्य जल-स्थानोंमें पाये जाते हैं। इनकी स्वयं भी अनेक जातियाँ होती हैं जो भिन्न भिन्न रूपकी होती हैं। तालाबों और खाइयोंमें तो ये थोड़ी ही मात्रामें पाये जाते हैं पर अटलांटिक महासागरमें तो इनका ४०००० वर्ग मीलके क्षेत्र फलमें फैला हुआ घना जंगलका जंगल है। भूगर्भवेत्ताओंका विश्वास है कि प्राचीन समुद्रोंमें इससे भी बड़े बड़े जंगल विद्यमान थे।

फफूँदियाँ भी अलगाइयोंके समान सूक्ष्म वानस्पतिक पदार्थ हैं। इन दोनोंमें भेद केवल यही है कि फफूदियोंमें पर्णहरिन् अर्थात् हरा रंग नहीं होता है। यह बहुत कुछ सम्भव है कि अलगाइयोंसे ही फफूँदियोंका विकास हुआ हो। और भिन्न-भिन्न परिस्थितियोंके कारण दोनोंमें कुछ भेद हो गये हों।

पहाड़ोंकी शिलाओंपर भी इसी प्रकारके वानस्पतिक पदार्थकी तह जमी हुई पायी जाती है जिसे हम शिला-वल्क (lichen) कह सकते हैं। कभी-कभी तो मोटे वृक्षोंके तनोंपर भी इस प्रकारके पदार्थ जमे हुए पाये जाते हैं। ये शिलावल्क या लिचेन अलगा और फफूँदी दोनोंसे मिलकर बने हुए हैं। लिचेन में दोनों इस प्रकारसे एक दूसरेसे आबद्ध हो गये हैं कि साधारण दृष्टिसे तो यही प्रतीत होता है कि एक तीसरी ही वानस्पतिक जाति उत्पन्न हो गई है। इसीलिये इन दोनोंके मिश्रणका अलग नाम शिलावल्क दे दिया गया है।

प्रोटोकोकससे लेकर फफूँदी और अलगा एवं लिचेन तक सब वानस्पतिक पदार्थोंमें न तो पत्ते होते हैं, न डंठल और न तने। इनके पश्चात् जिन वनस्पतियोंका जन्म हुआ उन्हें सेवार (शेवाल) और पुच्छवृक्ष (बहु पत्रक वृक्ष) कहते हैं। जिस समय पृथ्वीमें कोयलावाली शिलायें बनीं उस समय यह भूमण्डल इन्हीं दोनोंसे आवृत्त था। यह स्मरण रखना चाहिये कि इस समय पृथ्वी इतनी कठोर न थी जितनी आज-कल है। सब जगह दल-दल और लचलची मुलायम ज़मीन थी। इसमें घोड़ेकी पूँछके समान लम्बे-लम्बे पौधे उगने आरम्भ हुए। इनमेंसे कुछकी लम्बाई तो इतनी अधिक थी जितनी तिमंज़िले या चौमंज़िले मकानोंकी ऊँचाई होता
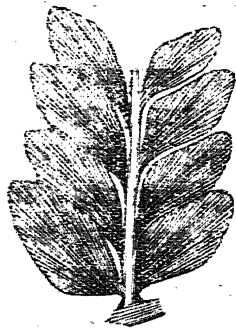
बहुपत्रक या फर्न
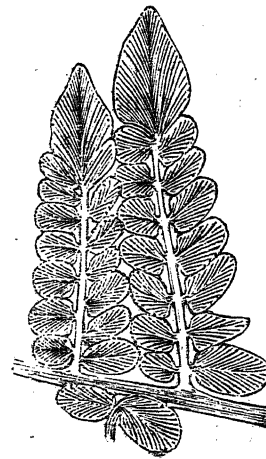
है। कुछ पौधे जिन्हें फर्न कहते हैं बहुत ही घने पत्तोंके ऐसे समूह थे जैसे घोड़ेकी पूँछके चँवर होते हैं। पर इनकी ऊँचाई आजकलके बड़े-बड़े वृक्षोंसे भी अधिक थी। ऐसे फर्न-वृक्षों (बहुपत्रकों) के जंगलके जंगल फैले हुए थे। पीछे दिये गये दोनों चित्रोंसे इन फर्न-वृक्षोंके रूपका कुछ अनुमान हो सकता है।

यह कहा जा चुका है कि इन फर्नवृक्षोंके समय की पृथिवी एक प्रकारसे दलदल ही थी। पतझड़की ऋतुमें इनकी पत्तियां झड़ कर ज़मीन पर गिर पड़ती थीं और दलदल मिट्टीमें धँस जाती थीं। इस दलदल भूमिके समीप ही समुद्र थे जिनकी लहरें इस स्थान पर टक्कर मारा करती थीं। मिट्टी अधिक कठोर तो थी ही नहीं जो समुद्रकी लहरोंका आघात सह सकती। अतः समुद्रके नीचे यह थल भाग दबने लगा। समस्त फर्नवृक्षोंका सघन-वन समुद्रमें परिप्लावित हो गया। दूर देशकी नदियोंने कंकड़-पत्थर, बालू, मिट्टी आदि पदार्थ लाकर इस समुद्र को फिर पाटना आरम्भ किया, दलदल स्थान जो समुद्रमें डूब गया था, थलरूपमें फिर निकल आया, पर वह फर्न-वृक्षोंका वन इस थल-भागके गर्भमें ही विलुप्त हो गया। पृथ्वीके इतिहासमें इस प्रकारका जल-थल विनिमय न जाने कितनी बार हुआ होगा। और प्रत्येक अदल बदलमें फर्न-वृक्षोंके अनेक जंगल ज़मीनमें दब गये।

इन दबे हुए जंगलोंका क्या हुआ? इसका उत्तर बहुत ही सरल है। जिस प्रकार लकड़ीको धीरे धीरे जलानेसे कोयला बनता है, उसी प्रकार इन जंगलोंकी लकड़ी, घास-फूस, आदि का कोयला बनना आरम्भ हुआ भूमण्डलके अन्दर कोयलेकी जो इतनी विस्तृत खानें पायी जाती हैं, वे इन पुराने फर्न-वृक्षोंके जंगलोंकी ही परिवर्तित रूप हैं। यदि सृष्टिके इतिहासमें इन फर्न-वृक्षोंका कोई समय न आता तो हमें कोयलेके लिये तरसना पड़ता और बिना कोयलेके आजकल कोई भी काम होना असम्भव है, यह सभी जानते हैं। अगर आपको विश्वास न हो कि कोयला इन्हीं फर्न-वृक्षोंसे बना है तो किसी कोयलेकी खानमें चले जाइये। खानमें काम करनेवाले लोग आपको कोयलेके ऐसे टुकड़े दे सकेंगे जिनपर फर्न-वृक्षोंके पत्तोंकी स्पष्ट मुहर लगी होगी जिस पर आपको विश्वास करना ही होगा।

इन पुच्छाकार वृक्षों, सेवारों और फर्नोंके पश्चात् छत्राकार वृक्षोंको जन्म हुआ। आपने देवदार, ताड़, खजूर, नारियल, अंडी आदिके वृक्ष देखे होंगे। इनके शिर पर एक छत्र होता है। आजकल ऐसे वृक्षोंकी बहुत थोड़ी ही जातियाँ पायी जाती हैं, पर एक समय था जब इनकी अनेक जातियाँ पृथ्वी पर उपस्थित थीं। उस समय फूलवाले पेड़ बहुत ही कम थे। सब जगह देवदारकी जातिके वृक्षोंके घने जंगल पाये जाते थे।

इनके पश्चात् फूल लगने वाले वृक्षोंका जन्म हुआ। इस समय पृथ्वीकी अवस्था अधिक स्थायी हो चुकी थी, पशुओं और प्राणियोंका जन्म होना भी आरम्भ होगया था। उनके जीवनके लिये भोज्य पदार्थोंकी आवश्यकता थी। यह भोजन उन्हें वनस्पतियोंके फल-फूलोंसे ही प्राप्त हो सकता था। पृथ्वी पर ऋतुएं भी नियमानुसार होने लगी थीं। इस अवस्थामें फल-फूलों वाले सुन्दर और उपयोगी वृक्षोंका जन्म हुआ।

सबसे पहले जलमें वनस्पतियोंकी सृष्टि हुई और एक-कोष्ठक पौधे (प्रेटोकोकस) उत्पन्न हुए, इनसे फिर बहु कोष्ठकों की सृष्टि हुई। फफूँदी, अलगा, लिचेन आदिसे पृथ्वी आवृत्त होगई। इनके पश्चात् पुच्छाकार बहुपत्रक वृक्ष, सेवार-फर्न, आदि उत्पन्न हुए। इनके समयके उपरान्त छत्राकार वृक्ष जैसे देवदार आदि सृष्टिको सुशोभित करने लगे। और अन्तमें फल-फूल वाले वृक्षों और सुन्दर पौधोंकी रचनाकी गई। परमात्माकी इस

अलौकिक सृष्टिमें इस प्रकार वनस्पतियोंका अवतार हुआ।

परिमाण क्रिया सिद्धान्त

[Law of mass action]

[ले० श्री वा० वि० भागवत, एम० एस-सी०]

[२]

रिमाण क्रियाका सिद्धान्त यह है कि, प्रत्येक वस्तुकी प्रक्रियाकी गति उसके 'सचेष्ट परिमाण' (active mass) के समानुपाती हैं। जब दो विरुद्ध प्रक्रियायें समान गतिसे होने लगती हैं तब रासायनिक साम्यावस्था स्थापित होती है, क्योंकि एक दिशाकी प्रक्रियाका प्रभाव दूसरी विरुद्ध दिशाकी प्रक्रियाके प्रभावसे शिथिल पड़ जाता है।

परिमाण क्रियाका सिद्धान्त गत्यर्थक आणविक सिद्धान्तों तथा तापगति विज्ञानके सिद्धान्तों दोनोंसे ही सिद्ध किया जा सकता है। हम यहाँ ताप-गति-विज्ञानको छोड़ देंगे और गत्यर्थक सिद्धान्तके आधार पर ही इसकी विवेचना करेंगे।

यह कहा जाचुका है कि प्रक्रियाकी गति पदार्थके 'सचेष्ट' परिमाण पर निर्भर है। इस 'सचेष्ट' शब्दका क्या तात्पर्य है, यह समझनेकी आवश्यकता है। इसके समझनेके लिये गैसोंकी प्रक्रियाओंका उदाहरण देना अति उपयुक्त होगा। यह बादको दिखाया जायगा कि यह बात घोलोंमें भी उपयुक्त हो सकती है। गुलबर्ग और वैगके कथनानुसार 'सचेष्ट परिमाण' का अभिप्राय किसी पदार्थकी 'आणविक शक्ति' से है, अर्थात् एक नियत आयतनमें गैसके कितने अणु स्थित हैं, इससे है, अथवा प्रतिलीटर ग्राम-अणुओंसे है।

कल्पना कीजिये कि किसी तापक्रम पर एक-रस प्रक्रिया हो रही है। मान लीजिये कि क पदार्थका एक अणु ख पदार्थके एक अणुसे मिल कर ग और घ पदार्थोंका एक एक अणु देता है, और ये चारों पदार्थ गैसरूपमें हैं। समीकरण द्वारा इस प्रक्रिया को इस प्रकार लिखेंगे।

$$क + ख = ग + घ।$$
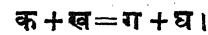
थोड़ी देरके बाद साम्यावस्था स्थापित हो जावेगी अर्थात् क और ख के संयोगसे जितने ग और घ के अणु बनेंगे उतने ही विरुद्ध प्रक्रियामें ग और घ के संयोगसे क और ख के अणु बनेंगे। इस साम्यावस्थाको इस प्रकार दिखाया जासकता हैः—

$$क + ख \rightleftharpoons ग + घ$$
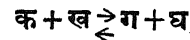
क, ख, ग, और घ की आणुविक शक्ति को क्रमशः $श_{क}$, $श_{ख}$, श , और $श_{घ}$ अथवा [क], [ख], [ग], और $_{ग}$[घ] से साधारणतः सूचित किया जाता है। प्रक्रियामें साम्यावस्था स्थापित होनेके पश्चात् इन्हें क्रमशः $श_{सक}$, $श_{सख}$, $श_{सग}$, और $श_{सघ}$, से सूचित कर सकते हैं अथवा $[क]_{स}$, $[क_{स},]$ $[ख]_{स}$, $ग]_{स}$ और $[घ]_{स}$ से भी सूचित किया जासकता है, (स से तात्पर्य साम्यावस्थासे है।)

जिस गतिसे क और ख परस्परमें प्रक्रिया कर रहे हैं वह इन पदार्थोंकी शक्तिके गुणनफलकी समानुपाती होगी अर्थात् यह गति $श_{सक} \times श_{सख}$ के समानुपाती है। अर्थात्

$$गति = च_{१}\ श_{सक} \times श_{सख}$$

$$अथवा = च_{१}\ [क]_{स} \times [ख]_{स}$$

$च_{१}$ से तात्पर्य्य किसी स्थिर संख्यासे है।

मान लीजिये कि उद्जन और हरिनके समान आयतनोंका मिश्रण लिया गया। प्रति सैकिण्डमें उ$_2$ के एक अणु और ह$_2$ के एक अणुमें कुछ संघर्ष होंगे और ऐसे संघर्षोंमें कुछ उद्जन हरिनसे संयुक्त हो जायगा। अब यदि उद्जनकी मात्रा दुगुनी कर दी जाय तो पहलेकी अपेक्षा दुगुने उद्जन हरिनसे प्रति सैकिण्ड टकरावेंगे। अतः इस समय दुगुना उदहरिकाम्ल, उह, बनेगा। यदि उद्जन की जगह हरिनूकी मात्रा दुगुनी कर दी जाती, तो भी परिणाम यही होता और दुगुना उदहरिकाम्ल बनता अतः यदि उद्जन और हरिन दोनोंकी मात्रायें पहलेकी अपेक्षा दुगुनी करदी जाँय तो उद्जन और हरिनूके अणुओंका संघर्ष-संख्या चौगुनीहो जावेगी और चौगुना उदहरिकाम्ल बनेगा। अतः प्रक्रियाकी गति पदार्थोंकी शक्तिके गुणनफलके समानुपाती है।

ऊपर दिये गये समीकरण

$$\text{क} + \text{ख} \rightleftarrows \text{ग} + \text{घ}$$

में क और ख तुल्य मात्राओंमें एक दूसरेसे संयुक्त होते हैं अर्थात् क पदार्थका एक अणु ख पदार्थके एक ही अणुसे संयुक्त होकर ग और घ का एक एक अणु देता है।

अतः क और ख के कम होनेकी गति=च$_1$ श$_{\text{क}}$ × श$_{\text{ख}}$ और साम्यावस्था पर यह गति=च$_1$ श$_{\text{सक}}$ × श$_{\text{सख}}$।

जिस गतिसे क और ख कम होते हैं उसी गतिसे ग और घ उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार ग और घ के कम होनेकी गति=च$_2$ श$_{\text{सग}}$ × श$_{\text{घ}}$

च$_2$ दूसरी स्थिर संख्या है। साम्यावस्था पर ग और घ के कम होनेकी गति=च$_2$ श$_{\text{स}}$ × श$_{\text{सघ}}$

यह कहा जा चुका है कि साम्यावस्था पर क और ख के संयोगसे जितना ग और घ बनता है उतना ही ग और घ के संयोगसे क और ख बनेगा अतः क और ख, तथा ग और घ दोनों युगलोंके कम होनेकी गतियाँ परस्परमें बराबर हैं।

अतः

$$\text{च}_1 \text{श}_{\text{सक}} \times \text{श}_{\text{सख}} = \text{च}_2 \text{श}_{\text{सग}} \times \text{श}_{\text{सघ}}$$

$$\text{अतः} \quad \frac{\text{श}_{\text{सग}} \times \text{श}_{\text{सघ}}}{\text{श}_{\text{सक}} \times \text{श}_{\text{सख}}} = \frac{\text{च}_1}{\text{च}_2} = \text{चा} \cdots (1)$$

चा को साम्यास्था की स्थिरसंख्या कहते हैं। चा के व्युत्क्रम चा$_1$ से भी इसी प्रकार का काम निकाला जा सकता है।

$$\text{चा}_1 = \frac{1}{\text{चा}} = \frac{\text{श}_{\text{सक}} \times \text{श}_{\text{सख}}}{\text{श}_{\text{सग}} \times \text{श}_{\text{सघ}}}$$

इससे यह स्पष्ट है कि चा अथवा चा$_1$ दोनों ही दो गतिस्थिर संख्याओं—च$_1$ और च$_2$ की निष्पत्ति हैं। अर्थात् बायीं ओर से दहिनी ओर जाने वाली प्रक्रिया तथा दहिनी ओर से बायीं ओर जाने वाली प्रक्रियाओं की गति की निष्पत्ति को साम्यावस्था का स्थिर संख्या माना जासकता है। च$_1$ और च$_2$ दोनों तापक्रम के अनुसार परिवर्तित होते रहते हैं और यह भी आवश्यक नहीं है कि समान तापक्रम भेद के लिये दोनों की मात्राओं में समानही परिवर्तन हो अतः चा की मात्रा भी तापक्रम पर निर्भर है। कुछ अवस्थाओं में, विशेषतः द्रवों की प्रक्रियाओं में, चा की मात्रा पर दबाव का भी प्रभाव पड़ता है। इनका विस्तृत उल्लेख यहाँ नहीं किया जा सकता है।

ऊपर दिये गये समीकरण (१) का लघुरिक्थफललेने से

$$\text{लघु श}_{\text{सग}} + \text{लघु श}_{\text{सघ}} - \text{लघु श}_{\text{सक}} - \text{लघु श}_{\text{सख}} = \text{लघु चा}$$

इसको इस प्रकार भी लिख सकते हैं:—

$$\Sigma \text{ लघु श} = \text{लघु चा}$$

यहां श से तात्पर्य शक्ति मात्र से है, Σ लघु श का अर्थ सब शक्तियों के लघुरिक्थफलों के बीज योग से है।

यहाँ इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि पदार्थ की आरम्भिक शक्तियों तथा साम्यावस्था वाली शक्तियों में बहुत भेद होता है। मान लो कि आरम्भमें क गैसके 'कि' अणुओं और ख गैसके 'खि' अणुओं से हमने प्रक्रिया आरम्भकी, और जिस पात्रमें यह कार्य्य किया जारहा है उसका आयतन अ है। अतः क की आरम्भिक शक्ति कि/अ और ख की खि/अ हुई। मान लीजिये की आरम्भ में पात्रमें केवल क और ख पदार्थ हैं और ग और घ की उत्पत्ति अभी नहीं हुई है। यदि साम्यावस्था स्थापित होने तक क और ख में से प्रत्येक के स अणु समाप्त होजायं तो इस सरल प्रक्रियामें ग और घ प्रत्येकके स अणु ही बनेंगे। अतः साम्यावस्था पर क के कि—स अणु रहगये और ख के खि—स, और इस समय ग और घ के स अणु विद्यमान हैं। क, ख, ग और घ ये चारों पदार्थ अ आयतन के पात्रमें स्थित हैं अतः साम्यावस्था पर इन सब की शक्तियाँ इस प्रकार हुईं :—

$$\text{क की शक्ति} = \frac{\text{कि} - \text{स}}{\text{अ}}$$

$$\text{ख की} \;\; ,, \;\; = \frac{\text{खि} - \text{स}}{\text{अ}}$$

$$\text{ग की शक्ति} = \text{स}/\text{अ}$$

$$\text{घ की शक्ति} = \text{स}/\text{अ}$$

अतः साम्यावस्था की स्थिर संख्या चा निम्न समीकरण द्वारा प्रकट की जासकती है :—

$$\text{चा} = \frac{\text{स}/\text{अ} \times \text{स}/\text{अ}}{\frac{\text{कि} - \text{स}}{\text{अ}} \times \frac{\text{खि} - \text{स}}{\text{अ}}} = \frac{\text{स}^{२}}{(\text{कि} - \text{स})(\text{खि} - \text{स})}$$

अच्छा, अब दूसरे प्रकारकी प्रक्रियाओंकी ओर दृष्टि डालनी चाहिये। मानलीजिये कि एक प्रक्रिया ऐसी है जिसमें क पदार्थके दो अणु ख पदार्थके एक अणुसे संयुक्त होकर ग पदार्थके दो अणु और घ का एक अणु देते हैं, साम्यावस्था पर यह प्रक्रिया इस प्रकार हैः—

$$२\,\text{क} + \text{ख} \rightleftarrows २\,\text{ग} + \text{घ}$$

इस प्रक्रियामें यह आवश्यक है कि क के दो अणुओंका एक साथ ख से संघर्ष हो। पहले दिये गये समीकरणमें क के एक ही अणुका ख के एक अणुके साथ संघर्ष होता था। अतः इस प्रकारकी प्रक्रियाकी गति केवल क और ख पदार्थोंकी शक्तियों के गुणनफल पर ही निर्भर न रहेगी। इस प्रक्रिया को आसानी से समझाने की विधि इस प्रकार है। यह अच्छा होगा कि हम प्रक्रिया के समीकरण को इस प्रकार लिखें :—

$$\text{क} + \text{क} + \text{ख} = \text{ग} + \text{ग} + \text{घ}$$

अतः बायीं ओरसे दाहिनी ओरको प्रक्रिया $\text{च}_{१}\, \text{श}_{\text{क}} \times \text{श}_{\text{क}} \times \text{श}_{\text{ख}}$ गतिसे जायगी।

अर्थात् यह गति $= \text{च}_{१}\, \text{श}^{२}_{\text{क}} \times \text{श}_{\text{ख}}$

इसी प्रकार दाहिनी ओरसे बायीं ओरकी प्रक्रियाकी गति।

$$= \text{च}_{२}\; \text{श}_{\text{ग}} \times \text{श}_{\text{ग}} + \text{श}_{\text{घ}}$$

$$= \text{च}_{२}\; \text{श}^{२}_{\text{ग}} \times \text{श}_{\text{घ}}$$

अतः साम्यावस्थाकी स्थिर संख्या चा निम्न समीकरणसे मिल सकेगीः—

$$\text{चा} = \frac{\text{च}_{१}}{\text{च}_{२}} = \frac{\text{श}^{२}_{\text{सग}} \times \text{श}_{\text{सघ}}}{\text{श}^{२}_{\text{सक}} \times \text{श}_{\text{सख}}}$$

इसी प्रकार अन्य समीकरणोंकी साम्यावस्थाकी स्थिर संख्यायें निकली जासकती हैं।

यदि कोई समीकरण इस प्रकार होः—

$$३\,\text{क} + ५\,\text{ख} \rightleftarrows २\,\text{ग} + ७\,\text{घ}$$

तो साम्यावस्थाकी स्थिर संख्या।

$$\text{चा} = \frac{\text{च}_{१}}{\text{च}_{२}} = \frac{\text{श}^{२}_{\text{सग}} \times \text{श}^{७}_{\text{सघ}}}{\text{श}^{३}_{\text{सक}} \times \text{श}^{५}_{\text{सख}}}$$

इसी प्रकार यदि समीकरण इस प्रकार होः—

$$\text{य क}_1 + \text{र क}_2 + \text{ल क}_3 + \ldots$$

$$\rightleftarrows \text{या का}_1 + \text{रा का}_2 + \text{ला का}_3 + \ldots$$

तो साम्यावस्था पर इसकी स्थिर संख्या।

$$\text{चा} = \frac{\text{श}^{\text{या}}_{\text{सका}_1} \times \text{श}^{\text{रा}}_{\text{सका}_2} \times \text{श}^{\text{ला}}_{\text{सका}_3} \times \ldots}{\text{श}^{\text{य}}_{\text{सक}_1} \times \text{श}^{\text{र}}_{\text{सक}_2} \times \text{श}^{\text{ल}}_{\text{सक}_3} \times \ldots}$$

बहुधा चा के व्युत्क्रम चा_1 का परिमाण क्रिया सिद्धान्तमें अधिक उपयोग किया जाता है। ऐसी अवस्थामें उपर्युक्त स्थिर संख्याओंकी मात्रामें ऊपर वाले अंक नीचे और नीचे वाले अंक ऊपर आ जावेंगे। इस सिद्धान्तका उपयोग वायव्य प्रक्रियाओंमें किस प्रकार किया गया है इसका उल्लेख आगे किया जावेगा।

जंगलोंकी आवश्यकता

[ले० श्री कुञ्ज बिहारी मोहनलाल, एम० एस-सी०, आई० एफ० एस०]

च फिलास्फर जैकोका कथन है कि सभ्यता जंगलोंसे शुरू होती है और उनको मरु-भूमिमें बदलकर समाप्त होती है। यह कहना बिल्कुल सच है। मनुष्य आज तक जंगलोंके लाभको ठीक-ठीक नहीं समझ सका है। जब उसको लकड़ी या धरतीकी आवश्यकता होती है वह जंगलमें जाकर पेड़ोंको काटकर फेंक देता है; बगैर ज़रा भी सोचे हुये कि इसका परिणाम क्या होगा।

रोमजातिने जब अपना अधिकार इटेली आदि देशोंमेंकर लिया तो वहांके हरसीनियन वनको उन्होंने धीरे-धीरे उजाड़ डाला। इसका परिणाम यह हुआ कि वहां बहुतसी घाटियां उजाड़ हो गईं। ऐसा ही इराकमें हुआ। जब अरब जातिने इराक[1] को ६२७ ईसवीमें अलमेडेन जीतकर मिलाया था तब वह हरा भरा बाग़ था। अब वह जैसा है वह सबको भली-भांति मालूम है।

जब स्पेनवालोंने मेक्सिकोको जीता तब वह देश बहुत ही अच्छी दशामें था। खेती व सिंचाई अच्छी तरह हो सकती थी। वहांके जंगल अच्छी तरहसे कड़े कड़े नियमोंसे सुरक्षित रक्खे जाते थे। पर स्पेनवालोंने जंगलोंको जानबूझकर उजाड़ डाला क्योंकि वह वहांके निवासियोंकी छिपनेकी जगह हो गये थे। आज वहां न सिंचाई हो सकती है न खेती। वहांकी झीलें भी सूख आई हैं। वहांके प्रसिद्ध बागोंका नाश हो गया है और देशमें घोर दरिद्रता आ गई है।[2] एशिया माइनरके सात बड़े शहरोंमेंसे जो कि पहले बहुत बड़ी सभ्यताके केन्द्र थे आज कुल एक स्मर्ना बाक़ी बचा है और बाक़ी सब जंगलोंको उजाड़नेसे खुद भी नहीं रहे। ग्रीस और रूसमें भी जंगलोंके उजाड़नेका यही परिणाम हुआ। अरस्तू, प्लीनी (Pliny), स्ट्रैबो (Strabo) ने अपने देशवालोंको जंगलोंके नाश होनेका बुरा फल बता दिया था पर उसका कोई फल उनपर नहीं हुआ जिसका नतीजा हम ऊपर लिख चुके हैं।

हालमें भी जंगलोंके उजाड़नेका जो परिणाम होता है कई जगहपर मालूम हुआ है। होश्यारपूर ज़िलेके ऊपरके जंगलके बर्बाद करनेका नतीजा हुआ कि आज वहां रेत उड़ता नज़र आ रहा है। जो पहले गेहूँके अच्छे खेत थे अब वहां खेती करना

---

१ म्योर The Caliphate-Its rise and fall.

२ Conquest of menico prescott.

मुश्किल हो गया है और वह रेगिस्तान होते जा रहे हैं। फ्रांसमें भी जहां कि जंगलोंके फ़ायदे अच्छी तरह मालुम हैं जंगलोंके कम होनेका फल अच्छी तरह मालुम हो रहा है। इंगलेंड व फ्रांसमें जंगलोंका कम होना इस योरुपीय महाभारतमें अच्छी तरह मालुम हो गया जब कि बाहर से लकड़ी नहीं आ सकी। जमुनाके किनारेका उजाड़ देश जंगलोंकी कमताईका वजहसे है। पहले पंजाबसे लेकर बंगाल तक सालका एक बड़ा जंगल था जिसमें अब वह सिर्फ पहाड़की तराइयोंमें ही रह गया है। जमुनाके किनारे भी वह जंगल था। पर अब वहां करील व बबूलके सिवा कुछ नहीं उगता। खेती भी अकसर मुशकिल है।

अब हम इसपर विचार करेंगे कि जंगल उजाड़नेका बुरा असर ऐसा क्यों होता है।

जंगलोंका सबसे बड़ा लाभ है धरतीको बहाव, बाढ़, पानीकी खुरोद (erosion), रेतका आक्रमण, आंधियां, व उसके रेतका उड़ान, पहाड़ोंमें चट्टानोंका ढुलकने, व उनके ऊपरकी मिट्टीको वह जानेसे सुरक्षित रखना। जब पानी धरतीपर एक दमसे पड़ता है तो एक तो धरतीको अपने गिरनेके ज़ोरसे ढीलाकर देता, है दूसरे वह उसको बहा ले जाता है। इससे पहाड़ोंमें नीचेकी चट्टानें निकल आती हैं और देशमें नीचेकी अन-उपजाऊ धरती निकल आती है। जब पेड़ या जंगल वहां होते हैं तो पहले तो पानीकी बूंदोंका वेग कम हो जाता है दूसरे पेड़ोंकी जड़ें धरती को बांधे रहती हैं और बहने नहीं देतीं। इस बात को पहाड़ों पर ध्यान रखने की बड़ी जरूरत है जहां पेड़ोंके न होनेसे चट्टानें जिन पर कुछ नहीं उग सकता निकल आती हैं। दूसरे, यह चट्टानें भी नीचे ढुलकने लगती हैं। जब इनको पेड़ों की जड़ें जकड़े रहतीं हैं तो ऐसा डर नहीं होता। इसी लिये हर एक पहाड़ पर सरकारी तरफसे यह हुक्म रहता है कि पेड़ न काटे जायें।

नदी की बाढ़से बचानेमें सिर्फ उसके पासके जंगल ही उपयोगी सिद्ध हुये हैं। पहले गोदावरी में बहुत दूर तक नावें व जहाज़ आ सकते थे। पर जब उसके पासके व उसके ऊपरके पहाड़ोंमें जंगल काट डाले गये तबसे उसमें नावें नहीं चल सकतीं क्योंकि नदी का वेग बहुत बढ़ गया है और उस की बाढ़ोंसे अब बड़ी हानि होती है।

जब पानी जंगलोंमें गिरता है तो उसका बहाव बहुत कम होता है। वह धरतीमें बहुत कुछ समा जाता है, बहुत कम हिस्सा बहता है। धीरे २ पृथ्वी में अंदर २ बह कर नदीमें जाता है। इससे दो फायदे होते हैं। एक तो नदीमें बाढ़ नहीं आती। दूसरे नदी व पहाड़मेंके चश्मोंमें साल भर कुछ न कुछ पानी रहता है। तथा धरतीमें पानीकी ऊंचाई बढ़ जाती है जिससे वहांके पेड़ों व खेतों को बहुत फायदा होता है। कुओंमें पानी अच्छी तरह साल भर बना रहता है। जब पेड़ काटे जाते हैं तो पानी धरतीमें बग़ैर समाये हुये बह जाता है और इससे धरती का खरोद होता है नदीमें बड़ी बाढ़ आती है और गर्मीमें नदियाँ व चश्में व कुये पानी की कमताईसे सूख जाते हैं। अब पश्चिममें जहां बाढ़ का डर होता है वहां जंगल व पेड़ों को बढ़ाने का बड़ा यत्न किया जाता है।

रेत व रेतकी आंधियों (Sanddunes) से बचाने में पेड़ व जंगल ही सफल हुये हैं। फ्रांसमें उड़ते हुए रेतसे बचाने को चीड़के (Maritine pine) दरख्त लगाये गये हैं जिनसे अब वहां रेत का उड़ना बिल्कुल बंद हो गया है।

कराचीमें पहले इस उड़ते रेतसे बचने को बंद बांधा गया पर इसमें कुछ सफलता नहीं हुई। अब वहाँ पहले पौधे उगाकर पेड़ लगा दिये गये हैं। पेड़ों की जड़ों ने रेत को अच्छी तरह बांध दिया है। इटावामें फारेस्ट डिपार्टमेन्ट बड़ा रुपया खर्च करके बन लगा रहा है ताकि वहाँके उजड़े और खरोदे हुये देशमें कुछ उपज हो सके। जैसा हम

ऊपर लिख चुके हैं। होशयारपुरमें जहाँ कि पहले अच्छे खेत थे वहां रेत न बहता, यदि वहांके जंगलों को न काट डाला गया होता।

जहां गर्म देशोंसे लू या गर्म हवायें आती हैं या जहां उत्तर की ठंडी हवायें आती हैं वहां जंगल ही उनसे बचा सकते हैं, और इस लिये वहांके जंगल को बहुत होशियारी से काटना चाहिये।

धरती को सुरक्षित रखनेके अतिरिक्त जंगल और भी बहुत तरहसे लाभदायक होते हैं। साल-भर चश्मों, कुओं और नदीमें पानी रखना, आस पासके देश को पाले व तापक्रमके या तो बहुत कम या बहुत ज्यादा होनेसे बचाना, और धरती को पत्ते व खाद देकर उपजाऊ बनाना इनका काम है। किसी २ का मत है कि जंगलोंसे बरसात बढ़ जाती है। पर अभी यह ठीक तरह सिद्ध नहीं हो सका है। पर इसमें कोई शक नहीं कि वह धरतीमें पानीका अंश बढ़ाते हैं क्योंकि एक तो वह पानीको बहने नहीं देते जिससे पानी धरतीमें समा जाता है, दूसरे पेड़ोंकी जड़ें पानीका बहाव पृथिवीके अन्दर भी कमकर देती हैं; तीसरे पेड़ोंकी वजहसे सुखानेवाली हवा या धूप धरतीके पानीपर कम असर करती है।

पानीका पृथिवीमें अंश और ऊँचाई बढ़नेका पैदावारपर बडा असर होता है। पंजाबमें जहां पहले कुछ नहीं उग सकता था पानीकी धरतीमें ऊँचाई बढ़ जानेसे वहां अब गेहूँ बोया जाता है व अच्छे पेड़ लग सकते हैं। जंगलके अन्दर दिनमें तो ज्यादह ठंड और रातमें आस-पाससे कम ठंड रहती है जिससे कि वहां तापक्रम बहुत ज्यादह या कम नहीं होने पाता।

यह सबको मालूम है कि लकड़ी कितनी ज़रूरी चीज़ है। इसके बगैर सब काम बन्द हो जाते है। लड़ाईमें इंगलैण्डमें जंगल न होनेसे लकड़ीकी बहुत कमताई हो गई जिससे अब वह बहुत रुपया लगाकर जंगल उपजानेकी कोशिश कर रहे हैं। खेतिहर देशोंमें लकड़ीकी और ज्यादह आवश्यकता रहती है। गंगा जमुनाके देशमें भी बहुत जगह ऐसी हैं जहां खेती नहीं हो सकती। इसकी वजह यह है कि वहां काफी लकड़ी नहीं पहुँच सकती जिससे किसानके सारे काम मुशकिल हो गये हैं।

यदि हिसाब लगाया जाय तो यह मालूम होगा कि २० या २५ सैकड़ा धरतीमें जंगल होना चाहिये। एक मनुष्यमें दिनमें ¾ से २ सेर तक लकड़ीका खर्च होता है। भारतमें १५८ मनुष्य १ वर्ग मीलमें हैं। इससे ३१६ सेरकी आवश्यकता पड़ी एक दिनमें। एक सालमें एक-एकड़में ८०० सेर लकड़ी पैदा होती है इससे यह मालूम होगा कि एकही मीलमें १४० एकड़ धरतीमें जंगल होना चाहिये। भारतवर्षमें २० सैकड़ा धरतीपर जंगल है। पर इसमें अधिकतर ऐसी जगह हैं जहाँ मनुष्यकी पहुँच बहुत मुश्किल है। इस बातकी भी आवश्यकता है कि जंगल अच्छी तरह बिखरे हों, न कि सब एक जगह इकट्ठे हों। नहीं तो लकड़ी एक जगहसे दूसरी जगह ले जानेमें बड़ा खर्च पड़ जाता है। जंगलोंके बिखरे न होने और उनमें ठीक पहुँच न होने का फल यह है कि भारत की जनता को लकड़ी की कमताई पड़ जाती है। लकड़ी की जगह गोबर व पत्ते काम में लाये जाते हैं। यदि लकड़ी काफी मिक़दार में मिलती तो यही गोबर व पत्ते खेतोंमें खाद डालने के काम आते जहां इनकी इस क़दर ज़रूरत है। यह तो एक बड़ी बात है कि भारतवासी मेज, कुर्सियों और आलमारियों का इस्तेमाल इतना कम करते हैं; नहीं तो उनको न जाने क्या करना पड़ता।

ज़हरके लक्षण

[लेखक—श्री वा० वि० भागवत, एम० एस-सी]

कोई भी रोग या बीमारी न होते होए जिन चीजों-के स्पर्श या भक्षणसे आरोग्यका नाश होता हैं उन्हें ज़हर कहते हैं।

शरीरपर ज़हरके लक्षण प्रकट होनेके लिये ज़हर का खूनमें अच्छी तरहसे मिल जाना आवश्यक ही है, ऐसी कुछ बात नहीं, लेकिन यह एक सर्व साधारण नियम है। खूनमें ज़हर मिल जानेकी अनेक तरकीबें हैं। वातजन्य तथा धातुजन्य ज़हर वायुमें सूक्ष्म रूपसे मिल जाते हैं, फिर श्वाससे शरीरमें फुप्फुस द्वारा खूनसे मिल जाते हैं; द्रव तथा ठोस ज़हर शरीरकी त्वचा और ज़खमके अंदर घुसकर खूनमें मिलते हैं और कुछ ज़हर पेटमें जाकर फिर खूनमें मिल जाते हैं। जैसे सोमल। यह ज़हर किसी मार्गसे शरीरमें जाते ही खूनमें मिल जाता है और तुरन्त ही विषके लक्षण शरीरपर दिखाई देते हैं। सर्पका ज़हर जखमसे खूनमें जाता है और फिर ज़हरके लक्षण बदनपर मालूम होते हैं। यदि सर्पका ज़हर पेटमें लिया जाय तो उससे ज़हर चढ़ता नहीं है ऐसा अनुभव है। लेकिन ज़हर चढ़नेके लिये उसका खूनमें मिलना आवश्यक है। इस बातके खनिज अम्ल तथा क्षार अपवाद हैं। क्योंकि जिस जगहपर उनका स्पर्श होता है वह जगह एकदम जलने लगती है और फिर उसका अनिष्ट परिणाम देहपर होता है।

विषको अंदरसे बाहर फेंकनेके भी अनेक मार्ग हैं। जैसे पेशाब, पित्त, दुग्ध, कफ, मल इत्यादि द्वारा।

ज़हरके बारेमें निम्नलिखित सिद्धांतोंको जानना उचित है।

(१) सब तरहके ज़हर खूनमें मिल जाते हैं और जब तक ज़हर खूनमें मिल नहीं जाते तब तक शरीरपर खूनमें अपनी प्रतिक्रिया पूर्ण रूपसे आरंभ नहीं करते हैं। इसका मतलब यह है कि ज़हरकी क्रिया शुरू होनेके लिये उनका शरीरमें मिल जाना आवश्यक है।

(२) ज़हर जितना जल्द खूनमें मिलता है उतना ही जल्द शरीरपर उसकी क्रिया होती है।

(३) ज़हरका परिणाम उसके थोड़े या अधिक परिमाणपर अवलंबित नहीं है किन्तु ज़हर कितना जल्द शरीरमें फैलता है इसके ऊपर वह निर्भर है।

(४) ज़हर जब योग्य अवस्थामें और योग्य जगहपर दिया जाय तो वह तुरन्त ही परिणाम करता है।

(५) जिस वक्त ज़हर शरीरमें फैलने लगता है उसी वक्त उनको बाहर निकालेकी भी क्रिया शुरू हो जाती है और यह क्रम जब तक बीमार अच्छा नहीं हो जाता या मर नहीं जाता तब तक चलता रहता है।

(६) ज़हरके खूनमें मिलनेके बाद इसकी पहि-चान रसायन विधियों द्वारा शरीर-शास्त्रज्ञ कर सकते हैं।

(७) सर्पादि प्राणिओंके ज़हरका पता खूनमें नहीं चलता लेकिन जिनको सर्पने काटा है ऐसे प्राणियोंका खून, मल, पेशाब, दूध दूसरे प्राणियोंके ज़हरके समान ही रहता है।

(८) खूनकी परीक्षा किसी भी समय क्यों न की जाय ज़हरकी मात्रा बहुत ही थोड़ी मिलती है।

(९) ज़हरके खूनमें मिल जानेके बाद इंद्रि-योंको शुद्ध खून मिलना बन्द हो जाता है और इसी कारणसे मृत्यु हो जाती है।

(१०) मरनेके बाद शरीरमें जो ज़हर पाया जाता है वह जितना विष लिया था। उससे कम रहता है।

(११) कभी-कभी ज़हरसे मृत्यु होते हुये भी शरीरमें मृत्युके बाद विष नहीं पाया जाता है।

ज़हरका परिणाम जल्द या देरसे दिखाई देना, अभ्यास, निद्रा, आयु, सहनशीलता इत्यादि बातें पर अवलंबित है।

अभ्यासः—जो लोग ज़हरका सेवन प्रति दिन करते हैं उनपर ज़हरका परिणाम जल्द नहीं होता है और प्रभाव होनेके लिये भी ज़हरकी अधिक मात्रा उनको देनी पड़ती है। अफीमका सेवन रोज थोड़ा थोड़ा बढ़ाते हुये वे यहां तक बढ़ाते हैं कि कोई दूसरा व्यक्ति यदि उतनी अफीम खा जाय तो तुरन्त मर जाय लेकिन इन लोगोंको उससे कुछ नहीं होता है। इसी तरह जो सोमल, स्ट्रिक-निआ, दारू आदिका रोज़ सेवन करते हैं उनके ऊपर भी ज़हरका प्रभाव कम होता है।

सहनशीलता—कुछ लोग ऐसे होते हैं कि यद्यपि उनको ज़हर खानेका अभ्यास नहीं है तो भी वह ज़हर सह सकते हैं पर कुछ ऐसे होते हैं कि वे तुरन्त ही मर जाते हैं। बिच्छू काटनेपर किसीको बहुत तकलीफ होती है तो किसीको उतनी तक-लीफ नहीं होती। इस प्रकार प्रत्येक व्यक्तिकी सहनशीलता पृथक्-पृथक् होती है।

जब पेटमें कुछ अन्न नहीं रहता तब ज़हर जल्द चढ़ता है। यदि पेटमें अन्न हो तो इतना जल्द उसका परिणाम दिखाई नहीं देता।

यदि आदमीको निद्रामें विष खिलाया या मूर्च्छा की अवस्थामें दिया जाय तो उसका परिणाम कुछ देरसे होता है। यदि वह जागृत हो तो परि-णाम जल्द होता है।

विषका परिणाम जल्द या देरसे होना यह आदमीकी आयुपर भी अवलंबित है। बच्चोंके ऊपर उसका परिणाम तुरन्त होता है तो बड़े आदमीपर उसका परिणाम होनेको देर लगती है। जितनी मात्रा बड़े आदमीको देनेसे कुछ प्रभाव नहीं होता उतना ही विष यदि बच्चोंको दिया जाय तो वह थोड़ी ही देरमें मर जा सकते हैं।

भारतका गणित-शास्त्र

(अनु०—श्री पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय एम० ए०)

नसिक विचार और ध्यानकी एका-ग्रताके लिये तो हिन्दू लोग प्रसिद्ध ही हैं। परन्तु अन्य साक्षीके सिवाय इनके साहित्य से भी सिद्ध होता है कि प्राचीन हिन्दुओंकी स्मृति और ध्यान बहुत बढ़े हुये थे। इसीलिये वे सब विद्यायें जिनमें विचारकी एकाग्रता और ध्यान की प्रबलताकी आवश्यकता होती है, हिन्दुओंमें बड़ी उन्नतिको प्राप्त हो चुकी थीं। हिन्दू लोग गणित-विद्यासे अवश्य बहुत प्रेम रखते होंगे क्योंकि यह सब विद्याओंमें गूढ़ है। हमारे इस कथनकी पुष्टिमें बहुतसे प्रमाण हैं। ज्योतिष विद्याकी इतनी अपूर्व उन्नतिसे ही सिद्ध है कि हिन्दू लोग गणित शास्त्रमें निपुण थे। हिन्दू ज्योतिषकी प्राचीनतासे सिद्ध होता है कि हिन्दू लोगोंकी गणित-विद्या इस से भी प्राचीन थी। यह बात कि परमात्माने हिंदुओं को अन्य जातियोंसे अधिक गणित-विद्याका अधि-कारी बनाया है इस बातसे भी सिद्ध होती है कि हिन्दू लोगोंने गणितके आधारका आविष्कार किया था। सब योग्य पुरुष मानते हैं कि संख्याका आवि-ष्कार हिन्दुओंने किया। जर्मनीका प्रसिद्ध विद्वान् शिलेजिल कहता है कि दशमलव विन्दुको हिन्दुओंने ही निकाला। यह मनुष्यजातिके सबसे बड़ी उपयोगी

आविष्कारों (अर्थात् अक्षरों और दशमलव विन्दु) मेंसे एक है। सब इतिहासवेत्ता मानते हैं कि दशमलव विन्दुके आविष्कारका गौरव हिन्दुओंको ही प्राप्त है।" (शिलेजिलका साहित्यका इतिहास पृ० १२३) उपाध्याय मैकडौनिल लिखते हैं कि विज्ञानमें भी यूरोप भारतवर्षका बहुत कुछ ऋणी है। पहिले पहिल तो संख्याके अक्षरोंको जो सारी दुनियामें प्रचलित हैं हिन्दुओंने निकाला। इनकी दहाईकी रीतिने जो प्रभाव न केवल गणित पर किन्तु सभ्यताकी उन्नति पर डाला उसकी जितनी प्रशंसाकी जाय थोड़ी है। आठवीं और नवीं शताब्दीमें हिन्दुओंने अरबवालों और उनके द्वारा पाश्चात्य देशोंको अङ्कगणित तथा बीजगणित सिखलाई। अतएव यद्यपि बीजगणितको हम अरबी नाम 'अलजब्रा' से पुकारते हैं किन्तु यह भारतवर्षका ही दान है।" (संस्कृत-साहित्यका इतिहास पृ० ४२४)।

सर एम मोनियर विलियम्स कहते हैं कि अरबवालोंने हिन्दुओंसे न केवल बीज गणितके प्रारम्भिक नियम ही सीखे किन्तु संख्याके संकेत और दशमलवके चिह्न (Notation) भी वहींसे ग्रहण किये जिसने अङ्कगणितकी उन्नतिमें अकथनीय सेवाकी है। (Indian wisdom p. 124) मैनिंगने लिखा है। कि चाहे हम किसी कोषपत्र, वा ग्रन्थमें देखें हमको सब जगहसे यही ज्ञात होता है कि संख्या के निकालने वाले भारतवासी ही हुये और अरबवालोंके द्वारा इसका यूरोपमें प्रचार हुआ। (प्राचीन और मध्यकालीन भारतवर्ष जि० १. पृ० ३७६)। सरडब्ल्यू० डब्ल्यू० हण्टरने भी लिखा है "कि दहाईकी रीति पर संख्याके संकेत हिन्दुओंने निकाले। हिन्दुस्तानी अक्षर १ से ६ तक संख्याओं के प्रथम अक्षरोंका सूक्ष्मरूप है और विन्दु संस्कृत शब्द शून्य (खाली) का पहिला अक्षर है। अरबवालोंने इनको भारतवर्षसे लेकर यूरोपमें फैलाया" (Impereal Gazetteer p 219. "India") प्रो० वीबर कहते हैं कि "हिन्दुओंने ही संख्या के अक्षरोंका विचित्र आविष्कार किया है जो इसी तरह अरबमें होकर यूरोपियन विद्वानोंके हाथ लगा। यूरोपवालोंने जो अरबके लोगोंके शिष्य थे भारतवासियोंकी ओर सदा ही बड़ी प्रशंसासे संकेत किया है और एक संस्कृत शब्द "उच्च" भी अरबके ज्योतिषियोंके लैटिन अनुवादोंमें चला गया है" (Weber's Indian Literature p. 256) प्रो० विलसन ने लिखा है कि "डेलाम्बर (Delambre) तक यह मानता है कि संख्याके विन्दुओंका आविष्कार इन्होंने (हिन्दुओं) किया।"

अङ्क-गणित

मिसिस मैनिंग लिखती हैं कि "यदि अन्य प्राचीन जातियोंका मुकाबिला किया जाय तो हिन्दू लोग अङ्क गणितकी हर शाखामें विशेषतः निपुण थे" (प्राचीन और मध्यकालीन भारतवर्ष जि० १. पृ० ३७४) प्रो० वीबर अरबवालोंको हिन्दुओंका शिष्य बतलाते हुए लिखते हैं कि "बीजगणित और अङ्कगणितमें भी यही हुआ (अर्थात् अरबवालोंने हिन्दुओंसे विद्या सीखी) और इन दोनों विद्याओंमें हिन्दू लोग स्वतन्त्र ही बहुत कुछ उन्नति कर चुके थे।" सर हण्टर भी लिखते हैं, कि हिन्दुओंने बिना किसी विदेशीके सिखलाये स्वतन्त्र ही अङ्कगणित और बीजगणित दोनों में प्रवीणता प्राप्त कर ली थी।" (Impereal Gazetteer "India" p.219)।

अँग्रेजीगणितज्ञ प्रो० वालेस (Wallace) कहते हैं कि "लीलावतीमें अङ्क-गणितका वर्णन है और इस विद्याके केवल साधारण नियम ही नहीं दिये हैं किन्तु उनसे व्याज, व्यापार, मिलावट, एकादिभेद (combinatons), अङ्क पाश (Permutation), प्रसारण, (Progression), अनिर्धारित सवालों (Indeterminate problems) धरातल और घनकी मापके नाना प्रकारके सवालों में निकालनेकी विधि भी दी है। ये नियम ठीक वैसे

ही निश्चित् और सरल हैं जैसे वर्तमानमें विद्वानों ने इन्हें निर्धारितकर पाये हैं। गणितका परिणाम तत्काल निकल आता है और यदि यूनानियोंके पुराने तरीक़ोंसे मुकाबिला किया जाय तो दहाईकी रीतिकी उत्तमता भली प्रकार विदित हो जाती है।" (Edinbourgh Review vol *29* p. 147) परन्तु स्मरण रहे कि लीलावती जिसका प्रो० वालेस साहब वर्णन करते हैं अङ्क-गणितकी एक आधुनिक पुस्तक है और इससे हिन्दुओंकी अङ्क-विद्याकी तुलना करना ऐसा ही है जैसा अँग्रेजी अङ्कका चेम्बर्सकी मैनुअल आफ़ अरिथ्मेटिकसे। हिन्दुओंमें दीर्घ संख्याका विस्तार और यह बात कि उनके पास पहाड़े पुष्कलरूप में है, उनकी गणितविद्याकी विशेष योग्यताका प्रमाण है।

रेखा-गणित

रेखागणितमें तो प्राचीन हिन्दुओंकी उन्नति जगत् प्रसिद्ध रही है। प्रो० वालेस लिखते हैं कि "त्रिकोणमितिकी चाहे कितनी ही प्राचीन पुस्तक क्यों न हो इसमें सन्देह नहीं कि यह पुस्तक इस विद्याकी आरम्भिक दशामें न लिखी गई होगी। भारतवर्षी लोग रेखागणितका सूर्य्य सिद्धान्तसे बहुत पहिले जानते होंगे।" (Mill's India vol. II p. 150)। यूरोपके विद्वान् कहते हैं कि सूर्य्य सिद्धान्त ख्रीष्ट से २००० वर्ष पहिले लिखी गई होगी। (Mill's India. II p. 3 footnote) प्रो० वालेस कहते हैं कि "सूर्य्य सिद्धान्तमें त्रिकोणमितिका बहुत अच्छा वर्णन है और यह यूनान और अरब की प्राचीन विधिसे बिलकुल भिन्न है। वस्तुतः इसका आधार रेखा गणितकी उस शकल पर है जिसको यूरोप वाले वेटा (Vieta) से पूर्व अर्थात् दो सौ वर्ष हुये जानते भी न थे। इसमें चापकी ज्याका विधान है जो यूनान वालोंको पहिले मालूम भी न थी। यह लोग दुहरे चापके करणका प्रयोग किया करते थे। कहा जाता है कि ज्याओंका आविष्कार अरबवालोंने किया था। परन्तु यह सम्भव है कि त्रिकोणमिति और संख्याके इस आगमको इन्होंने हिन्दुस्तानसे लिया हो। (Edinburgh encyclopaedia Review)

मिस्टर एलिफन्स्टन कहते हैं कि सूर्य्यसिद्धान्तमें जो त्रिकोणमिति दी हुई है उसे न केवल यूनानी भी न जानते थे किन्तु इसकी बहुत सी शकलें दो सौ वर्षहुये यूरोप वालोंको भी ज्ञात न थीं" (History of India p. 129) वालेस साहब कहते हैं कि "हिन्दुओंमें यह एक विलक्षण बात है कि वृत्तके व्यासार्धको परिधिके भागों द्वारा दिखलाया है। टोलमी और यूनानी गणितज्ञ व्यासार्धके निकालनेमें परिधिसे कुछ काम नहीं लेते थे। हिन्दुस्तान और यूनानकी त्रिकोणमितिमें यह भेद है कि यूनानी लोग ज्याके प्रयोगको नहीं जानते थे। हिन्दुओंकी रेखाओंके गणनकी रीति बहुत अच्छी है जिसे पहिले पहिल गणितज्ञ बिगने प्रयुक्त किया था" (Mills' India vol. II p. 150) काउण्ट जोर्न्सजर्ना कहते हैं कि अकबर बादशाह की आईन अकबरीमें लिखा है कि पुराने हिन्दू वृत्त के व्यास और परिधिमें १२५० और ३९२७ की निष्पत्ति मानते थे। १२५० और ३९२७ की निष्पत्ति प्रायः बहुत ठीक है क्योंकि मीटियसने ११३ और ३५५ की निष्पत्ति बताई है। सरलसे सरल रीतिसे यह बात निकालने के लिये जिसे ब्राह्मणोंने बतलाया है हमको वृत्तके भीतर ७ भुजा की शकल बनानी चाहिये और यह काम अङ्कगणित से नहीं निकल सकता जब तक इस परिधिके अन्त्यगुण ज्ञात न हों और दशमलवके १० स्थानों तक नवीं शक्तिका वर्ग मूल लिया जाय। यूनानी और अरब वालोंने इतना ठीक उत्तर नहीं निकाला" (Theogony of the Hindus p. 37)।

अब यह स्पष्ट हो गया कि यूनानी और अरब के लोग तो क्या यूरोप वाले भी थोड़े दिन हुये

इस विद्यामें हिन्दुस्तान वालोंके बराबर नहीं जानते थे।

वालेस साहब लिखते हैं "विद्वानोंने पता लगाया है कि भारतवर्षमें ज्योतिष सम्बन्धी पहाड़े रेखागणितके आधारपर बनाये गये थे यद्यपि इनके बनानेका समय अभी निश्चित नहीं हुआ। कुछ विद्वानोंकी यह कथन है कि यह तब बने थे जब खीष्टसे ३००० वर्ष पूर्व तारोंका निरीक्षण किया गया था (इसको बेली Bailly साहिब ने निश्चय रूपसे सिद्ध कर दिया है) और यदि यह बात ठीक हो तो भारतवर्षी लोगोंने रेखा गणितको उस समयसे बहुत पहिले सीख लिया होगा जो समय पश्चिम वाले बतलाते हैं और बहुतसी आरम्भिक शकलें यूनान वाले भारत वर्षसे लाये होंगे।" (Edinburgh encyclopaedia "Geometry" p. 191) आगे लिखा है कि 'रेखा गणितमें भी बहुत कुछ ध्यान देने योग्य है। इसमें वह शकल भी मिलती है जिसमें समकोणत्रिभुजके समकोणके सामनेकी भुजाका वर्ग अन्य दो भुजाओंके वर्गके तुल्य होता है। यह शकल आधुनिक रेखागणितका एक भाग है। एक और प्रसिद्ध शकल है जिसके द्वारा किसी त्रिभुजकी तीनों भुजाएं जान कर क्षेत्रफल निकालते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि पुराने यूनानी लोग इनको नहीं जानते थे।"

शल्वसूत्र खीष्टसे आठसौ वर्ष पहिलेके हैं और डाक्टर थीबाने सिद्धकर दिया है कि पहिले अध्याय की ४७ वीं शकल जो पाइथागोरसकी निकाली हुई कही जाती है हिन्दू लोगोंको कमसे कम इससे दो सौ वर्ष पहिले मालूम थी। और इससे वी० श्रेडर का यह कथन ठीक हो जाता है कि पाइथागोरसने भारत वर्षमें शिक्षा पाई थी (History of Hindu chemistry vol. I. p. 24, introduction)

मिस्टर एलिफन्स्टन कहते हैं "कि उनके रेखा सम्बन्धी पाण्डित्यके विषयमें अन्य बातोंके अतिरिक्त यह भी है कि उन्होंने त्रिभुजोंके अनेक लक्षण सिद्धकर लिये थे। वह जानते थे कि त्रिभुजके क्षेत्रफलको उसकी भुजाओंके द्वारा किस प्रकार दिखलाते हैं। यह बात क्लेवियससे पहिले यूरोपवालों को मालूम न थी। वे वृत्तके व्यासार्ध और परिधिकी निष्पत्तिको भी जानते थे और उनमें विलक्षण बात यह थी कि व्यासार्ध और परिधिको एक ही माप दिखलाते थे। इस निष्पत्तिको जिसे यूरोप वालोंने स्वीकार किया है थोड़े दिन हुये कि भारत-वर्षके बाहर कोई नहीं जानता था।

वीजगणित

वीजगणितमें हिन्दुओंने खूब तरक्कीकी थी। प्रो० वालेस लिखते हैं कि "वीजगणितमें हिन्दू लोग करणी मूल (surd roots) के अङ्क और द्विपद समीकरण (Equation of 2nd degree) को जानते थे जिसको शायद डायेफेण्टस (Diaphantus) नहीं जानता था। ये लोग एक पदी अनिर्धारित सवालोंको भी जानते थे जिन को निस्सन्देह डायेफेण्टस नहीं जानता था। और एक पदको अटकलसे निकाल कर दूसरे पदके निकालनेकी विधिको ऐसा ही जानते थे जैसा लाग्रेञ्जके समय तक मालूम हो सका था" प्रो० वालेसने प्लेफेअरकी सम्मतिको देकर अपना लेख समाप्त किया है। वह लिखते हैं "कि ज्योतिषके अन्तर्गत वीजगणितकी इस प्रकार पुस्तक लिखनेसे पूर्व जिससे एक विद्याओंकी बातें दूसरी विद्यामें उपयुक्त हो सकें दोनों विद्याकी बहुत काल तक उन्नति और बड़े बड़े विद्वानोंके अविष्कारोंकी आवश्यकता है। प्रो० विल्सन कहते हैं कि "यह एक अखण्ड प्रमाण है कि हिन्दुओंकी गणित विद्या प्राचीन मौलिक और उत्तम थी" (Mill's India vol. II p. 151, Wilsons' note)

मिस्टर कोलब्रुक लिखते हैं कि "हिन्दू लोग करणी मूल सम्बन्धी अङ्कगणितसे अभिज्ञ थे। वे यह भी जानते थे कि यदि परिमित संख्यामें शून्यका भाग

दिया जाय तो भजन फल अपरिमित होता है। वे द्विपद समीकरणको निकाल सकते थे, और कठिन कठिन समीकरणोंको भी सरल करके वा ऐसे समीकरण बनाकर जिनमें वर्गात्मक समीकरणोंका नियम लगसके निकाललेते थे। वह एक पदी अनिर्धारित प्रश्नोंको भी निकाल सकते थे। और द्विपदी प्रश्नोंके उत्तर निकालनेके अनेक तरीक़ोंको एक उत्तर अटकलसे निकाल कर जान सकते थे।" (Colebrooke's Miscellaneous Essays vol. II p. 419) कोलब्रुक अन्तमें लिखता है कि "ऐसे प्रश्नोंके निकालनेकी यह विधि उस विधिके समान थी जो लाग्रेञ्जके समय तक प्रचलित थी"।[१]

मैनिगका कथन है "कि यह भी निश्चय है कि भारतवर्ष वालोंने विदेशियोंसे सीख कर बीजगणितमें उन्नति नहींकी थी।"

कोलब्रुकने लिखा है "इसमें सन्देह नहीं कि वर्तमान यूरोपके लोगों तक यह विद्या किस प्रकार आई। हमको इसका उपदेश अरब वालोंने दिया। चाहे उन्होंने यह उपदेश स्वयं दिया हो वा किसीके द्वारा"। मिसिस मैनिंगने लिखा है कि अरबवालोंने प्रायः विद्या निकाली नहीं, किन्तु प्राप्त की। पीछेके अन्वेषणोंसे यह बात सिद्ध होगई है क्योंकि अरब वालोंके आधुनिक यूरोपकी बीजगणित सिखलानेसे पहिले ही भारत वर्ष वाले इसको खूब जानते थे। यही नहीं किन्तु संख्याओंके नाम भी जो हम तक आये हैं संस्कृतसे निकले हैं"[२] (प्राचीन और मध्यकालीन भारतवर्ष जि० २ पृ० ३७५)

प्रोफेसर मोनियर विलियम्सने लिखा है कि "बीज गणित और रेखा गणितको निकालकर ज्योतिषमें इनको प्रयुक्त करना हिन्दुओं का ही काम है" (Indian wisdom p. 185).

बीज गणितके विषयमें हिन्दुओं और यूनानियों का मुक़ाबिला करते हुये मिस्टर एल्फिन्स्टन कहते हैं "कोई सन्देह नहीं कर सकता कि हिन्दुओं ने इस विद्या को यूनानियोंसे कितना अधिक उन्नत कर लिया था। आर्य्यभट्ट न केवल डायेफैण्टससे ही बढ़ कर है (जैसाकि कई अज्ञात संख्याओंके समी करण और कमसे कम एक पदी अनिर्धारित सवालोंके निकालने की रीतिसे प्रकट होता है) किन्तु वह और उसके अनुयायी बीजगणितके ऐसे आविष्कार करते हैं कि हमारे समयके विद्वान चकित हो जाते हैं "(Elphinston's India p. 131.) "कोलब्रुक साहब बीज अङ्क और माप की संस्कृत पुस्तकों की बड़ी प्रशंसा करते हैं" Manning's Ancient and Mediaeval India vol 1 p. 374).

एडिनबरा रिव्यू जि० २१ के ३७२ वें पृष्ठ पर एक सवाल का इतिहास दिया हुआ है:—'य' क्या है जब कय² + ख + ब = एक पूर्ण वर्ग हो। इस को पहिले डायेफैण्टसने आरम्भ किया। फिर १७ वीं शताब्दीमें फेरमटने कुछ अधिक निकाल कर अंग्रेज बीज गणित जानने वालोंके पास भेजा और फिर पीछे यूलर नामक गणितज्ञने पूर्ण किया। यह उसी नतीजे पर पहुँचा जिसपर भास्कराचार्य पहुँचा था" (Elphinstone's India p. 131).[१]

१ इस बातके जाननेके लिये कि हिन्दुओंकी बीजगणित यूनानियोंसे बढ़ी हुई थी देखो कोलब्रुक पृ० १६

२ कोलब्रुकने सिद्ध कर दिया हैं कि अरबमें जानेसे पहिले भारत वर्षमें बीजगणितकी पूर्ण उन्नति हो चुकी थी। और जो कुछ अरब वालों और हिन्दुओंमें सादृश्य था उसे हिन्दुओंसे ग्रहण किया था" (Elphinston's India p. 133).

१ भास्कराचार्य ने एक अच्छा ग्रन्थ सिद्धान्त शिरोमणि लिखा है जिसमें अङ्क और बीज गणित का विधान है। उसके वृतके भाग उसकी तीक्ष्ण बुद्धि को बतलाते हैं:—

६० विकला = १ कला
६० कला = १ भाग
३० भाग = १ राशि
१२ राशि = १ भगण

उसी रिव्यूके ३६ जि० के १५३ पृ० पर एक और सवाल है जिसके विषयमें कोलब्रुक साहिब लिखते हैं कि "भास्कराचार्यकी विशेषता वही है जो लार्ड ब्रौनकरने १६५७ में निकाली है।" और साधारण रीतिके जानने का यूलर ने प्रयत्न किया पर उसे सफलता न हुई। केवल डी लाग्रेञ्जने १७६७ में इस को निकाला। यद्यपि ब्रह्मगुप्तने इसे पूर्ण रीतसे देदिया था।

मिस्टर एल्फिन्स्टन कहते हैं कि "हिन्दू लोग यूनानियोंसे बीज गणितके आविष्कारोंमें इतने बढ़े हुये नहीं हैं जितने विधि की उत्तमता में जो डायेफैण्टससे बिलकुल भिन्न है (स्ट्रेकी की बीज गणित-देखो एडिन्बरा रिव्यू जि० २१ पृ० ३७४-७५) और घाताङ्कगणन (Logarithms) की पूर्णता में ये लोग बढ़े हुए हैं (कोलब्रुकका हिन्दू अलजबरा—देखो एडन्बिरा रिव्यू जि० २६ पृ० १६२)

उनकी एक प्रिय विधि (कटकविधि)को तो यूरोपवाले १६२४ तक भी नहीं जानते थे जब बेकिट डी मिज़ेरिक (Bachet de Mezeriac) ने प्रकाशित किया था। यह वही विधि है जिसे यूलरने वर्णन किया था (ए० रि० जि० २६ पृ० १५१) बीज गणितका ज्योतिष और रेखा गणितमें प्रयोग करनेकी विधि भी इन्हींने निकाली थी, और विधि अब भी प्रशंसाके योग्य है। (Colebrooke)

बीज-गणित, अंक-गणित और मापविद्या सम्बन्धी हिन्दू ग्रंथोंके विषयमें कोलब्रुक साहब कहते हैं कि "हमें आशा नहीं कि इनसे ऐतिहासिक प्रयोजनकी सिद्धिके अतिरिक्त विश्लेषण सम्बन्धी काममें कुछ और भी सहायता मिलेगी और गणित शास्त्रकी उन्नतिमें यह कुछ काम दे सकेंगे तथापि यदि इन पुस्तकोंका प्राचीन अनुवाद पूर्ण हो जाता या यह उस समय लोगोंके हाथोंमें पहुँच गये होते जब गणितज्ञोंका ध्यान पहिले-पहिल हिन्दुओंकी गणित और ज्योतिषकी ओर आकर्षित हुआ था तो अवश्य उन सवालोंके निकालनेके लिये बीज-गणितके साधनोंमें अवश्य आधिक्य हो जाता जिनके निकालनेकी विधिको पिछले दिनोंमें फिरसे निकाल पाया है।"

कोलब्रुक साहबके कथनसे पता लगता है कि उस समय भी जब हिन्दू-साहित्यकी दुर्दशा हो गई है और बहुतसे ग्रंथ नहीं मिलते, गणितविद्याके ऐसे मिलते हैं जिनकी गणित सम्बन्धी बातें यूरोपके नयेसे नये आविष्कारोंसे कम नहीं हैं।

इस बातकी पुष्टिमें कि भारतवर्षमें गणितविद्याकी बहुत उन्नति थी हम ललित विस्तारसे एक सवाल देते हैं। वेपके (Mons. Waepcke) साहबकी राय है कि ललित-विस्तारमें जो यह सवाल है कि योजनभरमें कितने परमाणु होंगे और जो बुद्धसे विवाह परीक्षाके समय किया गया था उसीके आधारपर प्रसिद्ध वैज्ञानिक आर्कीमिडीज़ने 'परीनेरियस' निकाला था।

यूरोपवाले कहते हैं कि चलनकलन (Differeintial calculus) के नियमको हमने निकाला है। परन्तु यह एक अद्भुत बात है कि मुद्दत हुई कि भारतवर्षमें ऐसा ही नियम विद्यमान था। दुनियाके बड़े गणित वेत्ता भास्कराचार्यने इसका वर्णन किया है परन्तु अपने हिन्दू पूवजोंकी तरह उसने इसका पूरा विधान नहीं किया केवल संक्षेपतः दिया है।

---

* Colebrooke's Miscellaneous essays vol. II. p. 419.

यहां यह लिखना अनुचित न होगा कि बहुतसे लोगोंको शंका है कि जिन विधियों को यूरोपवाले यह कहते हैं कि हमने स्वतंत्रता पूर्वक हिन्दुओंके सदृश निकाललिया वह ठीक भी है या नहीं। और ऐसी शंका हो भी सकती है क्योंकि यूरोप और हिन्दुस्तानमें बहुत दिनोंसे व्यवहार हो रहा है।

मिस्टर स्पोटिस्वुड (Spottiswoode) कहते हैं "यह मानना पड़ता है कि ज्योतिषकी मीमांसा में भास्कराचार्यने बहुत आश्चर्य-जनक पाण्डित्य दिखलाया है और उसकी विधि तथा सिद्धान्त (formula) आधुनिक गणित ज्योतिषसे बहुत ही समानता रखते हैं। विद्वानोंको यह पढ़कर बहुत ही आश्चर्य होगा कि ऐसी विधियां इतने पुराने और दूरवर्ती लेखकके ग्रंथोंमें भी विद्यमान थीं" (J. R. A. S. vol. XVII)

मिस्टर लैथ्ब्रिज (Lethbridge) ने लिखा है कि "भास्कराचार्य ने भी गणितकी एक ऐसी ही रीति निकाली थी जो आज-कलके यूरोपियन गणित वेत्ताओंके चलन-कलन (Differential caculus) से बहुत मिलती है" (School History of India, Appendix A p. ii)

III. ज्योतिष

एक यूरोपियन लेखकका कथन है कि "मनुष्यके लिये ज्योतिष सबसे अच्छी विद्या है" और वस्तुतः इससे अच्छी कौनसी चीज़ हो सकती है कि हम ब्रह्माण्ड की बड़ीसे बड़ी चीज़ का अवलोकन करें और उन अद्भुत और सुन्दर तारागण की गतियों और कार्यों को देख सकें जो अनन्त आकाशमें निरन्तर फैले हुये हैं और जिनको देखकर बुद्धि चकित और मन विस्मित रह जाता है।

मिल्टनने लिखा है कि "आकाश ईश्वर की वह पुस्तक है जिसमें तू उसके विचित्र शब्दों को पढ़ सके"। (Paradise Lost)

ज्योतिष विद्या केवल सभ्य पुरुषों को ही आ सकती है। इस लिये जिस जातिमें ज्योतिष विद्याका प्रचार हो उसको समझना चाहिये कि वह सभ्यभी अवश्य होगी। हिन्दू ज्योतिष अर्थात् जो कुछ इसका बचाकुचा है उसका यूरोपियन विद्वान बड़ा आदर करते हैं। डाक्टर सर विलियम हण्टर ने लिखा है कि "हिन्दुओं की ज्योतिष बहुत ही प्रशंसनीय है"। मिस्टर एलिफन्स्टन लिखते हैं कि "इनके ज्योतिष ग्रन्थोंसे ज्ञात होता है कि इन लोगों ने अपूर्व उन्नति की थी" (History of India p. 1.9)

हिन्दू ज्योतिषसे हमारे पूर्वजोंकी केवल ज्योतिष सम्बन्धी योग्यता और प्रशंसा ही प्रकाशित नहीं होती किन्तु इससे कुछ और भी सिद्ध होता है। इससे प्रकट होता है कि संस्कृत साहित्य और हिन्दुओं की विद्या सम्बन्धी योग्यता बहुत प्राचीन है। "ज्योतिषके इतिहासके प्रसिद्ध लेखक बेलीसाहब ने हिन्दुओं की एक ज्योतिष सम्बन्धी सारिणी (table) से सिद्ध किया है कि हिन्दु लोगोंने इस विद्यामें न केवल उन्नति ही की थी किन्तु वह विद्या इन लोगोंमें इतने दिनों पहिले की है कि इब्रानीके धर्म पुस्तकों की समयावली इनसे नहीं मिलती। उसने बड़ी ही प्रबल युक्ति दी थी और लोगोंने इसकी बड़ी प्रशंसा की थी और उस समय सबने मान लिया कि हिन्दुओं की विद्या, सभ्यता तथा संस्था अपूर्व और आश्चर्यजनक थी।" (Mills History of India vol p. 97) और यह बात याद रखनी चाहिये जैसा कि इस प्रसिद्ध ज्योतिषी बेलीसाहब का कथन है कि हिन्दू ज्योतिष वस्तुतः ज्योतिष विद्या का अवशिष्ठ भाग है और यह इस विद्या की कोई प्रारम्भिक पुस्तक नहीं है।"

(देखो Bailly's, Historie de l' Astronomie Ancienne.)

वीबर साहब लिखते हैं कि "भारतवर्षमें ज्योतिष विद्या खीष्टसे २७८० वर्ष पहिले विद्यमान थी।"[1] (Weber's Indian Literature P. 30) लेकिन आजकलके कई ज्योतिषी इसको और भी प्राचीन बतलाते हैं। कैसीनी, बेली, जेण्टिल,

---

[1] बाइट (Biot) की राय है कि चाँदकी गतिको ज्योतिष विद्याके लिये पहिले-पहिले खीष्टसे २३५७ वर्ष पहिले देखा गया था।

(Dunker's History of antiquity p.284)

और प्लेफेयर कहते हैं कि "हिन्दुओंको बहुतसी ऐसी बातें मालूम हैं जो खीष्टसे कमसेकम तीन हजार वर्ष पहिले देखी गई होंगी और उस समय भी ज्योतिष विद्या बहुत उन्नतिपर होगी" (Theogony of the Hindus p. 32)

काउण्ट जोर्न्सजर्नाने भली प्रकार सिद्धकर दिया है कि कलियुग (५००० वर्ष हुये के आरम्भमें ही हिन्दुओंने ज्योतिष विद्यामें उन्नति करली थी। वह लिखते हैं कि "हिन्दुओंके ज्योतिषके हिसाबसे कलियुग खीष्टसे ३१०२ वर्ष पहिले २० वीं फर्वरी २ घण्टे २७ मिनट ३० सैकण्डपर शुरू हुआ था—इससे प्रतीत होता है कि इन्होंने पल और विपल तक समय की गणना करली थी। वे कहते हैं कि सब उपग्रह उस समय संयुक्त होगये थे और इस संयोगका उनकी सारिणीमें बयान है।

बेली साहबका कथन है कि बुद्ध और बृहस्पति उस समय क्रान्तिवृत्तके एक ही दर्जेपर थे। मंगल-ग्रह आठवें और शनिश्चर ७ वें अंशपर था। इससे विदित है कि उस समय जिसको ब्राह्मण लोग कलिका आरम्भ कहते हैं यह चारों ग्रह एक दूसरेके पीछे सूर्यकी किरणोंसे छिप गये थे (पहिले शनिश्चर, फिर मंगल, फिर बृहस्पति, फिर बुध) इस तरह सब ग्रह मिल गये थे और यद्यपि शुक्र दृष्टि न पड़ता था तो भी यह कह दिया गया था कि सब उपग्रह मिल गये थे। ब्राह्मणोंका हिसाब हमारी ज्योतिष सम्बन्धी सारिणियोंसे इतना मिलता है कि अगर वह स्वयं इनका निरीक्षण न करते तो कभी ऐसा न लिख सकते थे।" आगे लिखा है "कि बेली साहबने यह भी बतलाया है लोबीरी (Laubere) जिसको १४ वें लुईने स्यामके बादशाहके पास एल्ची करके भेजा था १६८७ खी० में सूर्य्य ग्रहणकी सारिणी लाया था और ऐसी ही सारिणियां पेटूली (Patouillet) ने जो कर्नाटकमें प्रचारक था और जेण्टिलने टिरवालोरके ब्राह्मणोंसे लेकर यूरोपको भेजीं थी। और यद्यपि यह भिन्न भिन्न समयमें भिन्न भिन्न पुरुषोंसे जो कि एक दूसरेसे बहुत दूर रहते थे ली गई थीं तो भी उनकी बातें बिल्कुल मिलती हैं। इन सारिणियोंके विषयमें बेलीसाहब लिखते हैं कि गति का जो हिसाब ब्राह्मणों ने ४३८३ वर्षमें (अर्थात् पहिले निरीक्षण और बेली तक ४३८३ वर्ष हुये) लगाया है उसमें और कैसिनी और मेयरके सारिणियोंमें एक मिनटका भी भेद नहीं पड़ता। और चूंकि वह सारिणियां जिनको लोबेरी १६८७ में १४ वें लुईके समयमें लाया था कासिनी और मेयरकी सारिणियोंसे पुरानी हैं इसलिये उन सब की एकताका कारण यह है कि यह निरीक्षण एक साथ और ठीक २ किया गया होगा"। फिर लिखा है कि "हिन्दुस्तानी सारिणियोंमें भी चन्द्रमा की गतिका वही वार्षिक अन्तर किया है जिसे टाइको ब्रेही (Tycho Brahe) ने मालूम किया था। इससे अलकज़ेण्ड्रिया वाले और उनके अनुयायी अरब वाले अभिज्ञ न थे।"

वही महाशय आगे लिखते हैं कि "इन सब बातोंसे प्राचीन हिन्दुओंमें ज्योतिष विद्याकी प्राचीनता और निपुणता सिद्ध हो जाती है"। यदि यह सच है कि बेली हिसाबके अनुकूल हिन्दू लोगोंने खीष्टसे ३००० वर्षसे पहिले ज्योतिष और रेखागणितमें इतनी उन्नति करली थी तो न जाने उन्होंने इसका अध्ययन कैसौ वर्ष पूर्व आरम्भ किया था क्योंकि मनुष्य प्रत्येक विज्ञान को केवल शनैः शनैः ही सीखता है" (Theogony of the-Hindus p 37).

परन्तु बहुतसे ऐसे प्रमाण हैं जिनसे हिन्दू ज्योतिष उससे भी पुरानी सिद्ध हो जाती जितनी बेण्टले (Bentley) ने सिद्धकी है। सूर्यके केन्द्रका समीकरण भारतीय सारिणियोंके हिसाबसे २°, १०½' है लेकिन, आज कलके हिसाबसे केवल १° ५५½' ही है। उपग्रहोंके परस्पर आकर्षणका एक परिणाम यह भी है कि सौर्य्य कक्षाकी उत्केन्द्रता

जिसके आधार पर उपर्युक्त समीकरण बना है प्राचीन कालकी अपेक्षा अब अधिक है। ज्योतिष सम्बन्धी इस बीज का जो परिमाण हिन्दू लोग बताते हैं उससे बेली साहब ने यह सिद्ध किया है कि भारतीय सारिणी बहुत प्राचीन हैं। यह युक्ति बड़ी प्रबल है क्योंकि हिन्दुओं और यूरोपवालों-के हिसाबमें यह अन्तर इसलिये पड़ गया है कि उपग्रहोंकी कक्षा कुछ २ बदल गई हैं।

ज्योतिषके अन्य बीजोंके परिमाण जो हिन्दुओं की सारिणियोंमें दिये हैं, जैसे बृहस्पति और शनि-श्चरकी औसत गति (mean motion) वे सब वर्त्तमान समयके निरीक्षणसे तो नहीं मिलते किन्तु पृथ्वीकी आकर्षण-शक्तिसे प्रगट होता है कि कलियुग के आरम्भमें निरीक्षण करनेसे यही निकलते। 'एस्ट्रोनोमी इण्डियन' के छपने पर लापलेस (Laplace) ने इसे मालूम किया और 'जर्नल डिस सैवन्स' में प्रकाशित कराया था।

बेली साहबने सिद्ध कर दिया है कि बृहस्पतिकी कक्षाके मन्दोच्च (aphelion) का स्थान जैसा कि भारतीय सारिणियोंके कलियुगके शुरूका ज्ञात होता है बिल्कुल वही है जो लेलण्ड (Lalande) की आधुनिक सारिणियोंसे ज्ञात होता है यदि हम लाप्रेअके मीमांसा सम्बन्धी समीकरणों (theoretical equatuain) से इनको ठीक करलें। शनि-श्चरके केन्द्रके समीकरणका परिमाण भी हिन्दुओं के कथनानुसार है।

हिन्दू ज्योतिषकी प्राचीनता क्रान्तिवृत्तके त्रियक्त्वसे भी सिद्ध है जिसको हिन्दू लोग २४ दरजा बताते हैं। निरीक्षण और हिसाब दोनोंसे ही मालूम होता है कि क्रान्तिवृत्तका त्रियक्त्व बहुत दिनोंसे शनैः शनैः घट रहा है।

हिन्दू सारिणियोंसे ज्ञात होता है कि हिन्दुओं का सौर वर्ष ३६५ दिन ५ घं० ५० मिनट, ३५ सैकण्डका है लेकिन ला कैली (La callie) के हिसाबसे ३६५ दिन ५ घं० ४८ मि० ४६ सैकण्डका निकलता है। इससे मालूम होता है कि हिन्दुओंके निरीक्षणके समय वर्ष अबसे १ मिनट ४६ सैकंड बड़ा होता था। यह तो मानी हुई बात है कि लखूखा सालोंसे वर्षका परिमाण घट रहा है और घटता जायगा। ४६ शताब्दियोंमें ४०½ सैकंड घट जाता है। यह एक पक्का सबूत है कि भारतीय ज्योतिष बहुत प्राचीन है। यह निरीक्षण हिन्दुओंने द्वापरमें किया होगा जिसे ५००० वर्ष बीत गये।

अब यह बात स्पष्ट गई कि हिन्दू ज्योतिषने उस समय पूर्ण उन्नति करली थी जब यूरोप सहित शेष दुनिया अंधकारमें फंसी हुई थी।

सर डब्ल्यू हण्टरने लिखा है कि "कई बातोंमें ब्राह्मण लोग यूनानी ज्योतिषसे बढ़ गये थे उनका यश पश्चिममें फैलगया और कानीकन पास्चेल (Chronicon paschale) में भी इसका वर्णन होने लगा (जो ३३० खी० में शुरू हुये और जिसको हिराक्लियसने जो ६१० से ६४१ तक रहा ठीक किया था, Indian Gazetteer vol. IV, p. 214)

मिस्टर एलिफन्स्टन लिखते हैं कि इन उपर्युक्त बातोंके सिवाय जिनमें हिन्दू लोग अन्य जातियोंसे बढ़े हुये हैं मिस्टर कोलब्रुकने दो बातें ज्योतिष संब-न्धी भी लिखी हैं। पहिली उनके संपात विषयक विचार हैं जो टालमीसे अधिक और अरबवालोंके तुल्य ठीक थे। अरबवालोंने बहुत दिनों पीछे इतनी उन्नतिकी है। दूसरी, पृथ्वीका अपनी कीलीपर दैनिक चक्र जिसकी मीमांसा ब्राह्मणोंने खीष्टसे ५०० से वर्ष पहिले की थी " (History of India p. 132, footnote)।

सर डब्ल्यूहण्टर कहते हैं कि "उपग्रहकी कक्षा का संस्कृत शब्द 'उच्च' लैटिनके उन अनुवादोंमें चला गया है जो अरबीके ज्योतिष ग्रन्थोंके किये गये हैं। संस्कृत शब्द उच्चका औक्स (सम्बो-धन औगिस) हो गया (Renaud p 325 Weber p. 257)।

प्रो० वीबर लिखते हैं कि "हिन्दू ज्योतिषकी प्रशंसा पश्चिमी देशोंमें फैल गई और एण्डू बेरियस वा आरडू बेरियस जिसको क्रानीकन पासचेलमें बहुत बड़ा प्राचीन ज्योतिषी लिखा है वस्तुतः आर्य्यभट्ट ही था जो पुलीसाका प्रतिद्वंदी था और जिसकी अरबवालोंने अर्जबहारके नामसे बड़ी प्रशंसाकी थी।" (Weber's Indian literature p. 225)।

(क्रमशः)

समालोचना।

सूर्य-सिद्धान्त

[समालोचक-डा० गोरखप्रसाद, डी. एस-सी.]

सूर्य-सिद्धान्त। विज्ञान भाष्य। भाष्यकार: महावीर प्रसाद श्रीवास्तव, बी० एस-सी०, एल० टी० विशारद। भाग १—मध्यमाधिकार; भाग २—स्पष्टाधिकार; भाग ३—त्रिप्रश्नाधिकार; भाग ४—चन्द्रग्रहणाधिकार, सूर्यग्रहणाधिकार, परिलेखाधिकार ग्रह युत्यधिकार, नक्षत्र—ग्रह युत्यधिकार। प्रकाशक विज्ञान परिषद्, प्रयाग। मूल्य ॥=), ।॥), १॥) और ३॥)।

सूर्य-सिद्धान्तके विज्ञान भाष्यको देखकर चित्त प्रसन्न हो जाता है।। भाष्यकारने प्रत्येक श्लोकका केवल अनुवाद ही नहीं दिया है; उसपर भाष्य भी लिखा है, जिसका नाम विज्ञानभाष्य रक्खा है। भाष्य खूब स्पष्ट और ब्योरेवार है। ज्योतिष ऐसे टेढ़े विषयपर इतना सुन्दर और सरल भाष्य लिखनेके लिये हम बाबू महावीर प्रसादजीको हार्दिक बधाई देते हैं। जो पाश्चात्य ज्योतिषसे भली-भाँति परिचित हैं उनके लिये इस विज्ञान भाष्यसे सूर्य-सिद्धान्त समझना अत्यन्त सरल हो जायगा और जो केवल भारतीय ज्योतिष ही जानते हैं वे इस भाष्यसे बहुत कुछ पाश्चात्य ज्योतिष भी सीख लेंगे। उदाहरणोंसे सब रीतियाँ सरलकर दी गई हैं। भाष्यकारने अपनी ओरसे कुछ उठा नहीं रक्खा है। आशा है कि सूर्य-सिद्धान्त समाप्त हो जानेपर बाबू महावीर प्रसादजी अन्य प्राचीन ज्योतिष ग्रंथोंपर भी ऐसे ही अच्छे भाष्य लिखकर मातृ भाषाकी इसी प्रकार प्रशंसनीय सेवा करेंगे।

ऐसे अच्छे ग्रंथको इतने कम मूल्यपर प्रकाशित करके विज्ञान परिषदने हिन्दीकी सच्ची सेवाकी है, परन्तु मेरे मतमें छपाईमें कुछ अधिक व्यय करके यदि चित्र (Diagrams) अधिक सुन्दर बनवाये जाते, अशुद्धियाँ कम होने दी जातीं, काग़ज़ बढ़िया लगाया जाता, हाशिया (Margin) अधिक छोड़ा जाता और सिलाई जुज़की की जाती तो बहुत अच्छा होता। यदि दाम ड्योढ़ा या दुगुना भी हो जाता तो भी इतनी अच्छी पुस्तकके लिये कम ही होता। यदि पृष्ठ और बड़े आकारके रक्खे जाते तो सब भागोंको एक ही जिल्दमें बाँधनेमें सुभीता होता। प्रस्तुत आकारमें पुस्तक बहुत मोटी हो जायगी।

त्रिप्रश्नाधिकारके पढ़नेपर निम्नलिखित त्रुटियाँ जान पड़ी जिन्हें यहाँ इसलिये दे दिया जाता है कि दूसरे संस्करणमें इनका संशोधन हो जाय।

पृष्ठ ३३३। श्लोक ६ के अनुवादमें "पूर्व और पश्चिम विन्दुओंपर होते हैं" यह स्पष्ट नहीं है। इसके बदले "पूर्व और पश्चिम विन्दुओंसे होकर जाते हैं" अच्छा होगा।

पृष्ठ ३४२, पंक्ति १२। "इष्ट आन्दोलन = $\frac{५०२६}{७२००}$" के बदले "इष्ट आन्दोलन = $\frac{५०२६}{७२००}$ × चार समकोण" होना चाहिये।

पृष्ठ ३५०, पंक्ति १५-१८। यह स्पष्ट नहीं है कि 'द' क्यों इस प्रकार चलता है और नक्षत्र-चक्र क्यों लोलककी तरह आंदोलन करता हुआ देख पड़ता है।

पृष्ठ ३५५, पंक्ति १७। "ध्रुवसे अन्य तारों का भी अंतर बहुत कम पड़ गया है" यह अशुद्ध है। अन्तर (Distance) कम या अधिक दोनों हो

जा सकता है। यह उस तारेकी स्थिति पर निर्भर है। "ध्रुवसे अन्य ताराओं की दूरीमें भी अन्तर पड़ जाता है," ऐसा लिखना अच्छा होगा।

पृष्ठ ३५८, पंक्ति ६। "निरक्ष देशीय तल सूर्यकी ओर कुछ झुक जाता है, जिससे पृथ्वीका अक्ष धधा कुछ डगमगा जाता है" अशुद्ध है। "निरक्ष देशीय तल सूर्य की ओर झुक जाने की चेष्टा करता है, जिससे पृथ्वी का अक्ष ध धा कुछ विचलित हो जाता है"। तल वस्तुतः झुकने नहीं पता और डगमगाना "Virbate" के अर्थमें प्रयोग करना ठीक होगा।

पृष्ठ ३६८, पंक्ति ४। "अयनांश" के बदले "सूर्य के अयनांश" में लिखना ठीक होगा।

पृष्ठ ३६८, पंक्ति ११। $\left\{ \frac{व(व+१)}{२} \right\}$ के बदले $\frac{व^२}{२}$ होना चाहिये। श्रेणी व्यवहार (Arithmetical progression) के बदले चलराशि कलन Integral calculus) का प्रयोग करना चाहिये।

पृष्ठ ३७९। कुल बात दो चार लाइनमें अच्छी तरह समझाई जा सकती है। बहुत समझानेसे सरल बात भी कठिन हो जाती है।

पृष्ठ ३८१, पंक्ति ३। यह कोण ६ विकलाके लगभग होता है" अशुद्ध है। "यह कोण लगभग ६ विकलासे कभी भी अधिक नहीं होता है" शुद्ध है।

पृष्ठ ३८२, पंक्ति ३। यहाँ बतलाना चाहिये कि स्पर्श रेखाओं की सारिणीसे अक्षांश किस प्रकार अत्यन्त सुगमतासे जाना जा सकता है।

पृष्ठ ३९४, पंक्ति ३। "परम क्रान्ति का सूत्र" के बदले केवल "परम क्रान्ति" लिखना चाहिये।

पृष्ठ ३९४, अन्त से दूसरी पंक्तिसे लेकर पृष्ठ ३९५ की १० वीं पंक्ति तक। यह व्याख्या अशुद्ध है। शुद्ध व्याख्या बापूदेव शास्त्री लिखित सूर्य सिद्धान्तके अंगरेज़ी अनुवादमें पृष्ठ ३२ पर दी है।

पृष्ठ ४१२, श्लोक २६ की उपपत्तिमें निम्न लिखित रीतिसे फल शीघ्र निकलता है।

$$मध्याह्न\ कर्णाग्र = \frac{क्रांतिज्या \times मध्याह्न\ छाया\ कर्ण}{अक्षांश\ कोटिज्या}$$

इस लिये समीकरण (१) में मध्याह्न कर्णाग्रा का यह मान उत्थापन करनेसे

$$छाया\ कर्ण = \frac{मध्याह्न\ छाया\ कर्ण}{क्रान्तिज्या} \times \frac{पलभा \times अक्षांश\ कोटिज्या}{मध्यान्ह\ छाया\ कर्ण}$$

$$= \frac{पलभा \times अक्षांश\ कोटिज्या}{क्रान्तिज्या}$$

जो २५वें श्लोक नियम का ही एक रूप है। इस लिये...

पृष्ठ ४३६, अन्तिम तीन पंक्तियां। प्रच्छाया (penumbra) के कारण छाया कभी सूक्ष्म रूपसे नहीं नापी जा सकती, इंचके पहले ही दशमलवमें संशय रह जाता है, तीसरे दशमलवकी कौन कहे!

पृष्ठ ४५२। वहाँ लघुरिक्थों (logarithms) का प्रयोग करना चाहिये था।

पृष्ठ ४९३, पंक्ति ४। "सूर्यके एक उदयसे लेकर दूसरे उदय तकके समयको सावन दिन कहते हैं" यह ठीक नहीं है क्योंकि यह अक्षांशपर निर्भर है।

पृष्ठ ५१४। चित्र कुछ अशुद्ध है। जहाँ रेखा ख बेंड़ी रेखाको काटती है, उसीके ऊपर ही क और खा को मिलना चाहिये।

पृष्ठ ५२३, उदाहरण ४। इसे यों करनेसे उत्तर तुरंत निकलता है।

चित्रसे काल समीकरण (equation of time) निकला—१६ मिनट।

इसलिये उज्जैनमें जिस समय सूर्य यामोत्तर वृत्तपर आया उस समय स्थानीय समय था १२ घं० मि—१६ मि=११ घं ४४ मि०

इसलिये उस क्षण भारतीय समय था ११ घं ४४ मि

— १/१५ (७५ घं ४६ मि) + ५ घं ३० मि

=(११ घं ४४ मि) – (५ घं ३ मि)

+ (५ घं ३० मि)

= १२ घं ११ मि०

पृष्ठ ५३८, पंक्ति ७ के बाद इतने पद छोड़ दिये गये हैं कि बाल (Ball) की पुस्तकको न जाननेवाला इसे समझ नहीं सकता।

पृष्ठ ५५६ अन्तिम पंक्ति। "इसका" के बदले "अंडाकार दिखलाई पड़नेका" होना चाहिये। सूर्य बड़ा क्यों दिखलाई पड़ता है यह भी बतलाना चाहिये।

पृष्ठ ५६६, उदाहरण १। इसे नाविक पंचांग (Nautil Almanac) में दी हुई सारिणीसे निकालना चाहिये।

पृष्ठ ५८४, पंक्ति १५। "ख स्वास्तिकका भूकेंद्रिक शर" के बदले भूकेन्द्रिक खस्वस्तिकका शर" होना चाहिये।

पृष्ठ ६०२ इत्यादि। दोनों रीतियां शुक्र-गमन (Transit of Venus) पर निर्भर हैं। ये रीतियाँ अच्छी नहीं हैं। कमसे एरास (eros) की सहायतासे सूर्य-लम्बन जाननेकी रीतिका वर्णन अवश्य देना चाहिये था, क्योंकि यही रीति बहुत अच्छी है।

पृष्ठ ६१५। पृथ्वीको स्थायी मानकर वार्षिक 'लम्बन' समझानेमें सुगमता होती।

गिरहदार मोती

ले० महर्षि शिवव्रत लाल एम० ए०, राधास्वामी धाम, ज़िला मिरज़ापुर, राज बनारस, मूल्य ॥) पृ० सं० ६० छपाई कागज उत्तम, प्रकाशक श्रीदीवान वंशधारी लाल, 'सन्त' प्रयाग।

महर्षिजीने मोतियोंका एक सरल, उपयोगी और मनोरञ्जक सिलसिला निकाला है। गिरहदार मोतीमें छोटेसे उपन्यासके रूपमें मलकाना राजपूतकी उत्पत्ति और उसका संक्षेप इतिहास वर्णन किया गया है। कथानक अत्यन्त ही रोचक है, और इस सुन्दरता से लिखा गया है कि बिना समाप्त किये छोड़नेको मन नहीं चाहता। बाबर के साथ राणा संग्रामसिंह का युद्ध हुआ। राणा संग्राममें मारे जाते हैं। इसके पश्चात् बलराम और पतराम दो क्षत्रिय बाबरसे बदला लेनेके उद्देश्यसे रूप बदलकर दिल्ली आते हैं। बड़े प्रयत्नसे उन्हें एक अवसर मिलता है। पर बाबर की भलमनसाहत और उदारता इन दोनोंके दिल पर बैठ जाती है जब कि बाबर एक मतवाले हाथी से एक बच्चे की रक्षा करता है। ये दोनों भी नौमुस्लिम हो जाते हैं। इसमें हिम्मतखां लोदी नामक व्यक्ति का चरित्र बहुत ही अच्छा अंकित किया गया है। हमारा अनुरोध है कि पाठक इस पुस्तक को अवश्य पढ़ें।

—सत्यप्रकाश

वैज्ञानिक पुस्तकें

विज्ञान परिषद् ग्रन्थमाला

१—**विज्ञान प्रवेशिका भाग १**—ले० प्रो० रामदास गौड़, एम. ए., तथा प्रो० सालिग्राम, एम.एस-सी. ।)

२—**मिफताह-उल-फ़नून**—(वि० प्र० भाग १ का उर्दू भाषान्तर) अनु० प्रो० सैयद मोहम्मद अली नामी, एम. ए. ... ... ।)

३—**ताप**—ले० प्रो० प्रेमवल्लभ जोषी, एम. ए. ।=)

४—**हरारत**—(तापका उर्दू भाषान्तर) अनु० प्रो० मेहदी हुसेन नासिरी, एम. ए. ... ।)

५—**विज्ञान प्रवेशिका भाग २**—ले अध्यापक महावीर प्रसाद, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद १)

६—**मनोरंजक रसायन**—ले० प्रो० गोपालस्वरूप भार्गव एम. एस-सी. । इसमें साइन्सकी बहुत सी मनोहर बातें लिखी हैं। जो लोग साइन्सकी बातें हिन्दीमें जानना चाहते हैं वे इस पुस्तक को जरूर पढ़ें। ... १॥)

७—**सूर्य सिद्धान्त विज्ञान भाष्य**—ले० श्री० महावीर प्रसाद श्रीवास्तव, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद

मध्यमाधिकार ... ... ॥=)

स्पष्टाधिकार ... ... ।॥)

त्रिप्रश्नाधिकार ... ... १॥)

चन्द्रग्रहणाधिकारसेउदयास्ताधिकारतक १॥)

'विज्ञान' ग्रन्थमाला

१—**पशुपक्षियोंका शृङ्गार रहस्य**—ले० अ० शालिग्राम वर्मा, एम.ए., बी. एस-सी. ... -)

२—**ज़ीनत वहश व तयर**—अनु० प्रो० मेहदी-हुसैन नासिरी, एम. ए. ... ... -)

३—**केला**—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली -)

४—**सुवर्णकारी**—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली ।)

५—**गुरुदेवके साथ यात्रा**—ले० अध्या० महावीर प्रसाद, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद ।=)

६—**शिक्षितोंका स्वास्थ्य व्यतिक्रम**—ले० स्वर्गीय पं० गोपाल नारायण सेन सिंह, बी.ए., एल.टी. ।)

७—**चुम्बक**—ले० प्रो० सालिग्राम भार्गव, एम. एस-सी. ... ... ।=)

८—**क्षयरोग**—ले० डा० त्रिलोकानाथ वर्मा, बी. एस. सी, एम-बी. बी. एस ...

९—**दियासलाई और फ़ास्फ़ोरस**—ले० प्रो० रामदास गौड़, एम. ए. ... ... -)

१०—**वैज्ञानिक परिमाण**—ले० डा० निहाल करण सेठी, डी. एस. सी. तथा श्री सत्यप्रकाश, एम. एस-सी० ... १॥)

११—**कृत्रिम काष्ठ**—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली -)

१२—**आलू**—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली ... ।)

१३—**फसल के शत्रु**—ले० श्री० शङ्करराव जोषी ।=)

१४—**ज्वर निदान और शुश्रूषा**—ले० डा० बी० के० मित्र, एल. एम. एस. ... ... ।)

१५—**कार्बनिक रसायन**—ले० श्री० सत्यप्रकाश एम-एस-सी० ... ... २॥)

१६—**कपास और भारतवर्ष**—ले० पं० तेज शङ्कर कोचक, बी. ए., एस-सी. ... -)

१७—**मनुष्यका आहार**—ले० श्री० गोपीनाथ गुप्त वैद्य ... ... १)

१८—**वर्षा और वनस्पति**—ले० शङ्कर राव जोषी ।)

१९—**सुन्दरी मनोरमाकी करुण कथा**—अनु० श्री नवनिद्धिराय, एम. ए. ... ... -)॥

अन्य वैज्ञानिक पुस्तकें

हमारे शरीरकी रचना—ले० डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा, बी. एस-सी., एम. बी., बी. एस.

भाग १ ... ... २॥)

भाग २ ... ... ४)

चिकित्सा-सोपान—ले० डा० बी० के० मित्र, एल. एम. एस. ... ... १)

भारी भ्रम—ले० प्रो० रामदास गौड़ ... १।)

वैज्ञानिक अद्वैतवाद—ले० प्रो० रामदास गौड़ १॥=)

वैज्ञानिक कोष— ... ... ४)

गृह-शिल्प— ... ... ॥)

खादका उपयोग— ... ... १)

मन्त्री

विज्ञान परिषत्, प्रायग

मुद्रक—सूरजप्रसाद खन्ना, हिन्दी-साहित्य प्रेस, प्रयाग

pproved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and
पूर्ण संख्या—१७५ Central Provinces for use in Schools and Libraries. Reg. No. A.708

भाग ३०
Vol. 30.

धन, संवत् १९८६

दिसम्बर १९२९

संख्या ३
No 3

विज्ञान

प्रयागकी विज्ञानपरिषत्का मुखपत्र

Vijnana, the Hindi Organ of the Vernacular Scientific Society, Allahabad.

अवैतनिक सम्पादक

ब्रजराज

एम. ए., बी. एस-सी., एल-एल, बी.

सत्यप्रकाश,

एम. एस-सी., विशारद.

प्रकाशक

वार्षिक मूल्य ३)] **विज्ञान-परिषत्, प्रयाग** [१ प्रतिका मूल्य ।)

विषय-सूची

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५॥

भाग ३० | धन, संवत् १९८६ | संख्या ३

भारतका गणित-शास्त्र

(अनु०—श्री पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय एम० ए०)

गतांकसे आगे

प्रोफेसर विलसन लिखते हैं "कि वर्त्तमान ज्योतिष विद्यासे भारतीय ज्योतिषके ठीक ठीक निरीक्षणके यथोचित् परिणामोंके बहुतसे प्रमाण मिलते हैं। क्रान्ति वृत्तके चान्द्रिक राशियोंमें विभाग, सौर्य राशिचक्र, उपग्रहोंकी मध्यमगति, संपात, पृथ्वीकी आकाशमें स्वयं स्थिति, पृथ्वीकी अपनी कीली पर दैनिक चाल, चांदका अपनी कीली पर घूमना, चांदकी पृथ्वीसे दूरी, पृथ्वीकी कक्षाका परिमाण, ग्रहणोंका हिसाब, यह सब बातें जानना मूर्ख आदमियोंका काम नहीं था।" (Mill's History of India vol. II p. 406)।

लेकिन हिन्दुओंकी उपजशक्ति भी ऐसी ही विलक्षण है जैसी उनकी निपुणता। बड़ी अद्भुत बात यह है कि हिन्दुओंकी रीतियां नई और विचित्र हैं। प्रोफेसर विलसनने लिखा है कि "हिन्दू ज्योतिषकी नवीनता तो सिद्ध ही है परन्तु इसके प्रमाण उनके ग्रन्थोंमें भी मिलते हैं और यद्यपि हिन्दुओंके और अन्य जातियोंके ग्रन्थोंमें बहुत सा सादृश्य है परन्तु हिन्दुओंकी रीतियां विचित्र हैं।" (Mill's History of India vol. II, p. 107) एलिफन्स्टन साहब कहते हैं कि "अधिक उन्नत अवस्थामें जब दूसरोंसे शिक्षा ग्रहण करनेकी सम्भावना हो सकती है इनकी रीतियां न केवल नई ही हैं वरन् उनका आधार भी वैज्ञानिक नियमों पर है जिनसे कोई प्राचीन जाति

अभिज्ञ न थी और जिनका यूरोपको भी दो सौ वर्ष हुये ज्ञान न था।" (Elphinston's History of India p. 132)।

अमेरिकन ओरियेण्टल सुसाइटीके जर्नलकी छठी जिल्दमें प्रोफेसर व्हिटनी (Whitney) ने रेवरेण्ड ई० बर्गिस (Rev. E. Burgess) का किया हुआ सूर्य्य सिद्धान्तका अंग्रेज़ी अनुवाद छापा है, जिसमें उसने अपनी ओरसे भाष्य भी दिया है। इसपर पेरिसके ज्योतिषी स्वर्गवासी बायट (M. Boit) साहब और बर्लिनके वीबर साहबने बहुत लिखा था। बायटका विचार था कि हिन्दुओंने नक्षत्रोंकी शिक्षा चीनियोंसे प्राप्तकी लेकिन प्रो० व्हिटनीने[1] इसी पत्रमें दो और लेख दिये जिनमें उसने भली प्रकार सिद्धकर दिया कि हिन्दुओंके नक्षत्र और चीनियोंके 'स्यू' में भेद है। 'स्यू' केवल एक तारेको कहते हैं परन्तु नक्षत्रसे तारागणका अभिप्राय है या यों कहो कि तारागण युक्त आकाशका एक भाग। प्रो० वीबरने यह भी सिद्ध किया है कि चीनवालेके स्यूका पता खीष्टसे दो या तीन सौवर्ष पहिले नहीं चलता लेकिन नक्षत्रोंका वर्णन वेद मंत्रों तकमें है", परन्तु इस विद्याकी प्राचीनतासे ही सिद्ध है कि इसका निकास हिन्दुओंसे हुआ।

इस विद्यामें भी अरबवाले हिन्दुओंके शिष्य थे। प्रो० वीबरने लिखा है कि अरब निवासी भारतीय ज्योतिषियोंकी बड़ी प्रशंसा करते थे। आगे लिखा है कि "आठवीं और नवीं शताब्दीमें अरबवाले ज्योतिष विद्यामें भारतवर्षियोंके शिष्य रहे जिनसे उन्होंने चांद्रिक नक्षत्रोंको नये क्रमसे सीखा और जिनके सिद्धान्तोंको उन्होंने हिन्दुस्तानी ज्योतिषियोंकी अध्यक्षतामें जिनको बगदादके खलीफाने अपने राजमें बुलाया था अनुवाद किया"।

[1] W. P. Whitney, "हिन्दू और चीनी ज्योतिषके विषयमें वीबर और बायटकी राय" पृ. २५.

(Weber's Indian literature p. 255)

डाक्टर रोबर्टसन लिखते हैं कि "बहुत सम्भव है कि राशिचक्रकी बारह राशियां भारतवर्षमें निकली हों।"

(Disquisition concerning India p. 280)

सर डब्ल्यू-डब्ल्यू हण्टर लिखते हैं "अरबवाले आठवीं शताब्दीमें हिन्दुओंके शिष्य रहे और इन सिद्धान्तोंको सिन्द-हिन्दके नामसे अनुवादकर लिया" (Indian Gazetteer 'India' p 218) प्रो० विल्सन लिखते हैं कि खलीफोंने और विशेषकर हारूनुर्रशीद और अलमामूंने हिन्दुस्तानी ज्योतिषियोंका बहुत सन्मान किया और उनको बगदाद बुलाकर उनके ग्रन्थोंको अरबीमें अनुवाद कराया। यूनानी लोगोंकी तरह हिन्दू अरबवालोंके शिक्षक रहे"।

(Mill's History of India vol II p. 107)

सिद्धान्त* नौ हैं (१) ब्रह्म सिद्धान्त (२) सूर्य्यसिद्धान्त (३) सोमसिद्धान्त (४) बृहस्पति सिद्धान्त (५) गार्ग्य सिद्धान्त (६) नारद सिद्धान्त (७) पाराशर सिद्धान्त (८) पुलस्त्य सिद्धान्त (९) वशिष्ठ सिद्धान्त। इनमेंसे यूरोपमें सूर्य्य सिद्धान्तको बहुत लोग जानते हैं। यह उन सब सिद्धान्तोंसे पुराना है जो हमको मिलते हैं (Indian wisdom pp. 184, 185)। सूर्य्य सिद्धान्तके देखनेसे पाया जाता है कि यह सबसे पुराना ग्रन्थ है ग्रन्थकारने दो श्लोकोंमें पुस्तक रचनेका समय दिया है।

कल्पादस्माच्च मनवः षड्व्यतीताः ससन्धयः।
वैवस्वतस्य च मनोर्युगानां त्रिघनोगतः॥
अष्टाविंशाद्युगादस्माद्यातमे तत्कृतं युगम्।
अतः कालं प्रसंख्याय य संख्यामेकत्र पिण्डयेत॥
माध्यम अध्याय श्लो० २२, २३।

* पंच सिद्धान्त जो बहुत माने जाते हैं यह हैं (१) पैलिस सिद्धान्त (२) रोमक सिद्धान्त (३) वशिष्ठ सिद्धान्त (४) सौर सिद्धान्त या ब्रह्म सिद्धान्त (५) पैलवह सिद्धान्त।

इस कल्पमें छः मन्वन्तर और ७ वेंमें २७ चतुर्युगी बीत गईं। २८वीं चतुयुर्गी का सतयुग बीत चुका, इससे ही पुस्तक रचने का समय जाना जा सकता है।" इस हिसाबसे यह पुस्तक २१६५००० वर्ष पुराना है।

मिस्टर डैविसने प्रसिद्ध हिन्दू ज्योतिषी पाराशरके निरीक्षणोंसे हिसाब लगाया है कि पाराशर खीष्टसे १३६१ वर्ष पहिले हुआ। काउण्ट जोर्न्स-जर्ना कहते हैं कि पाराशरने 'ईश्वरकी आकाशरूपी किताबका; चेलिडयन, अरबी और यूनानियोंसे बहुत पहिले अध्ययन कर लिया था' (Theogony of the Hindus pp 33, 34)।

मिस्टर हफटनने लिखा है कि "पाराशरकी पुस्तकसे ज्ञात होता है कि हिन्दू क्रान्तिवृत्तके बननेके समयके अनुसार होनेके लिये सम्पात भारवि के १०वें अंशसे आश्विनके प्रथम अंशमें हट गया होगा। अर्थात् पाराशरके समयसे ४६६ खी० तक २३ दर्जे २० मिनटका भेद हो गया होगा। इस हिसाबसे पाराशर खीष्टसे पूर्व १२वीं शताब्दीके अन्तमें हुआ होगा।"

पाराशर मुनिके पश्चात् आर्य्यभट्ट हुआ जो फलित ज्योतिषका भी विद्वान् था। इसके जन्मका समय ज्ञात नहीं। हाँ, इतना मालूम है कि यह विक्रमादित्यके बहुत पहिले हुआ। यह वही पुरुष था जिसके विषयमें यूरोपियन लोग कहते हैं कि "इसने पहिले पहिल पृथ्वीके कीलीके चारों ओर घूमनेकी दैनिक गति निकाली और जो सूर्य्यग्रहण और चन्द्रग्रहणके ठीक ठीक कारणोंको जानता था। इसने अयन विन्दु और संपात विन्दुओंका भी निरीक्षण किया था।" (Chamber's Encyclopaedia)

उसके मुख्य ग्रन्थ यह हैं (१) आर्य्य बाटिका (२) दश गीतिक (३) आर्य्यवृत्त।

आर्य्यभट्टके पश्चात् सबसे प्रसिद्ध ज्योतिषी बराह मिहिर हुआ जो फलित ज्योतिषमें बड़ा प्रवीण था। मिसिस मैनिंगने लिखा है कि "बराहमिहिर एक ऐसा प्रसिद्ध ज्योतिर्वित् था जो फलित ज्योतिषको बहुत पसन्द करता था"। "यद्यपि वह गणित ज्योतिषका पण्डित कहलाता है परन्तु वह फलित ज्योतिषमें बहुत निपुण था। वह संहिताकी हर शाखामें प्रवीण था और अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ बृहत्संहिता लिखनेसे पूर्व उसने गणित ज्योतिषपर ही एक ग्रन्थ रचा था" (Ancient and medieval India, vol I pp 368, 369) बराहमिहिर खीष्टसे एक शताब्दी पहले हुआ, वह विक्रमादित्यके नवरत्नोंमें था। नवरत्न यह थे।

धन्वन्तरिः क्षपणको भूरसिंह शंकू।
बेताल भट्टधर खर्पर कालिदासाः

बराह मिहिरके मुख्य ग्रन्थ यह हैं (१) बृहज्जातक (२) बृहत्संहिता (३) पंच सिद्धान्तका संक्षेप। मिसिस मैनिंगने लिखा है "बृहत्संहिताका विस्तार बहुत विचित्र है जिसको अरबके ज्योतिषी (फलित) अलबुरूनीने बहुत अच्छा समझा था और हम भी इसको पसन्द करते हैं क्योंकि यद्यपि इसमें फलित ज्योतिषका विधान है तथापि इसको भूगोल, और इसकी ग्रह निर्माण, तथा चित्रकारी सम्बन्धी बातें इतनी अच्छी हैं कि संस्कृतके किसी ग्रन्थमें ऐसी उपयोगी बातें नहीं मिलतीं।"(प्राचीन और मध्यकालीन भारतवर्ष जि० १ पृ० ३७० और डा० कर्नकी विब्लीकल इण्डियाकी भूमिका पृ० २७)

हिन्दुस्तानका आखिरी प्रसिद्ध ज्योतिषी भास्कराचार्य था जिसको यूरोपियन लोग १२ वीं शताब्दीका बतलाते हैं। उसने आकर्षण शक्तिकी बहुत अच्छी तरहसे मीमांसाकी है और उसके गणित सम्बन्धी ग्रंथतो बड़ेसे बड़े गणितज्ञोंसे भी अच्छे हैं।

पृथ्वीकी गोलाई और उसकी दैनिक चालको तो हिन्दू लोग पहिलेसे ही जानते थे। ऐतरेय ब्राह्मणमें एक ऋषि कहता है "इन्द्रके तुल्य इस

बृहत यज्ञमें कवश पुत्र तुरने जन्मेजयका श्राद्ध किया और इसके साथ गोल पृथ्वीको निरन्तर जीत लिया।" हौगका ऐतरेय ब्राह्मण जि० २ पृ० २४२) आर्य्य भट्टीयमें लिखा है।

वृत्तभ पंजरमध्ये कक्षया परिवेष्टितः खमध्यगतः।
मृज्जल शिखिवायुमयो भूगोलः सर्वतोवृत्तः॥

"आकाशमें स्थित और पंचतत्वोंसे बनी हुई पृथ्वी बिल्कुल गोल है।"

गोलाध्यायमें भास्कराचार्य लिखते हैं।

सभोयेतः स्यात्परिधेः शतांशः
पृथवीच पृथवी नितरान्तनोयान्।
नरस्यतत्पृष्ट गतस्यकृष्णा
समेवतस्य प्रतिभात्यतः सा॥

"एक वृत्तका सौवां भाग सीधी रेखाके तुल्य दीख पड़ता है। हमारी पृथ्वी तो एक बड़ा गोला है और उसके सामने मनुष्य बहुत ही छोटा है इसलिये पृथ्वी चपटी दीख पड़ती है।"

डाक्टर एच० कर्नने 'आर्यभट्टके कुछ बचे ग्रन्थ' पर एक लेख लिखा है जिसमें आर्य्यभट्टके एक वाक्यका इस प्रकार अनुवाद किया है कि "पृथ्वी, आग, पानी और वायुका बना हुआ एक गोला जो बिल्कुल गोल है और जिसके चारों ओर घेरा (भूमध्यरेखा) है आकाशमें स्थित हैं" इत्यादि।

पृथ्वीकी वार्षिकगतिके विषयमें ऋग्वेद कहता है

या गौर्वर्त्तनि पर्य्येति निष्कृतं
पयो दुहाना व्रतनीरवारतः।
सा प्रब्रुवाणा वरुणाय दाशुषे
देवेभ्यो दाशद्ध विशा विवस्वते॥

दैनिक गति यजुर्वेदमें इस प्रकार लिखी है।

आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः। पितरंच प्रयन्त्स्वः॥

ऐतरेय ब्राह्मणमें लिखा है कि सूर्य्य न उदय होता है न अस्त परन्तु जब पृथ्वीपर कीलीके चारों ओर घूमनेमें कारण प्रकाश आ जाता है तो दिन होता है" इत्यादि (Haug's Atteriya Brahmin vol II p. 242)

अथ यदेनं प्रातरुदेतीतिमन्यन्ते रात्रेरेव तदन्तमित्वा अथात्मानं विपर्यस्यते अहरेवावस्तात् कुरुते रात्रिम् पुरस्तात्। स वै एष न कदाचन निम्लोचति। न ह वै कदाचन निम्लोचति।

ग्रहोंके ठहरे रहनेके विषयमें आर्य्यभट्ट लिखता है।

भपञ्जरः स्थिरो भूरेव वृत्य प्रातिदैवासिकौ।
उदयास्तमयौ संपादयते ग्रहनक्षत्राणाम्॥

"ग्रहगण स्थिर हैं। पृथ्वी ही कीली पर घूमती हुई उपग्रहों और ग्रहोंको उदय और अस्त करती है।" फिर वह प्रश्न उठाता है कि "ग्रह घूमते हुये क्यों मालूम होते हैं? और स्वयं ही उत्तर देता है कि "एक जहाज़में बैठा हुआ मनुष्य आगे बढ़ता है लेकिन उसे स्थिर चीज़ें पीछे जाती हुई दृष्ट पड़ती हैं इसी प्रकार स्थिर तारा गण भी प्रति दिन चलते दीख पड़ते हैं" (vol XX J. R. A. S. p.378)

वह यह भी कहता है कि ध्रुवों पर छः मासके रात दिन होते हैं।

विषुवद्धृत्तंद्युसदां क्षिते जित्वमितं तथा च दैत्यानां।
उत्तर याम्यौ क्रमशो मूर्द्धोर्द्धगताधुरवायस्तेषां।
उत्तर गोलेक्षितिजादुर्द्धपरितो भ्रमन्तमादित्यम्।
हर्ष्यं त्रिदशः सततं पश्यन्त्यसुराःअसव्यगंयाम्य॥

कहा जाता है कि

लङ्कापुरेऽर्कस्य यदोदयः
स्यात्तदादिनार्द्धं यमकोटिपुर्याम्।
भवेत्तदासिद्धपुरेऽस्तकालः
स्याद्रोमकेरात्रिदलंतदैव॥

जब लङ्कामें (भूमध्यरेखा पर) सूर्योदय हो जावामें दोपहर, अमेरिकामें सूर्य्यास्त और रोममें

अर्द्ध रात्रि होगी।" पृथ्वी के परिमाण के विषयमें लिखा है कि :—

प्रोक्तोयोजन संख्ययाकुपरिधेः
सप्ताङ्गनन्दाबधयस्तद्यतः।
कुभुजस्य सायक भुवः सिड्वांशकेनाधिकाः॥

"पृथ्वी की परिधि ४९६७ योजन और इसका व्यास १५८१$\frac{1}{2}$ योजन है।" योजन अंग्रेजी पांच मील का होता है इसलिये परिधि २४८३५ मील और व्यास ७९०५$\frac{2}{3}$ मील है।"

यजुर्वेदमें लिखा है कि पृथ्वी आकाशमें सूर्य्य की अधिक आकर्षण शक्तिसे ठहरी हुई है

आकृष्णेन रजसा वर्त्तमानो
निवेशयन्नमृतं मर्त्यंच।
हिरण्ययेन सविता रथेना देवो
याति भुवानानि पश्यन्॥

न्यूटनके जन्मसे सैकड़ों वर्ष पहिले सिद्धान्त शिरोमणिमें आकर्षणशक्ति को इस प्रकार लिखा है।

आकृष्टि शक्तिश्च महीतया यत्।
स्वस्थं गुरु स्वामिमुखं स्वशक्तया॥
आकृष्यते तत् पततीव भाति।
समे समन्तात् क्पतत्वियं रवेः॥

"आकर्षणशक्तिसे पृथ्वी सब चीजोंको अपनी ओर खींचती है इसी लिये सब वस्तुएं पृथ्वी पर गिरती हुई मालूम होती हैं। इत्यादि।"

चन्द्रादि तारे प्रकाश रहित हैं इस बातको इस प्रकार लिखा है।

भूग्रहभानां गोलार्द्धानिव स्वच्छायया विवर्णानि।
अर्द्धानियथा सारं सूर्य्याभिमुखानि दीप्यन्ते॥

"पृथ्वी, उपग्रह, और चांद सब सूर्य्यसे प्रकाश लेते हैं जो आधाभाग सूर्य्यके सामने रहता है प्रकाशित होता है उनका रङ्ग उन वस्तुओं के आश्रित है, जिनसे वे बने हैं"।

अथर्व वेदमें लिखा है "दिवि सोमोअधिश्रितः" "चन्द्रमा प्रकाश के लिये सूर्य्य के आश्रित है"

वायुमण्डल के विषयमें लिखा है
भूमेर्वहि द्वादशयोजनानि
भूवायुरत्राम्बुदविद्युदाद्यम्।

"वायुमण्डल पृथ्वीके चारो ओर १२ योजन (६० मील) तक है और बादल, विद्युत् आदि इसीके सम्बन्धी दृश्य हैं"

कोलब्रुक लिखता है कि "आर्य्यभट्ट मानता था कि पृथ्वी अपनी कीली पर दिन रात में घूम जाती है। वह सूर्य्य और चन्द्रग्रहण के ठीक ठीक कारणों को जानता था और देव माला वा फलित ज्योतिषके अनुकूल देखनेमें प्रकाशरहित उपग्रहों को न मानता था। उसका यह मत था कि चांद, उपग्रह (और तारागण) भी वस्तुतः प्रकाश रहित हैं और सूर्य्यके प्रकाशसे प्रकाशित होते हैं" (Colebrooke's essays, appendix G p. 467).

सूर्य्य और चन्द्रग्रहणके विषयमें लिखा है
छादयत्यर्कमिन्दुर्विधुं भूमिभाः।

"जब भूमि चलती २ सूर्य्य और चांदके बीचमें आ जाती है तो पृथ्वी की छाया चांद पर पड़ती है और इसे चन्द्रग्रहण कहते हैं। जब चांद और सूर्य्य पृथ्वीके बीचमें आता है तो सूर्य्य कटासा दीख पड़ता है यही सूर्य-ग्रहण है।

निम्न बातें बारह मिहिर के चन्द्र निरीक्षण से ली गई हैं।

"अर्द्ध चन्द्र जिसकी कक्षा सूर्य्य और पृथ्वीके बीचमें है सदैव सूर्य्यकी किरणोंसे प्रकाशित रहता है। दूसरा आधा अपनी छायाके कारण अन्धेरा रहता है जैसे धूपमें रक्खे हुये वर्तनके दो भाग होते हैं।" (बृहत्संहिता ५, ५, ८,)

ग्रहणोंके विषयमें वह लिखते हैं कि "इनका वास्तविक कारण यह है। चन्द्र ग्रहणमें चन्द्र पृथ्वी

की छायामें आजाता है। सूर्य्यग्रहणमें सूर्य्य का भी यही हाल होता है। इसी लिये चन्द्रग्रहण पश्चिमसे और सूर्य्यग्रहण पूर्वसे शुरू नहीं होता" (वृहत्संहिता ५, ५, ८)

कालिदास ने रघुवंशमें लिखा है

छायाहि भूमेः शशिनो मलत्वेनारोपिता
शुद्धिमतः प्रजाभिः

गीत गोविन्दमें जयदेवने लिखा है

"उस (रमणी) को देखकर उसका चित्त ऐसा विकल हुआ जैसे चान्द्री किरणोंसे समुद्र की लहरें"। (टाड का राजस्थान जि० १ पृ० ५४३)

असंख्य वर्षोंसे भारतवर्ष फिलासफरों, कवियों, ज्योतिषियों और गणितज्ञों का देश रहा है और अब भी कभी २ इसमें विचित्र पुरुष उत्पन्न होते रहते हैं। दो सौ वर्षसे कम हुये कि राजपूताने में अपने समय का एक अद्वितीय ज्योतिषी उत्पन्न हुआ। यह जयपुरका प्रसिद्ध जयसिंह था। सर विलियम हण्टर लिखते हैं "द्वितीय राजा जयसिंह ने अपनी राजधानी जयपुर, मथुरा, काशी, दिल्ली और उज्जैनमें तारागण की वेधशाला (रसदगाह) बनाये थे और इसी महापुरुषने डी ला हायर की १७०२ खी० में छपी हुई ज्योतिष सम्बन्धी सारणी को सुधारा था। अपने पाण्डित्य के स्मारक के तौर पर वह तारोंकी एक सूची छोड़ गया है जो उसने देखे थे जिसको ज़िज मुहम्मद शाही कहते हैं। बनारस में अब तक जिसकी वेधशाला बनी हुई है।"

यूरोपका प्रसिद्ध ज्योतिषी प्लेफेअर लिखता है कि "ज्योतिषमें ब्राह्मण लोग बड़े निश्चयसे अपने नतीजे तक पहुंचते हैं*" इससे हिन्दुओंकी रीतियों के नवीन उन्नत और वैज्ञानिक होनेका तथा उनकी ज्योतिष सम्बन्धी योग्यताका पूरा २ पता लग जाता है। प्रो० सर मोनियर विलियम्स कहते हैं कि "अपनी ज्योतिष विद्यासे ही हिन्दू लोग आज कलके भूगर्भ विद्यावेत्ताओं और ज्योतिषियों से भी अधिक स्वतंत्रतासे लाखों करोड़ों और अरबों वर्षों और युगों की गिनती करते चले जाते हैं। सारांश यह है कि एक हिन्दू ज्योतिषी अङ्कगणितके ऐसे अनन्त विचारों को बांध लेता है जो एक ऐसे पुरुष की बुद्धिके परे है जो अनन्त आकाशको मापनेमें अपनेको असमर्थ समझता है" । यह तुच्छता का बड़ा अद्भुत कथन है। मिसिस मैनिंग ठीक कहती है कि "हिन्दुओंके विचार सब मनुष्यों से अधिक विस्तृत हैं" (प्राचीन और मध्यकालीन भारत जिल्द १ पृ० ११४)

अन्य विद्याओं की भांति ज्योतिषमें भी हिन्दू ग्रन्थोंका जो कुछ बचाकुचा है उससे न केवल इन की अपूर्व योग्यता ही सिद्ध होती है किन्तु उनमें बहुतसी ऐसी बातें भी मिलती हैं जिनको दूसरे लोग अभी नहीं समझे। सर एम विलियम्स लिखते हैं कि "सूर्य्य सिद्धान्तके दूसरे अध्यायके शुरूमें उपग्रहों की चालों की एक विचित्र मीमांसा कीगई है" जिसको भारतवर्षके बाहर कोई नहीं जानता†

(हरविलास शारदाके 'हिन्दू सुपीरिओरिटी' ग्रन्थ से)

* हिन्दू ज्योतिष पर प्लेफेअर की सम्मति। देखो ट्राञ्जेक्शन्स औफ रोयल एशियाटिक सुसाइटी आफ़ ग्रेट-ब्रिटेन और आयरलैण्ड जि० २, पृ० १३८,१३९

† मोनियर विलियम्सकी इण्डियन विज़डम् पृ० १८९। मिस्टर सी. बी. क्लार्क एफ, जी. एस अपनी ज्योग्राफिक रीडर में लिखते हैं "थोड़े दिन हुये कि हम लोग दूर देशों का देशान्तर (Longitude) निकालना नहीं जानते थे। प्राचीन हिन्दू लोग चन्द्र ग्रहणके समय निरीक्षण करके देशान्तर घटिका निकालकर देशान्तर निकाल लेते थे यह रीति न केवल वैज्ञानिक ही है किन्तु दोषरहित भी है।

सर विलियम रैमज़े

[ले० श्री जगराज बिहारीलाल तथा श्री ब्रजबिहारीलाल]
दीक्षित एम० एस-सी०

ह संसार एक नाट्य मंदिर है। इस नाट्य शाला का न तो आदि ही है और न अन्त ही। प्रत्येक मनुष्य आया, और अपने नाटक का भाग पूर्ण करके चला गया। न जाने कितने नटों ने यह खेल किया होगा और चले गए। किसी को भी इसका ज्ञान नहीं। कोई भी व्यक्ति यह ज्ञान रखने की इच्छा ही नहीं करता है। हां! वस्तुतः कुछ नाट्यकार अपना भाग इस प्रकार करते हैं कि उनके कला कौशल की ज्योति का चित्र सदाके लिए बन जाता है। जब मनुष्य इस चित्र को देखते हैं तो उन्हें स्मरण हो आता है कि कोई ऐसा भी नाट्यकार था। इस प्रकार अंकित चित्रों का लाभ है। यह हमको सदैव यह याद दिलाते रहते हैं कि यदि तुम सदा के लिए अपना चिरस्थाई चित्र बनाना चाहते हो तो अपना भाग इस प्रकार करो अन्यथा अन्य अगणित मनुष्यों की भांति इस सांसारिक तिमिरमें विलुप्त हो जाओगे। बहुतसे व्यक्ति इस लाभ का उपभोग करते हैं। अपनी ज्योतिके विकीर्णार्थ उद्योग करते हैं और उद्योगमें बहुतसे सफल भी होते हैं। अन्य व्यक्तियोंको इस ओर ध्यान देनेका समय ही कहां है, उनको उदर निमित्त 'बहु कृत वेषा' तथा इस क्षणभंगुर शरीरके निमित्त नित्य नए नए आराम और सुखके प्रबन्ध से ही अवकाश कहां! ऐसे मनुष्योंका अपनी इस पृथ्वी माता पर व्यर्थ ही बोझ बढ़ानेसे कुछ काम नहीं। संसारमें आनेसे उनका न आना ही अच्छा है, जिस भांति उस नाट्यकार का मंच पर आना सर्वथा व्यर्थ है जो नाटक करना नहीं जानता। वैज्ञानिकमञ्च पर अपना भाग भली भांति करने वाले एक नटका नाम सर विलियम रैमज़े है। उस के कला कौशलकी ज्योति इतनी जगमगाती है कि उसने मनुष्यके हृदय पर एक ऐसा चिरस्थाई चित्र बना दिया है कि उसका लोप हो जाना सम्भव नहीं। हमको उनके नाट्य ढङ्गसे ज्ञान प्राप्त करना चाहिए और कुछ करना हो तो उसमें उन्हीं का अनुकरण करना चाहिए।

इस महान् पुरुषका जन्म सन् १८५२ ई० के २ अक्टूबर को हुआ था और उनका जन्म स्थान ग्लास्गोके निकट एक ग्राम क्युइनस्क्रीसेन्ट है। आप अपने पिता विलियम रैमज़े तथा जननी कैथरीन राबर्टसन् के इकलौते पुत्र थे। आपके पिता को अनेक वैज्ञानिक विषयोंसे स्वाभाविक प्रेम था और आपके चाचा भौगर्भिक जांच के मुख्य प्रबन्धक थे।

रैमज़ेके विद्याध्यनका संस्कार तथा श्री गणेश ग्लास्गो स्कूलके लेटिनके तीसरे दरजेसे हुआ। सन् १८६३ में इस दरजेमें नामांकित करानेके बाद वह सन् १८६६ में वहीं के विश्व विद्यालयको चले गए। वहां पर आपने साहित्य पढ़ा।

विश्वविद्यालयमें उन्हें रसायन पढ़ने का अवकाश कभी नहीं मिला था। और न अभी कुछ रसायनिक शास्त्रकाज्ञान ही था। स्कूलके दिनोंमें उसकी एक टांग पादुकन्दुक खेलते समय टूट गई थी। इसे भाग्य वश कहो या अभाग्यवश, परन्तु यह इन्हीं दिनोंमें हुआ कि जब उसको घर पड़े रहना पड़ा तो अवकाशके समयमें उसने ग्राहम साहब की लिखित 'रसायन' का अध्ययन किया था। इस अध्ययन का विशेष आशय तो अग्निपदार्थ इत्यादि बनानेसे था किन्तु इसका प्रभाव इससे कहीं अधिक हुआ। उसका रसायन से प्राकृतिक प्रेम दिन दिन बढ़ता गया और उसके रोगगृहने एक प्रयोगशाला का रूप धारण कर लिया। विश्वविद्यालय में सम्मिलित होने के बाद भी वह तथा उसके मित्र हेनरी फाइफ़ कुछ प्रयोगिक कार्य्य तीसरे

पहरके समय करते थे। उनके मुख्य प्रयोगयन्त्र मुखफुकनी तथा बुन्सेन साहेब के दग्धक थे जो उन्होंने स्वयम् बना लिये थे। इससे उन्हें कांच के साथ कार्य्य करनेमें बड़ा कौशल प्राप्त हो गया था और इन प्रयोगों ने उसके आगेके जीवन पर बड़ा प्रभाव डाला।

रैमज़े का स्कूल तथा विद्यालय जीवन बहुत कुछ सफल नहीं कहा जा सकता। परीक्षार्थ जो जो विषय लिए थे उनमें उसे न्यूनतम प्रेमही था और वैज्ञानिक प्रयोगों पर बहुत समय नष्ट करता था। फ्रेंच, जरमन, इटालियन इत्यादि भाषाएं सीखनेका भी उसे प्राकृतिक प्रेम था किन्तु यह प्रेम उन मृतक भाषाओं तक न था जो स्कूल इत्यादि में पढ़ाई जाती थीं।

रैमज़े का रसायन का नियमबद्ध अध्ययन सन् १८६६ की अक्तूबर से आरम्भ हुआ। इस समयसे वह टैकलाक साहेबकी प्रयोग शालामें काम करनेके लिये दो पहरको जाने लगा। यहां एक वर्ष का समय देकर उसने विश्लेषणात्मक रसायनमें (गुणात्मक तथा भारात्मक) दक्षता प्राप्त करली। सन् १८७० में उसने प्रोफेसर ऐन्डरसन साहेबकी वक्तृताओं में समय देना आरम्भ कर दिया। ऐन्डरसन साहेब पिरीदिन तथा कुनोलिन भस्मों पर कार्य करनेमें बड़े प्रसिद्ध थे और यहीं से रैमज़े ने कार्बनिक रसायनके प्रति रुचि प्रकट की। बहुत कुछ कार्य्य न कर पाया था कि दूसरे वर्ष वह हीडिलवर्ग को चला गया और बुनसेन साहेब की प्रार्थना करके उनकी प्रयोगशालामें कार्य करने की आज्ञा प्राप्त करली। किन्तु उसके मित्रों ने टुलिंगन में स्थित फिटिग साहेब की प्रयोगशाला की अकथनीय प्रशंसा की और रैमज़े दूसरेही वर्ष वहां चला गया और वहीं टैटलाक के यहां वाला पुराना कार्य्य परपौप्यम् अमोनियम् भस्मों पर आरंभ किया। यहीं उसको अनेक अमरीकनों की मित्रता प्राप्त करने का सौभाग्य भी प्राप्त हुआ। उसके इन्हीं मित्रोंमें डा० रेमसेन साहेब भी थे। आगामी वर्ष ही उन्होंने एक परीक्षा दी जो अपनी एम० एस-सी० के समान समझी जा सकती है और इसी के पश्चात् शीघ्र ही पी० एच० डी० का पद भी प्राप्त कर लिया। यद्यपि प्रयोगशालामें टैटलाक साहेबके बताये हुए विचारों पर कार्य्य आरम्भ किया था किन्तु शीघ्रही तनमन समस्त फिटिग साहेबके समर्पण करके उन्हींके आदेशोंको सादर ग्रहण करने लगा। फिटिग साहेब अपनी प्राचीन सफलताके भागी बानजावनिक पदार्थों से बड़ा प्रेम करते थे और उन्होंने रैमज़े साहेबसे टोलिवकाम्ल तथा नोष टोलिवकाम्लों पर कार्य्य करने को कहा। १८७२ में ही इन्हीं पदार्थों पर किए हुए कार्य ने रैमज़े के निमित्त डी० एस-सी का पद प्राप्त करा दिया। इस पद प्राप्त करने से कुछ काल पूर्व ही रैमज़े साहेब ग्लास्गो चले गए थे। वहां आप को ऐन्डरसन कालेजमें औद्योगिक रसायनके मुख्य अध्यापक जेम्स यंगके सहायक होनेका सौभाग्य मिला। १८७४ ई० में वहां का प्रधान प्रबन्ध ऐन्डरसन साहेब के स्थानमें फरगुसन साहेब के हाथमें आया और रैमज़े को अब सहायक शिक्षक होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। अब उसको समय भी अधिक मिलता था और धनलाभ भी कुछ अधिक होने लगा थी। इस कारण अन्वेषण का कार्य भली भांति चलने लगा। टुलिंगनमें प्रारम्भ किए हुए टोलिवकाम्ल इत्यादिकों के समानान्तर कार्य्य यहां भी आरम्भ किया गया और रैमज़े ग्लास्गोमें भली भांति सपरिवार स्थित हो गए। ऐन्डरसन साहेबने पिरीदीन इत्यादि पर कार्य्य करके बड़ा वैभव प्राप्त किया था और समस्त प्रयोगशाला उस समय इसी पदार्थ सम्बन्धी पदार्थों से भरी पड़ी थी। फरगुसन साहेब पुरानी रसायनिक कलाके मनुष्य थे और "डिपेल तैल" तथा "अस्थि तैल" इत्यादि को केवल प्रदर्शिनीके ही कार्य्य की वस्तुएं समझते थे। जब रैमज़े ने इन पदार्थोंमें खोज करनेकी सम्मति मांगी तो फर-

गुसन साहेब को बड़ा आश्चर्य्य हुआ। अन्ततोगत्वा उन्होंने अपनी सम्मति भी दे दी और कार्य्य आरंभ हुआ। पिकोलीन सम्मिलित भाग बड़ा ही चित्ताकर्षक प्रमाणित हुआ और इसके ज्ञात यौगिकोंके अतिरिक्त परप्लेटिनम-अमोनियम् यौगिकों के समानान्तर अनेक यौगिक तैयार किए गए। इसी समय में सबसे प्रथम पिरीदिन का संश्लेषण भी एक तप्त नलीमें (१८७७) सिरकीलिन तथा उदश्यामिकाम्लको प्रवाहित करनेसे हुआ। यहीं पर डौबीके साथ साथ कुनीन तथा सिनकोनीनके ओषदीकृत पदार्थोंकी भी परीक्षा रैमज़े साहेबने की। टुलिंगनसे आए हुए उसे अभी थोड़ा ही समय व्यतीत हुआ था और इसी कारण इन्हें इस विषय सम्बन्धी प्रत्येक वादापवाद तथा प्रयोगिक रसायनका भली भांतिज्ञान था क्योंकिजर्मन प्रयोगशालाएं उन दिनों इन कामोंमें बढ़ी चढ़ी थीं। पांशुज परमागनेत द्वाराही ओषदीकृत करके पदार्थों को विश्लेषित करनेसेजो पदार्थ प्राप्त हुए वह कुछ कम मनोरंजक न थे और इस प्रयोगकी बड़ी वृद्धि हुई। कुनीन, सिनकोनीन, कुन्यीदिन तथा सिनकोनीदिन सभीसे पिरीदिन कार्बोषिकाम्ल प्राप्त हुआ और सबसे प्रथम इसी प्रयोगसे क्षारोदोंतथा पिरीदिन भस्मोंका सम्बन्ध वैज्ञानिक जगतको प्राप्त हुआ।

इस साम्राज्यमें रैमज़े बहुत कुछ कार्य्य न करने पाया था कि उसे एक बड़ा क्लिष्टताका सामना करना पड़ा। यह द्विपिरीदिनके वाष्पघनत्वके सम्बन्धमें थी। विक्टर मायरसाहेबके वायु प्रसार उपायसे कार्य्य करनेके पश्चात् उसे ध्यान आया कि यदि ज्ञात आयतनकी किसी कांचकी घुंडीमें कोई रसायनिक पदार्थ उसी पदार्थके वाष्पमें तपाया जाय तो उसके कथनांकपर उसका परमाणु भार निकाला जा सकता है। इसी प्रकारकी बातोंसे उसे भौतिक रसायनसे बड़ा प्रेम उत्पन्न हो गया और यह प्रेम शनैः शनैः इतनाबढ़ा कि उसे कार्बनिक रसायनसे सदाके लिए बिदा मांगनी पड़ी, और भौतिक रसायनके महासागर पर पैर रक्खा ही था कि अनेकानेक बातें स्वयम् ही उसके सम्मुख उपस्थित हो गईं। इस सम्बन्धमें उसकी सबसे प्रथम खोज वस्तुओंका 'अनेक क्वथनांक पर आयतन' पर थी।

उसको देशाटन तथा भिन्न-भिन्न स्थानोंसे अनुभव प्राप्त करनेकी बड़ी अभिलाषा थी। ग्लास्गोसे वह डौबीके साथ सन् १८७६ में नार्वेको गया और एकबारकी यात्रासे संतुष्ट न होकर आगामी वर्षमें ही फिर वहीं गया। वहां उसने हिट्ट देशकी यात्राकी और अनेक भाँतिके खनिज पदार्थ एकत्रित किए जिनसे उसका अंतिम जीवन समयमें जब उसने वायुके दुष्प्राप्य पदार्थोंपर कार्य्य आरम्भ किया बड़ी सहायता मिली। इन्हींमें फेलसपार अभ्रक कार्ट्रज़ तथा अनेक दुष्प्राप्य पार्थिव तत्वोंके खनिजोंके रवे थे। इनमेंसे जिरकोनके आर्द्रित रूप मैलकानकी उसने नियमबद्ध परीक्षाकी और निर्णय रूपसे यह निकाला कि इसमें आलसीम् विद्यमान है।

जब रैमज़े साहेब इसी कालेजमें थे तभीसे उनके गुण प्रगट होने लगे थे जो अभी सुप्त रूपमें ही थे और इन्हींके विकास होनेपर वह इतना प्रसिद्ध हो गया। वह बहुत ही शीघ्र कार्य्य करनेवाला था और अपने प्रयोगोंका निष्कर्ष अत्यन्त ही शीघ्र समझ लेता था। अपनी बातें दूसरोंको बतलानेमें हिचकता तथा और निष्कर्षोंके प्रचारमें बड़ी वीरता दर्शाता था। कार्य्य करनेमें अलौकिक शक्ति तथा श्रमसे काम लेता और यथा सम्भव थोड़ी सी ही वस्तु से अनेक प्रयोग करता था।

ब्रिस्टल युग १८८०-१८८७

ग्लास्गोमें कार्य्य करते करते रैमज़े साहबका वैभव बड़ी दूर तक फैल गया था। सन् १८८०

ई० में उसे ब्रिस्टलके विश्वविद्यालयमें एक स्थान मिल गया और एक वर्ष भी न व्यतीत होने पाया था कि वह अपने कालेजका प्रधानाध्यापक नियुक्त हो गया। भले नक्षत्र आने पर मनुष्य जहां पैर मार देता है वहीं से सुखकी धार उमड़ पड़ती है। प्रधानाध्यापक होनेका आनन्द अभी पूर्ण रूपसे विकसित भी न हो पाया था कि उसका विवाह जार्ज स्टिवेन्सन साहेबकी सुपुत्री कुमारी मारगेरेट से हो गया। इसी समय वैज्ञानिक कार्य्यके लिये एक योग्य सहकारी मिल गये। डा० सिडनी यंगसे जो सहायता आपको प्राप्त हुई उसका अनुमान लगाना कठिन है 'तप्त हिम' का विषय इन दिनों आपको बड़ा रोचक प्रतीत होता था और जब कभी भी इस विषयमें कार्य्य करते थे तो आप यंग साहेबको अवश्य ही निमंत्रित करते थे। इसका फल यह हुआ कि अनेक लेख ठोसों तथा द्रवोंके तापगुणों और वाष्पीकरण तथा विश्लेषणके सम्बन्धमें प्रकाशित किए गए (१८८२-१८८३)।

यंग साहबके साथ साथही काम करते करते रैमज़े साहेबको सन् १८८५ ई० में एक बड़ी ही महत्वपूर्ण खोज हाथ लग गई। वह रैमज़े-यंगका क्वथनांक नियम है। यदि घनिष्ट सम्बन्धक कोई भी दो यौगिकों का मिलान किया जावे (जैसे कि क उ_3 क ओ ओ क उ_3 तथा क उ_3 क ओ ओ-क_2 उ_5) तो यह बात प्रतीत होती है कि वायुके एकही भारपर

$$\frac{\text{क}_{\text{अ}}}{\text{क}_{\text{ब}}} = \frac{\text{क}'_{\text{अ}}}{\text{क}'_{\text{ब}}} = \text{स्थिर अंक}$$

जब कि $\text{क}_{\text{अ}}$ = अ का क्वथनांक

$\text{क}_{\text{ब}}$ = ब का उसी दबावपर

और $\text{क}'_{\text{अ}}$ तथा $\text{क}'_{\text{ब}}$ अ, ब के अन्य किसी दबावपर क्वथनांक

इससे भी शुद्ध सूत्र $\text{क}'_{\text{अ}} / \text{क}'_{\text{ब}} = \text{क}_{\text{अ}} / \text{क}_{\text{ब}} + \text{स} (\text{क}'_{\text{अ}} - \text{क}_{\text{अ}})$ है परन्तु इसमें 'स' बहुधा शून्य ही होता है और साधारण सूत्रसे भली भाँति कार्य्य चल जाता है। यह संबन्ध बहुत ही न्यून दबावसे लेकर विपुल दबाव तक सफल प्रतीत होता है और इसके लाभ स्पष्ट हो हैं। यदि किसी पदार्थके क्वथनांक भिन्न-भिन्न दबावपर ज्ञात हों और ऐसे ही कुछ अंक एक अन्य पदार्थके विषयमें भी प्राप्तकर लिये जावें तो इस पदार्थके उन भिन्न-भिन्न दबावोंपरके समस्त अंक निकाले जा सकते हैं जिनसे प्रथम वस्तुके विषयमें खोज की स्थिरता तथा अस्थिरताके द्रवोंके परमाणु रूपकी साधारणता तथा असाधारणताका ज्ञान भी हो सकता है।

विश्लेषित पदार्थोंके विषयमें उपर्युक्त नियम कार्य्य कुशल प्रतीत नहीं होते और न उदौषिद् मूल रखनेवाले पदार्थोंमें हो दबावकी अधिक विभिन्नता शुद्ध प्रतीत होती हैं। (जैसे कि जल, मद्य तथा कर्बौषिलिकाम्ल) परन्तु साधारण दबावतक इस सूत्रकी विभिन्नता बहुतही न्यून होती है। इस कारण जलको आपेक्षिक पदार्थकी भांति प्रयोग करनेसे कुछ अधिक हानि नहीं।

सन् १८८७ ई० में उन्होंने एक विचित्र ही खोज-कर निकाली। स्थिर आयतनकी दशामें ज्वलक चाहे द्रव हो चाहे वाष्प उसके दबाव तथा तापक्रम का सम्बन्ध साधारण सूत्रसे दर्शाया जा सकता है कि द = स त—अ (जब कि द = दबाव त = तापक्रम, और स तथा अ किसी आयतनपर आधारित स्थिर अंक हैं)। उन्होंने अपने सूत्रकी सिद्धि अनेक भिन्न-भिन्न आयतनोंपर स तथा अ का मूल्य निकाल-निकाल कर की।

इसके पश्चात आपने नोषजनके ओषिदोंपर पूर्ण खोजकी, विशेषकर न_2 ओ_3 की। इसमें आपको कुन्दल (जेम्स टुडर) साहेबसे बड़ी सहायता मिली। इस विषयका प्रथम पत्र १८८५ में प्रकाशित

हुआ जिसका भावार्थ यह था कि नीली तथा हरीद्रव जिसमें त्रिओषिद्की विद्यमानता समझी जाती थी अधिक मात्रामें न$_2$ ओ$_4$ और न$_2$ ओ$_3$ का मिश्रण होती है और न तो यह न ओ के प्रवाहसे पूर्ण रूपसे त्रिओषिदमें ही परिवर्त्तित हो सकती है और न ओषजनके प्रवाहसेपर ओषिद् होमें। दोनों विश्लेषित रूपमें रहते हैं। डा० जी लुंगेने प्रयोगों तथा वादविवाद द्वारा त्रिओषिद्की वायव्य रूपमें स्थित होनेकी योग्यता सिद्ध करनेकी चेष्टाकी थी परन्तु रैमज़े साहेबने यह भलीभाँति सिद्धकर दिया कि वायव्य न$_2$ ओ$_4$, न ओसे कदापि योग नहीं करता। जब द्रव न$_2$ ओ$_3$ को वाष्पीकरण करते हैं तो प्राप्त वायुका घनत्व साधारण दबावपर २२.३५ होता है जिससे यह स्पष्ट ही है कि यह वायु न$_2$ ओ$_4$, न ओ इत्यादिका मिश्रण ही है और न$_2$ ओ$_3$ का वायव्य होना असम्भव ही है। राओल्ट-साहबके हिमांक उपाय (Raoult's Freezing Point) से आपने यह भी दर्शाया कि सिरकाम्ल घोलकमें द्रव रूपमें नोषजनपर-ओषिद का स्वरूप न$_2$ओ$_4$ ही होता है। त्रिओषिद के विश्लेषित हो जानेके कारण कुछ निश्चित न हो सका। परन्तु १८९० में यह भली भाँति सिद्ध कर दिया गया कि द्रव रूपमें त्रिओषिद न$_2$ओ$_3$ ही होता है और—९०°श पर ओ कुछ कुछ विश्लेषित हो जाता है।

लंदन युग १८८७--१९१२

सन १८८७ में रैमज़े साहेबको लंदन विश्वद्यालयके कालेजके रसायनाधिपतिका स्थान दिया गया। यहां पर उससे प्रथम बड़ी बड़ी योग्यता तथा वैभवके मनुष्य कार्य्यकर चुके थे। उदाहरणार्थ एडवर्ड टर्नर, टामस ग्रैहम, जार्ज फाउन, एलेक्जेंडर विलियमसन इत्यादि और इस स्थानके मनुष्य सदासे वैज्ञानिक वृद्धिके स्तम्भ थे। रैमज़े को भी इस पद का महत्व स्थिर रखना उचित था और उसने इतनी योग्यता दिखलाई कि अपने नए कर्तव्यपर भली भांति स्थिर भा न हो पाया था कि वह एफ़ आर. एस.की उपाधिके लिये नियुक्तकर लिया गया।

प्रारम्भमें आप सदा ही साधारण प्रयोगशालामें उपस्थित रहते थे और शीघ्र ही प्रत्येक विद्यार्थीके हाथसे पूर्ण परिचित हो गये। कांच फूंकनेके प्रयोगोंमें वह विद्यार्थियोंको सदा उत्तेजित करते रहते थे और समस्त विद्यार्थियोंमें आपका बड़ा ही मान था। सौभाग्यवश उसके सहायक यहां भी बड़े बुद्धिमान् एवम् महान् पुरुष थे जिनमेंसे मुख्य कोली, पिक्टन तथा वाकर साहब थे। इनके साथ आपने वस्तुओंके परमाणु भार निकालनेमें बहुत कुछ कार्य्य किया। इन प्रयोगों को इतना सुधार दिया कि कार्य्य इतनी सूक्ष्मताके साथ होने लगा जितना कि पहिले कभी न हो सका था और अनेकानेक नए प्रयोग एवम् यन्त्र भी निकाले।

१८९२ में आपका चित्त ब्राउन-गति (Brownion movement) की ओर आकर्षित हो गया। इस विषयमें आप कुछ कार्य्य बृस्टलमें दस वर्ष पूर्व भी कर चुके थे। राबर्ट ब्राउन साहेबने यह गति सबसे प्रथम १८५२ में पुष्प परागका अनुवीक्षण करते समय देखी थी और उसकी समझमें यह परागके जीवित होनेका शृंखलाबद्ध प्रमाण था। परन्तु कुछ ही समय बाद पंक जलका निरीक्षण करते समय भी उसमेंके छोटे पंक कण चलते हुए प्रतीत हुए। गत्यनुसार अथवा दिशानुसार यह किसी नियमका प्रतिपालन नहीं करते और इस लिये इनका कारण घोलमें चलती हुई धाराएँ कहीं जा सकती थीं। यह गति कणोंके संगठन पर भी निर्भर नहीं है और केवल उनके भार और घोलककी प्रकृतिसे ही प्रभावित होती है। रैमज़े साहबने सर्वप्रथम यह बात सिद्धकर दिखाई थी (१८८२) कि घोलक-

के कण घुलित वस्तुके कणोंसे टकराते रहते हैं और इसी टकराने के कारण यह गति संचालित होती है। घोलकके हलके गण घुलित वस्तुके भारी कणोंको हटानेमें असमर्थ होते हैं इस कारण वह संचित होकर कोटि कोटि अणुओंके समूहोंमें परिवर्तित हो जाते हैं। रैमज़ेने १८९२ में यह भी सिद्ध कर दिया कि विद्युत वाहकोंके डाल देनेसे यह गति रुक जाती है और उसका कारण यही है कि ध्रुवगामियोंसे समूह टूक टूक कर अणुओंमें विभाजित हो जाते हैं और यह टकरा कर भारी घुलित वस्तुके कणोंको नहीं हिला सकते।

दो भी वर्ष व्यतीत न हो पाए थे कि रैमज़े साहबके चंचल स्वभावने आपको एक नवीन जिज्ञासासे ही वेधित कर दिया। आपने यह विचारा कि अब तक किसी भी व्यक्तिने वायुका समस्त नोषजन नहीं निकाला और न किसीने वायुमें ओषजन निकालनेके बाद अवशिष्ट नोषजनको किसी अन्य तत्वसे योग करनेकी ही चेष्टाकी। सम्भव है इसमें कोई अन्य तत्व हो। एक समय आपने अपने विद्यार्थियोंको पढ़ाते समय देखा कि यदि मगनीसम् वायुकी नियमित मात्रामें जलाया जावे तो जो ठोस पदार्थ बनता है वह जलके प्रभावसे अमोनिया देता है। ऐसी क्रिया केवल नोषिदोंके वशकी ही बात है और आपको यह समझनेमें देर न लगी कि ओषजनसे योगके बाद अवशिष्ट मगनीसम् नोषजनसे संयुक्त हो सकता है और मगनीस नोषिद बनता है। इसी विचारसे आपने वायुसे प्राप्त नोषजनको मागनीसम्से संयुक्त करनेकी चेष्टाकी ताकि यदि कोई असंयुक्त वायु बचे तो वह मनोरंजक पदार्थ होगी। समय समयपर वायुसे प्राप्त नोषजनका घनत्व निकाला जाता था और वह शनैः शनैः बढ़ता हुआ सिद्ध हुआ। इससे कुछ कुछ अशुद्धि तो स्पष्ट ही है और प्रयोग आगे बढ़ाया गया। घनत्व बढ़ते बढ़ते १६ से भी अधिक हो गया। अब तो और भी मनोरंजक बात हो गई क्योंकि अशुद्धिका ओषजन होना भी असम्भव हो गया। घनत्व बढ़ते बढ़ते १९.०७५ पर स्थिर हो गया और नई गैसका १०० घ.श.म. संचित किया गया। १८९४ की १४ वीं अगस्तको आपने नवीन वायव्य प्राप्त होनेकी घोषणाकर द[illegible] समस्त संसारने इस घोषणाके आगे शीश नवाया और इस वर्षकी समाप्ति भी न होने पाई थी कि रैमज़े साहेबको स्मिथसोनियम इन्सटीट्यूटकी ओरसे हाजकिन पारितोषक भेंट दिया गया। इस नवीन गैसकी प्राप्तिके समयसे रैमजे तथा रैलेसाहेब सभी बड़े-बड़े विचारों एवम् अनेकानेक प्रयोगोंमें मग्न थे। रैलेसाहेबने स्नान स्रातोंसे (Bath Spring) कुछ गैस संचितकी थी। रैमज़ेसाहेबने इसपर श्याम परऔष्यम्, सैन्धक परौषिद, स्फुर, तथा प्लविन इत्यादि की प्रतिक्रियाको परन्तु सब निष्फल रही। गैसका ओषजन तथा मगनीसम्से योग न होना स्पष्ट ही यह कहाता है कि यह एक निश्चेष्ट पदार्थ है। इस नवीन वस्तुका नाम आलसीम् पड़ा। आगामी वर्ष के नवम्बरके अन्तिम दिवसको रायल सोसायटी के वार्षिकोत्सवके दिन इन्हीं जिज्ञासाओंके पारितोषिक रूप डेवीपदक आपको प्रदान किया गया। इस पदकसे रैलेके साथ आलसीम्की खोज तथा उसके गुणोंकी परीक्षायें और उसे वायु मंडल से प्राप्त करनेकी सरल विधियाँ, अनेक दुष्प्राप्य पार्थिव खनिजोंमें से हिमजनकी खोज इत्यादि समस्त जगतीने सादर सप्रेम सहर्ष ग्रहणकीं।

सन् १८९७ ई० में ब्रिस्टल समितिकी बैठक कनाडामें टारंटोमें हुई और रैमज़ेसाहेब रसायनिक विभागके सभापति नियुक्त हुए। उनकी भाषणकी मुख्य वार्त्ता हिमजन तथा आलसीम्के सम्बन्धके विषयमें थी परन्तु इस सम्बन्धकी घोषणाकी परिपुष्टता तब तक किसीको ज्ञात न हुई जब तक ट्रैवससाहेबके साथ-साथ रैमजेसाहेबने सन्

१८६८ ई० के जूनमें एक और ही गैस निकालकर संसारको शृंखलाबद्ध प्रमाण न दे दिया। द्रव वायुके वाष्पीकरण हो जानेसे सर्वोपरि अन्युद्वायी भागमें एक नवीन वस्तु ही मिल गई। इतने दिनों तक छिपी रहनेके कारण इसका नाम गुप्तम् पड़ा। इसीके एक पक्षके बाद एक और भी नवीन वस्तु वैज्ञानिकोंको हस्त गत हुई और यह भी उन्हीं लोगोंकी श्रमोंका फल था। इसका नाम नूतनम् पड़ा और इसका घनत्व उतना ही था जितना कि हिमजन तथा आलसीम्के मध्यस्थित तत्वके लिये आवर्त्त संविभागके अनुसार आवश्यक था।

सन १६०२ में श्रीमती कुरी ने रश्मिम् निकाला था और साधारणतया ही अनेक वैज्ञानिकों का चित्त इसी पदार्थके भौतिक व रसायनिक गुणों-की ओर प्रवृत्त हो गया था। रैमज़े ने रश्मिम् से उत्पन्न पदार्थों की परीक्षा आरम्भ थी। और उसमें सौरडी साहेबसे बड़ी सहायता मिली जो आपकी प्रयोगशालामें १६०३ में आ गए थे। रैमज़े साहेब थे बहुत ही न्यूनतम वस्तु से काम कर लेने वाले परन्तु अब दो चार घ. श. म के स्थानमें घ. स. म का मामला देख कर उन्हें भी कुछ क्लिष्टता प्रतीत हुई। प्रारंभिक उद्योगों के अनन्तर नापमापक नलिकाओंसे शून्य नलि-काएं तैयार की गई। इनमें इमेनशन या तेजस भर कर देखने से पता चला कि इसमें भी वही हिमजन है। अब तो रैमज़े साहेबने रश्मिम् अरुणिदकी ज्ञात मात्रा से इमेनेशन या तेजस का आयतन और इससे निकली हुई हिमजन की मात्रा नापली और क्रियाओंकी समय योजना भी कर ली। शून्य कुप्पी रश्मिम्के किसी लवणको जलमें घोल लेते हैं और कुछ समय तक रक्खे रहने देते हैं। तेजसके अतिरिक्त उसमें जल वाष्प और इस वाष्प पर रश्मिम् के प्रभाव से प्राप्त उदजन एवम् ओषजन होगा। इन पदार्थोंसे मुक्त कर देनेके बाद तेजस द्रव वायु द्वारा—१५५°श पर जमाया जा सकता है और अब ताप के बढ़ने से इसका वाष्पीकरण निकटस्थ एक दस्त गन्धिद् के परदे से देखा जा सकता है। जब यह तेजस किसी कांच की नली में प्रवाह करते हैं तो नली दमकने लगती है। रैमजे साहेब ने यह भी सिद्ध कर दिया कि इस तेजस में भी एक वास्तविक गैस के गुण होते हैं और यह वायल इत्यादि के नियमों का प्रति-पालन करती है और एक वास्तविक गैस है। रश्मिम्, हिमजन तथा तेजस निश्चित् पदार्थ होने के कारण एक दूसरेका परस्परिक परिवर्त्तन, तत्व-परिवर्तनका सर्व प्रथम उदाहरण है। परन्तु रैमजे साहेब इस उदाहरण से ही सन्तुष्ट हो जाने वाले जीव न थे। उन्होंने इसका अणु भार इत्यादि भी निकाला। इस कार्य्य की कठिनाइयों का अनुमान तभी किया जा सकता है जब लोगों को यह ज्ञात हो कि सब से अधिक मात्रा जो प्राप्त हो सकती थी, घ. स. म. का दशमांश थी—कठिनता से दृष्टिगोचर एक बुलबुला। इसकी तौल नापके लिए एक विशिष्ट तुला की आवश्यकता पड़ती है जिसमें एक ग्राम का कोट्यांश तक तौला जा सके। ऐसे तुलाको अनुवीक्ष्ण तुला कहते हैं और इसका निर्माण भी रैमज़े साहेबकी वैज्ञानिक कार्य्य कुशलताका प्रमाण है।

इस तुले में एक दण्ड होता है जो क्वा-ट्र्ज़ तन्तु का बना होता है और इसमें पररौप्य शैलमका एक आइना लगा रहता है। बांटोंके स्थानमें एक घड़ेका प्रयोग होता है जिसमें कि एक क्वाट्र्ज़ बल्बमें भरी हुई वायुकी थोड़ीसी मात्रा होती है। समस्त तुला एक वायु-बद्ध डब्बेके अन्दर होती है जिसमें वायुभार एक शून्यक द्वारा न्यूनाधिक हो सकता है। जब तुलेके अन्दरका वायु भार उतना ही होता है जितना कि बल्बमें तो इसमें भरी हुई वस्तुका भार शून्य होता है। शून्यमें बल्बमें भरी हुई वायु अपना पूरा भार दिखलाती है क्योंकि वह डब्बेके बाहरकी तरह

भारके मध्य स्थित किसी भी भारपर बल्बके अन्दर स्थित वायुका भार निकाला जा सकता है। तोलनेमें केवल डब्बेके अन्दरकी वायुका दबाव न्यूनाधिक करके खड़ा करना पड़ता है। धड़ेका अनुमान आइनासे निकलकर जो प्रकाश जाता है वह उसे एक दूरस्थ पैमानेपर पढ़कर लगाया जा सकता है। तौलना भी इसमें सरल नहीं है और रैमज़े साहेबका यह कार्य्य वस्तुतः उसको महान् आदरका देनेवाला है।

अब तो आपको तत्व परिवर्त्तनकी चाट पड़ गई और ऐसे कार्य्यमें अनेक वर्षों तक मग्न रहे जिसके कारण लोग आपको "बीसवीं शताब्दीका कीमियागर" कहने लगे आपने सोचा कि रश्मिशक्ति परिवर्त्तन साधारण रश्मि-शक्ति ही तत्वोंके परिवर्त्तनको सफल करनेमें कार्य्य कुशल किया जा सकता है। सर्व प्रथम मि, रु, का प्रभाव जलपर और तत्पश्चात् मिटनका प्रभाव जलपर एवम् ओषजन तथा उद्जन-के मिश्रणपर देखा गया। वास्तवमें सबसे प्रथम गीसेलसाहेबने रश्मिम् लवणों द्वारा जल विश्लेषणका उल्लेख किया था परन्तु रैमजे तथा सौडीने यह दर्शाया कि प्राप्त गैस मिश्रणमें उद्जनकी मात्रा गणित मात्रासे अधिक है। रैमजेसाहेबने यह विचार किया कि क्रिया विपर्येय है और विश्लेषण गति उनके नयोगकी गतिसे अधिक है।

तेजस द्वारा जल विश्लेषणके प्रयोगोंमें ऐसे परिणाम प्राप्त हुए कि उनका अर्थ लगाना उस समयके वैज्ञानिक ज्ञानसे परे ज्ञात हुआ। फिर रैमज़ेने ताम्र तथा सीसम् लवणोंपर तेजसका प्रभाव देखा। इनसे जो परिणाम निकला उनसे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि ताम्र एवम् सीसम्के अणुओंमें एक प्रकारका अवकरण होता रहता है। प्रथमसे इसे क्रिया द्वारा सैन्धकम् और शोणम् प्राप्त होते हैं और द्वितीयसे ऐसे पदार्थ जिनका निदान भली भांति न हो सका। इसी प्रभावसे थोरनोषेत, बराबर कर्बन द्विओषिद देता है। यदि अकेला तेजस कहीं रक्खा रहे अथवा उद्जन एवम् ओषजन की विद्यमानतामें बन्द रहे तो उससे हिमजन प्राप्त होता है। आश्चर्य्य जनक तो यह है कि यदि उपर्युक्त प्रयोगमें तेजस के संसर्गमें ताम्र लवण भी हो तो हिमजन के स्थानमें आलसीम् प्राप्त होता है। यह प्रयोग बड़े ही मनोरंजक होते हैं और ऐसा प्रतीत होता है कि इसके परिणाम संसार में बड़ा भयंकर उपद्रव मचा देंगे। डाल्टन साहेबके परमाणु वाद पर तो धावा बोल ही दिया गया है।

रैमज़े साहेबका समय अब परिपक्व हो गया था। एकके बाद एक सफलताके फल इस भूमिपर टपकते थे और वैज्ञानिक संसार उसे पृथ्वी पर गिरनेसे प्रथम ही उठा कर भोग कर जानेकी योजनामें लगा था। इसके बदलेमें आप पारितोषिक तथा सम्मानोंसे सदा पुरस्कृत होते रहे। अनेकानेक वैज्ञानिक समितियों के सदस्य चुने गए और जभी अवसर होता आप ही सभापति चुने जाते थे। मुख्य कर सन् १९१२ में आप को जगत् विख्यात और सर्वोपरि बृहद् नोबेल परितोषक मिला और १९१५ में आप संसारकी सबसे बड़ी वैज्ञानिक समिति रोआयल सोसाइटी के सभा पति नियुक्त हुए पर जनताके सौभाग्य में उनका अधिक दिनों का सभापतित्व न बदा था। २३ जुलाई सन् १९१६ को आप इस संसारसे सदाके लिये बिदा हो गये।

यह तो हुआ रैमजे साहेबका जीवन चरित्र! परन्तु इससे लाभ क्या होना है। यह प्रत्येक मनुष्यको स्वयम् निज-निज स्थितिके अनुसार विचार लेना चाहिए। जो कोई रैमजेसाहेबकी ही भांति महान् तथा आदर पूर्ण होना चाहता है वह उन्हींके पदचिह्नोंके पीछे लग जावे और फिर वायुसे नहीं उठता है। इस प्रकार शून्य तथा वायु

उन्हींकी चली राह पा जावेगा। यदि किसीको गुरु होनेका सौभाग्य प्राप्त हो तो रैमज़े कासा होना चाहिए और यदि शिष्य होनेका तो रैमजे-कासा होना चाहिए। आपकासा परिश्रमी जो कोई भी होगा वह कुछ न कुछकर ही लेगा। जहां तक सम्भव हो थोड़ी-थोड़ी मात्राओंसे ही कार्य्य करनेकी आदत डालनी चाहिए। संसारमें सभी वस्तुयें बड़ी मात्रामें प्राप्त नहीं हैं और बहुधा छोटी मात्रामें मिलनेवाले पदार्थ बड़े ही मनोरंजक होते हैं, यदि उनपर सफलतासे कोई कार्य्यकर सके।

पाठन काल आरम्भ करनेमें एक और बात-का भी ध्यान रखना चाहिए। अनेक विषय ऐसे होते हैं जिनसे कि मनुष्यका प्राकृतिक प्रेम होता है। ऐसे विषयोंमें उसे बाल्यावस्थासेही प्रवृत्त हो जाना चाहिए और माता-पिताको भी चाहिए यथा सम्भव उसको इन विषयोंकी सुविधायें दें। परन्तु यह इतनी माता-पिताको करनी नहीं है जितनी स्वयम् अपनी। सुविधाएं न होनेपर भी मनुष्यको स्वयम् ढूंढ़ निकालना चाहिए। सुविधाएं कभी भी आकर यह नहीं कहतीं कि लो हम आगए। जो काम आरम्भ किया जावे उसको कुछ समय तक एकाग्र चित्त होकर करते भी रहना चाहिए यदि कुछ ही काल में कुछ लाभ प्रतीत न हो तो निराश होकर छोड़ न देना चाहिए। सफलता की कुंजी यही है कि मनुष्य श्रमी और आशा जनक हो! हतोत्साह होने और शीघ्रता करने से कार्य्य नहीं चलता।

अन्त में हम आशा करते हैं कि रैमज़े का जीवन तभी सफल होगा जब कि उसके उदाहरण से अन्य व्यक्तियां रैमज़े बन सकें और हम ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि यद्यपि उसने रैमज़े साहेबको अधिक काल तक नहीं रहने दिया परन्तु अब उनकी आत्मा को एक स्वर्गीय वैज्ञानिक जगतीमें स्थान दे ताकि वह अनन्त काल तक इस जगतीके वैज्ञानिक विभागको ज्योतिर्मय बनाए रक्खें।

पशुओंका अवतार

[ले० श्री सत्यप्रकाश, एम. एस-सी.]

पशु किसे कहते हैं? इसमें सन्देह नहीं कि गाय, घोड़ा, बकरी, ऊँट, हाथी आदि सभी पशु हैं, पर यह भी मान लेना चाहिये कि मनुष्य भी एक पशु है। इसे समझदार पशु कहना चाहिये। इसी तरह आकाश में उड़ने वाली चिड़ियाँ भी तो पशु ही हैं। पानीके अन्दर मगर, मछली और कछुये भी पशु हैं। छोटी छोटी चींटियाँ, घुन, खटमल, जुएँ, गिंजाई आदि प्राणी और कीट, पतंग सभी पशु कहलाते हैं। जलचर, नभचर और थलचर ये तीन विभाग बहुत दिनों से किये गये हैं। अर्थात् कुछ पशु ऐसे हैं जो जलके अन्दर रहते हैं, और जलसे अलग होते ही मर जाते हैं, कुछ पशु आकाशमें उड़ सकते हैं, इनके पंख होते हैं, और कुछ पशु पृथ्वी पर ही रेंगते या चलते हैं। ये जलके अन्दर जीवित नहीं रह सकते हैं। इनके जीवनके लिये वायुकी बहुत ही अधिक अवश्यकता है अतः जल के अन्दर रहनमें इन्हें सांस लेनेमें कठिनाई पड़ती है अतः ये मर जाते हैं। इनके लिये खुली वायु आवश्यक है।

इन पशुओंकी उत्पत्तिके हिसाबसे भी हमारे यहाँ तीन विभाग अति प्रचलित हैं:—अण्डज, पिण्डज और स्वेदज। अर्थात् अण्डोंसे उत्पन्न होने वाले पशु जैसे चिड़ियाँ और चीटियाँ। पिण्ड से

उत्पन्न होनेवाले पशु (माताके पेटसे बाहर आनेवाले) जैसे घोड़ा, हाथी, मनुष्य, आदि। पसीनेसे उत्पन्न होनेवाले पशु जैसे खटमल, जुँआ आदि। पशुओंका विभाग एक और प्रकारसे भी किया जाता है—दूध पिलानेवाले पशु और चुगानेवाले पशु। घोड़ी, बकरी, गाय, स्त्री आदि अपने बच्चोंको दूध पिलाती हैं पर चिड़िया अपनी सन्तानों को अन्न या कीड़े मकोड़े चुगाती हैं। इसी प्रकार भोजन के हिसाब से भी पशुओं के दो विभाग किये जा सकते हैं। एक तो शाकाहारी अर्थात् वे पशु जो वनस्पतियों अथवा वनस्पतिक पदार्थों पर जीवित रहते हैं। दूसरे मांसाहारी, जो अपना भोजन किसी दूसरे पशु को बनाते हैं। गाय, बकरी, हाथी, घोड़ा, बन्दर, और मनुष्य स्वभावतः शाकाहारी प्राणी हैं। घास, भूसा, पत्ती, फल फूल और अन्न इनका भोजन है। शेर, भेड़िया, बिल्ली, कुत्ता, मगर, आदि मांसाहारी हैं। ये अपनेसे कम बलिष्ट शाकाहारी पशुओंका शिकार करते हैं। एक मांसाहारी पशु दूसरे मांसाहारी पशुका बहुधा शिकार नहीं करता है क्योंकि उसका मांस उसे रुचिकर नहीं प्रतीत होता है। मांसाहारी मनुष्य भी कुत्ते, बिल्ली, शेर, भेड़िया आदि मांसाहारियोंका मांस खाना पसन्द नहीं करते हैं।

यह कहा जा चुका है कि वृक्ष अपना भोजन भूमि अथवा वायुमंडलसे प्राप्त करते हैं। वृक्ष निश्चेष्ट प्राणी हैं पर पशु सचेष्ट प्राणी कहे जा सकते हैं। ये अपने उदर पोषणके लिये तरह-तरहके प्रयत्न करते हैं। मकड़ी जालेमें किस प्रकार कीड़ेको फंसानेका प्रयत्न करती है। मधुमक्खियाँ अपने भोजनके लिये दूर-दूर तक फूलोंपर जाकर मधुसंग्रह करती हैं। चींटियाँ भूमिपरसे अन्नका एक-एक कण किस कुशलतासे अपने छोटे-छोटे घरोंमें जमा करती हैं। सिंह अपने भोजनके लिये घने बनोंमें दहाड़ लगाता है, बिल्ली चूहोंकी खोजमें और बगुले मछलियोंकी तलाशमें किस एकाग्रतासे ध्यान लगाते हैं। आकाशमें उड़नेवाले चील और बाज़ अपने शिकारको फंसाने लिये अटूट परिश्रम करते हैं। मनुष्य तो अपना पेट भरनेके लिये सब कुछकर डालता है। इसने अपने उदरपोषणकी आकांक्षामें संसारका रूप ही बदल दिया है।

वनस्पतियों और पशुओंमें बड़ा अन्तर है। इन दोनोंका विकास भिन्न-भिन्न प्रकारसे होता है। पौधों और पशुओंके शरीरके पदार्थोंमें भी बहुत भेद है। सबसे पहला पौधा प्रोटोकोकस माना जाता है, जिससे बादको पुच्छ वृक्ष, छत्र वृक्ष, बहु पत्रक फर्न, और अन्तमें फल फूलवाले पौधोंका जन्म होता है। यह तो पौधोंके विकासका क्रम है। पशुओंमें सबसे पहले बिना रीढ़की हड्डी और बिना खोपड़ीवाले जलचरोंमें सम्भवतः बहुत छोटी आरम्भिक मछलियोंका जन्म हुआ। पौधोंका आरम्भ भी जलमें ही होता है। इसके पश्चात् रीढ़की हड्डीवाले और खोपड़ीवाले जीवोंकी उत्पत्ति हुई। तत्पश्चात् जिस युगमें वनस्पति जगत्के फर्न वृक्ष पृथ्वीके अधिकांश भागको ढके हुए थे उस समय मछलियोंकी उत्पत्ति हुई। छत्राकार वृक्षोंके समय उरग या सरीसृप अर्थात् सांपके समान पेटसे चलनेवालों (Reptile) का जन्म हुआ। फल-फूलवाले वृक्ष जब पैदा हुए तब दूध पिलानेवाले पशुओंका अवतार हुआ और सबसे अन्तमें मनुष्यका अवतार हुआ। विकासकी इस शृंखलाका मनुष्य सबसे अन्तिम प्राणी है। यह कहना कठिन है कि मनुष्यके बाद यह विकास आगे क्यों रुक गया। प्रतीत होता है कि मनुष्य इस सृष्टि-रचनाका अन्तिम ध्येय है और इसके अवतारके अनुकूल परिस्थिति उत्पन्न करनेके लिये ही अन्य प्राणियोंका आविर्भाव हुआ था।

वनस्पतियोंके विकासका उल्लेख करते हुए यह बताया जा चुका है कि सबसे पहले प्रोटोकोकस नामक एक कोषक पौधेका जन्म हुआ। इस

प्रकार पशुओंमें भी सबसे पहले एक कोष्ठक जीव जिसे प्रोटोज़ोआ कहते हैं उत्पन्न हुआ। प्रोटोज़ोआ आजकल दो प्रकारके पाये जाते हैं, अस्थि-पिंजर या ठठरी युक्त और बिना ठठरीवाले भी। सबसे पहले जो उत्पन्न हुए होंगे उनके ठठरी न होगी और अतः ऐसे जीवोंके भंगावशेष अब कहीं भी सुरक्षित मिलना असम्भव है। हाँ, ठठरी युक्त प्रोटोज़ोआके अति प्राचीन अवशेष अब भी पाये जाते हैं। न केवल ये बहुतसी शिलाओंमें ही मिलते हैं, प्रत्युत यह भी कहा जा सकता है कि बहुतसी शिलाओंका अधिकांश भाग इनकी ठठरियोंके अवशेषोंसे ही बना है। खड़िया मिट्टी और अनेक प्रकारके चूनेके पत्थर इन छोटे-छोटे कीड़ोंके अवशेषसे बने हैं।

प्रोटोज़ोआके भीतर एक छोटासा केन्द्र होता है और वहीं इसका कलल रस (प्रोटोप्लाज़्म) विद्यमान रहता है। इस जीवन-रसको ही सम्पूर्ण कार्य सम्पादित करने पड़ते हैं, क्योंकि प्रोटोज़ोआमें अन्य प्राणियोंके समान अनेक क्रिया-शील कोष्ठ तो होते ही नहीं है। ये छोटे-छोटे जीव अनेक प्रकारके होते हैं। किसीके पीठकी त्वचा कड़ी पड़ जाती है, और एक छोटासा मुँह खुला रहता है जिससे ये अपना भोजन ग्रहण करते हैं। त्वचाके दृढ़ हो जानेके कारण ये अपना रूप परिवर्तित नहीं कर सकते हैं। पर कुछ प्रोटोज़ोआ अपना आकार सूतके समान यथेष्ठ घटा बढ़ा सकते हैं। इस क्रिया द्वारा ही ये भोजन ग्रहण करते हैं।

प्रोटोज़ोआसे दूसरे प्रोटोज़ोआओंकी उत्पत्ति होती है। एक प्रोटोज़ोआके दो या अधिक विभाग हो जाते हैं। यदि परिस्थिति अनुकूल हुई तो ये दोनों विभाग पृथक्-पृथक् दो प्रोटोज़ोआ हो जाते हैं, पर अनुकूल परिस्थित न होने पर दोनों प्रोटोज़ोआ अंदर ही रह जाते हैं। और इस प्रकार एक कोष्ठक जीवसे द्विकोष्ठक जीवकी उत्पत्ति हो जाती है। इस प्रकारका क्रम आगे भी चलता रहता है, और अनेक कोष्ठक जीवोंका विकास होने लगता है।

अनेक कोष्ठक जीव रीढ़वाले और बे-रीढ़वाले भी हो सकते हैं। स्पञ्ज नामक जीव बेरीढ़वाले अनेक कोष्ठक जीवका उदाहरण है। स्पञ्ज प्रोटोज़ोआसे अनेक बातोंमें मिलते-जुलते हैं। इनके इन्द्रियाँ नहीं होती हैं, और ये गति शून्य भी होते हैं। इनके बहुत पुराने अवशेष आज तक पाये जाते हैं जिनसे पता चलता है कि अनेक प्रकारके स्पञ्ज जो पहले सृष्टिमें विद्यमान थे अब विलुप्त हो गये हैं। नीचेके चित्रमें स्पञ्जका एक चित्र दिया जाता है:—
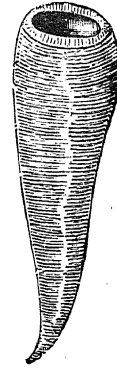
ओर्डोवीसियन समयका स्पञ्ज

स्पञ्जोंके पश्चात् मूंगा और जेली-मत्स्यकी बारी आती है। स्पञ्जमें बहुतसी खोखली कोठरियाँ होती हैं, पर मूंगोंमें एक बड़ी खोखली कोठरी होती है। इन सब प्राणियोंका समस्त शरीर गोल-मोल एकसा होता है, अर्थात् न इनमें कोई सिर होता है, और न धड़। इनका न कोई भाग बायाँ कहा जा सकता है न दायाँ। पर इनमें ज्ञानेन्द्रियोंकी आरम्भिक अवस्थाके कुछ चिह्न अवश्य प्रतीत होते हैं। पुराने मूंगोंके अनेक अवशेष पाये जाते हैं और बहुतसी शिलायें तो इनके अवशिष्ट भागोंसे मिलकर ही बनी हैं। नीचे मूंगेके दो चित्र दिये जाते हैं।
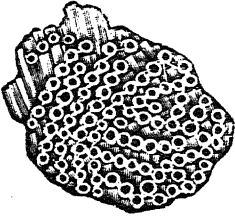
सिलूरियनकालका मूंगा
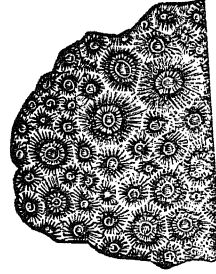
कारबौनिफेरस काल की मूँगे की भित्ति

इनके अतिरिक्त अन्य भी छोटे-छोटे अनेक प्रारम्भिक जीवोंके अवशेष पाये जाते हैं, जिनकी जातियाँ प्रायः आज-कल विलुप्त हो गई हैं। प्राचीन समयमें इनकी इतनी मात्रा विद्यमान थी कि उनके अवशेषोंसे ही बड़ी-बड़ी चट्टानें बन गई हैं। सामुद्रिक अर्चिन, स्टार-फिश, सी-लिली आदि अनेक प्राणी जो आजकल पाये जाते हैं, उन्हींकी सन्तान हैं।

इनके पश्चात् ऐसे जीवोंका आविर्भाव हुआ जो अपने आगेके हिस्सेके बल कुछ सरकने लगे। समुद्रमें, अथवा भूमिपर केंचुए और जौंक (जलूका) के समानके अनेक कीड़े उत्पन्न होने लगे। ये सब आगेके भागसे सरकते थे। यह आगेका भाग ही शिर कहलाने लगा। इसप्रकार शिरवाले प्राणियोंका अवतार हुआ। शिर निश्चित् हो जानेके पश्चात् इन प्राणियोंका दहिना और बायाँ भाग भी निश्चित हो गया। सिरके बलसे ही आगे चलनेके कारण सिरमें चेतनाशील स्नायुओंकी उत्पत्ति हुई क्योंकि सिरको आवश्यक था कि आगे चलनेके लिये मार्ग ढूँढे। शिरकी यह चेतनशीलता ही बादको मस्तिष्कमें परिणित हो गई।

इनके पश्चात् अनेक प्रकारके कीड़े मकोड़ोंकी उत्पत्ति हुई। शतपदी (Centipedes), लोब्सटर, मकड़ी, बिच्छू आदिकी जातिके प्राणी उत्पन्न होने लगे। नीचेके चित्रमें पुराने समयका अस्थिपिंजर दिखाया जाता है जो कैम्ब्रियन कालके ट्राइलोबाइट (त्रयंगी) जन्तुका है। यह जन्तु छिछले पानीमें पाया जाता था और इसका आकार बहुधा तीन-चार इंच होता था, पर कभी-कभी २०-२२ इंचका भी पाया गया है। इसे त्रयंगी इसलिये कहते हैं कि इसमें सर्व प्रथम तीन मुख्य अंग—शिर, धड़, और पूँछ प्रकट हुए।
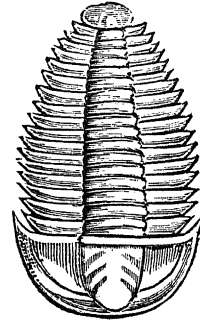
त्रयंगी

इसी प्रकारकी एक जाति 'भुजपद' (Brachiopode) कही जाती है जिसका एक अवशेष (ओर्डोवीसियन समयका) नीचे दिया जाता है—
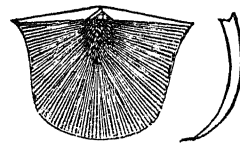
भुजपदी

इन सब जीवोंमें परिस्थितिके अनुसार अंगों-का विकास आरंभ होने लगा। पहिले ये आगेके भागसे सरकने लगे जो बादको सिर हो गया। इनके नीचे छोटे छोटे पैरसे निकल आये। आगेके पैरोंसे यह जन्तु भोजन पकड़नेका काम लेने लगे। कालान्तरमें कुछ जीवोंमें ये पैर जबड़ेके रूपमें परिवर्तित हो गये। ये जीव लम्बी नलियों द्वारा वायुको अपने अन्दर ले जाने लगे। इन नलियोंके बाहिरी सिरे नाक बन गये। इसी समय फेफड़ोंकी उत्पत्ति हुई। तत्पश्चात नेत्रोंका भी इन जन्तुओंमें विकास हुआ। जन्तु-ओंमें वनस्पतियोंकी अपेक्षा क्रियाशीलता अधिक है। इसका कारण यह है कि वनस्पति तो अपने स्थानपर स्थिर ही वायुमंडल तथा पृथ्वीसे भोजन प्राप्तकर लेती हैं पर जन्तुओंको भोजन प्राप्त करनेके लिये प्रयत्न करना पड़ता है। भोजन जीवनका मूल है और इसके लिये परिश्रम उठानेके कारण ही जन्तुओंमें तरह तरहके अंगोंका विकास हो गया है। मूंगाके समान कुछ आरम्भिक जन्तु अवश्य ऐसे हैं जो जीवन भर अपना स्थान नहीं छोड़ते हैं और किसी न किसी पदार्थके सहारे लटके रहते हैं। केशोंके समान इनमें कुछ पतले पतले अंग होते हैं जिन्हें ये हिलाया करते हैं। इनकी सहायतासे ही ये सांस लेते और आहार प्राप्त करते हैं। इस प्रकार प्रारम्भिक अवस्थाके वृक्षों और जन्तुओंमें अधिक भेद प्रकट नहीं होता है पर बादको दोनोंकी शारीरिक रचनामें बड़ा ही अन्तर आ जाता है।

जितने बड़े प्राणी आज कल पाये जाते हैं उनमें मछलियाँ सबसे पुरानी हैं। इनके दांत, और अन्य ठठरियोंके प्राचीन अवशेष अब तक पाये जाते हैं। रीढ़की हड्डीका सबसे पहले मछलियोंमें ही विकास हुआ। पुरानी मछलियोंके जो अवशेष पाये जाते हैं उनसे पता चलता है कि वे उसी जातिकी थीं जिसकी आज कल शार्क और श्वान मछली (Dogfish) होती हैं। इनमें कुछका आकार सौ सौ फीट लम्बा होता था। इन शार्कों को छोड़कर अन्य पुरानी मछलियोंके अवशेष अब नष्ट हो गये हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि अति प्राचीन मछलियोंके सिरपर हड्डियोंके बड़ेबड़े तख्ते लगे होते थे और इनमें सख्त केंचुल होती थी। ये केंचुल और हड्डियोंके तख्ते अवशेषोंमें आजतक पाये जाते हैं। ये हड्डियोंके तख्ते एक प्रकारसे ढाल या कवचका काम देते थे। आरम्भकी मछ-लियां तो केवल उतनी ही बड़ी होती थीं जितनी हमारी उंगलियाँ हैं पर बाद को ये जैसा कहा जा चुका है १० फीट लम्बी भी होने लगीं। यहाँ एक मछलीका अवशेष जैसा कि चट्टानोंके बीचमें पाया जाता है, दिखाया गया है। एक बड़ी शार्कका चित्र भी जो डेवोनियन समय की है नीचे दिया गया है।

मछली का भग्नावशेष
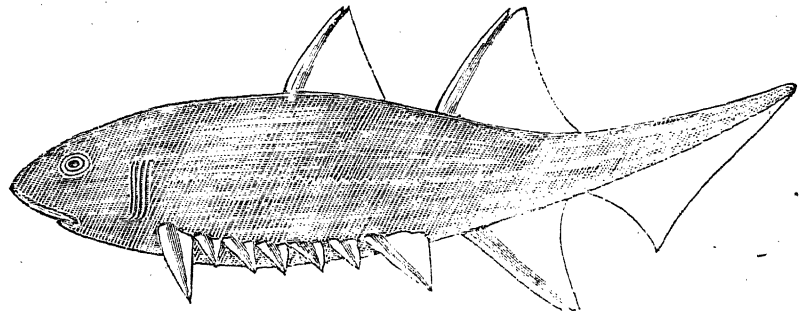
डेवोनियन शार्क

साधारण मछलियोंमें वायु-श्वास लेनेके लिये फेफड़े नहीं होते हैं, ये केवल पानीको ही श्वासेन्द्रिय (गिल्स) से ग्रहण करती थीं। जलमें घुली हुई वायु ही मछलियोंको जीवन प्रदान करती थी। मान लीजिये कि किसी तालाबमें मछलियाँ हैं, पर गरमीके दिनोंमें तालाब सूख कर कीचड़ रह गया। पानीके बिना मछलियाँ तड़फड़ाने लगीं। ऐसी अवस्थामें ये दीन मछलियाँ वायु-श्वास लेना भी सीख गईं। इस प्रकारकी मछलियोंकी एक दूसरी ही जाति बनगई। इन्हें पंक-मत्स्य या कीचड़की मछली (Mud-fish) कहते हैं। इनमें फेफड़े भी होते हैं, जिनसे हवा ग्रहणकी जाती है और पानी ग्रहण करनेके लिये नलिकायें भी होती हैं।
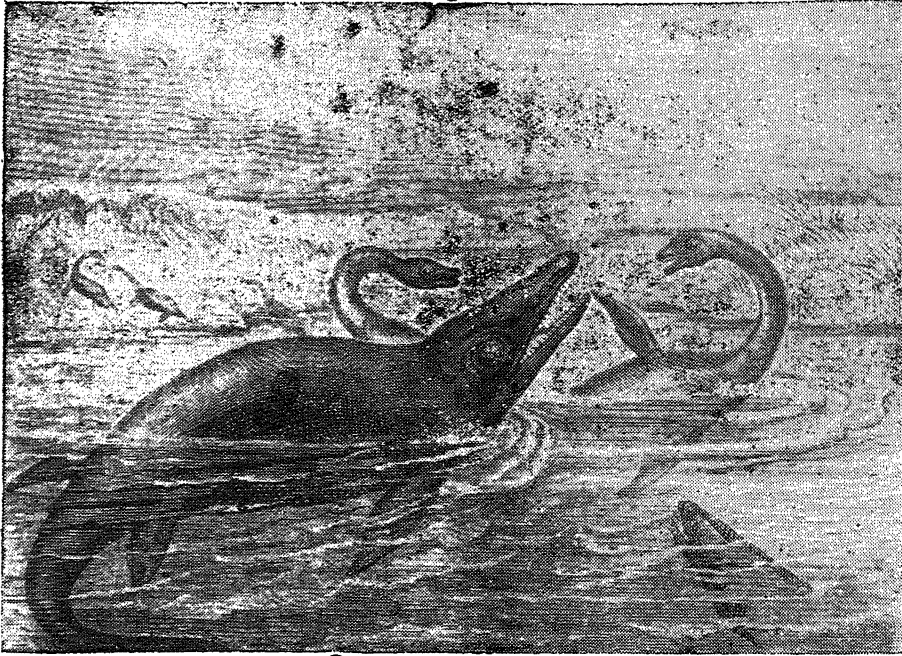
आवश्यकता सब कुछ करा लेती है। आपत्ति पड़नेपर प्रत्येक प्राणी कुछ न कुछ युक्ति सोचता ही है। अब तक प्राणियोंका निवास स्थान जल था, इसके उपरान्त कुछ ऐसी मछलियोंका भी विकास हुआ जो कीचड़में भी रहने लगीं, इनके शरीरमें फेफड़ोंका जन्म हुआ। पर कीचड़ भी सूख कर बिल्कुल मिट्टी हो जाने लगा। अब यह आवश्यकता हुई कि ये प्राणी अपने शरीरको कुछ इस प्रकार परिवर्तित कर लें जिससे ये जल और थल दोनोंमें ही रह सकें। ऐसी अवस्थामें जल-थलचरों (अमफीबिया) का जन्म हुआ। आपने मेंढ़क देखे होंगे, ये पानी और ज़मीन दोनोंमें ही रहते हैं। मेंढ़कोंकी अनेक जातियाँ होती हैं। वस्तुतः इनका विकास मछलियोंसे ही हुआ है जो परिस्थिति तथा आवश्यकताके अनुसार इस रूपमें परिवर्तित हो गई हैं। बहुतसे अमफीबिया (जल-थल-चर) तो मगरके समान बड़े होते थे। जिस समय यह पृथ्वी फर्नआदिके वृक्षोंसे आवृत्त थी, उस समय अनेक जातिके जल-थलचरोंका

उद्‌गम हुआ। इनके शरीरमें फेफड़े बन गये, ये थोड़ा थोड़ा बोलने भी लगे, अर्थात् इनमें जिह्वाका भी विकास आरम्भ हो गया। मछलियोंमें आगे और पीछे जो दो पंख होते हैं वे इन जल-थल-चरोंके आगे पीछेके दो दो पैर हो गये। इन पंखोंके आगेके कटे भाग इन प्राणियोंके पैरोंकी उगलियाँ हो गईं।

विकासका क्रम यहीं समाप्त नहीं हुआ। वस्तुतः इस क्रमसे ही संसारके सब जीवोंका उद्‌गम हुआ। जल-थलचरोंके बाद पेटके बल सरकनेवाले सर्प-जातिके प्राणियों (Reptile) का जन्म हुआ। इस उरग या सरीसृप जातिके जानवरोंसे ही एक ओर तो पक्षियोंकी उत्पत्ति हुई और दूसरी ओर हाथी, घोड़े, सिंह आदिके पशु पैदा हुए। वस्तुतः चिड़ियाँ सबसे प्रथम उष्ण-रक्त संरक्षक एवं विघातक या प्रतिहिंसक अंगोंका आविर्भाव हुआ।

यह प्रथम कहा जा चुका है कि इन पशुओंका प्रथम विकास जलमें हुआ था। पर अब ये उरग जलसे घबड़ाने लगे, और इन्होंने अपनेको स्थलकी परिस्थितिके सर्वथा अनुकूल बना लिया। फिर भी कुछ भीमकाय उरग जलमें घुस ही गये और वहाँ इन्होंने ह्वेल मछलियोंके समान बड़े बड़े जलजीवों को जन्म दिया।

इन प्राचीन भीमकाय प्राणियोंके अनेक अस्थि-पिंजर पाये गये हैं, इनमेंसे बहुतोंकी हड्डियाँ इस प्रकारकी हैं जिनसे अनुमान होता है कि ये दूध पिलाने वाले जानवरोंके पूर्वज हैं। ये उरगोंके समान पेटके बल चलनेवाले जन्तु नहीं थे, बल्कि
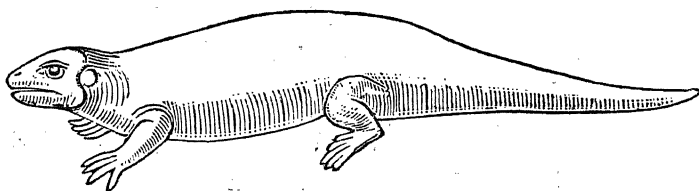
परमियन-उरग

प्राणी हैं। ये उरग प्राणी भिन्न भिन्न स्थितियोंमें अनेक रूपोंमें परिवर्तित हो गये। आजकल इनकी प्राचीन जातियाँ तो लग भग सभी लुप्त हो गई हैं, केवल सांप, कछुये, मगर आदि कुछ जीव रह गये हैं। पर प्रचीन उरग इतने भीमकाय होते थे कि उनके सामने ये पशु बहुत ही छोटे प्रतीत होंगे।

ये उरग सर्वथा शाकाहारी थे और घास आदि खाकर जीवन व्यतीत करते थे। इस समय पेड़ों पर फल फूल भी लगने आरंभ हो गये। ऐसी अवस्था-में कुछ पशुओंने पेड़ों पर चढ़ना भी सीखलिया, और कुछ हवामें भी उड़ने लगे। भोजनके कारण इन्हें कभी एक दूसरेसे लड़ना भी पड़ता था। इस प्रकार एक दूसरेसे रक्षा करनेके लिये इनमें अनेक

इनका धड़ भूमिसे बहुत ऊपर रहता था, कदा-चित् ये कुत्तोंके समान चलते थे। केपकोलोनी में एक पिंजर पाया गया जो इस समय साउथ कैनसिंगटनके अजायबघरमें सुरक्षित है। इसके दांतोंसे पता चलता है कि यह घास पात खाने वाला जन्तु था और इसकी ऊंचाई ८ फुट थी। ड्विनानदीके तट पर एक मांसाहारी थेरोमोर्फ की ठठरी पायी गई जिसकी खोपड़ी २ फुट लम्बी थी और सिंहके समान दांत भी थे।

डिनोसौर नामक जातिके अनेक पिंजर पाये जाते हैं। ऐसा अनुमान होता है कि यह प्राणी हाथी, गेंडा, कंगारू आदि पशुओंके पूर्वज थे। डिनोसौर न केवल शाकाहारी ही थे प्रत्युत शेर,

चीतोंके समान मांसाहारी भी पाये जाते थे। कुछ डिनोसौर कंगारुओंके समान पीछे की टांगोंके बल खड़े होते और दौड़ते थे। इस प्रकार पीछेके पैरोंपर खड़े होकर ये आगेके पैरोंसे बीस-बीस फुट ऊँचे पहुँच जाते थे और अति ऊँचे वृक्षोंकी शाखाओंको तोड़ लेते थे।

भीमकाय डिनोसौर

कंगारूके समान आकारवाले डिनोसौरकी सबसे पहली ठठरी ससैक्समें खोदकर निकाली गई। ब्रूसेलसकी कोयलेकी खानोंमें फिर इसी प्रकारकी २० ठठरियाँ और निकलीं जो संग्रहालयमें सुरक्षित हैं। यहाँ एक ठठरीका चित्र दिया जाता हैः—
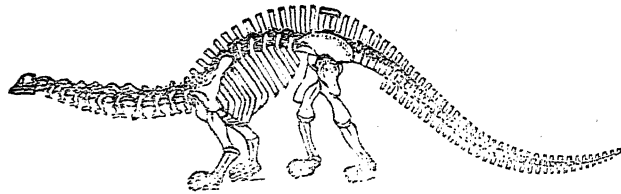
डिनोसौरकी ठठरी

कुछ डिनोसौर चारों पैरोंसे भी चलते थे। योमिंग (Wyoming) में इनकी अस्सी फुट लम्बी एक ठठरी पायी गई है। इस ठठरीकी इतनी अधिक लम्बाई इस कारण है कि इस पशुके गर्दन और पूँछ दोनों ही बड़ी लम्बी थीं, पर सापेक्षतः इसका सिर बहुत छोटा था और धड़ केवल हाथीके समान ही था। इसकी पीठ पृथ्वीसे चौदह फुट ऊँची थी।

जो भीमकाय उरग जन्तु बादको जलमें चले गये उन्हें प्लीसिओसौर कहते हैं। इनके चारों पैर चपटे हो गये जिनसे तैरनेका काम लिया जाने लगा, पर इनकी बनावट पैरोंके समान ही रही। प्लीसिओसौरकी लम्बाई तीस चालीस फुट होती थी और इनकी गर्दन हंसकी सी पर बड़ी लम्बी होती थी। इनका जीवन जलकी मछलियों तथा किनारेपरके पक्षियों और कीड़ोंपर निर्भर था। इनकी लम्बी गर्दन समुद्र या झीलके किनारेपर दूर तक शिकार करनेका काम देती थी। मनुष्यके विकासके बहुत पहले ही प्लीसिओसौर लुप्त हो गये।

उरग जातिके जानवरोंसे आकाशमें उड़नेवाले भयंकर सर्पों और नागोंका जन्म हुआ। इनका आकार बड़ा विशाल होता था और इनके पंख बीस बीस फुट चौड़े फैल जाते थे। इन्हें टीरोडेक्टाइल (pterodactyls) कहते हैं। इन्हें बड़ा भारी चमगादड़ भी समझा जा सकता है। चिड़ियोंसे इन्हें भिन्न ही मानना चाहिये क्योंकि इनके पर पंखोंके बने नहीं होते थे, ये पतली खालकी छतरीके समान होते थे। इनके फेफड़े भी आजकलके उरगोंकी अपेक्षा अधिक उन्नतशील थे।

पक्षियोंकी उत्पत्ति उरगकी किसी जातिसे ही

हुई है। ऐसा प्रतीत होता है कि कंगारूके समान किसी डिनोसैारसे जिनके आगेके पैरोंमें ५ अंगुलियाँ और पीछेके पैरोंमें ३ अंगुलियाँ होती थीं इनका विकास हुआ है। आगेके पैर कालान्तरमें जल जीवोंके तैरनेवाले अंग हो गये और पक्षियोंके उड़नेवाले पंख।

पशुओंके विकासकी कहानीमें दूध पिलानेवाले चौपायोंका प्रादुर्भाव अत्यन्त ही रोचक है। जिस समय इनका प्रथम प्रादुर्भाव हुआ था, समस्त भू-मंडल मांसाहारी भीमकाय उरग जातिके पशुओंसे भरा हुआ था। इस समय चूहोंके आकारके छोटे-छोटे स्तन प्राणियों (Mammal) की उत्पत्ति हुई। इतने भयंकर मांसाहारी जीवोंके समयमें ये प्राणी किस प्रकार जीवित रह सके यह केवल आश्चर्यकी ही बात है। इन प्राणियोंके दाँत इस बातका प्रमाण हैं कि ये प्रत्येक प्रकारके भोजनपर जीवन निर्वाहकर सकते थे, इसलिये इन्हें उदर पोषणमें अधिक कठिनाई नहीं होती थी। इन जीवोंके सुरक्षित रहनेका एक यह भी कारण है कि इनका आकार इतना छोटा था कि विशाल शरीरवाले पशु इनपर आक्रमण करनेकी परवाह भी नहीं करते थे।

इन सस्तन (स्तनयुक्त) पशुओंमें अपने पूर्वजोंकी अपेक्षा अनेक विशेषतायें उत्पन्न होनी आरम्भ हो गईं। इनके फेफड़ोंमें विशेष उन्नति हुई। हृदय भी विकसित होने लगा। मस्तिष्कमें संकीर्ण कोष्ठोंकी उत्पत्ति होने लगी। शिरमें ज्ञानेन्द्रियाँ प्रौढ़ हो गईं। वस्तुतः इन प्राणियोंमें शिर और धड़ दोनों पृथक् पृथक् स्पष्ट होने लगे। यही नहीं प्रत्येक प्रकारकी सर्दी गरमी सहन करनेके लिये जिस प्रकार चिड़ियोंमें पर उत्पन्न हुए, इन जीवोंमें छोटे-छोटे बालोंसे युक्त मोटी खाल जम आई। विकासके उत्तरोत्तर क्रममें इन जीवोंने पिछले दो पैरोंसे चलना और आगेके दो पैरोंसे वस्तुओंको पकड़नेका काम लेना आरम्भ किया। यह विकास मनुष्यमें अपनी चरम सीमाको पहुँच गया। मनुष्यने आगेके दो अंगोंसे चलना बिलकुल ही छोड़ दिया। ये अंग इसके हाथ कहलाने लगे।

सस्तन नभचर प्राणियोंमें चमगादड़ सबसे अधिक प्रसिद्ध है। कुछ उड़नेवाली गिलहरियाँ भी होती हैं, पर ये अधिक नहीं उड़ सकती हैं, इनका उड़ना एक प्रकारसे लम्बी छलांगका कूदना ही है। कूदते समय ये अपने दहिने बायें एक छत्रसा फैला लेती हैं, जिसके बलसे कुछ समयके लिये हवामें स्थिर रह सकती हैं।
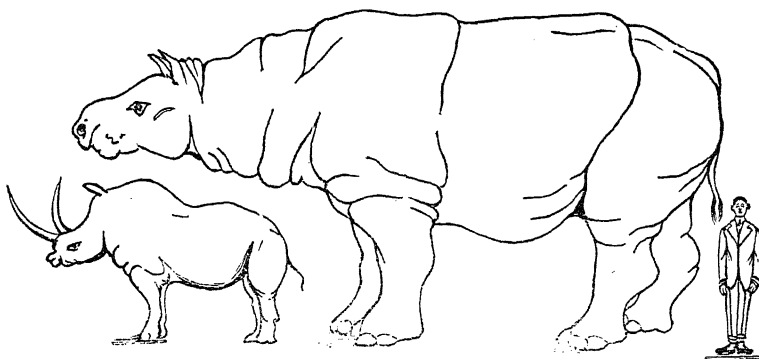
भीमकाय पशु—देखिये, मनुष्य इसके सामने कितना छोटा लगता है।

उरगोंकी एक शाखाका नाम थेरोमोर्फ है। इसके अस्थि-पिंजरमें सस्तन प्राणियोंके विकासके योग्य सभी चिह्न मिलते हैं, थेरोमार्फ देखनेमें भेड़िया या रीछके समान मालूम होता है और इसके पैर भी सस्तन पशुओंके समान विकसित होते हैं। सस्तन प्राणियोंके सबसे पुराने जो अवशेष पाये गये हैं उनमें दांत और नीचेके जबड़ेकी हड्डियाँ हैं। ये जबड़े बहुधा एक इंचसे भी छोटे होते हैं जिनसे प्रतीत होता हैं कि ये चूहेके आकारके पशुओंके हैं।। यह ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता है कि इन छोटे जीवोंके बाद किस प्रकारके पशुओंकी उत्पत्ति हुई, क्योंकि वे सब पशु आगे चलकर लुप्त हो गये और उनके क्रमशः अवशेष भी नहीं मिलते हैं। ऐसा विचार किया जाता है कि इन छोटे जीवोंका शरीर धीरे धीरे बढ़ने लगा और बड़े बड़े पशुओंकी उत्पत्ति हो गई। शरीरके साथ साथ मस्तिष्ककी शक्तियाँ भी विकसित होने लगीं, पर जिन पशुओंका शरीर उनके मस्तिष्ककी अपेक्षा कहीं अधिक विशाल हो गया था, वे धीरे धीरे बाद को लुप्त होने लगे। गैंडे, ऊँट, घोड़े आदि सस्तन प्राणी इस बातका प्रमाण है कि उनकी उत्पत्ति छोटे शरीरवाले जीवोंके विकाससे ही हुई है।

आजकलके घोड़े प्राचीन कालीन पूर्वज घोड़ोंकी अपेक्षा बड़े आकारके हैं। घोड़ेकी जातिके पशुका सबसे पहिला अवशेष उत्तरी अमरीकाकी शिलाओंमें पाया गया, पर इस पशुके ऊँचाई केवल ग्यारह इंच ही थी। हमारे समयके हाथी भी अपने पूर्वजोंकी अपेक्षा बहुत बड़े थे।
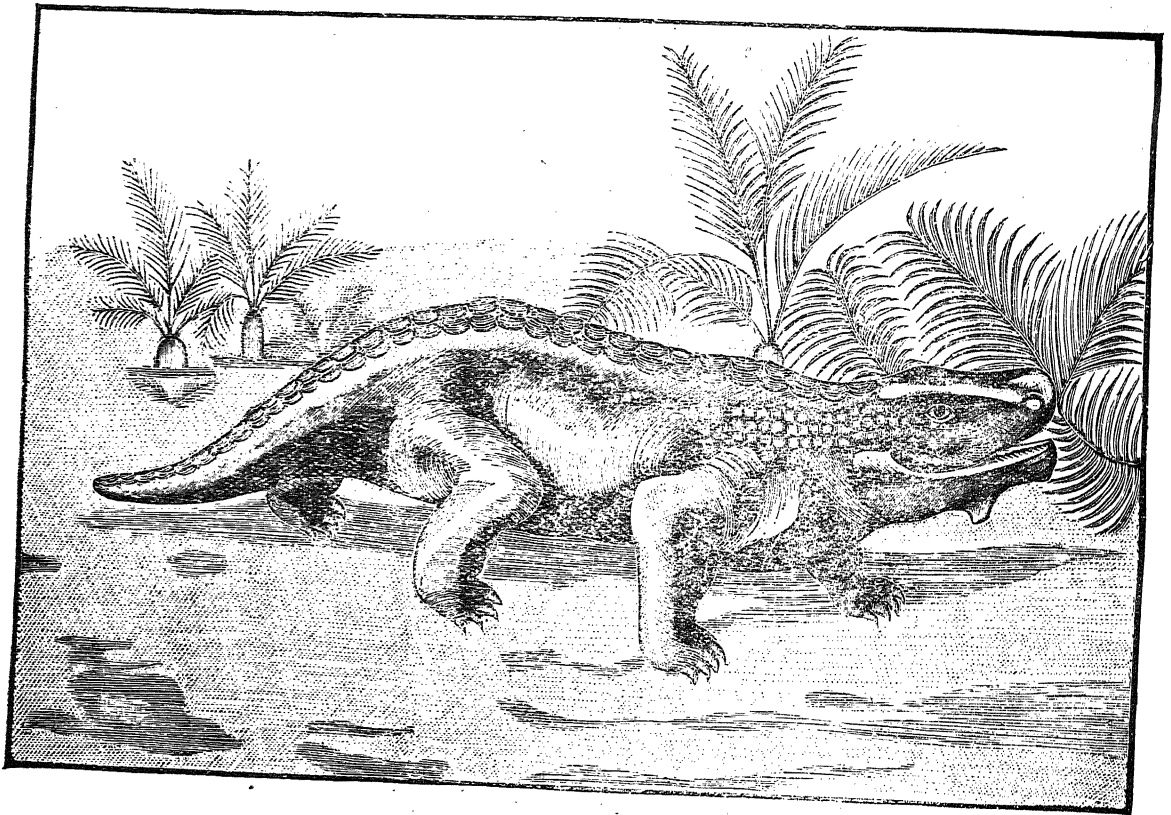
प्राचीन विशाल जन्तु

पर बहुतसे भीमकाय जन्तु बिल्कुल नष्ट हो गये, पुराने समयमें गैंडेकी जातिके अनेक जानवर होते थे जिनके सिर पर न केवल छः सींग ही होते थे, प्रत्युत दो लम्बे दाँत भी होते थे। टिटेनोथीरियम प्राणीकी नाक पर ही दो सींग होते थे। दक्षिणी अमरीकाके ग्लिप्टोडोनकी पीठपर हड्डियोंकी एक ढाल लगी होती थी। मेगाथीरियम पशु हाथीके बराबर आकारका होता था। अस्ट्रेलिया में पाये जानेवाले अवशेषोंसे यह पता चलता है कि पुराने समयमें वहाँ आजकल जितने बड़े पाये जाते हैं उसके दुगुने आकारके कंगारू पहले विद्यमान थे।
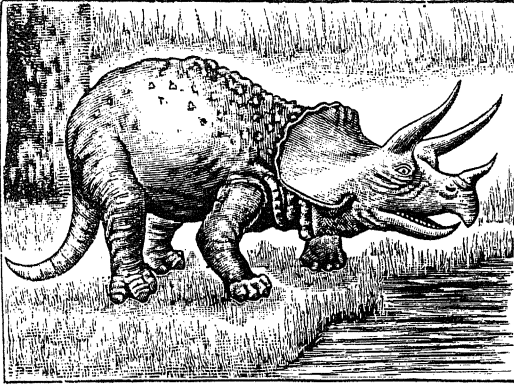
हाथियोंकी पुरानी जातिके पशु मैमथ और मेस्टोडोन कहे जाते हैं। मैमथ हमारे देशमें पाये जानेवाले हाथियोंसे बहुत मिलता जुलता है।
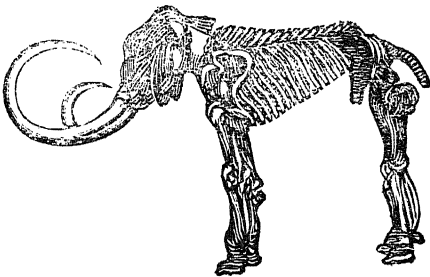
ममथकी ठठरी

इसके शरीरपर उस तरहके कुछ बाल होते हैं जिस प्रकारके हालके पैदा हुए हाथियोंके बच्चोंके होते हैं। मैमथके दांत कुछ अधिक मुड़े होते हैं। मेस्टोडोन तो हाथीसे और भी अधिक मिलता जुलता है, और इसकी जातिको लुप्त हुए अभी बहुत अधिक समय नहीं हुआ है। उत्तरी अमरीका में इसका शरीर पूर्णावस्थामें प्राप्त हुआ है। कुछ ऐसे जीवोंके भी पुराने अवशेष मिलते हैं जिनसे पता चलता है कि ये हाथियोंके पूर्वज हैं। इनमेंसे एकके तो ऊपरके जबड़ेमें दो दांत न थे पर नीचेके जबड़ेमें थे। घोड़ेके आकारकी भी एक हाथीकी ठठरी पायी गई है।

आज कलके घोड़ोंके पैरोंमें खुर होते हैं पर इसके पूर्वजोंके पैरोंमें शायद पाँच पाँच अंगुलियाँ होती थीं। बारह इंचकी ऊँचाईवाला एक जानवर—इओहिप्पस—इस प्रकारका पाया गया है जिसके आगेके पैरोंमें चार परन्तु पीछेके पैरोंमें तीन अँगुलियाँ थीं। नीचेके चित्रमें ऐसा एक घोड़ा दिया गया है।
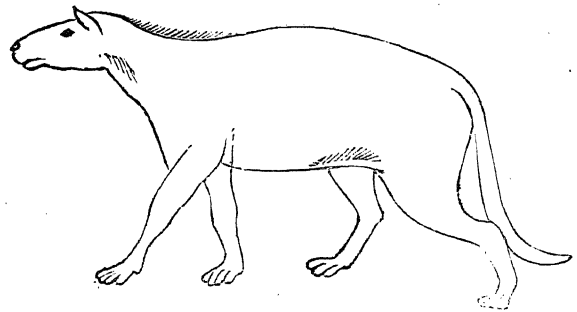
विकासके क्रमका सबसे अन्तिम पशु मनुष्य है। इसके पूर्वज बन्दर, शिंपाञ्जी, लेमुर आदि हैं। जिस समय मनुष्यका इस सृष्टिमें अवतार हुआ था (कोई १५-२० लाख वर्ष पूर्व) उस समय यहाँपर शेर, मैमथ, गैंडे, बाहरसिंगे, और बिसनभैंसे विद्यमान थे। मनुष्यका सम्पूर्ण शरीर इस

बातका उदाहरण है कि इसका सम्बन्ध छोटे-छोटे जीवोंसे रहा है। मेंढकके पैर चिड़ियोंके पंखोंमें परिवर्तित हुए और वे ही दूसरे स्थानपर कुत्तोंके आगेके पैर हो गये। ये ही चिमगादड़के पर बने, अब मनुष्यके हाथ हो गये। जहाँ जैसी परिस्थिति और आवश्यकता हुआ, वहाँ वैसा ही परिवर्तन हो गया। इनके स्नायुतन्तु, रुधिर प्रणालियाँ, और मांस पेशियाँ सब एक दूसरेसे मिलती-जुलती हैं। विकासके क्रममें यह मनोरञ्जक बात प्रतीत होती है कि ज्यों-ज्यों मस्तिष्कशक्तिकी वृद्धि होती जाती है, शरीर छोटा होता जाता है। भीमकाय पशु संसारसे नष्ट हो गये और उनका स्थान बुद्धिमान मनुष्यने ले लिया। मनुष्य अन्य पशुओंके समान बलवान नहीं हैं। स्वभावतः इसमें न उड़नेकी शक्ति है, न तैरनेकी, और न पैरोंके बल खड़े होकर चलनेकी ही, क्योंकि भेड़ियोंकी मादोंमें पाये गये मनुष्य पशुओंके समान हाथ-पैर चारोंसे चलते देखे गये हैं। इसके शरीरपर सर्दी गर्मीसे बचनेके लिये पशुओंके समान मोटा चमड़ा या घने बाल भी नहीं हैं। यही नहीं, आक्रमणकारी जन्तुओंसे रक्षा करनेके लिये न इसके दाँत ही शिकारी पशुओंके समान बलिष्ट हैं, न किसीपर वार करनेके लिये इसके पास पंजे ही हैं। क्या विचित्र बात है कि परमात्माने इस मनुष्य रूप इस कौतूहलप्रद जन्तु को एक मात्र 'बुद्धि' देकर सम्पूर्ण प्राकृतिक शक्तियोंसे रहित कर दिया। मनुष्य इस बुद्धिके उपयोगसे जलमें तैर सकता है, आकाशमें उड़ सकता है, पृथ्वीके अन्दर प्रविष्ट हो सकता है, हिमालयके बर्फीले शिखरोंपर चढ़कर प्रयासकर सकता है। प्रत्येक प्रकारका शीत और ताप सह-सकता है।

मनुष्यकी रचना करके परमात्माने अपने विकासका क्रम समाप्तकर दिया है, पर मनुष्यकी सृष्टि अभी चल ही रही है, कहा नहीं जा सकता है कि इसका अन्त कहाँ होगा। मनुष्य परमात्माकी सबसे अन्तिम और सर्वोत्कृष्ट रचना है और परमात्मा मनुष्यकी सबसे अन्तिम और सर्वोत्कृष्ट कल्पना है।

प्राचीन अंक गणित

[ले०—श्री प्रेम बहादुर वर्मा]

स प्रकार मानवी जीवनका विकास हुआ है ठीक उसी प्रकार मानवी ज्ञानकी भी अवस्था रही है। अगर हम किसी शास्त्रका अध्ययन करें तो हमें उन अवस्थाओं का, जो कि हमें वर्त्तमान सीढ़ी पर पहुंचनेके लिये पार करनी पड़ी हैं, कुछ भी ज्ञान नहीं होगा। उनके जाननेके लिये हमें उसके इतिहासकी आवश्यकता होती है। उसके अध्ययन तथा विचारसे मालूम होता है कि हमारा ज्ञान सर्वदा हमारी मानसिक तथा व्यावहारिक आवश्यकताओंको पूर्ण करनेके लिये उन्नति करता है। इसी प्रकारकी दशा गणितकी भी रही है। यह बात गणितके इतिहासज्ञ स्मिथ (David Eugene Smith) के शब्दोंसे बिलकुल स्पष्ट हो जाती है। उनका कहना है कि :—

"गणितके इतिहासका विचार करनेसे एक सुन्दर बात दृष्टिगोचर होती है। वह यह है कि गणित भी स्थिर ज्ञान होनेकी अपेक्षा लगातार उन्नतिको प्राप्त होती रही है और हमारी मानसिक व व्यावहारिक आवश्यकताओंको सर्वदा पूर्ण करती रही है।"

गणित सम्बन्धी हमारी साधारण आवश्यकताओंको पूर्ण करनेका श्रेय अंकगणितको रहा है जिसके नामसे प्रत्येक परिचित है। हम इसीके इति-

हासका कुछ वर्णन करेंगे। अंकगणितका प्राचीन नाम क्या था अथवा यही एक नाम हमेशासे चला आ रहा है इस विषयमें कुछ नहीं कहा जा सकता। प्राचीन जर्मन व यूनानी इसे ऐरिथमेटिक के (Arithmetic) नाम से पुकारते थे। अंग्रेज़ी भाषा में यह नाम (Arithmetic) अभी तक प्रचलित है। परन्तु दोनों शब्दोंके अर्थमें अन्तर है। लगभग सोलहवीं शताब्दीके आरम्भ तक यूनानी व जर्मन ऐरिथमेटिकसे संख्या-सिद्धान्त (Theory of numbers) का मतलब लेते थे जोकि आजकल बीजगणितका एक भाग है। अंकगणितका विषय जो वर्त्तमानमें है वह उस समय लोजिस्टिक (logistic) के नामसे प्रसिद्ध था।

आजकल की अंकगणित बहुत ही उन्नत अवस्थामें है और गणनाकी क्रियामें हमें बहुत सी सुविधायें प्राप्त हैं। प्राचीन कालमें स्लेट तथा कागज़का अभाव सा था। पहाड़ोंका प्रचार नहीं था। तथा काग़ज़का कार्य एबैकस (Abacus) से लिया जाता था। भिन्न २ देशोंमें भिन्न २ एबैकस थे। भारतके ग्रामोंमें भी एक प्रकारका एबैकस प्रचलित है। वह एक लकड़ी के तख्तेका बना होता है जिस पर बारीक रेत फैला दिया जाता है और एक पतली लकड़ीके टुकड़ेसे उस फैलाये हुए रेते पर लिखा जाता है।

जब कभी प्राचीन लोगोंको किसी लिखावटको स्थिर रूपसे रखनेकी आवश्यकता होती तो वे गीलीमिट्टीका पटसा बना लेते थे और उसपर लिखनेके बाद सुखाकर आगमें तपा लेते थे। इसी प्रकार वह स्थिर रूपमें आ जाती थी।

वर्त्तमान अंकगणितमें चार मुख्य क्रियाओंका वर्णन है। वे संकलन (Addition) व्यकलन (Subtraction), गुणा (Multiplication), भाग (Division) हैं। परन्तु प्राचीन कालमें सात क्रियायें प्रचलित थीं, इनमें उपर्युक्त चार भी मिली हुई हैं और शेष तीन इस प्रकार हैः—दूना (Duplation), अद्धा (Mediation) और मूलका निकालना। इन सातों क्रियाओंका तेरहवीं शताब्दीमें व्यवहार था और पन्द्रहवीं शताब्दी तक मिश्री अरबी लोगोंमें इनका प्रचार चलता रहा।

यह पहले ही कहा जा चुका है कि पहले पहाड़ों (Multiplication) का प्रचार न था। अरबी व मिश्री आदि गुणा व भागके समय दूने और अद्धेकी सहायता लिया करते थे। उनके नियम कुछ-कुछ खंड भाग और खंड गुणासे मिलते-जुलते थे। अगर उन्हें एक संख्याको दूसरीसे गुणा करना होता तो वे गुण्यको दूना करते और फिर दूनेका दूना; अन्तमें अगर गुणकमें एककी कमी रह जाती तो असली गुण्यको अन्तिमके दूने किये हुएमें जोड़ देते। भागमें इसी प्रकार "अद्धा" की सहायता ली जाती। अद्धा द्वारा ही किसी भिन्नका प्रकट करना भी बतलाया जाता था। दूना व अद्धाके होनेका एक कारण और था, क्योंकि उस समय ऐबैकस का प्रचार था और उसके प्रयोगमें सुविधा रखनेके लिये लोग दूना और अद्धाको ही काममें लेते थे। इससे उन्हें कुछ ऐसा न लिखना होता था जिसे बिगड़नेकी आवश्यकता हो। ऐसा करना एबैकसमें एक असुविधा थीं। वर्त्तमान चिह्नोंका प्रयोग करते हुए एक उदाहरण नीचे दिया जाता हैः—

$$७ \times १५ = (२ \times २ \times १५) + (२ \times १५) + १५$$

[स्मिथका "गणित-इतिहास" भाग दूसरा]

हम सौ तककी गिनती लिखना जानते है, परन्तु यह जानकर विस्मय होता है कि हमारे पूर्वज केवल दस तक भी नहीं लिख सकते थे। वे केवल १ से ९ तक ही लिखना जानते थे, इससे बड़ी संख्याको प्रकट करनेके लिये चिह्न नियत थे और स्थानीय मान (Place Value) का उस समय

कोई विचार न था। इन्हीं कठिनाइयोंके कारण बहुत बड़ी संख्याओंका प्रचार बहुत कम था और आवश्यकता पड़नेपर वे बड़े ही अजीब तरह प्रकटकी जाती थीं। हमारे जैसे गणना करनेके नियम वे न जानते थे परन्तु इससे न यह समझना चाहिये कि वे किसी प्रकार ठीक गणना (Calculations) न कर सकते थे। उस समय ऋण (—) व धन (+) के चिह्नोंका प्रचार न था।

लगभग सत्रहवीं शताब्दीके अन्त तक लोगोंमें एक और विचार फैला हुआ था। वह यह था कि प्रचलित नौ अंकोंमें इकाईको संख्या नहीं माना जाता था। यूक्लिड (Euclid) के अनुसार "इकाई" वह कहलाती है जिससे हम किसी चीज़को "एक" कहते हैं। यह संख्याका स्रोत तो मानी जाती थी पर "संख्या" नहीं, जो कि इकाईका समूह है। सोलहवीं शताब्दीमें इसके दो मत थे। एक वह जो इकाईको संख्या मानता था और दूसरा वह जो उसे संख्या नहीं मानता था। सन् १५८५ ई० में स्टीविन (Stevin) ने यह कह कर, इकाईको संख्यामें मिलाना चाहा, "चूँकि किसी वस्तुका भाग पूरे ही जैसा होता है इसलिये इकाई जो कि इकाई-समूह अर्थात् संख्याका भाग है, संख्या होनी चाहिये।" स्टीविनने इस विषयमें और भी युक्तियाँ दीं परन्तु सफलता न रही। विपक्षियोंका (Arntoine Arnauld 1612-1694) कहना था कि स्टीविनकी यह युक्ति कुछ भी नहीं क्योंकि एक अर्द्धवृत्त वृत्त नहीं हुआ करता। इकाईका संख्यामें गिना जाना १८ वीं शताब्दी के अन्त से आरम्भ हुआ। इसके विषयमें यूनानी लोगोंका यह भी विचार था कि इकाई बिन्दु की तरहसे भाग रहित है।

यह पहले बतलाया जा चुका है कि पहले नौही अँक थे। इनका आकार भिन्न २ देशोंमें भिन्न २ प्रकार था। केवल इतना ही नहीं प्रत्युत भिन्न २ समयमें इनमें रूपान्तर होता रहा है और जिस रूपमें आज हम किसी भाषामें उन्हें देखते हैं वह बहुतसे परिवर्त्तनोंका परिणाम है। अब हम इन अंकोंके विषयमें कुछ कहेंगे।

बेबीलोनिया (Babylonia) अंकों, जिनका अधिक पता चलता है कुछ कुछ निम्नलिखितानुसारसे थे।

१	२	३	४	५	६	७	८	९
γ	γγ	γγγ	γγγ γ	γγγ γγ	γγγ γγγ	γγγ γγγ γ	γγγ γγγ γγ	γγγ γγγ γγγ

(बेबीलोनिया अंक १ से ९ तक)

ये लोग लिखना केवल नौ अंकों तक जानते थे। इससे आगेकी संख्याओंके लिये भिन्न-भिन्न चिह्न नियत थे। कभी एक चिह्न दो तीन संख्याओंको भी प्रगट करता था। किसी सँख्याकी अनुपस्थिति एक शून्य द्वारा प्रगट { वृत्त } की जाती थी। परन्तु उस समय उनमें "स्थानीय मान" का कोई ज्ञान नहीं था और शून्यका अर्थ इससे अधिक न लिया जाता था।

चीनी अंकोंमें बेबीलोनियाँ अंकोंकी अपेक्षा अधिक परिवर्त्तन हुआ है। १ से १० तक वर्त्तमान अंक उन्नीसवीं शताब्दीसे आरम्भ हुए हैं। इसके पहले "डंडा अंक" प्रचलित थे। इनका नाम "डंडा अंक" इसलिये पड़ा कि ये पट (Counting board) पर डंडों द्वारा प्रगट किये जाते थे। उनका आकार यह था:—

।	।।	।।।	।।।।	।।।।।	I	II	III	IIII
१	२	३	४	५	६	७	८	९

यहांपर भी स्थानीय मानका कोई प्रचार न था और शून्य संख्याकी अनुपस्थितिमें काम आता था। उसका आकार [०] था। बड़ी संख्याओंके लिये चिह्न नियत थे।

वर्त्तमान हिन्दू अंकोंसे पाठक अवश्य ही परिचित होंगे। इनसे पहले यहाँ भी कई प्रकारके अंकोंका प्रचार हो चुका है जोकि दूसरे ही देशोंके समान अवस्थामें थे। भारतके पासके देशोंमें स्याम, ब्रह्मा, तिब्बत, सीलोन आदिमें इससे भिन्न प्रकारके अंक प्रचलित थे। जिनके इतिहासका कुछ महत्व नहीं है।

अब हम इन अंकों (Common numerals) के स्रोत पर विचार करने लगते हैं तो हमें कई सिद्धान्त मिलते हैं और ठीक-ठीक निश्चय करना बहुत कठिन पड़ जाता है। साधारण तया ऐसा विश्वास किया जाता है कि ये चिह्न रूप अंक सबसे प्रथम भारतमें उत्पन्न हुए और आठवीं शताब्दीमें बग़दाद पहुँचे फिर वहाँसे धीरे-धीरे यूरोप पहुँच गये। कइयोंका विचार है कि ये अंक भारतमें उत्पन्न नहीं हुए थे परन्तु अधिकतर प्रमाण भारतीय-स्रोतके विषयमें मिलते हैं, अन्योंके कम। सारा वाद-विवाद 'हिन्दसी' (Hindasi) शब्द पर है जिससे अरबी लोग अंकका अर्थ लेते आये हैं। कुछका विचार है कि 'हिन्दसी' का अर्थ हिन्दू नहीं हैं प्रत्युत ईरान (Persia) है। कुछ कहते हैं कि इसका अर्थ गणना (Calculations) से है। यहांपर सिवीरस सिवोक्त (Severus Sevokht) के शब्दोंको उद्धृत करना अनुचित न होगा।

"मैं हिन्दुओंके विज्ञानके विषयकी मीमांसा न करूँगा; ये लोग सिरियन्स (Syrians) की तरह नहीं थे। उनकी ज्योतिष-विज्ञानकी सूक्ष्म खोजें उनकी बुद्धिमत्ताको यूनानी व बेबीलोनियाँ लोगोंकीसे अधिक बढ़ी हुई बतलाती हैं; उनके गणना करनेके अमोल नियम व क्रियायें सरलतासे वर्णन नहींकी जा सकती हैं। उस सबके लिये केवल इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि यह सब कार्य केवल नौ अंकों द्वारा ही किया जाता था।" (सन् ६५० ई०)

भारतवर्षके पूर्व अंकके कई आकार थे। उनका सबसे प्राचीन आकार जोकि आजकल मिलता है सम्राट अशोकके शिला लेखोंमें है जो कि ईसाके पूर्व तीसरी शताब्दीमें अंकित किये गये थे। ये अंक देशके भिन्न-भिन्न भागोंमें एकमें रूपसे ही प्रचलित न थे, सब शिला लेखोंमें भी ये बिलकुल एक ही रूपके नहीं हैं। अशोकके लगभग सौवर्ष बाद नाना घाटकी पहाड़ियोंमें (जो पूनासे ७५ मीलकी दूरीपर हैं) कुछ शिला लेख स्थापित किये गये थे। उनमें अंक अशोकके समयके प्रचलित अंकोंसे बहुत कम मिलते हैं। ईसाकी पहली व दूसरी शताब्दीके अंक हमें नासिकके शिला लेखोंसे मिलते हैं।

इन उपर्युक्त अंकोंमें जो मुख्य बात दिखाई देती है वह यह है कि नाना घाट व नासिक अंक अधिकतर मिलते हैं और केवल नौ ही हैं। बड़ी २ संख्यायें अन्य चिह्नों द्वारा प्रगट की गई हैं। उस समय शून्यका प्रचार न होनेके कारण "स्थानीय मान" का कोई विचार न था। भारतके भिन्न २ प्रदेशोंके अंकोंमें कुछ कुछ समानता थी जैसा कि प्रथम कहा जा चुका है; क्योंकि प्राचीन सब अंकोंके देखनेसे मालूम होता है कि आरम्भके दो, तीन, चार या पाँच अंक चीनी "डण्डा अंक" की तरह आड़ी, खड़ी, या तिरछी रेखायें हैं। कइयोंका विश्वास है कि नाना घाट और नासिक अंक हमारे वर्त्तमान अंकोंके पूर्वज हैं।

शून्यका आविष्कार होनेके पहले जिन अंकोंका प्रचार भारतमें हुआ था उनमेंसे कुछेकके नाम यहाँ पर दिये जाते हैं, जो कि अशोक, शक, नागरी, नासिक, कुशन, गुप्त, बल्लभी, नैपाल, कलिंग थे। इन सबकी अवस्था ऐसी ही थी जैसी कि वर्णन की जा चुकी है।

शून्य का आविष्कार कब हुआ और किसने किया ? इस विषयमें भी उतना ही कम कहा जा सकता है जितना अंक आविष्कारके विषय-

में। वर्त्तमान अंक-प्रणालीका विशेष गुण स्थानीय मान है जो कि शून्य पर निर्भर है और उसके बिना कोई प्रणाली पूर्ण नहीं हो सकती। भारतका सबसे प्राचीन शिला लेख जिसमें शून्य व स्थानीय मानका पता चलता है वह ग्वालियरमें है और सन् ८७६ में स्थापित किया गया था। परन्तु प्रमाणोंसे यह सिद्ध हो चुका है कि स्थानीय मानका प्रचार इससे बहुत पहले हो चुका था अतएव शून्यका प्रचार इससे पहले हो चुका था; और यह कहा जा चुका है कि बेबीलोनिया आदिके लोग संख्याकी अनुपस्थितिके लिये [०] शून्यका प्रयोग करते थे। शून्यका ठीक इतिहास मिलनेकी कोई सम्भावना भविष्यमें हो सकती है कि नहीं, इस विषयमें कुछ नहीं कहा जा सकता है। इतिहास बतलाता है कि दुनियाँको शुद्ध अंक प्रणालीकी बड़ी भारी आवश्यकता थी; भारतवर्षमें शून्यका प्रचार बहुत पहले हो चुका था और बहुत सम्भव है कि वह हिन्दू आविष्कार हो।

जब शून्यका प्रचार हुआ तो भारतकी सब अंक प्रणालियोंमें परिवर्त्तन हुआ और इसी प्रकार धीरे धीरे हमारी वर्त्तमान प्रणाली और उसके रूपका जन्म हो गया। शून्यके बाद जो अंक हुए उनका रूप बहुत कुछ वर्त्तमान रूपसे मिलता है, और यहाँ पर उसके बतलानेसे कोई विशेष लाभ नहीं है।

इसी प्रकार यूरोपीय अंकमें भी परिवर्त्तन हुआ। उनका परिवर्तित रूप वर्त्तमान यूरोपीय अंकोका जन्म-दाता है और कुछ-कुछ मिलता भी है। इन सब अंकोंमें शून्यका रूप लगभग एक ही था, कहीं-कहीं { ˙ } और कहीं { ० } का प्रयोग किया गया है।

विदेशी भाषाओंमें शून्यके प्राचीन नाम ज़ीरो, साइफर (Cipher) और नौट (Naught) हैं। भारतमें शून्यको "शून्य"के नामसे पुकारा जाता था और अब भी यही नाम है। शून्यका अर्थ "रहित" है। अरबीमें यह शब्द "एससिफ्र" (as-sifr) या सिफर (Sifr) बन गया। आगे चलकर कदाचित् यह शब्द 'साइफर' हो गया।

सिबेरस सिबोक्त (Severus Sebokht) के वर्णन से जाना जाता है कि हिन्दू अंक सातवीं शताब्दीमें मैसोपोटामियामें पहुंच चुके थे। अन्य स्रोतोंसे पूर्णतया जाना गया है कि सन् ७७३ ई० में कुछ ज्योतिष पत्रिकायें बग़दाद लेजाई गई और ख़लीफ़ाकी आज्ञासे उनका अनुवाद संस्कृतसे अरबीमें किया गया। अनुवादकका नाम फ़ज़ारी (Fazari) बताया जाता है। उस पत्रिकामें शून्यका प्रयोग आया है। कहा जाता है कि बग़दादमें हिन्दू अंक काबुलके मार्गसे पहुँचे और बिना शून्यके ये अंक पूर्वसे पश्चिमको कदाचित् पांचवी शताब्दीमें प्राचीन व्यापार मार्ग द्वारा सिकन्दरिया (Alexandria) पहुँच गये थे।

शून्यका आविष्कार होनेसे पहले गणितकी चारों क्रियायें केवल नौ अंक व चिह्नों द्वारा ही की जाती थीं। प्राचीन व वर्त्तमान क्रियाओंकी तुलना करनेसे प्राचीन क्रियायें बहुत ही अद्भुत लगती हैं और उन्हें समझनेके लिये एक विशेष प्रकारका प्रयत्न करना होता है। गणितकी प्राचीन क्रियायें संकलन, व्यकलन, गुणा, और भाग सब अद्भुत रीतिसे हैं; परन्तु उस रीतिमें कोई अशुद्धता नहीं मिलती और फल बिलकुल ठीक हैं। आधुनिक रीत्यनुसार हमें उसमें दोष भले ही मिल जायं परन्तु वह दोष केवल इसी बातमें है कि वह रीति सरल और सुगम नहीं है। इसका कारण प्राचीनमें स्थानीय मानकी अनुपस्थितिसे है।

इसी स्थानीय मानकी अनुपस्थितिसे हम देखते हैं कि प्राचीन संकलन व व्यकलन बहुत छोटे होते हुए भी लम्बी-लम्बी क्रियाओं द्वारा किये गये हैं और फल कई पंक्तियोंमें निकाला गया है। गुणा व भागके साथ भी वही अवस्था थी। हमारी वर्त्तमान जैसी सुन्दर रीतियां उनके पास न थीं और

फलको प्राप्त करनेके लिये उन्हें लम्बी व विकट रीतियोंका सहारा लेना पड़ता था। सब देशोंमें एकसी रीतियाँ न थीं।

पाठकोंके मनोरंजनार्थ हम यहाँ एक मध्यकालीन हिन्दू संकलनका उदाहरण देकर इस लेखको समाप्त करेंगे। भारतीय गणितज्ञ भास्कर द्वारा रचित लीलावतीमें* यह प्रश्न दिया है कि "हे लीलावती अगर तू जोड़नेमें चतुर है तो दो, पाँच, बत्तीस, एक सौ तिरानवे, अठारह, दस, और एक सौको जोड़।" इस पुस्तकपर एक टीका है जो कि अज्ञात तिथि की है; उसमें निम्नलिखित रीति दी गई है:—

इकाई का जोड़	२,५,२,३,८,०,०	२०
दहाई का जोड़	३,६,१,१,०	१४
सैकड़े का जोड़	१,०,०,१,	२
जोड़ों का संकलन		३६०

"लीलावती" सन् ११५० ई० में लिखी गई थी और यह रीति जो कि हमारी वर्त्तमान रीतिसे बहुत कुछ मिलती जुलती है स्थानीय मानके प्रचार हो जानेके बादकी है।

छूतके रोग और उनसे बचनेके उपाय

(ले०—श्रीरामचन्द्र भार्गव एम० बी०, बी० एस०)

हैजा

यह एक बड़ा भयानक रोग है और बड़ी जल्दी फैलता है—

लक्षण—इसमें पानीके सदृश दस्त और कै होते हैं। पेशाब बन्द हो जाता है। अधिकांश रोगी १० या १२ घंटेमें ख़तम हो जाते हैं।

छूत कहां रहती है? छूत दस्त और कैमें रहती है।

छूत कब तक रहती है? रोगीके अच्छे हो जानेपर भी उसके दस्तमें छूत लगभग १ महीने तक रहती है।

छूत कैसे फैलती है? दस्त और कैका पानीमें न्यूनसे न्यून मात्रामें भी पहुँच जानेसे बड़ा अनर्थ होनेकी आशंका रहती है।

मरीजके हाथोंमें और अन्य शरीरके भागोंमें दस्त और कै छूनेकी सम्भावना रहती है। दस्त और कै कमजोरी या बेहोशीकी हालतमें चारपाईपर कपड़ोंमें हो जाते हैं। इन कपड़ोंको तालाबोंमें धोनेसे बड़ा अनर्थ हो सकता है। रोगीके बर्त्तनोंके ज़रियेसे छूत फैल सकती है। मक्खी दस्त और कै पर बैठती है और भोजनपर भी बैठती है। इसलिये मक्खियोंके द्वारा भी छूत फैल सकती है।

बचनेके उपाय और रोगीकी सुश्रुषामें काममें लानेकी आवश्यक सावधानियां।

१—रोगीके दस्त और कैको धरतीमें मत गिरने दो, जिससे कि मक्खियोंको दस्त और कै पर बैठनेका अवसर न मिले। इसका सहज उपाय यह है:—

एक तसलेमें कै और दस्त कराओ और उसे थालीसे ढका रक्खो। यदि ऐसा न हो सके तो एक घड़ा अथवा बड़ी हंड़िया लो और एक उससे कुछ छोटी हंड़ियां लो। दोनोंका ऊपरका हिस्सा तोड़ दो।

उनके नीचे थालीनुमा भाग रह जावेंगे। छोटी हांड़ीके टुकड़ेमें मरीज दस्त और कै कर सकता है। और बड़ी हांड़ीका टुकड़ा ढकनेके लिये इस्तेमाल हो सकता है।

इन बर्तनोंको बादमें जला देना चाहिये। यदि कभी दस्त या कै धरतीमें हो जाय जो फौरन उसपर राख या मट्टी डालकर और फिर उसमें मिट्टीका तेल डालकर आग लगा दो।

---

* लीलावती, भास्करकी पुत्रीका नाम था और यह पुस्तक उसने अपनी पुत्रीके शिक्षार्थ ही लिखी थी।

२—मरीज़को किसी औरके खाने-पीनेके द्रव्य मत छूने दो, न उसके कमरेमें ही औरोंके खाने-पीनेके द्रव्य लाओ।

३—मरीज़के बर्तन बिलकुल अलग रखो। और बिना उन्हें पवित्र किये काममें न लाओ।

४—मरीज़के कपड़ोंको जलवादो या उबलवाओ। चारपाईको पवित्र किये बिना इस्तेमाल न करो।

५—जो कोई मरीज़को, मरीज़के बर्तनोंको अथवा कपड़ोंको छुए फौरन उसे साबुनसे अपने हाथ धोकर गहरे लाल दवाके घोलमें ५ मिनट तक डुबोये रहने देना चाहिये।

६—यदि परिचारकाके कपड़ोंपर अथवा शरीरके खुले भागपर मक्खी बैठ गई हो अथवा दस्त या क़ैके छींटे लग गये हों तो कपड़ा बदलना चाहिये और उसके पवित्र करनेका उपाय करना चाहिये और उस भागको हाथोंके सदृश धोना चाहिये।

७—कमरेको फिनायलसे धोना चाहिये और तीन फुटकी ऊंचाई तक दीवारोंकी सफेदी कराना चाहिये।

८—हैज़ेके दिनोंमें केवल उबले हुए पानीका ही प्रयोग पीनेके काममें करना चाहिये।

यदि उबला पानी किसी कारणसे न मिल सके तो लाल दवा छोड़कर पानी पीना चाहिये।

९—हैज़ेके दिनोंमें साधारण प्रवाहिका होनेपर भी डाक्टरसे फौरन इलाज कराना चाहिये।

१०—सड़ी या अपच वस्तु न खानी चहिये, और जहां तक हो सके गरम भोजन ही खाना चाहिये। बिना उबाले हुए फल भी त्याग करना ही अच्छा है।

११—हैजा रोकनेकी दवा 'विली वैकसीन' डाक्टर साहेबसे लेकर खाना चाहिये।

आन्त्र ज्वर

(मोती जूरा, मोती ज्वर) 'टाईफोयड, एन्ट्रिक'

लक्षण—३ सप्ताहसे अधिक ज्वर चढ़ा रहता है, यह ज्वर सुबह कम हो जाता है और रातको फिर बढ़ जाता है। मोती ज्वर जिसमें बहुत छोटे-छोटे दाने निकलते हैं वह भी इसी ज्वरका एक रूप है।

इसकी छूत दस्त और पेशाबमें रहती है। इससे बचनेके उपाय भी वही हैं जो कि हैज़ेके हम बतला आए हैं।

पेचिश और आंव

इसमें मरोड़ होती है और खून गिरते हैं, छूत दस्तोंमें रहती है। सावधानियां वे ही काममें लानी चाहिये जोकि हैजेमें बतलाई गई हैं।

चुन्ने की बीमारी

चुन्ने कोई एक अंगुल लम्बे धागेके सदृश बिल-बिलाते कृमि होते हैं जोकि बच्चोंके दस्तोंमें निकलते हैं। इस रोगका सबसे साधारण लक्षण यह है कि पाखानेकी जगह कुछ खुजलाहट पैदा हो जाती है।

चमुने (चुन्ने)
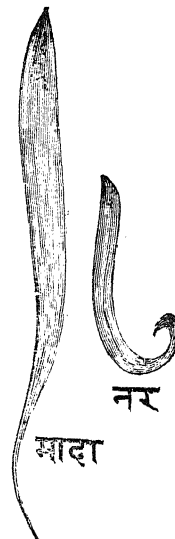
बच्चोंमें यह रोग बहुत साधारणतासे पाया जाता है परन्तु बड़ोंमें कभी-कभी मिलता है।

छूत कहां रहती है ?

यह तो बिल्कुल स्पष्ट है कि छूत दस्तमें रहती है क्योंकि दस्तमें ही चुन्ने और उनके अंडे रहते हैं। इनके अंडे नंगी आखोंसे नहीं देखे जा सकते।

छूत कैसे फैलती है ?

मरीज़के हाथोंमें अपना पाखाना धोते समय अंडे लग जाते हैं। इसलिये मरीजके हाथोंसे छूत फैल सकती है।

रोगी अपने हाथों द्वारा अपने पाखानेमें निकले अंडे अपने ही मुंहमें भी अपने हाथों द्वारा पहुँचा ले सकता है। मरीज़के पेटमें अण्डे पहुँच कर फिर चुन्ने बन जाते हैं और इसप्रकार मरीज़के पेटमें चुन्नोंकी संख्या बढ़ती ही जाती है।

बचनेके उपाय

मरीज़के हाथ साफ रखो। मरीज़को किसी अन्यकी खाने-पीनेकी चीज़ मत छूने दो।

केंचुएकी बीमारी

यह कृमि प्रौढ़ावस्थामें कोई आधे अंगुल मोटे और १० इंचके लगभग लम्बे होते हैं।

देखनेमें यह कृमि धरतीके केंचुएके समान ही होता है परन्तु आदमीके पेटके केंचुएका इससे कोई सम्बन्ध नहीं होता है।

केंचुआ

केंचुएकी बीमारीके फैलनेके कारण और बचने के उपाय वही हैं जो कि चुन्नोंके बयानमें बतलाये जाचुके हैं।

ऊपरकी बीमारियोंका हाल पढनेसे परिचा-रिकाका ध्यान इतनी बातोंकी ओर अवश्य खिंचा होगा।

१. कै और दस्त धरतीमें न होने देना चाहिये। हैजा, आन्त्र ज्वर (मोती ज्वर) में पाखाना कै और आन्त्रज्वरमें मूत्र जला देना चाहिये।

२. कमरेमें सफाई रखनी चाहिये कि जिससे मक्खी न आयें।

३. मरीज़को, मरीज़के वस्त्रों या बरतनोंको छूकर बड़ी सावधानीसे हाथ धोना चाहिये।

४. मरीजके कपड़े, बर्तन इत्यादि आवश्यकता-नुसार पवित्र कराने चाहिये।

५. आगे चलकर यहभी ज्ञात हो जायगा कि बलगम, पीप, इत्यादि भी बड़ी गन्दी होती हैं और इन्हें भी धरतीमें न गिरने देना चाहिये।

बड़ी चेचक

इसमें कुल शरीरपर दाने निकल आते हैं। इन दानोंमें पीप पड़ती है। पीपके सूखनेसे पपड़ी बनजाती है। पपड़ी कुछ दिनोंबाद गिर जाती है। ज़ोरकी चेचकमें दाने बड़े बड़े होते हैं और रोगीकी हालत बड़ीही दयाके योग्य होजाती है। छूत पपड़ी में ही रहती है। जब तक मरीजके कहींभी पपड़ी लगी रहे मरीजसे छूत फैल सकती है।

पपड़ी सूखकर रेतके सदृश होजाती है और फिर पपड़ीकी यह रेत हवाके साथ इधर-उधर सब ओर पहुँच सकता है अर्थात् इस बीमारीकी छूत हवा के द्वाराभी फैल सकती है, क्योंकि जब हम सांस लेते हैं तो हमारे सांसके साथ-साथ यह छूतभी हमारे शरीरमें प्रवेशकर सकती है।

मरीजके कपड़ोंसे और शरीरसे तो छूत लग ही सकती है।

यह बीमारी एक बड़ी भयंकर बीमारियोंमें गिनी जाती है क्योंकि इसका संचार बड़ी सुगमतासे होता है।

यह बीमारी बच्चोंको अधिक होती है।

जिस घरमें घुसती है उसके सब बच्चोंको लपेट लेती है। यह बीमारी बड़ी प्राणघातक बीमारी है। और इसमें बहुत बच्चोंका नाश होता है, और कितने ही लूले, लंगड़े, काने, अंधे हो जाते हैं। बदसूरत तो होजाना साधारण बात है ही।

यह औरत अन्धी और कुरूप हो गई

बचने के उपाय

चेचक जिसे एक बार हो जाती है साधारणतः उसे दुबारा नहीं होती क्योंकि उस मनुष्यमें चेचक के विमुख प्रतिरोधकी शक्ति उत्पन्न हो जाती है, अर्थात् जिसे एक बार चेचक निकल आती है वह चेचकसे अभय हो जाता है।

चेचकसे बचनेके उपायोंमें सबसे अधिक महत्व टीकेको दिया जाता है। बच्चेके पैदा होनेके बाद जितनी जल्दी हो सके टीका लगवादें।

सात वर्ष बाद दुबारा टीका लगवाना चाहिये। क्योंकि इतने दिन बाद पिछले टीकेका प्रभाव कम हो जाता है। घरमें किसीको जहां चेचक दिखलाई पड़े, जिस जिसको टीका न लगा हो अथवा जिस जिसका टीका पुराना होगया हो उन सबको एक दम टीका लगवानेका प्रबन्ध करना चाहिये। यह नितान्त आवश्यक है।

उम्रका कोई खयाल न करना चाहिये क्योंकि चेचक भी उम्रका ख्याल नहीं करती है। ऐसी हालतमें टीकेके लिये जितना भी जोर दिया जाय कम है। लेखकने ऐसे कितने गांव देखे हैं कि जिनमें जब चेचक फैली तो बिना टीके वाले बच्चोंने बड़ी तकलीफ पाई और उनमेंसे बहुतसे तो मर भी गये। टीका लगनेपर या तो चेचक नहीं निकलती है अन्यथा बहुत ही कम निकलती है कि जिसमें रोगी मरता नहीं और अन्धा, काना, लूला, लंगड़ा नहीं हो सकता है।

जिसको हाल ही में चेचक निकली है तो भी टीकेकी आवश्यकता नहीं होती है।

चेचक रोकनेके अन्य उपाय यह हैं:—

१. जिनके हाल ही में टीका लगा हो या चेचक निकली हो केवल वे ही रोगीके कमरेमें प्रवेश करने पायें। परिचारिकाको टीका लगवाना नितान्त आवश्यक है।

२. जो लोग रोगीके स्पर्शमें आवें वह बिना कपड़े बदले और शरीरके नग्न भागोंको धोये और किसीको न छुएं।

३. पपड़ियोंको इकट्ठा करके जला देना चाहिये

४. मरीजके कमरेमें सफाई रखना चाहिये। रोज फर्शको धोना चाहिये। मरीजके कपड़ोंको और बर्तनोंको अन्य किसी काममें लानेके पहिले पवित्र कराना आवश्यक है।

५. मरीजके कमरेकी सफेदी करानी चाहिये। स्कंध पुराणमें निम्न लिखित वर्णन शीतला का दिया है। यह दिगम्बरी होती है, अर्थात् नंगी

रहती है। गधे पर चढ़ी होती है और हाथमें घड़ा, झाड़ू, सूप और अभय मुद्रा लिये होती है इस वर्णनका मतलब केवल निम्न लिखित हो सकता है—

दिगम्बरीसे यह अर्थ है कि रोगीके कपड़ोंमें छूत होती है।

शीतला देवीके हाथमें घड़े और झाड़ू इत्यादि से यह मतलब है कि कमरेमें सफाई रखना चाहिये —गधे पर चढ़े होनेका यह मतलब है कि रोग केवल उन मूर्खों को होता है जो बचनेके उपायों पर ध्यान नहीं देते।

यह स्कन्ध पुराणका वर्णन हमने यहाँ पर देना इसलिये उचित समझा कि संभवतः बहुत सी पाठिकायें ये समझें कि यह डाक्टरोंके नये ढकोसले हैं। पहिले भी इन बातोंका कुछ ज्ञान मौजूद था। यदि ऊपर कही बातें सब लोग काममें लायें तो यह आशाकी जा सकती है कि हमारे देशसे यह रोग उड़ जाये।

खसरा, छोटी चेचक (मिज़ील्स)

यह टीकेसे नहीं रुक सकती है। अन्य सब बातें वही करना चाहिये जो कि चेचकमें काम आती हैं। केवल अन्तर इतना ही है कि टीकेकी आवश्यकता अन्य लोगोंके लिये नहीं पड़ती है।

तपेदिक—क्षय रोग

इस बीमारीके लक्षण हैं बुखार और खांसी। बुखार या तो शामको दुपहरके बाद रोज चढ़ता है अथवा महीनोंतक बराबर चढ़ा रहता है।

खांसीमें बलगम आता है। बड़ा ही दुःखदायी रोग है। आदमीको तरसा-तरसाकर मारता है।

इस रोगकी छूत बलगममें रहती है। बलगमके कण हवाके साथ स्वस्थ मनुष्योंके शरीरमें श्वासके द्वारा प्रवेश करते हैं। यह रोग अधिकतर उनको होता है जो गन्दी हवामें रहते और जिन्हें पुष्ट भोजन भी ठीक-ठीक नहीं मिलता है। शहरोंकी हवा तंग गली, ऊंचे मकान और धुंवाकी वजहसे गन्दी हो जाती है। ऊंचे मकानोंकी वजहसे हवा रुकती है। और इसी कारण वह साफ नहीं हो सकती।

१. रोगीका बलगम जमीनमें नहीं पड़ा रहने देना चाहिये। रोगीका बलगम एक ऐसे बरतनमें थुकवाना चाहिये कि जिसमें कुछ लाईसौलका घोल छोड़ रखा हो। विलायतमें तो बहुत अस्पतालोंमें यह तरीका है कि तपैदिकका रोगी जब बाहिर घूमने जाता है तब भी उसके साथ एक पीकदान बांध दिया जाता है क्योंकि इस बलगमसे रोग फैलता है इसलिये उसका हर जगह पड़ा रहना ठीक नहीं। बलगम जला भी दिया जा सकता है।

२. रोगीके बरतन अलग रखने चाहिये।

न्यूमोनिया, फुफ्फुस प्रदाह

इसमें रोगीकी सांस बड़ी तेजीसे चलती है। और तेज़ बुखार रहता है। खांसी आती है, बलगम निकलता है। छूत बलगममें रहती है। बचनेके उपाय वही हैं जो कि तपैदिकमें बताये गये हैं। क्योंकि इस रोगमें भी छूत बलगममें रहती है।

डिपथीरिया या मिथ्या झिल्ली रोग

इस रोगमें गलेमें झिल्ली बन जाती है जिसके कारण गलेका रास्ता बन्द होकर सांस बन्द हो जाने की सम्भावना रहती है।

इसलिये डाक्टर इसमें गलेके नीचेकी हवाकी नलीको चीरकर उसे खुला रखनेके लिये एक चांदी की नली लगा देते हैं। जब रोग अच्छा हो जाता है तो उसे निकाल लेते हैं। फिर गलेका जख्म जुड़ जाता है। यह रोग बच्चोंमें अधिक होता है।

आरम्भमें इस रोगमें केवल गलेका दरद मालुम होता है। इस रोगमें भी रोगीको अलग रखना चाहिये। उसके गलेसे जो कुछ बलगम निकले

अथवा जो रुई इत्यादि उसके गलेके पोंछनेके काम में आए उसको जला देना चाहिये। इस बातकी सावधानी रखना चाहिये कि मरीजके बलगमके छींटे मुंह,नाक अथवा वस्त्रोंपर न पड़ने पायें।

जंगी बुख़ार

यह बुख़ार बहुत दिन तक नहीं रहता है परन्तु फैलता बहुत जल्दी है। इसके रोकनेके लिए सुई लगवानी चाहिये क्योंकि इसमें निमोनिया होजाने के कारण जान बहुत जाती हैं।

बलगम वाली बीमारीमें बलगममें जीवाणु पाये जाते हैं। बलगम यदि धरतीमें थूका जाये तो यह जीवाणु स्वस्थ मनुष्योंतक पहुँच सकते हैं। इस प्रकारकी बीमारी बहुत शीघ्र फैलती है। मरीजको लाईसोलके घोलमें थूकना चाहिये।

ताऊन

यह बीमारी तीन प्रकारकी होती है—

१. बुखार हो परन्तु गिल्टी न निकले और न बलगम आये।

२. बलगम आये।

३. गिल्टी निकले। गिल्टी अधिकतर पैरमें होती है, परन्तु बगल, और गर्दनमें भी हो सकती है। ताऊन सर्दीमें बहुत फैलती है। ताऊन अधिकतर चूहेके पिस्सुओं द्वारा फैलती है जब चूहेके पिस्सू आदमीको काट लेते हैं तो उसे यह बीमारी हो जाती है। ताऊन चूहोंको भी होती है। और जो इन ताऊनी चूहोंके पिस्सू होते हैं इन ही के द्वारा
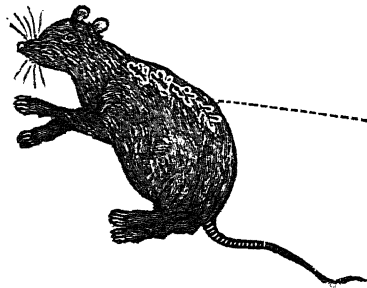
यह बीमारी फैलती है, पहिले ताऊन चूहेंमें फैलती है जब सब चूहे मरजाते हैं तो यह पिस्सू आदमियों को काटने लगते हैं और फिर आदमी मरने लगते हैं।

ताऊन से बचने के उपाय

१. यदि गांव अथवा मुहल्लेमें कहीं भी चूहे मरते हों अथवा कोई ताऊनका मरीज हो तो घर छोड़कर बाहिर झोंपड़ोमें रहना चाहिये।

२. मकान को लौटनेके पहिले मिट्टीके तेलसे धुलवाना चाहिये।
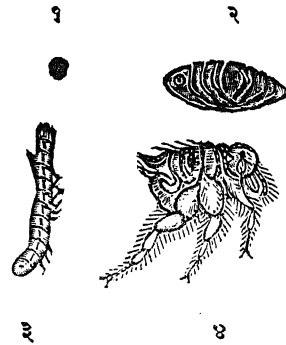
प्लेगका पिस्सू

१—अंडा २—इसनी ३—शंखी ४—पूर्ण कीड़ा इसकी चार अवस्थायें दिखाई गई हैं।

३. हमारा ध्यान इस ओरभी आकर्षित होना चाहिये कि घरमें सफाई रहे। खानेकी चीज़ें ढकी रहें कि चूहे कम हों। चूहोंको चूहे दानीमें पकड़-कर पानीमें डुबोकर मारा भी जा सकता है।

४. सुई लगवाना चाहिये।

जब ताऊनके मरीजकी सुश्रुषा करनी पड़े तो इन बातोंका ध्यान रखना चाहिये।

१. मरीजकी चारपाई, कपड़े, कमरा इत्यादि में पिस्सु होसकते हैं उन्हें फौरन पवित्र कराओ। छप्परका पवित्र करना कठिन है। छप्पर जलाया जा सकता है।

२. मरीज़को धरतीमें हरगिज न थूकने दो। वह लाईसौलके घोलमें थूके।

३. बलगमकी छूतसे बचनेके लिये मुँह पर नक़ाब पहिनना चाहिये। इससे बलगमके छींटोंसे बचाव होगा। नक़ाब मलमलका सीकर बनाया जा सकता है।

४. अपने आप मोजे और जूते बराबर पहिनो क्योंकि पिस्सू उड़ नहीं सकते हैं और अधिक तर फुदककर पैरमें ही काटते हैं। हाथमें दस्ताने पहनने चाहिये।

५. जमीनमें मत बैठो, किसी पवित्रकी हुई कुर्सी इत्यादि पर बैठो।

५. मरीजको मत छुओ क्योंकि मरीज पर चढ़े पिस्सु तुम्हें काटले सकते हैं।

मलेरिया, (दुर्वात), जूड़ी बुखार

इसमें जूड़ी लगती है और तिजारी चौथिया बुखार आता है। यह जहरीले मच्छरके काटनेसे होता है। इसमें परिचारिकाको रोगीसे छूत नहीं लग सकती।

मच्छर से बचने के उपाय

मसहैरी लगाना और घरमें खुला पानी न इकट्ठा होने देना है।

इस बीमारीकी बड़ी अच्छी दवा कुनीन है। इसकी मात्रा ५. से १०. ग्रेन है। ३ दफे दिनमें खानी चाहिये। यह बुख़ार अगस्त और सितम्बरमें बहुत फैलता है। इन दिनोंमें इस बुखारको रोकनेके लिये ५ ग्रेन कुनीन खाई जा सकती है।

डंगू बुखार और फीलपाव (हाथी पांव) भी मच्छरोंसे फैलते हैं और मसहैरी लगानेसे इस बीमारीसे भी बचा जा सकता है।

जूँ

जूं वैसे ही बड़ी दुखदाई होती है परन्तु यह एक प्रकारका बुखार भी फैलाती है।
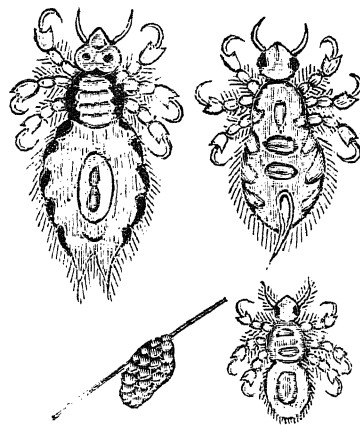
सरकी जूं

१० गुनी बढ़ाकर दिखाई गई है

जूं नष्ट करनेकी विधियाँ यह हैं।

१. कपड़ोंको उबालना।

२. सिरके बाल आदमियोंमें कटवा देना।

३. सिरके बालोंमें कंघा करके जूं निकालना, सिर धोना।

४. पैट्रोल सिरमें डालना। पैट्रोल सिरमें डाल कर आगके सामने न जाना चाहिये।

५. मिट्टीका तेल डालना, इसमें आग लगनेका डर है और बू भी मारती है।

६. मिट्टीका तेल, सरसोंका तेल, साबुनका घोल बराबर बराबर मिलाकर और उसमें कपूर छोड़कर उपयोगमें लाया जा सकता है।

मिट्टीके तेलकी दुर्गन्ध इसप्रकार कम हो जाती है।

७. नफ्थलीन ९६ भाग, क्रियासोट २ भाग, आयडोफारम २ भाग मिलनेसे चूर्ण बन जायगा।

इसके लगानेसे भी जूं मर जाती हैं। इसकी कीमत अधिक पड़ती है।
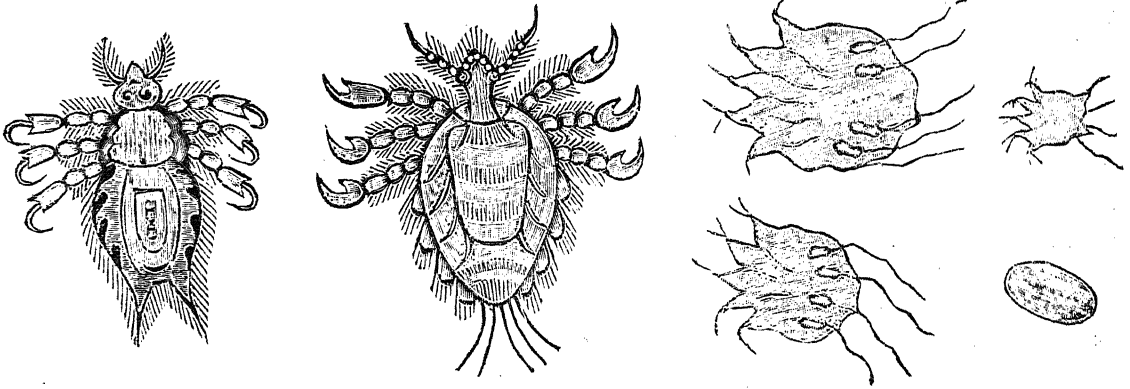
जंघाओंपर पाई जानेवाली जूं (१७ गुना बड़ी दिखाई गई हैं)

खुजली की बीमारी

इसका कारण एक कीड़ा है और बहुत शीघ्र फैलती है। मरीजकी कभी-कभी बड़ी बुरी हालत हो जाती है। पहिले यह अंगुलियोंके बीचमें आरम्भ होती है और फिर बहुत जगहोंपर जहाँ-जहाँ नरम खाल होती है फैल जा सकती है।

खुजलीके मरीजसे दूसरे आदमीको रोगका फैलना कोई असाधारण बात नहीं है। ऐसे मरीजों के कपड़े इत्यादि अलग रखना चाहिये। मरीजको साबुनसे अच्छी तरह निहलाना चाहिये।

गन्धकका मरहम मलनेके काममें लाया जा सकता है। मरीजको छूकर अच्छी तरहसे हाथ धोना चाहिये।

नहरुआ, नहारन,

यह कोई २० इञ्च लम्बी कृमि होती है जो मनुष्यकी खालको छेदकर बाहिर निकलती है।

यह थोडी-थोडी बाहर निकलती जाती है और समय-समयपर अपने गर्भाशयमें बाहर दूधिया रस निकालती है। इस दूधिया रसमें इसके बच्चे बहुत संख्यामें पाये जाते हैं।

जिस पानीमें नहारनके बच्चे मिलजाते हैं उस पानीके उपयोगसे औरोंको नहारन हो जाता है। इस कारण इनसे पानीकी रक्षा करनी चाहिये।

नहारनकी बीमारी गंदे तालाबोंके पानीके उपयोगसे होती है।

धनुषटंकार, जमोघा (टिटेनस)

इसमें पहिले जबड़ा बन्द हो जाता है और बांयटे आते हैं। यह रोग जख्मपर धूल लगनेसे उत्पन्न होता है। धूलमें उपस्थित जीवाणु इसके कारण होते हैं। इसलिये किसी भी जख्मपर धूल न पड़ने देना चाहिये।

जख्मको सदा बंधा रखना चाहिये। जिस जख्मपर धूल लग गई हो जैसे पैरगाड़ीसे गिरनेपर तो सुई पहिलेसे ही लगवा लेना चाहिये।

यह रोग बड़ा प्राणघातक होता है।

जिन नये बच्चोंके नालकी परवाह नहीं की जाती है अथवा जिनके नालपर जान बूझकर मिट्टी छोड़ी जाती है उन बच्चोंको भी यह रोग हो जाता है।

पहिले सप्ताहमें बच्चोंकी मृत्युका यह एक बड़ा साधारण कारण है। थोड़ी लापरवाहीके कारण सहस्रों बच्चोंकी जानें व्यर्थ खोई जाती हैं।

फोड़े, फुन्सी, दाद-दाने

इनके भी पीपमें छूत होती है। इसलिये इनके पीपको गन्दा समझना चाहिये। आतशकके दाने भी त्वचामें पाये जाते हैं। उनसे आतशक फैल सकता है।

किसी भी प्रकार जख्म खुले न रहने देना चाहिये। यदि मक्खी अण्डे जख्ममें छोड़ जाती हैं तो जख्म में लट पड़ जाती हैं क्योंकि अण्डेसे लट और लट से मक्खी बनती है और घावमें धूल पड़नेसे धनुष-टंकार हो जाता है।

आंखें दुखना

आंखें दुखना भी एक छूतका रोग है इसलिये एक बच्चेकी दुःखती आंख छूकर दूसरे बच्चोंकी आंख न छूना चाहिये। आँख दुखने वाले बच्चों के कपड़े भी जहाँ तक हो सके पृथक् रखना चाहिये।

कोढ़

कोढ़ भी एक छूत है। इस रोगमें गांठें निकल आती हैं या सुन्न पड़ जाती है। या अंगुलियें गल कर गिरने लगती हैं।

कोढीके कपड़े बिलकुल अलग रखने चाहिये और उन्हें पवित्र करना चाहिये। कोढीको छूकर हाथ धोने चाहिये।

कोढियोंके लिये अलग अस्पताल भी बनाये जाते हैं। क्या ही अच्छा हो कि यदि सब मरीज इन अस्पतालोंमें भेज दिये जायं और यह रोग हमारे देशसे बिलकुल उड़ जाये जैसा कि अन्य कई देशोंमें हुआ है।

धातुसंकर (Alloys)

[लेखक—श्री हीरालाल दुबे एम० एस-सी०]

यह विषय इसके नाम ही से बिलकुल स्पष्ट है। धातु-संकरके बदले हम धातु-मिश्रण भी कह सकते हैं। दो या अधिक धातुओंके पिघलानेसे जब एकसा द्रव हो जाता है और ठोस होनेपर धातुएँ एक दूसरेसे मिलकर एक हो जाती हैं तब धातुसंकर तैयार हो जाता है। इसी तरकीबसे कई प्रकारके धातुसंकर बनाए जाते हैं। नीचे लिखे हुए तरीके काममें लाए जाते हैं। अति ही महीन पिसी हुई धातुएँ अधिक दबावसे धातुसंकरमें परिणत हो जाती हैं। यदि एक या अधिक धातुओंका अवकरण उनके यौगिकोंसे दूसरी धातुके होते हुए किया जाय तो धातुसंकर बन जायगा। इसका उदाहरण स्फटम्-कांसा (Aluminium bronze) है। जब स्फटम्के ओषिदको तांबाके होते हुए कर्बनके द्वारा बिजलीकी भट्टीमें अवकृत करते हैं तब स्फटम् धातु तांबासे मिलकर स्फटम् कांसा हो जाती है।

विद्युत् द्वारा भी धातुसंकर बनाया जा सकता है। यदि दो या अधिक घोलोंसे धातुओंका साथ-साथ विद्युत् विश्लेषण किया जावे तो धातु-संकर तैयार हो जाता है। उदाहरणके लिए पीतल लीजिए। यदि तांबा और जस्ता (Zinc) के श्यामिदोंका घोल पांशुजश्यामिदमें तैयार किया जाय और इसका विद्युत् विश्लेषण किया जावे तो पीतल बन जाती है।

जिन धातुसंकरोंमें पारा होता है उन्हें पारद-मेल कहते हैं। इस लेखमें केवल लोहेके ही धातु-संकरोंका वर्णन किया जायगा। आधुनिक सभ्यतामें

लोहेके धातुसंकरोंका बड़ा भारी हाथ है। स्वच्छ लोहा करीब २ सफेद रंगका व मुलायम होता है। वह १५३३° श पर पिघलने लगता है तथा उसका घनत्व ७·८६ होता है। मुलायम होनेके कारण वह काममें नहीं लाया जा सकता और अम्ल आदिका प्रभाव इसपर सरलतासे हो सकता है। परन्तु जब लोहा दूसरी धातुओं द्वारा धातुसंकरमें परिणतकर दिया जाता है तो वही मुलायम धातु अति ही कठोर हो जाती है। उसके द्रवांक आदिमें बहुत ही अन्तर हो जाता है। उसी प्रबलता, घनवर्धनीयता, कठोरता आदिमें ज़मीन आसमानका फेर हो जाता है! यही कारण है कि इनकी मज़बूत बन्दूकें व तोपें बन सकती हैं जिनकी गोलियां व गोले कई मीलों तक चले जाते हैं। यदि केवल पवित्र लोहा ही काममें लाया जाय तो उसके टुकड़े टुकड़े हो जावेंगे जिनका पता भी न चलेगा। इतने बडे बड़े पुल जा आप नित्य गंगा व जमुनामें देखा करते हैं, जिनके ऊपरसे करोड़ों मनका बोझ सदैव निकला करता है, क्या सादे लोहेके बनाये जा सकते हैं? जिन लचलचे तारोंके गद्दोंपर बैठकर आप सैकड़ों मीलका सफर बिना किसी थकावट व धक्का खाए हुए कर आते हैं व जिन पर रात्रिके समय आनन्दसे विश्राम लेते हैं जो सैकड़ों गद्दोंसे भी प्राप्त नहीं हो सकता—क्या वह सादे लोहेके बने हुए रहते हैं? यह सब धातुसंकर की माया है।

मैं अब मुख्य मुख्य तत्वों व धातुओंका जो असर लोहामें मिश्रण करने पर होता है उसका संक्षेपमें वर्णन करूंगा।

लोहेपर कर्बनका प्रभाव

पिघले हुए लोहेमें कर्बन मिला देनेसे फौलाद बन जाता है। कर्बन ०·१५°/॰ से १.५°/॰ तक होता है। फौलादके गुण कर्बनकी मात्रापर अवलम्बित हैं। जिस फौलादमें कर्बनकी मात्रा कम होती है वह मुलायम होता है और अधिक कर्बन मिलानेसे उद्वर्तनीयता (Ductility) कम होती है और तनावशक्ति बढ़ती है। यह गुण १·५°/॰ कर्बन मिलाने तक होता है। फौलाद की तनावशक्ति ३०-४० टन प्रति-वर्ग इञ्च होती है। फौलाद बहुत ही घनवर्धनीय होता है और इससे संहात (Welding) किया जा सकता है। इसका द्रवांक भी लोहेसे कम होता है। फौलादके गुण उष्णतापर अधिक निर्भर है। यदि फौलाद इतना गरम किया जावे कि लाल हो जाय और फिर ठंडे पानीमें डुबो दिया जावे तो वह इतना कठोर भंजनशील हो जाता है जैसे कि कांच। यदि वह कई ताप-क्रमपर गरम किया जावे तो उसके गुण उस ताप-क्रमपर निर्भर होते हैं। इस क्रियाको अङ्गरेज़ीमें टेम्परिंग कहते हैं।

तापक्रम—	२३०°	२५५°	२७७°	२८८°	२६०°–३१६°
फौलादका रंग—	तिनकेका हलका रंग	भुराईलिए हुआ पीला रंग	बैंगनी	चटक नीला	गहरा नीला
फौलादका उपयोग	छुरा बनानेमें	चाकू व कुल्हाड़ीमें	छुरा चाकू आदिमें	तलवार व घड़ीकी कमानीमें	आरे व बसूलामें

गंधक और स्फुर फौलादके लिए हानिकारक है। ये दोनों तत्व लोहेको भंजनशील बनाते हैं। स्फुरसे वह मामूली तापक्रमपर भंजनशील होता है और गंधकसे रक्त-तप्त करनेपर।

लोहटिटेनम् (Ferro-Titanium)

यह धातुसंकर दो प्रकारके हैं।

(१) लोह कर्बन टिटेनम्—जिनमें कर्बनकी मात्रा अधिक होती है। इसमें १५-१८°/॰

५-८°/॰ कर्बन और करीब १·५°/॰ शैलम् और थोड़ी मात्रामें दूसरी अशुद्धियां होती हैं। इसमें कर्बनकी मात्रा टिटेनओषिद या स्फटम्के साथ फिरसे पिघलाकर कमकी जा सकती है।

(२) कर्बन रहित लोह टिटेनम्को स्फटम्से अवकृत करके बनाया जाता है। इसमें ७५°/॰ टिटेनम् और०·१२ °/॰ से लेकर० ·८°/॰ तक कर्बन रहता है।

लोह टिटेनम्का उपयोग फौलादके कला कौशलमें बड़ी ही शीघ्रतासे बढ़ रहा है। टिटेनम्के दो उपयोग हैं। पहला कि ओषजन और नोषजनके लिए उसका बहुत स्नेह है। इस कारण, वह इन वायव्योंको रत्ती रत्ती फौलादमें नहीं रहने देता जिसके कारण फौलादसे कई बुराइयां दूर हो जाती हैं, जैसे वातछिद्र (Blow holes) आदि। दूसरे उसमें अद्भुत शक्ति है कि वह भिदी हुई वस्तुओंको जैसे लोहाके ओषिदों व गन्धिदों और मांगनीज़ शैलम् आदिको फौलादसे पृथक्‌कर देता है। इनके होनेसे ढालने आदिमें बड़ी कठिनता होती है। ऊपर लिखी बुराइयोंको हटानेके लिए टिटेनम् तत्वके रूपमें काममें नहीं लाया जा सकता क्योंकि उच्च द्रवांक और कम घनत्वके कारण वह फौलादमें अच्छी प्रकार नहीं मिलाया जा सकता है। इस कारण वह लोहेके धातुसंकरके रूपमें काममें आता है। टिटेनम् तत्व भी पिघले लोहेमें ठोसघोल होकर लोह टिटेनिद बन जाता है। यह लोहेमें प्रत्येक मात्रामें घुलनशील है। इस धातुसंकरकी दृढ़ता उतनी ही अधिक होगी जितना ही अधिक टिटेनम् होगा।

जो फौलाद टिटेनम्से प्रभावित किया गया है उसमें अधिक मज़बूती और घर्षणता तथा धक्कोंके लिए अधिक सहन-शीलता होती है। उसकी मज़बूती बिना उसकी लचक कम हुए १५ गुनी अधिककी जा सकती है ऐसा फौलाद औज़ार और गाड़ीके पहिये आदिमें काममें लाया जाता है। इसका अधिक उपयोग रेलकी पटरियोंमें हुआ है जहांपर अधिक मज़बूती व कठोरताकी आवश्यकता है। टिटेनम्का प्रभाव लोहेकी चुम्बक शक्तिपर भी अधिक है।

लोह ज़िरकुनम्

ज़िरकुनम्का लोहेके साथ धातुसंकर लोह जिरकुनम्के नामसे प्रसिद्ध है। यह जिरकोन और लोह खनिजके मिश्रणको बिजलीकी भट्टीमें अवकृत करके बनाया जाता है। या दोनोंके ओषिदोंको स्फटम्से अवकृत करनेसे लोह ज़िरकुनम् बनता है। इसमें ३०-४०°/॰ जिरकुनम् होता है और थोड़ीसी मात्रामें कर्बन, स्फटम् और टिटेनम् भी होता है। यह धातुसंकर ओषदीकरण व रसायनिक खरोदको रोकता है और काफी घनवर्धनीय और उद्वर्तनीय होता है जिसके कारण वह बल्बोंमें बारीक तारोंके लिए उपयोगमें लाया जाता है। ज़िरकुनम् और लोहाके साथ कई धातुसंकर बनाए जाते हैं जिनमें लोहा, जिरकुनम् आदिकी मात्रा भिन्न-भिन्न रहती है, जिनके कारण गुणोंमें अन्तर हो जाता है। लोह-जिरकुनम्का भी उपयोग फौलादको स्वच्छ करनेमें होता है, जैसे कि ऊपर लोह-टिटेनम्का उपयोग बतलाया गया है। परन्तु उसकी उपयोगिता लोह टिटेनम्से अधिक नहीं है। इस धातुसंकरका उपयोग कवच कवचवेधक-शस्त्र और वेगवान औज़ारोंमें होता है।

कुछ धातुसंकर ऐसे हैं जो यदि रेतीसे रगड़े जायं तो उनसे चिनगारियां निकलती हैं। ऐसे धातुसंकरोंमें लोहा १०-६५°/॰ तक रहता है जिनके कारण चिनगारी पैदा होती हैं। एक धातुसंकरमें जो अंग्रेज़ीमें 'एनर मेटल' के नामसे प्रसिद्ध है, ३५°/॰ लोहा और ६५°/॰ मिशमैटल (misch metal) होता है। इससे ख़ास तौरपर प्रबल चिनगारियां निकलती हैं। यह गैस व सिगरेट

आदिको जलानेमें बहुतायतसे काममें आता है। महा-युद्धके समय इस प्रकारके धातुसंकरोंका बहुत उपयोग किया गया था। संकेत (Signalling) खोजनेवाली गोलियां (tracer bullets) रातके समय गोले चलाने आदिमें ये बहुतायतसे काममें लाए गए थे। इन चिनगारियोंके निकलनेका कारण यह है कि धातुसंकर वायुसे रगड़-खाकर जल उठता है। एक पौण्ड एनर धातुमें १३००-१८०० तक ऐसे छोटे-छोटे टुकड़े बनाए जा सकते हैं जिनसे कि हरएक टुकड़ेमेंसे २०००-७००० चिनगारियां तक निकल सकती हैं। इस कारण सिगरेट व गैस जलानेमें बहुत ही कम धातुसंकरकी आवश्यकता पड़ती है। सृजकम्का एक धातुसंकर मिशमैटलके नामसे प्रख्यात है। मिशमैटलमें सृजकम्, लीनम्, नौलीनम् और पलासलीनम्का मिश्रण रहता है और १—५°/₀ तक लोहा व और दूसरी धातुएं बहुत ही थोड़ी सी मिक़दारमें होती हैं। इसमें सबसे अधिक हिस्सा सृजकम्का होता है जो कभी-कभी ७०°/₀ तक व इससे भी अधिक होता है। इस धातुसंकरकी अधिक क्रिया-शीलता होनेके कारण और ख़ास तौरपर ओषिदके लिए वह अवकरणके लिए बहुत ही अच्छा पदार्थ है। यह कुछ ऐसे ओषिदोंको अवकृत करनेमें काममें लाया जाता है जो बड़ी कठिनतासे अवकृत हो सकते हैं जैसे जिरकुनम्, तन्तालम् और कौलम्बमके ओषिद है। यह धातु फकनीके रूपमें फ्लेश लाइट चूर्णमें भी काममें लाया जाता है जिसके कारण तेज़ रोशनी होती है। यह धातु ढलवाँ लोहाको स्वच्छ करनेके भी लिए उपयुक्त पाई गई हैं। ओषिदकी ओर इसकी अधिक क्रियाशीलता होनेके कारण वह ओषिदोकृत वस्तुओंको दूरकर देता है।

प्रयोगोंसे यह दिखला दिया गया है कि लघु मात्रा में सृजकम्को डालनेसे ओषिदको पूर्ण रूपसे अलग कर देता है व ढलवा लोहाको अधिक समय तक गरम रखनेके कारण उसकी द्रवित अवस्थाको बढ़ाता है। इसके कारण ढलाईमें अधिक सफाई व लेखनिकका एकसा वितरण होता है। मिश मैटल ७५०° तापक्रम पर द्रवित होता है और इसकी क्रिया शीलता अधिक होनेके कारण बहुतसी धातु पिघले हुए लोहेमें डालनेके समय नष्ट हो जाती है। इस कारण लोहसृजकम् (लोहाके साथ सृजकम् मिलाकर बनता है) का उपयोग किया जाता है क्योंकि उसका द्रवांक लोहेके द्रवांकसे कम ही है और उसकी रासायनिक क्रियाशीलता भी कम हो जाती है। इस कारण वह बहुत ही कम नष्ट होता है। इस धातुसंकर की केवल ०·०५—०·१०°/₀ तककी मात्रा ही काफी होती है यदि सावधानता व बुद्धिसे काम लिया जावे। यदि ०·५०°/₀ तक भी डाल दिया जावे तब भी सृजकम्की उपस्थिति उस लोहेमें नहीं जान पड़ती। परंतु यदि इससे भी अधिक मात्रा हो तो सृजकम् लोहासे मिलकर धातुसंकर के रूपमें रहता है परंतु उससे धातुके लिए कोई लाभ नहीं होता। इस कारण सृजकम् की थोड़ी ही मात्रा मिलाई जाती है।

बलदम् (Vanadium) का सबसे अधिक उपयोग ख़ास तरहकी फौलाद बनानेमें होता है। बलदम्के सबबसे दो लाभ होते हैं। पहला-वह फौलाद की अपवित्र वस्तुओं को दूर करता है जैसे नोषजन और ओषजन। उसका उपयोग बिलकुल सृजकम् व टिटेनम्की भाँति है। दूसरा-उसका कुछ भाग फौलादमें रह जाता है जिसके कारण फौलाद अधिक एकसी व अधिक दृढ़ हो जाती है और तनाव शक्ति आदि बढ़ जाती है। बलदओषिद और नोषिदसे मिलकर उनको गलित (Slag) में सम्मिलित करदेता है। इसी कारण वह फौलादको स्वच्छ करने के काममें लाया जाता है। यह इस कामके लिए लोह शैलम् व लोहमांगनीज़से अधिक उपयोगी है और जब ऊपर लिखी हुई वस्तुएँ फौलादको स्वच्छ कर देती हैं तब बलदम् इस कार्यके लिए डाला जाता है। इस

धातुसे फौलादके गुणोंमें बड़ा ही सुधार हुआ है। यह धातु फौलादमें बहुत ही कम मात्रामें रहती है। दृढ़ आवरण (Case hardening) वस्तुओंके लिए ०·१२—०·१४°/ₒ काफी है। छुरे, बाण, आरे आदिके लिए०·१६—०·२°/ₒ काफी है। कमानियोंके लिए कुछ अधिककी आवश्यकता होती है। कवच, बन्दूककी शील्ड्समें ०·३-०·४°/ₒ और जो फौलाद अधिक वेगसे चलनेवाली वस्तुओंके लिए होती हैं उसमें ०·३५-०·५°/ₒ तक। जिन फौलादोंमें बलदम् होता है वे कम रंध्रमय होते हैं व धक्का, कम्पन और तनाव सफलतापूर्वक सह सकते हैं।

आधुनिक फौलाद बनानेमें केवल बलदम् ही काममें नहीं लाया जाता परंतु उसके साथ दूसरे तत्व भी मिला दिए जाते हैं। ऐसे फौलादोंमेंसे राग-बलदम् फौलाद ख़ास प्रकारसे उल्लेखनीय हैं। ये बहुधा खुली भट्टियोंमें बनाए जाते हैं। इस प्रकारका फौलाद रेलगाड़ी व मोटर आदिके बनानेमें काममें लाया जाता है क्योंकि उसकी सतहपर कोई बुराई नहीं रहती और वह मज़बूत व दृढ़ तो होता ही है। ढलवा लोहामें बलदम्‌की मात्रा ०·०८—०·१५°/ₒ तक होती है। इसमें यह धातु केवल स्वच्छताका ही कार्य करती है और कर्बनको एकसा विभाजित कर देती है। बलदम्‌से ढलवा लोहा छेदीला व भंजनशील—होता है। ०·१°/ₒ से ढलाईकी मज़बूती १०—२५°/ₒ तक बढ़ जाती है।

लोह सुनागम् (Ferro molybdenum)

यह धातुसंकर बिजलीकी भट्टीमें बनाया जाता है। इसके बनानेमें सुनागित, लोहाके खनिज और उपयुक्त फ्लक्सकी आवश्यकता होती है। जिस प्रकार बहुधा यह धातुसंकर बनाया जाता है उससे बहुत नुकसान होता है। कभी-कभी तो २०°/ₒ या ३०°/ₒ तक सुनागित बेकाम जाता है। यदि सुनागम्‌की फौलादें दूसरे धातुसंकरकी फौलादोंकी बराबरी सफलता पूर्वककर सकीं तो इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि लोह-सुनागम् बहुत ही महत्वका धातुसंकर होगा। सुनाग इस्पात के प्रचारमें यह एक बड़ी कठिनाई हुई है कि एकसी पवित्रताका लोह-सुनागम् पाना असम्भव है। कर्बन, गंधक, और दूसरी अपवित्रताओंकी मात्रा भिन्न-भिन्न होनेके कारण सुनागम् फौलादके गुणोंमें बहुत ही हेर-फेर हो जाता है।

सुनागम्‌की फौलादें नई नहीं हैं। वे संयुक्त राज्य अमरीकामें करीब २५ साल पहले बनाई जाती थीं। परन्तु इस धातुका इतिहास फौलाद बनानेमें बड़ा ही अद्भुत है। पहली फौलाद बनानेमें जो लोह सुनागम् काममें लाया गया था उसमें इतना गंधक, ओषिदें और दूसरी नुकसानवाली वस्तुएं थीं कि वह फौलाद बिलकुल ही बेकाम था। बादमें जब उससे अधिक स्वच्छ लोह सुनागम्‌का प्रयोग किया गया तो तापोपयोग ठीक न होनेके कारण फौलादमें अच्छे गुण न आ सके और उलटे दूसरी खराबियां हो गईं। इन कारणोंसे फौलादके कला-कौशलमें सुनागम् बदनाम हो गया जो अभी तक नहीं हट सका है। परन्तु कई लोग सुनागम् फौलादोंकी बड़ाई करते हैं।

फौलादमें कभी-कभी केवल सुनागम् ही धातु-संकरित तत्व है परन्तु बहुधा वह दूसरी धातुओंके साथ काममें लाया जाता है जैसे रागम्, नकलम्, बलदम् और वुल्फ्रामम्। सुनागम्‌का प्रभाव वुल्फ्रामम्‌के हीप्रकार है परन्तु सुनागम्‌की थोड़ी मात्रासे वही प्रभाव होगा जो वुल्फ्रामम्‌की बड़ी मात्रासे।

सुनागम्‌की फौलाद घरिया या खुली अंगीठीमें बिजलीके द्वारा या खनिजोंको कोक और उपयुक्त फ्लक्सके साथ बिजलीकी भट्टीमें गरम करनेसे बनाया जाता है। सुनागम् धातु कननीके रूपमें डाली जा सकती है। परन्तु बहुधा लोह-सुनागम्

काममें लाया जाता है क्योंकि वह जल्दी पिघलता है और उसपर ओषिदका प्रभाव भी नहीं हो पाता। जब रागम्, नकलम् या और दूसरी धातुओंको डालना होता है तो वे सुनागम्के धातुसंकरके रूपमें डाली जाती हैं। सुनागम् व लोह सुनागम्को डालनेमें कई कठिनाइयां होनेके कारण खटिक सुनागम्का प्रयोग किया गया और इसमें सफलता भी प्राप्त हुई। फौलादको भट्टीसे निकालनेके बहुत पहले सुनागम् आदि भी डाल देते हैं जिससे वह मिलकर एक हो जावे। सुनागम्की मात्रा बहुधा १°/० से कम ही होती है यद्यपि उन फौलादोंमें जो वेगसे चलनेवाली वस्तुओंके उपयोगमें आते हैं १.५-२°/० तक सुनागम् होता है। कुछ फौलादोंमें जो अम्लोंका प्रभाव सह सकते हैं ५°/० तक सुनागम् होता है। फौलाद जिनमें ६-१०°/० तक सुनागम् होता है बनाई गई हैं।

सुनागम्के कारण फौलादमें अधिक कठोरता, दृढ़ता, लचक और तनाव शक्ति हो जाती है। जब बड़े-बड़े फौलादके टुकड़े कठोर (hard) किए जाते हैं तो बीचमें व उनके किनारोंकी कठोरतामें बहुत अन्तर होता है। यह कठोरताका अन्तर सुनागम्की फौलादमें बहुत कम होता है। यह अनुभवसे मालूम हुआ है कि जितना पुराना फौलाद होता जावेगा उतना ही अधिक कड़ापन भी होवेगा। इसी कारण यह फौलाद खास तौरपर तिजोरी आदि बनानेके काममें लाया जाता है।

धातुसंकरकी फौलादोंपर उष्णताका बड़ा भारी असर होता है परन्तु सुनागम् फौलादोंपर उष्णताका हुत ही कम। फौलाद जिसमें ०.२°/० कर्बन और ०.७°/० सुनागम् हो और जब वह तैलमें जिसका तापक्रम ८७०° से लेकर ११००° तक हो बुझाया जावे और ५४०° पर निकाल लिया जावे तब उस फौलादकी लचक व शक्तिमें बहुत ही कम अन्तर होता है। सुनागम् फौलादको अधिक तापक्रमपर निकालनेसे जो भौतिक गुण होते हैं वे दूसरी फौलदोंमें कम ही तापक्रमपर निकाल लेनेसे पाए जाते हैं। इस धातुसंकरके ताप-प्रयोगमें एक कठिनता होती है। वह यह कि सुनागम् उड़नशील होनेके कारण ऊपरके भागसे उड़ जाता है और फौलादके ऊपरी भागपर सुनागम्का असर नहीं होने पाता। इस बुराईको दूर करनेके लिए ऊपरकी कुछ सतहोंको रेतीसे रगड़कर अलगकर देते हैं।

सुनागम्के सबबसे जो बुराइयां फौलादमें हो जाती हैं वे यह हैं। फौलाद रक्त-तापपर भंजनशील हो जाता है और ढालनेके समय दरारें पड़ जाती हैं। इन खराबियोंका मुख्य कारण शायद अशुद्ध वस्तु हैं जो फौलादके बनानेमें काममें लाई जाती हैं। या ठीक ताप प्रयोग न होना या फौलादको बुरी तौरसे काममें लाना है। ये खराबियां अभ्याससे व बुद्धिसे काम लेनेसे दूर हो सकती हैं और उन वस्तुओंको जिनसे फौलाद कठोर किया जाता है भलीभांति चुनना चाहिए।

सुनागम्का फौलाद कई कामोंमें आता है। फौलाद जिनमें केवल सुनागम् ही है वह ज़्यादा काममें नहीं लाया जाता क्योंकि सुनागम्के गुण दूसरी धातुओंके साथ अधिक प्रतीत होते हैं। राग-सुनागम्के फौलादोंमें बहुधा ०.२५-०.४०°/० सुनागम् होता है। ये फौलाद मोटर रेल और कल-पुरज़े आदिके बनानेमें काम आता है। फौलाद जिसमें अधिक कर्बन व १°/० तक सुनागम् हो वह कमानियोंके बनानेमें काममें लाया जाता है। नीचे लिखे हुए फौलाद भी बड़े कामके हैं। नकलम्-सुनाग-इस्पात-नकल-राग-सुनाग-इस्पात और राग-बलद्-सुनाग इस्पात।

सुनागम् फौलादसे चुम्बक भी बनाए जाते हैं जो बहुत समय तक काममें लाए जा सकते हैं। इस फौलादमें ०.५-०७°/० कर्बन, करीब ०.५/० रागम् और २.३°/० सुनागम् होता है यद्यपि

सुनागम् मात्राकी ६°/₀ तक हो सकती है। इस फौलादमें कठोरकी गई हुई कर्बन फौलादसे अधिक समय तक चुम्बकशक्ति रहती है।

लोह वुल्फ़ामम् (Ferrotungsten)

वुल्फ़ाममकी सबसे मुख्य धातुसंकर लोह वुल्फ़ामम् है। हिसाब लगानेसे यह मालूम हुआ है कि कुल वुल्फ़ामम् जो खानोंसे निकाला जाता है उसमेंसे ८०-८५°/₀ तक फौलादके बनानेमें काम आता है। यह ध्यान देनेकी बात है कि वुल्फ़ाम इस्पातमें वुल्फ़ाममकी अधिक मात्राकी आवश्यकता होती है। वही गुण फौलादमें सुनागमकी थोड़ी मात्रा डालनेसे आ जाते हैं।

यह धातुसंकर कई प्रकारसे तैयार किया जा सकता है। सन् १९०० से बिजली की भट्टियोंद्वारा यह धातुसंकर अधिक बनाया जानेलगा है और आजकल केवल इसी प्रकारसे बनायाजाता है। ७५-८०°/₀ तक वुल्फ़ामम् वाला धातुसंकर बनाया जा सकता है। यह धातुसंकर बीच ही में नहीं निकाल लिया जाता जैसा कि और धातुसंकरोंमें किया जाता है क्योंकि इसका द्रवांक बहुत अधिक है; परंतु यह आख़ीर तक जमा होता रहता है और सब एक साथ निकाला जाता है। ऊपर लिखे अनुसार बनानेमें इस धातुसंकरमें अधिक कर्बन होता है जो फौलादके लिए हानिकारक है। जब अवकरण पूर्णरूपसे हो जाता है तब इस कर्बनको दूर करनेके लिए चूना, लोह खनिजका गलित और फ्लोरस्पारके साथ १०-२० मिनट गरम किया जाता है। ऊपरकी क्रियासे ८-१०°/₀ वुल्फ़ाममका नुकसान हो जाता है परंतु कर्बनकी मात्रा बहुत ही कम हो जाती है। अमेरिकाकी बनी हुई धातुसंकरमें वुल्फ़ाममकी मात्रा ७०°/₀ से कम नहीं होती। कर्बन ०६°/₀ से अधिक नहीं होता, गन्धक =०.०६, स्फुर =०.०७ कौलम्बम् =०.६ मांगनीज़ =०.६ खटिक ओषिद =०.५ और बहुधा तांबा व वंगम् नहीं होता। शायद लोह वुल्फ़ाममें आम तौरसे नुकसान पहुँचाने वाली वस्तुए तांबा, वंगम्, मांगनोज़, स्फुर और गन्धक होती हैं।

फौलादोंमें वुल्फ़ाम-इस्पात बहुतही कामकी वस्तु है। जितना काम कर्बनकी फौलादसे एक दिनमें हो सकता है उससे पांच गुना काम वुल्फ़ामम् की फौलादमे बनी हुई मशीनें एक दिनमें कर सकती हैं। युद्धमें भी इस धातुसंकरका बड़ा महत्व है, यहां तक कि एक महाशयका कथन है कि युद्धकी आवश्यकताओंमें वुल्फ़ाम-इस्पात धातुओंमें केवल लोहासे ही हारा हैं। विलायत वाले वुल्फ़ाममको युद्धकी सामग्रीमें दूसरा नम्बर देते हैं। संयुक्त राज्य वाले वुल्फ़ाममको सबसे अधिक काममें लाते हैं। इस देशमें वुल्फ़ामम् काफी मात्रामें होता है फिर भी सन् १९१७ से आधीसे अधिक मात्रा जो काममें लाई जाती है, वह दूसरे देशोंसे आती है।

फौलादमें वुल्फ़ामम् डालनेसे उसकी कठोरता, दृढ़ता, तनाव शक्ति और लचक बढ़ जाती है। सबसे मार्के की बात यह है कि जब फौलाद गरम रहता है तब भी वह अपनी कठोरता क़ायम रखता है। इस कारण काटने वाले औज़ार जो वुल्फ़ाम इस्पातके बने रहते हैं उन फौलादोंकी अपेक्षा जिनकी कठोरता उनकी कर्बन मात्रा पर अवलम्बित है ३-६ गुना तेज़ीसे चलाए जा सकते हैं। इस कारण जितने काटने वाले औज़ार बनाए जाते हैं वे सब इसी धातुसंकरके होते हैं। इस फौलादमें ऐसे भी गुण हैं जिनके कारण वह एंजिनके उन हिस्सोंके बनानेमें काममें लाया जाता है जहाँ पर पेट्रोल व ईंधन आदि जलाए जाते हैं। यह धातुसंकर औटोमोबाइल भाग, कवच, गोलियों चुम्बक, आरे व और कई वस्तुओंके बनानेके काममें आता है।

वुल्फ़ाम-इस्पात या तो पिसी हुई धातुसे या लोह वुल्फ़ामसे बनाई जाती हैं। इस दूसरी वस्तुका

उपयोग बढ़ रहा है और कुछ समयमें शायद केवल लोह वुल्फ्राम ही काममें लाया जावे। आजकल करीब आधी वुल्फ्राम इस्पात लोह वुल्फ्राम द्वारा ही बनाई जाती है। इसके लाभ यह हैं कि इसका द्रवांक कम होनेके कारण यह अच्छी तरहसे मिल जाता है और ओषिदीकरणसे इसमें कम नुकसान होता है। फौलाद घरिया विधिसे या बिजलीकी भट्टियों द्वारा बनाया जाता है। बिजलीकी भट्टीसे ज़्यादा अच्छी वस्तु बनती है। वुल्फ्राम ऊपरसे मिलाया जाता है और इस में इस बातसे सावधान रहना चाहिए कि वह मिलकर एकसा हो जावे, कहीं कम कहीं अधिक न रहने पावे और वुल्फ्राम भारी होनेके कारण कहीं नीचे न बैठ जावे।

जो सादी वुल्फ्राम-इस्पात होती है उसमें केवल वुल्फ्राम ही होता है और दूसरी धातुऐं नहीं होतीं इसमें वुल्फ्रामकी मात्रा ३-६°/॰ तक होती है और कर्बनकी मात्रा ०·६°/॰ तक यद्यपि १°/॰ कर्बन भी बहुधा होता है। ऐसी फौलादें बुझानेसे कठोरकी जाती हैं। इनसे स्थाई चुम्बक, व विद्युत्मापक और कठोर डाइनेमो भी बनाए जाते हैं।

बहुतसी वुल्फ्राम फौलादोंमें और दूसरी भी धातुऐं मिलाई जाती हैं जैसे रागम्, बलदम्, कोबल्टम्, नकलम्, सुनागम् आदि। इन्हें खास प्रकारके काममें लाया जाता है। जो फौलादें अधिक वेगसे चलनेवाली वस्तुओंके बनानेमें काममें आती हैं उनमें ये धातुऐं अवश्य रहती हैं।

लोह पिनाकम् (Ferrouranium)

इस फौलादमें पिनाकम् लोह पिनाकम्के रूपमें डाला जाता है क्योंकि पिनाकम् सरलतासे ओषदीकृत हो जाता है और उसकी मिलावटमें बड़ी कठिनता होती है। लोह-पिनाकम् में बहुधा ४०-७०°/॰ पिनाकम् और २°/॰ से कम ही कर्बन और ०·५°/॰ शैलम् होता है। यदि पिनाकम्का अच्छा खनिज उपयोग किया जावे तो बलदम्की मात्रा ०·५°/॰ से कम ही रहती है और स्फटम्, गन्धक, स्फुर और मागनीज़की मात्रा नहींके बराबर होती है।

फौलादमें लोह-पिनाकम् डालनेसे बहुत नुकसान होता है क्योंकि पिनाकम्का ओषदीकरण हो जाता है यहां तक कि ⅓ से लेकर ⅔ पिनाकम् तक खराब हो सकता है। इस नुकसानको कम करनेके लिए लोह पिनाकम् जब फौलाद निकाला जाता है व उसके कुछ ही पहले डाला जाता है, और फौलादका तापक्रम कम रक्खा जाता है। यदि लोह पिनाकम्में पिनाकम् ६५°/॰ से अधिक होता है तो ओषदीकरण शीघ्रतासे होता है और यदि ४०°/॰ से कम हो तो फौलादमें पिनाकम् अच्छी प्रकार नहीं मिलता। इस कारण अच्छे लोह पिनाकम्में ४०-६५°/॰ पिनाकम् होता है। सबसे अच्छा पिनाकम् फौलाद बिजलीकी भट्टीमें बनाया जाता है।

फौलादमें पिनाकम् डालनेसे दो लाभ होते हैं। पहला, उसके गुणोंको बढ़ानेके लिए और दूसरी धातुओंकी आवश्यकता नहीं होती और दूसरा, वह फौलादकी कठोरताको बढ़ाता है जैसे कि दूसरी धातुओंके डालनेसे होता है कि कठोरता बढ़नेसे भंजन शीलता भी बढ़ती है वैसा पिनाकम्की बहुत कम मात्रा मिलानेसे होता है। कभी कभी पिनाकम् और दूसरी धातुओंके साथ भी मिलाया जाता है जैसे वुल्फ्रामम्, सुनागम्, बलदम् और रागम् बहुधा पिनाकमकी मात्रा १°/॰ से कम ही होती है। ३°/॰ से अधिक पिनाकम् डालनेसे ढालनेके समय दरारें पड़ जाती हैं। पिनाकम्का फौलादपर वही असर होता है जोकि वुल्फ्रामम्से होता है। इस कारण कुछ लोगोंका यह ख़्याल है कि थोड़ी मात्रा पिनाकम्

की डालनेसे वुल्फ्रामम्‌की बहुतसी मात्राकी बचत हो जाती है। यदि ३°/₀ पिनाकम्, ८°/₀ वुल्फ्रामम् और लघु मात्रामें रागम् व बलदम् हों तो यह फौलाद उस फौलादकी बराबरी करेगा जिसमें कि १८°/₀ वुल्फ्रामम् होवे।

पिनाकम्‌की फौलादोंमें नीचे लिखे हुए गुण होते हैं। उनकी कठोरता बिना उद्वर्तनीयता कम हुए बढ़ती है। लचक, तनाव शक्ति आदि अधिक होती हैं।

पिनाकम्‌की फौलादोंसे बने हुए औज़ार अधिक समय तक काम देते हैं क्योंकि वे अधिक दृढ़ और तापके प्रति सहनशील होते हैं। दूसरी धातुके बने हुए फौलादोंके औज़ारोंसे पिनाकम्‌के फौलादोंके बने हुए औज़ार २०-२५°/₀ अधिक स्थायी होते हैं और उनमें काटनेकी अधिक शक्ति होती है। फौलादमें पिनाकम् धातुकी सरलता उसकी कीमत व और दूसरी धातुओंके मूल्यपर निर्भर हैं जोकि फौलादमें उसी प्रकारके गुण उत्पन्न करती हैं।

ऊपर लोहेके मुख्य धातुसंकरोंका वर्णन किया गया है।

समालोचना

फरहङ्ग इस्तलाहात इल्मिया

(उर्दू वैज्ञानिक कोष)—प्रकाशक अंजुमन तरक्की-उर्दू, औरंगाबाद, दक्षिण। मूल्य ६)। पृ० सं० ५१२। सजिल्द। छपाई, कागज़ उत्तम।

इस पुस्तककी भूमिकामें अंजुमनके मन्त्री श्री अब्दुलहक़जी लिखते हैं—'खुश नसीबीसे इसी ज़माने में हैदराबाद, दकन, में यूनिवर्सिटी क़ायम करनेका ख्याल पैदा हुआ और दकनके बेदार मग्ज़ फरमानरवांने क़याम यूनिवर्सिटीको मन्ज़ूरी अतः फ़रमाई। चूंकि इस यूनिवर्सिटीमें ज़रिये तालीम उर्दू ज़बान क़रार पाया था लिहाज़ा यूनिवर्सिटीमें पहिले एक दारुल-तर्जुमा क़ायम किया गया ताकि वह निसाब तालीमके लिये मुख़्तलिफ़ उलूम व फ़नूनकी किताबोंका तर्जुमा शुरू करदे। हसन इत्तिफ़ाक़से दारुल तरजुमाकी निज़ामत भी अंजुमन-तरक्की उर्दूके सेक्रेटरीके तफ़वीज़की गई और इस देरीन तमन्नाके पूरा होनेका सामान ग़ैबसे हो गया। चुनांचे, इस्तलाहातका यह मज़मुआ जो इस वक्त पेश किया जा रहा है अंजुमन तरक्क़ी उर्दू और सरश्ते तालीफ़ व तर्जुमा उस्मानिया यूनिवर्सिटीकी मुत्तफ़िक़ कोशिशका नतीज़ा है।'

इस अवतरणसे इस कोषके प्रकाशित होनेका उद्देश्य प्रकट हो जायगा। इसमें ज्योतिष, वनस्पति शास्त्र अर्थ-शास्त्र, इतिहास, गणित, तत्वज्ञान, मनोविज्ञान, भौतिक-शास्त्र, जीवविज्ञान राजनीति आदिके पारिभाषिक शब्द दिये गये हैं। यह आश्चर्यकी बात है कि रसायनके शब्दोंको अभी इसमें स्थान नहीं मिला है। इन शब्दोंके रचनेमें निम्न बातोंका ध्यान दिया गया है जैसा कि भूमिकासे पता चलता है।

१—'इस्तलाहात इल्मियाके लिये उन सब ज़बानोंसे अलफ़ाज़ वज़ाकर सकते हैं जिनसे उर्दू ज़बान मुरक्कब है, यानी अरबी, फ़ारसी, हिन्दी, तुरकी से बिला तकलीफ़ मदद ली जा सकती है।'

२—लफ़्ज़ दूसरी ज़बानके ले सकते हैं 'लेकिन इन अलफ़ाज़से इश्तक़ाक़ या तरकीबके ज़रियेसे जो दूसरे अलफ़ाज़ बनाये जायंगे वह उर्दू नह्वके कायदेके बमूजिब होंगे' 'उनसे अफ़आल या सिफ़ात या मुरक्कब अलफ़ाज़' बनाये जायं तो वह अपनी भाषाके व्याकरणके अनुसार न कि जिस ज़बानके वे शब्द हैं।

३—'हत्तुलइमकान मुख़्तसर अलफ़ाज़ वज़ा किये जायँ।'

४—ज़रूरतके वक्त अपनी या ग़ैर ज़बानोंके इस्मासे नये मसादिर या अफ़आल बनाये जायं जैसे बर्फ़से बर्फ़ाना।

५—'जो इस्तलाहात क़दीमसे हमारे यहां रायज़ हैं और अब भी इसी तरह कारआमद, हैं उन्हें बरक़रार रखा जाय और उनमें किसी किस्मकी तब्दीली' न की जाय।

६—'ऐसे अंग्रेज़ी इस्तलाही अलफ़ाज़ जो आमतौरसे रायज़ हो गये हैं या ऐसे लफ़्ज़ जिनके इश्तक़ाक़ मश्कूक़ हैं या ऐसी इस्तलाहें जो मौजूदों या तहक़ीक़ करनेवालोंके नामपर रक्खी गई हैं उन्हें बदस्तूर' रखा जाय।

७—कभी-कभी ऐसा भी हुआ है कि अंग्रेज़ीके बहुतसे शब्द आधुनिक अनुसंधानोंकी दृष्टिमें भ्रमपूर्ण सिद्ध हो गये हैं उन्हें आधुनिक विचारोंके अनुसार परिवर्तित भी कर दिया गया है।

इन सिद्धान्तोंके विरुद्ध किसीको कुछ भी नहीं कहना है। ये नियम प्रत्येक साहित्यिक पारिभाषिक शब्द बनाते समय अपने समक्ष रखता है। अब हम यहां कुछ शब्द ऐसे दे देना चाहते हैं जिनसे हिंदी भाषियोंको यह पता चल जायगा कि उनके सहयोगी उर्दू के ज्ञाता किस प्रकारके वैज्ञानिक शब्द भारतवर्षमें प्रचलित करनेका प्रयत्नकर रहे हैं :—

अंग्रेज़ी	उर्दू
Adjustment	इस्लाह, ततबीक़
Right angle	ज़ाविया क़ायमा
Attraction	इल्तसाक़
Comet	जातुल ज़नब
Vacuum -	ख़िला
Connotation	तज़मीन
Category	मक़ूला
Antimony	कहलिया
Aluminium	राजिया
Hydrogen	हमज़ीन
Linear motion	हरकते मुस्तक़ीम

इन शब्दोंकी उपयोगिताके विषयमें हमें कुछ भी कहनेका अधिकार नहीं है क्योंकि हमें इनका प्रयोग भी नहीं करना है। इतनी बात अवश्य है कि हिन्दी पढ़े व्यक्ति अथवा वे लोग जो साधारण उर्दू ही जानते हैं उनके लिये भी ये शब्द दुरूह ही होंगे। पर पारिभाषिक शब्दोंके बनानेमें दुरूहता आही जाती है। साधारणतः यह कहा जा सकता है कि अंजुमनने इतने बड़े कोषको तैयार करके उर्दू भाषाका (यदि हम इसे उर्दू कह सकते हैं तो) बड़ा ही उपकार किया है। उर्दू की अपेक्षा फ़ारसी, अरबी और तुर्की भाषाका इससे अधिक लाभ होगा। यह कहना तो कठिन है कि इन परिभाषाओंका कितना प्रचार हो सकेगा क्योंकि भारतवर्षमें पंजाब और संयुक्तप्रान्तमें ही थोड़ेसे ऐसे व्यक्ति हैं तो अरबी और फ़ारसीके शब्दोंको अपना सकते हैं। उर्दू का क्षेत्र बहुत ही संकीर्ण है। संस्कृत भाषासे लिये गये शब्द हिन्दी, गुजराती, मराठी बंगाली, तथा द्राविड भाषाओंको एक मत स्वीकृत हो सकते हैं। इसका तात्पर्य ही है कि समस्त भारतमें यदि किसी भी शब्दावलीका प्रचार हो सकता है तो उसका ही जिसका संस्कृतसे अधिक सम्बन्ध हो। हाँ, उर्दू वालोंका यह कोष भारतकी अपेक्षा मिश्र, अरब, फ़ारस, तुर्क और अफ़गानिस्तानमें अवश्य बहुत कुछ लाभ पहुँचा सकता है, यदि इन सब भाषाओंमें पारस्परिक सहयोग स्थापित हो जावे। उर्दू और हिन्दीका इस उत्तरी भारतमें कुछ ऐसा विकट प्रश्न उपस्थित हो गया है जिसकी समस्या सुलझते प्रतीत नहीं होती है।

हम अंजुमनके इस कोषका हृदयसे स्वागत करते हैं और आशा करते हैं कि भारतीय भाषायें इससे यथोचित लाभ उठावेंगी।

वैज्ञानिक पुस्तकें

विज्ञान परिषद् ग्रन्थमाला

१—विज्ञान प्रवेशिका भाग १—ले० प्रो० रामदास गौड़, एम. ए., तथा प्रो० सालिग्राम, एम.एस-सी. ।)
२—मिफ़ताह-उल-फ़नून—(वि० प्र० भाग १ का उर्दू भाषान्तर) अनु० प्रो० सैयद मोहम्मद अली नामी, एम. ए. ... ... ।)
३—ताप—ले० प्रो० प्रेमवल्लभ जोषी, एम. ए. ।=)
४—हरारत—(तापका उर्दू भाषान्तर) अनु० प्रो० मेहदी हुसेन नासिरी, एम. ए. ... ।)
५—विज्ञान प्रवेशिका भाग २—ले अध्यापक महावीर प्रसाद, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद १)
६—मनोरंजक रसायन—ले० प्रो० गोपालस्वरूप भार्गव एम. एस-सी. । इसमें साइन्सकी बहुत सी मनोहर बातें लिखी हैं। जो लोग साइन्स-की बातें हिन्दीमें जानना चाहते हैं वे इस पुस्तक को जरूर पढ़ें। ... १॥)
७—सूर्य सिद्धान्त विज्ञान भाष्य—ले० श्री० महावीर प्रसाद श्रीवास्तव, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद
मध्यमाधिकार ... ... ॥=)
स्पष्टाधिकार ... ... ।॥)
त्रिप्रश्नाधिकार ... ... १॥)
चन्द्रग्रहणाधिकारसेउदयास्ताधिकारतक १॥)

'विज्ञान' ग्रन्थमाला

१—पशुपक्षियोंका शृङ्गार रहस्य—ले० अ० शालिग्राम वर्मा, एम.ए., बी. एस-सी. ... -)
२—ज़ीनत वहश व तयर—अनु० प्रो० मेहदी-हुसैन नासिरी, एम. ए. ... ... -)
३—केला—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली -)
४—सुवर्णकारी—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली ।)
५—गुरुदेवके साथ यात्रा—ले० अध्या० महावीर प्रसाद, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद ।=)
६—शिक्षितोंका स्वास्थ्य व्यतिक्रम—ले० स्वर्गीय पं० गोपाल नारायण सेन सिंह, बी.ए., एल.टी. ।)
७—चुम्बक—ले० प्रो० सालिग्राम भार्गव, एम. एस-सी. ... ... ।=)
८—क्षयरोग—ले० डा० त्रिलोकानाथ वर्मा, बी. एस. सी, एम-बी. बी. एस ... -)
९—दियासलाई और फ़ास्फ़ोरस—ले० प्रो० रामदास गौड़, एम. ए. ... ... -)
१०—वैज्ञानिक परिमाण—ले० डा० निहाल करण सेठी, डी. एस. सी. तथा श्री सत्य-प्रकाश, एम. एस-सी० ... ... १॥)
११—कृत्रिम काष्ठ—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली -)
१२—आलू—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली ... ।)
१३—फसल के शत्रु—ले० श्री० शङ्करराव जोषी ।=)
१४—ज्वर निदान और शुश्रूषा—ले० डा० बी० के० मित्र, एल. एम. एस. ... ... ।)
१५—कार्बनिक रसायन—ले० श्री० सत्य-प्रकाश एम-एस-सी० ... ... २॥)
१६—कपास और भारतवर्ष—ले० पं० तेज शङ्कर कोचक, बी. ए., एस-सी. ... -)
१७—मनुष्यका आहार—ले० श्री० गोपीनाथ गुप्त वैद्य ... ... १)
१८—वर्षा और वनस्पति—ले० शङ्कर राव जोषी ।)
१९—सुन्दरी मनोरमाकी करुण कथा—अनु० श्री नवनिद्धिराय, एम. ए. ... ... -)॥

अन्य वैज्ञानिक पुस्तकें

हमारे शरीरकी रचना—ले० डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा, बी. एस-सी., एम. बी., बी. एस.
भाग १ ... ... २॥)
भाग २ ... ... ४)
चिकित्सा-सोपान—ले० डा० बी० के० मित्र, एल. एम. एस. ... ... १)
भारी भ्रम—ले० प्रो० रामदास गौड़ ... १।)
वैज्ञानिक अद्वैतवाद—ले० प्रो० रामदास गौड़ १॥=)
वैज्ञानिक कोष— ... ... ४)
गृह-शिल्प— ... ... ॥)
खादका उपयोग— ... ... १)

मंत्री
विज्ञान परिषत्, प्रयाग

मुद्रक—सूरजप्रसाद खन्ना, हिन्दी-साहित्य प्रेस, प्रयाग

पूर्ण संख्या—१७६ *pproved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces for use in Schools and Libraries.* Reg. No. A.708

मकर, संवत् १९८६

जनवरी १९३०

संख्या ४
No. 4

प्रयागकी विज्ञानपरिषत्‌का मुखपत्र

Vijnana, the Hindi Organ of the Vernacular Scientific Society, Allahabad.

अवैतनिक सम्पादक

ब्रजराज

एम. ए., बी. एस-सी., एल-एल, बी.

सत्यप्रकाश,

एम. एस-सी., विशारद.

प्रकाशक

वार्षिक मूल्य ३)]　　**विज्ञान-परिषत्, प्रयाग**　　[१ प्रतिका मूल्य ।)

विषय-सूची

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमान भूतानि जायन्ते
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५॥

भाग ३० | मकर, संवत् १९८६ | संख्या ४

संयुक्त प्रान्तमें ज्वारकी खेती

(लेखक—ठाकुर कृष्णनाथ सिंह, एल० एजी०,
कृषि कालेज कानपुर)

र फ़स्लके भिन्न भिन्न लेखकोंमें अब भी यह मतभेद है कि इसका आविर्भाव भारतवर्षहीमें सबसे प्रथम हुआ या किसी अन्य देशमें। परन्तु प्राचीन संस्कृत इतिहाससे इतना अवश्य पता चलता है कि आर्य्य जातिके आनेके पहिले भी यहाँके पुराने निवासी इस फ़स्लकी खेती करते थे।

"आइने अकबरी" में भी, जहाँ सम्राट् अकबर का सन् १५९० ई० का राजप्रबन्ध वर्णन किया गया है, तमाम नाजोंके भावके साथ इस नाजका भी भाव लिखा हुआ है। उसी पुस्तक में दूसरी जगह भी यह कहा गया है "गुजरात प्रान्तमें मुख्यतः ज्वार और बाजराकी खेती होती है।

पोर्टो जो सोलहवीं शताब्दी में इटली देशका महान् पुरुष हो गया है कहता है कि सरगम (Surgum) * का प्रचार इस देशमें नीरो (Nero) के समयमें भारतवर्षसे हुआ। दूसरी बात जो इस बातको और भी पुष्ट करती है कि ज्वारकी आदि जन्मदाता भी भारतमाता है वह यह है कि बरु (Sorghum halepanse) जिससे बहुत सी ज्वारकी क़िस्में निकली हैं इसी देशमें पाया जाता है।

उपर्युक्त बातोंके आधार पर अधिक नहीं तो इतना अवश्य कहा जा सकता है कि संसारके अन्य देशवासियोंसे बहुत पहले भारतीयोंको ज्वारकी खेतीका ज्ञान हो गया था।

---

* ज्वारको इटली देशकी भाषामें सरगम कहते हैं।

संयुक्त प्रान्तमें ज्वारकी दशा

भारतमें ज्वारकी खेती पर्य्याप्त रूपसे होती है इस लेहाज़से संयुक्त प्रदेश इस देशके एक मुख्य प्रान्तोंमेंसे है। गत ६ वर्षके ब्यौरेसे ज्ञात होता है कि इस सूबेमें ज्वार सारे खरीफ फ़स्लोंके लगभग दशांश क्षेत्रफल में बोया जाता है।

संयुक्त प्रदेश आगरा व अवधमें खरीफ फ़स्लों का क्षेत्रफल और उसका ज्वार के क्षेत्रफल से अनुपात।

सन्	सब खरीफ फस्लों का क्षेत्रफल (एकड़ में)	केवल ज्वार की खेती (एकड़ में)	ज्वारकी खेतीका कुल खरीफ खेती से अनुपात %
१९२२-२३	२१, ५१४, १०२	२, २७०, ३१३	९.५
१९२३-२४	२२, १४९, ६४६	२, ४७८, ६५९	८.९
१९२४-२५	२०, ७५१, ५५२	२, ०४६, २७१,	१०.१
१९२५-२६	२०, ९६५, ४७७	१, ९८९, ६५५	१०.५
१९२६-२७	२१, ८६४, ३४२	२, ३०१, ००८	९.५
१९२७-२८	२१, ८६४, ३४२	२, ४४५, ७२९	११.२

मुख्यतः इस प्रान्तके पश्चिमी ज़िलों और बुन्देलखण्डमें इसकी खेती दानेके लिए की जाती है। अवध और अन्य पूर्वी भागोंमें इसकी खेती बहुधा चरी (fodder) के ही लिए की जाती है।

क़िस्में

निम्नलिखित बातोंको ध्यानमें रखते हुए ज्वारके भिन्नभिन्न भाग किये गये हैं।

(क) उगानेका समय (Season of growth)

(ख) ऊपरी छिल्केके भीतर दानेकी संख्या (No. of grains in a single husk)

(ग) भुट्टेमें दानोंकी स्थिति (Location of grainsin the cobs)

(क) के अनुसारज्वार के मुख्य दो भाग हैं।

(१) खरीफ ज्वार—इस प्रान्तमें केवल यही क़िस्म पैदा होती है।

(२) रबी ज्वार—इस क़िस्मकी केवल बम्बई प्रदेश (Bombay Presidency) में खेती होती है।

(ख) विभागमें भी दो जातियां होती हैं।

(१) एकदनिया—जिसमें भुट्टेमें एक डंठल पर एक दाना होता है।

(२) दुदनियां—जिसमें भुट्टेमें एक डंठलपर दो दाने होते हैं।

(ग) विभागकी तीन क़िस्में हैं।

(१) बड़े भुट्टे और सफेद दाना (बहुधा दुदनिया क़िस्मे) इसमें दाना भुट्टेमें इस तरह लगा होता है कि दूरसे दिखाई पड़ता है। ऐसी ज्वारको चिड़ियां बहुत हानि पहुँचाती हैं।

(२) क़िस्म वौनी—इसका पौदा ३, ४ फीट ऊंचा होता है और दाना नं० १ की तरह पूरा पूरा बाहरसे दिखाई नहीं पड़ता। यह ज्वार इलाहाबाद के आस पास बोई जाती है।

(३) चहचा-इस क़िस्ममें दाना पूर्णतया छिल्केके अन्दर वन्द होता है इसलिये इसको पक्षियों से कम हानि पहुँचती है। यह क़िस्म कानपुरके आस पास बोई जाती है।

इसके अतिरिक्त और वहुतसी वातें हैं जिसके आधारपर यहाँके किसान ज्वारका भिन्न भिन्न नाम रक्खे हुए हैं।

जैसे—

(१) दानेका रंग—लाल ज्वार, काली ज्वार इत्यादि।

(२) पकनेका समय—जल्दी या देरमें।

शस्य चक्र (Rotation)

दाने के लिए

(१) गेहूँ काटने के बाद ज्वार।

(२) कपासके बाद मटर, मटरके बाद गेहूँ, गेहूँ के बाद ज्वार।

(३) गेहूँ काटनेके बाद ज्वार, अरहर।

चरीके लिए

(४) गेहूंके बाद मक्का, मक्काके बाद गन्ना, गन्नेके वाद चरी—शहरके निकट जहां पर काफ़ी खाद मिलता है।

(५) चने या मटरके बाद चरी, उन स्थानोंमें जहां कि सिंचाईका कोई प्रबन्ध नहीं होता।

खेती

(क) भूमि—ज्वारके लिए बहुत उपजाऊ भूमिकी आवश्यकता नहीं तथापि उचितमात्रा में खाद देनेसे इसकी पैदावार ज़्यादा हो जाती है। मटियार और दोमट ज़मीनमें इस फसलकी पैदावार बहुत अच्छी होती है। संयुक्तप्रान्तमें ज्वारकी सबसे अच्छी खेती बुन्देलखंडकी काली मटियार भूमिपर होती है।

चरीके लिए खेतमें बहुधा खूब खाद डालते हैं जिससे पौदे अच्छी तरह बढ़ें और खादका प्रभाव दूसरी फसलके वास्ते भी खेतमें रह जाय। चरीके लिए जहां तक हो सके उन क़िस्मोंको बोना चाहिए जिनके डंठल मीठे हों क्योंकि जानवर इस ज्वारको बड़े प्रेमसे खाते हैं।

(ख) बीज—दानेके वास्ते प्रति एकड़ ५ सेर बीज डालना चाहिए परन्तु जब यह फस्ल मिलुआ पानी और बीज़ोंके साथ बोई जाती है तो ज्वारका बीज केवल ३ सेर पड़ता है।

चरीके लिए १५ सेर बीज बोना आवश्यक है।

(ग) बोवाई—दानेके लिए खेतमें २, ३ जुताई करके बीजको वर्षा ऋतुके प्रारम्भ होते ही बो देते हैं।

बहुधा किसान इस फ़स्लके साथ उर्द, मूँग, अरहर आदि बो देते हैं जिससे कम या ज़्यादा वर्षा होनेपर भी उनकी फ़स्ल एक दम न मारी जाय और उनको कुछ न कुछ पैदावार मिल जाय।

चरीके लिए मई महीनेके अन्त तक खेतको पलेवा करके बीजको छेटकवां वो देते हैं।

(घ) सिंचाई तथा निराई—यदि पानी ठीक समयपर बरसता रहे तो इस प्रान्तमें सिंचाईकी कोई आवश्यकता नहीं—हां यदि वर्षा ऋतु देरसे प्रारम्भ हो या शीघ्र समाप्त हो जाय तो एक पानी दे देना आवश्यक हो जाता है।

बीज बो जानेके एक महीने बाद एक निराई कर देना चाहिए—ज्वारकी क़तारोंके बीच कांटा चलाकर या खुर्पीसे मिट्टी भुरभुरी कर देनी चाहिए जिससे पौदोंकी जड़ोंमें हवा लग जाय।

यह बहुत ही लाभदायक सिद्ध हुआ है। कांटा चलानेके लिए कतारोंका फ़ासला दो फीटका होना चाहिए।

(च) रखवाली—चिड़ियां इस फस्ल की जानी दुश्मन हैं। बहुधा यह देखा गया है कि दाना पड़ने पर किसान रखवाली में ज़रा चूका कि पक्षियों ने पर्य्याप्त रूप में दाना सफाचट कर दिया—भुट्टे निकलनेके पश्चात् एक महीने तक जब तक फस्ल कट न जाय—मुख्यतः प्रातःकाल तथा संध्या समय रखवाली करना अनिवार्य्य है। यदि जंगली जानवर आस पास पाये जाते हों तो रात में भी रखवाली करनी पड़ती है।

(छ) कटाई—आधे नवम्बर तक ज्वार पक कर काटने योग्य हो जाती है—उस समय उसको हँसिया से काटकर कुछ दिनोंके लिए पूंज लगाकर छोड़ देना चाहिए, जिससे दाना निकालनेसे पहिले भुट्टे भली भाँति सूख जावें।

(ज) पैदावार—इससे प्रति एकड़ १०-१५ मन दाना और लगभग ६० मन सूखी कर्बी मिल जाती है। मिलुंआ फस्ल की पैदावार कम होती है—चरीके खेतमें २००-३०० मनके लगभग हरा चारा निकल आता है। अच्छी ज़मीनोंमें प्रति एकड़ १००० मन तक चारेका निकलना कोई बड़ी आश्चर्य्यजनक बात नहीं है।

उपयोगिता

संयुक्तप्रान्तके ग्रामोंमें ज्वार खानेका एक मुख्य पदार्थ है। इसके आटेसे रोटियां बनाई जाती हैं। बहुधा इसका दलिया भी बनाते हैं। बहुतसे किसान इसको भूनकर नमक मिर्च या गुड़के साथ खाते हैं। अधपके ज्वारके भुट्टे मकईके भुट्टे की तरह भूनकर खाये जाते हैं। अधिकतर भारतीय किसान गेहूँको मालगुज़ारीके लिए बेंच देते हैं क्योंकि इससे उनको अधिक दाम मिलता है और इसकी जगह ज्वार खाते हैं क्योंकि यह गेहूँके बराबर ही पुष्टिकारक और उससे सस्ता अन्न है। निम्नलिखित ज्वारके दानेकी बनावटके विवरणसे इसके पुष्टिकारक होनेका प्रमाण मिलता है।

जल	(Water)	१२.५ %	प्रतिशत
नोषजन मिश्रित			
अण्डसित् पदार्थ	(Albuminoids)	९.३ %	"
कर्बन मिश्रित			
नशास्ता पदार्थ	(Starch)	७२.३ %	"
तैल	(Oil)	२.० %	"
रेशा	(Fibre)	४.२ %	"
खनिज पदार्थ	(ash)	१.७ %	"
		१००.००	

ज्वारकी कई मोटी जातियां शक्कर बनानेके लिए उगाई जाती हैं और इनके हरे डंठल गन्नेकी भांति चूसे जाते हैं।

बर्मा प्रान्तके करेन जातिके लोग (Karens) इसके दानेसे एक प्रकारकी अच्छी शराब निकालते हैं।

ज्वारका सूखा डंठल जानवरोंके लिए पौष्टिक आहार नहीं है और साथ ही साथ यह शीघ्र पच भी नहीं सकता है क्योंकि इसमें ३० प्रतिशतके लगभग रेशे (Fibre) का हिस्सा होता है तथापि अकाल पड़नेपर यह भी चारेके रूपमें जानवरोंके काम आ जाता है।

ज्वारका हरा चारा जानवरोंके वास्ते एक बहुमूल्य पदार्थ है। प्रोफेसर वाकर साहबने ज्वारके चारे तथा शलजमकी पौष्टिकताका मिलान किया है जिसका ब्यौरा नीचे दिया गया है। इससे चरीके पुष्टिकारक होनेका पता चल सकता है।

जल (Water)	८५.१७ %	प्रतिशत	६०.४३ %	प्रतिशत
मांस बनाने वाले पदार्थ (Flesh forming matters)	२.५५ %	"	१.०४ %	"
चरबी तथा ताप उत्पादक पदार्थ (Fatty and heat producing matter)	११.१४ %	"	७.८६ %	"
खनिज पदार्थ (Inorganic matters)	१.१४ %	प्रतिशत	०.६४ %	प्रतिशत
	१००.००		१००.००	

बीमारी

ज्वारमें कई प्रकारकी बीमारियां लगती हैं परन्तु संयुक्त प्रान्तमें ज्वारमें निम्नाङ्कित दो ही बीमारियां लगती हैं जिनसे फस्लको बहुत हानि पहुँचती है।

(१) सुंडी (Stem-borer) यह कीड़ा पौदोंकी चोटीमें अंडे देता है जिनसे थोड़े दिनोंके बाद रेंगनेवाले कीड़े निकल आते हैं। यह कीड़े डंठलमें सूराख करके उसके नरम गूदेको खा लेते हैं जिससे पौदा सूख जाता है। कीड़ा गूदेको अच्छी तरह खानेके बाद डंठलके अंदर ही अंदर सो जाता है। इस अवस्थाके बाद कीड़ा तितलीके रूपमें होकर अंडे देने लगता है। इस कीड़ेके लगनेकी सबसे बड़ी पहचान यह है कि पौदेकी चोटी सूख जाती है। ज्योंही ऐसे पौदे खेतमें दृष्टिगोचर हों उनको जड़से उखाड़ कर जला देना चाहिए जिससे उनके अन्दरके कीड़े तितलीके रूपमें होकर दुबारा अंडे बच्चे न दे सकें।

(२) कंडुवा (Smut)—यह बीमारी भारतवर्षकी कई क़िस्मकी ज्वारमें लगती है। पौदा जब फूलने पर आता है तो यह बीमारी पहले दिखाई पड़ती है। बीमारी लगे हुए पौदोंके फूलोंमें नन्हें नन्हें काले दाने चूर्णके रूपमें हो जाते हैं। इससे भुट्टा पूर्ण रूपसे नष्ट हो जाता है। विशेष बात तो यह है कि यह बीमारी अपना प्रभाव सिर्फ उसी भुट्टे पर जमाकर नहीं छोड़ देती है जिसमें पहले पहल यह लगती है बल्कि यह छोटे छोटे काले दाने हवाके साथ आस पासके भुट्टोंमें भी जा चिपकते हैं और वहां दानेके साथ आगामी फस्ल तक जीवित बने रहते हैं। कुछ वैज्ञानिकोंका यहाँ तक कहना है कि यह दाने ६ वर्ष तक नहीं मरते हैं। दूसरी साल जब यह बीज फिर बोया जाता है तो इसका कालादाना (Spore) बीजके साथ जमकर पौदेके भीतर ही भीतर अपना नया जीवन प्रारम्भकर देता है और फिर भुट्टेमें दानेके बदले अपना काला दाना पैदा करके और पौदोंका भी सत्यानाश करना शुरू कर देता है। ज्योंही यह बीमारी खेतमें दिखाई पड़े बीमार पौदोंको जलाकर समूल नष्ट कर देना चाहिए और आगामी वर्षोंमें बोने वाले बीज को ½ % फारमेलीनके पानीमें या तूतियाके घोल में भिगोकर बोना चाहिए। जिससे इस बीमारीके काले दाने जो कहीं बीजसे चिपटे रह गए हों मर जायँ। भारतीय किसानोंको तूतिया (नीला थोथा) आसानीसे मिल सकता है और इससे इसका उपयोग बिना किसी परिश्रमके कर सकते हैं। बीजको १३५°—१५०° फारनहीट गर्म पानीमें धोनेसे बीमारी समूल नष्ट हो सकती है परन्तु मामूली भारतीय कृषकको इसमें बहुतसी कठिनाइयां आवेंगी और सम्भव है कि उपर्युक्त उष्णतासे अधिक पानीके गर्म हो जानेसे बीजके जमानेकी शक्ति जाती रहती रहे।

उपर्युक्त बीमारियोंके अतिरिक्त छोटी छोटी बीमारियां जैसे गिरवी, पत्तों पर लाल धब्बे पड़ना इत्यादि भी ज्वारमें लगती हैं परन्तु इस प्रान्तमें इन बीमारियोंसे कोई हानि नहीं होती है। कुछ लोगों का कहना है कि गिरवीसे भी चरीकी पैदावार घट जाती है।

ज्वारकी खेतीका आय तथा व्यय

(प्रति एकड़)

चरी (fodder)

आय	रु०	आ०	पा०	व्यय	रु०	आ०	पा०
हरा चारा ३०० मन ४ आना प्रतिमन	७५	०	०	जुताई ३	४	८	०
				सिंचाई (नहर से) कटवा	०	१२	०
				बीज १५ सेर	२	०	०
				कटाई	४	८	०
				आबपाशी (Canal charges)	३	०	०
				लगान	१०	०	०
	७५	०	०		रु० २४	१२	०

ज्वारके दानेके वास्ते

आय	रु०	आ०	पा०	व्यय	रु०	आ०	पा०
दाना १० मन ४) प्रतिमन	४०	०	०	जुताई २	३	०	०
सूखी करवी ६० मन	२५	०	०	बोवाई, बीज सहित	२	०	०
				निराई १	४	८	०
				रखवाली	१२	०	०
				कटाई	२	४	०
				मड़ाई	५	०	०
				लगान	८	०	०
	रु० ६५	०	०		रु० ३६	१२	०

नोट—आय और व्यय समय और स्थानके अनुसार घटता और बढ़ता रहेगा। ब्योरा लिखते समय यह बात ध्यानमें रक्खी गई है कि आमदनी कमसे कम और खर्च अधिकसे अधिक दिखलाया जाय।

भावी कार्य

अभी तक कृषि विज्ञानके जानकारोंका ध्यान इस फसलकी तरफ बहुत कम गया है। खासकर इस प्रान्तमें ज्वारकी उन्नतिके लिए बहुत ही थोड़ा काम किया गया है। अभी तक कोई ऐसी जातिकी ज्वार नहीं निकाली गई है जो सारे संयुक्तप्रान्त की सब भूमिमें अच्छी उपज दे सके। गत ३-४ वर्षों-से इस प्रान्तके कृषि विभागने इस ओर ध्यान दिया है। श्रीमान् टी० एस० सवनिस साहब बहादुर जो

इस सूबेके प्रधान वनस्पतिशास्त्रवेत्ता हैं इस फसल-की उन्नतिमें बहुत कुछ सफल हो चुके हैं। उन्होंने सारे भारतवर्षकी भिन्न भिन्न ज्वारकी जातियां मगाकर अच्छी तरह जांचकी है। प्रसन्नताकी बात है कि उनकी निकाली हुई किस्मोंकी पैदावार यहाँ-के किसानोंकी अच्छीसे अच्छी ज्वारसे कहीं अधिक है। आशा की जाती है कि साधारण जनताके बोने-के लिए उनकी ज्वारका बीज शीघ्र दिया जाने लगेगा।

रोग विज्ञान

(भारतवर्षीय सायन्स कांग्रेसके सभापति कर्नल एस० आर० क्रिस्टोफर, सी० आई० ई०, ओ० बी० ई०, एफ० आर० एस०—का भाषण)

मुख्य विषय पर वक्तृता देनेके पूर्व मैं यह अपना सौभाग्य समझता हूँ कि भारतीय सायंस कांग्रेसके इस १७ वें अधिवेशनमें आप सब सज्जनोंके स्वागत करने का मुझे अवसर मिला है। यद्यपि भारतवर्षमें समय समय पर अनेक वैज्ञानिक सम्मेलन हुए हैं पर इस भारतीय सायंस कांग्रेसकी विशेषता यह है कि यह भारतीय वैज्ञानिकोंकी महासभा है। अतः हम सबका यह कर्त्तव्य है कि इसको पूर्ण रूपसे यथासंभव सफल बनानेमें सहयोग दें। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि विज्ञानके कई अंगोंमें भारतवर्षने उच्च स्थान प्राप्त किया है। भौतिक विज्ञान, रसायन शास्त्र, जीव विज्ञान, वनस्पति शास्त्र, भूगर्भ शास्त्र, कृषि विज्ञान, मेटिओरोलोजी, चिकित्सा शास्त्र तथा विज्ञानके कई अन्य अंगोंमें भारतवर्षने ज्ञान भंडारकी वृद्धिमें बहुत कुछ प्रदान किया है। मैं इसे अपनी प्रतिष्ठा और सम्मान समझता हूँ कि इस समय मुझे ऐसे धुरंधर व्यक्तियोंके सामने विचार प्रकट करनेका अवसर मिला है जिनमें-से बहुतसोंने विज्ञानकी वृद्धिमें बहुत कुछ सहयोग दिया है।

पहले तो मुझे यह निश्चय करनेमें अति कठिनता प्रतीत हुई कि इस अवसर किस विषयपर आप लोगोंके समक्ष विचार प्रकट करना अधिक उपयुक्त होगा। यह अत्यन्त स्वाभाविक है कि मैं इस समय चिकित्सा सम्बन्धी अनुसन्धानोंके विषय में कुछ कहूँ क्योंकि इस विषयसे मेरा घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है, पर ऐसा करना भी तो अति संकुचित और संकीर्ण विचार समझा जायगा; विशेषतः इस दृष्टिमें जब कि यहाँ मुझे अनेक विज्ञानोंके वेत्ताओंके समक्ष बोलना है और मुझे तो ऐसा विषय लेना चाहिये जिसका सम्बन्ध सभी विषयोंसे हो और जिसमें सब सामान्यतः रुचि ले सकें। पर ज्योंही मैंने अन्य विषयोंकी ओर दृष्टि उठाई तो मुझे अपनी न्यूनताओं की ओर ध्यान हुआ। इस विशेषताके युगमें साधारण व्यक्तिके लिये अपने विषयको छोड़ कर अन्य विषयपर बोलना सदा निरापद नहीं है। अतः मैंने यह निश्चय कर लिया कि ऐसे विषयोंकी ओर जो मेरे लिये अज्ञेय हैं बहुत भटकना ठीक न होगा। इसीलिये मैंने इन सब असुविधाओंका विचार करते हुए यही उचित समझा कि रोग-विज्ञान सम्बन्धी अनुसन्धानोंके विषयमें ही कुछ कहूँ। रोग विज्ञानका सम्बन्ध विज्ञानके अन्य अँगोंसे भी है अतः बहुत सम्भव है कि आप लोग सब इस विषयमें कुछ रुचि ले सकेंगे। मेरे इन विचारोंका इस बातसे और भी अधिक समर्थन हो गया कि आजकल समस्त जनताका ध्यान स्वास्थ्य और रोगोंकी ओर विशेष आकर्षित हो रहा है, अतः यह ठीक है कि यद्यपि मैं किसी विज्ञानकी विशेष वार्त्ताओंके उल्लेखमें सफल न हो सकूँगा पर तो भी सार्वजनिक रुचिके विषय पर कुछ कहने का प्रयत्न करूँगा।

स्वास्थ्य सम्बन्धी विषय अथवा रोग एवं ओषधियोंके ज्ञान प्राप्त करनेके पूर्व यह आवश्यक है कि रोगोंका वास्तविक कारण ज्ञात हो जावे अतः रोग विज्ञान ही चिकित्सा सम्बन्धी अनुसन्धानोंका मूल है। स्वस्थ रहनेके लिये क्या करना चाहिये, यह हम तब तक जान ही नहीं सकते हैं जबतक हमें यह पता न चल जाय कि स्वाथ्य किन कारणोंसे बिगड़ जाता है और किसी भी रोगका तब तक निदान नहीं हो सकता है जब तक उसका कारण ज्ञात न हो जाय। रोगोंका कारण ज्ञात होनेपर ओषधियाँ देना आसान हो जाता है पर इसके बिना जाने अथक प्रयत्न करनेपर भी रोग दूर नहीं होते हैं। रोग विज्ञान अति विस्तृत विषय है। इसका सम्बन्ध रसायन शास्त्र—विशेषतः कज्जोद रसायनसे है क्योंकि शरीरस्थ सम्पूर्ण क्रियावान द्रव स्वभावतः कज्जोद हैं। परोपजीवी कृमियोंसे इसका घनिष्ट सम्बन्ध होनेके कारण यह जीवविज्ञानसे भी सम्बन्धित है। नोषजन पदार्थों अथवा कज्जोद पदार्थोंके ऊपर विद्युत् संचार निकालनेके कारण इसका सम्बन्ध भौतिक विज्ञानसे भी है।

जिस प्रकार ज्योतिष तारोंकी विद्या है, जीवविज्ञान सचेष्ट प्राणियोंकी विद्या है, सीस्मोलोजी भूडोलोंका विज्ञान है इसी प्रकार रोगोंकी भी एक विद्या है जिसके लिये अभी कोई नाम नहीं दिया गया है यह आश्चर्यकी बात है। यह बात नहीं है कि यह विद्या महत्वहीन है अथवा अन्य विद्याओंके अन्तर्गत ही इसका समावेश है। इसका स्वयं निजी विस्तृत क्षेत्र है और इसे जीव विज्ञान अथवा रसायन शास्त्रसे उतना ही पृथक् समझना चाहिये जितना कि ज्योतिष को भौतिक विज्ञान से।

यहाँ मैं इस रोग विज्ञानके विषयमें ही संक्षेपतः कुछ कहूँगा। मैं इस विषयकी उपयोगिता, इसकी उन्नतिका इतिहास, इसके आधुनिक अनुसन्धान और उन बातोंका उल्लेख करूँगा जिससे यह स्पष्ट हो जावेगा कि यद्यपि यह रोगविज्ञान विज्ञानके अन्य अंगोंकी जैसे भौतिक शास्त्र, रसायन और जीवविज्ञानकी सहायता लेता है पर तो भी इसे एक पृथक् ही विज्ञान मानना चाहिये।

रोगका कारण जानना कितना उपयोगी है इसमें किसीको भी सन्देह नहीं हो सकता है। यह कहावत प्रसिद्ध है कि जानके बदले सम्पूर्ण सांसारिक ऐश्वर्य को ही लेकर कोई क्या करेगा। इसी प्रकार संसारमें यदि यांत्रिक तथा अन्य सब विज्ञानोंकी उन्नति हो भी गई पर यदि रोग विज्ञान आगे न बढ़ा तो फिर अन्य विज्ञानोंके ऐश्वर्यके भोगनेके लिये कौन रह जावेगा। विश्वविजेता तनुव्रणोंसे पीड़ित होकर मर जाता है, और शक्तिवान् सम्राट् ज्वरसे दुःखी है। रोगके समान तरसाने वाली, दूषित प्रभाव पहुँचानेवाली तथा समस्त प्राणिजातिको निरन्तर दुःख देने वाली और कोई चीज नहीं है। युद्ध, दुर्भिक्ष और रोग ये तीन भयंकर शत्रु हैं और इनमें रोग तो सबसे अधिक विकट है। युद्ध कभी कभी ही होता है और वह भी क्षणिक है। अकाल भी सदा नहीं आता पर रोग तो सदा ही विद्यमान रहता है।

कुछ लोगोंको यह बात अतिशयोक्ति ही मालूम होगी पर ऐसा नहीं है। चिकित्सक डाक्टर लोग ही रोगके भीषण उत्पातका अनुभव कर सकते हैं। पागल हो जाना, पीड़ा, ज्वर, यक्ष्मा, अन्धापन, तरह तरह के व्रण, और पंगुता इन सबका नाम ही कितना रोमाञ्चकारी है। बहुतसे लोग विशेषतः ईसाई वैज्ञानिक इस भीषणताकी अवहेलना करते प्रतीत होते हैं। वे समझते हैं कि साधारण अनियमतासे रोग उत्पन्न हो जाते हैं, और इनकी ओर अधिक ध्यान देना आवश्यक नहीं है। साधारणतः स्वस्थ मनुष्योंके विषयमें यह बात ठीक भी हो सकती है पर जो चिकित्सक रोगियोंके संसर्गमें आते हैं वे ही इसका अनुभव कर सकते हैं कि यह इतनी सीधी समस्या नहीं है। यदि आरोग्य विज्ञान की इतनी उन्नति न हुई होती और चीड़ा फाड़ीमें इतनी कुशलता न प्राप्तकी गई होती तो न जाने रोगका प्रभाव कितना भयंकर होता। यह सभी

जानते हैं कि मलेरिया, हैज़ा, प्लेग आदि अनेक रोगोंसे किस प्रकार गाँवके गाँव साफ़ हो जाते हैं, और रोग विज्ञानकी अवहेलना करनेके कारण कितना कष्ट उठाना पड़ता है। अतः रोग विज्ञान कितना उपयोगी है, इसके कहनेकी आवश्यकता नहीं है।

ओषधियोंका इतिहास

रोग विज्ञानका इतिहास, यदि इसे विज्ञान कहा जाय तो, उतना ही प्राचीन है जितना किसी भी विज्ञानका। वेदोंमें भी जिनका काल ईसासे १५०० वर्ष पूर्व माना जा सकता है, इसका उल्लेख पाया जाता है। सिगरने मिश्र देशके एक प्राचीन ओषधि-सम्बन्धी लेखकी ओर ध्यान आकर्षित किया है जो ईसासे १७०० वर्ष पूर्व का प्रतीत होता है। मेसोपोटामिया और मीनोकी प्राचीन सभ्यतामें में भी इस विषयके उल्लेख पाये जाते हैं। पर ओषधियोंका इतिहास बहुधा हिप्पोक्रेटीजके समयसे आरम्भ होता है। एशिया माइनरके तटसे थोड़ी दूरपर कोसद्वीपमें इस यूनानी चिकित्सकका जन्म हुआ था। पर जिस आधारपर हमें हिप्पोक्रेटाजके विषयमें ज्ञात होता है, वह हिप्पोक्रेटीज़ संग्रह है जिसमें भिन्न-भिन्न कालोंमें अनेक लेखकों द्वारा लिखे गये १०० ग्रन्थोंका संकलन है। इनका समय ईसासे ६ से लेकर ४ शताब्दी पूर्व तक माना जा सकता है।

हिप्पोक्रेटने सर्व प्रथम यह बताया कि शरीर में ४ रस होते हैं—रुधिर, कफ, पीला पित्त और काला पित्त। यदि ये चारों रस उचित मात्रामें हों तो मनुष्य स्वस्थ रहेगा, पर किसी एकके भी न्यूनाधिक्यसे रोग उत्पन्न हो सकते हैं। इस बातमें कोई सन्देह नहीं है कि रोगका वास्तविक कारण किसीको भी ज्ञात न था। यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है कि हिप्पोक्रेटिक अथवा अन्य कोई भी प्राचीन सम्प्रदाय रोगकी वास्तविक तह तक नहीं पहुँच सका था। इनके दो सहस्र वर्ष पश्चात् तक इस विषयमें कुछ भी अधिक उन्नति नहीं हुई और प्राचीन परिपाटीकी लीक ही पीटी जाती रही। आधुनिक यूरोपीय अनुसन्धानोंकी क्रांतिके पूर्व तक लोग इनपर विश्वास करते आये, यहां तक कि १६वीं शताब्दीमें भी इन चार रसोंके सिद्धांतकी अवहेलना करनेका किसीको भी साहस न हुआ।

ओषधियोंके इतिहासमें गेलन (१३०-२०० ई०) का नाम अति विख्यात है। गेलनने शरीरस्थ सर्वव्यापी जीवात्माकी कल्पनाकी और इस जीवात्माका उपर्युक्त चार रसोंसे भी सम्बन्ध बतलाया। इसने 'स्वभाव' या 'रुचि' का सिद्धान्त (temperament) निकाला। स्वास्थ्यकी स्वाभाविक स्थिति चार तत्वोंपर निर्भर है। उष्ण, शीत, नम और शुष्क। कभी कभी ऐसा भी माना गया है कि इन चार स्वभावोंसे ही यह प्रत्यक्ष सृष्टि बनी है। उष्ण और नमके संयोगसे वायु बना, उष्ण और शुष्कके संयोगसे अग्नि बनी, शुष्क और शीतके मिश्रणसे पृथ्वी बनी और नम और शीतके संयोगसे जल बना इत्यादि। ओषधियोंमें भी इसी प्रकार चार प्रकारके गुण माने गये—गरम, ठंडा, नम, शुष्क। ओषधियोंका प्रभाव इन पर ही निर्भर माना जाने लगा। गेलनके प्रयोग बहुत दिनों तक सत्य माने जाते रहे और उनमें किसीने संदेह उपस्थित करनेका प्रयास न किया। मध्यकालीन इतिहासमें गेलनके सिद्धान्तोंके आधारपर ही शरीरविज्ञान और रोग विज्ञानकी नींव डाली गई। गेलनके एक सहस्र वर्ष पश्चात् भी लोगोंको उसके विरुद्ध कुछ भी कहनेमें संकोच होता था। गेलनका सिद्धान्त भ्रान्ति रहित तो न था पर यह व्यक्ति इतना तर्क-कुशल था कि उसके विरोधियोंका उसके सामने प्रतिवाद करनेका साहस न होता और वह अपनी चतुर युक्तियोंसे सबको सन्तुष्ट कर देता। कौन कह सकता है कि हम भी अपने समयमें इसी प्रकार की चातुरीसे काम निकालते हों!

मुसलमानोंके प्रतिष्ठित प्रदेश अरबका ओषधि शास्त्र हिप्पोक्रेटिक सम्प्रदायका अनुयायी ही प्रतीत होता है क्योंकि बग़दादके खलीफ़ा अब्बा सदने अनेक यूनानी ग्रन्थोंका अनुवाद अरबी भाषामें करवाया था। ये खलीफ़े प्राचीन साहित्य, विशेषतः

यूनानीके, बड़े प्रेमी थे। इन्होंने प्राचीन ग्रन्थोंका संग्रह किया और अपने दरबारमें अति विद्वान् व्यक्तियोंको बुलाकर अनुवाद कराया। औषधियोंके गुण और रोगनिदानके विषयमें बड़ी उन्नति हुई। मुसलमानी औषधियां मध्यकालीन यूरोपमें भी प्रचलित रहीं।

आधुनिक विज्ञानका जन्म सत्रहवीं शताब्दीमें होता है और बहुत दिनों तक इससे औषधि विज्ञानको अधिक सहायता न मिली। रोगोंके कारण ढूँढ़नेमें इसने भी अनेक तर्क शून्य हेत्वाभासोंका आश्रय लेना आरम्भ किया। यद्यपि शरीर विज्ञान, यांत्रिक शास्त्र,रसायन शास्त्र आदि विज्ञानके अनेक अंग उन्नति करते गये पर ये रोग विज्ञानकी कठिन और आश्चर्यजनक समस्याओंको अधिक सहायता न दे सके। यहाँ तक कि १८वीं शताब्दीमें भी रोगोपचारकी विचित्र पद्धतियाँ प्रकट होने लगीं। ब्रनोनियन पद्धतिमें जीवनक्रियायें एवं रोग मानसिक उद्वेग और अनुभावों पर आश्रित बताये गये। वासना और कामनाओं पर रोगोंकी भित्तिको खड़ा किया गया। इसी समय हेहनीमनने एक और विचित्र पद्धति होमयोपैथीकी निकाली जिससे सभी परिचित हैं।

पर इस बातको देखकर संतोष होता है कि इस समय ही वैज्ञानिक प्रणालियोंकी ओर लोगोंका ध्यान गया जिसके कारण इस विषयमें शीघ्र ही अधिक उन्नति होने लगी। इस समय उन्नतिकी प्रगति इतनी अधिक बढ़ गई कि दसबीस वर्षोंमें ही हम इतना आगे बढ़ गये जितना कि अन्य समयोंमें सैकड़ों और हज़ारों वर्षोंमें भी नहीं बढ़ पाये थे। इस उन्नतिका पूर्ण इतिहास देना तो यहाँ संभव नहीं है, पर कुछ मोटी-मोटी बातोंका उल्लेख किया जा सकता है।

यहाँ यह बात समझ लेनी चाहिये कि १८वीं शताब्दीके अन्ततक हमको यह भी पता न था कि ओषजन नामक कोई पदार्थ संसारमें विद्यमान भी है। १६वीं शताब्दीके बीच तक किसीका इस बातकी ओर ध्यान भी न गया था कि रोग कीटाणुओं द्वारा भी फैल सकते हैं, यद्यपि इस विषयकी सैद्धान्तिक सम्भावना कुछ लोगोंको अवश्य प्रतीत होती थी। एक वेरोनीज़ चिकित्सक फ्रैसकैटोरोने यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया था कि रोग ऐसे सूक्ष्माणुओं द्वारा फैल सकते हैं जिनमें प्रजनन शक्ति भी विद्यमान है। उसकी यह कल्पना बहुत ही ठीक थी।

सन् १६१५ में हार्वेने रुधिर-प्रवाहकी खोजकी। सन् १६५० के लगभग प्रवर्द्धशक्तियुक्त तालोंके बनाने और उपयोग करनेकी विधि निकाली गई। सन् १६६१ में माल्पीघीने इन तालोंकी सहायतासे सूचिका प्रणालियोंको प्रत्यक्ष किया। सन् १७६१ में औअनब्रूगरने हृदय और फेफड़ोंकी परीक्षाके लिये स्टेथोस्कोप बनाया और लीनेकने (१७८१-१८२६) औषधियोंमें भौतिक चिह्नोंके प्रयोग करनेकी विधि बताई। सन् १७६६ में जेनेरने गायकी चेचकका पस लेकर चेचकके टीकेकी विधि निकाली। इस प्रकार टीका लगानेकी पद्धतिका प्रचार आरम्भ हुआ। सन् १८३६ में श्वान और अन्य वैज्ञानिकोंने शरीरस्थ पदार्थोंके रन्ध्रमय गुणोंकी परीक्षा करके हिस्टोलोजी, साइटोलोजी आदि चिकित्सा सम्बन्धी अङ्गोंकी नींव डाली। पास्ट्यूरने सन् १८२२-२६ में जीवाणुविद्या और लिस्टरने १८६१ में शल्यशास्त्रको जन्म दिया। मूर्छना विधिका उपयोग शल्यशास्त्रमें मोर्टनके समयसे होने लगा जब कि उसने ज्वलक (ईथर) और सिम्पसनने क्लोरोफार्म (हरोपिपील) निकाला। सन् १८७६ में कौकने जीवाणुओं द्वारा उत्पन्न होने वाली अनेक बीमारियोंका अध्ययन किया।

लियोनार्डो-डि-विन्सीने सबसे पहले गेलेनके सिद्धान्तोंके विरुद्ध आवाज़ उठाई। सन् १५१८ से ही, जो उसका मृत्युकाल है, बस चिकित्सा शास्त्रमें क्रान्तिका युग आरम्भ हो गया। उसके २५० वर्ष (पश्चात्ही लगभग सन् १८८० के) इस चिकित्सा शास्त्रने इतनी उन्नति करली कि हिप्पोक्रेटीज़के समय से प्रचलित सिद्धान्त सर्वथा परिवर्तित हो गये।

अबतक चिकित्साका एकमात्र लक्ष्य रोग निवारण था। प्रारंभिक चिकित्सक रोगको दूरकर देनेके अतिरिक्त और कुछ नहीं सोचते थे। आजकल भी बहुतोंका यही विचार है कि रोग निवारण कर देना ही चिकित्साशास्त्रका एकमात्र लक्ष्य है। बहुत थोड़े दिनोंसे ही लोगोंको यह अनुभव हुआ है कि व्यक्तिगत रोग दूर कर देना ही नहीं, प्रत्युत समस्त मानव जातिमें रोगका न आने देना ही इस शास्त्रका लक्ष्य है। इसका तात्पर्य यह है कि उपस्थित रोगको दूर कर देने ही में इस शास्त्रकी इतिश्री नहीं है, प्रत्युत भावी रोगोंसे भी बचाना इसका लक्ष्य है।

जिस प्रकार प्रत्येक विज्ञानके दो अंग होते हैं, एक उपयोगी और दूसरा मीमांसिक, उसी प्रकार चिकित्सा शास्त्रके भी दो विभाग हैं। साधारणतः रोगोंको दूर करनेके लिए इसका प्रयोग करना उपयोगी अङ्ग है, पर रोग सम्बन्धी गूढ़ कारणों की दार्शनिक मीमांसा करना इसका दूसरा पर सर्वोत्कृष्ट लक्ष्य है। कौकने अपने मीमांसिक प्रयोग द्वारा ही राजयक्ष्माका अनुसन्धान कर डाला, लोगोंने अनुवीक्षण यन्त्रोंका प्रयोग करके अनेक रोगोंके वास्तविक कारणको जान लिया।

जैसा कि कर्नल मैकीने अपने 'भारतवर्षमें चिकित्सानुसंधान' में लिखा है, चिकित्सा शास्त्रमें सबसे पहले लोगोंने बिना यन्त्रोंके अथवा साधारण तापमापक आदि की सहायतासे कार्य्य आरम्भ किया पर बादको प्रत्येक बातके विशेषज्ञ मिलने लगे। सूक्ष्मदर्शक यन्त्र तथा अन्य रासायनिक प्रयोगोंसे चिकित्साशास्त्रकी अनेक शाखायें उत्पन्न हो गईं। ऐसा होना चिकित्सा शास्त्रके लिए बहुत ही महत्वपूर्ण है।

प्रत्येक देशमें चिकित्साशास्त्रकी इसी प्रकार उन्नति हो रही है, पर उष्ण प्रधान देशोंमें जहां रोगोंकी खेती सदा हरी रहती है, उसका महत्व और भी अधिक बढ़ गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि उष्ण प्रदेशोंमें तापक्रम और रोगमें कोई विशेष सम्बन्ध है। इन प्रदेशोंके चिकित्साशास्त्रमें परोपकृमि विज्ञान (Parasitology) का सबसे ऊंचा स्थान है। इसमें सन्देह नहीं है कि यह विज्ञान बहुत ही आधुनिक है और मलेरियाके कृमियोंकी खोज हुए बहुत दिन नहीं हुए हैं।

इन लगभग ३० वर्षोंके अन्दर ही उष्ण प्रदेशीय चिकित्साने इतनी उन्नति कर ली है कि उन सबका यहां उल्लेख करना सम्भव नहीं है। यहां केवल कुछ प्रमुख बातें कह देना ही उचित होगा।

जो लोग चिकित्साशास्त्रसे परिचित हैं, वे जानते हैं कि रोग निवारणके लिये रोगका कारण जानना कितना आवश्यक है। प्लेग इसका एक उदाहरण है। आरम्भमें लोगोंका विचार था कि प्लेग एकदम छूतकी बीमारी है। अतः छूतसे बचानेके लिए पहरेदार नियुक्त किये गये और अन्य भी उपचार किये गये। पर जब पता चला कि प्लेग छोटे छोटे जीवाणुओं द्वारा भी फैलता है तो इन जीवाणुओंके नष्ट कर देनेके लिए अन्य विधियां भी काममें लायी गई। जीवाणु नाशक रसके न जाने कितने गैलनोंकी होलाकी गई पर इसके प्रभावसे निर्दोष अनेक जीवाणु तो मर गये पर प्लेगके सच्चे कीटाणु मक्खियों और चूहोंके शरीरमें छिपे हुए बच गये। अतः बादको पता चला कि जीवाणु-नाशक रसों अथवा छूतसे बचानेवाले पहरेदारोंसे काम न चलेगा। इसके लिये नए उपचार किये गये जिनका फल यह हुआ कि प्लेगका टीका लगाने अथवा सुई लगानेका विधि काममें लाई जाने लगी। खत्तियानोंमें अथवा ऐसे स्थानोंमें जहाँ चूहोंसे बचाव करना कठिन है, प्लेग अपना स्थायी वास बना लेती है।

मलेरिया ज्वर भी इसी प्रकारका एक उदाहरण है। पहले लोगोंका विचार था कि प्रकृति एक प्रकार का विष उगलने लगती है जिसको हम श्वास द्वारा शरीरके भीतर ले जाते हैं, और अन्दर जाकर मलेरिया ज्वर उत्पन्न कर देता है। पर अब हम जानते हैं कि यह एक छोटेसे जीव

'मच्छर' की ही करामात है और यदि हम चाहें तो इससे बड़ी आसानीसे अपनी रक्षाकर सकते हैं।

केवल इतना जान लेनेसे ही काम न चलेगा कि बीमारी किस प्रकार फैलती है। इसके फैलते समय बीमारियोंकी जितनी भी अवस्थायें होती हैं, उनका पूर्ण विवरण जान लेना अति आवश्यक है। हमको मक्खियों, मच्छरों और अन्य कीटाणुओंके जीवन इतिहाससे परिचित होना चाहिए, और यह भी जानना चाहिए कि ताप, शीत, जलवायु तथा रासायनिक द्रव्योंका इनपर क्या प्रभाव पड़ता है। हमें इतना ही जानने की आवश्यकता नहीं है कि उपयुक्त भोजनके न होनेसे बीमारियाँ फैल सकती हैं, इनको इन सब बातोंको स्वास्थ्य तथा रसायनकी दृष्टिसे मीमांसा करनी चाहिये।

इस समय हम प्लेग, मलेरिया, फाइलेरियेसिस, टाइफस, मियादी बुखार, बेरी-बेरी, कोढ़, नुकवर्म और अनेक अन्य बीमारियोंके कारणों को भली प्रकार जान गये हैं।

चिकित्साशास्त्रके अनुसन्धानोंका अन्य विज्ञानों से सम्बन्ध

चिकित्साशास्त्रकी जो इतनी अभिवृद्धि हुई है उसका एकमात्र श्रेय इसीको नहीं है, यद्यपि इसमें इसका अधिकांश हाथ अवश्य है। चिकित्साशास्त्र में बहुतसे काम करनेवाले रसायनज्ञ हैं। बहुतसे न केवल जीव विज्ञानका उपयोग ही करते हैं वरन्, वे पूर्णतः जीवविज्ञानवेत्ता हैं। आधुनिक युगमें कभी-कभी विशेषज्ञता खलती अवश्य है, पर इसके अतिरिक्त विशेष उन्नति करनेका और कोई उपाय भी तो नहीं है। यदि कोई वैज्ञानिक किसी प्राणीकी पूँछके बाल गिननेमें ही आयु बिता देता है और वह विज्ञानके अन्य अंगोंको भूल जाता है तो लोग उसकी हँसी उड़ाते हैं। पर कौन जानता है कि उसका यही काम भविष्यमें न जाने किस रहस्यको प्रकाशित कर देगा। प्रत्येक छोटी-छोटी बातका इतना विस्तृत अध्ययन हुए बिना उन्नति होना सम्भव नहीं है। एण्टोमोलोजी, हेलमिन्थोलोजी, प्रोटोजोआलोजी, जीवाणु विज्ञान, कलोद तथा भौतिक रसायन और अन्य विज्ञान सभी आवश्यक हैं।

चिकित्साशास्त्रका शरीर विज्ञानसे भी बहुत कुछ सम्बन्ध है। नलिका रहित पिंडों (ductless-glands) और इन पिंडों तथा हारमोनोंसे निसृत रसोंका रोगोंपर बड़ा प्रभाव पड़ता है। भोजन सम्बन्धी समस्याओंका निरीक्षण करनेसे हमें यह पता चल गया है कि विटेमिन तथा प्रकाशकी किरणोंका स्वास्थ्य पर क्या प्रभाव पड़ता है।

जीव विज्ञानसे तो चिकित्साशास्त्रका बड़ा ही घनिष्ट सम्बन्ध है। यह पता चलने पर कि बहुत सी बीमारियाँ परोपजीवियोंके कारण फैलती हैं, इन छोटे छोटे कीड़ोंकी ओर भी जीव-वेत्ताओंका ध्यान गया। यदि इनका सम्बन्ध बीमारियोंसे न होता तो भला इनका अध्ययन कोई करता ही क्यों! रोग विज्ञानने ही जीवाणु विज्ञान को जन्म दिया। यह भी जीवविज्ञानका ही एक अंग है पर इसके विषयमें अनुसन्धान करनेवाले चिकित्सक ही हैं। इसी प्रकार प्रोटोजोआ, स्पोरोजोआ आदिके सम्बन्ध में भी कहा जा सकता है। चिकित्साशास्त्रमें इनकी उपयोगिता होनेके कारण ही इनके विषयमें इतना ज्ञान प्राप्त किया जा सका है। कीड़े मकोड़े, मच्छर आदिके विषयमें भी चिकित्साशास्त्र वालोंने ही अनुसन्धान किये हैं।

रसायनज्ञों द्वारा बनाये गये अनेक आधुनिक यौगिकोंने औषधियोंके भण्डारको बहुत बढ़ा दिया है। पारद, संखीयम् और आंजनम्के यौगिक प्रतिदिन उपयोगमें आ रहे हैं। कलोद रसायनने तो रोग विज्ञानकी समस्याओंको बहुत ही प्रोत्साहन दिया है। इम्यूनोलोजी, जिसमें प्रत्यमित प्रक्रियाओंका उपयोग होता है, कदाचित् भौतिक रसायनका अंग है, यद्यपि रोग विज्ञानके सम्बन्धमें इसका प्रयोग किया जाता है। भौतिक शास्त्रका भी इस रोग विज्ञानसे बहुत सम्बन्ध है। कलोद कणोंका

विद्युत् संचार, पृष्ठतनाव, अधिशोषण आदि अनेक विषय ऐसे हैं जिनमें भौतिक विज्ञानका काम पड़ता है।

यद्यपि रोग विज्ञान या चिकित्सा शास्त्रने भौतिक विज्ञान, रसायन शास्त्र तथा जीव विज्ञानसे बहुत सहायता ली है तथापि उसका क्षेत्र इन विज्ञानोंकी अपेक्षा निराला ही रहा है। यहाँ इस प्रकारके कुछ आधुनिक उदाहरण देकर मैं इस विषय-को समाप्त कर देना चाहता हूँ।

पहले मैं बेक्टीरियोफेग (कीटाणु भक्षक) के मनोरञ्जक विषयको लूँगा। सन् १९१७ से डॉ० हेरेले के प्रयोगोंसे एक बिलकुल नये चमत्कारका पता लगा। ऐसा अनुभव होने लगा कि किसी अज्ञात 'शत्रु' के कारण अनेक प्रकारके कीटाणुओंका शरीर खाया जा रहा या घुलता जा रहा है। डी-हेरेले टिड्डियोंकी आहार नलिका (alimentary canal) के कीटा-णुओंके विषयमें अनुसन्धान कर रहा था। उसका उद्देश्य यह था कि कोई ऐसा प्रतिरोधी कीटाणु पता चल जावे जो इन टिड्डियोंको मार डाले। कीटाणुओं-के पृथक् करनेके लिये सदाकी तरह जब वह प्लेट बनाने लगा तो उसे कीटाणुओंकी स्थूल उत्पत्तिके समय कुछ रिक्त स्थान भी दिखाई पड़ने लगे। ये रिक्तस्थान इस बातके द्योतक थे कि नये कीटाणुओंकी उत्पत्तिके साथ साथ कुछ ऐसे अन्य भी कीटाणु हैं जो इन्हें खा जाते हैं। अनुवीक्षण यन्त्र द्वारा यह स्पष्ट दिखाई पड़ता था कि नये कीटाणु कुछ सीमा तक बराबर बढ़ते आते हैं, पर थोड़ी देर बाद एक दम विलुप्त हो जाते हैं, या घुल जाते हैं।

साधारण कीटाणु पास्ट्यूर-चैम्बरलैण्ड छन्नोंके छिद्रोंसे बाहर नहीं आ सकते हैं पर ये शत्रु कीटाणु जब अन्य कीटाणुओं को खा लेते या घुला देते हैं तो ये उपर्युक्त छन्नेके छिद्रों को भी पार कर सकते हैं। इससे मालूम होता है कि ये शत्रुकीटाणु अन्य कीटाणुओंकी अपेक्षा और भी अधिक सूक्ष्म हैं। यदि कीटाणुओंके किसी धुंधले घोलमें ये डाल दिये जावें तो धुंधला घोल स्वच्छ हो जावेगा। यदि अब इस स्वच्छ घोलकी कुछ बूँदें किसी दूसरे धुंधले घोलमें डाली जावें तो वह भी स्वच्छ हो जावेगा। इस प्रकार यह प्रक्रिया लगातार दोह-राई जा सकती है। इससे स्पष्ट है कि यह शत्रु कीटाणु लगातार प्रजनन करते रहते हैं, जब तक कि इनको अपना भोजन मिलता रहे।

यद्यपि यह मूल कीटाणु अदृश्य है पर अब पता चल गया है कि यह एक कलोद प्रत्यमिन कण है। इस द्रव्यका नाम डी हेरेले ने बेक्टीरियोफेगी रखा है। अब प्रश्न यह है कि यह मूल-कीटाणु चेतन है या नहीं? अब तक जीववेत्ताओंका यह विचार था कि चेतनता का 'कोष्ठ' के गुणों से घनिष्ठ संबन्ध है। केन्द्रयुक्त कललरसको चेतनता का कारण माना जाता था। पर बेक्टीरियोफेगमें यह बिलकुल स्पष्ट है कि यद्यपि इसमें चेतनता विद्य-मान है पर न इसमें 'कोष्ठ' ही हैं और न प्रोटोप्लाज़्म (कललरस) ही है। मैं यहां इस बातका ज़ोर देने नहीं आया हूँ कि आप बैक्टीरियोफेग को चेतन मान ही लें, मेरा तात्पर्य्य केवल इतना ही है कि जीववेत्ताके अनुसन्धानके लिये यह बहुत ही मनोरञ्जक और उपयोगी विषय होगा।

डी हेरेले यह मानता है कि किसी भी रोगके स्वभावतः अच्छे होनेका अर्थ यह है कि उसके रोग कीटाणुओंको बैक्टीरियोफेगों ने खा डाला। अभी निश्चयात्मक रूपसे यह कहना कठिन है कि बैक्टीरियोफेगकी वास्तविक उपयोगिता क्या है। चाहे रोग-निवारण से इनका कोई भी सम्बन्ध न हो, पर तब भी यह चिकित्सकों, रसायनज्ञों तथा जीववेत्ताओंके कौतूहल का चीज़ अवश्य है, और इस समय कौन कह सकता है कि आगे चलकर इसका कितना महत्व समझा जावेगा।

बैक्टीरियोफेगका एक और भी साथी है जिसे छन सकनेवाला वीरस (विष) कहते हैं। जबसे लोगोंको यह पता चल गया कि बहुतसी बीमा-रियां जीवाणुओं द्वारा फैलती हैं, तबसे अब सब को यह विश्वास हो गया है कि प्रत्येक छूतकी

बीमारी का कारण जीवाणु ही हैं चाहें हम उन्हें देख सकनेमें असफल ही क्यों न रहें। यद्यपि बहुतसे ऐसे रोग हैं जिनके कीटाणु अभी तक नहीं पाये जा सके हैं, पर तब भी वे उसी श्रेणीके माने जाते हैं जिनमें जीवाणु जनित रोगोंको स्थान मिला है। चेचक, रैबीज़ या हाइड्रोफोबिया तथा पीतज्वरके कीटाणु अभी तक नहीं पृथक् किये जा सके हैं। ये पास्च्यूर-चैम्बरलैण्ड छन्नेके छिद्रोंमें से पार निकल जाते हैं, इसका तात्पर्य्य यह है कि ये इतने सूक्ष्म हैं कि इनका देखा जाना सम्भव नहीं है। छूतकी बीमारीके लिये यह आवश्यक नहीं है कि कोष्ठ अथवा कललरस युक्त जीवाणु ही इसको फैलावें, वस्तुतः प्रत्यमिन कलोद कण भी यह व्यापार कर सकते हैं। इसी लिये इन्हें 'वीरस' (Virus) कहते हैं। वस्तुतः बैक्टीरियोफेग एक नये प्रकारका विशिष्ट-चेतन जीव है। चेचकको भी इस प्रकारके जीव द्वारा उत्पन्न होना समझना चाहिये।

यदि ये वीरस चेतन जीव हैं तो ये अन्य जीवाणुओंकी अपेक्षा उतने ही अधिक छोटे हैं जितने कि ये जीवाणु साधारण नेत्रोंसे देखे जानेवाले स्थूल प्राणियोंकी अपेक्षा छोटे हैं। इतना सूक्ष्म आकार होनेके कारण ये बहुतसे उन कारणोंसे भी प्रभावित हो जाते हैं जिनसे कि इनकी अपेक्षा अधिक स्थूल जीवाणु नहीं हो पाते। इनका अधिशोषण हो सकता है।

बहुतसे ऐसे रोग अब भी हैं जिनकी समस्या इस समय भी अगम्य है। कैन्सर इन्हींमेंसे एक है। हमें यह आशा है कि रोग विज्ञानसे बहुत सी उलझनोंका समाधान हो सकेगा और अपने क्षेत्रमें इसे बहुत कुछ सफलता प्राप्त होगी।

—सत्यप्रकाश

चिकित्सा रसायन

[ले० श्री ब्रजबिहारीलाल दीक्षित, एम० एस-सी०]

परिवर्त्तन, महान् परिवर्त्तन! एक वह युग था, जब इस जगतीपर रोगका संचार न हुआ था, मनुष्यको कष्ट का अनुभव ही न था, स्त्री-पीड़ाका ज्ञान ही न था, बालकोंको जीर्णावस्था और अन्ततोगत्वा मृत्युका भय स्वप्नमें भी न आया था और एक यह युग है कि कोई मनुष्य सर्वथा रोग रहित नहीं है. किसी भी व्यक्तिको अपने जीवनमें कोई ऐसा दिन ही नहीं मिलता जिस दिन उसने किसी पीड़ाका अनुभव न किया हो। वृद्धावस्थाने शनैः शनैः युवावस्थाको ही लुप्त कर दिया है और अपने मित्र कालको भोजन प्रवृत्तिमें समय कुसमयके विचार से ही अवहृतकर दिया है। कितना घोर परिवर्तन! परन्तु फिर भी हमको गर्व है कि हम वैज्ञानिक वृद्धि के शिखर पर बैठे हुए हैं। जाने दीजिए, उपर्युक्त कल्पना युगका अनुमान न कीजिए, परन्तु यह तो स्वयम् श्रीमान्जी ने भी अनुभव किया होगा कि जब आप बालक थे तब रोगोंका बल इतना न था। वैद्य लोग इतने न थे और चिकित्सायें इतनी न थीं, तिसपर भी मनुष्य प्रसन्न थे और रोगोंसे निडर थे। परन्तु आज वैद्यों एवम् चिकित्सकों की संख्या दिन दिन वृद्धि पर है, उसमें व्यय किया जाने वाला धन प्रति दिन द्विगुण होता जाता है, चिकित्सालय इतने खोले जाते हैं कि प्रायः और किसीके रहनेको स्थान ही न रहने देंगे। तिसपर भी, रोगियोंका अन्त ही नहीं होता, नित्य नये नये रोग निकलते आते हैं। पुराने रोगोंमें वहस सी पड़ गई है और कोई भी पीछे हटा प्रतीत नहीं होता। यह हमारी वृद्धि है। इसीपर हमको गर्व है कि हमने संसारके रोग-शोक मुंचनार्थ कार्य्य किया है। प्राचीन समयमें

चिकित्सालयमें मनुष्य बड़े प्रेम तथा सुखसे रखे जाते थे, रोगियोंके दिल बहलाने तथा रोगका अनुभूति भूल जानेके लिए उनके सन्मुख स्त्रियां गायन किया करती थीं और एक एक व्यक्ति की इच्छा तथा सामर्थ्यानुसार उसे खेल खिलाये जाते थे और नीरोग हो जाने पर उसे काफी धन देकर विदा करते थे कि वह कुछ समय तक विना ही श्रमके अपना जीवन बिता सके। परन्तु आज प्रत्येक चिकित्सालय रोगियोंसे भरा पड़ा है, कोई इधर चिथड़ पुथड़ पड़े हैं और कोई उधर लुढ़क रहे हैं। चारपाइयोंके अभावसे अथवा यों कहिए कि रोगियों के भी बाहुल्यके कारण बहुतोंको अपनी पृथ्वी माताकी गोद ही में विश्राम लेना पड़ता है। वेचारे डाक्टरों की दया पर ये हैं और डाक्टर हैं, पैसे की दया पर। जो कोई कुछ पैसे दे सकता है वह किञ्चिन्मात्र सहानुभूतिको मोल लेकर अपनेको मुख्य डाक्टरसे निरीक्षण करवा सकता है। पैसेसे ही वह स्वच्छ वस्त्र तथा कुछ अपने पेट-परमात्माको धोखेमें डालनेके लिए भोजन प्राप्त कर सकता है तथा अन्य बातें कर सकता है। इन पैसों का नाम संस्कार ईश्वरने 'मूल्य' नहीं किया वरन् 'नज़राना'। विना पैसे वाले वेचारे अपने ही मैले कपड़ों इत्यादिसे भूमि पर विस्तरारोपण किए पड़े रहते हैं और यदि कभी अधिपति साहेब की दृष्टि उधर पड़ गई तो ओषधि दिये जाने की आज्ञामात्र अपने कर्णोंमें धारण कर लेते हैं और यदि कोई दयालु जीव उनके भाग्यमें आ गया तो ओषधि की प्राप्ति भी हो जाती है। परन्तु कर्णमें ओषधि शब्द धारण करने और उदरमें यह 'ओषधि मात्र' धारण करनेमें कुछ ही अन्तर है। ओषधि केवल जल और स्वाद परिवर्त्तनार्थ किसी अन्य पदार्थका घोल होता है। मुख्य अधिपति को तो रोगी से अपनी 'फीस' ही चाहिए परन्तु अन्यजन उससे यदि सम्भव हो सके तो उसका मांस भी माँग लेने की चेष्टा कर सकते हैं। यहां तक कि यदि रोगी नीरोग भी हो गया तो दरिद्र-नारायणके कोपसे तो प्रायः वह रोग सागरमें ही डुबकियां लगाता रह जाता है और जीवनपर्य्यंत इस रोगसे नीरोग नहीं होता। ओषधियां कार्य्य कुशल हों या न हों यह तो नहीं कहा जा सकता परन्तु चिकित्साकी परिपुष्टता सर्व सिद्ध है और यही आधुनिक रसायनकी सर्वोच्च सफलता है। परन्तु इससे लाभ किसको, उन्हीं गणित धनी जनोंको जो चिकित्सकोंकी कृपा का मूल्य देनेमें समर्थ हैं। इसका अनुमान उन लोगों को भली भांति होगा जिनको कभी इन बातों का साक्षात् अनुभव हो गया है। कैसा परिवर्तन है और विचित्र परिवर्तन। फिर भी यह सब है हमारी वृद्धि ही और हमको गर्व का पात्र बनानेवाली वृद्धि, रसायनमेंवृद्धि! सभ्यतामें वृद्धि!! और मानसिक जीवनके सुखामृतमें वृद्धि !!!

परन्तु यदि इन पंक्तियोंसे यह अर्थ निकाला जावे कि रसायनकी दशा पुरातन रसायनसे अब सुधरी हुई नहीं है तो यह रसायनके प्रति महान् मान हानिकी बात होगा। रसायनकी उन्नतिमें तो संदेह हो ही नहीं सकता, परन्तु विवादास्पद बात है यह कि इस उन्नतिसे चिकित्सा शास्त्रमें वास्तविक उन्नति हुई है कि नहीं। यह निश्चित भावसे नहीं कहा जा सकता। रसायनने यौगिकोंका स्रोत तो अवश्य खोल दिया है और वह सहस्रों यौगिक चिकित्सा शास्त्रमें उपयुक्त भी होते हैं परन्तु वस्तुतः वह उतने भले नहीं होते जितने अनुमान किया जाता है। प्रायः सभी यौगिकोंसे अमुक-लाभ है तो अमुक हानि है और उस हानिको पूर्ण करनेके लिए और यौगिक उसमें मिलाना पड़ता है। फिर उसकी हानियोंके निमित्त और यौगिक डालने पड़ते हैं, इस प्रकार नुस्खा तैयार किया जाता है। रोगीका बाहरी रोग तो भले ही लुप्त हो जावे परन्तु इस प्रकार उसमें अनेक निर्वलतायें आ जाती हैं और अपनी अपनी ऋतुमें इन सभीमें फल लगता है। जबतक कोई कील गड़ी है तबतक उसकी पुष्टिमें शंका नहीं परन्तु जब एकवार उसे उखाड़ लिया या हिला दिया तब चाहे ऊपरसे हथौड़ीसे

उसे ठीक भी दो, वह तो होती ही रह जावेगी। नुस्खे की सभी वस्तुयें एक न एक इन्द्रियको हिला देती हैं और भले दो उसकी मज़बूती के लिये अन्य यौगिक मिला दो परन्तु उसपर तो कुछ न कुछ प्रभाव पड़ ही गया। दूसरी बात यह है कि बहुधा औषधियां मानसिक कष्टको दबा देती हैं, उसको समूल नष्ट नहीं करती। यदि किसी भी बहिष्कृत पदार्थके सेवनसे कोई रोग हो गया है जैसे गठिया, शीश पीड़ा इत्यादि तो बहुधा एस्परिन एक महा कुशल-प्रद वस्तु है परन्तु यह केवल ज्ञान-तन्तुओंको ज्ञान शून्यकर देती है और मनुष्यको कष्टका अनुभव जाता रहता है परन्तु वह कष्ट तो है ही। यह एक प्रकारके विष होते हैं और उनका प्रभाव अन्य इन्द्रियों पर पड़ता है, और अन्ततः ही अनेक रोग अपनी मूल पुष्टिमें लगे हुए हैं। समय पाकर वह अपना प्रभाव अवश्य दिखलाते हैं। मेरे प्रत्यक्ष अनुभव की बात है कि मेरे एक मित्रके गठिया थी और इन्हीं एस्परिन इत्यादि औषधियोंसे ही उनको अपना शरीर पांच छः बरस नीरोग प्रतीत हुआ परन्तु कुछ ही कालमें उनकी एक आँखकी ज्योति जाती रही। कोई भी चिकित्सक इसका भली भाँति निदान न कर सका। वास्तवमें यह गठिया विषका ही प्रभाव था और कुछ चिकित्सकोंने इसका समर्थन भी किया।

तात्पर्य्य यह है कि अभी रसायनज्ञ लोग उस शिखिर पर नहीं पहुँचे हैं जहां पर कि गर्व कर सकें। उन्नति अवश्य हो रही है परन्तु यह उन्नति की मात्रा अत्यन्त ही अल्प है और इस उन्नतिकी गति बढ़ानेकी चेष्टा करनी चाहिए। शल्य चिकित्सा सत्यतः आधुनिक रसायनका फलीभूत चमत्कार है और गर्व किया जा सकता है। यदि इतनी ही सफलता इस चिकित्सा-रसायनमें भी हो जावे तो प्रायः रोगकी सीमा दृष्टिगत होने लगे। इस चिकित्साकी आधुनिक सांसारिक स्थितिका अनुमान निम्नांकित पंक्तियों से कुछ कुछ किया जा सकता है।

जब कोई नवीन यौगिक चिकित्सा शास्त्रमें प्रवेश करनेकी चेष्टा करता है तो पहले उसे अपना प्रभाव पशुओं पर—कुत्ता, चूहा, मुर्गे तथा खरहा इत्यादि पर— देखलाना पड़ता है। एक ज्ञात मात्रा इन पशुओंको दी जाती है और कुछ कालतक नियमित भोजन देकर उस पशुमें जो जो परिवर्त्तन होता है वह देख लिया जाता है। यदि पशु मर गया तो औषधि की मात्रा कम करते जाते हैं। और इस प्रकार उसकी 'मारण मात्रा' तथा मारण कालका ज्ञान हो जाता है। यदि यह विषैला गुण प्रतीत नहीं होता है तो औषधिकी मात्रा न्यूनाधिक की जाती है पर जो प्रभाव पड़ता है वह सब देख लिया जाता है। अब औषधि मात्रा स्थिर कर दी जाती है और पशु के भोजनमें परिवर्तन किया जाता है। इससे यह ज्ञात हो जाता है कि किन किन भोजनोंसे औषधिका प्रभाव, गुण कारक या हानिकारक, घटता है कि बढ़ता है। यदि कोई गुणकारक प्रभाव प्रतीत हुआ तो अनेकानेक अन्य यौगिक मिलाकर वह वस्तु दी जाती है और उसके हानि-कारक प्रभावोंको दबानेकी चेष्टाकी जाती है। यौगिकोंका जो मिश्रण सबसे अधिक गुणकारी हुआ उसे एक औषधि रूपमें निश्चय कर लिया जाता है। धन वृद्धिकी आशासे उस औषधिका विज्ञापन हो जाता है और वह बिकने लगती है। यहीं भूल हो जाती है। औषधिको अनेक रोगियों पर प्रथम परीक्षित करना चाहिए, एक दो नहीं वरन सहस्रों पर, और बहुत समय तक। उनमें जो अवगुण आते जावें उनको शनैः शनैः लुप्त कर-देनेके विचारसे उस औषधिका संगठन तथा मिश्रण परिवर्त्तित करना चाहिए, यहां तक कि एक पूर्ण गुणकारी और हानिहीन पदार्थ हाथ लग जावे, तब उसका विज्ञापन हो तो अवश्य ही अधिक लाभ होगा। परन्तु धनका लोभ ऐसा नहीं होने देता। बहुधा लोगोंने जब किसी यौगिकमें कोई गुण देखा, तुरन्त ही उनके सहस्र अवगुणों पर ध्यान न देकर उसी गुण पर बल देकर औषधिका विज्ञापन

करा देंगे, उपर्युक्त परीक्षायें भी तो नहीं करते। उनका यह धनलोभ रसायन शास्त्रको जहां तक उनका चिकित्सा शास्त्रसे सम्बन्ध है उतने ही गहरे गर्त में खींचे लिए जाता है जितने ऊंचे मंच पर रसायन स्वयम् होती यदि यह चिकित्सा कलंक उसके दुर्भाग्यमें न लिखा होता।

जब किसी रसका शरीर पर प्रभाव निकालने की चेष्टाकी जाती है तो अनेक बातोंका विचार करना पड़ता है। सर्वोपरि मुख्य बात तो यही है कि उसका अकेले क्या प्रभाव पड़ता है और फिर यह कि अन्य रसायनोंके संसर्गसे उसके शारीरिक प्रभावमें क्या क्या भेद पड़ जाते हैं। इनके अतिरिक्त उसकी घुलनशीलता क्या है। जलमें, मज्जाओंमें, रक्तरसमें तथा अन्य शारीरिक भागोंमें इसकी घुलनशीलता कितनी है। घुलनशीलताके अनुसार ही उसका प्रभाव भी घटेगा या बढ़ेगा। यह सब बातें पशुओं पर प्रयोग करके निकाल ली जाती हैं। बहुधा देखा गया है कि किसी रासायनिक यौगिकका शरीर पर प्रभाव उसको ही रासायनिक शक्तिके अनुसार ही होता है। जिसकी रासायनिक शक्ति बहुत अधिक होती है वह शरीर पर भी अत्यन्त ही शीघ्र एवम् शक्तिसे प्रभाव डालते हैं और बहुधा विषोंका कार्य्य करते हैं। रासायनिक दृष्टिसे विषों तथा ओषधियोंमें कोई अन्तर नहीं है। विषोंका प्रभाव केवल अधिक तीव्र व शीघ्र होता है। आजकल तो अनेक विष भी ओषधि रूपमें प्रयोग किए जाने लगे हैं किन्तु हां, इन्हें बहुत ही न्यून मात्रा और हलके घोलमें देना होता है। संसार प्रसिद्ध महातीव्र—पांशुज श्यामिद—हृदय की निर्बलताको दूर करनेमें बड़ा ही कार्य्य कुशल है। अन्य हृदय सम्बन्धी रोगोंमें भी इसका घोल पुष्टक की भांति कार्य्य करता है। इसी भांति संक्षीणमके अनेकानेक यौगिक बड़े बड़े कठिन रोगोंके लिए निकाले गए हैं। यह सब विष और महाभीषण विष! परन्तु उचित प्रकारसे प्रयोग करने पर वह महातीव्र ओषधिका कार्य्य करते हैं। रसायनमें मद्यानार्द्र तथा अमिनो मूल अत्यन्त ही क्रियात्मक (active) होते हैं और उनमें भी जितना ही परमाणुभार कम होगा उतना ही वह यौगिक अधिक क्रियात्मक होगा। रसायनमें पिपीलिक मद्यानार्द्र अत्यन्त ही क्रियात्मक है और शारीरिक प्रभावमें भी वह पिपीलिनके रूपमें गले की फुड़िया फुन्सी अथवा स्वास्थ्य नलीके कष्टोंमें इन अंगोंके विष के विनाशनार्थ दिया जाता है। दमाके भी कठिन स्वरूप धारणकरने पर यही मद्यानार्द्र रोगीको सुंघाया जाता है ताकि समस्त श्वासप्रणाली ही विष विहीन हो जाय। न्यूमोनिया एक ऐसा रोग है जिसका कारण फेफड़ेके कोषोंके कीटाणुओंसे उत्पन्न एक द्रव पदार्थसे भर जाना होता है और इसी प्रकार प्लुरेसी में भी हृदयको आच्छादित कर वाली झिल्ली पर इन्हीं कीटाणुओंसे उत्पन्न एक द्रवके जम जानेसे रोग उत्पन्न होता है। ऐसे समस्त रोगोंमें यह मद्यानार्द्र बड़ा ही उपयोगी है। इसको कृमि-नाषक शक्तिका उपयोग शल्यचिकित्सामें भी पूर्ण रूपसे किया जाता है। वहाँ शस्त्रोंको शुद्ध करनेमें तथा घाव इत्यादिको कृमिरक्षित रखनेके निमित्त इसकी बड़ी आवश्यकता पड़ती है। इसमें कमी यह है कि यौगिक विषैला होता है और रोगको अच्छा करनेके साथ साथ शरीरके लिए हानिकारक भी है। इससे उच्च यौगिक सिरकमद्यानार्द्र में विषैला प्रभाव बहुत ही कम रह जाता है परन्तु शरीर पर निद्रक प्रभाव डालता है। ऐसा प्रभाव केवल ज्ञान कोषके प्रभाव को किंचन्मात्र शिथिल कर देनेके कारण होता है। इस प्रकार इसका शारीरिक प्रभाव पिपीलिक मद्यानार्द्र से कहीं भला है और परमद्यानार्द्र के रूपमें शरीरके मूर्च्छनार्थ तथा उस पर सुनक प्रभाव डालनेके लिए प्रयोग किया जाता है। इससे भी अधिक लिनिक्त यौगिक मध्य-मद्यानार्द्र का प्रभाव और भी गुणकारी होता है। परन्तु वह जलमें अनघुल और मूल्यवान होनेके कारण प्रयोगमें नहीं आता। बानजाव मद्यानार्द्र भी अनघुल और निश्चेष्ट होनेके कारण कम

उपयोगी होता है परन्तु अब भी टाइफाइड ज्वरमें दिया जाता है. किन्तु दालचीनिक मद्यानार्द्र, $क_६$ $उ_५$ क उ=क उ. क उ ओ, का उपयोग अधिक किया जाता है क्योंकि यह कुछ अधिक घुलनशील है और इसके अतिरिक्त एक द्विबन्ध (Double bond) होनेके कारण यह तीव्र भी अधिक होता है। स्वाद भी मधुर होता है और इसकी सुगन्ध दालचीनी की तरह बड़ी ही भली मालूम पड़ती है। यह शरीरकी समस्त प्रणालियोंको साधारण रूपसे विषविहीन कर देता है। हृदय की निर्बलतामें द्राक्षोज़ एवम् अमोनियाके साथ इसका उपयोग होता है परन्तु कभी कभी वाष्प रूपमें भी दिया जाता है। अधिक उच्चतर मद्यानार्द्र—अष्टील तथा नवनीत मद्यानार्द्र भी उपयोगी हैं और इनका स्वाद जिह्वाको परपरा प्रतीत नहीं होता। भिन्न-चक्रिक-मद्यानार्द्र—उदाहरणतः देवदारील मद्यानार्द्र—रासायनिक गुणोंमें भी बानजाव मद्यानार्द्रकी ही भाँति होते हैं और उतना ही शारीरिक गुणमें और इसी प्रकार गन्ध दिव्यीन भी यद्यपि यह कुछ अधिक मूल्यवान होता है। अधिक परमाणुभार होनेके कारण कीतोन अधिक क्रियात्मक नहीं होते। सिरकोन सिरकमद्यानार्द्रसे भी निश्चेष्ट निद्रक होता है। दारील, ज्वलीलका भी ऐसा ही प्रभाव होता है परन्तु और भी निश्चेष्ट और बानजावदिव्योनका प्रभाव तो अत्यन्त ही शिथिल होता है।

अमिनो मूल भी अत्यन्त ही क्रियात्मक मूल होते हैं और शरीरमें प्रत्यमिन बहुत होनेके कारण ऐसे मूलोंकी भी अधिकता होती है। यही मूल मद्यानार्द्रों तथा कीतोनोंसे शीघ्रतासे लिप्त हो जाते हैं और द्विबन्धसे स्थापित यौगिकोंको उत्पन्न करते हैं। इसके विपरीत शरीरमें विद्यमान द्राक्षोज़ इत्यादि अमिनो मूलसे ही प्रतिकृत हो सकते हैं और इस कारण अमोनिया भी शारीरिक प्रभावमें यहाँ क्रियात्मक यौगिक है। न्यून मात्राओंमें यह एक हृदय तीव्रकका कार्य्य करता है और इसके प्रयोगका एक नुस्खा निम्न प्रकार है—

कुनिन—१ ग्राम
शुद्ध मद्य—२५ घ. श. म.
(९०%)
अमोनिया घोल
१०%—५ घ. श. म.

इसको 'अमोनम कुनिन टिंक्चर' कहते हैं और सुस्ती एवम् मन्दगति प्रतीत होनेके समय शरीर पर आश्चर्य्यजनक प्रभाव डालता है। हृदयकी निर्बलताके समय जब नाड़ी बड़ी ही मन्दगतिसे चलती है और रक्तप्रवाह भी बहुत मन्द पड़जाता है तब भी इसी औषधिका प्रयोग करना चाहिए। इसका प्रभाव बड़ा तीव्रक होता है और इसका मूल्य भी कम है। अमोनियमके स्थापित यौगिकोंको प्रयोगमें लानेसे टिंक्चरका प्रभाव तो तीव्र हो जाता है परन्तु शोक यही है कि औषधि विषैली भी है और इसका विषैलापन बढ़ता ही जाता है। दारील-अमिन अत्यन्त ही विषैला यौगिक है। चतुर्दारील अमोनियम लवणजनिदका प्रभाव बिलकुल विपरीत ही होता है और ये तीव्रकके स्थानमें बड़े मन्दक होते हैं। बानजावोसमुदायमें नीलिनमें शारीरिक ताप अपकर्षणका गुण होता है पर वह भी विषैली होती है। यह विषैलापन अमिनो-मूल को कम क्रियात्मक कर देनेसे घटाया जा सकता है। यदि इसका सिरक यौगिक बना दें तो विषैलापन भी कम हो जाता है और ताप अपकर्षक गुण भी बढ़ जाता है। इस औषधिका नाम विपर-बुखारिन (Antifeverine) है और बहुधा लाभप्रद प्रतीत होती है। इसका परज्वलोष यौगिक और भी गुणकारी होता है और उसको दिव्यसिरकिन कहते हैं। विपर बुखारि में सिरकोज़ मूलके स्थान में दुग्धिक मूल स्थापित कर देनेसे दुग्धोदिव्यीन उपलब्ध होता है और वह भी उपयोगी वस्तु है। इस प्रकार :—

अब कर्बोषिल मूलोंको लीजिए। यह सदा ही प्रत्येक पदार्थके विषैले गुण को कम कर देते हैं। बानजावीन विषैली होती है, सम्भवतः इसका यह गुण इसमें तीन द्विबन्ध होनेके कारण है, परन्तु बानजाविकाम्ल किञ्चन्मात्र भी विषला नहीं होता है। इसके पचीस पचीस ग्राम भी खा लेनेसे कुछ विषैलापन प्रतीत नहीं होता। इसी प्रकार दारोल अमिन विषैली है परन्तु अमिनो सिरकाम्ल कुछ भी हानिकारक नहीं है। नीलिन् भी विषैली होती है परन्तु अमिन बानजमविकाम्ल, पूर्व, मध्य, पर, सभी बहुत कम विषैले होते हैं। इन सबमें भी जितना ही कर्बोषिल मूल अमिनो मूलके निकट होगा उतना ही उसका प्रभाव कम होगा। अफीमिन बड़ा ही तीव्र विष होता है परन्तु अफीमिकाम्ल, जिसमें केवल एक कर्बोषिल मूल, ओउ, मूलके सन्निकट पूर्व स्थानमें स्थापित होता है, बहुत ही कम विषैला वस्तु है। यह शारीरिक प्रभावमें भी बहुत ही निष्चेष्ट होती है। इसका १ ग्राम तक खा लेनेसे कुछ भी विशेष बात प्रतीत नहीं होती परन्तु अफीमिन का ·०००१ ग्राम भी खा लेनेसे विषके चिह्न प्रतीत होने लगते हैं। गन्धोनिक मूल का भी प्रभाव इसी प्रकार होता है और वह विषैलापन दूर करनेमें और भी शक्तिशाली होता है। अफीमिन गन्धोनिकाम्लका २५ ग्राम तक खा लेनेसे भी कुछ असर नहीं होता है। कोकेन एक महा तीव्र संवेदनानाशक (Anaesthetic) होता है। किसी भी स्थान पर सूची द्वारा प्रविष्ट कर देनेसे उसके चारों तरफ़ बड़ी दूर तकके भागको ज्ञान शून्य कर देता है। चक्षु-विन्दुको बहुत ही बढ़ा देना है और यदि खा लिया जायतो अत्यन्त ही शीघ्रतासे निद्रा देवी का आवाहन कर देना है और शरीर पर ऐसा प्रभाव डालता है जैसा कि मद्यकी पांच छः बोतल भी पी जानेसे कई घंटोंमें होता। इसी कारण मद्यके सेवक इसका बहुत आदर करते हैं और धन, मान, समय, स्वतंत्रता इत्यादि किसीका भी विचार न करके इसकी न्यूनतम मात्रा प्राप्त कर लेनेके लिए लालायित रहते हैं परन्तु यह बहुत ही विषैला पदार्थ है। इसका यह सब गुण प्रायः तृतीय नोषजन अणुके कारण होता है और अनेक स्थानों पर भी ऐसे नोषजनका यही प्रभाव देखा गया है। इसके विपरीत बानजावील एकगोनिन एक और पदार्थ है जिसका संगठन कोकेनसे बहुत कुछ मिलता जुलता है परन्तु वह कोकेनकी अपेक्षा उससे शतांशसे भी आधा तीव्र हा होता है। दोनोंका सूत्र देखनेसे ज्ञात होगा कि कोकेनके कर्बोषिल मूलका दारोल मद्यसे सम्मेलन कर दिया गया है परन्तु एकगोनिनमें यह मूल मुक्त है और अपना प्रभाव स्वतंत्रतासे दिखला सकता है। इस प्रकार—

```
क उ२ — क उ — क उ–क ओ ओ क उ३
|          |        |
|  उ३ क–नो     क उ. ओ क ओ क६ उ५
|          |        |
क उ२ — क उ. — क उ५
              कोकेन
```

```
क उ२ — क उ — क उ–क ओ ओ उ
|          |        |
|  उ३ क–नो     क उ ओ क ओ क६ उ५
|          |        |
क उ२ — क उ — क उ२
        बानजावील एकगोनिन
```

इसी कारणसे गन्धोनिक कोकेन भी सर्वथा हानिकारक पदार्थ नहीं है क्योंकि इसका समस्त विषैलापन गन्धोनिक मूलसे दूर हो जाता है। द्वितीय नोषजनके होनेसे भी यौगिक विषैला होता है परन्तु

क उ$_2$—क ओ
|
क उ$_2$—क ओ

नो उ किञ्चिन्मात्र भी विषैला नहीं है। इसका भी कारण प्रायः यही हो सकता है कि दो क ओ-मूलोंमें कर्बोषिलकी शक्ति होती है क्योंकि ये केवल उन्हींके अवशिष्ट रूप हैं। असंपृक्तता होनेके कारण भी यौगिककी क्रियात्मक शक्ति बढ़ जाती है। रालिकाम्लको चाहे जितना खालो कुछ भी न होगा परन्तु सेवजिकाम्लका एक ग्राम भी खा लेनेसे कुत्तोंकी मृत्यु हो जाती है। मनुष्यों की मारण-मात्रा तथा मारण-कालका ज्ञान अभी नहीं है। इसी प्रकार अशीत मद्य एक पूर्ण निश्चेष्ट यौगिक है, इसमें केवल कुछ कुछ निद्रक प्रभाव होता है परन्तु इसके असम्पृक्त रूप लशुनीत मद्यमें विषैली शक्तिकी मात्रा अधिक होती है। इसी प्रकार दोनोंके मद्यानाद्रोंमें चरपरोलिन (लशुनील मद्यानार्द्र) म्यूकस अर्थात् श्लेष्मक झिल्ली पर बड़ा ही हानिकारक प्रभाव डालता है। वानजाविक यौगिक भी इस नियममें व्यतिक्रम नहीं होते हैं। वानजावीनका विष साधारण ही होता है और दाराल वानजावीन तो बहुत ही कम और ज्वलील वानजावीनतो और भी कम विषैला होता है परन्तु ललोल वानजावीन (स्टाइरिन) अत्यन्त ही विषैली होती है। इसके सम्बन्धी यौगिक असम्पृक्त दिव्योल भी विषैले होते हैं और उनमें केन्द्रसे द्विबन्ध जितना ही दूरस्थ होगा उतना विषैलापन अधिक होगा इस

क उ$_2$ <—ओ—, —ओ— (वलय) —क उ$_2$—क उ=क उ$_2$

लशोल (Safrol)

क उ$_2$ <—ओ—, —ओ— (वलय) —क उ=क उ—क उ$_3$

सम लशोलसे अधिक विषैला और

ओ उ
|
(वलय) — ओ क उ$_3$
|
क उ$_2$—क उ=क उ$_2$

लवंगोल (Eugenol)

सम लवंगोलसे कहीं अधिक विषैला होता है।
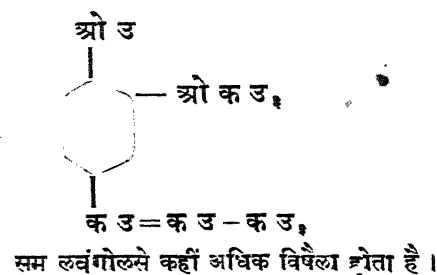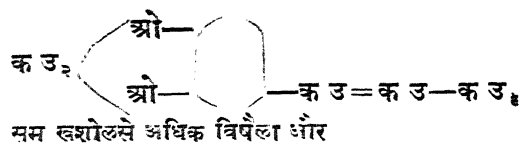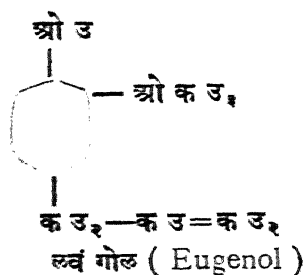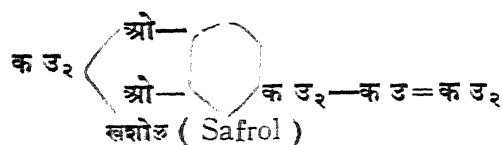
रश्मिक एवम् चित्रसमरूपोंका हाल अभी भलीभांति ज्ञात नहीं है। वासिकाम्लसे सेवजिकाम्ल कहीं अधिक क्रियात्मक होता है परन्तु सम्भव है कि यह प्रभाव केवल उस अम्लके अधिक घुलन शील होनेके ही कारण हो। इसी प्रकार नीबुकोनिकाम्ल (Citraconic) और मध्यकोनिकाम्ल (Itaconic) में भी मध्यकोनिकाम्ल ही अधिक निश्चेष्ट और अधिक अनघुल भी है। परन्तु दारचीनिकाम्ल और समदारचीनिकाम्लमें इसके विप-

प्रकार रीत ही होता है। सम-रूप अधिक घुलनशील परन्तु कम क्रियात्मक होता है, इसका क्या कारण हो सकता है? यह भली भांति ज्ञात नहीं। एड्रिनैलिन (adrenaline) बैलोंकी उपरिमूत्र ग्रंथियोंसे (Supra Renal Glands) उत्पन्न एक रस होता है और उसका रूप इस प्रकार होता है—

उ ओ— (वलय) —क उ$_2$—क उ—नो उ—क उ$_3$
उ ओ— | ओ उ
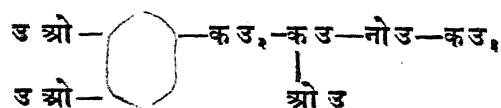
इसका उत्तर भ्रामक रूप हृदय रोगों में तीव्र होता है परन्तु दक्षिण भ्रामक यौगिक इसके शतांश का आधा ही तीव्र होता है। उत्तर भ्रामक रूप इतना तीव्र होता है कि यदि सूचिका द्वारा प्रविष्ट कर दिया जावे तो अपना प्रभाव एक घड़ीके भी शतांश समयमें दिखलाने लगता है। इसके कृत्रिम यौगिकका प्रभाव केवल इसका दशांश ही था परन्तु खोज करने पर ज्ञात हुआ यह केवल उत्तर-भ्रामक एवम् दक्षिण भ्रामकके मिश्रणके कारण है। उत्तर-भ्रामक अधिक तीव्र होता है, परन्तु दक्षिण-भ्रामक अत्यन्त ही निश्चेष्ट। दोनों रूप अलग अलग कर लिए गए और अब अधिकतर उत्तर भ्रामक यौगिक हो व्यावहारिक मात्रामें तैयार किया जाता है। दक्षिण भ्रामकको अशक करके उसमेंसे उत्तर भ्रामक फिर पृथक् कर लिया जाता है और इस प्रकार यथासम्भव समस्त द—रूप उ—रूपमें परिणत कर लिया जाता है। इसी प्रकार धतूरेसे उपलब्ध धतूरिन (atropine) दक्षिण भ्रामक होती है। यह आंखकी पुतलीको बहुत ही फैला देती है जिससे कि डाक्टर लोग आंखके आन्तरिक भागोंको भली भांति देखलें और इसी कारण आंख का निरीक्षण करने वाले इसका उपयोग करते हैं। यह भी विषैली होती है और इससे आंखमें डालते समय, सरमें दर्द इत्यादि अनेक शारीरिक कष्ट होने लगते हैं और इसका प्रभाव लगभग एक सप्ताह तक रहता है। इसी कारण इसके स्थानमें चिकित्सक लोग अब चक्षुरिन (Homatropine) का प्रयोग करने लगे हैं। वह इस प्रकार तीव्र तो नहीं होती परन्तु उसका प्रभाव बहुत शीघ्र होता है और शीघ्र ही दूर भी हो जाता है। चक्षुरिनके बहुधा तीन चार बार डालने की आवश्यकता होती है। धतूरिन एक ही बार डालनेसे काम चल जाता है और कई बार डालनेसे आंख सदाके लिए खुली रह जानेका भय होता है और उससे आंखमें सदा के लिए धुंधलापन आ जाता है। यदि छिद्र बढ़ कर सदाके लिए स्थाई हो गया तो प्रकाशके अधिक प्रवेश होनेके कारण आंख शीघ्र ही नष्ट हो जाने का भी डर होता है। धतूरिन का उत्तर भ्रामक रूप उससे दसगुना क्रियात्मक होता है और इसको उप-धतूरिन (Hyoscyamine) कहते हैं। सिद्धान्त रूपमें-बहुधा उत्तर भ्रामिक यौगिक अधिक क्रियात्मक होते हैं और दक्षिण भ्रामक कम।

श्यामिद मूल भी महान् विषैला मूल है और सभी धात्वीय श्यामिद तीव्र विष होते हैं। पांशुज श्यामिद तो जगत् प्रसिद्ध ही है। उसमें दोनों ही भाग विषैले होते हैं और इस कारण उसका विषैलापन वर्ग मात्र में बढ़ जाता है। इसके शरीरमें प्रविष्ट कर जानेसे रक्त बड़ी ही शीघ्रतासे रक्त-नलियोंमें जहांका तहां पर जम जाता है और मृत्यु हो जाती है। इसकी मारण मात्रा ०.१ ग्राम और मारण काल ५ मिनट है। इसको खा लेनेके बाद शरीरमें अत्यन्त ही पीड़ा और पेटमें ऐंठन सी होने लगती है। चिकित्सक बुलानेका समय बहुधा नहीं मिलता है। बहुत सी चाय देनेसे अथवा तुरन्त उत्पन्न कलोद लोहिक ओषिद देनेसे रोगीको लाभ पहुँचता है और सम्भव है कि वह बच भी जावे। लोहिक ओषिदमें अधिशोषण शक्ति अत्यन्त ही तीव्र होती है और वह पांशुज श्यामिदको शोषित कर लेगा। चायमें कहवीन होती है जो तप्त रूपमें एक शक्तिशाली तीव्रक होता है और हृदयकी गति को इतना बढ़ा देता है कि कुछ कुछ जमा हुआ रक्त भी प्रवाहित होने लगता है।

इतना तो हुआ शरीर पर भिन्न भिन्न मूलोंका प्रभाव अब यह विचार करना चाहिए कि शरीर में भिन्न भिन्न यौगिकोंका पारस्परिक परिवर्त्तन किस भांति होता है। कुछ ओषधियां तो पाचन नलीमेंसे पूर्णतः अधिशोषित करली जाती हैं और शरीर उनका पूर्ण उपयोग कर लेता है। कुछका थोड़ा सा अंश ही अधिशोषित होकर उपयोग होता है और अधिकांश केवल बहिष्कृत हो जाता है और कुछ बिलकुल ही अधिशोषित नहीं होती हैं। यह भली भांति समझ लेना चाहिए कि पाचन प्रणालीमें

ही पहुँच जानेसे ओषधिसे कुछ नहीं होता। यदि वह अधिशोषित नहीं हो सकती अथवा अनघुल है तो जैसी कि तैसी बिना ही किसी प्रभावके निकल जावेगी। सुई द्वारा जिन ओषधियों का प्रवेश किया जाता है वह सीधे रक्तहीमें जाती हैं और उनके अधिशोषणमें न तो समय लगता है और न ओषधि की हानि होती है, इसी कारण उनका प्रभाव इतना तीव्र एवम् शीघ्र होता है। बिलकुल अधिशोषित न होने वाली वस्तुएं या तो अपना कार्य्य पाचन प्रणाली को चिकना देनेसे करती है जिससे कि मल इत्यादि भली भांति उसके किनारोंसे सरक सके और इस भांति पाख़ाना साफ आवे। ऐसी वस्तुओंमें रेंड़ी का तैल इत्यादि है जो बहुधा दस्तावर होते हैं। या यह ओषधियां केवल भारी होनेके कारण पाचन प्रणालीमेंके मलको दबा कर नीचे की ओर लाती हैं और अपने साथ साथ उसे भी साफ़ करते जाती हैं। ऐसी ओषधियोंमें पारेके द्वारा दस्तोंका लाना है। हुलास इत्यादि भी ऐसी ही वस्तुओंमेंसे है। वह केवल गन्ध तन्तुओंको करोद सा देता है जिससे छींक आ जाती है और इसमें नाकके अन्दर यदि कोई वस्तु या मल भरा हुआ है तो बाहर निकल जाता है। थोड़ी सी मात्रा में अधिशोषित होने वालोंमें हरिद्रिन (क्लोरोफार्म)है। यद्यपि यह अधिक मात्रामें प्रवेश किया जाता है तथापि इसका न्यूनांश ही उपयोग होता है। उपयुक्त मात्राका अनुमान मूत्रमें हरिदोंका प्रतिशत देखनेसे हो सकता है। साधारण रूपमें हरिद केवल ·२—·३ प्रतिशत ही होते हैं परन्तु अब वह १ %—२ % तक होंगे। अधिकांश हरिद्रिन केवल बहिः श्वाँसके साथ निकल जाता है। सर्व प्रथम समुदायकी ओषधियां बहुधा सुई द्वारा ही प्रविष्ट की जाती हैं। उनमें अधिकतर लारोद तथा मद्य इत्यादि हैं जो शीघ्र ही ओषदीकृत होकर इस भांति परिवर्त्तित हो जाते हैं कि वह वास्तविक रूपमें रहते ही नहीं।

इस परिवर्तनमें मद्यानाद्र या तो अवकृत होकर मद्यमें या ओषदीकृत होकर अम्लमें परिणत हो जाते हैं। पिपीलिक मद्यानाद्र तो पिपीलिकाम्लमें परिणत होकर जल एवं कर्ब द्विओषिद उत्पन्न करता है परन्तु सिरकमद्यानाद्र सिरकाम्ल हो में परिणत होकर भली भांति स्थायी और हानिहीन हो जाता है। उदश्यामिकाम्लके उदविश्लेषणसे प्रथम पिपीलामिद उत्पन्न होता है और यह शीघ्र ही कर्बन द्विओषिद, अमोनिया तथा जलमें परिणत हो जाता है—इस प्रकार

उ क नो → उ क ओ नो उ$_2$ → क ओ$_2$ + नो उ$_3$ + उ$_2$ ओ

सभी श्यामिद उपयोगी एवम् तीव्र ओषधि होते हैं। परन्तु अधिक मात्रामें प्रयोग करनेसे शरीर उनके विषैले प्रभावसे पहिले ही मर जाता है और उसको इतना अवकाश नहीं मिलता कि वह उनको हानिहीन और उपयोगी वस्तुओंमें परिणत कर सके। अग्रील एवम् नवनीत-मद्यानाद्र हानिरहित अम्लोंमें परिणत न होकर मद्य उत्पन्न करते हैं। वह भी हानिरहित ही होते हैं, केवल कुछ निद्रक (Narcotic) प्रभाव उनमें होता है। जितना ही कोई मद्यानाद्र अनघुल होगा उतनाही उसका अवकरण अधिक होगा और जितना ही वह उड़नशील होगा उतनाही उसका ओषदीकरण अधिक होगा। कुछ न कुछ ओषदीकरण नवनीत मद्यानाद्र तक होता है, इसके बाद बलिकमद्यानाद्र लगभग पूर्ण मात्रामें ही अवकृत होकर सम केलील मद्य उत्पन्न करता है और इसका बहिष्कार इसके गन्धोनिक सम्मेल रूपमें मधुरोनिकाम्लके साथ साथ हो जाता है। गन्धकाम्ल अएडसिनों अथवा प्रत्यमिनोंमें विद्यमान गन्धकके ओषदीकरणसे प्राप्त होता है। बानजावोल, द्विग्योल अथवा नोलिन् इत्यादि का बहिष्कार बड़ा ही मनोरंजक है। बानजावोल ओषदीकृत होकर द्विग्योल बनाती है और यह गन्धोनिक सम्मेल के रूपसे बाहर निकल जाता है परन्तु अधिक मात्रामें यह पूर्ण रूप से ओषदीकृत हो जाता है।

नीलिन् मधुरोनिकाम्ल या अमिनो सिरकाम्लसे सम्मिलित हो जाती है। कभी कभी यह द्राक्षोजसे भी सम्मिलित होकर अवकृत हो जाती है और प्राप्त यौगिकका अन्तिम कर्बन परमाणु फिर ओषदीकृत हो जाता है। इस प्रकार इसका मधुरोनिकाम्लके नीलिन् यौगिक रूपमें वहिष्कार हो जाता है। सूत्र रूप में यह क्रिया इस प्रकार होगी—

नो उ₂ ओ क उ. (क उ ओ उ)₄ क उ₂ ओ उ
नीलिन् + द्राक्षोज → नो = क उ. (क उ. ओ उ)₄. क उ₂. ओ उ.

↓ अवकरण

नो उ. क उ₂ (क उ ओ उ)₄ क ओ ओ उ ← ओषदीकरण — नो उ – क उ₂ – (क उ. ओ उ.)₄ क उ₂ ओ उ.

मधुरोनिकाम्ल नीलिनयौगिक

ओ क उ – (क उ. ओ उ)₄ – क ओ ओ उ.
मधुरोनिकाम्ल
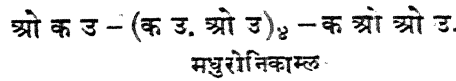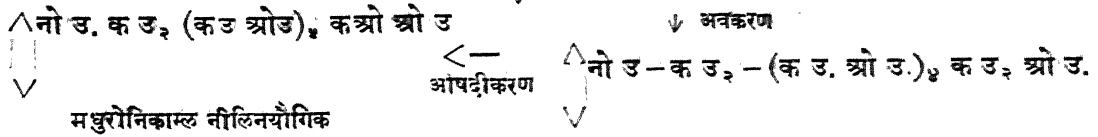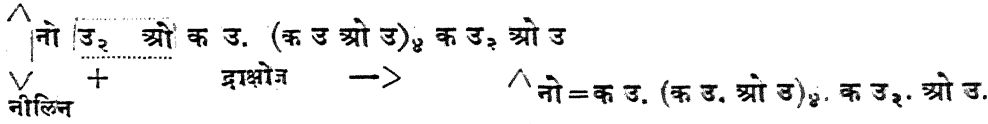
नीलिन् न्यूनांश पर-अमिन-दिव्योलमें परिणत होकर उसके गन्धोनिक सम्मेल रूपमें भी विसर्जित होता है। हरल (chloral) का न्यूनांश तो त्रिहरो-सिरकाम्लमें ओषदीकृत होकर उसके सैन्धक लवणमें परिणत हो जाता है परन्तु अधिकांश अवकृत होकर अनुसारिक मद्य उत्पन्न करता है जो मधुरोनिकाम्लसे सम्मिलित होकर विसर्जित हो जाता है। इस प्रकार सूत्र रूपमें—

(ह)₃ — क – क उ ओ → (ह)₃ — क – क उ₂ – ओ उ + उ ओ / उ ओ > क उ. (क उ. ओ उ)₄ क ओ ओ उ

↓

ह₃क – क उ₂ – ओ क उ – (क उ. ओ उ)₄ – क ओ ओ उ.
| ओ उ
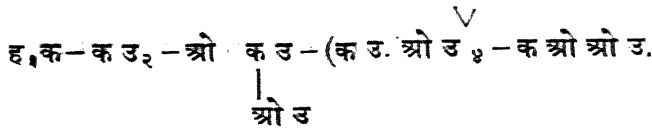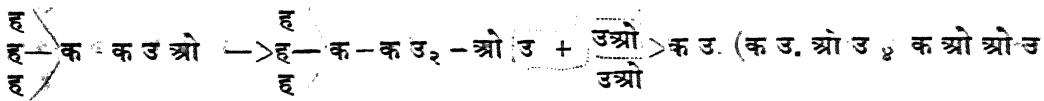
बानजावीन यौगिकमें यदि कोई नोषेत मूल होता है तो वह बहुधा अवकृत होकर नीलिन् देता है और यह नीलिन् उपर्युक्त विधिसे विसर्जित हो जाती है। नीलिन् विषैली होती है, इस कारण इसकी उत्पत्तिकी सम्भावना कम होती है। प्रायः शिथिल माध्यममें अवकृत होनेसे दिव्यौल उदौषिलामिन उत्पन्न होता है और इसमें समरूपक परिवर्तन हो जानेसे पर-अमिनदिव्योल बनता है। पर-अमिन-दिव्योलका बनना भली भाँति सिद्ध हो चुका है। किसीको भी नोषबानजावीन देनेके दो घंटेके पश्चात् उसके मूत्रमें इस यौगिककी विद्यमानता देखी जा सकती है। उच्चतर नोष यौगिकोंमें, जैसे कि प्रबलिकाम्ल (Picric acid) नोष-पर-अमिन-दिव्योल बनते हैं, और फिर इनका गन्धोनिक सम्मेल रूप में विसर्जन हो जाता है। इसी प्रकार द्विनोष यौगिकोंमें भी केवल एक ही

नोषेत-मूल अमिनो मूलमें अवकृत होता है। नोष मद्यानाद्र्के परिवर्त्तनसे नोष-कर्बोषिल-अम्ल बनता है और फिर उसके अवकरणसे अमिनो कर्बोषिल-अम्ल बनते हैं। इनका इसी रूप में विसर्जन भी हो जाता है क्योंकि अमिनो मूलका विषैलापन कर्बोषिल मूलसे दब जाता है। मध्य-एवम् पर-नोष बानजावोनसे भी अमिनो बानजा-विकाम्ल बनता है और फिर यह मधुरोनिकाम्ल-के साथ सम्मिलित होकर बाहर निकल जाता है। तृतीय नोषजन अणुको रखने वाले क्षारोद प्रयोग-शालामें किसीसे भी संयुक्त नहीं किए जा सकते। गन्धोनकरणके निमित्त, पिरीदिन और इसी प्रकार-के अन्य यौगिकको धूम्रित गन्धकाम्लके साथ ३०० श पर ८ घंटेसे अधिक तक तपाना पड़ता है परन्तु शरीरके अन्दर केवल तीन ही घंटेमें ख-पिरीदिन गन्धोनिक अम्लका सैन्धक लवण विसर्जित होने लगता है। अर्फामिकाम में दारोषिल एवम् उदौषिल मूल तथा नोषजन अणु इस प्रकार प्रबन्धित रहते हैं—

नो —ओ उ
ओ क उ$_3$
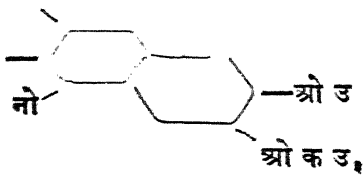
और इसी कारण इसका शारीरिक प्रभाव अति तीव्र होता है और यह स्वयम् भी तीव्र विष होता है। यह भी शरीरमें प्रवेश होनेके दो ही घंटेमें गन्धोनिक अम्लमें परिणत हो जाता है।

बहुतसे ओषधि-रस ऐसे होते हैं जो मनुष्यकी चैतन्यता पर प्रभाव डालते हैं। यह मनुष्यके ज्ञान तन्तुओंको इस प्रकार प्रभावित कर देते हैं कि वह अपने अपने कार्य्य करनेमें शिथिल पड़ जाते हैं। कोई भी बाहरी कार्य्य होता रहे उसका ज्ञान मनुष्य-के मस्तिष्क तक पहुँच ही न सकेगा। ऐसे रसों को निद्रक (Narcotic) कहते हैं। इन्हींमेंसे एक विभागको सम्मूर्च्छक (Hypnotic) कहते हैं। सम्मूर्च्छकोंमें ही एक संविभाग सुसुप्तकोंका है। यह ऐसे रस होते हैं जिनके प्रयोगसे मनुष्यको नींद आने लगती है। इनका कोई और हानिकारक प्रभाव शरीर पर नहीं होता। भंगनिद्राके रोगियोंके लिए यह एक अत्यन्त ही उपयोगी ओषधियोंका समूह है। भङ्गनिद्राके रोग ने भी अभी हाल हीमें संसारमें जन्म लिया है और बहुधा महा-पुरुषोंको पीड़ित करता है जिनको दिन रात घोर विचारोंमें ग्रसित रहना पड़ता है या अन्य किसी प्रकारका बहुत कुछ काम लगा रहता है और उसकी फिक्र एवम् सोच उनका नहीं छोड़ता। मद्यसे सहायता अवश्य मिलती है परन्तु ओषधि रूप प्रयोग करनेसे धीरे धीरे उसकी आदत पड़जाती है, और इसीसे बड़े लोगोंको इससे अरुचि है। अन्य अनेकानेक संवेदनानाशक भी जो कम उड़ायी होते हैं इस रोगमें दिये जा सकते हैं। उदाहरणतः हरल बहुधा आर्द्र रूपमें, एवम् सिरकम और पर-सिरकम-का प्रयोग होता है। परन्तु इनसे पाचन प्रणाली-में सनसनी मचने लगती है और इसी कारण अन्य रस सिरकोन एवम् हराद्रिनसे स्फटित्रिहरिद्-की विद्यमानतामें लिप्तीकरण से तैयार किए गए हैं। इस प्रकार उत्पन्न पदार्थको हरातोन (Chlore-tone) कहते हैं और यह अत्यन्त ही उपयोगी वस्तु है। सिरकोनके स्थानमें उससे उच्चतर कीतोन प्रयोग करनेसे भी प्राप्त रस बड़े ही कार्य्य कुशल होते हैं और इन्हींमें केलातोन भी है। यह ज्वली कोन—दारोल अग्नील कीतोन—को हराद्रिनके साथ लिप्तीकरणसे प्राप्त होता है। इस प्रकार—

$$\begin{matrix} कउ_3 \\ कउ_3 \end{matrix} > क ओ + उ क ह_3 \longrightarrow \begin{matrix} कउ_3 \\ कउ_3 \end{matrix} > क - कह_3$$

ओ उ (on क)

हरीतोन

$$\begin{matrix} क_2उ_5 \\ क उ_3 \end{matrix} > क — क ह_3$$

ओ उ (on क)

केलीतोन
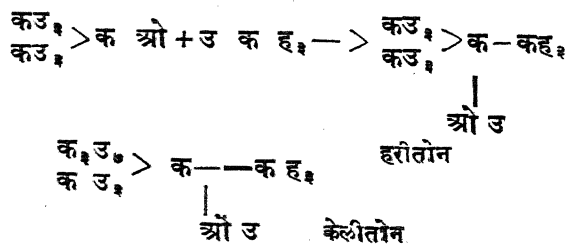
उपर्युक्त रसोंसे तीव्र रस सम्मूर्च्छकोंका कार्य्य करते हैं। उनके द्वारा आवाहित निद्रा इतनी घोर होती है कि उस दशामें मनुष्यको स्वयम् अपना ज्ञान नहीं रहता। उसको काटो तो भी उसे कुछ पता न होगा। ऐसे रसोंका शल्य-चिकित्सामें बहुत ही प्रयोग होता है। इनका सर्व प्रथम अन्वेषण १८४६ ई० में हुआ था जब कि सिम्पसन साहेब ने अपनी माताके अत्यन्त आग्रह पर उसकी प्रसवपीड़ाके मारणार्थ कोई यौगिक खोजते खोजते हरीद्रिनमें इच्छित गुण पाए थे। तत्पश्चात् कर्बनके सभी हरिद्-स्थापित-यौगिकोंमें यह गुण पाया गया और उनकी शक्ति भी हरिनकी मात्राके ही अनुसार होती है। इस गुणानुसार कर्बनचतुर्हरिद अत्यन्त ही तीव्र होता है पर वह विषैला भी सबसे अधिक है। त्रिहरिद—हरीद्रिन अर्थात् हरोपिपील ही—सर्व प्रकार सर्वोत्तम है।

इनके अतिरिक्त बहुतसे रस ऐसे होते हैं जो शरीरके किसी भी भाग पर लगा देनेसे अथवा सुइयों द्वारा प्रविष्ट कर देनेसे केवल उसी भागको ज्ञान शून्य कर देते हैं। इनका प्रभाव केवल शरीर के पृष्ठ पर स्थित ज्ञान तंतुओं पर ही होता है और वह निश्चेष्ट हो जाते हैं। इस भागको चाहे काटो, चाहे कुछ करो, पीड़ाका ज्ञान मनुष्यको नहीं होगा। इनका भी प्रयोग शल्य चिकित्सामें बहुत होता है। इनको स्थानिक संवेदनानाशक कहते हैं।

एक भिन्न ही प्रकारके ओषधि रस ऐसे होते हैं जो उपर्युक्त दोनों ही काम साधते हैं। उनका कुछ अंश तो शरीरमें प्रवेश कर जाता है और वे समस्त ज्ञान कोष पर प्रभाव डालकर एक प्रकारकी निद्रा में डाल देते हैं जिससे यद्यपि मनुष्य जागता रहता है और देखता रहता है फिर भी फिर अपने शरीरको चलाने फिरानेमें अशक्त होता है। रसका अधिकांश उसी स्थान पर प्रभाव डालता है जहां पर कि प्रविष्ट किया गया है और पृष्ठ पर स्थित तन्तुओंको निश्चेष्ट करके वहांकी पीड़ा इत्यादिका ज्ञान मनुष्यको नहीं होने देता। इस प्रकार शल्य-चिकित्सामें यह ओषधियां बड़े ही कामकी हैं। इनका प्रचार हुए अभी पांच छः ही वर्ष हुए होंगे और ये आधुनिक रसायनकी कला कौशलका प्रमाण हैं। इनको अर्धसंवेदनानाशक कहते हैं।

एक भिन्न ही श्रेणीके यौगिकोंका भी प्रयोग सुसुप्तकोंकी (Saporific) भांति होता है। इनमें गन्धककी विद्यमानता विशिष्ट है। सिरकोनको हरीद्रिनके स्थानमें ज्वलील पारदसे लिप्तीकृत करते हैं और प्राप्त पदार्थको पांशुज परमांगनेत द्वारा ओषदीकृत करनेसे गन्धोनल (Sulphonal) प्राप्त करते हैं। इसमें सुसुप्तक गुण बड़ा ही तीव्र होता है और वस्तुतः इन यौगिकोंमें ज्वलील मूल ही इस गुणके अधिकारी हैं क्योंकि यदि इन मूलोंको दारील मूलसे स्थापित करदें तो उत्पन्न पदार्थमें मूर्च्छक प्रभाव लेश मात्र भी नहीं रह जाता। इसके विपरीत यदि दारील मूलोंको ज्वलील मूलोंसे स्थापित किया जावे तो यौगिककी शक्ति बढ़ जाती है। यदि एक ही दारील मूलको स्थापित करें तो त्रिओनल (Trional) उत्पन्न होता है और यदि दोनों ही इस प्रकार स्थापित कर दिए जावें तो चतुरोनल (Tetronal) प्राप्त होता है और इसमें अत्यन्त ही मूर्च्छक शक्ति होती है इस प्रकार :—

$$\begin{matrix}\text{क उ}_{\text{३}}\\ \text{क उ}_{\text{३}}\end{matrix} > \text{क} \begin{matrix}\text{ओ}\end{matrix} \begin{matrix}\text{उ ग} - \text{क}_{\text{२}}\text{उ}_{\text{५}}\\ \text{उ ग} - \text{क}_{\text{२}}\text{उ}_{\text{५}}\end{matrix} \longrightarrow \begin{matrix}\text{क उ}_{\text{३}}\\ \text{क उ}_{\text{३}}\end{matrix} > \text{क} < \begin{matrix}\text{ग क}_{\text{२}}\text{उ}_{\text{५}}\\ \text{ग क}_{\text{२}}\text{उ}_{\text{५}}\end{matrix} \longrightarrow \begin{matrix}\text{क उ}_{\text{३}}\\ \text{क उ}_{\text{३}}\end{matrix} > \text{क} < \begin{matrix}\text{ओ ग क}_{\text{२}}\text{उ}_{\text{५}}\\ \text{ओ ग क}_{\text{२}}\text{उ}_{\text{५}}\end{matrix}$$

गन्धोनल

$$\begin{matrix}\text{क उ}_{\text{३}}\\ \text{क}_{\text{२}}\text{उ}_{\text{५}}\end{matrix} > \text{क} < \begin{matrix}\text{ओ ग क}_{\text{२}}\text{उ}_{\text{५}}\\ \text{ओ ग क}_{\text{२}}\text{उ}_{\text{५}}\end{matrix}$$

त्रिओनल

$$\begin{matrix}\text{क}_{\text{२}}\text{उ}_{\text{५}}\\ \text{क}_{\text{२}}\text{उ}_{\text{५}}\end{matrix} > \text{क} < \begin{matrix}\text{ओ ग क}_{\text{२}}\text{उ}_{\text{५}}\\ \text{ओ ग क}_{\text{२}}\text{उ}_{\text{५}}\end{matrix}$$

चतुरोनल
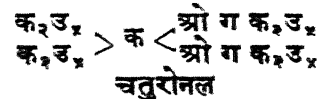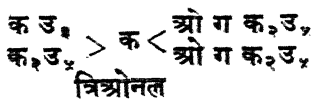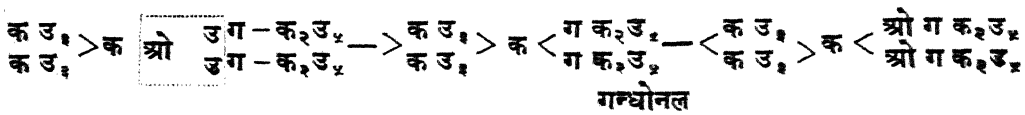
इससे भी विभिन्न यौगिकोंकी एक श्रेणी होती है जिसमें गन्धकके स्थानमें नोषजन होता है। वे मूत्रिश्राके सम्बन्धीजन होते हैं। उदाहरणतः सेवोनीलमूत्रिया (वारबित्रिकाम्ल) में बड़ा ही सुन्दर सुसुप्तक प्रभाव होता है। इसमें यदि क उ$_2$ < में से उ को किसी ज्वलील मूलसे स्थापित कर दें तो यौगिकका प्रभाव बहुत ही बढ़ जाता है। इस प्रकार ज्वलील सेवोनीलमूत्रिया एवम् द्विज्वलील सेवोनील मूत्रियाओंका प्रभाव अत्यन्त ही तीव्र होता है। अन्तिमका तो अत्यन्त ही शक्ति शाली होता है। सूत्ररूप इस प्रकार—

क उ$_2$ < (क ओ—नोउ / क ओ—नोउ) > क ओ

सेवोनील मूत्रिया

क$_2$ उ$_5$—कउ < (क ओ—नोउ / क ओ—नोउ) > क ओ

ज्वलील सेवोनील मूत्रिया

(एकोसुप्तल)

(क$_2$ उ$_5$ / क$_2$ उ$_5$) > क < (क ओ – नो उ / क ओ – नो उ) > क ओ

द्विज्वलील सेवोनील मूत्रिया

(बहुसुप्तल, veronal)

मूत्र-ज्वलन (Urethane) सम्बन्धी जन भी इस प्रभावसे युक्त होते हैं। उदाहरणतः नो उ$_2$ क ओ-ओ क$_2$ उ$_5$ में नो उ$_2$—क उ को मद्यमज्जिक यौगिकोंसे स्थापित करनेसे अन्यान्य यौगिक प्राप्त होते हैं। और इस संस्थापनके साथ साथ शक्ति भी बढ़ती जाती है। इसका केलील यौगिक तो विशेष प्रकारसे इस प्रभावका अधिकारी है और इसे मूर्च्छोनल (Hedonal) कहते हैं। इस प्रकार :—

(क$_2$ उ$_5$ / क$_2$ उ$_5$) > क उ ओ उ + उ नो उ क ओ ओ उ—> (क$_2$ उ$_5$ / क$_2$ उ$_5$) > क उ – नो उ – क (= ओ / – ओ उ)

मूर्च्छोनल

आधुनिक चिकित्साशास्त्रका एक आश्चर्य्ययुक्त चमत्कार सूची-चिकित्सा (Injections) का है। इसमें रस सुई द्वारा सीधा रक्तमें अथवा और किसी स्थानमें जहां उसकी आवश्यकता हो प्रविष्ट कर दिया जाता है और रस क्षणमात्र हीमें अपना प्रभाव प्रदर्शित करने लगता है। जब कभी रोगीकी दशा अत्यन्त ही शोचनीय हो जाती है अथवा जब धीरे धीरे रोगसे युद्ध करनेमें सफलता प्राप्त होती नहीं दिखलाई पड़ती तब सुइयोंकी शरणमें जाना पड़ता है। इसका प्रभाव बड़ा ही तात्कालिक होता है और बड़े बड़े भयंकर रोग इसी शस्त्र द्वारा युद्धमें पराजित किए जा सकते हैं। परन्तु यह शस्त्र भी अभी अत्यन्त ही सफलता पूर्ण एवम् कार्य्य कुशल नहीं हो पाया है। बहुधा यह सभी रस जो इस प्रकार प्रयोगमें आते हैं अत्यन्त ही तीव्र विष होते हैं जैसे कि सालवर्सन तथा नव-सालवर्सन जो गर्मीके रोगमें प्रयोग किये किए जाते हैं, केवल संखियाके ही भिन्न भिन्न रूप हैं। यही नहीं वरन् ऐसे सब रस होंगे भी विष ही क्योंकि विषोंमें केवल यही विशेषता होती है कि उनका प्रभाव बड़ा ही तीव्र होता है और जिन रसोंका प्रभाव बड़ा ही तीव्र होगा वही इस चिकित्सामें प्रयोग किए जा सकेंगे। यह विष कभी न कभी अपना प्रभाव अवश्य दिखलाते हैं। एक तो यदि सूचियोंका प्रयोग किसी अशुद्ध रोगमें अथवा अयोग्य दशामें हो गया तो शरीरको बड़ी भारी हानि अवश्य ही पहुँचेगी। गर्मीके रोगमें ही उपर्युक्त रसोंको भलीभांति प्रयोग न करनेसे

मनुष्य अंधे हो जाते हैं। इसी भांति सभी ऐसे रसों-में, उनके सुख पहुँचाने की सम्भावनाके साथ साथ दुःख सम्भावना भी मिली हुई है और यह एक अच्छा गुण नहीं है। फिर यह सब विष एक ऐसे समुदाय के विषोंमेंसे होते हैं जो शरीरमेंसे किसी प्रकार भी विसर्जित नहीं होते। वह शनैः शनैः शरीरमें जमा होते रहते हैं और जब यह मात्रा मारक-मात्राके बराबर हो जाती है तो मनुष्य उसके विषसे-मर जाता है। इस प्रकार सालवर्सन तथा नव साल-वर्सन गर्मीके रोगीको जितना भी दिया जाता है इकट्ठा होता रहता है और यद्यपि रोगी छः ही बार के सूचियोंके प्रयोगसे अपने रोगसे मुक्त हो जाता है तथापि वह इन छः ही बारके एकत्रित विषसे अपनी मृत्युको प्राप्त हो जाता है। यह भी कोई बहुत ही बड़ा लाभ प्रतीत नहीं होता। यद्यपि रोग ग्रसित होकर जीवित रहनेसे नीरोग होकर मर जाना अच्छा समझा जा सकता है परन्तु फिर भी यह व्यापार मुझे बहुत कुछ लाभप्रद प्रतीत नहीं होता और विशेष कर जब विष खाकर मरना पड़ता है। यदि मरना ही है तो रोगग्रसित दशा हीमें विष खा कर मृत्युकी शरणमें जा सकते हो। व्यर्थ हीडाक्टरों-को धन लुटाने और स्वयम् भी कष्ट उठाने एवम् अपने सम्बन्धी जनोंको कष्ट देनेसे कुछ लाभ नहीं।

एड्रिनैलिन अवश्य ही आधुनिक चिकित्सा शास्त्रकी एक चमत्कारिक सफलता है और विशेष कर सूची-चिकित्सा की। यह गाय बैलकी मूत्र-ग्रन्थियोंकी ही निकटवर्ती ग्रन्थियोंमेंसे उपलब्ध किया जाता है। शरीरमें प्रवेश करते ही यह रक्त प्रवाहको अति तीव्र कर देता है और इस कारण यदि कभी रक्त प्रवाह बन्द भी हो जावे तो भी इसके सूची द्वारा प्रविष्ट करनेसे वह पुनर्निवारित किया जा सकता है। इस प्रकार ऐसे मरे हुए मनुष्य जिनका कोई अंग अथवा ग्रन्थि और अन्य कोई प्रभावशाली कोषका सड़ना उनकी मृत्युका कारण नहीं है, इसके प्रयोगसे फिर संजीवित किये जा सकते हैं। बहुधा देखा गया है कि बड़े बड़े धनी मनुष्य अथवा अन्य महान् पुरुष कभी रोगसे निर्धनोंकी तरह सड़ कर नहीं मरते। उनकी मृत्युका कारण हृदयकी रुकावटका बन्द हो जाना होता है। ऐसी अवस्थामें वह मनुष्य जो अपनी पूर्ण जीर्णावस्थाको नहीं पहुँच गए हैं एक कम शतप्रति शत संजीवित किए जा सकते हैं। यद्यपि यह चिकि-त्सा अभी भारतवर्षमें नहीं आई है, इसका प्रचार पाश्चात्य देशोंमें बहुत होने लगा है। जीनेके बाद आदमी दीर्घ काल तक तो जीवित नहीं रहे हैं। परन्तु उनको मरनेके बाद ५-६ घंटों, दिनों और कभी कभी सप्ताहों तकके लिए तो भली भाँति जीवनी दी जा सकती है। इसका लाभ भी कुछ कम नहीं है। कभी कभी मनुष्योंको मरनेसे पहिले अनेकानेक छिपे हुए धन बतलाने रहते हैं, कभी कभी किसीको अपनी धन सम्पत्तिका अपने मरनेके बादका प्रबन्ध तक बतलानेका अवसर नहीं मिलता और कभी कभी अनेक अभियोगोंमें मृतक मनुष्यसे अत्यन्त ही आवश्यक बातें निकालनी रह जाती हैं। ऐसे अवसरों पर घंटों क्या मिनटों तक-का मूल्य अनुमान नहीं किया जा सकता है और एड्रिनैलिन न जाने कितने धन्यवादका पात्र बनती होगी। कहा जाता है कि एक पाश्चात्य देशका लड़का नौ बार समय समय पर हृदय गतिकी ही रुकावटसे मरा। वह प्रत्येक बार संजीवित किया गया और अब भी जीवित है।

एड्रिनैलिनका एक महान् गुण तो यह है कि वह विषैली नहीं है। सम्भव है कि कुछ ही समयमें इसका प्रयोग मृतक मनुष्योंको दीर्घ काल तक जीवन प्रदान करनेमें सफल हो। ऐसी वस्तुओंके निकलनेसे आशा होती है कि आधुनिक रसायन अवश्य ही कुछ समयमें चिकित्सा जगतमें बड़ा गौरवका पात्र होगा और चिकित्सा शास्त्रको भी जो रसायन ही पर निर्धारित है सभी प्राचीन विधियोंसे सर्वोच्च सुन्दर होनेका सौभाग्य प्राप्त हो सकेगा।

जेकॉब हर्नीकस वाण्टहाफ

(Jacobus Hernicus Van't Hoff)

[लेखक श्री वा० वि० भागवत, एम० एस-सी०]

भौतिक रसायनशास्त्रमें कोई ऐसी जगह नहीं है कि जहां वाण्टहाफका नाम न हो। आप कार्बनिक रसायनकी किताब खोलिये, आपको वहां भी वाण्टहाफका नाम मिलेगा। वाण्टहाफने रसायनमें और विशेषतः भौतिक रसायनमें इतना महत्वपूर्ण काम किया है कि आज तक इतना काम बहुत कम ने किया होगा। अकार्बनिक रसायन शास्त्र जैसे लवाशियेके नामसे आरम्भ होता है वैसे ही भौतिक रसायन, आरहीनियस, ओस्वाल्ड और वाण्टहाफके नामसे शुरू होता है और इनमें भी वाण्टहाफ प्रमुख हैं। वाण्टहाफने इस जगत्में जितना मान पाया उतना किसीने भी नहीं पाया। उसकी बुद्धिमत्ता केवल अलौकिक थी।

आपके पास दो पदार्थ हैं। वह एक ही तत्त्वोंसे बने हुए हैं। इनमेंके तत्वोंका परिमाणभी वही है। उनका रसायनिक गुण धर्म भी एक ही है। लेकिन एककी दिग्प्रधानता दहिनी ओर है तो दूसरेकी बायीं ओर। बताइये कि इन पदार्थोंके अणुकी रचना कैसी होनी चाहिये? इनका रचनासूत्र किस तरहसे दिखाया जाय? यह प्रश्न पास्ट्यूरको इमलिकाम्लके समय तथा विसंलीसेनस(Wislicenus) को दुग्धिकाम्लके बारेमें उपस्थित हुआ। कागजके ऊपर यानी दो दिशाओंमें इनकी रचना बनाकर कुछ भेद, मालूम नहीं होता। यह बातें इनके ध्यानमें आयीं और यह भी इन्होंने सूचित किया, कि यह सूत्र रचना तीन दिशाओंमें बतलानी आवश्यक है लेकिन यह रचना तीन दिशाओंमें किस तरह बतलाई जा सकती है यह बात ये न बता सके। इस बातका पता २२ बरसके वाण्टहाफ ने उत्कृष्टताके साथ लगाया। उसने यह कहा कि कर्बनका परमाणु टेट्राहैड्रनके मध्य बिंदु पर स्थित समझा जाय। यही विचार अवकाश-रसायन (Stereochemistry) का द्वार खोलनेमें काममें आये। वाण्टहाफके रासायनिक गत्यात्मक शास्त्रने रसायन शास्त्रको गणित शास्त्रके ऊपर निर्भर कर दिया। इसी शास्त्रकी सहायतासे आज हम रासायनिक क्रिया क्यों होती है? कब बंद होगी? उसका परिवर्तन किस प्रकारसे होगा? इन सब बातोंका कारण ठीक तरह मालूम कर सकते हैं।

जेकॉब हर्नीकस वाण्टहाफका जन्म रोटरडम्में १८५२ के अगस्तमें एक उच्च कुलमें हुआ। उनके पिता अलिडा जेकॉब वैद्यकका धंधा करते थे और वाण्टहाफके जन्मके थोड़े ही दिन पहिले सोमेल्सडीक (Sommelsdigk) गांव छोड़के रोटरडम्को आये थे। वाण्टहाफका बचपन बहुत आनन्दमें व्यतीत हुआ। जब छुट्टी न होती तब वे किंडरगार्टनमें पढ़ा करते थे और छुट्टीके दिनमें अपने आजेके पास मिडेलहर्निस (Middeharnus) को जाया करते थे। कुछ दिनके बाद उसको प्राथमिक पाठशालामें भर्ती कर दिया गया। उसके बाद उनको 'हुगरे बर्गर स्कूल' में दाखिल किया गया। यहां पर इन्हों ने प्रथम पारितोषिक पाये। रसायन शास्त्रका परिचय उनको प्रथमतः माध्यमिक शालामें हुआ। उनकी काचकी नली, और बोतलें, रसायनिक द्रव्योंसे हमेशा भरी रहतीं थीं और वे कक्षामें किये हुये प्रयोग फिर घर आकर करते थे। कोई उनके यह प्रयोग देखना चाहे तो वे उससे दावत लेते थे और दावत देके देखने वाले उनके कई मित्र तथा रिश्तेवाले थे।

सन् १८६६ ईसवीमें १७वें वर्ष उन्होंने लिडन (Leyden) विश्वविद्यालयसे मैट्रिक्युलेशनकी परीक्षा पासकी और गणित तथा यांत्रिक शास्त्रमें बहुत ही अच्छा यश प्राप्त किया। भौतिक विज्ञानमें वे अच्छे रहे और इतर विषयमें उनको सर्वसाधारण मार्क मिले। वाण्टहाफ को स्वयं कलाशास्त्र और भाषाशास्त्रका अधिक शौक था। मैट्रि-

क्युलेशन पास करने के बाद जब 'अब क्या करना चाहिये ?' यह प्रश्न उपस्थित हुआ तो उन्होंने भाषा-शास्त्रके प्रति इच्छा प्रकटकी। लेकिन उनके माँ बाप की राय और थी। वे चाहते थे कि उनका लड़का बड़ा भारी इञ्जीनियर होवे। इस कारण उन्होंने वाण्टहाफ को 'डेल्फ्ट पालीटेक्निक स्कूल' (Delft Polytechnic School) में भेज दिया। वहां दो बरस उन्होंने बड़ा परिश्रम किया और बहुत अच्छी तरहसे अध्ययन किया। सन् १७७१ में आप 'ग्रेजुएट' हो गये। उसके बाद उन्होंने अपनी गर्मीके दिनोंकी छुट्टी एक शक्करके कारखानेमें बिताई। इस छुट्टीमें आप वहां ही काम करते रहे। यहां उनको अपना इञ्जीनियरिङ्ग का काम बहुत ही गम्भीर तथा कष्टदायक मालुम हुआ और सोचा कि इस तरहसे आयु खोनेमें क्या मज़ा है। बस उन्होंने एकदम यह निश्चय किया कि इस कामको मैं फिर हरागज़ न करूंगा। इसकी एक और भी बात थी ग्रेजुएट होनेके वक्त वह औडेमनके (Oudeman) रसायनशास्त्रमें व्याख्यान सुना करते थे। औडेमन-का व्याख्यान देनेका और विषय समझानेका तरीक़ा कुछ और था। वाण्टहाफ पर उसका बहुत ही अच्छा प्रभाव हुआ। रसायनशास्त्रकी जिज्ञासा उनमें उत्पन्न हो गई और उसी समय से इञ्जीनियरिङ्गसे उनका दिल उठ गया।

उसके बाद उन्होंने लिडन युनिवर्सिटीमें गणित शास्त्रका अध्ययन करना शुरू किया। इस वक्त रसायनशास्त्र गणितके ऊपर निर्भर नहीं था। बहुत सी बातें कोरी मालुम थीं लेकिन उसका कारण पूर्ण विचारसे अभी तक किसी ने नहीं समझाया था। वाण्टहाफकी इच्छा थी कि यह सब बातें किसी एक सूत्रमें लाई जायँ और इसीलिये उन्होंने गणितशास्त्रका विशेष अध्ययन किया। गणितशास्त्रके अध्ययन करनेके बाद वे जर्मनीमें केक्यूलेके पास बान (Bonn) को गये। केक्युले कार्बनिक रसायन शास्त्रका बड़ा भारी शास्त्रज्ञ समझा जाता था। इसने बानजावीनके सूत्रके विषयमें विशेष ख्याति प्राप्तकी थी। केक्युलेके साथ उन्होंने बहुत परिश्रमसे काम किया। इनके हृदयमें कभी कभी कविता करनेकी भी लहर उठती थी। इनकी कवि 'बायरन' के प्रति अत्यन्त भक्ति थी। जब वह केक्युलेकी प्रयोगशालामें काम करते थे तब एक महिलाने जो वहां काम करती थी—आत्महत्याकी। बस वाण्टहाफ ने उसीके ऊपर एक काव्य लिखा। लेकिन उनके साथियों ने उनके काव्यकी प्रशंसा न की और इसी सबबसे उन्होंने निराश होकर काव्यको छोड़कर अपना ध्यान फिरसे केक्युलेकी तरफ लगाया। यहां पर वलक (Wallach) से, जिसका तारपीन और कर्पूरके यौगिकोंका कार्य सर्वजगत्को विदित है, उसकी जानपहिचान हो गई। वलक केक्युलेका सहयोगी था। वाण्टहाफ ने यहां पर दो बरस काम किया और यह सब क्रमिक अध्ययन था। फिर वे फ्रान्समें वुर्ट्ज़ (Wurtz) के पास पढ़नेके लिये गये। यहां पर इनका 'ली-बेल' से परिचय हुआ इसी ली-बेल ने भी असमसंगतिक कर्बन परमाणुका सिद्धान्त—जो वाण्टहाफ ने निकाला था—स्वयं ही मालुम कर लिया। लेकिन जबतक वे एक जगह थे तबतक उनकी जान पहिचान तक न हुई। पैरिसमें वुर्ट्ज़की प्रयोगशालामें छः महीने काम करनेके बाद वे उट्रेच्ट (Utracht) को आचार्य की पदवीके लिये लौट आये। उन्होंने श्याम-सिर-काम्ल या सेबोनिकाम्लके बारेमें अपना थीसिस दिया और उनको १८७४ में आचार्यकी पदवी प्रदानकी गयी। इसके चार ही महीने पहिले उन्होंने अपना 'अवकाशमें परमाणुकी रचना' लेख (Structure of atom in space) प्रकाशित किया था। इस ११ पन्नेके लेख ने अवकाशकी सम-रूपता (स्टीरिओआयसोमेरिज़्म) को जन्म दिया। लेकिन इस लेखका प्रचार कुछ अधिक न होनेसे यह फ्रेंच भाषामें फिरसे छपाया गया। इसी समय यही बात 'ली बेल' ने स्वतंत्रतया निकाली और इस बारेमें उसने फ्रेंच केमिकल

सोसाइटीमें एक व्याख्यान दिया। इस लेखको पहले तो किसी ने नहीं अपनाया। एक बरसके बाद जर्मन कार्बनिक रसायन शास्त्रज्ञ विस्लीसिनस ने (Wisclicenus) इस लेखकी बहुत प्रशंसाकी और उसका जर्मन भाषामें भाषांतर करनेकी आज्ञा वाएटहाफसे ली। लेकिन लिपज़िगके प्रोफेसर कोल्बे ने इस पर कटाक्ष करने आरम्भ कर दिये। वाएटहाफका १८७४ से १८७६ तकका समय बहुत चिन्तामें गया। उनकी राय आस्ट्रेलियाको जानेकी थी लेकिन उनके मा बाप ने उनको रोका और बहुत कुछ समझाया। उनको कहीं नौकरी भी न मिल सकी। वाएटहाफ देखनेमें कृश तथा छोटे क़दका था। इससे वह देखनेमें बालकके समान मालूम होता था। जब वह शिक्षामन्त्रीके पास नौकरीके लिये मिलने गया तब शिक्षा मंत्री ने कहा "तुम बिलकुल लड़केसे मालूम होते हो। लड़कों पर तुम्हारा कुछ रोब न रहेगा।" उन्होंने ट्यूशन क्लास चलाया लेकिन वाएटहाफका दुर्दैव कि इसमें भी उसे यश न मिला, बहुत ही थोड़े लड़के उनके क्लासमें दाखिल हुये। १८७६ से इनके मायाका चक्र फिर फिरा और उट्रेक्टके वेटरनरी शालामें दुय्यम की जगह पर वे नियुक्त हुवे। एक ही बरसके बाद अमस्टरडममें उनको लेक्चरर की जगह मिल गयी। उस वक्त यद्यपि कोल्बेने उनके 'परमाणु रचना' के विषयमें पहले आक्षेप किये थे तो भी इस लेखकी सब जगह प्रशंसा होने लगी। १८७८ में ये सर्वानुमतिसे अमस्टरडममें रसायन शास्त्र के प्रमुख अध्यापक नियुक्त हुए। इस वक्त उनकी उमर २६ बरस की थी। थोड़ेही दिनके बाद उनका विवाह जॉहना फ्रान्सिनासे हुआ। वह एक धनवान व्यापारी की कन्या थी।

अमस्टरडममें मुख्य अध्यापकके काम पर वे १८ बरस तक रहे। १८७६ में इनको जर्मनीने बुलाया, लेकिन अमस्टरडमके लोगोंने उनको न जाने दिया। जर्मनी इससे निराश न हुआ। उसने एक बहुत ही अच्छी जगह देनेका आश्वासन दिया और इस कामके वास्ते लिपजिगसे एक आदमी उनके पास भेजा। जर्मनीके शिक्षा मंत्रीने भी उनको एक आग्रह पूर्ण चिट्ठी लिखी और इसके बाद भी जब उनके आनेके लक्षण न देखे तब प्रसिद्ध कार्बनिक रसायन शास्त्रज्ञ एमिल फिशर को इनको ले आनेके काम पर नियुक्त किया। इतने पर भी वे न आये, क्योंकि जर्मनी में मुख्य अध्यापक होना यद्यपि बड़ा सम्मान है, पर तो भी वहाँ काम अधिक रहता है। मुख्य अध्यापकको एक सप्ताहमें पांच व्याख्यान देने पड़ते हैं और अन्य ज़िम्मेदारीके काम इसको करने पड़ते हैं। यद्यपि वाएटहाफने वहां जाना अस्वीकार किया तो भी जर्मन लोग इससे निराश न हुए। यह जर्मनीका बड़ा भारी सद्गुण है कि वह अच्छे-अच्छे आदमी चाहे विदेशी हो अपने विश्वविद्यालयोंमें नियुक्त करके अपने लोगोंको उच्च शिक्षा दिलानेकी कोशिश करता है। जब जर्मनीने यह देखा कि एक सप्ताहमें पांच लेक्चर बहुत अधिक मालूम होनेके कारण वाएटहाफ नहीं आ रहे हैं तो उन्होंने उसके वास्ते सप्ताहमें एकही लेक्चर देना आवश्यक कर दिया और वह भी अनिवार्य न रखा, अर्थात् चाहे तो सप्ताहमें एक लेक्चर दें या न दें। अब तो वाएटहाफ को मानना ही पड़ा, उसने तुरन्त ही जर्मनीके मुख्य रासायनिक अध्यापककी जगह स्वीकार कर ली। रोज़ रोज़ एकही पाठ पढ़ानेसे वह थक गया था और इसी सबबसे इसके काममें बाधा पड़ती थी लेकिन इस नई जगहने यह सब आपत्ति दूर कर दी। डच लोक उसके जानेसे बहुत नाराज़ हुए और कई वर्तमान पत्रोंने उनके जाने पर टीका की और कार्टून निकाले कि वे बहुत लोभी हैं। तथापि वाएट हाफने उसकी कुछ भी पर्वाह न की। वाएटहाफ को नियुक्त करनेके पहिले उनको बर्लिनमें लेक्चरके वास्ते बुलाया गया था। इस लेक्चर का कारण यह था कि इनकी वक्तृता-शक्तिकी परीक्षा कर ली जाय। व्याख्यानमें जर्मनीके बड़े बड़े विज्ञानवेत्ता उपस्थित थे। भौतिक विज्ञानमें नोबेल प्राइज़ पाने वाले हेलमहोलज़ भी वहां आये हुये थे। इसके

थोड़े ही दिन पहिले हेलमहोल्ज़ने अमेरिकाकी यात्रा की थी और जहाजके डेकसे उतरते समय गिर पड़ने से इनके पांव और हाथमें तथा माथेमें भी चोट आ गयी थी। इससे वे मरते मरते बचे थे। उनका यह पुनर्जन्म ही हुआ था। जब वे लेक्चरको आये तब भी उनमें कमजोरी होनेके कारण एमिल फिशरने उनको उठाकर कुर्सी पर बिठा दिया। दो प्रसिद्ध नोबेल प्राइज पानेवाले शास्त्रज्ञोंके अद्वितीय प्रेमका यह एक किस्सा है। प्रथम वाण्टहाफ को देखकर लोगोंने कुछ भी अच्छी राय न क़ायम की क्योंकि वे देखनेमें दुबले पतले तथा छोटे थे। उनको देखकर कोई यह न कह सकता था कि बड़े भारी रसायन शास्त्रज्ञ यही हैं। बोलते वक्त पहले तो वे ज़रा घबराये लेकिन शीघ्र ही वे अपने विषयमें तल्लीन होगये और उनकी अद्वितीय प्रतिभा तथा ओजस्विता दिखाई पड़ने लगी जिसकी छाप श्रोताओंको कभी भी नहीं भूली। व्याख्यानके बाद वाण्टहाफ की बहुत प्रशंसा की गयी।

जब वाण्टहाफ अमस्टरडममें मुख्य अध्यापक थे तब उन्होंने 'Etude de Dynamique chimique' और 'The Revolution chimique' किताबें लगभग १८८४ में लिखीं। इस समय वे उतने अप्रसिद्ध न थे जितने 'परमाणु रचना' लेखके समय थे। प्रत्युत उनका नाम सब जगह व्यापक हो गया था। इनकी विद्वत्ता सब लोग जानते थे तथा उनकी प्रशंसा भी की जाती थी। ऐसा होने पर भी इन किताबों की अधिक ख्याति न हो सकी। इसका कारण यह है कि इन किताबोंमें जो तत्व लिखे गये हैं उसके समझने योग्य ज्ञानकी अभिवृद्धि जनतामें अभी हुई ही नहीं थी। जैसे कैनिज़रोके सिद्धांत को उसके समय कोईभी न समझ सका लेकिन जब इसके बाद एवोगेड्रोने उसी सिद्धांतको जनताके सामने रक्खा तब उसका महत्व उनको मालुम हुआ। ऐसा ही हाल वाण्टहाफ की इन दोनों किताबोंका है। आज यही किताबें अत्यंत महत्वपूर्ण समझी जाती हैं। किसी भी विषयको समझना या न समझना मानसिक प्रगति पर अवलंबित है। आज ही आइन्सटाइनका सापेक्षवाद जगतमें कुछ थोड़े ही लोग अच्छी तरहसे समझ पाये हैं। इन किताबोंका विज्ञापन फ्रेंच भाषामें सब स्थानोंमें किया गया लेकिन इसका कुछ फल न हुआ। सन् १८८५ में स्वान्ते आरहीनियसने उसकी ओर प्रथम ध्यान दिया और उसका महत्व प्रस्थापित करना शुरू किया। कुछ दिनके बाद यही आरहीनियस वाण्ट-हाफके समान एक बड़ा भारी भौतिक शास्त्रज्ञ हो गया। वाण्टहाफने रायल्टका द्रवांकका कम होना और फेफरका निःसरण दबावका पारस्परिक सम्बन्ध बतला दिया। ठोस पदार्थ घोलोंमें वायव्य पदार्थके समान बर्ताव करते हैं, उसका यह नियम अपूर्व है। उसकी यह खोज और आरहीनियसका विद्युत् पृथक्करण सिद्धांत दोनों साथ साथ एक ही समय ओस्टवाल्डके "ज़ाइट शिफ शिमीके" प्रथमांकमें प्रकाशित हुई। ऐसे दो अपूर्व अन्वेषण एकही साथ एक ही अंकमें किसी भी मासिक पत्रिकामें अभी तक प्रकाशित नहीं हुये हैं। जैसे वायव्य पदार्थमें दय=रत सिद्धान्त लगता है वैसे ही यदि घोलोंका निःसरण दबाव निकाला जाय तो वे भी दय = रत सिद्धांतके अनुरूप व्यवहार करते हैं। अर्थात् जैसे वायव्य पदार्थ बायल सिद्धान्त (दय=स) और चार्ल्स सिद्धांतसे चलते हैं वैसे ही इन दोनों सिद्धांतोंके अनुरूप ही घोलोंके ठोस पदार्थोंका बर्ताव होता है। वाण्टहाफ ने यह बात देखी कि विद्युत् विश्लेषणीय पदार्थोंसे कथनांकका बढ़ना तथा द्रवांकका घटना विद्युत् अविश्लेषणीय पदार्थोंसे अधिक होता है और यह जितने गुने अधिक रहता है उसको वाण्टहाफका स्थिरांक (i) कहते हैं।

$$\frac{\text{विद्युत् विश्लेषणीय पदार्थसे कथनांकका बढ़ना या द्रवांक का घटना}}{\text{विद्युत् अविश्लेषणीय पदार्थसे कथनांकका बढ़ना या द्रवांक का घटना}} = \text{स्थिरांक } (i)$$

वाण्टहाफके शिष्योंने भी बड़ी ख्याति प्राप्तकी उनमें व्हन डेहेन्शर, स्प्रिग, आरहीनियस, कोहेन, ब्रे डिग, गोल्डस्मिड, आइकमन, मेयर हाफर, इहान और बैंकाफ्ट प्रमुख हैं।

१८९३ में वाण्टहाफके साथ ली ब्लांक को रायल सोसायटी आफ लंडनने डेवी मेडल प्रदान किया। सन् १८९६ से १९०६ तक उन्होंने करीब करीब पचास पेपर्स लिखे। इस सब समयमें मेयर हाफर उनका साथीदार था। मेयर हाफर उनके साथ अम्स्टरडममें काम करता था। वे जब बर्लिनको आये तब उसको भी वहां ले आये। उसके साथ उन्होंने प्रेरक जीवों (enzymes) के रहस्य जाननेकी कोशिश की। सन् १९०० में वे जर्मन केमिकल सोसायटीके अध्यक्ष चुने गये। १८९० में जब लीड्समें सायन्सकी कांग्रेस हुई तब आरहीनयस और आस्टवाल्डके साथ आप भी वहां उपस्थित थे और वहां 'यवनों' का जो प्रसिद्ध संग्राम हुआ उसमें आप 'यवन' सिद्धांत के बड़े भारी धनुर्धारी थे। १८९३ में उन्होंने फ्रान्सकी यात्राकी और पैरिसमें व्याख्यान भी दिये। फ्रान्समें नवम्बर १८९४ में 'लिजन आफ हानर, देकर उनका सम्मान किया। जब १८९४ में स्टाकहोममें बर्जिलियस शताब्दि-उत्सव मनाया गया तब आप जर्मनीकी ओरसे तथा जर्मन केमिकल सोसायटी तथा अकैडेमीकी तरफसे प्रतिनिधि बनकर गये थे। सन् १९०१ में जब शिकागो यूनिवर्सिटीका दश-वार्षिक उत्सव हुआ तब आपको वहां बुलाया गया था। १९०२ में आप इंग्लैंडमें भी गये थे। इस बार मैंचेस्टर को आपने देखा। इसी वक्त डाल्टनके परमाणुवाद की शताब्दी मनानेका विचार चल रहा था। और इस स्मारकका शिलारोहण सन १९०२ में वाण्टहाफ के हाथसे रखा गया। म्यूनिचमें इंडिगो (नील) रसायनका नेता बायरका सत्तरवां जन्म दिन मनाया गया वहां भी वाण्टहाफ गये थे। १९०६ में उन्होंने अमस्टरडमकी सायन्स कांग्रेसमें दर्शन दिये। वे इटलीमें भी अपनी पत्नीके साथ वेसुवियस ज्वाला-मुखी देखने गये थे। जन्मसे ही वे बड़े नाज़ुक थे। इनकी तबीयत दिनों दिन बिगड़ती ही जाती थी। आखिर, मार्च १ सन् १९११ में आयुके ५९वें वर्षमें उनका प्राणांत हो गया।

वाण्टहाफ बड़े भारी शास्त्रज्ञ थे। उनकी प्रतिभा तथा बुद्धिमत्ता प्रशंसनीय थी। उनके अन्वेषण परमोपयोगी हैं। सन १९०९ में उनको प्रथम नोबेल प्राइज मिला। इनके ही समयसे नोबेल प्राइज हर साल देना शुरू हुआ। इस नोबेल प्राइजका प्रथम मान वाण्टहाफको ही मिला, इतनी बात उनके कार्यका महत्व बताने के लिये काफ़ी है। भौतिकका नोबेल प्राइज लार्ड रेलेको दिया गया और वैद्यकीका प्राइज बेहरिंगको। इसी साल प्रशियनएकैडेमीने उनको हेलमोज़ पदक प्रदान किया। वाण्टहाफ को काल ले गया लेकिन उनकी कीर्त्तिको वह न ले जा सका। उनके कई स्मारक बनाये गये हैं, लेकिन उनका कार्य ही उनका चिर-स्मारक है।

जानवरोंके मकानात

[लेखक श्रीयुत हनूमान शर्मा]
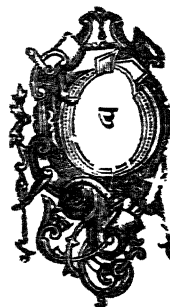
उदर-पोषण और प्राण-रक्षा होने योग्य ज्ञान प्रत्येक प्राणीमें पाया जाता है। इस कामके लिये भोजनके सिवा मकान अथवा मकान-जैसे किसी भी साधन-की उनको अवश्य आवश्यकता होती है। उनमें मनुष्य जिस प्रकारके मकान बनाना जानते हैं, उसके वर्णन करनेकी यहां ज़रूरत नहीं। यहाँ तो सिर्फ़ मनुष्येतर प्राणियोंकी गृह-निर्माण-कला-का वर्णन करना है।

इतर प्राणियोंमें गाय, बैल, भैंस, बकरी अथवा हाथी, घोड़े, ऊँट आदि पशुओंका मानव-समाजके साथ विशेष संबंध रहता है। अतः ये अपने लिये मकानोंकी अधिक आवश्यकता नहीं समझते। मनुष्य ही इनके भरण-पोषण और प्राण-रक्षा का प्रबंध रखते हैं।

जब कभी गाय-बैल-जैसे ग्राम्य पशुओंको मानव समाजसे अलग एकांतमें रहना होता है, तो ये अपनी सजातीय संघका गुट बनाकर एकत्र रहते हैं, अलग-अलग नहीं रहते। हाँ, इनमें सांड़ अथवा भैंस, जैसे बलिष्ट पशु अकेले भी रह जाते हैं; परंतु ग्रामके समीप रहते हैं, वनमें नहीं।

(२) मृग, सांभर अथवा नीलगाय जैसे वन्य पशु जंगलमें रहते हुए भी मकान नहीं बनाते। वे या तो साफ़-सुथरे विस्तृत मैदानमें रहते हैं, या जटिल झाड़ियोंके परकोटेमें परित्राण पाते हैं। दोनों जगह प्रत्येक श्रेणीके पशु संघ बनाकर रहते हैं, और इसी विधानसे विश्राम लेते हैं।

कुत्ते, बिल्ली और ग्राम्य शूकर, इनका मानव समाजसे संबंध रहता भी है और नहीं भी रहता। अतः न रहने की दशामें ये अपने लिये प्रसूति-काल में ऐसा मकान ढूँढ़ लेते हैं, जो विशेषकर जन-समाजके काममें कम आता हो और उसमें घास-फूस, कंकड़-पत्थर तथा अंधकार आदि आवश्यक साधन मौजूद हों। प्रसूतिके सिवा नित्यके विश्रामके लिये ये पाँवोंसे खड्डा खोदकर उसे मुलायम बना लेते और उसीमें सोते हैं।

(३) सियार, भेड़िया, लोमड़ी और ख़रगोश आदि पशु अपने लिये मकान बनाते हैं, और उसमें अपनी विलक्षण बुद्धि का परिचय देते हैं। ये पृथ्वी के भीतर विवर अथवा दुर खोदकर उसी की बग़ल में अपने मकान बनाते हैं। मकान ऐसी विधिके होते हैं कि प्रत्येक मकानका एकसे दूसरेके साथ संबंध रहता है, और उनमें एकमें गृहेश्वर, दूसरेमें गृहणी, तीसरेमें बच्चे और चौथेमें भोजन-सामग्री अथवा आगंतुक सजातीय रहते हैं। जिस विवर अथवा दरवाज़ेसे उन मकानोंमें जाना होता है, वह दरवाज़ा इस प्रकारका बनाया जाता है, जिसमें इन जीवोंको जो जीव मार सकते हैं, वे नहीं घुस सकते, किंतु जिनको ये मारते हैं, वे घुस सकते हैं।

उक्त प्रकारके मकान विशेष कर भेड़िए और शृगाल आदि चंचल, चालाक एवं चतुर जानवरोंके होते हैं। शश अथवा ख़रगोश-जैसे जानवर तो बेचारे ग़रीब होते हैं। उनका निर्वाह तो कंटकाकीर्ण छोटे वृक्षोंके नीचे सामान्य दुरमें ही हो जाता है, और उसीमें ये अपने परिवारका पालन कर लेते हैं। इनके सिवा—

(४) सिंह, व्याघ्र, वराह आदि हिंसक पशु या तो जन-शून्य काननमें विचरण करते हैं, या गिरिगह्वरों-कंदराओंमें विश्राम लेते हैं। उनके लिये वही मकान हैं, और उन्हींमें उनका गार्हस्थ्य जीवन संपन्न होता है।

(५) पूँछके लिहाज़से यहाँ सांपों और चूहोंकी गृह-निर्माण-कलाका भी उल्लेख किया जाय, तो अप्रासंगिक न होगा। कहा जाता है, साँप अपने लिये मकान नहीं बनाते। वे पराए घरों पर अधिकार करने हीमें अपना महत्त्व मानते हैं। ऐसी दशा में मूषकके मकान ही उनके लिये आश्रयदाता और भयत्राता होते हैं, और उन्हींमें धँसनेसे भोजन तथा विश्राम, दोनोंके एकत्र मिलनेकी संभावना है।

पराया मुख ताकनेवाले साँपोंकी इस दुर्नीतिका विचार करके चूहे अपने लिये ऐसे बिल बनाते हैं, जिसमें आवश्यक होने पर एक द्वारसे प्रवेश और दूसरेसे निर्गम निरापद होता रहे, और सर्प आदि उनको सहसा न खा सकें। गाँवके चूहे अपने मकानोंमें बच्चोंके बैठनेकी जगह बड़ी मुलायम बनाते हैं। उसके लिये वे गृहस्थोंकी बहुमूल्य वस्तुएँ (वस्त्र-वेठन-पुस्तकें आदिको) काटकर कतरन बना लेते हैं, और उसीके बिछौने पर मूषक जातिकी ज़च्चा बच्चा जना करती हैं।

यदि गृहस्थोंकी मूल्यवान् वस्तुओंके नष्ट कर देनेका विचार किया जाय, तो चूहोंके बिछौने-मात्र

ही सैकड़ों रुपएकी लागतके माने जा सकते हैं इनकी इसी कुबुद्धिको देखकर लोग इनको कुजीव कहते हैं। वस्त्रादि नष्ट करनेसे ये वास्तवमें कुजीव कहलाने योग्य हैं।

साँपों और चूहोंका कुजीवपना इसीसे सिद्ध होता है कि वे अपने तुच्छ स्वार्थके लिये बहुमूल्य वस्तुओं तथा मनुष्य-जैसे सर्वोत्कृष्ट जीवोंको काटते हैं। उस प्रकार चूहों और साँपोंके काटनेसे काटने-वालोंका तो पेट नहीं भरता, किंतु बहुमूल्य वस्तुओं और अमूल्य मनुष्योंका सर्वनाश हो जाता है।

(६) पुच्छधारी जीवोंमें गिलहरी ही एक ऐसी है, जिसका मकान पृथ्वीके पेटमें नहीं होता, किंतु उसकी पीठ पर पेड़ों या दीवारोंके भग्न अंशोंमें होता है। ऐसे मकानोंमें वह अपनी सुख-शय्या बनाती है, और उसी पर बड़े आरामसे सोती है। सुख-शय्या सचमुच शय्याके समान होती है, और उसके चारो कोने सूत, कपास, रुई कपड़े और वस्त्र-खंड आदिसे व्याप्त रहते हैं।

(७) स्याह गोह, जिसको 'शेह' भी कहते हैं, अपने लिये गोल गुंबजका गहरा मकान पृथ्वीके अंदर बनाती है। उसका द्वार छोटा और दालान बड़ा होता है। उसीके अंदर वह अपने शूल-सरीखे काँटोंको फैलाकर सोती और गार्हस्थ्य-जीवनका सुख भोगती है। स्मरण रहे कि पशुओंके मकानोंमें बहुतोंके मकान ऐसे होते हैं, जिसमें केवल मकान मालिक अकेला रह सकता है, और बहुतोंके ऐसे होते हैं, जिनमें मकान-मालिकके सिवा सगे-संबंधी और भाई-बन्धु आदि भी आरामसे रह सकते हैं।

(८) वानर, भालू और लंगूर आदि कई पशु ऐसे भी होते हैं, जो मकान बनाना जानना तो दूर रहा, उलटे दूसरोंके बने-बनाए मकानोंको नष्ट कर देते हैं। इनके लिये कोई दूसरे सज्जन घर बना दें, तो उसको ये आरामका आयतन नहीं, किंतु जेल-ख़ाना अवश्य मानते हैं।

(९) भालुओंके विषयमें यह विख्यात है कि वे वृक्षों पर भी चढ़ जाते हैं, और वहाँ निवास भी कर लेते हैं। किंतु शाखामृग अर्थात् वृक्ष-शाखाओं पर हरिणकी तरह दौड़ने वाले वानर और लंगूर आदि जिस प्रकार वृक्षोंकी सबसे अधिक जटिल और सबसे आधिक ऊँची शाखाओं पर कूदते, उछलते और एकसे दूसरी पर छलाँग मारकर चले जाते हैं, उस प्रकार अन्य पशु नहीं कर सकते। फिर भी वे मकान बनाना नहीं जानते।

(१०) पृथ्वीके भीतर मकान बनाने वाले प्रत्येक पशु पहले इस बातका पूर्वापर पूरी तरह सोच लेते हैं कि इसके अंदर की भूमि अच्छी है या नहीं। इससे हमारे स्वास्थ्यको तो कोई ख़राबी न होगी। वर्षा आदिका पानी इसके अंदर तो नहीं धँसेगा। जिस जगह हम मकान बनावेंगे, उस जगह उन मकानोंकी भूमिके ऊपर होकर पांथ पथिकों सवारियों या वज़नदार किसी भी वस्तुके आने-जानेकी संभावना तो नहीं है, जिससे इस भूमिके खसकनेकी शंका हो, और इस भूमिमें हमारे शत्रुगण आकर तो हमारा विनाश न करेंगे।

(११) जिस समय उनका मकान बनता है, उस समय वे उसके खोदनेमें ऐसे तत्पर होते हैं, मानों मशीनें काम कर रही हों। रात-भरमें उनके मकानोंका प्रवेश-द्वार और एक वास-भवन बनकर तैयार हो जाता है, और उसकी तमाम मिट्टी बाहर गिर जाती है। प्रत्येक पशु-दंपति अपने मकानको आप ही बनाता है। इस कामके लिये न तो वे कारीगरकी ख़ुशामद करते हैं और न मज़दूरोंकी मनुहार। स्त्री मकान बनानेकी मिट्टी खोदती है, और पुरुष उस खोदी हुई मिट्टीको बाहर फेंकता रहता है। इसी प्रकार पशु-जातिके स्त्री-पुरुष इच्छा-नुसार मकान बनाते और उनमें आनंदके साथ रहते हैं।

(२)

पशुओंकी अपेक्षा पक्षियोंके मकान अधिक महत्त्वके होते हैं। उनमें विज्ञानका अंश बहुत रहता है। मकानोंके आकार-प्रकार, नाप-जोख, रचना-क्रम, निर्माण-सामग्री, दृढ़ता, सुंदरता और

स्वरूप आदि बड़े ही विलक्षण होते हैं। यदि उनका विचार किया जाय, तो कहना पड़ेगा कि बड़े-बड़े वैज्ञानिक भी 'भवन-निर्माण-कला' में उनकी बराबरी नहीं कर सकते।

यद्यपि पक्षियोंको संतान होनेके अवसर पर ही मकानकी ज़रूरत होती है, और उस समयमें वे भावी संतानकी प्राण-रक्षा तथा उसके सुख-साधनों पर लक्ष्य रखकर ही मकान बनाते हैं, तथापि उनमें सर्दी, गर्मी, हवा, प्रकाश, आग-आतप, जल-प्रपात और शत्रुभय आदिसे सुरक्षित रहनेके उपाय भी कर देते हैं।

यहाँ यह बात स्मरण रखनेकी है कि जो पक्षी शरीरसे अधिक बड़े होते हैं, और उनका मानव-समाजसे संबंध रहता है, वे मकान बनानेमें उतने होशियार नहीं होते, जितने छोटे पक्षी।

(१) मयूर मानव-समाजसे अधिक संबंध रखता है, और ग्राम्य पक्षियोंकी अपेक्षा बड़ा भी होता है। परंतु मकान बनानेका उसको बिलकुल होश नहीं। वह आत्म-रक्षामें इतना ही कर सकता है कि किसी ऊँचे वृक्षकी अति ऊँची शाखा पर बैठ जाय और रातभर बिना हिले-डुले वहाँ बैठा रहने हीमें सुखसे सोनेका स्वाद लेता रहे।

इसमें भी एक विचित्र ख़तरा यह बतलाया जाता है कि कई बार रातके समय बघेरा उसके पेड़के नीचे बैठ जाता है, तो वह आकाशमें बैठा हुआ भी चटसे गिर पड़ता है। उसकी इतनी कमज़ोरी देखकर ही कुत्ते-बिल्ली आदि उसे जब चाहें तब दबा लेते हैं, और वह आत्म-रक्षाकी कुछ भी तजवीज़ नहीं कर सकता।

उसकी स्त्रीको अपनी गर्भावस्थाके दिनोंमें मकान बनानेकी आवश्यकता होती है; परंतु मकान वह भी बनाना नहीं जानती। आसन्न-प्रसवा होने पर वह केवल इतना करती है कि घास-फूस, झोपड़े या छप्पर आदिको समेटकर उसमें अण्डे दे देती है। और, पकनेके बाद उनको फोड़कर वहीं पाल लेती है। फल यह होता है कि कुत्ते, बिल्ली और कौए आदिके द्वारा उसके कई एक बच्चे नष्ट हो जाते हैं, और वह रोकर रह जाती है।

(२) मयूरके समकक्ष पक्षियोंमें हंस, सारस और बत्तख भी हैं, किंतु मानव-समाजके साथ उनका घनिष्ट संबंध नहीं रहता। वे प्रसूति-कालमें वापी, कूप, तड़ाग आदिके तटों पर खुली छतको अर्द्ध गृह बनाते हैं। उनकी भवन-रचनामें कोई विशेषता नहीं होती। केवल इतना होता है कि मोरकी तरह उनके बच्चे नष्ट नहीं होते।

(३) गीध, ढींच अथवा गरुड़-जातिके पक्षियों-के भी घर होते हैं; परंतु वे उनमें निवास नहीं करते। उनका निवास जन शून्य जंगलके लंबे वृक्षों, की सर्वोच्च शाखा पर होता है, और जिस शाखा पर निवास करते हैं, वह शाखा कालांतरमें सूख जाती है। उसीके समीपमें उनके घर बनते हैं, जिनमें उनका परिवार पालन होता है। घर बनानेमें सूखे वृक्षोंकी मज़बूत शाखाएँ काममें लाई जाती हैं, और उनको एकसे दूसरीके साथ इस प्रकार जोड़ देते हैं, जिससे उनके मकान अर्द्ध अंडाकारसे बन जाते हैं।

(४) इसी प्रकार बाज़, शिकरे, चील्ह और कौओंके मकान भी वृक्ष-शाखाओं पर ही बनाए जाते हैं। परंतु वे सर्वोच्च शाखाओंके बदले कुछ मध्य भागमें बनते हैं। यद्यपि उनमें सूखी शाखाएँ जोड़ी जाती हैं, किंतु वे तृण, काँटे और काष्ठ-खंडोंकी योजनासे उनको सुखदायी बना लेते हैं। कभी-कभी वे अपने मकानोंमें हाड़, पत्थर, चर्म और लोहा आदि भी लगा लेते हैं। किंतु भविष्य-वक्ता ऐसी वस्तुओंको अच्छी नहीं समझते।

(५) कोयल कौएके मकानसे ही अपना काम निकाल लेती है। मौक़ा पाकर वह अपने अंडे कौए के घोंसलेमें रख आती है और उसके फेंक देती है। घरकी मुर्ग़ी लाग बराबर मानने वाले मनुष्य मुर्ग़ों के मकान आप बनाते हैं, वे नहीं बनाते।

(६) कबूतरोंके मकान ऐसी जगह होते हैं, जहाँ बिल्ली न पहुँचती हो। इस कामके लिये वे मकानोंके छज्जे, तोड़े, ताक़, कोने, पनाले, दीवारों

के आधार और कुएँ तथा कुओंमें उगे हुए वृक्ष आदिको अधिक उपयोगी समझते हैं। स्थायी रूपसे तो उनका ऐसे ही स्थानोंमें निवास होता है, और एक प्रकारसे उनके यही घर हैं। किंतु कबूतरीके प्रसव-कालमें कपोत-दंपतिको नवीन मकानकी आवश्यकता होती है। तब कबूतरतो घास-फूस, तिनके और नीमकी सींक आदि लाकर देता रहता है, और कबूतरी उनसे मकान चुनती है। यह काम प्रसव-कालके एक-दो दिन पहले ही हो जाता है। परंतु उनमें कारीगरी कुछ नहीं होती।

(७) कमेड़ी कबूतरसे छोटी होती है; किंतु मकान बनानेमें वह मानव-समाजका आश्रय नहीं लेती। बहुधा पक्षी कौओंसे डरकर मनुष्योंके मकानों में घोसले बनाते हैं। किंतु कमेड़ी कौओंकी कोई परवा नहीं करती। कौए यदि कमेड़ीके साथ कुछ छेड़-छाड़ करें, तो वह ऐसी फटकार बताती है कि फिर वे उसके घोंसलेमें नहीं घुसते। इस जातिके पक्षियोंमें कमेड़ी ही एक ऐसा पक्षी है, जो अपने शत्रुओंको ठोक-पीटकर सीधा रखती और खुले उद्यानकी हवा खाती है। इसका मकान कबूतरके मकानसे मिलता-जुलता होता है, और वृक्षों पर बनाया जाता है।

(८) घिरसली अथवा डोमड़ी कमेड़ीसे छोटी होती है। इसके मकान निविड़ वृक्षोंकी संकीर्ण शाखाओं तथा मकानों आदिकी दरारोंमें होते हैं। ये विशेष कर काग़ज़, कतरन, कपड़े अथवा तृण आदिके मेलसे बनाए जाते हैं। इनमें केवल इतनी ही विशेषता होती है कि शत्रुगण इनको सहसा नष्ट नहीं कर सकते।

(९) तोतोंके मकान तो होते हैं, किंतु वे ख़ुद नहीं बनाते, बने-बनाए खोज लेते हैं। बहुतसे वृक्षों में, सूखी हुई शाखाएँ गिर जानेसे, खोखले (छेद) हो जाते हैं, उन्हीं खोखलोंको दुरुस्त करके वे अपने रहने योग्य बना लेते हैं। परंतु इस बातका विचार अवश्य कर लिया जाता है कि इनपर कौए, बिल्ली, हवा अथवा जल-प्रपात आदिके आक्रमण तो न होंगे।

(१०) खाती चिड़ा (कठफोरवा) नामके दो तीन पक्षी ऐसे भी हैं, जो आकार और रूप-रंगमें तो भिन्न होते हैं, किंतु भवन-निर्माण-कला सबकी समान होती है। उनका आकार तोतेसे छोटा और चोंच बहुत लंबी होती है। वे अपने घर ख़ूब मज़बूत बनाते हैं। इस कामके लिये वे बड़े वृक्षोंके सूखे अंश ढूँढ़कर उनमें अपनी कठोर चोंचसे गोलाकार घर खोद लेते हैं। खोदते समय ऐसा शब्द होता है, मानो खाती (बढ़ई) कुछ खोद रहे हों। इसी कारण उनको खातीचिड़ा कहते हैं। उनके प्रत्येक मकानका मुँह नीचेकी ओर होता है, जिसमें न बिल्ली धँस सकती और न पानी भर सकता है। कभी-कभी वे अपने मकानों को बिलकुल तैयार होनेके बाद नापसंद कर देते हैं, और दूसरे मकान बनाते हैं। तब इन परित्यक्त घरोंमें तोते डेरा जमा लेते हैं, और वे ही उनका सुख लूटते हैं।

(११) चिड़ी, शकुनचिड़ी अथवा गौरेला आदिके मकान भी कबूतरोंके मकानके समान होते हैं। वे गृहस्थोंके घरोंमें लपेटकर रक्खे हुए वस्त्रों, पर्दों, चटाइयों अथवा गोलाकार अन्य वस्तुओं आदिमें छोटे-छोटे तृण-तंतुओं आदिकी योजनासे मकान (झोंझ) बनाते हैं। मकान बनानेमें स्त्री कारीगर बनती है, और पुरुष मज़दूर।

(१२) कन्हैया नामका एक छोटा पक्षी होता है। वह देखनेमें सुंदर, स्वभावमें डरपोक और प्रकृतिमें ग़रीब है। मकान भी वह मनुष्योंके समीप बनाता है, परंतु रहता एकांतमें है। मनुष्य तो उसका कभी मुँह भी नहीं देखते। वह प्रातः फुर्रसे ऐसा उड़ जाता है कि पता ही नहीं लगता। इसी प्रकार रातको चुपचाप आकर घुस जाता है। इतना होने पर भी मकान बनानेमें वह बड़ा प्रवीण है। शून्य स्थानोंमें अथवा ऊँचे मकानोंके छत-छज्जे या टोड़े आदिके तल-भागमें इसके मकान होते हैं।

मकान क्या उनको 'कन्हैयाकी कोठी' कहें, तो कोई अत्युक्ति न होगी। वह अपने मकान दुहरी दीवारके बनाता है। जिस जगह मकान बनाए जाते

हैं, उस जगहको पहले ऐसे मसालेसे पोत देता है, जिससे उसके मकान कभी गिरते नहीं। मकान बनानेके लिये सन, सूत और मूँज आदिके तारोंमें छोटे-छोटे जानवरोंके बारीक पंख, रुईके फीहे और कपड़ोंकी कतरन आदिको किसी मज़बूत मसालेसे चिपकाकर उचित रीतिके मकान बना लेता है। उनके अन्दर मुलायम गद्दे लगी हुई कोठरी होती हैं, जिनमें प्रवेश करनेका केवल एक ही द्वार होता है। संपूर्ण मकानके ऊपर भीगी हुई मिट्टीका एक परकोटा और बना देता है, जिससे उन मकानोंकी रक्षा भी होती है, और उनके आकार-प्रकार भी ज्ञात नहीं होते।

(१३) बया नामका एक इतना ही छोटा पक्षी और होता है, जो अव्वल दर्जेका धूर्त, अभिमानी, चालाक, शौक़ीन, चतुर और सुदक्ष कारीगर है। इस जातिके पक्षियोंमें बया ही एक ऐसा पक्षी है, जो अपनी रक्षाके लिये न तो मानव-समाजका मुँह ताकता है, और न कुत्ते, बिल्ली और कौए आदिका भय करता है।

वह अपना मकान काँटेदार वृक्षोंकी पतली टहनीके अग्र-भागमें बनाता है, जिसमें उससे बड़े कोई भी पक्षी उस शाखा पर बैठ या ठहर नहीं सकते। मकान बनाते समय पहले वह उस टहनीमें मूँजके मज़बूत तारोंको छींकेकी तरह लटका देता है और फिर कुटी हुई मूँज के साफ़-सुथरे तारोंको पूर्वोक्त तारोंमें भली भाँति गूँथकर झूलता हुआ घर बना लेता है।

बाहरसे देखनेमें वह घर लटकती हुई लम्बी तोंबी जैसा मालूम होता है, किन्तु उसके अन्दर राजसी ठाटका बड़ा बेढब काम रहता है, उसमें घुसनेका सदरफाटक अधोमुख होता है। सदर फाटकमें घुसते ही पहलेपहल बयाका बैठक-खाना मिलता है। उसके आज़ू-बाज़ू बया और बयीके निवास-स्थान होते हैं। पास ही बच्चोंके झुलानेके लिये झूला भी होता है। दर्शकोंका कथन है कि बया आकाशकी ओर खड़े पाँव करके चित सोता है, और कभी-कभी रातके समय अपने सोनेके कमरेमें रोशनी भी रखता है। पाठक इस बात को असत्य मानेंगे; किन्तु यह रत्ती-भर असत्य नहीं। चौमासेमें नदी-तट आदि पर जो जुगुनू उड़ा करते हैं, बया उन्हींको पकड़ लाता है, और अपने कमरेमें रख लेता है। इस प्रकारके और भी पक्षी होते हैं, जिनकी भवन-रचना बड़ी विलक्षण और सर्वतः सुखद होती है।

(१४) उल्लू और चिमगादड़ोंकी प्रकृति पूर्वोक्त पक्षियोंसे भिन्न है। ये दोनों दिनमें सोते और रातको जागते हैं। उल्लूका घर तो पेड़के वे ही खोखले होते हैं, जिनमें छिपा हुआ वह दिन-भर बैठा रहता है, और किसीको नहीं दिखाई पड़ता, किन्तु चमगादड़ अथवा बागलके कोई मकान नहीं होता। वह मकानोंकी छत और वृक्षोंकी शाखाओंमें औंधे सिर लटकती रहती है।

(१५) प्रसंग-वश पंखोंके लिहाज़से यहाँ भिड़, ततैए, भौंरे और मधु-मक्खी आदिके मकानोंका उल्लेख कर देना भी उचित प्रतीत होता है।

भिड़, जिसको टाँट्या या ततैया भी कहते हैं, उसके मकान गृहस्थोंके घरोंकी छत अथवा छज्जे आदिके नीचे अधोमुख होते हैं, वे किस वस्तुसे बनाए जाते हैं, इसका ठीक पता नहीं; किन्तु उनमें गलाए हुए कागज़, कपड़े, गोंद, मिट्टी और दूधका उपयोग अवश्य किया जाता है; क्योंकि मकान बनाते समय वे इनको जहाँ-तहाँसे खोज-खोजकर लाते रहते हैं, और अपने मुँहका पानी मिलाकर मकानोंको यथोचित रीतिसे तैयारसे करते रहते हैं।

इनके मकानोंमें समान रूपकी षट्कोणाकार सैकड़ों कोठरी होती हैं। किन्तु एक भी कोठरीका कोई भी कोना कभी कमती-बढ़ती नहीं होने पाता। सब समान रहते हैं, और अगणित जन्तु उनमें आनन्दके साथ सोते हैं। इसी प्रकार पीले और लाल रंगके भौंरेके मकान भी ऐसे ही होते हैं। अन्तर केवल इतना होता है कि वे वज्र-लेपके बनाए जाते हैं, और ये भीगी हुई मिट्टीके। भौंरेके घर

जलसे बिगड़ सकते हैं, इस कारण वह अपने घरोंको छायामें बनाता है।

(१५) मधु-मक्खीके महल इन सबसे उत्कृष्ट होते हैं। उनमें बहुमूल्य मसाला लगाया जाता है। वह चाहे जहाँ अपने महल बना सकती है। वृक्षोंमें, मकानोंमें, काँटोंमें और कन्दराओंमें, सर्वत्र उसके महल बन सकते हैं। गर्मीसे सूखते नहीं, सर्दीसे सिकुड़ते नहीं, और घोर वर्षासे भी गलते नहीं। इसके महलोंमें नमालूम क्या मसाला लगाया जाता है कि उसमें यह अपने असंख्य परिवारके साथ आरामसे रहती है, उसको कभी किसी प्रकारकी असुविधा नहीं होती। संभवतः भिड़वाली सामग्रीके सिवा उनमें तेल, चीनी और निंब-मद आदि अधिक मिलाती है।

शहदकी मक्खीके महलोंमें दो-दो मंजिलोंकी अगणित कोठरी होती हैं, जिनमें वे अपने परिवार सहित प्रसन्नतासे रहती हैं। महलोंके बीचमें मधु-कोष होता है, जिसको वे प्रतिदिन मधु-पूर्ण करती रहती हैं। कितने बड़े आश्चर्यकी बात है कि मक्खी जैसे तुच्छ जीव भी भवन-निर्माण-कलामें चतुराईकी पराकाष्ठा अथवा सर्वोत्कृष्ट विज्ञानका स्वरूप प्रकट करते हैं। वह उनके बनानेमें किस-किस प्रकारके कैसे-कैसे मसालेमें कहाँ-कहाँसे लाकर किस भाँति लगाते हैं। इतना होने पर भी महलोंका काम इतनी फुर्तीसे होता है कि सैकड़ों कोठरियोंके सुन्दर मकान वर्षों, महीनों और हफ्तोंमें नहीं, दिनोंमें तैयार होते हैं, और उनमें रत्ती-भर भूल या बाल-भरका न्यूनाधिक्य नहीं होता।

(१७) भिड़-जैसे ही दो-एक भौंरे और होते हैं, जो गृहस्थोंकी पड़ी रहनेवाली वस्तुओं पर चूना-मिट्टी लगाकर उनको महलके रूपमें परिणत कर देते हैं। उनके महलोंमें कोई विशेषता नहीं होती; किन्तु विशेषता उनके सन्तान उत्पन्न करनेमें होती है। पेटमें गर्भ धारण करके प्रसव-कालमें पीड़ा भोगनेको अच्छा नहीं समझतीं, और बिना सन्तान उत्पन्न किए बाँझ कहलाना अथवा अपुत्र रहना भी उचित नहीं मानतीं। इस कारण वे एक ऐसा अलौकिक कर्म करती हैं; जैसा भारीसे-भारी विज्ञानवेत्ता विद्वान् भी नहीं करता।

वे अपने ऋतु-कालमें प्रसूति-गृह-निर्माण करके उसमें लट नामके कीड़ोंको लाकर रख देती हैं, और उस मकानको चारो ओरसे मिट्टीसे पोतकर नियत कालके कुछ दिनों तक अपनी भिनभिनाहट सुनाती रहती हैं। बस, इतनी ही क्रिया करनेसे उन लटोंका स्वरूप बदल जाता है, और वे भ्रमर बन जाती हैं।

अब मैं इस लेखको यहीं समाप्त करता हूँ और उदार पाठकोंको सूचना देता हूँ कि मैंने "पशु-पक्षी" नामका एक बड़ा ग्रन्थ तैयार किया है, जिसमें मनुष्योंकी बुद्धि, चतुराई, विज्ञान, कला-कौशल, संयम-नियम, कुल-मर्यादा, व्यवहार-साधन और नियम-पालन आदिकी उत्तमत्ताका वर्णन है। वह अभी छपा नहीं है। जो सज्जन इस विषयमें कुछ प्रकट करना चाहें, वे मेरे नाम पर "चौमू जयपुर-स्टेट" के पतेसे लिख भेजनेकी कृपा करें।

'सुधा से'

इंडियन सायंस कांग्रेस

इस वर्ष सायंस कांग्रेसका १७ वां अधिवेशन प्रयागमें २ जनवरीसे लेकर ८ जनवरी तक हुआ। गत वर्ष यह मद्रासमें और उससे पहले कलकत्ता, लाहौर और काशीमें इसके अधिवेशन हुए थे। आगामी वर्ष नागपुरमें यह कांग्रेस होगा। प्रसिद्ध पुरातत्ववेत्ता सर विलियम जोन्स ने सन् १७८४ ई० में एशियाटिक सोसायटी आव् बङ्गाल नामक एक संस्था स्थापितकी थी जिसकी ओरसे सन् १९१४ ई० में इंडियन सायंस कांग्रेस नामक एक महा-

सभाका उद्घाटन हुआ। इसके अधिवेशन प्रति जनवरी मासमें भारतवर्षके प्रसिद्ध शिक्षा केन्द्रोंमें होते रहते हैं। साधारणतः यह प्रथा प्रचलित हो गई है कि जिस प्रान्तमें यह सभा होगी, उस प्रान्तकी गवर्नमेंटसे इसके खर्चके लिये कुछ सहायता मिलेगी और जिस विद्यालय अथवा विश्वविद्यालयमें इसके अधिवेशन होंगे, उसे भी कुछ न कुछ आर्थिक सहायता पहुँचानी ही होगी। पर इसके व्ययका अधिकांश प्रतिनिधि फीससे ही वसूल किया जाता है। यह फीस १०), ५) और २) है जिनके देने वाले क्रमशः 'फुलमेम्बर', 'एसोशियेट मेम्बर' तथा 'स्टुडेण्ट मेम्बर' कहलाते हैं। प्रयागके इस अधिवेशनमें सब मिलाकर लगभग ५०० प्रतिनिधि भारतवर्षके सभी प्रान्तोंसे आये थे। बंगाल, पंजाब, बङ्गलोर, मद्रास आदिसे प्रतिनिधि समुचित संख्यामें सम्मिलित हुए थे।

इस सायंस कांग्रेसको वैज्ञानिकोंका एक मेला ही समझना चाहिये, क्योंकि मेलेके सभी लक्षण इसमें पाये जाते हैं। इसके कार्यक्रमके निम्न अंग समझे जा सकते हैं:—

१. मुख्य सभापति तथा वैज्ञानिक विभागोंके विशेष सभापतियोंके सम्भाषण।

२. वैज्ञानिक विभागोंके अधिवेशन जिनमें वैज्ञानिक अपने लेखोंको पढ़ते हैं, और पढ़नेके पश्चात् उस विषय पर साधारण मीमांसाकी जाती है।

३. प्रीति-भोज तथा नगरके प्रसिद्ध स्थानोंका निरीक्षण।

४. सायंकालके समय कांग्रेसकी ओरसे अथवा विश्वविद्यालयकी अन्य समितियोंकी ओर से आयोजित व्याख्यान।

इनके अतिरिक्त अन्य सभाओंके भी अधिवेशन हुए थे। एक दिन रातको संगीतका भी प्रबन्ध किया गया था। सायंस कांग्रेसका अधिवेशन २ जनवरीसे प्रारम्भ हुआ। क्रिसमसकी छुट्टियां होनेके कारण बहुतसे प्रतिनिधि २७, २८ दिसम्बरसे ही आने लगे थे। इनके ठहरनेका प्रबन्ध विश्वविद्यालयके छात्रावासोंमें, कैम्पस, तथा होटलोंमें किया गया था पर प्रतिनिधियोंको इस सबके लिये काफी फीस और देनी पड़ती थी अतः बहुतसे तो अपने इष्ट मित्रोंके यहां ही ठहरे थे।

सायंस कांग्रेसके अधिवेशनका उद्घाटन २ तारीखको सर मालकम हेली, गवर्नर संयुक्तप्रान्त, द्वारा कराया गया। उद्घाटन करते समय हेली महोदय ने एक उपयुक्त सम्भाषण सुनाया और इसके उपरान्त कांग्रेसके आयोजित सभापति कर्नल एस' आर. क्रिस्टोफर्स, सी आई. ई., ओ. बी. ई., के. एच. पी., एफ. आर. एस., आई. एम. एस., एफ. ए. एस. बी., का भाषण हुआ। क्रिस्टोफर्स महोदय प्रसिद्ध कसौली इन्स्टीट्यूटके अधिष्ठाता हैं और आप चिकित्साशास्त्र सम्बन्धी अन्वेषणोंके लिये वैज्ञानिक जगत्में अच्छी ख्याति पा चुके हैं। सभापति महोदयका विषय 'रोगविज्ञान' था। यह कहना तो कठिन है कि वैज्ञानिक जनता ने इस भाषणको कितना पसन्द किया होगा (कदाचित् वे इससे भी अच्छे भाषणकी आशा लगाकर आये होंगे) पर यह वक्तृता सर्वसाधारणकी रुचिकी थी। (इस भाषणका अनुवाद इसी अङ्कमें अन्यत्र देखिये) क्रिस्टोफर्स महोदय ने इस भाषणमें चिकित्सा शास्त्रका इतिहास रोगके कारण जाननेकी आवश्यकता, रोगविज्ञानको एक पृथक् विज्ञान माननेके लिये युक्तियाँ, इस विज्ञानका भविष्य तथा अन्य विज्ञानोंसे इसका सम्बन्ध आदि वार्त्ताओंका उल्लेख किया। सम्भाषणके उपरान्त मुख्य सभापतिको तो अपने कार्य्यसे एक प्रकार छुट्टी सी ही मिल जाती है। जब विज्ञानके भिन्न भिन्न विभागोंके सभापतियोंके भाषण होते हैं, तब इसे अवश्य फिर सभानेतृत्व ग्रहण करना पड़ता है। सायंस कांग्रेस के ६ विभाग किये जाते हैं :—

१. कृषि विभाग-सभापति जी. क्लार्क, सी. आई. ई., एफ. आई. सी., लखनऊ।

२. गणित और भौतिक विज्ञानका सम्मिलित विभाग—सभापति—प्रो. बी. वैङ्कटेश्वर, एम. ए., बंगलोर।

३. रसायन विभाग—सभापति—डा. पी. सी. मित्र, कलकत्ता।

४. जीव-विज्ञान विभाग—सभापति—डा. एस. एल. होरा, कलकत्ता।

५. वनस्पतिशास्त्र विभाग—सभापति—प्रो. पी. परीजा, चौलियागंज, कटक।

६. भूगर्भशास्त्र—सभापति ड. डेविड पेनमेन. धानबाद। आपकी अनुपस्थितिमें, प्रो. डी. एन वाडिया सभापति रहे।

७. चिकित्सा तथा पशु चिकित्सा विभाग—सभापति कर्नल, आर. नौलेस, कलकत्ता।

८. मानव जातिशास्त्र (एन्थ्रापोलोजी) विभाग सभापति रेवेरेंड पी. ओ. बौडिंग, मोहुलपहारी, एस. पी.।

९. मनोविज्ञान विभाग—डा. ए. एस. वुडवर्न, मद्रास।

कृषिविभागमें बहुत कम लोग रुचि लेते थे अत: बादको इस विभागके अधिवेशन वनस्पतिशास्त्र विभागके साथ सम्मिलित कर दिये गये। इसका कारण यह भी था कि इसका सम्बन्ध बहुत कुछ वनस्पतिशास्त्रसे भी है। एन्थ्रोपोलोजी, मनोविज्ञान एवं भूगर्भशास्त्रके विभाग भी उपस्थितिके हिसाबसे सूने पड़े रहते थे। इसका प्रमुख कारण यह है कि इन विषयोंके ज्ञाता भारतवर्षमें बहुत ही कम हैं तथा हमारे यहाँ के अनेक विश्वविद्यालयोंमें तथा कालेजोंमें इन विषयोंको शिक्षाक्रममें स्थान ही नहीं मिला है। 'मनोविज्ञानको' व्यर्थ ही दर्शनशास्त्रका अङ्ग मानकर 'आर्ट्स कोर्स' घोषित कर दिया गया है, यद्यपि यह भी जीवविज्ञान आदि के समान एक प्रयोगिक विज्ञान ही है। इसके लिये भी विस्तृत प्रयोगशालाओंकी आवश्यकता है। अस्तु, उपर्युक्त नवविभागोंमें रसायन बिभाग, भौतिक-गणित विभाग, जीव तथा वनस्पति शास्त्र विभाग एवं चिकित्सा विभाग ही विशेष चहल पहलके प्रतीत होते थे। रसायन विभाग सबसे बड़ा विभाग माना जाता है। इन सब विभागोंमें पढ़े जाने वाले लेखोंका सारांश पहले ही प्रकाशित होकर सब प्रतिनिधियोंके पास भेज दिया जाता है। इस वर्ष इन लेखोंकी संख्या निम्न प्रकार थी।

रसायन	२२७	वनस्पति शास्त्र	७९
भौतिक-गणित	१३८	भूगर्भ शास्त्र	३०
कृषि	५८	चिकित्सा शास्त्र	४७
जीव विज्ञान	५४	मानवजाति शास्त्र	२३
मनो विज्ञान	२७		

इनमें सभी प्रकारके लेख होते हैं पर इससे इतना अवश्य पता चल सकता है कि भारतवर्ष में वैज्ञानिक अनुसन्धान किस प्रगतिसे बढ़ रहे हैं। इनमें बहुतसे लेखक तो कांग्रेसके अधिवेशनमें सम्मिलित भी नहीं होते हैं, और सब लेखों-का इतने थोड़े समयमें पढ़ा जाना भी सम्भव नहीं है। लगभग ५ दिन इस कामके लिये मिलते हैं और प्रत्येक दिन केवल तीन घंटा ही अधिवेशन होता है। रसायन ऐसे विभागमें जिसमें सवादो सौ लेख पढ़े जाने वाले थे, प्रत्येक लेखकको दस मिनट से अधिक समय नहीं मिल सकता था। इतने थोड़े समयमें ही लेखका पढ़जाना और फिर उसको मीमांसा होना और वाद प्रतिवाद होना केवल हास्यास्पद ही समझा जायगा।

भारतवर्ष में अन्वेषणका कार्य्य या तो बड़े कालेजों या विश्वविद्यालयों, विविध रिसर्च इन्स्टीट्यूट्समें, अथवा सर्वे डिपार्टमैण्ट्समें होता है। कृषि सम्बन्धी प्रयोग प्रमुख फार्म्स पर किये जाते हैं। कलकत्ता, ढाका, प्रयाग, पटना, लाहौर, बंगलोर, मद्रास, बनारस तथा लखनऊके विद्यालय इस विषयके मुख्य केन्द्र हैं। वस्तुतः जहाँ भी कोई प्रमुख वैज्ञानिक पहुँच जाता है, वहीं यदि विद्यालय की ओरसे कुछ सुविधायें मिलीं तो वैज्ञानिक कार्य्य आरम्भ हो जाता है। गवर्नमेण्टकी ओरसे देहरादून, कसौली, मुक्तेश्वर आदि स्थानोंमें इंस्टी-

ट्यूट्स हैं जिनके कार्यकर्ता वैज्ञानिक कार्यमें सहयोग देते हैं।

प्रयागकी इस कांग्रेसमें विज्ञानके प्रत्येक विभागके प्रमुख व्यक्ति पधारे थे। यदि कांग्रेससे कोई विशेष लाभ प्रतीत होता है तो यही कि प्रसिद्ध वैज्ञानिकोंके दर्शन हो जाते हैं और परस्पर मेल मिलाप बढ़ जाता है, तथा देशकी वैज्ञानिक शक्तिका अनुभव भी हो जाता है। सर सी० वी० रमन, एफ० आर० एस, भी कांग्रेसके अवसर पर पधारे थे और आपका एक उग्र एवं प्रभावशाली व्याख्यान भी हुआ था। कांग्रेस की ओरसे दिये गये व्याख्यानोंमें डा० मेघनाद शहा, एफ० आर० एस०, तथा डा० यू० एस० ब्रह्मचारीके व्याख्यान जनताने बहुत पसन्द किये थे।

इस कांग्रेसके अवसर पर, प्रोफेसर मेघनाद शहाने संयुक्त प्रान्तमें एक 'एकेडेमी आव साइन्स' स्थापित करनेका प्रस्ताव किया जिसे लोगोंने सहर्ष स्वीकृत किया। डा० शहाका विचार है कि जिस प्रकार इंगलैन्डकी रायल सोसायटी अथवा फ्रान्स आदि देशोंकी एकेडेमीज़ है उसी प्रकार भारतवर्षकी भी एक संस्था हो जिसके फैलो भारतवर्षके प्रमुख विज्ञानवेत्ता ही बनाये जावें और यह संस्था इस देशमें विज्ञान वृद्धिके साधन सोचे तथा योग्य वैज्ञानिकोंको उचित रूपसे पुरस्कृत तथा सम्मानित करे। डा० शहा द्वारा स्थापित इस संस्थाका क्षेत्र अभी संयुक्त प्रान्तमें ही रहेगा और आशातीत सफलताके उपरान्त यह सम्पूर्ण भारतवर्षकी संस्था बना दी जावेगी।

कांग्रेसके अवसर पर प्रीति-भोज देनेकी भी विचित्र प्रथा चल गई है। प्रयाग ऐसे निर्धन नगर में यह आशा न थी कि अधिक प्रीति भोज दिये जा सकेंगे। पर हुआ इसका उलटा ही। राजा जगमल, बाबू बद्रीनाथ एडवोकेट, प्रिन्सपल हिग्गिन बाटम, मेडीकल एसोसियेशन तथा साइंटिफिक इन्स्ट्रूमेंट कम्पनीकी ओरसे प्रीतिभोजोंकी आयोजनाकी गई। इनमेंसे कई प्रतिभोजोंमें तो कई कई सहस्र रुपया व्यय हो गया। प्रतिनिधिगण इनकी ओर विशेषतः आकर्षित होते थे, यह स्वभावतः सिद्ध ही है, पर वैज्ञानिक कांग्रेसके अवसर इनकी आयोजनाओंमें इतना धन तथा शक्ति व्यय करना कुछ अधिक उचित नहीं प्रतीत होता है। इनसे मुख्य वैज्ञानिक कार्यक्रममें बाधा भी बहुत पड़ती थी। जो समय इनमें व्यतीत किया गया, उसमें यदि उपयोगी वक्तृताओंकी आयोजनाकी जाती अथवा महत्वपूर्ण विषयोंकी मीमांसाकी जाती तो अधिक अच्छा होता। अस्तु, जिसकी जैसी रुचि।

भूगर्भशास्त्रका मुख्य कार्य धानबादमें होता है जिसके प्रोफेसर डा० एस० के० राय बहुत रुचि लेते हैं। इसके अतिरिक्त बङ्गलोर, कलकत्ता और काशीमें कुछ काम होता है। कलकत्ताके प्रोफेसर वाडिया भारतवर्षके प्रमुख भूगर्भवेत्ता माने जाते हैं। मनोविज्ञानके सम्बन्धमें वैज्ञानिक ढंगसे अध्ययन केवल मैसूरमें ही अच्छी तरहसे होता है और यतस्ततः नाममात्र काम हो रहा है। मानवजाति शास्त्रमें कलकत्ता उल्लेखनीय है। इस सम्बन्धमें निम्न लेख मनोरञ्जक थे—प्राचीन समयमें धर्म और राज्य, ओड़ीसामें गोदनेकी प्रथा, छोटा नागपुरकी जातियोंकी राक्षसी वृत्ति आदि। चिकित्साशास्त्रके सम्बन्धमें लखनऊ, कलकत्ता, मुक्तेश्वर इन्सटीट्यूट और बङ्गलोर मुख्य हैं। कृषि विज्ञान सम्बन्धी कार्यके लिये मुख्य क्षेत्र पूसा, कोयम्बटूर और बनारस प्रतीत होते हैं। अन्य वैज्ञानिक विषयों पर विश्वविद्यालयोंमें काम होता ही है अतः उनके विषयमें कहना व्यर्थ है। आशा है कि हमारे विश्वविद्यालय कृषिशास्त्र, चिकित्साशास्त्र, भूगर्भ शास्त्र, मनोविज्ञान तथा मानवजाति विज्ञानके शिक्षणका भी प्रबन्ध करेंगे, अन्यथा इनके विषयमें भारतवर्षमें बहुत कम उन्नति होनेकी सम्भावना है।

प्राचीन युद्ध शास्त्र

[ले० पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय एम० ए०]

कप्तान ट्रोयर कहते हैं कि "हिन्दुओंका इतिहास ऐसे युद्धों से भरा पड़ा है जिनमेंसे बहुतसे निस्सन्देह धर्मके कारण हुये थे। सुरासुरके युद्धों तक गये बिना ही मैं इस बातको पूर्णतया दिखा चुका हूँ।" (ट्रोयर की रामायण पर सम्मति, देखो एशियाटिक जर्नल अक्टूबर १८४४ पृ० ५१४)।

प्राचीन भारत निवासी युद्ध-विद्या और युद्ध कार्य्य दोनोंमें निपुण थे। जो जाति दुनियां भरमें फैल गई हो और जिसमें हर्कुलीज, अर्जुन, सागरजी, बालि जैसे योद्धा उत्पन्न हुये हों उसके विषयमें यह नहीं कहा जा सकता कि युद्ध विद्यामें यह लोग अन्य किसी जाति से कम थे।

मुद्दतसे नौका चलानेमें प्रवीण होनेके कारण हिन्दू लोग सामुद्रिक युद्ध भी खूब करते थे। कर्नल टाड कहते हैं "प्राचीन हिन्दुओंका सामुद्रिक बल बहुत बढ़ा हुआ था।" (राजस्थान जि० २, पृ० २१८)

चूंकि प्राचीन समयमें हिन्दू लोग सबसे अधिक व्यापारी थे और इनका व्यापार संसार भरमें फैला हुआ था, इसलिये उनको जरूरत थी कि व्यापारकी रक्षा करने और सामुद्रिक आधिपत्य स्थापित करनेके निमित्त सामुद्रिक बलको बढ़ावें। प्राचीनकालमें सामुद्रिक व्यापारमें हिन्दू लोगोंकी वही अवस्था थी जो आजकल इङ्गलैण्डकी है इसलिये उनकी सामुद्रिक सेना भी इतनी ही बलिष्ठ और प्रसिद्ध थी। मनुके देखनेसे ज्ञात होता है कि हिन्दू लोग मुद्दतसे सामुद्रिक यात्रा करते थे। स्ट्रैबोने लिखा है कि भारतवर्षकी सेनामें अन्य विभागोंके अतिरिक्त सामुद्रिक-सेना सम्बन्धी विभाग भी था।

चूंकि हिन्दुओंके युद्ध शास्त्रका एक अपूर्व ग्रन्थ धनुर्वेद अब नहीं मिलता है इस लिये महाभारत अग्निपुराण तथा अन्य पुस्तकोंमें युद्धके विषयमें जो कुछ लिखा हुआ है उसीसे हमको इस विद्याका कुछ हाल मालूम हो सकता है। डाक्टर सर-डब्ल्यू हण्टर कहते हैं कि "कूच करने, पंक्तिबद्ध होकर खड़े होने, ठहरने और सिपाहियों को भरती करने के नियम तथा प्रबन्धों की कुछ कमी न थी। इन सबका महाभारतमें बार-बार वर्णन आता है" (Indian Gazetteer 'India' p. 223)

वार्ड साहेब लिखते हैं कि "हिन्दुओंने युद्ध विद्याको भी बिना सीखे न रहने दिया। यह निश्चित है कि हिन्दू राजे स्वयं अपनी सेनाको युद्धमें ले जाते थे और इस आवश्यक कार्य करनेके लिये उन्हें शिक्षा दी जाती थी और यह भी निश्चित है कि यह राजे वीरता और युद्ध करनेकी योग्यताके लिये विख्यात थे" (थ्योसोफिस्ट मार्च १८८१ पृ० १२४)

प्राचीन हिन्दुओंके युद्धके नियम ऐसे ही अपूर्व हैं जैसे वे उपयोगी हैं। कहा जाता है कि हिन्दू लोग अपनी सेना को इस प्रकार स्थापित करते थे (१) उरस (छाती)-बीचमें (२) कक्षस्-पंक्तियोंमें (३) पक्षस-परोंकी भांति बाजुओंमें (४) प्रतिग्रह-बचे हुये (५) कोटि-अगुआ (६) मध्य-उरसके पीछे (७) पृष्ठ-पीछे जो मध्य और प्रतिग्रहके बीचमें एक पंक्ति होती थी*।
युद्धमें सेनाके क्रमको व्यूह कहते हैं।

बहुतसे व्यूहोंके नाम उनके प्रयोजनों पर दिये गये हैं जैसे (१) मध्य भेदी जो मध्यको जीते (२) अन्तर भेदी जो हर भागके भीतर घुस जाय परन्तु बहुतसे व्यूहोंके नाम उन वस्तुओं पर रक्खे गये हैं जिनके सदृश वह व्यूह बनाये जाते हैं जैसे

* बृहस्पति युद्धशास्त्रका बड़ा पंडित था परन्तु शोक कि उसका कोई ग्रन्थ नहीं मिलता।

(१) मकर व्यूह जो मकरके आकारका हो (२) श्येन व्यूह जो पर फैलाये बाज़के सदृश हो (३) शकट व्यूह-गाड़ीके सदृश (४) अर्धचन्द्र (५) सर्वतोभद्र, बीचमें खुखला (६) गो मूत्रिक। (१) दण्ड (२) भोज खंभ (३) मण्डल, खुखला मण्डल (४) असंहत जिसमें सेनाके भिन्न २ भाग जैसे हाथी सवार, प्यादे फिर इनमेंसे हर एक व्यूह के भी भेद हैं। दण्ड १७ तरहका होता है भोज ५ तरहका, मण्डल और असंहत कई तरहके* (देखो अग्नि पुराण)।

महाभारत (जि० ६, पृ० ६९१-७२६) में युधिष्ठिर अर्जुनसे कहते हैं कि सूची मुख अर्थात् सुईकी नोकके समान व्यूह बनाओ (यह व्यूह मैसीडोनिया वालोंकी फैलेंक्सके तुल्य होता है) परन्तु अर्जुन वज्र व्यूह बनाना चाहता है। दुर्योधन अभेद्य व्यूह बनानेको कहता हैं।

हिन्दुओंकी भौमिक सेनामें (land army) सवार और प्यादोंके अतिरिक्त हाथी और रथ भी होते थे। यदि प्रबन्ध अच्छा हो और अस्त्र शस्त्र ठीक हों तो हाथी जिनको मैकौले ने जीवित रैम (दीवारें ढानेकी कल) कहा है बहुत सहायता देते हैं। उन हाथियोंके विषयमें जो चन्द्रगुप्त ने सेल्युकसको दिये थे उपाध्याय मैक्स डङ्कर कहते हैं कि "इन्हीं हाथियोंकी सहायतासे सिल्यूकस ने एण्टीयोनसको फ्रीजियामें इप्ससके युद्धमें हराया था जिससे सीरिया, एशिया कोचकके आदि देश सिल्यूकसके आधीन हो गये" टेसियस (Ctesius) ने लिखा है कि साइरसके पराजय होने और मारे जानेका केवल यही कारण हुआ कि शत्रुकी सेनामें भारतीय हाथी थे *।

आजकलके भी हिन्दुस्तानियोंकी युद्ध सम्बन्धी योग्यताके विषयमें सरचार्लस नैपियर जो इस विद्याका प्रसिद्ध मनुष्य गिना जाता है लिखता है कि "मैंने इनसे अच्छे या इनसे वीर सिपाही कभी नहीं देखे। यह हमारे सिपाहियोंसे अधिक गम्भीर, उतने ही साहसी और केवल शरीरमें ही कुछ कम होते हैं। मैं जहां तक जांच कर सकता हूं। तीनों सूबोंकी भारतीय सेनाके यही लक्षण हैं, मेरे आधीन हर सूबेके मनुष्यों ने काम किया है"* (इंडियन रिव्यू कलकत्ता नोम्बर १८८५ पृ० १८१). सब जानते हैं कि हिन्दुस्तानी सिपाहियों ने अर्काट् की रक्षामें क्लाइवका कितनी वीरतासे साथ दिया और १७८२ में जब टीपूके साथ लड़ते लड़ते जनरल मैथ्यूज़ सेना सहित पकड़ा गया तो इन लोगों ने कैसे क्षत्रियत्व का परिचय दिया। इन लोगों ने स्वयं बड़ी उदारतासे अपने ऊपर विपत्ति डाल कर भी अपनी तुच्छ कमाई की पाई पाई भी बचा कर कैदी अफसरों के पास भेज दी और कहा "हम

---

* "आजकल हिन्दू लोग लड़ाईमें तोप खूब चलाते हैं इस विद्यामें वे हमसे बहुत बढ़कर हैं और उन्होंने युद्धमें हमको बहुत हानि पहुँचाई हैं। ये आगे की फौज और पंक्तियों पर एक साथ आक्रमण करते हैं और काम को इस वह ऐसी योग्यता पूर्वक करते हैं कि बहुधा उनके योरोपियन शत्रुओं ने इनकी बहुत प्रशंसा की है" एल्फिन्स्टनका भारतवर्षका इतिहास पृ० ८२

* हिन्दुओंकी हाथियोंके प्रबंधकी योग्यताने अलक्षेन्द्रके अनुयायियोंका ध्यान बहुत आकर्षित किया और भारतवर्षी लोग इतने दिनों इनको नौकरीमें रखे रहे कि हर एक हाथीवानको चाहे वह किसी मुल्कका क्यों न हो भारतवर्षी ही कहा जाता था" (विलसनका हिन्दू नाटक" जि० १. पृ० १५)

* युद्धमें हिन्दुस्तानके महाराजाके पहिले १० हजार हाथी और फिर ३००० बड़े मजबूत सिपाही रहा करते थे" मैक्स डङ्कर का 'प्राचीनताका इतिहास'।

"बुद्धदेवकी मृत्युके ६० वर्ष पीछे हिन्दुस्तानियोंने दारा के अनुयायी फारिसके राजाका साथ दिया था जब उसने यूनान पर चढ़ाईकी थी। उन्होंने हेलासमें होकर थिसलीमें जाड़े बिताये और फिर यूनानियोंको हराकर अथेन्सको जला दिया" मैक्स डङ्कर कृत प्राचीनताका इतिहास जि० ४ पृ० ३८४'

तो जैसे बने गुजारा कर ही लेंगे पर आपको तो मटन और बीफ़ (गायका मांस) ही चाहिये।" ऐसे अवसरों पर हिन्दुस्तानी सिपाहियोंकी उदारतासे उनका क्षत्रियत्व प्रकाशित होता है। जनरल वुल्ज़ले (Gen. Wolsley) ने 'टाइम्स' पर एक पत्र को एक लेख भेजा था जिसमें हिन्दुस्तानी सिपाहियोंकी वीरताकी बड़ी प्रशंसाकी थी। वह लिखते हैं कि 'लखनऊ के मुहासरे में इन लोगोंने अपूर्व वीरता दिखाई थी।'

मिस्टर एलिफन्स्टन कहते हैं कि हिन्दू लोग ऐसी वीरता दिखाते हैं कि वीर से वीर जाति भी उनका मुकाबिला नहीं कर सकती। यह लोग इज्जत या धर्मके लिये झट जान दे बैठते हैं। हमारी सेना के हिन्दू सिपाहियों ने दो बार ऐसे समय में धावा किया है जब अंग्रेज़ी गोरे पीछे भगा दिये गये थे। इनमें से एक बार तो फ्रांसीसियोंके सामने जाना पड़ा। इस इतिहास के अन्तमें मालूम होगा कि फौजकी फौज ने ऐसे समय में भी धावा कर दिया जब मौत सामने खड़ी थी"। (एलिफन्स्टन का भारत वर्षका इतिहास पृ० १६८) क्लाइव, लारेंस, स्मिथ, कूट, हालिबर्टन आदि बहुतसे लोगों ने हिन्दुस्तानी सिपाहियोंकी बड़ी प्रशंसा की है।

अब हिन्दुओंके अस्त्र-शस्त्रोंका हाल लिखा जाता है। उपाध्याय विलसन निश्चयपूर्वक कहते हैं कि हिन्दू लोग धनुर्विद्यामें बड़े दक्ष थे और घोड़े की पीठपरसे खूब तीर चलाते थे। धनुर्विद्या में उन्हें अपूर्व योग्यता थी। "हिन्दुओंको तीर चलानेका ऐसा अभ्यास था कि एक ही साथ ४ से लेकर ६ तक तीर चला लेते थे।" अर्जुनने द्रौपदी के स्वयम्बर में और भीष्मकी मृत्युपर तीर चलानेमें जो चातुर्य्य दिखाया था उसको सुनकर सब लोग प्रशंसा करते हैं। हिन्दुओंकी धनुर्विद्या में कुछ कुछ बातें ऐसी हैं जो ठीक ठीक समझमें नहीं आतीं। यदि तीर लक्ष्यको भेद न सकता था तो मारनेवालेके पास लौट आता था। इसको सब लोग मिथ्या समझते थे लेकिन जब आस्ट्रेलियावालोंके बोमरैंग को देखा तो आँखें खुलीं[१]

१८५१ और १८६२ की अन्यान्य जातीय प्रदर्शिनीमें बहुतसे युद्धके शस्त्र और कुल्हाड़े दिखलाये गये थे जिनके विषयमें एक विद्वान् लिखता है कि "यद्यपि हिन्दू शस्त्र जड़ाऊ और सुन्दर भी हैं परन्तु उनके लोहेके वास्तविक गुण भी बहुत प्रशंसनीय हैं"। मैनिंगका प्राचीन और मध्यकालीन भारत, जि० २ पृ० ३६५)

प्राचीन हिन्दुओंकी तलवार चलानेकी योग्यता तो इसीसे जानी जा सकती है कि फार्सीमें हिन्दुस्तानी उत्तर देनेका तात्पर्य यह है कि हिन्दुस्तानी तलवारसे घाव कर देना। हिन्दुस्तानी तलवार चलानेवाले दुनियां भरमें प्रसिद्ध थे। अरबके प्रसिद्ध काव्य सबअ मुअल्लक़में लिखा है कि "निकटके सम्बन्धियोंकी क्रूरता हिन्दुस्तानीकी तलवारके घावसे भी तीक्ष्ण है"*

टीसियस (Ctesias) लिखता है कि हिन्दुस्तानी तलवार दुनियां भरमें अच्छी होती थीं" (मैक्स डङ्करका प्राचीनताका इतिहास जि० ४ पृ० ४३६)।

हिन्दू शस्त्रोंके निम्नलिखित पांच भेदोंमें सब प्रकारके शस्त्र आ जाते हैं (१) यंत्रमुक्त (२) हस्तमुक्त (३) मुक्तमुक्त (४) वे शस्त्र जो फेंके नहीं जाते जैसे तलवार, गदा आदि (५) प्राकृतिक शस्त्र जैसे घूंसा आदि। कुछ प्राचीन हिन्दू अस्त्र जो अब पाये नहीं जाते यह हैं, भिंडीपल, तोमर, नाराच, परशु, ऋष्टि, पत्तिष, कृपाण, क्षेपणी, पाश आदि।

---

[१] धनुषके अतिरिक्त अन्य शस्त्र भी थे जैसे चक्र, गदा, बर्छी, तलवार, कुल्हाड़े, ढालें, खोल, ज़रा बक्तर इत्यादि (देखो विलसनके निबन्ध जि० २, पृ० १९१-१९२)

* तफसीर अज़ीज़ीमें लिखा है।

تیغ هندی و خنجر رومی ـ نه کند آنچه انتظار کند

आधुनिक युद्धशास्त्रकी विलक्षणता यह बताई जाती है कि इसमें आग्नेयास्त्र (Fire arms) बहुत प्रयुक्त होते हैं। कहा जाता है कि इनका आविष्कार यूरोपवालों ने किया और हिन्दू लोग इनसे बिलकुल अनभिज्ञ थे। परन्तु यह बात ठीक नहीं हैं। यद्यपि आजकल हिन्दू शस्त्र विद्याके ग्रन्थ नहीं मिलते तो भी काव्यों और पुराणोंमें अभी इतनी सामग्री है जिससे न केवल यही सिद्ध होता है कि हिन्दू लोग आग्नेय अस्त्रोंको जानते और प्रयुक्त करते थे किन्तु उन्होंने इस विद्यामें बहुत उन्नति की थी। मध्यकालीन भारतवर्षमें तो तोप और बन्दूकें बहुत ही चलती थीं। १२वीं शताब्दीमें पृथ्वीराजकी फौजमें तोपें थीं। पृथ्वीराजरासोका २५वां कवित्त यह है।

नृप पंग नयर छुटे फुजराब।
कोटह कंगर चढ़ि चढ़ि सिताब॥
जंबर तोप छूटहि गने कि।
दश कोश जाय गोला भने कि॥
सिरदार भार वाराह रोह।
लंगी अभंग वर हनै कोह॥

भारतीय इतिहासवेत्ता राजा कुन्दनलाल जो अवधके बादशाहके दर्बारमें रहते थे कहते हैं कि बादशाह के पास लछिमा नामक तोप थी जो पहिले अजमेर के पृथ्वीराजकी थी। इसने नियम पूर्वक युद्ध शास्त्र, डाकखाने और आमसड़कोंका वर्णन किया है (मुन्तखब तफर्सीहुल अखबार पृ० १४९, १५०)

"मैफ़ी लिखता है कि हिन्दुस्तानी सिपाही आग्नेयास्त्रोंके चलानेमें पुर्तगालवालोंसे अधिक चतुर थे।" (Hist. Indica p. 25)

वोहलिन ने एक और इतिहास के प्रमाणसे कहा है कि एक हिन्दुस्तानी महाराजा अपनी सेना-के सामने पीतलकी तोपें रक्खा करता था (Das Alte Indian vol II p. 63)

"फैरिया सौज़ा लिखता है कि १५०० में गुजरातके एक जहाज़ने पुर्तगालवालों पर तोपें चलाईं, (Asia Portuguesa, Tom I· Part I chapter 5) और १५०२ में कालीकटवालोंने तोपें चलाईं। जमोरिनके पोतमें दूसरी साल ३८० तोपें थीं (chapter 7)।

लेकिन अब हम प्राचीन भारतवर्षका हाल लिखते हैं। उपाध्याय विल्सन ने* लिखा है कि "साधारण शस्त्रोंमें एकका नाम वज्र है जिसको किसी चीज़के उड़ा देनेके काममें लाते थे। उड़ानेका काम बिना बारूद आदिके नहीं हो सकता"।

बारूदके विषयमें उपाध्याय विल्सनने लिखा है कि "वैद्यक ग्रन्थोंसे ज्ञात होता है कि हिन्दू लोग बारूदके तत्वों (अर्थात् गन्धक, कोयला और यवक्षार) को जानते थे और यह चीज़ें उनके पास बहुत थीं। ऐसा नहीं हो सकता कि वे इनकी पृथक पृथक वा संयोग दशामें दाह शक्ति को न जानते हों। इस अनुमानके अतिरिक्त अन्य प्रमाण हैं जिनसे ज्ञात होता है कि उन्हें आग्नेय अस्त्रोंका ज्ञान था जैसा वीररसके काव्योंमें दिया हुआ है।" (निबन्ध जि० २ पृ० ३०३)

प्राचीन यूनानी लेखक भी जो स्वयं बारूद आदिसे अनभिज्ञ थे हिन्दुओंकी युद्ध विधिका वर्णन करते हैं। "थेमिस्टियस लिखता है कि हिन्दू लोग दूरसे गरजते और बिजुलीके साथ लड़ते हैं"

---

*विल्सनके निबन्ध जि० पृ० ३०२ हिन्दुस्तानी लोग बहुत दिनोंसे आतशबाज़ीकी योग्यताके लिये मशहूर हैं। दशहरे पर बहुत दिनोंसे ऐसे अस्त्र चलाये जाते हैं। मिस्टर एलिफन्स्टन कहता है कि "दशहरा पर लड़ाईके पीछे लङ्काको आतिशबाज़ीके साथ जलाते हैं। इसको दुनियां भरके लोग पसन्द करेंगे। इस समय हिन्दुस्तानी राजोंका जो जलूस निकाला जाता है वह बहुतही उत्तम और मनोरञ्जक दृश्य होता है"

(एलिफन्स्टनका भारतवर्षका इतिहास पृ० १७८)

(Orat XXVII, p. 337. देखो Sp. Duten's origin of the discoveries attributed to the moderns p. 196)

अलक्षेन्द्रने अरिस्टोटलको एक पत्रमें लिखा था कि "मैंने भारतवर्षमें अपनी सेना पर अङ्गारे की एक चमक गिरती हुई देखी (देखो Dante's Inferno XIV. 31-7)

उन हिन्दुओंमें विषयमें जो अलक्षेन्द्रसे लड़े' मिस्टर एल्फिन्स्टन कहते हैं कि "आग्नेय अस्त्रोंको छोड़कर अन्य शस्त्र इनके वही थे जो अब हैं।" (भारतवर्षका इतिहास पृ० २४२)

अलक्षेन्द्र की पंजाब पर चढ़ाईके विषयमें फिलो-स्टेटस लिखता है—"यदि अलक्षेन्द्र हिफैसिस नदीके पार हो जाता तो कभी इन ऋषियोंके स्थानों-का स्वामी न बन सकता। इन लोगों पर यदि शत्रु चढ़ता है तो वे उसकी गरज़ और तूफानोंसे जो आकाशसे गिरते दिखाई पड़ते हैं भगा देते हैं। मिस्रके हर्कुलीज और बेकस दोनोंने मिलकर इन पर चढ़ाई की और अनेक यंत्रोंसे गढ़लेना चाहा। जब तक चढ़ाई हुई विद्वान लोग तमाशा देखते रहे परन्तु उसी समय आगके चक्रों और तूफानोंसे जो ऊपरसे बरसते थे चढ़ाई करनेवाले नष्ट होगये। (Philostrati Vit Apollen Lile. II C 33)

राजा हल्लने कशमीरके राजाके विरुद्ध लड़ाईमें यह चालाकी की थी कि मिट्टीका हाथी बनाया था जो फूट पड़ा। इस पर मिस्टर इलियटने लिखा है कि यहां केवल फटनेवाली बारूद ही नहीं थी किन्तु कोई ऐसी तरकीब भी थी जिससे वह नियत समय पर फटे" (इलियट कृत भारतका इतिहास जि० १ पृ० ३६५)

विश्वामित्र ने जहां रामको अनेक प्रकारके अस्त्र दिये हैं वहां रामायणमें एक आग्नेय है दूसरा शिखर

'आग्नेयमस्त्रन्दयितं शिखरन्नाम नामतः'

कैरी (Careys) और मार्शमान (Marsh man) की राय है कि शिखर जलनेवाला अस्त्र था।" *

महाभारतमें लिखा है कि एक घूमते हुए गोले से गरज सी निकलती थी, स्कोलियस्ट कहता है कि यह युद्ध सम्बन्धी थी" (Bohlen Das Alte Indien II 66)

आग्नेय अस्त्रोंके विषयमें हरिवंशमें लिखा है।

आग्नेयमस्त्रं लब्ध्वा च भार्गवात्सगरोनृपः।
जिगाय पृथ्वी हत्वा ताल जङ्घान्सहैहयान्॥

महाराजा सगरने भार्गवसे आग्नेय अस्त्र लेकर संसार को जीत लिया और ताल जङ्घा और हैहय लोगोंको मार डाला"। एम लैंगलोइस ने लिखा है कि यह आग्नेय अस्त्र भृगुवंशी भार्गवके थे, (हरि-वंश पृ० ६८) फिर लिखा है

उर्व्वस्तु जातकर्म्मादि तस्य कृत्वा महात्मनः॥
अध्याप्य वेदानखिलांस्त तोस्त्रंप्रत्य पादयत्।
आग्नेयन्तु महाबाहुरमरैरपि दुस्सहम्॥
सतेनास्त्र बलेनाजौ बलेनच समन्वितः।

"उर्व्व ने महात्माके जन्मके समय जातकर्मादि सन्सकार किया और वेदोंको पढ़ाकर अस्त्र-शास्त्र सिखलाया उर्व्वने उसे आग्नेय अस्त्र दिये जिनको अमर देवता भी सहन नहीं कर सकते।"

क्रमशः

---

*बहुत प्रकारके अस्त्र लिखे हैं जिनमें कोई कोई तो असाधारण हैं चूंकि यह मालूम नहीं कि यह कैसे थे, कैसे बनते थे और किस प्रकार चलते थे इसलिये लोग समझते हैं कि यह सब कविताकी तरङ्गें हैं। मिस्टर इलियट लिखते हैं कि "इनमें बहुतसे तो कल्पित शस्त्र हैं जैसे वायव"। परन्तु क्या ५० वर्ष पहिले लोग ग्रामोफौन, सिनामीटो-ग्राफ और वायरलेस टेलीग्राफी (जिसमें तारसे काम नहीं लिया जाता) को कल्पित न समझते।

समालोचना

अनेकान्त

मासिक पत्रिका—सम्पादक श्री जुगलकिशोर मुख्तार। प्रकाशक समन्त भद्राश्रम, करोलबाग देहली, वार्षिक मूल्य ४)। कागज, छपाई उत्तम।

यह अनेकान्तवाद की प्रचारक जैनधर्मीय पत्रिका है जिसका दूसरा अङ्क हमारे पास समालोचनार्थ भेजा गया है। इसमें सम्पादकजीका 'पात्र केसरी और विद्यानन्द' सम्बन्धी लेख तथा नाथूराम प्रेमी का कर्णाटक जैन कवि निबन्ध मननशील हैं। कविताओंका चुनाव भी साधारणतः अच्छा ही है। 'हमारी शिक्षा' नामक लेख भी उपयोगी है। हमें आशा है कि यह सुन्दर पत्रिका जैन समाजमें जागृति एवं स्फूर्ति उत्पन्न करनेमें सफल होगी। हम इसकी हृदयसे उन्नति चाहते हैं।

स्वास्थ्य संलाप

ले० श्रीकृष्णानन्द गुप्त, भूमिका लेखक डा. एन. आर. धर, प्रकाशक साहित्यसदन-चिरगांव झांसी। पृ० सं० १६४. सुन्दर सजिल्द। मूल्य ॥=)। छपाई कागज़ उत्तम।

साहित्यसदन, झांसीसे प्रकाशित होनेवाला यह चौथामणि है। लेखकने शान्ता, मास्टर साहब और सन्तू इन तीन पात्रोंके द्वारा संवाद रूपमें सम्पूर्ण पुस्तकको यथा संभव मनोरञ्जक बनानेका प्रयत्न किया है। जैसा कि नामसे ही विदित है, इस पुस्तकका विषय 'स्वास्थ्यसे' सम्बन्ध रखता है। यह पुस्तक साधारण जनता और विशेषतः बालकों के लिये लिखी गई प्रतीत होती है। यद्यपि स्वास्थ्य सम्बन्धी गूढ़ नियमोंका समाधान इसमें नहीं किया गया है, जोकि होना भी नहीं चाहिये था, तथापि इसमें उन साधारण सिद्धान्तोंकी मनोरञ्जक रूपसे चरचाकी गई है जिनका जानना प्रतिदिनकी जीवनचर्य्याके लिये नितान्त आवश्यक है। दांतकी रक्षा, जल, वायु, एवं प्रकाशकी उपयोगिता, मक्खी मच्छरोंका दुष्प्रभाव, तमाखू, सिगरेट, सोना उठना, वस्त्र आदि सम्बन्धी समस्त आवश्यक वार्त्तायें इस पुस्तकमें वर्णित हैं। व्यायामके साधारण एवं सरल उपाय जो प्रत्येक विद्यार्थी आसानीसे विशेष व्यय अथवा उपचार किये बिना ही कर सकता है, इस पुस्तिकामें दिये गये हैं। तात्पर्य्य यह है कि यह पुस्तक बहुत ही उपयोगी है और इसका यथोचित प्रचार होना चाहिये।

पुस्तकके लेखक उदीयमान गल्प लेखक भी हैं, उनकी भाषा स्वभावतः साहित्यिक है, अतः स्वास्थ्य संलाप नामक पुस्तकको यथा-सम्भव सरल एवं मनोरञ्जक बनानेके प्रयत्नमें भाषा कुछ अस्वाभाविक हो गई है। पर इस दोष ने विषयकी मीमांसामें अधिक बाधा नहीं डाली है। हम लेखकको इस सुन्दर छोटी एवं परमोपयोगी पुस्तकके लिये बधाई देते हैं।

दूर्वादल

ले० श्री सियारामशरण जी गुप्त, प्रकाशक साहित्य सदन, चिरगांव झांसी पृ० सं० १११, मूल्य ॥=)। सुन्दर सजिल्द। छपाई कागज़ उत्तम।

मौर्य्य विजयके समयसे ही श्री सियारामशरण जी गुप्त की ख्याति हिन्दी काव्य जगत्में बढ़ती आरही है। यद्यपि आरम्भमें आप अपने भाई श्रद्धेय गुप्तजीकी रीतिके अनुगामी थे, पर अब दोनोंकी रचनाओंमें समुचित अन्तर उत्पन्न होगया है। मैथिलीशरणजीकी कविताओंमें हृदयावेशके साथ साथ सात्विकी एवं तामसी वृत्ति विद्यमान है जो कभी २ जातीयताके रूपमें भी विसर्जित होने लगती है, पर आपके अनुजके काव्यमें विशुद्ध हृदयावेश ही है, और वह भी यौवनोन्माद और नैराश्यसे संयुक्त हो कर करुणपूर्ण रूप धारण कर लेता है। एक भाई बड़े होने पर भी आशावादी और दूसरे अनुज पर निराशावादी हैं। अस्तु, दूर्वादलमें सियारामशरण

जीकी पुरानी। संवत् १९७१ से १९८१ तक की दस वर्षकी) ३५ कविताओंका संग्रह है। संवत् १९८१ के पश्चात् इधर चार पांच वर्षोंमें कविताकी प्रगति बहुत कुछ परिवर्तित हो गई है, और सियारामशरण की रचनायें भी इस क्रान्तिकारी आन्दोलनके प्रभावसे बच नहीं सकी हैं।

'दूर्वादलके' कविकी रचनाओं पर संक्षेपतः यह टिप्पणी की जा सकती है—रचनायें हृदयकी अपेक्षा आत्माको अधिक प्रभावित करने वाली हैं। इनमें कल्पनाकी अपेक्षा सदाचारकी अधिक प्रधानता है। यद्यपि कहीं-कहीं कल्पना उच्चश्रेणीकी है पर धार्मिकता अथवा सदाचारने उनपर इतना आधिपत्य जमा लिया है कि उस कल्पनाके आनन्द लेनेका अवसर ही नहीं आता है। यही कारण है कि कल्पना ऊँची उड़ान लेनेमें असमर्थ रही है। कविताओंमें निराशावादकी स्पष्ट झलक है। पर इसका तात्पर्य्य यह कदापि नहीं है कि कवितायें अच्छी नहीं हैं। 'अभागा फूल' सुन्दर रचना है पर भावमें नवीनता नहीं है। गृहप्रदीपकी ये पंक्तियाँ अत्यन्त कोमल हैं—

वह भी हा ! बुझ गया अचानक
चिन्ता है अब यही विशेष
बाहरसे ही लौट न जाओ
घरमें कहीं अंधेरा देख

पर इनसे भी उत्तम और उत्कृष्ट पंक्तियाँ ये हैं।

जब इस तिमरावृत मन्दिरमें
उषालोक कर उठे प्रवेश
तब तुम हे मेरे हृदयेश
इस दीपककी जीवन ज्वाला
कर देना तुरन्त निःशेष

जीवन दीपकका निःशेष कर देना भी उषाकालमें श्रेयस्कर होता है, ये एकदम अछूते भाव हैं, सर्वथा मौलिक और अनुपम हैं। मालीके प्रति ये शब्द 'अरे काटही डालो इसको अथवा हरा भरा कर दो' रोमाञ्चकारी हैं। वासनाओंके पत्थरोंसे यदि गुप्त जी को कोई भय है तो यही—'छिपा हुआ है पद्मासन जो यहीं तुम्हारे लिये कहीं, उसके ऊपर चोट न आवे'।

परीक्षा, विश्वास, सुजीवन आदि कुछ रचनायें धार्मिकताके बोझसे दबकर कवित्वहीन होती जारही हैं। लेखनी, निर्विवेक, तथा मूर्ति पुरानी प्रणाली की अन्योक्तियोंके समान हैं। जलधर का अनौचित्य भा ुक है। जननी नामक कविता realistic poems में अच्छा स्थान पा सकती है। 'समीर के प्रति' भी सुन्दर रचना है। 'घट' और वृद्ध नैराश्यपूर्ण भयावह कवितायें हैं। 'वीणा' रचना भी सफल कही जासकती है। 'सत्वर सोजानेवाले ये दीपक सो जावेंगे जब, प्रियतम तब आवेंगे, तब' में भी जीवन दीपककी एक झलक है। ऐसा प्रतीत होता है कि दीपकका उल्लेख करना कविका स्वभाव होगया है क्योंकि आपकी रचनाओंमें दीपक सर्वव्यापक नहीं तो बहुव्यापक अवश्य है। बाढ़ और पथ विवरणात्मक रचनायें हैं। 'वर्ष प्रयाण' भी हृदय ग्राही है। हमें आशा है कि दूर्वादलका अच्छा सम्मान होगा।

सत्यप्रकाश

वैज्ञानिक पुस्तकें

विज्ञान परिषद् ग्रन्थमाला

१—विज्ञान प्रवेशिका भाग १—ले० प्रो० रामदास गौड़, एम. ए., तथा प्रो० सालिग्राम, एम.एस-सी. ।)
२—मिफ़ताह-उल-फ़नून—(वि० प्र० भाग १ का उर्दू भाषान्तर) अनु० प्रो० सैयद मोहम्मद अली नामी, एम. ए. ... ... ।)
३—ताप—ले० प्रो० प्रेमवल्लभ जोषी, एम. ए. ।=)
४—हरारत—(तापका उर्दू भाषान्तर) अनु० प्रो० मेहदी हुसेन नासिरी, एम. ए. ... ।)
५—विज्ञान प्रवेशिका भाग २—ले० अध्यापक महावीर प्रसाद, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद १)
६—मनोरंजक रसायन—ले० प्रो० गोपालस्वरूप भार्गव एम. एस-सी. । इसमें साइन्सकी बहुत सी मनोहर बातें लिखी हैं। जो लोग साइन्स-की बातें हिन्दीमें जानना चाहते हैं वे इस पुस्तक को जरूर पढ़ें। ... १॥)
७—सूर्य सिद्धान्त विज्ञान भाष्य—ले० श्री० महावीर प्रसाद श्रीवास्तव, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद
मध्यमाधिकार ... ... ॥=)
स्पष्टाधिकार ... ... ।॥)
त्रिप्रश्नाधिकार ... ... १॥)
चन्द्रग्रहणाधिकारसे उदयास्ताधिकारतक १॥)

'विज्ञान' ग्रन्थमाला

१—पशुपक्षियोंका शृङ्गार रहस्य—ले० अ० सालिग्राम वर्मा, एम.ए., बी. एस-सी. ... -)
२—ज़ीनत वहश व तयर—अनु० प्रो० मेहदी-हुसैन नासिरी, एम. ए. ... ... -)
३—केला—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली -)
४—सुवर्णकारी—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली ।)
५—गुरुदेवके साथ यात्रा—ले० अध्या० महावीर प्रसाद, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद ।=)
६—शिक्षितोंका स्वास्थ्य व्यतिक्रम—ले० स्वर्गीय पं० गोपाल नारायण सेन सिंह, बी.ए., एल.टी. ।)
७—चुम्बक—ले० प्रो० सालिग्राम भार्गव, एम. एस-सी. ... ... ।=)
८—क्षयरोग—ले० डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा, बी. एस. सी, एम-बी. बी. एस ...
९—दियासलाई और फ़ास्फ़ोरस—ले० प्रो० रामदास गौड़, एम. ए. ... ... -)
१०—वैज्ञानिक परिमाण—ले० डा० निहाल करण सेठी, डी. एस. सी. तथा श्री सत्य-प्रकाश, एम. एस-सी० ... ... १॥)
११—कृत्रिम काष्ठ—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली -)
१२—आलू—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली ... ।)
१३—फसल के शत्रु—ले० श्री० शङ्करराव जोषी ।=)
१४—ज्वर निदान और शुश्रूषा—ले० डा० बी० के० मित्र, एल. एम. एस. ... ... ।)
१५—कार्बनिक रसायन—ले० श्री० सत्य-प्रकाश एम-एस-सी० ... ... २॥)
१६—कपास और भारतवर्ष—ले० पं० तेज शङ्कर कोचक, बी. ए., एस-सी. ... -)
१७—मनुष्यका आहार—ले० श्री० गोपीनाथ गुप्त वैद्य ... ... १)
१८—वर्षा और वनस्पति—ले० शङ्कर राव जोषी ।)
१९—सुन्दरी मनोरमाकी करुण कथा—अनु० श्री नवनिद्धिराय, एम. ए. ... ... -)॥

अन्य वैज्ञानिक पुस्तकें

हमारे शरीरकी रचना—ले० डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा, बी. एस-सी., एम. बी., बी. एस.
भाग १ ... ... २॥।)
भाग २ ... ... ४)
चिकित्सा-सोपान—ले० डा० बी० के० मित्र, एल. एम. एस. ... ... १)
भारी भ्रम—ले० प्रो० रामदास गौड़ ... १।)
वैज्ञानिक अद्वैतवाद—ले० प्रो० रामदास गौड़ १॥=)
वैज्ञानिक कोष— ... ... ४)
गृह-शिल्प— ... ... ॥)
खादका उपयोग— ... ... १)

मंत्री
विज्ञान परिषत्, प्रायग

मुद्रक—सूरजप्रसाद खन्ना, हिन्दी-साहित्य प्रेस, प्रयाग

pproved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and
पूर्ण संख्या—१७८ Central Provinces for use in Schools and Libraries. Reg. No. A.708

भाग ३० Vol. 30. मकर, संवत् १९८६ संख्या ५ No. 5

फरवरी १९३०

प्रयागकी विज्ञानपरिषत्‌का मुखपत्र

Vijnana, the Hindi Organ of the Vernacular Scientific Society, Allahabad.

अवैतनिक सम्पादक

ब्रजराज

एम. ए., बी. एस-सी., एल-एल, बी.

सत्यप्रकाश,

एम. एस-सी., एफ. आई. सी. एस.

प्रकाशक

वार्षिक मूल्य ३)] विज्ञान-परिषत्, प्रयाग [१ प्रतिका मूल्य ।)

विषय-सूची

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५।

भाग ३० { कुम्भ, संवत् १९८६ } संख्या ५

प्राचीन युद्ध शास्त्र

[ले० पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय एम० ए०]

(गतांक से आगे)

ब्रह्मास्त्र का तो संस्कृत ग्रन्थोंमें बहुत वर्णन है। उपाध्याय विलसन ने संस्कृत कोषमें ब्रह्मास्त्र का यह अर्थ दिया है कि "यह एक कल्पित शस्त्र है जो ब्रह्मासे आया है।" इसका प्रयोग देखना हो तो आप श्री भागवत् को देखिये जहाँ द्रोण के पुत्र और अर्जुन ब्रह्म अस्त्रसे लड़े थे। रेवरेंड के० एम० बनर्जी अपने ग्रन्थ 'दी इन्साइक्लोपीडिया बेङ्गालेन्सिस' में कहता है कि ब्रह्मअस्त्र शायद आजकल की बन्दूककी भाँति का कोई अस्त्र था' (जि० ३ पृ० २१) 'आईसिस अन्वेल्ड' के १४ वें अध्यायमें मैडम ब्लेवेट्स्की कहती हैं कि प्राचीन समयमें हिन्दू लोग आग्नेय अस्त्रोंको चलाते थे।"

अयोध्याके बयानमें लिखा है कि क़िलेकी दीवारों पर यन्त्र रक्खे हुए थे जिससे प्रकट होता है कि उन दिनोंमें क़िलेकी रक्षाके लिये तोप वा ऐसे ही कोई अस्त्र रक्खे जाते थे।

रामायणमें दुर्ग रक्षा के विषयमें लिखा हैं, जिस प्रकार स्त्री भूषण पहिनती है इस प्रकार बुर्जों पर नाश करनेवाले यन्त्र रक्खे जाते हैं (रामायण सुन्दर काण्ड ३ सर्ग श्लोक १८)। इससे प्रकट है कि तोपें वा तोपके सदृश युद्धके अन्य यन्त्र जिनसे चक्र आदि फेंके जाते थे उस समय काममें लाये जाते थे।

किलों और युद्धोंके बयानमें शतघ्नियों का नाम आता है। शतघ्नी "सौ को एक साथ मारने वाले" को कहते हैं। संस्कृत कोशोंमें लिखा है कि शतघ्नी एक यन्त्र* होता है जिसमें से लोहेके टुकड़े और अन्य वस्तुएं बहुत से मनुष्यों को मारनेके लिये निकल पड़ती हैं। इसका दूसरा नाम वृश्चीकाली है (राजा सर राधाकान्त देव का शब्द कल्पद्रुम)।

रामायण के निम्न श्लोकों में शतघ्नी और ऐसे ही अन्य यन्त्रों का वर्णन है।

३ सर्ग के १२, १३, १६, १७ श्लोक

४ सर्गके	२३ श्लो०
२१ ,,	आखिरी श्लो०
३६ ,,	३६ ,,
६० ,,	५४ ,,
६१ ,,	३२ ,,
७६ ,,	६८ ,,

रामायणमें लिखा है कि शतघ्नी लोहेकी होती थी। सुन्दर काण्डमें लिखा है कि इसका आकार लकड़के ठूंठका बड़े कलोंका सा होता है और यह वृक्षोंके तनेके समान होती है। "वे किलों पर ही नहीं रक्खी जाती थीं किन्तु लड़ाईमें भी जाती थीं और बादलकी सी गरज निकलती थी"। फिर भला यह तोप नहीं तो क्या है?

रामायणके अतिरिक्त पुराणोंमें भी शतघ्नियोंके किलों पर रखने और आवश्यकतानुसार चलानेका वर्णन है। (देखो मत्स्यपुराण, राज विद्या) इस पुराणमें इसको 'सहस्र घाती' कहा है। सहस्र और शत असंख्य के बोधक हैं†। लंकामें रावणके यहाँ तोपें थीं जिनको स्थुलत यंत्र कहते थे।

हलहद ने जेन्तू शास्त्र (हिन्दू शास्त्र) के एक वाक्यकी कि "हाकिमोंको किसी धोखेकी कल, विषयुक्त अस्त्र, तोप बंदूक या किसी आग्नेय अस्त्रसे नहीं लड़ना चाहिये," व्याख्या करते हुये लिखा है "शायद पाठकों को यह सन्देह होगा जिसको अब-तक कोई नहीं मानता कि अलक्षेन्द्रको भारतवर्ष में ऐसे अस्त्र मिले थे। यह बात क्विन्टस कर्टियसके लेखसे भी पाई जाती है। बारूदको चीन और हिन्दुस्तान वाले बहुत दिनोंसे जानते थे। अंग्रेज़ीका 'फायर आर्म' वस्तुतः संस्कृत शब्द अग्नि-अस्त्र ही है। पहिले पहिल इस अस्त्रमें तीरके किनारे पर बारूद होती थी जिसको बांसमें से छोड़ते थे। इसके अनेक गुणोंमें से एक यह था कि छूटने पर इसमें से कई ज्वाला निकलती थीं जो कभी बुझ नहीं सकती थीं। पर अब इस प्रकारका अग्नि अस्त्र नहीं मिलता" हलहद (Halhed) का जेण्टू धर्म शास्त्र भूमिका, पृ० ५२ देखो अमरकोष, और शब्द कल्पद्रुम जि० १ पृ० १६।

आगे लिखा है कि "तोपको शतघ्नी कहते हैं जो एक साथ सौको मारती है। पुराणोंमें लिखा है कि इन नाश करनेवाले यंत्रोंको विश्वकर्मा ने बनाया था जो हिन्दुओंका वल्कन* था।"

मिस्टर एच० एच० इलियट ने जो इण्डियन गवर्नमेंटका विदेश सम्बन्धी मंत्री था (१८४५) प्राचीन भारतवर्षके आग्नेय अस्त्रों पर विचार करते हुये लिखा है कि "हमको मानना पड़ता है कि भारतीय इतिहासके शुरूके समय किसी न किसी प्रकारके अग्नि अस्त्र उपस्थित थे, यंत्र फट जाते थे और उनके जलनेका समय और प्रकार इच्छानुसार था। मकानों और फाटकोंको तोड़नेके लिये भी कलें थीं और इनमें बहुत दूरसे भी आग लगाई जा सकती थी। शायद यह लोग यवक्षार जो बारूदमें पड़ता है और उसके जलनेके

* यन्त्र वह है जिससे कोई चीज़ फैंकी जाय।

† शतघ्नी और मतवल में भेद है। मतवल पर्वतसे लुढकाया जाता है। शतघ्नीसे गोले फेंके जाते हैं। जमेर एक और अस्त्र है जो पत्थरों द्वारा शत्रुका नाश करता था (देखो मुहम्मद क़ासिमके युद्धका हाल।

* वल्कन (Vulcan) यूनानियों का एक महापुरुष था।

गुणको भी जानते थे क्योंकि गंगातटमें यह बहुत मिलता है जिसको विना आगके पानी उड़ाकर क्षार करके और जमानेसे बना लेते होंगे। और इसमें गन्धक भी मिलाते होंगे, क्योंकि यह पश्चिमोत्तरीय भारतवर्षमें बहुत मिलता है" (Bibliographical index to the Historians of M. India Vol. I p. 373.)

उपाध्याय विल्सन कहते हैं कि "हवाइयोंको शायद हिन्दुस्तानियों ने ही निकाला है। जब यूरोपवाले यहां आये उससे बहुत पहिलेसे यह सेनाओंमें काममें आती थीं।"

कर्नल टाड लिखते हैं "यदु भान (कृष्णके पोते वज्रका पोता था) से जिसका अर्थ है 'यदुवंशियोंकी हवाई' प्रकट है कि बारूद बहुत पहिले मालूम थीं ।"

(राजस्थान जि० २ पृ० २२०)

यूरोपवाले हवाईको अब तक नहीं जानते थे। "अच्छेसे अच्छे प्रमाणोंसे ज्ञात होता है कि हवाई पहिले पहिल कोपिनहेगनके मुहासरेमें १८०७ में चलाई गई थीं।" (Penny Encyclopaedia V Rocket)

मिस्टर इलियट लिखता है "बड़ा आश्चर्य है कि यूरोपवाले हवाईको अग्नि सम्बन्धी अस्त्रोंमें नया समझते हैं" (Bibliographical Index to the Historians of Mohamedan India Vol. I V. 357)

प्राचीन भारतवर्षमें ऐसे यन्त्र थे जिनसे लोहेके गोलों और ठोस अस्त्रोंके अतिरिक्त पिघली हुई बारूद भी दूरसे फेंकी जा सकती थी। मालूम नहीं कि यह किस किस चीज़से बनती थी परन्तु इसका परिणाम बहुत आश्चर्यजनक होता था।

टेसियस (Indica excerpta XXVII p. 356) इलियन (De Natura Animal Lib. cap. 3) और फिलोस्ट्रेटस (Philostrati vita Apollonu Lib III cap 1.) आदि सबने लिखा है कि हिन्दू लोग एक तेल बनाकर उसे लड़ाइयोंमें दीवारों और नगरोंके ढानेमें प्रयुक्त करते थे जिसे कोई कल भी रोक नहीं सकती थी और जो कभी नहीं बुझता था। यह शस्त्र और योद्धा दोनों को जला देता था।

लैसिनने लिखा है कि "टेसियसने माना है कि 'यूनानी अग्निके तुल्य हिन्दुओंके पास भी कुछ था। वे एक प्रकारका जलनेवाला तेल बनाते थे जो शत्रुके शहरों और किलोंको जला देता था" (Lassen Ind. Alt. II. p. 641.)

अपने ग्रन्थ "औकल्ट साइन्सेज़" में यूसीबी सालवर्ट कहता है कि "उस आगसे जो लहरोंमें जाकर जल उठती है और शब्द करती है यह प्रतीत होता है कि प्राचीन समयमें हिन्दुस्तानी लोग 'यूनानी आग' को जानते थे और उसको 'बड़वा' नामसे पुकारते थे" (इंग्रेजीका अनुवाद जि० २ पृ० २ ३)

परन्तु वह बात जिसमें प्राचीन हिन्दू आजकल के यूरोपवालोंसे बढ़ गये हैं इनकी अश्तुर विद्या (Ashtur Vidya) है। आजकलके सिपाही अस्त्रविद्या नहीं जानते। इससे वायुमें कई प्रकार की वस्तुएं मिलाकर शत्रुकी सेनाको उसमें घोंटकर मार देते थे। सेनाको यह मालूम होता था कि वे आग बिजली और पानीके अंशयुक्त अंधेरी, विषयुक्त, धुएंधार और नाश करनेवाली हवामें फंस गये। जिसमें डरावने और जंगली जानवरों (सांप, व्याघ्र) कीसी तसवीरें होती थीं और डरावने शब्द निकलते थे। वे अपने शत्रुओं को इस प्रकार मारते थे। (थ्योसोफिस्ट मार्च १८८१, पृ० १२४)।

जिस सेनाके विरुद्ध यह विद्या चलाई जाती थी वह भी अश्तुर विद्याकी किसी क्रियाके अनुसार इसका प्रतीकार करती थी। कर्नल अलकाट यह भी लिखते हैं कि "अस्त्र विद्यामें जिसका आजकलके विद्वानों को पता तक नहीं है यह शक्ति थी कि चढ़ाई करनेवाली सेनाको विषयुक्त वायु द्वारा जिसमें डरावनी शकलें और भयानक शब्द होते थे

बिलकुल नष्ट कर देते थे"। यह विद्या अनेक बार चलाई गई। रामायणमें इसका वर्णन है। कार्त्तिक माहात्म्यमें लिखा है कि जलन्धरने अस्त्र विद्या चलाई जब उसके पिता महादेव (शिव) ने उसपर चढ़ाई की।

हिन्दू युद्ध शास्त्रकी एक और अद्भुत बात जिससे सिद्ध होता है कि प्राचीन समयके हिन्दुओं ने इस विद्यामें बहुत उन्नतिकी थी यह है कि हिन्दू लोग आकाशमें लड सकते थे। कहा जाता है कि प्राचीन हिन्दू "आकाशमें यात्रा कर सकते थे। न केवल चल ही सकते थे किन्तु आकाशमें लड़ भी सकते थे मानों मेघदेश जीतनेके लिये युद्धकी चीलें लड़ रही हैं। वायु भ्रमण विद्यामें पूर्ण होने के लिये उन्होंने इस विद्याकी सब बातों अर्थात् वायुकी तहों और तरङ्गों और अनेक प्रकारके गैसोंके तापक्रम, सील, घनत्व, और गुरुत्व आदि को सीख लिया होगा" (कर्नल अलकाटका इलाहाबादका व्याख्यान, १८८१ देखो थ्योसोफिस्ट मार्च १८८१)

विमान विद्या तो लुप्त ही हो गई। थोड़े दिन हुए कि प्राचीन ग्रन्थोंमें इस विषयमें जो कुछ मिलता था उसे लोग मिथ्या और अविश्वसनीय कह देते थे। परन्तु वायरलैस टैलीग्राफी और गुब्बारा आदिके नये आविष्कारोंने यूरोपवालोंको अब इस बातके माननेके लिये तैय्यार कर दिया है कि मनुष्यका ज्ञान इतनी भी उन्नति कर सकता है कि वे समुद्रकी तरह वायुमें भी भ्रमण कर सकें। और यदि दिनके पीछे रात्रिका आना निश्चित है तो उस दिनके आनेमें भी कुछ सन्देह नहीं जब न केवल यही सिद्ध हो जायगा कि प्राचीन हिन्दू लोग इस विद्यामें निपुण थे किन्तु लोग उन्हीं बातोंको प्राप्त कर लेंगे जिनको प्राचीन हिन्दुओंने प्राप्त किया जिससे मालूम हो जाय कि इन्होंने प्राचीन हिन्दुओंके तुल्य उन्नति कर ली है।

('हरविलास शारदाके ग्रन्थसे अनूदित')

कृत्रिम ओषधियाँ

[ले० ब्रजबिहारीलाल दीक्षित, एम० एस-सी०]

ओषधि विज्ञान भी ज्ञानकी एक ऐसी शाखा है जिसमें भारतवासी प्राचीन समयमें बढ़े चढ़े थे। कहीं विज्ञान का नाम भी न था किन्तु भारतीय वैद्य प्रत्येक वनस्पतिके छोटे बड़े पौदेको भलो भांति जानते थे। उसके रसोंका शरीर पर क्या प्रभाव पड़ता है और उससे क्या क्या रोग दूर हो सकते हैं, इन बातोंसे वह पूर्ण परिचित थे। हां, उनको आधुनिक प्रणालीके अनुसार पढ़े हुए बड़े बड़े वाक्कुशल तथा कर्ण कुशल नाम न मालूम थे। प्रत्येक रोगके निमित्त वे लोग कोई न कोई वनस्पति नियत कर देते थे और कभी कभी दो या अधिक भी और उसीके साथ किन किन मात्राओंमें वह वनस्पति-रस मिलाए जावें यह भी लिख देते थे। यही प्रणाली आधुनिक ओषधि विज्ञानमें भी काम आती है किन्तु अब वनस्पतिके स्थानमें विशेष विशेष रस लिखे जाते हैं जो या तो उन्हीं वनस्पतियोंसे निकले हैं या अन्य रासायनिक प्रतिक्रियाओंसे बनते हैं। किसी वनस्पतिका रस निकाल कर उसके शुद्ध रसोंको नियमित करके उनके नाम संस्कार करना इससे अधिक सुलभ है कि यह निकाला जावे कि वह वनस्पति किन किन रोगों पर कार्य्य कुशल होगी और उसका शरीर पर क्या प्रभाव पड़ेगा। यही हुआ भी, जब रासायनिक विज्ञानका प्रचार अधिक बढ़ा तो वैज्ञानिकों ने इन्हीं वनस्पतिओंका पठन पाठन आरम्भ किया, उनके रस निकाले और एश्वर्य्य कमाया किन्तु वास्तवमें इस ऐश्वर्य्यके भागी वही हैं जिन्होंने प्रथम वनस्पतिका शरीर पर प्रभाव निकाला। प्राचीन समयकी अपेक्षा ओषधियां अब भली अवश्य हो गई हैं, जिसके कारण यह हो सकते हैं कि (१) वह अब शुद्ध

मिलती हैं, (२) अनेक वनस्पतियोंका नियमित मात्रामें मिलाना और उनके रसकी उपलब्धि किञ्चित् क्लिष्ट कार्य्य है और अब उसके स्थानमें केवल शीशियोंमें से दो दो चार चार बूंद मिलानेसे काम चल सकता है, (३) छटाँकोंके स्थानमें अब केवल बूंदोंसे कार्य्य चलता है, सो भी ओषधि डाक्टरके यहांसे आकर सीधी मुंहको ही जानी पड़ती है जहां कि प्राचीन समयमें वनस्पतियोंकी अधिक मात्रामेंसे जिसमें विशिष्ट पदार्थ केवल १—½ % ही होता है, रस रोगी तथा उसके सम्बन्धियोंको निकालना पड़ता था (४) रसोंकी मात्रा प्राकृतिक वनस्पतिमें विभिन्न होती है किन्तु अब शुद्ध वस्तु मिल जानेसे रोग और रसकी मात्राका आन्तरिक सम्बन्ध भली भांति नियमित किया जा सकता है। वनस्पतिमें विशिष्ट रसके अतिरिक्त अनेक अन्य रस भी होते हैं जिससे वैद्य की इच्छाके प्रतिकूल ही रोगीको हानि लाभ हो सकता है। अब इसकी सम्भावना जाती रही। परन्तु इन सब बातोंके होते हुए भी इस बातका विचार करते हुए कि उस समयमें रासायनिक विज्ञानका कहीं किसी ने स्वप्न भी न देखा था, भारतवासियों ने जो वृद्धि इस ओषधि ज्ञानमें की थी उसकी तुलनामें ओषधि विज्ञानमें आधुनिक वृद्धि कुछ भी नहीं कही जा सकती है। इन वनस्पति रसोंके निकलनेके बाद, उनका संश्लेषण करनेमें भी अधिक दिन न लगे किन्तु फिर भी कुछ ऐसे रस रह गए हैं जो अब तक संश्लेषित नहीं हुए। प्राकृतिक रसोंके संश्लेषणके अतिरिक्त अनेक अन्य संश्लेषित पदार्थ, तथा उनके सम्बन्धी पदार्थ भी ओषधियोंके काम आते हैं। अनेक ऐसे पदार्थों ने तो प्राकृतिक तथा संश्लेषित प्राकृतिक पदार्थोंको ओषधि क्षेत्रमेंसे निकाल ही दिया है। ऐसे अनेक पदार्थ कृत्रिम-वर्ण-व्यापारके निःकृष्ट पदार्थोंसे उपलब्ध होते हैं और दोनों ही व्यापारोंमें एक महान् आंतरिक सम्बन्ध है जिसका परिचय निम्नांकित धाराओंमें दिया जावेगा।

कृत्रिम ओषधियां विशेष कर भली भांतिसे छः समुदायोंमें विभाजितकी जा सकती हैं:—

१—विष नाशक—ऐसी ओषधियां ऊपरी अथवा बाहरी विषका नाश करनेको मकानके कमरे इत्यादि में अथवा शरीरको धोनेमें प्रयोगकी जाती हैं। अथवा आन्तरिक विष-नाशके निमित्त शरीरके अन्दर मुँह द्वारा तथा सूची द्वारा पहुँचाई जाती हैं।

२—सम्मूर्छक ओषधि—यह ओषधि मूर्छित करने के लिए प्रयोगकी जाती हैं जिसकी आवश्यकता ऐसे समयमें पड़ती है जब कोई दुःखदाई अङ्ग-चीरना हो।

३—ज्वर मुंचक—ऐसे ओषधि जो ज्वरको उतारनेके लिए प्रयोगकी जाती हैं।

४—मूत्र वर्द्धक—जब कभी मूत्रके न होनेसे कष्ट होने लगता है तो उसकी मात्राको बढ़ानेके लिए इन ओषधियोंका प्रयोग होता है।

५—संश्लेषित क्षारोद—अनेक रोगोंमें प्रयोग होते हैं।

६—और उनके सम्बन्धी रासायनिक पदार्थ—भिन्न भिन्न रोगोंमें प्रयोग होते हैं और शरीरके लिए अनेक भांतिसे गुणकारी है।

विषनाशक तथा कृमि विदूरक

[Antiseptics]

अब प्रथम विषनाशकोंको ही लीजिए। इसमें भी अनेक नन्हें नन्हें समुदाय सरलताके अनुसार हो सकते हैं, जैसे कि पिपीलिक मद्यानार्द्र समुदाय, दिर्व्याल पदार्थ, नैलिन् पदार्थ, हरो-अमिन समुदाय, तथा नीलिन् वर्ण पदार्थ। पिपीलिक मद्यानार्द्रमें महान् विषविनाशशक्ति होती है। इसकी वाष्प कमरों इत्यादिमें प्रवाहित करके उसका विष दूर करनेके काम आती है। अति करोदक तथा विषैली होनेके कारण अभ्यान्तरिक प्रयोगोंमें नहीं काम आ सकती किन्तु हालहीमें इस मद्यानार्द्रके रासायनिक संसर्गसे अनेक सम्बन्धी पदार्थ तैयार करके ओषधियोंमें प्रयोग किए गये हैं। प्रायः वह शनैः शनैः शरीरके अन्दर विभाजनसे फिर मुक्त
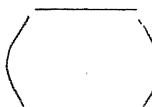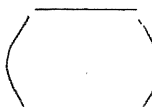
मद्यानाद्रं निकाल देते हैं। इनमेंसे अधिक प्रसिद्ध व्यक्तियां कर्बउदेतोंके साथ पिपीलिक मद्यानाद्रके रासायनिक योगसे बनती हैं। वह नीरंग, निर्गन्ध, निस्स्वाद तथा निष्करोदक पदार्थ होते हैं, मद्यानाद्रं तथा दुग्धशर्कराकी प्रतिक्रियासे बननेवाला पिपीलोदित (Formamint) अधिक प्रसिद्ध है। अमोनियाके साथ प्रतिकृत करनेसे जो षष्ठदारील चतुरामिन उपलब्ध होता है वह भी भलीभाँति प्रसिद्ध है। उसका रूप यह है।

क उ$_२$ ——————— नो

नो — क उ$_२$ — नो < क उ$_२$ / क उ$_२$ क उ$_२$

क उ$_२$ ——————— नो
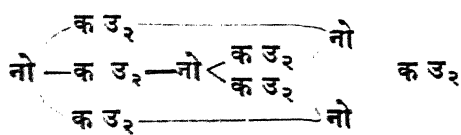
ओषधियोंमें यह षष्ठामिन, अथवा मूत्रतापिन (Urotropine) के नामसे प्रचलित हैं और मूत्र विषनाशक पदार्थ है। जलका घोल करोदक न होनेपर भी विषनाश करनेकी प्रबल शक्ति रखता है। इसी षष्ठामिनके अनेक सम्बन्धी पदार्थ मूत्रिकाम्ल इत्यादिको शरीरसे दूर करनेमें भी प्रयोग किए गए हैं।

दिव्योल भी एक बड़ा ही सुन्दर विष नाशक है और इसीके साथमें अनेक बानजावीन उदकर्वनोंके उदौषिद सम्बन्धी भी हैं। कृसोल अधिक प्रभावशाली और कम विशैले भी होते हैं किन्तु उनमें एक बड़ी त्रटि यह होती है कि वह जलमें न्यूनही घुलनशील हैं। अजविनोल (thymol) भी एक नाशक है जो पेटके आन्तरिक कीटाणुके नाशार्थ प्रयोग किया जाता है बहुधा इसका कर्बनेत जिसका नाम हिमेत्योल (hymatol) है प्रयोग होता है। दिव्योलकी अपेक्षा बहु-उदौष दिव्योल अधिक विषैले होते हैं और शरीरके त्वचा सम्बन्धी रोगों पर प्रयोग होते हैं। दिव्योलके उदजनको हरिन् तथा अरुणिन्से स्थापित करनेसे जो पदार्थ बनते हैं उनके गुणोंको शरीर पर प्रभावित करनेसे सूचित होता है कि इस स्थापनसे वस्तुका विनाश-गुण बढ़ जाता है। उदाहरणार्थ, सम त्रि-अरुण दिव्योल साधारण दिव्योलसे लगभग ५० गुणा अधिक तीव्र होता है। सब विषनाशक निस्सन्देह विषैली वस्तुएं होती हैं जो इतनी कम विषैली होती हैं कि मनुष्यके शरीर पर उनका प्रभाव नहीं पड़ता किन्तु कीटाणुके प्रति वह विष अधिक भयंकर होता है। बहुत सी वस्तुएं इतनी अधिक विषैली होती हैं कि शरीरमें प्रयोग नहीं की जातीं। समस्त दिव्योल योगिकोंमें पर-हरो-मध्य-कृसोल, ह ⬡ ओ उ, क उ$_३$ एक उत्तम विषनाशक है। दिव्योलोंमें एक कर्बोषिल समुदाय स्थापित कर देनेसे उसकी विषनाशक शक्ति तथा विषैलापन दोनों ही कम हो जाते हैं। विटपिकाम्ल बहुत साधारण विषनाशक है। इस अम्लको दिव्योलके साथ प्रतिकृत करनेसे विटपोल उपलब्ध होता है जो शरीरके अन्दर दिव्योल तथा उपर्युक्त अम्लमें विभाजित हो जानेसे अत्यन्त कार्य्य कुशल पदार्थ है। खानेमें दुःस्वाद इत्यादिकी त्रुटियां अब इसमें नहीं रहीं। इस अम्लके, तथा इसके लवणोंके अधिक गुण तीव्र गठियामें दृष्टिगोचर होते हैं। इसमें यह बड़ा ही प्रभावशाली होता है। किन्तु इस अम्ल तथा इसके लवण इत्यादिके प्रयोगसे पाचनिक कष्ट उत्पन्न हो जाते हैं। इसी कारण, इसके स्थानमें अब इसका सिरकील यौगिक, ऐस्पेरिन, तथा उसके लवण प्रयोग होते हैं। उसका सूत्र यह है:—क उ$_३$ क ओ, ओ. क$_६$ उ$_४$. क ओ ओ उ। सैन्धक दालचीनेत क्षयीरोग इत्यादिमें जलके घोलमें, तथा मधुरिनके घोलमें अधिक प्रशंसा प्राप्त कर चुका है। इसे हितोल कहते हैं। मध्य कृसोल दालचीनेत जिसे हिताकृसोल कहते हैं क्षयीरोगके वर्णोंपर चूर्णरूपमें डालनेके प्रयोगमें आता है।

अनेकानेक नैलिन् यौगिक भी विषनाशकोंमें प्रयोग किए जाते हैं, जिनमेंसे एक पूर्ण परिचित पदार्थ नैलीनीद्रिन या नैलोपिपील, क उ नै$_३$, आइडोफार्म

है। एक नीरंग यौगिक नैलिनीद्रिन तथा षष्ठदारील चतुरामिनके योगसे बनता है जिसे नैलीनिन (Iodoformin) कहते हैं। इसी प्रकारका एक अन्य यौगिक षठ दारील चतुरामिन ज्वलीलनैलिद भी होता है। यह दोनों ही यौगिक निःसुगन्ध होते हैं। बाद वालेको नैलिदार्द्र (Iodoformal) कहते हैं। जलके सन्सर्गसे वह दोनों ही निज निज योग्य पदार्थोंमें विभाजित हो जाते हैं। नैलल (iodal) अथवा चतुर्नैलोप्रभोल भी निर्गन्ध तथा निष्करोदक होता है और नैलिनीद्रिनसे इस प्रकार मिलता-जुलता है कि उसका प्रभाव भी नैलिनके ही मुक्त होनेपर निर्भर है। यह प्रभोलके क्षारिक घोलपर नैलिन्के प्रभावसे बनता है। सम-त्रिनैलिद मध्य क्रुसोलके समान अन्य यौगिकभी जो क$_3$ उ$_3$ (कउ$_3$) (ओउ) क ओ ओउ (१:३:४) तथा मध्य क्रुसोल पर नैलिनके प्रभावसे बनते हैं दिव्योलसे अधिक मिलते जुलते हैं। ऐसे यौगिक नैलिन् तथा दिव्योल उदौषिद समुदाय होनेके कारण अत्यन्तही तीव्र विषनाशक होते हैं और गर्मीके रोग-नाशक होते हैं। एक अन्य शुष्क विषनाशक समीद्रिन् (isoform) है जिसका सूत्र परनैलिदोषिद-टौल्विन क उ$_3$. क$_6$ उ$_4$. नै ओ$_2$ है यह भी बड़ा ही तीव्र तथा मूल्यवान् पदार्थ है।

थोड़ा ही समय हुआ होगा जबसे ऐसे पदार्थ जिनमें नोषजनसे सटा हुआ हरिन् विद्यमान होता है विषनाशकों तथा कृमिविदूरक पदार्थों (disinfectants) में प्रयोग किए गए हैं। शरीर पर उनका प्रभाव उपहरितोंके ही समान होता है परन्तु वे न्यून करोदक और अत्यन्त ही स्थाई होते हैं। इन के ज्ञात शक्तिके जलके घोल प्राप्त करना बड़ा ही आसान है और ये विषैली चोटों पर प्रयोग किये जाते हैं। इसका अनुसारिक द्वि हरो यौगिक—द्विहरो-अमिन-ट (Dichloramin-T) जो पर-टौल्विन गन्धोनामिद पर वर्ण विनाशक चूर्णके प्रभावसे प्राप्त होता है, बड़ा ही सुन्दर विष-विनाशक है। पर—गन्धोनामिदको गन्धकाम्ल तथा द्विरागेतसे ओषदी-कृत करनेसे जो कर्वोषिलिकाम्ल—पर-गन्धोन—हरोअमिन बानजाविकाम्ल, उओ ओक—क$_6$ उ$_4$. ग ओ$_2$. नोह$_2$ – प्राप्त होता है, वह भी बड़ा ही सुन्दर विषनाशक होता है। दोनों ही यौगिक बड़े ही कार्य्य कुशल हैं और पीनेके जलको कृमि विहीन करनेके लिये प्रयोग किए जाते हैं।

अनेक नीलिन् वर्ण पदार्थोंमें भी प्रबल विषना-शक शक्ति होती है और उनमेंसे अनेक ओषधि रूपमें प्रयोग होने लगे हैं, विशेष कर कुछ कुछ रोगोंके विशिष्ट जीवोंके (Protozoa) नाशार्थ इनमेंका एक प्रभाव शाली पदार्थ त्रिपन अरुण (Trypan-red) है। यह बानजाविदिन पूर्वगन्धोनिकअम्ल नो उ$_2$—क$_6$ उ$_4$—क$_6$ उ$_3$ (ग ओ$_3$ उ) नो उ$_2$ का द्वयजीवकरण करके प्राप्त पदार्थको २—नफथि-लामिन-३-६ द्विगन्धोनिकाम्लके साथ संयुक्त करनेसे प्राप्त होता है। इसका रूप इस प्रकार है।
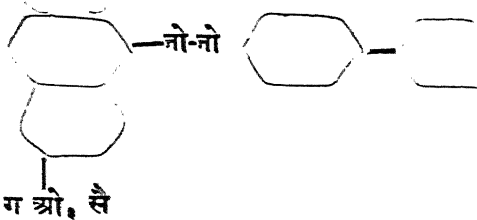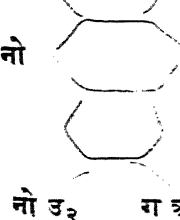
त्रिपननील पूर्व टोल्विदिनका द्वयजीवकरण करके प्राप्त चतुरजीव पदार्थको ८-अमिन १-नफथोल ३-६ द्विगन्धोनिकाम्लके साथ संयुक्त करनेसे प्राप्त होता है और इसका रूप इस भांति है।
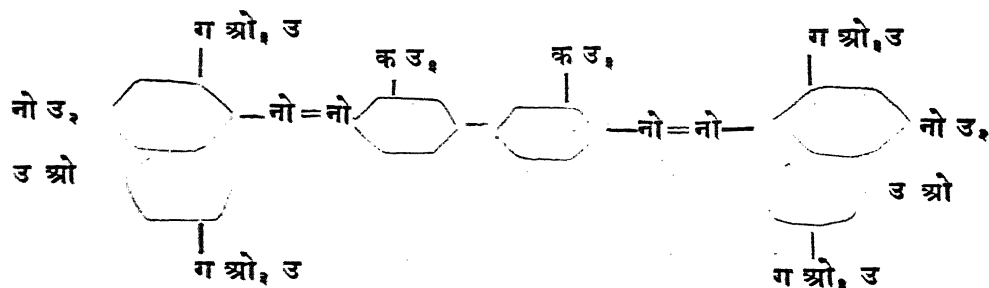
इन सब बानजाविदिन प्रणालीके वर्ण पदार्थोंमें कृमिनाशक शक्ति अति प्रबल होती है और इनमें रूपकी यह विशिष्टता होती है कि दो गन्धोनिक समुदाय ३;६ के स्थानमें अवश्य होंगे। एक अन्य समुदायके वर्ण पदार्थोंमें से कांति हरा है और साधारण विषनाशकोंके स्थानमें प्रयोग होता है। यह बानजावमद्यानार्द्र, द्विज्वलील नीलिन्, गन्धकाम्ल और किसी भी ओषद्कारक पदार्थको एक साथ प्रतिकृत करनेसे प्राप्त होता है इसका रूप इस प्रकार है :—

ज्व₂ नो क₆उ₄–क (क₆ उ₄)=क₆ उ₄=नोज्व₂ उ ग ओ₃
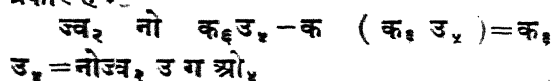
दारीलिन नील भी इसी समुदायका है और अनेक रोगोंमें (गठिया इत्यादि) इसका अभ्यन्तरिक प्रयोग किया जाता है और अनेक डाक्टरोंकी अनुमतिमें घावों इत्यादि पर एक्रीदिन वर्ण पदार्थ प्रवनस्पतिन (Proflavine) तथा त्रिपन वनस्पतिन (Trypanflavine) बड़े कार्य्य-कुशल हैं। शक्तिशाली विषनाशक होते हुए भी ये न तो करोदक ही होते हैं और न स्वयम् विषैले होते हैं। उनसे घावके पुरनेमें भी सहायता मिलती है।

सम्मूर्च्छक तथा संवेदना नाशक

[Hypnotics and anaesthetics]

इनमें सबसे प्राचीन ओषधि अफीमिन है परन्तु आजकल इसका स्थान अन्य संश्लेषित पदार्थोंने ले लिया है जो इस पदार्थके अनिच्छित भयंकर दुष्परिणामों तथा विमुख गुणोंसे मुक्त होते हैं। शारीरिक प्रभावके विचारसे सम्मूर्छकों तथा संवेदना नाशकोंमें घनिष्ट सम्बन्ध हैं परन्तु संवेदनानाशक कुछ अधिक उड़ायी होते हैं और नासिका द्वारा प्रविष्ट किए जाते हैं। इनका प्रभाव बड़ा तीव्र होता है और समयोजना भी सरल है। यह दोनों ही श्रेणीके यौगिक कार्बनिक यौगिकोंके भिन्न भिन्न समुदायोंमें से होते हैं। सम्मूर्छक बहुधा मद्यमज्जिक उद्कर्बनोंके लवणजन यौगिक होते हैं और विशेष कर ऐसे यौगिक जिनमें मद्यील समुदाय विद्यमान हो। इन्हींमें से अनुड़ायी पदार्थों से निद्रकोंका कार्य्य निकलता है और उनमें बहुधा कःओ मूल अथवा भिन्न चक्रिक नोषजन चक्र होना चाहिए।

यौगिकोंके भौतिक गुणों और उनकी सम्मूर्छक शक्तिका सम्बन्ध निकालनेकी अत्यन्त ही चेष्टाकी गई। बहुधा देखा गया है कि अमुक श्रेणीमें कललरसमें फैलनेकी शक्ति वृद्धिके साथ साथ वस्तुओंका शारीरिक प्रभाव भी अति तीव्र होता जाता है परन्तु मायरके इस नियममें अनेक अपवाद हैं। ट्राबेके कथनानुसार किसी यौगिककी निद्रक शक्तिका अनुमान उसकी निस्सारक प्रवेशता या पृष्ठ तनावसे किया जा सकता है; परन्तु बागलियोनी साहेबका विचार है कि निद्रक प्रभाव ओषजनको मात्रा घटानेके कारण होता है और यह देखा गया है कि हरीद्रिन, ज्वलक तथा हरिदार्द्र इत्यादिसे शरीरकी ओषदीकरणकी शक्ति घट जाती है।

लवण जन सम्मूर्छकोंमें हरिद्रिन (क्लोरोफार्म) एक पूर्ण परिचित पदार्थ है। शुद्ध रूपमें यह अति अस्थायी होता है और वायु तथा वाष्पके संसर्गसे विश्लेषित होकर ओषहरिद् अर्थात् कर्बनील हरिद्, क ओ ह$_२$, में परिणत हो जाता है जो महान् हानिकारक पदार्थ है। कोई १°/$_०$ मद्यके डाल देनेसे यह विश्लेषण नहीं होता। दारेनके अन्य हरिन् यौगिक भी सम्मूर्छक शक्तिसे परिपूर्ण होते हैं और यह शक्ति हरिन्की मात्राके अनुसार न्यूनाधिक होती है और वस्तुतः कर्बन चतुर्हरिद् हरीद्रिनसे अधिक प्रभावशाली होता है परन्तु इसका अधिक प्रयोग केवल इसके अधिक विषैले होनेके कारण नहीं होता। ज्वलील हरिद् साधारण तथा स्थानिक संवेदनानाशकोंमें प्रयोग होता है परन्तु इसका प्रभाव केवल इसी पर निर्भर है कि उद्वायी होनेके कारण उस स्थानका ताप इतना कम हो जाता है कि वह स्थान ज्ञान-शून्य हो जाता है। हरिदार्द्र (Chloroformal) अनुद्वायीहै और साधारण सम्मूर्छककी भांति प्रयोग होता है। इसका प्रवेश सूची द्वारा रक्तमें नहीं किया जा सकता क्योंकि इसका प्रभाव हृदय पर बड़ा हानिकारक होता है। इसका प्रभाव हरिद्रिनके बनने पर निर्भर नहीं है। शरीरके अन्दर इससे हरिद्रिन नहीं बनता वरन् त्रिहरिद् ज्वलील मद्य बनता है। हरल पिपीलामिद,

ओ उ
—
क ह$_३$—क उ—उ—नो उ—क उ ओ, भी एक नम्र सम्मूर्छक तथा शान्तिप्रद है। सिरकोन तथा हरिद्रिनको पांशुज उदौषिद्की विद्यमानतामें संयुक्त कर देनेसे प्राप्त पदार्थको हरीतोन (Chloretone) (तृतीय त्रिहरो-नवनीतील मद्य) कहते हैं। यह एक रवेदार ठोस पदार्थ है जिसका द्रवांक ९६°श है। इसका पाचन प्रणाली पर कोई करोदक प्रभाव नहीं होता है परन्तु शान्तिप्रदका कार्य्य भली भांति देता है और जलरोग तथा वमनमें प्रयोग किया जाता है।

संवेदनानाशकों का द्वितीय समुदाय ज्वलील संवेदनानाशकोंका है, और इसमें ऐसे यौगिक होते हैं जिनमें 'ओ उ' अथवा 'ओ' से सटे हुए ज्वलील समुदाय विद्यमान होते हैं। दारील समुदाय प्रायः शिथिल होते हैं परन्तु ज्वलील और विशेषतः तृतीय मद्यिक इत्यादि समुदायोंको रखने वाले पदार्थ बड़े ही शक्तिवान सम्मूर्छक होते हैं। जैसे कि क-ज्व$_३$, क ज्व$_२$ दा, और क दा$_३$। ज्वलील मद्य कुछ कामका नहीं होता है क्योंकि इससे निद्रा देवीके आवाहनार्थ बहुत ही मात्राका प्रयोग करना पड़ता है। इसका कारण प्रायः यही हो सकता है कि यह बहुत ही शीघ्र शरीरमें ओषदीकृत होता जाता है। ज्वलील ज्वलक अति ही साधारण संवेदनानाशक है। उच्च श्रेणीके मद्य बहुधा प्रयोगमें नहीं आते हैं क्योंकि वह उद्वायी नहीं होते हैं। मूत्रियाके यौगिक जिनमें तृतीय मद्यिक समुदाय सटे हुए होते हैं बड़े ही शक्तिशाली सम्मूर्छक होते हैं और इनमें सबसे तीव्र 'तृतीय-केलील मूत्रिया, नोउ$_२$. क ओ नोउ. क दा$_२$ ज्व, होता है। बहुधा कीतोन भी सम्मूर्छकोंका कार्य्य कर सकते हैं और दारील समुदाय वालोंकी अपेक्षा ज्वलील समुदायोंको रखने वाले अधिक तीव्र होते हैं। सम चक्रिककीतोनोंका प्रभाव बड़ा ही नम्र होता है परन्तु मिश्रित कीतोन—सिरको दिव्योन क$_६$उ$_५$कओ. कउ$_३$ और दिव्यील ज्वलील कीतोन क$_६$ उ$_५$कओ क$_२$ उ$_५$ बहुत ही तीव्र होते हैं।

ज्वर मुंचक

[Antipyretics]

ज्वरके कारण बढ़ा हुआ शारीरिक ताप कुनीन-से घट जाता है परन्तु इसका विशिष्ट प्रभाव मलेरियाके प्रति ही होता है। अनेक मद्यीलित चतुर्-उदकुनोलिनमें भी ज्वर मुंचक शक्ति होती है। इनमेंसे केरीन नामी १—ज्वलील ५—उदौष चतुरुद कुनोलिन सबसे तीव्र होता है। ज्वरमुंचक होने पर भी यह सभी पदार्थ प्रायः बेकार हैं

क्योंकि इनसे रुधिरके रक्तकण निर्जीव हो जाते हैं। न्हार साहेब ने सबसे प्रथम सन् १८८७ ई० में एक संश्लेषित पदार्थ विपर-ज्वरिन तैयार किया। इसमें ज्वरमुंचक शक्ति तो कुनीनसे अधिक होती है परन्तु यह मलेरियाके प्रति कोई विशिष्ट प्रभाव नहीं डालती। अनेक संश्लेषित ज्वरमुंचकोंकी भांति यह भी एक शक्तिशाली दुःखमुंचक भी है अर्थात् यह मनुष्यके ज्ञानकोष पर प्रभाव डालकर दुःखका ज्ञान मस्तिष्क तक नहीं पहुँचने देती और मनुष्यको पीड़ाका ज्ञान नहीं होता, विशेषकर यदि ज्ञानकोष सम्बन्धी पीड़ा हो तो।

समस्त ज्वरमुंचकोंमें सिरकनीलिद सबसे सस्ता पदार्थ है और इसे विपर-बुखारिन (Anti-febrine) कहते हैं। इसमें बहुत ही तीव्र ज्वरमुंचक शक्ति और दुःखमुंचक शक्ति होती है परन्तु इसमें हानि यह होती है कि विश्लेषणसे नीलिन् उत्पन्न होती है और शनैः शनैः नीलिन्-विषके चिह्न प्रतीत होने लगते हैं। अनेक अन्य नीलिदोंके प्रयोगकी भी अनुमति दी गई है परन्तु उनसे बहुत ही न्यून लाभ हुआ है। पर-अमिन-दिव्योलके प्रतिनिधियोंमें दिव्यसिरकिन, पर-ज्वलोष सिरकनीलिद, क$_2$ उ$_5$ ओ <——> नोउ. ओ क. क उ$_3$, पूर्ण परिचित पदार्थ हैं। इसका सम्बन्धी दारील यौगिक इससे भी तीव्र होता है परन्तु अधिक विषैला भी होता है। अम्रील तथा नवनीतील ज्वलक न्यूनतम तीव्र होते हैं। अमिनो दिव्यसिरकिन जो अमोनिया तथा अरुणो सिरकील दिव्यीदिनकी प्रतिक्रियासे प्राप्त होता है दिव्यसिरकिनके ही समान होता है। इसकी दुःखनाशक शक्ति अतितीव्र होती है और गठियाज्वरमें विटपिकाम्लके स्थानमें लाभके साथ प्रयोग किया जा सकता है। एक भिन्न ही श्रेणीकी ओषधियां ऐसी होती हैं जो स्नायु तंतुओंको एकदम संज्ञावित कर देती हैं और रक्त भारमें वृद्धि पैदा कर देती हैं। ऐसा पदार्थ पड्रिनैलिन है — ३ : ४ (ओ उ)$_2$ क$_6$ उ$_3$ — क उ (ओ उ) क उ$_2$. नो उ क उ$_3$ और यह बहुधा स्थानिक संवेदनानाशक कोकेन तथा युकेनके साथ साथ प्रयुक्त होता है। इससे रक्त प्रवाह रुक जानेकी चेष्टा होती है। यह कोकेनके विषैले प्रभावोंको शिथिल करनेमें भी और घासज्वरमें विशिष्ट ओषधिके समान प्रयोग होता है।

मूत्रवर्धक तथा मूत्रिकाम्ल वहिष्कारक

[Di-uretics and uric acid eliminants]

मूत्रके प्रवाहमें गड़बड़ी होनेसे भी अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं। कभी कभी तो मूत्रकी मात्रा बहुत ही न्यून रह जाती है और उसका जल शरीर ही में प्रवेश करता है। इस जलसे शरीर सूज जाता है और अन्य भयंकरसे भयंकर दुष्परिणाम होते हैं। ऐसे समयमें यह अत्यावश्यक है कि ऐसी ओषधि दी जावे कि मूत्र की मात्रा बढ़े। इन्हें मूत्र वर्धक कहते हैं। सब लोगोंको यह भी विदित ही होगा कि मानुषिक मूत्रमें एक बड़ी मात्रा मूत्रिकाम्लकी होती है। इस पदार्थका शरीरसे वहिष्कृत हो जाना ही ठीक रहता है। यदि यह कभी शरीरमें रुक जाता है तो गठिया इत्यादिके अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त इसके मूत्राशयमें संचित होते रहनेसे एक गांठ सी पड़ जाती है और मनुष्य गुठली या पथरीके रोगसे पीड़ित होता है। इन रोगोंकी भयंकरताका अनुमान उन्हींको हो सकता है जो कभी इनसे सम्बन्धित रहे होंगे। इस दशामें मूत्रिकाम्ल-बहिष्कारकोंका प्रयोग करना होता है। प्युरिन सम्बन्धी प्रायः सभी यौगिकोंमें यह गुण होते हैं। एक जगत परिचित यौगिक कहवीन है और यह चाय इत्यादि प्राकृतिक पदार्थोंसे उपलब्ध किया जाता है। ओषधि रूपमें यह बहुधा मस्तिष्क तीक्ष्क तथा हृदय पोषककी भांति अन्य ओषधियों—सिरक विटपिन आदि के संसर्गमें प्रयोग होता है। थिओफिलिन अर्थात् १-३ द्विदारील जैन्थीन-सबसे शक्तिशाली मूत्रवर्द्धक है। गठिया रोग नाशार्थ भी अनेक ओषधियोंका अनुमान किया गया है और इन सबका अभिप्राय

या तो यह होता है कि शरीरमें मूत्रिकाम्ल बने ही न और यदि बने तो घुल जावे और शरीरसे बहिष्कृत हो जावे। प्रथम श्रेणीके यौगिक अति संकीर्ण अम्ल होते हैं जैसे कहवाकी पत्तियोंसे प्राप्त कुनिकाम्ल, छिदिव्यील इमलेत, अश्व मूत्रिकाम्ल तथा विटपिकाम्ल यौगिक। घोलकोंके निमित्त पिराजीविन (Pirazine) का अवकृत पदार्थ पिपराजीविन (Piperazine) अत्यन्त ही प्रयोग किया जाता है। अम्लोंके मिलनेसे यह भिन्न भिन्न लवण बनाता है और इस प्रकार प्राप्त लवण पिराजीविन कुनेत (यूरोल या सिडोनालके नामसे) और द्विदारील पिपराजीविनका इमलेत (लाइसेटोल नामसे) मूत्रिकाम्लके तीव्र घोलक हैं और बहुत प्रयोग किए जाते हैं। इस अम्ल के घोलनार्थ पिपराजीविनसे

अठगुनी शक्ति लाइसिडिन (क उ$_२$—नो | क उ$_२$—नो) क—क उ$_३$

में होती है और इसी कार्य्यके सरल बनानेके निमित्त षष्ठदारील चतुरामिनके यौगिक प्रयोग किए गये हैं।

दस्तावर पदार्थ भी इसी श्रेणीकी ओषधियोंमें से हैं और बहुधा सभी दस्तावरोंका प्रभाव अंगारकुनोनके उदौषिद यौगिकोंकी विद्यमानता ही पर निर्भर होता है। बहुधा यह पदार्थ अनेक दस्तावरोंमें जैसे कि अंडीका तैल इत्यादिमें विद्यमान होता है। अन्य भिन्न भिन्न उदौषिद यौगिक भी इस कुनोनसे संश्लेषित किए गए हैं और उनकी जिज्ञासाकी गई है। इनमेंसे अति तीव्र अन्थ्रापरप्युरिन अर्थात् १:२:७ त्रिउदौष यौगिक है। एलूजका तीव्रांश आलविन (Aloine) भी प्राप्त कर लिया गया है और उससे अनेक यौगिक भी तैयार किए गए हैं, जैसे उसके पिपीलिक मद्यानार्द्रके संसर्गिक यौगिक त्रिअरुण आलविन, त्रिसिरक आलविन।

मधुरोस्फुरेत एक अन्य ही श्रेणीके मनोरंजक पदार्थ होते हैं। ज्ञानमय कोषके ज्ञान तंतुओंसे निर्मित शारीरिक भागमें एक विशिष्ट पदार्थ लेसीथिनसे इनका घनिष्ट सम्बन्ध होता है। ये त्रिमधुरिद पदार्थ है जिसमें दो मूल तो संकीर्ण खुली शृंखलाके अम्ल जो कि भिन्न भिन्न मज्जिकाम्लोंसे निकलते हैं होते हैं जैसे कि चर्बिन, खजूरिन, जैतूरिन और तीसरा मूल कोलिनस्फुरिकाम्लका समुदाय होता है। यह एक स्फुर के रखनेवाले दुष्प्राप्य अम्लोंमेंसे है और इसका रूप इस प्रकार है :—

ल क ओ. ओ क उ$_२$-क उ क ओ ओ ल-क उ$_२$-

—ओ-स्फु (—ओ | —ओ उ | —ओ क$_२$ उ$_४$ नो < ओ उ, उव$_३$)

इसमें उवसे उवलील और ल से किसी भी संकीर्ण खुली शृंखलावाले अन्य मूलका-क$_{१७}$ उ$_{३५}$· इत्यादिका बोध होता है। संश्लेषणसे भी सैन्धक मधुरोस्फुरेत उपलब्ध किया गया है और यह ज्ञान तंतुके पोषक-रूपमें प्रयोग होता है।

संश्लेषित क्षारोद

[Synthetic Alkaloids]

यह क्षेत्र भी बहुत ही विस्तृत है और आधुनिक वैज्ञानिक संसारका ध्यान अधिकांशमें है भी इसी ओर। प्रकृति-प्राप्त-कुनेन तो बड़े प्राचीन कालसे प्रयोगमें आती ही थी परन्तु अब इसका स्थान कुनिकाम्लके अगणित सम्मेलोंने ले लिया है क्योंकि इनमें बहुधा कटुस्वाद नहीं होता। परन्तु यह अति मूल्यवान होते हैं और साधारणतः प्रयोगमें नहीं आते। कटुस्वादका न होना उनकी केवल अनघुलनशीलता ही पर निर्भर होता है। शरीरके अन्दर जाकर यह सभी पदार्थ उद-विश्लेषित होकर कुनैन तथा उसी अम्लमें विभाजित हो जाते हैं। होमैट्रोपिन बादामिकाम्लका ट्रोपिनसम्मेल क$_६$ उ$_५$ कउ < ओउ, क ओ ओ. क$_८$ उ$_६$ नो इन्हीं पदार्थोंसे व्यापारिक मात्रा पर उपलब्ध किया जाता है और एट्रोपिनके स्थान पर प्रयोग होता है।

यह विषैला कम होता है और इसका चक्षुविन्दुवर्धक प्रभाव पेट्रोपिनकी अपेक्षा शीघ्र ही होता है और शीघ्र ही समाप्त भी हो जाता है। एक संश्लेषित स्थानिक संवेदनानाशक ख-युकेन (βeucaine) अब साधारण प्रयोगमें आ गया है और यह केवल बानजावील लर्तील द्विसिरकोन ही होता है। इसका रूप इस प्रकार है।

$$\text{नोउ} < \begin{matrix} \text{क दा}_{३} - \text{क उ}_{२} \\ \text{क उ दा} - \text{कउ}_{३} \end{matrix} > \text{क उ} - \text{ओ} - \text{ओक क}_{६}\ \text{उ}_{५}$$

इसी भांति होलोकेन केवल

$$\text{क उ}_{३} - \text{क उ} < \begin{matrix} \text{नोउ क}_{६}\ \text{उ}_{५} - \text{ओज्व} \\ \text{नोउ} - \text{क}_{६}\ \text{उ}_{५} - \text{ओज्व} \end{matrix}$$
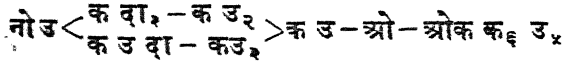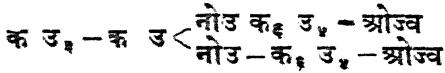
का उदहरिद होता है। यह आंख इत्यादिकी चीरा फारीमें प्रयोग होता है। यह बहुत ही अनघुल पदार्थ है और इसके घोल भलीभांति स्थाई होते हैं परन्तु यह विषैला होता है। स्टोवेन—केवल दारील-ज्वलील, द्विदारीलामिनो दारील कर्वनील बानजावेत

$$\text{क}_{६}\ \text{उ}_{५}\ \text{क ओ-ओ—क} \begin{cases} \text{क उ}_{३} \\ \text{——क उ}_{२}\ \text{नो} < \begin{matrix} \text{क उ}_{३} \\ \text{क उ}_{३} \end{matrix} \\ \text{क}_{२}\ \text{उ}_{५} \end{cases}$$
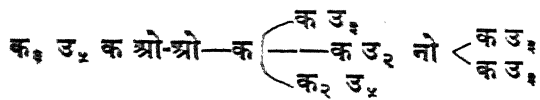
का उदहरिद ही होता है और यह पूर्ण परिचित संवेदनानाशकोंमेंसे है। यह उस समुदायके पदार्थोंमेंसे है जिन्हें दारामिन सम्मेल कहते हैं और जिनमें ल-क ओ-ओ-क-क-नो-ल समुदाय होता है। बानजाविकाम्लके अनेक अमिन तथा उदौषिजअमिन यौगिक भी ओषधियोंमें प्रवेश कर गए हैं। बहुधा निर्वानिन तथा संवेदनानाशक सूची द्वारा रक्तमें प्रवेश किए जाते हैं। समस्त स्थानिक संवेदनानाशकोंमें इन्होंने महान् वैभव कमाया है। यह केवल द्वि-ज्वलील-अमिन-ज्वलील-पर अमिनो-बानजावेतके उदहरिद ही हैं—

$$\text{उ}_{३}\ \text{नो} < \underline{\quad} > \text{क ओ ओ क उ}_{३}\text{-क उ}_{३}\ \text{नो ज्व}_{२}\ \text{उ ह}$$

यह पूर्ण निष्करोदक, और कोकेनसे केवल सप्तांश विषैला ही होता है।

निष्कर्ष

इस प्रकार जो कुछ ऊपर कहा जा चुका है उससे यह स्पष्ट ही है कि ओषधियां रसायनके साथ-साथ किस प्रकार बढ़ती चलीं जाती हैं और किस प्रकार रसायनकी वृद्धिसे ओषधि विज्ञानमें वृद्धि होना अनिवार्य्य ही है। प्रायः समस्त संश्लेषित पदार्थोंका शरीर पर विषैला प्रभाव पड़ता है और सभीमें न्यूनाधिक स्थानिक अथवा साधारण संवेदनानाशक प्रभाव होता है। प्रायः सभी अमिन यौगिक ज्ञानमय कोषके ज्ञान तन्तुओंके सिरोंको शून्य कर देते हैं और इस प्रकार दुःखकी संवेदना मस्तिष्क तक नहीं पहुंचती। मद्यील नोषितोंसे रक्तनलियां बढ़ जाती हैं और इस प्रकार रक्त भार घट जाता है। इसके विपरीत मद्यील नोषेत पदार्थ तीव्र विष होते हैं और उनसे रक्त भार नहीं घटता। बहुधा वह पदार्थ जो अति उड़ायी हैं अथवा जो अत्यन्त ही शीघ्र विश्लेषित हो जाते हैं अथवा जो शरीरमें प्रवेश करके अप्रभावित ही बहिष्कृत हो जाते हैं, बहुत ही कम लाभ के होते हैं।

एमिल फिशर

[Emil Fischer]

[ले० श्री सत्यप्रकाश, एम. एस-सी.]

निक रसायन शास्त्रमें सबसे उत्कृष्ट व्यक्ति एमिलफिशर है। उसकी महत्ता और कार्य्यकुशलतामें किसीको भी सन्देह नहीं हो सकता है। यह कहना अत्युक्ति न होगी कि सम्पूर्ण रासायनिक क्षेत्रमें इनके समान कोई प्रकाण्ड पुरुष अवतीर्ण ही नहीं हुआ है। आपने

जीवन कालके ६७ वर्षोंमें इसने जितना कार्य्य कर डाला, वह रोमाञ्चकारी नहीं तो और क्या है? उसमें दैवी प्रतिभा थी। जो भी विषय हाथमें लेता, उसको इस खूबीके साथ कर डालता कि आगे वालोंके लिये कुछ भी न बचता। उसने कार्बनिक रसायनके गूढ़तम विषयोंको सरल करके दिखा दिया। संकीर्णसे संकीर्ण और क्लिष्टसे क्लिष्ट यौगिकोंको संश्लेषित एवं विश्लेषित करके अपने अलौकिक साहस तथा दूरदर्शिताका परिचय दिया। एमिल फिशरकी मृत्युके पश्चात् फिर कोई इतना प्रबल कार्बनिक रसायनज्ञ उत्पन्न नहीं हुआ। वस्तुतः इस व्यक्ति ने कार्बनिक रसायनको बिलकुल ही परिवर्तित करके एक नया ही रूप दे दिया।

एमिल फिशरका जन्म ६ अक्टूबर सन् १८५२ में जर्मन प्रदेशके यूसकिरचेनमें जो बौनसे २०० मीलकी दूरी पर है, हुआ था। आपके पिताका नाम लारेंज़ फिशर और माताका पोयन्सगेन था। आप अपने माता-पिताके अकेले पुत्र थे और आपकी पांच बहिनें थीं। सन् १८६९ में आपने बौनमें स्कूल-की शिक्षा समाप्तकी और फिर अपने साले फ्रीड्रिक-के साथ लकड़ीका व्यापार करने गये, पर वहाँ आपका मन न लगा। अतः १८७१ में वे केक्यूलेके शिष्य होगये। बौनसे स्ट्रेसबर्ग आकर १८७४ में आप ग्रेजुएट हुए, और इस समय आप वान बायर-की अध्यक्षतामें कार्य करते थे। दूसरे ही बर्ष बायर के सहकारी होकर आप म्यूनिच चले आये, और १८७९ में वोलहार्डके स्थानमें आप 'औसेर ओरडेण्ट-लिश् प्रोफेसर' होगये। १८८२ में एरलैंजनमें रसायन के प्रोफेसर नियुक्त किये गये और विस्लीसेनसके स्थानमें १८८५ में वुर्जबर्गमें आपकी नियुक्ति हुई। इसके सात वर्ष उपरान्त १८९२ में हाफमेनके स्थानमें बर्लिन यूनिवर्सिटीके रसायन विभागके अधिष्ठाता एवं प्रोफेसर होकर आगये और यहीं आप मृत्यु-पर्य्यंन्त रहे। १४ जुलाई सन् १९१९ की रात्रिमें आपका देहावसान हुआ। बस यही आपकी जीवन यात्राका संक्षिप्त इतिहास है।

पर इस महान व्यक्ति ने जो रासायनिक अनु-संधान किये उनका उल्लेख इतने संक्षेपमें करना असम्भव ही है। उनके कार्य्यके महत्वको समझना भी साधारण व्यक्तियोंका काम नहीं है। जिन व्यक्तियों ने गुड़की शक्कर, गन्ने और चुकन्दरकी शक्कर अथवा कुछ अन्य फलोंकी शक्करका ही अनु-भव किया है वे इस बातके महत्वको क्या समझ सकते हैं कि १६ प्रकारके षष्ठोज़ मद्यानाम्लिक शर्क-राओंकी समरूपतामेंक्या चमत्कार है! रसायन शास्त्रसे अनभिज्ञ कुमारियाँ भला इस बातको क्या समझ सकती हैं कि उनके सुन्दर रेशमी वस्त्र और अंडोंका रस एक ही जातिका है! वस्तुतः एमिल फिशरके कार्य्यका अनुभव भी बड़े बड़े रसायनज्ञ ही कर सकते हैं।

वैज्ञानिक जगत्को एमिल फिशरके कार्य्यके महत्वको पहिचाननेमें देर न लगी। यद्यपि मृत्युके कुछ पहिले ही योरोपीय जर्मन युद्ध हो रहा था, इंगलैण्ड और फ्रान्सवाले जर्मनोंके रुधिरके प्यासे तड़प रहे थे, पारस्परिक वैरभाव उच्चतम सीमा तक पहुँच गया था पर विज्ञानके प्रेमी चाहें वे किसी देशके क्यों न हों, एमिल फिशरके समान अलौकिक व्यक्तिको सहृदय स्वागत एवं सम्मानित करनेके लिये सर्वदा उत्सुक रहते थे। उनके हृदयमें इस शत्रु-जातीय वैज्ञानिकके लिये भी अगाध प्रेम था। अपने देशमें उसे जो सम्मान मिले, उनका तो कहना ही क्या क्योंकि जर्मन देशवाले अपने रत्नों का मूल्य भली भांति पहिचानते हैं, बाहरसे उन्हें वे सब सम्मान प्राप्त होगये जो किसीको भी प्राप्त हो सकते हैं। सन् १८९२ में आप केमिकल सोसा-यटी लंडनके आनरेरी और फौरेन सदस्य बनाये गये। १८९९ में रायल सोसायटीके फौरेन मेम्बर नियुक्त हुए और १९०४ में रायल इन्स्टीट्यूशनके।

सन् १८६० में उन्हें डेवी-पदक प्रदान किया गया और सन् १६०२ में जगत् प्रसिद्ध नोबेल पारितोषिक भेंट किया गया। फिलाडिलफियाके फ्रैंङ्कलिन इन्स्टीट्यूट ने सन् १६१३ में एलियट क्रिसोन स्वर्ण पदक देकर अपनेको धन्य समझा। वस्तुतः एमिलफिशर इतने बड़े व्यक्ति थे कि प्रत्येक बड़ा इन्स्टीट्यूट उनको सम्मानित करनेमें अपना सम्मान समझता था। उनकी प्रयोगशालाकी कीर्ति संसार भरमें इतनी विख्यात होगई थी कि प्रत्येक देशसे वैज्ञानिक उसके साथ काम करने तथा उसकी अध्यक्षतामें 'डाक्टर' की उपाधि लेनेके लिये सैकड़ोंकी संख्यामें आने लगे।

सन् १६०६ में एर्किन जुबलीके अवसर पर एमिल फिशरको हाफमन पदक प्रदान दिया गया, और इसके दूसरे वर्ष ही उसे फैरेडे-व्याख्यान देना पड़ा। इस कार्य्यके लिये वह कई वर्षोंसे बराबर निमंत्रित किया जाता था, पर स्वास्थ्य ठीक न होनेके कारण वह न आसका था। इस वर्ष उसके व्याख्यानका विषय 'संश्लेषण रसायन और जीव विज्ञानका सम्बन्ध' था। वस्तुतः यह पहला अवसर था जब कि इस विषय पर नियमित रूपसे किसी ने मीमांसा की हो। इसमें कर्बनद्विओषिद और जलका प्रकाशमें संयोग, वृक्षोंका आहार, प्रत्यमिनों का रचना और उनका अमिनो-अम्लोंसे सम्बन्ध आदि वार्त्ताओंकी बड़ी ही सुन्दर व्याख्या की गई। इस व्याख्यान ने जीव रसायनके भावी रूपको निर्धारित कर दिया। कहां तो एमिल फिशर अपने सालेके लकड़ीके कारखानेमें कार्य्य करने जानेवाला था, और जब उसने कुछ दिनों पश्चात् इस कार्य्य के प्रति अरुचि प्रकट की, तो उसके घरवालों ने तो यही समझ लिया कि उनका लड़का अपना जीवन बर्बाद ही करनेवाला है। कौन कह सकता है कि उसके सम्बन्धियों को कभी यह स्वप्नमें भी विचार हुआ होगा कि यह व्यक्ति आगे चलकर रसायन शास्त्रका सबसे बड़ा पुरुष हो जावेगा और उसका नाम वैज्ञानिक जगत्में अमर बना रहेगा।

अब हम यहाँ महान् व्यक्तिके अग्रगण्य अनुसन्धानोंका कुछ संक्षेपतः उल्लेख करेंगे।

प्रारम्भिक कार्य्य

सन् १८७५ के लगभग एमिल फिशरने एक ऐसा यौगिक संश्लेषित किया जिसने आगे चल कर फिशरकी गम्भीर गवेषणाओंमें बड़ी ही सहायता दी। वस्तुतः यदि यह यौगिक इसने न ढूँढ निकाला होता तो कमसे कम शर्कराओं की विषम समस्यायें कभी न सुलझ पातीं। इस यौगिकका नाम दिव्यील उदाजीविन, $क_६ उ_५$ नोउ नोउ$_२$ है। रसायनके विद्यार्थी कीतोनों और मद्यानाद्रों पर इस यौगिकके प्रभावसे परिचित हैं। इसको फिशरने बानजावीन द्वयजीवोनियम हरिदमें सैन्धक गन्धितकी अधिक मात्रा डालकर दस्तम् चूर्ण द्वारा अवकृत करके उदहरिकाम्लके प्रभावसे बनाया था। यद्यपि मद्यानाद्रों और कीतोनों पर इस यौगिकका प्रभाव फिशर को आरम्भमें ही मालूम होगया था, पर इसके वास्तविक उपयोग की ओर उसका ध्यान कोई दस वर्ष बाद गया। इस दिव्यीलउदाजीविनके यौगिकोंका इतिहास बड़ा ही मनोरञ्जक है।

इसके अतिरिक्त औटो फिशरकी सहकारितामें एमिल फिशरने रंगोंके ऊपर काम करना आरम्भ किया। म्यूनिचमें १८७६ में उन दोनोंने रोज़नीलिन रंगों पर पहला लेख प्रकाशित किया, और इसका मौलिक भाग ल्यूकनीलिन, और फिर त्रिदिव्यील दारेनसे इसका सम्बन्ध निकाला। इसके पश्चात् दिव्यील उदजीविन की सहायतासे इसने शृंखलित यौगिक इण्डोल आदि बनाये—सिरकोन और दिव्यील उदाजीविनके संसर्गसे सिरकोन दिव्यील उदाजीवोन बना, जो दस्तहरिद की विद्यमानतामें २-दारील इण्डोल देता है :—

$क_6उ_5 . नोउ. नोउ_2 + कउ_3 . कओकउ_3$

$$= क_6उ_5 \text{ नोउ. नो : } क < \begin{matrix} कउ_3 \\ कउ_3 \end{matrix}$$

$$\downarrow$$

$$क_6उ_4 \leq \frac{कउ}{नोउ} > क.\ कउ_3$$

२-दारील इण्डोल

इसी प्रकार अन्य श्रृंखलाबद्ध यौगिक भी बनाये गये। पू०—नोषो दालचीनील सिरकोनसे उसने सिरकोनील कुनोलिन बनाया।

सिरकोनील कुनोलिन
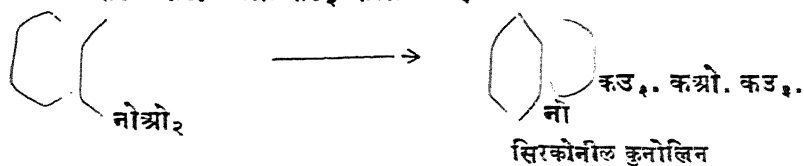
इसी प्रकार चरपरोलीनके दिव्यील उदाजीवोनको हलके गन्धकाम्लके साथ प्रभावित करके दिव्यील प्रभाजीवोलिन (Pyrazoline) बनाया:—

$$क_6\ उ_5\ नो < \begin{matrix} नो = क\ उ \\ | \\ क\ उ_2 — क\ उ_2 \end{matrix}$$
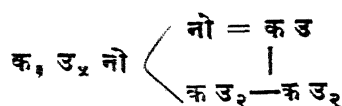
वस्तुतः फिशरकी बड़ी भारी विशेषता यह थी कि साधारण यौगिकोंको अति साधारण रसोंसे प्रभावित करके ही वे अति संकीर्ण और अद्भुत यौगिक सरलतासे तैयार कर लेते थे। उनके हाथकी करामात ही अलौकिक थी।

कर्बोदेत, द्राक्षोसिद, और डेप्सिपदों का कार्य

सन् १८८६ तक रसायनज्ञोंको केवल इन शर्कराओंका ही पता था:—दो मद्यानो षष्ठोज (द्राक्षोज और दुग्धस्योज), दो कीतोषष्ठोज (फलोज और सौरबोज), एक मद्यानो पंचोज (ऐरेबिनोज), तीन षष्ठद्वयोज (इक्षोज़, दुग्धोज, और यवोज) और एक षष्ठत्रयोज (रैफीनोज)। दुग्धस्योजऔर द्राक्षोज इन दोनों शर्कराओंमें कर्बन, उदजन और ओषजनके समान ही परमाणु है और दोनोंमें मद्यानाद्रिक मूल है। इनका सामान्यतः सूत्र यह दिया जाता था:—

$$क\ उ_2\ ओ\ उ.\ (\ क\ उ\ ओ\ उ\ )_4\ क\ उ\ ओ$$

फिशर ने इस प्रकारको शर्कराओंके वास्तविक भेद जाननेके लिये विस्तृत गवेषणायें आरम्भ कीं। फिशरके इन कार्य्योंका यहां संक्षेपमें उल्लेख करना असम्भव ही है। उसने १६ प्रकारके मद्यानो षष्ठोज़ोंकी केवल कल्पना ही प्रस्तुत न की प्रत्युत उसने १४ को संश्लेषित करके पृथक् पृथक् दिखा भी दिया। इसी प्रकार ८ मद्यानो पंचोज़ोंका भी स्वरूप निर्धारित किया। ये शर्करायें दिग् प्रधान रश्मिको दाहिनी या बायीं ओर मोड़नेमें समर्थ हैं। शर्कराओंको ओषदीकृत करके अथवा उनके श्याम-उदिन बनाकर, और अनेक अन्य कुशल विधियोंसे फिशर ने सबके सूत्रोंको स्पष्ट प्रदर्शित कर दिया। इस कामके महत्व तथा क्लिष्टताका अनुमान ही केवल हम कर सकते हैं!

शर्कराओंकी समस्या बड़ी ही जटिल है। द्राक्षोज़ क और ख दो प्रकारके ज्ञात थे। फिशर ने तीसरे प्रकारका ग—दारीलद्राक्षोसिद बनाया, तबसे केवल दक्षिण भ्रामक द्राक्ष शर्कराके ही १०

समरूपोंका लोगोंको पता चल गया है। यदि फिशर ने द्राक्षोसिदों पर कार्य्य न किया होता, तो शर्कराओंकी समस्या अधूरी ही रह जाती। इन सब कामोंमें द्विर्व्यील उदाजीविन ने बड़ी ही सहायता दी। उसने यह देखा कि ये सब शर्करायें इस यौगिकके साथ भिन्न भिन्न प्रकारके यौगिक देती हैं। सन् १८८४ में उसे पता चला कि इसकी सहायतासे द्राक्षोज और फलोज द्विर्व्यील-द्राक्षोसाजीवोन देते हैं, और दुग्धस्योज एक दूसरा ही समरूपी ओसाजीवोन देता है। यवोज और दुग्धोज़ भी साधारण षष्ठोजों के समान ओसाजीवोन देते हैं, पर इसी परिस्थितिमें द्राक्षोजका उदविश्लेषण हो जाता है। उसने उदाजीवोन तथा ओसाजीवोनोंकी पारस्परिक प्रक्रियाओंका नियमित अध्ययन किया।

द्विर्व्यील द्राक्षोसाजीवोनका अध्ययन करते हुए फिशरको पता चला कि यह यौगिक उदहरिकाम्लसे प्रभावित होने पर पूर्णतः उदविश्लेषित हो जाता है और चतुर्उदौष कीतोनिक मद्यानार्द्र रह जाता है जिसे द्राक्षोसोन कहते हैं। इसे फिर सिरकाम्लकी विद्यमानतामें दस्तम् चूर्णके साथ अवकृत करनेसे इसके मद्यानार्द्रिक मूलका मद्यील मूल बन जाता है और फलोज प्राप्त होता है।

क उ$_2$ ओ उ
|
(क उ ओ उ)$_3$
|
क : नो . नो उ क$_6$ उ$_5$ + २ उ$_2$ ओ + २ उ ह →
|
क उ : नो. नो उ. क$_6$ उ$_5$

द्राक्षोसाजीवोन

क$_2$ उ$_2$ ओ उ
|
(क उ ओ उ)$_3$
|
क ओ + २ क$_6$ उ$_5$ नो उ. नो उ$_2$-उ ह
|
क उ ओ

द्राक्षोसोन

| अवकरण
↓

क उ$_2$ ओ उ
|
(क उ ओ उ)$_3$
|
क ओ
|
क उ$_2$ ओ उ

फलोज

फिशर ने इस प्रक्रियाका उपयोग करते हुए तथा पास्ट्यूरकी विधियोंसे दक्षिण एवं उत्तर भ्रामक यौगिकोंको पृथक् करते हुए एक शर्करासे अनेक शर्करायें बना लीं। अशक्त क-एक्रोजसे उसने निम्न परिवर्तनों द्वारा द्राक्षोज, फलोज, मैनोज आदि बनाये।

क-एक्रोज —> द-उ-द्राक्षोसाजीवोन —> द-उ. द्राक्षोसोन —> द-उ-फलोज
(—> उ-फलोज) —> द-उ-मैनीटोल —> द-उ-मैनोज —> द-उ-मैनोनिकाम्ल —> द-मैनोनिकाम्ल
(—> द-द्राक्षोनिकाम्ल —> द-द्राक्षोज) —> द-द्राक्षोसाजीवोन —> द-फलोज।

इन प्रक्रियाओंमें एक बात विशेष महत्वकी है। वह है मैनोनिकाम्लका द्राक्षोनिकाम्लमें परिवर्तन। सन् १८९० में फिशरको यह मालूम हुआ कि यदि इन दोनों अम्लोंमें से किसीको भी कुनोलिनके साथ १४०° तक गरम करें तो दोनों ही का सम-मिश्रण प्राप्त होता है अर्थात् इस विधिसे एक अम्ल दूसरे अम्लमें परिणत किया जा सकता है। यह बात बड़े महत्वकी थी और फिशर ने आगे यह सिद्धान्त निकाला कि किसी भी एकभस्मिक-शर्कराम्लको पिरीदिन या कुनोलिनमें गरम करनेसे कर्बोषिल मूलके पास वाले कर्बन परमाणुके उदजन और उदौषिल मूलोंकी दिशाओंका परिवर्तन हो जाता है। इस विधिके उपयोगसे अन्य शर्कराओंका संश्लेषण और उनके संगठनका निर्धारण सम्भव हो सका। हम यहां सोलह षष्ठोज मध्यानाद्रिक सम-रूप शर्कराओंका संगठन देते हैं जिन्हें फिशर ने अपनी कुशल बुद्धिसे केवल निर्धारित ही नहीं प्रत्युत अपनी सिद्धहस्त प्रयोगिक प्रतिभासे निर्भ्रान्त भी सिद्ध कर दिया है। इन प्रत्येक शर्कराओंमें सबमें एक ओर क $उ_२$ ओ उ मूल है और दूसरी ओर—क उ ओ मूल। शेष चार क उ. ओ उ मूल भिन्न भिन्न शर्कराओंमें निम्नप्रकार चित्रित किये गये हैं।
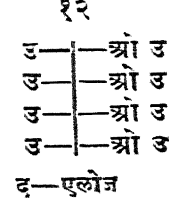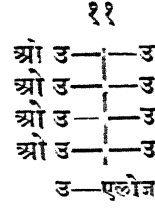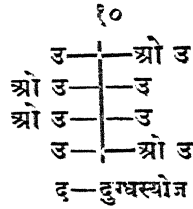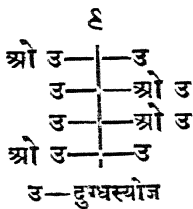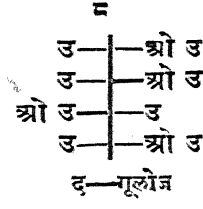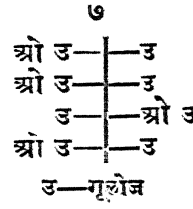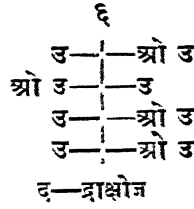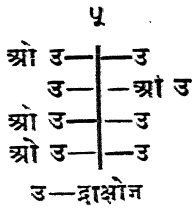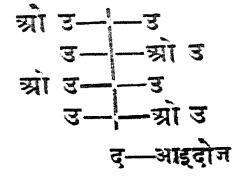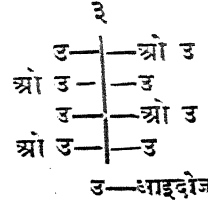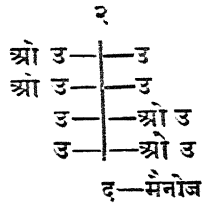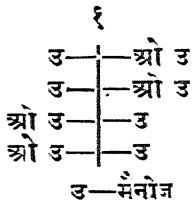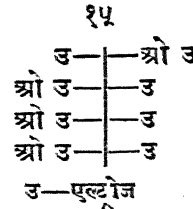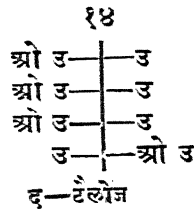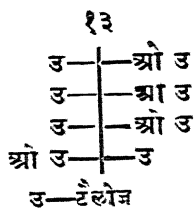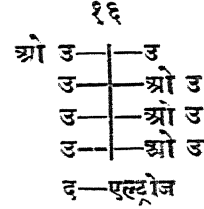
इतने प्रकारकी शर्कराओंकी समरूपताकी आयोजना करना फिशर की दूरदर्शिताका उत्कृष्ट उदाहरण है। शर्कराओं पर कार्य्य करते समय अनेक द्राक्षोसिदोंका भी अध्ययन किया गया। द्राक्षोज और दारीलमद्यको साधारण तापक्रम पर ही उदहरिकाम्ल द्वारा प्रभावित करनेसे दारील द्राक्षोसिद बनता है:—

क उ$_2$ ओ उ
|
(क उ ओ उ)$_4$ + क उ$_3$ ओ उ
| = क$_6$ उ$_{11}$ ओ$_5$ ओ क उ$_3$ + उ$_2$ ओ
क उ ओ
द्राक्षोज — दारीलद्राक्षोसिद

पर फिशरने यह मालूम किया कि इस नये द्राक्षोसिद यौगिकमें द्राक्षोजके समान मद्यानार्द्रिक गुण हैं ही नहीं अतः उसने इसका संगठन निम्न रूप से चित्रित किया:—

उसने यह भी दिखाया कि ये द्राक्षोसिद दो प्रकार के, क और ख, हो सकते हैं, एक तो जब इसका— ओ क उ$_3$ मूल उसी ओर हो जिस ओर दुग्धोनिक ओ है और दूसरा जब यह दूसरी ओर हो:—

क और ख दारील द्राक्षोसिद

फिशरने यह भी दिखाया कि इक्षोज, यवोज आदि द्वि शर्करोज भी द्राक्षोसिदोंके ही समान हैं। इक्षोजको फलो-द्राक्षोसिद अथवा द्राक्षो फलोसिद कहना चाहिये। उसने इसका संगठन निम्न प्रकार चित्रित किया:—
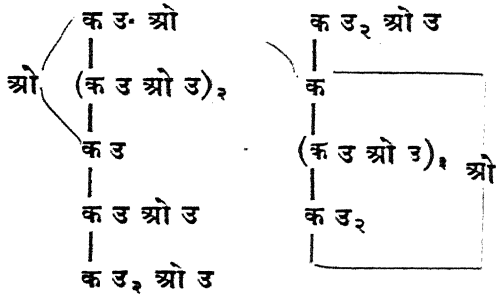
इक्षोज

फिशर ने एक बहुत महत्व पूर्ण संश्लेषण टैनिन का किया जिसके लिये उसकी बुद्धिकी जितनी कम प्रशंसाकी जाय थोड़ी ही है। फिशर और उसके सहकारी फ्रूडेनबर्गकी धारणाके अनुसार टैनिन को पंच-द्विमाजूवील-द्राक्षोज (Penta-digalloyl glucose) मानना चाहियेः—

[$क_6$ $उ_2$ (ओ उ)₃ क ओ ओ $क_6$ $उ_2$·(ओ उ)₂ क ओ]₅ $क_6$ $उ_7$ ओ₆

इस कल्पनाकी आगे सिद्धि भी हो गई जब पंच माजूवील द्राक्षोजका संश्लेषण किया गया। इस अनुसन्धानके समय फिशर ने एक नयी जातिके यौगिक तैयार किये जिनका नाम उसने डेप्साइड रखा। इन डेप्साइडोंके संश्लेषणकी सामान्य विधि भी फिशर ने निकाली। उदाहरणतः विटपिकाम्ल, $क_6$ $उ_4$ (ओ उ) क ओ ओ उ के दिव्योलिक ओ उ मूलकोकर्बज्वलौषमूल (हरो पिपीलिक सम्मेल के प्रयोगसे) द्वारा संरक्षित करके अम्लील हरिद् बनाते हैं और फिर उसी विटपिकाम्लके सैन्धक लवणके दिव्योल मूलको भी सैन्धकित करके इस अम्लील हरिदसे संयुक्त कर देते हैं। अन्तमें हलके क्षार द्वारा उदविश्लेषण कर लिया जाता हैः—

ओ उ $क_6$ $उ_4$ क ओ ओ उ → (क ओ₂ य) ओ $क_6$ $उ_4$ क ओ ह

विटपिकाम्ल ↓ + सै ओ $क_6$ $उ_4$ क ओ ओ सै

(क ओ₂ य). ओ. $क_6$ $उ_4$ क ओ. ओ. $क_6$ $उ_4$ क ओ ओ सै

↓

ओ उ $क_6$ $उ_4$ क ओ ओ $क_6$ $उ_4$ क ओ ओ उ

द्विडेप्साइड

यह द्विडेप्साइड हुआ। इसके ओ उ मूलको फिर संरक्षित करके तथा कर्बोषिल मूलको अम्लील हरिदमें परिणत करके फिर विटपिकाम्लके द्विसैन्धक लवणसे संयुक्त कराने पर त्रिडेप्साइडः—

ओ उ- $क_6$ $उ_4$ क ओ ओ- $क_6$ $उ_4$ क ओ ओ- $क_6$ $उ_4$ क ओ ओ उ

बन सकता है। इस प्रक्रियाको और आगे बढ़ानेसे चतुर्, और पंच डेप्साइड भी प्राप्त हो सकते हैं।

प्यूरिन समूह का अन्वेषण

एक ओर तो शकराओं पर अमूल्य कार्य्य करके एमिल फिशर ने अपनी कीर्ति अमर की और दूसरी ओर मूत्रिकाम्ल सम्बन्धी यौगिकोंकी विशद गवेषणाओं द्वारा इस रासायनिक जादूगर ने वैज्ञानिक जगत्को चकित कर दिया। इन यौगिकों पर शीले, बर्गमन, प्राउट, लीबिग, मिटशरलिश, व्हूलर, बायर, गरहर्ड्ट प्रभृति अनेक रसायनज्ञ उपयोगी कार्य्य कर चुके थे। सन् १८८१ से लेकर जब कि उसने कहवीन को दारोल कर्बामिद् एवं द्विदारील एलोक्सानमें परिणत किया था, सन् १९१४ तक इस प्रकारके यौगिकोंके अध्ययनका क्रम चलता ही रहा। सन् १८९८ में फिशर ने मूत्रिकाम्ल से प्यूरिनको पृथक् किया। इस प्यूरिनका वंश बहुत ही उपयोगी और विस्तृत है, इसका पता लगाकर फिशर ने कार्बनिक रसायनमें एक नया विषय ही आरंभ कर दिया। प्यूरिनका संगठन निर्धारित

होने पर इसके वंशके अन्य यौगिकोंका नामकरण और वर्गीकरण भी सरल हो गया।

१ ६
ना = क उ
| | ७
२ उ क ५ क—नो उ
‖ ‖ क उ ८
नो — क — नो
३ ४ ९
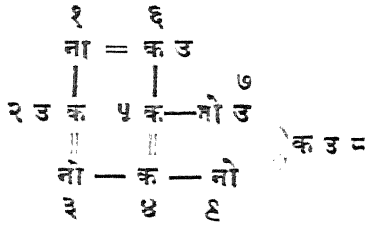
प्यूरिन

नोषजन और कर्बन परमाणुओंके स्थानोंको १, २, ३, ४,…आदि संख्याओंसे सूचित करनेकी विधि फिशर ने निर्धारित कर दी। इसके आधार पर मूत्रिकाम्लको २, ६, ८, त्रिओष प्यूरिन कहना चाहिये:—

नो = क (ओ उ)
| |
ओ उ क क — नो उ
‖ ‖ क (ओ उ)
नो — क —— नो

अथवा

नो उ — क ओ
| |
क ओ क — नो उ
| ‖ क ओ
नो उ — क — नो उ
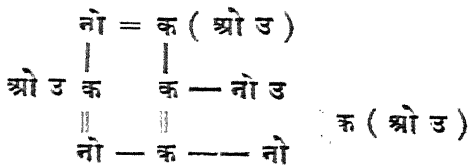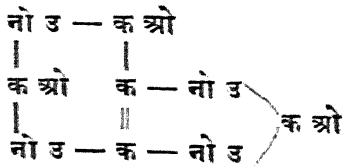
मूत्रिकाम्ल

इसी प्रकार जैन्थीन को २, ६ द्विओष प्यूरिन, तथा एडिनाइनको ६ अमिनो प्यूरिन कहा जा सकता है:—

नो उ — क ओ
| |
क ओ क — नो उ
| ‖ क उ
नो उ — क — नो

जैन्थीन

नो = क नो $उ_2$
| |
उ क क — नो उ
‖ ‖ क उ
नो — क —— नो
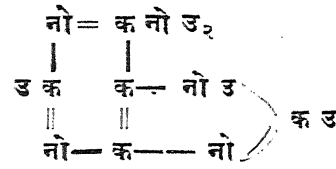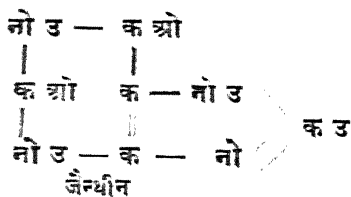
एडिनाइन

प्यूरिन समूहमें फिशरका सबसे महत्वपूर्ण कार्य्य मूत्रिकाम्लके संश्लेषणके सम्बन्धमें है। बायर और श्लीपरने मूत्रेमिल (Uramil) को पांशुज श्यामेतके साथ उबाल कर पांशुज उपमूत्रेत (Pseudourate) बनाया था।

उ नो — क ओ
| |
ओ क क उ नो $उ_2$ + पां क नो ओ—▷
| |
उ नो — क ओ

मूत्रेमिल

उ नो — क ओ
| |
ओ क क उ. नो उ. क ओ. नो उ. पां
| |
उ नो — क ओ
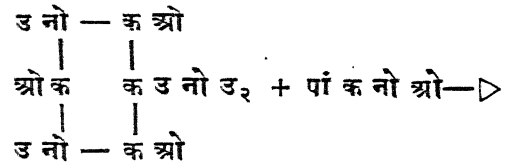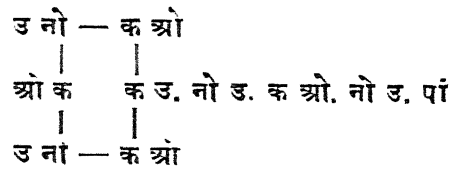
पांशुज उप मूत्रेत

उपमूत्रिकाम्लमें मूत्रिकाम्लकी अपेक्षा जलका एक अणु अधिक है। फिशरके पहले अनेक लोगोंने इस एक जलाणुको पृथक् करके मूत्रिकाम्ल बनाने का बहुत ही प्रयत्न किया, पर वे सफल न हो सके। पर फिशरकी प्रतिभाने इस कार्य्यको न केवल सरल ही बना दिया, प्रत्युत उसकी यह विधि प्यूरिन वंशी अन्य यौगिकोंके संश्लेषणमें भी काम आई। और फिशरकी यह विधि क्या है—बहुत ही साधारण! उसने उपमूत्रिकाम्ल को केवल उदहरिकाम्लके साथ उबाल दिया। इतना ही करनेसे

उसे मूत्रिकाम्ल प्राप्त हो गया। जिस उलझनमें अन्य वैज्ञानिक चक्कर मार रहे थे, उसे फिशरने इस छोटी सी विधिसे ही निवारण कर दिया (१८९७)। फिशरकी यह महत्ता अपूर्व है। इसके पश्चात् कहवीन, थिओब्रोमीन, थियोफिलीन आदि अनेक सजातीय यौगिकोंकी फिशरने मीमांसा की। यही नहीं प्रत्युत इन यौगिकोंके द्राक्षोसिद भी बनाये।

अमिनो अम्ल, बहु पेप्टाइड और प्रत्यमिन

इन सब अन्वेषणोंके अतिरिक्त फिशरको इनसे भी अधिक महत्वपूर्ण कार्य करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। जीवरसायनमें प्रत्यमिन (प्रोटीन) की समस्या सबसे विकट थी, वस्तुतः ये अत्यन्त संकीर्ण और क्लिष्ट यौगिक हैं। इनके संगठनको निर्धारित करना तथा इनकी रासायनिक उपयोगिताका अध्ययन करना बड़ा ही कठिन है। पर एमिल फिशरको तो गुह्यसे गुह्य अनुसन्धानोंमें ही आनन्द आता था, और ये गूढ़ समस्यायें फिशरके सामने आकर अपना नग्न रूप प्रगट कर देती थीं, फिशर उनके गुप्त रहस्योंके अन्तस्तल तक पहुँच जाता था।

प्रत्यमिन पदार्थों तथा अमिनो अम्लोंमें वही सम्बन्ध है जो बहु शर्करोज तथा पद्योजोंमें है। फिशर ने स्पष्ट दिखा दिया कि ये प्रत्यमिन पदार्थ अमिनो अम्लोंके पारस्परिक संयोगसे ही बने हैं। यही नहीं, इस अलौकिक महापुरुष ने प्रत्यमिन पदार्थोंका संश्लेषण भी आरम्भ किया। यह संश्लेषण और विश्लेषण रसायन शास्त्रकी चरम सीमा तक पहुँच गया। प्रत्यमिनों पर प्रेरक-जीवोंकी प्रक्रियासे ९ अमिनो अम्ल, तीन द्वि-अमिनो-अम्ल और केशिन (cystin) प्राप्त होते हैं, इस बात का फिशर ने अनुभव किया। इन अमिनो अम्लोंमें से बहुतोंको फिशरके पूर्ववर्ती स्ट्रेकर आदि ने संश्लेषित कर लिया था। इन अम्लोंमें एक 'सैरिन' (क-अमिनो, ख-उदौष अम्रोनिकाम्ल) है जो यद्यपि १८६५ में क्रेमर द्वारा पृथक् किया गया था, पर इसके संश्लेषणका श्रेय सन् १९०२ में फिशर और ल्यूक्सको मिला। इनमेंसे अनेक अम्ल दक्षिण और उत्तर भ्रामक दोनों होते हैं। इन दोनोंको पृथक् करनेमें बानजावील, पिपीलील, प-नोषबानजावील आदि मूलोंके संरक्षक प्रयोगसे अमिनो मूलोंको बद्ध कर, स्ट्रिक्टनीन, ब्रूसिन आदि क्षारोदोंके साथ स्फटिकीकरण करके सफलता प्राप्तकी। फिशरके समक्ष अब प्रश्न यह था कि इन अमिनो अम्लोंको संयुक्त करके किस प्रकार प्रत्यमिन पदार्थ बनाये जावें। इन अम्लोंके पारस्परिक संयोगमें विशेष कठिनाई यह थी कि इनमें अमिनो और कर्बोषिल दोनों मूलोंके होनेके कारण न अम्लगुणही प्रबल थे और क्षार गुण ही। दूसरी कठिनाई यह थी कि दो भिन्न भिन्न अम्लोंमें संयोग कई प्रकारसे हो सकता है, अतः प्रक्रियामें कई प्रकारके पदार्थ बनते थे जिनका पृथक् करना बहुत ही कठिन हो जाता था। फिशर ने इन सब कठिनाइयोंका किस प्रकार समाधान किया, इसका उल्लेख यहाँ नहीं किया जा सकता है। उसने अमिनो अम्लोंको संयुक्त करना आरम्भ किया—मधुनके एक अणुको एलेनिन (रेशमिन) से संयुक करके निम्न यौगिक मिला।

नो उ$_2$ क उ$_2$ क ओ ओ उ
+क उ$_3$ क उ (नो उ$_2$) क ओ ओ उ
=नो उ$_2$. क उ$_2$ क ओ. नो उ. क उ. क ओ ओ उ
　　　　　　　　　　　|
　　　　　　　　　　क उ$_3$
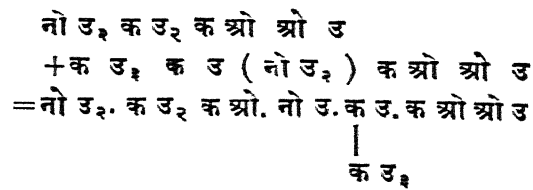
दो अमिनो अम्लोंके संयोगसे जो यौगिक बने, उनका नाम फिशर ने पेप्टाइड रखा। उपर्युक्त पेप्टाइड एक और अमिनो अम्लसे संयुक्त करने पर द्वि पेप्टाइड, फिर इससे त्रि, चतुर, पंच—आदि बहु पेप्टाइड (Polypeptide) फिशर ने बनाये, फिशरने यहां तक कि एक अष्टदश पेप्टाइडका भी संश्लेषण कर डाला जिसका अणु भार १२१३ है। इतने अणु भारके शुद्ध यौगिक प्रकृतिमें भी बहुत कम पाये जाते हैं और इस यौगिकका गुण प्राकृतिक

प्रत्यमिनोंसे बहुत ही मिलता जुलता है। यह यौगिक यह है:—

नो $उ_२$ क उ ($क_४$ $उ_९$) क ओ (नो उ. क – $उ_२$ क ओ$)_३$ नो उ. क उ ($क_४$ $उ_९$) क ओ – (नो उ क $उ_२$ क ओ $)_३$ नो उ क उ ($क_४$ $उ_९$). क ओ (नो उ क $उ_२$ क ओ $)_८$ नो उ क $उ_२$ क ओ ओ उ

उ – ल्यूसिल—त्रिमधुनील – उ – ल्यूसिल त्रिमधुनील – उ ल्यूसिल – अष्ट मधुनील मधुन

इस यौगिकके संश्लेषणसे फिशरकी चातुरीका परिचय प्राप्त हो सकता है। इस यौगिकका संश्लेषण सन् १९०७ में किया गया था। फिशर ने इसी वर्ष मैडागास्करके रेशमकी परीक्षाको, और भी अनेक पदार्थोंका विश्लेषण किया। साधारण बहु-पेप्टाइड रवेदार होते हैं और उनमें तथा प्रत्यमिन-पदार्थोंमें कुछ अधिक समानता नहीं है, पर ज्यों-ज्यों इनका अणुभार बढ़ता जाता है, इनमें प्रत्यमिन गुण भी अधिक आते जाते हैं। ये बेरवे हो जाते हैं, इनके जलीय घोल भी स्वच्छ नहीं प्रत्युत दूधिया होते हैं, ये अमोनियम गन्धेत, स्फुरोवुल्फ्रामिकाम्ल तथा टैनिनके साथ अवक्षेप देते हैं। ये अर्धमुत्रित प्रक्रिया भी देते हैं। इससे ही स्पष्ट है कि फिशरका कार्य्य प्राकृतिक प्रत्यमिनोंके कितने निकट पहुँच गया है।

कीटाणु रसायन

फिशर ने सन् १९०७ के फैरेडे-व्याख्यानमें यह कहा था कि रसायन शास्त्रका अन्तिम ध्येय वानस्पतिक एवं प्राणि जगत्की शारीरिक क्रियाओंका रहस्य जानना है। फिशर ने कृत्रिम एवं प्राकृतिक शर्कराओं पर प्रेरक जीवोंका प्रभाव देखा। इस अध्ययनमें उसे यह विचित्र बात पता लगी कि सब शर्कराओं पर एक ही प्रेरक जीवका प्रभाव नहीं पड़ता है। शर्कराके संगठनमें असम संगतिक कर्बन परमाणुओंकी आयोजनाके अनुसार प्रेरक जीव अपना प्रभाव दिखाते हैं। जिस प्रकार प्रत्येक तालेके खोलनेके लिये पृथक् पृथक् कुंजियां होती हैं वैसे ही इन शर्कराओंको प्रभावित करनेके लिये पृथक् पृथक् प्रेरक जीव आवश्यक हैं। इस बातसे शर्कराओंका आयोजित सङ्गठन और भी निश्चित हो गया। यह कार्य्य सन् १८९४ के लगभग किया गया था। सन् १८९६ में नोबेलके सहयोगमें फिशर ने गशास्ता. मधुरोजन (Glycogen), यवोज, दुग्धोज, इक्षोज, एमिगडेलिन आदिका रुधिर-रस पर प्रभाव देखा। सन् १९०३ में अपने विख्यात शिष्य एबडरहैल्डनके सहयोगमें पाचक कीटाणु (Pancreatic enzyme) का कैसीन (दधिन) पर प्रभाव देखते समय उसे पता चला कि यद्यपि दधिनको क्षार अथवा अम्लों द्वारा उदविश्लेषित करने पर प्रोलिन और दिव्यील नीलिन प्राप्त होते हैं पर पाचक कीटाणु द्वारा ये दोनों पदार्थ नहीं मिलते। टाइरोसिन, रेशमिन, ल्यूसिन, ग्लूटेमिकाम्ल, एस्पेरिटिकाम्ल आदि पदार्थ ही उपलब्ध हुए, तथा एक बहु पेप्टाइड मिला। जब इस बहुपेप्टाइडका उदहरिकाम्ल द्वारा उदविश्लेषण किया गया तो अवश्य प्रोलिन और दिव्यीलनीलिन प्राप्त हो गये। फिशर और एब्डरहैल्डन ने सन् १९०५ में अनेक बहु-पेप्टाइडों पर भी प्रेरक जीवोंके प्रभावका अध्ययन किया और उनसे उनकी दक्षिण अथवा उत्तर भ्रामकताका सम्बन्ध दृढ़ किया। फिशरके पश्चात् उसके कार्य्यको एब्डरहैल्डनने बड़ी ही कुशलतासे निभाया।

अन्य कार्य्य

कार्बनिक रसायनमें फिशरका कार्य्य एक प्रकारसे सर्वव्यापक है। उसने वाल्डन विपर्य्ययका भी अध्ययन किया। कभी कभी ऐसा होता है कि किसी उत्तर-भ्रामक पदार्थ पर प्रक्रियायें करनेसे उत्तर-भ्रामक नहीं प्रत्युत दक्षिण-भ्रामक पदार्थ प्राप्त होते हैं। इस प्रकार दक्षिण-भ्रामक हरोरालिकाम्ल पर पांशुज उदौषिदके प्रभावसे उत्तर भ्रामक सेबिकाम्ल मिलता है, और द—सेबिकाम्ल पर स्फुर पंचहरिद् द्वारा उ—हरोरालिकाम्ल

उपलब्ध होता है। इस प्रकारके विपर्य्ययका नाम वाल्डन—विपर्य्यय है। सन् १६०७-११ तकके बीचमें फिशरको भी इस प्रकारके बहुतसे उदाहरण मिले। उसने देखा कि द—रेशमिन पर नोषोसील अरुणिदका प्रभाव डालनेसे द—(क) अरुण अम्रोनिकाम्ल नहीं मिलता है प्रत्युत उत्तर भ्रामक अरुण-अम्रोनिकाम्ल प्राप्त होता है। इसी प्रकार उ—ख—उदौषनवनीतिकाम्ल पर स्फुर पंचहरिद के प्रभावसे द—ख-हरो नवनीतिकाम्ल बनता है। यह क्यों होता है? इसके अनेक कारण भिन्न भिन्न लोगों ने बताये हैं। फिशरकी सम्मति है कि परिवर्तक रस (स्फुर पंचहरिद आदि) पहले यौगिकसे संयुक्त होकर एक युक्त यौगिक बनाते हैं। इस संयोगसे असमसंगतिक कर्बनसे संयुक्त मूल अपना स्थान घुमाकर परिवर्तन करनेमें समर्थ हो जाते हैं। बाद को युक्त-यौगिकके विभाजन होने पर इस प्रकार उत्तर भ्रामकसे कभी कभी दक्षिण भ्रामक और दक्षिण भ्रामकसे उत्तर भ्रामक यौगिक भी प्राप्त हो जाते हैं। वस्तुतः यह विवादास्पद विषय है।

औद्योगिक कार्य्योंमें भी फिशरका सहयोग लाभदायक रहा है, यद्यपि वह दार्शनिक रसायनज्ञ ही था। उसकी प्रसिद्धिके कारण अनेक कारखानोंके स्वामी उसे अच्छा वेतन देकर अपने यहां रखना चाहते थे। सन् १८८३ में ही बेडिश फैक्टरी ने उसे ५००० पौण्ड वार्षिक वेतन पर अपने यहाँ बुलाना चाहा पर वह वहाँ न गया। स्वभावतः औद्योगिक विषयोंमें उसकी रुचि कम थी। त्रि-दिव्यीलदारेन सम्बन्धी रंगोंका अन्वेषण जो उसने अपने चचेरे भाई औटो फिशरके साथ किया था कदाचित् उसे रंगके व्यवसायमें मालदार बना सकता था पर उसके जीव-रसायनके प्रेम ने ऐसा करनेमें बाधा डाली। प्यूरिन सम्प्रदायके यौगिकोंमें कहवीन, थियोफिलीन, थियोब्रोमीन आदि ओषधि रूपमें परमोपयोगी हैं। फिशर ने इनको तैयार करनेकी जो विधियां निकाली थीं उनका बोहरिञ्जर और बायर फैक्टरियों ने उपयोग किया। उसके द्विज्व-लील बारबिट्यूरिकाम्लने बहुसुतल (वीरोनल) के समान ओषधियोंको जन्म दिया।

जर्मन महायुद्धके समयमें फिशर ने अपने देश-की जो रासायनिक सेवाकी वह भी कुछ कम महत्वकी नहीं है। इसमें सन्देह नहीं कि यदि नोषिकाम्लके संश्लेषणकी विधि जर्मन लोग न निकाल लेते तो यह युद्ध कभी १६१५ के आधे सालसे अधिक नहीं चल सकता था क्योंकि चिलीसे जर्मनीमें शोरा जाना बन्द हो गया था। फिशर ने सन् १६१४ के सितम्बरमें ही इसकी ओर अधिकारियोंका ध्यान दिलाया था, पर सैनिक अधिकारियों ने जो इस सम्मतिका मूल्य नहीं समझते थे, फिशरको खरी खोटी सुनाई। इसके बाद फिशर ने १ अक्टूबरको सैनिक मन्त्रिमंडलके पास अमोनिया प्राप्त करनेका विस्तृत विवरण भेजा। तत्पश्चात् नोषिकाम्लके संश्लेषणको सफली-भूत बनानेके लिये उसने भरसक सहयोग दिया।

बारूदके लिये कपूरका उपयोग किया जाता था; पर इसी वर्ष दो मास पश्चात् पता चला कि कपूरकी मात्रा समाप्त हो रही है। इस अवसर पर फिशरकी सम्मतिसे द्विदारील—एवं द्विज्वलील द्वि दिव्योल कर्बामिदका प्रयोग किया जाने लगा। सन् १६१५ की फर्वरीमें बानजावीन और टोल्वीन व्यवसायकी वृद्धिके लिये जो समिति बनी थी उसका सभापति फिशर नियुक्त हुआ। इसके अति-रिक्त पाइराइटीज़ व्यवसाय, तैल या घासके घीका व्यवसाय आदिमें भी इसने सहयोग दिया। युद्धके समय भोजन आदिकी न्यूनता तथा अव्यवस्था जर्मनीको विशेष रूपमें हानि पहुँचा रही थी क्योंकि अनेक खाद्य पदार्थ गोले बारूदके बनानेमें ही खर्च कर दिये जा रहे थे। फिशर ने इस सम्बन्ध में जैसा कुछ हो सका किया पर जर्मनीका भाग्य अधिक सहायता न दे सका।

एमिल फिशरकी महत्तामें किसीको क्या सन्देह हो सकता है। उसके ऊपर अनेक विपदायें आयीं।

उसके दो युवा पुत्र मृत्युके ग्रास हो गये, उसका शरीर भी अस्वस्थ रहता था। कई बार रासायनिक प्रयोगशालाकी दुर्घटनाओंने भी उसे बहुत सताया। सन् १८८१ में मयमज्जिक उदाजीविनों पर पारदिक ओषिदका प्रभाव देखते समय विषैली वाष्पोंसे उसे पीड़ित रहना पड़ा। प्रक्रियामें जनित पारद-द्विज्वलीलकी वाष्पोंसे तीन मास बीमार रहा। दस-बरस बाद द्विव्यील उदाजीविनसे भी उसे ऐसा ही कष्ट उठाना पड़ा। पर इस सबके होते हुए भी फिशर अपने कार्य्यमें दृढ़ रहा। वस्तुतः इन विपदाओंके समयमें ही उसने अपने चमत्कृत और परमोपयोगी अन्वेषण कर डाले।

यहां इस बातको न भूलना चाहिये कि जर्मनी का प्रसिद्ध अन्वेषणालय कैसर-विल्हेलम-इन्स्टीट्यूट के संघठित होनेका श्रेय फिशर ही को है। फिशरकी यह हार्दिक आकांक्षा थी कि ऐसा अन्वेषणालय खोला जाय जहाँ अन्वेषणके अतिरिक्त वैज्ञानिकों को पठन पाठन आदि का और कोई कार्य्य ही न करना पड़े। इस कार्य्यमें नर्न्स्ट, और ओस्टवाल्डसे भी बहुत सहायता मिली। मार्च सन् १९०८ में इस कार्य्यके लिये प्रमुख रसायनज्ञोंकी एक समिति 'Verein chemische Reichsanstall' बनी, और सन् १९१० में कैसर विल्हेलम इन्स्टीट्यूट उद्घाटित किया गया। बादको यह इन्स्टीट्यूट और फिशरकी समिति एक में मिला दी गई और वस्तुतः तभीसे इसकी विशेष उन्नति आरम्भ हुई। फिशरने अपनी समितिके सभापतित्वकी हैसियतसे सन् २३ अक्टूबर १९१२ को अपने समितिका भवन इस इन्स्टीट्यूटको अर्पित कर दिया।

एमिल फिशरके समान व्यक्ति संसारमें सदा नहीं आते हैं। फिशरको रासायनिक जगत्का सबसे महान् व्यक्ति माना जा सकता है। उसके शिष्य आज भी रसायन शास्त्रकी अमूल्य सेवा कर रहे हैं।

———

क्षारोद

(Alkaloid)

[ले० श्री लक्ष्मणसिंह भाटिया एम०-एस०-सी०]

यह बात कोई नयी नहीं है। वर्षोंसे मनुष्य बहुत सी जड़ी बूटियों को जानते आये हैं जो ओषधिके काममें लाई जाती हैं और ज़हरीली भी होती हैं। उन्नीसवीं शताब्दीके आरम्भमें सरटरनर नामके एक पंसारीने अफीमसे वह चीज अलग निकाली जिसका नाम अंग्रेजी भाषामें मोर-फिया। है यह एक प्रकारका ज़हर है जिसके शरीरमें पहुँच जानेसे आदमी सोते-सोते मर जाता है और यही कारण है कि अफ़ीम जिसमें कि यह पाया जाता है खानेसे आदमी को नींद सी मालूम होती है व ज्यादा अफीम खानेसे आदमी मर जाता है। इस जगह यह बताना अनुचित न होगा कि बहुत ही थोड़ी मात्रामें मोरफिया डाक्टरी कामोंमें इस्तेमाल किया जाता है व जिन्हें नींद न आने की बीमारी है उनको फायदा करता है। इसके निकलने के बाद और बहुत सी इसी प्रकार की वस्तुयें या पदार्थ बहुत सी जडी बूटियोंसे अलग किये गये और उनको शुद्ध बनानेका प्रयत्न किया गया। यह पदार्थ केवल इसलिये क्षारोद कहलाते हैं क्योंकि इनका एक गुण क्षार है। वर्तमान वैज्ञानिक व्याख्या में क्षारोदसे वह पदार्थ समझे जाते हैं जिनमें कुछ खास बातें या गुण पाये जायें और जिनका मूल-रूप निम्नलिखित तीन रूपोंमें से कमसे कम एकसे मिलता हो।

ऊपर कही हुई वस्तुओंका थोडासा वर्णन अलग-अलग दिया जाता है (१) पिरोदिन यह एक ऐसी वस्तु है जो बहुत क्षारीय होती है और इसकी महक भी बडी तेज होती है। यह तारकोलसे निकाली जाती है। यह (पिरीदिन) क्षारोद की जड़ होती है अर्थात् यह क्षारोदमें अवश्य रहती है।
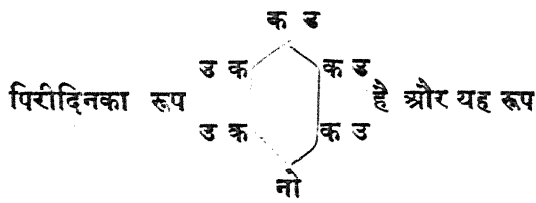
पिरीदिनका रूप है और यह रूप क्षारोदमें भी पाया जाता है।

(२) कुनोलिन—इसका रूप है।
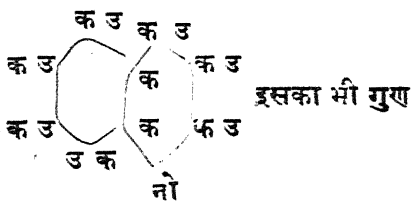
इसका भी गुण क्षारीय है और यह भी क्षारोदोंमें पाई जाती है।

(३) सम-कुनोलिन इसका रूप यह है :—यह
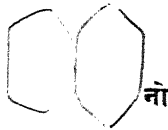
भी कुनोलिनसे मिलती जुलती चीज़ है। सिर्फ अन्तर इतना है कि कुनोलिन अधिक प्रसिद्ध चीज़ है क्योंकि यह बहुतसे क्षारोदोंमें पाई जाती है जैसे सिनकोना क्षारोद, कुनिन क्षारोद जो ज्वरमें काम आते हैं, अफीम क्षारोद अर्थात् वह क्षारोद जो कि अफीमसे तैयार किये जाते हैं। इस बातका दोहराना उपयुक्त होगा कि उपर्युक्त तीनों पदार्थोंके रूपोंका क्षारोदोंमें होना अनिवार्य्य है।

जड़ी बूटियाँ कुछ और चीज़ हैं व क्षारोद कुछ और ही चीज़ है। क्षारोदोंमें नोषजनकी उपस्थिति आवश्यक है।

इसकी बनावटके बारेमें कुछ लिखना व्यर्थ है क्योंकि अभी तक इनमेंसे बहुतोंकी बनावट या रूपका ठीक ठीक निर्णय नहीं हुआ है। इनके गुण बहुत हैं। सब क्षारोदोंके गुण पृथक् पृथक् होते हैं लेकिन कुछ ऐसे गुण भी हैं जिसकी वजहसे क्षारोद एक हैं अर्थात् वह गुण सबमें पाये जाते हैं:—

(१) यहसब क्षारीय हैं।

(२) इनसे ऐसे पदार्थ बनते हैं जो घुलनशील नहीं हैं।

(३) इनका स्वाद बड़ा कड़वा होता है।

(४) बहुत और करीब करीब सब जहरीले होते हैं।

(५) दो एकको छोड़कर सब ठोस होते हैं। सिर्फ दो क्षारोद द्रव होते हैं।

(६) क्षारोद पानीमें नहीं घुलते परन्तु कार्बनिक रसोंमें घुल सकते हैं।

(७) क्षारोदोंके लवण और खासकर हरिद और नोषेत पानीमें घुल जाते हैं और क्षार वस्तुओं द्वारा न घुलने वाले क्षारोद अलग किये जाते हैं।

(८ बहुतसे क्षारोद पौधों व जड़ी बूटियोंमें एक तेजाबको मिश्रणमें मौजूद रहते हैं क्षारोदोंके अलग करनेकी विधि बिलकुल अलग अलग है। हर एकके लिये एक एक अलग विधि है। दवाइयों के कामके लिये तथा औषधिमें उपयोग करनेके हेतु जो क्षारोद रहते हैं या निकाले जाते हैं उनके निकालनेकी विधि सारांशमें नीचे दी जाती है:—

पहले जिस जड़ीसे क्षारोद पदार्थ अलग करना है उसको खूब पीसते हैं और फिर पानीमें भिगोते हैं जिससे कि क्षारोद लवण सब घुल जाता है और फिर यह घोल चूनेके पानीके संघर्षमें आता है जिससे क्षारोद अलग हो जाते हैं और उसके बाद वह शुद्ध किये जाते हैं। यदि क्षारोद भापके ताप पर उड़ सकता है तो उसको गरम करके शुद्ध कर लेते हैं या फिर मद्य, ज्वलक इत्यादि इन सब चीज़ों से शुद्धि होती है। जैसा कहा जा चुका है कि एक क्षारोद एक बूटीमें अकेला कभी नहीं होगा। दो तीन क्षारोदोंका मिश्रण पाया जाता है जिनके अलग करनेमें बड़ी मुशकिल होती है।

अब कुछ मुख्य क्षारोदोंका वर्णन किया जावेगा तथा उनको जड़ी या पदार्थसे अलग करनेकी

विधि भी दी जावेगी तथा उनके मुख्य गुण भी बताये जायँगे। जैसा कि हम ऊपर बतला चुके हैं कि क्षारोद तीन रूपमें बाँटे गये हैं (१) वह क्षारोद जिनका जड़ रूप पिरीदिन है (२) वह क्षारोद जिनका जड़ रूप कुनोलिन है और वे कुनोलिन क्षारोद कहलाते हैं। (३) वह क्षारोद जिनका जड़ रूप सम कुनोलिन है।

पिरीदिन क्षारोद

पहले इसके कि मुख्य क्षारोदों का वर्णन किया जावे इस बातको समझना जरूरी है कि जो नाम क्षारोद का दिया जाता है अर्थात् कि यह क्षारोद किसी एक पौधे या जड़ीसे अलग किया जाता है उसका तात्पर्य्य यह नहीं है कि वह क्षारोद उस जड़ीमें अकेला हो बल्कि उसके अलावा और भी मौजूद हो सकते हैं पर उस मुख्य क्षारोदकी मात्रा सबसे अधिक होगी और इसी हेतु वह क्षारोद उस जड़ी या पदार्थसे निकाला जाता है।

पिपरीन या मिर्चीन क्षारोद

यह पदार्थ भिन्न भिन्न प्रकारकी मिर्चोंमें पाया जाता है। काली मिर्चमें यह ७—६ प्रतिशतक मौजूद है तथा क्षार दुग्ध द्वारा काली मिर्चके चूरेसे अलग किया जाता है फिर ज्वलक द्वारा शुद्ध रूपमें निकाला जाता है।

कोनीन क्षारोद

यह हेमलोक नामक जड़ीमें पाया जाता है और बहुत जहरीला होता है इसकी महक बड़ी खराब होती है और इसकी उपस्थितिके कारण हेमलोक पौधेमें भी वैसी महक आती है। यह हेमलोक नामक पौधा अमरीकामें बहुतायतसे पाया जाता है और जहरीला होता है। यह पौधा बारहों महीने हरा बना रहता है। उपर्युक्त क्षारोद मुख्य पौधेसे क्षार लवणके घोल द्वारा अलग किया जाता है और खास विधियों द्वारा शुद्ध किया जाता है और क्षारोदों व इसमें एक खास भेद यह है कि कोनीन क्षारोद तरल होता है और १६७°श पर उबलने लगता है।

तमाखुन (निकोटीन) क्षारोद

यह क्षारोद तम्बाकूकी पत्तियोंमें पाया जाता है और भिन्न प्रकार के तम्बाकूकी पत्तियोंमें ६ से ८ प्रतिशतक तक पाया जाता है। यह पत्तियोंमें क्षार दुग्ध द्वारा अलग किया जाता है व ज्वलक द्वारा शुद्ध किया जाता है यह क्षारोद भी तरल है और इसका क्वथनांक २४७°श है। यह पानीमें बिलकुल घुल जाता है। इसकी महक बड़ी खराब होती है। इसको चखनेसे जलन पैदा होती है और बहुत बड़ा ज़हर है। इसी चीजके मौजूद होनेकी वजहसे तम्बाकू या सिगरेट पीना हानिकारक है। इसकी महक का आभास हुक्केके पानीसे मिल सकता है व इसके स्वादकी जलन तम्बाकू खानेसे मालूम हो सकती है। तमाखुन क्षारोद इतना तेज ज़हर है कि इतनी थोड़ी सी मात्रामें भी बड़ी हानि करता है। यह फेफड़ोंको खराब कर देता है। सिगरेट पीनेवालोंको खाँसी का आना या बलगम का निकलना सिर्फ इसी तमाखुन क्षारोद के तम्बाकूकी पत्तियोंमें रहनेके कारण है। जैसा कि लिखा जा चुका है कि यह पानी में घुल जाता है, इस हेतु उन सज्जनोंके लिये जो सिगरेट पीना नहीं छोड़ सकते हैं हुक्का पीना कम हानिकारक होगा क्योंकि उसमें तम्बाकू का धुआँ पानीमें से होकर जायगा यह क्षारोद बहुत कुछ उस पानीमें घुल जायगा तथा पीनेवालेको इतना हानि नहीं करेगा।

धतूरिन (एट्रोपिन) क्षारोद

यह क्षारोद धतूरेमें पाया जाता है और दूसरे क्षारोद भी इसके मिश्रणमें मौजूद रहते हैं। पहले धतूरेके फलसे रस निकालते हैं फिर इस रसको क्षार नमकमें मिलाते हैं। उपर्युक्त मिश्रण हरीद्रिनमें डाला जाता है जिसके द्वारा क्षारोदका हरीद्रिनमें घोल हो जाता है। फिर इसको गरम करनेसे हरीद्रिन तो उड़ जाता है व एक सूखा सा पदार्थ रह जाता है जिसको गंधकके तेजाब द्वारा धतू-

रिन गन्धेतके रूपमें परवर्तित करते हैं और फिर इस गन्धेत को क्षारों द्वारा क्षारोद बना सकते हैं। इस धतूरिन गन्धेतको डाक्टर लोग आँखके इलाज़के काममें लाते हैं। इसकी शतांश मात्राका एक बूंद आखमें छोड़नेसे पुतली फैल जाती है।

यह बात कैसे जानेंगे कि कोई पदार्थ धतूरिन है कि नहीं। इसके हेतु नीचे लिखी हुई परीक्षाकी जा सकती है। उस वस्तुको ज़रासा शोरेके तेज़ाब में भिगो दो और फिर भाप द्वारा उसे सुखा दो। सुखानेके बाद पीली पोली वस्तुमें शराब मिश्रित क्षार डालनेसे बैजनी रंग पैदा होता है।

कोकेन क्षारोद

कोकेनका नाम कोई नया नहीं है। उसको सबने सुना है। जिस तरह कि लाग शराब पीते हैं, अफीम खाते हैं, उसी तरह कोकेन भी खाते हैं।

यह बड़ी हानिकारक वस्तु है। डाक्टर लोग इसको काममें लाते हैं। जिस जगह यह सूई द्वारा लगा दी जाती है उस जगहको सुन्न बना देती है। यह एक बहुत तेज ज़हर है और खानेसे यह मस्तिष्कके ज्ञान तन्तुओं और शरीरके बहुतसे अवयवों को थोड़ी देरके लिये सुन्न कर देता है जिससे मनुष्य दुख दर्द इत्यादि सब भूल जाता है। इसी वास्ते लोग इसे खाते हैं पर यह बड़ी हानि करता है।

कुनोलिन क्षारोद

उपर्युक्त क्षारोदकी तीन मुख्य शाखायें हैं (१) सिनकोना क्षारोद (२) अफीम क्षारोद (३) स्ट्राईकनोस क्षारोद। पहले इसके कि उपर्युक्त क्षारोदोंका वर्णन किया जावे, यह उत्तम होगा कि इनकी थोड़ी सी व्याख्या कर दी जावे। सिनकोना स्वयं एक क्षारोद है। इसकी उत्पत्ति फिर बतलाई जावेगी परन्तु सिनकोना क्षारोदसे तात्पर्य्य उन क्षारोदोंसे है जिसकी उत्पत्ति सिनकोनासे है। इसी प्रकार अफीमसे उत्पन्न होने वाले क्षारोदोंको अफीम क्षारोद कहते हैं तथा स्ट्राईकनोस क्षारोदोंसे भी यही तात्पर्य्य है।

हिन्दोस्तान लङ्का तथा दक्षिणी अमरीकामें एक प्रकारका वृक्ष पाया है जिसकी छालसे सिनकोना बनता है। छाल कई प्रकारके रङ्गकी होती है— लाल पीली हलको पीली इत्यादि और बहुतसे क्षारोद इसमें मौजूद होते हैं। निम्न लिखित क्षारोद उपर्युक्त समूहके मुख्य क्षारोदोंमें से हैं (१) कुनिन (२) सिनकोनिन। इसके बनानेकी विधि बहुत सरल है। छाल को महीन पीसकर हरोद्रिन या पेट्रोलमें घोलते हैं तो क्षारोद इस रसमें उतर आता है और फिर उपर्युक्त रसको गन्धकाम्लमें मिलाते हैं जिससे सब क्षारोद अर्थात् कुनिन तथा सिनकोनिन क्षारोद घुल जाते हैं। फिर वह अमोनिया द्वारा अलग किये जाते हैं। कुनिन पहले अलग होती है।

जब उपर्युक्त विधि द्वारा कुनिन गन्धेत अलग हो जाता है तो उसको पानी में घोलने से और किसी क्षारीय वस्तुके संसर्गमें लानेसे कुनिन क्षारोद अलग हो जाता है। यह सब जानते हैं कि कुनिन को डाक्टर बुखारमें इस्तेमाल करते हैं। थोड़ी मात्रा तो फायदा करती है लेकिन इतनी यह गरम होती है कि ज़रा सी मात्रा ज्यादा होनेसे सिर घूमने लगता है और कान बहरेसे हो जाते हैं और ज्यादा खा लेनेसे आदमीकी मृत्यु हो जाती है।

सिनकोनीन भी एक क्षारोद है और जैसा ऊपर कहा गया है कि सिनकोनीन तथा कुनिन संग संग पाये जाते हैं, अतः इसका भी वही असर है जो कि कुनिन का है पर थोड़ा कम है।

अफीम क्षारोद

पोस्तके फलके ऊपर शिगाफ देनेसे जो दूध निकलता है. सूख जाने पर अफीम बन जाता है और यह बहुतसे क्षारोदोंका विचित्र समूह है। यदि

अफीमको मद्यमें घोलें तो वह लौडेनम् कहलाता है।

अफीम समूहके क्षारोदोंको अलग करनेके लिये पहले अफ़ीमको गरम पानीमें उबालते है जिससे क्षारोद रस रूपमें निकल आते हैं फिर उनको क्षारीय दुग्ध द्वारा शुद्ध करते हैं। फिर रसको अमोनियामें गरम करते हैं जिससे आगे चल कर मोरफिया तैय्यार हो जाता है जैसे कि बिलकुल आरम्भमें कहा जा चुका है। इसलिये यहाँ पर कुछ कहना फिजूल सा है।

तीसरे समूहके मुख्य क्षारोद स्ट्रिकनीन और ब्रूसीन हैं। यह दोनों थोड़ी मात्रामें दवामें काममें आते हैं।

इस बातको फिर कहना आवश्यक जान पड़ता है कि बहुतसे क्षारोद जो मनुष्य प्रयोगमें लाते हैं कितने हानिकारक है क्योंकि सब जहरीले हैं व शरीरके स्नायुओं व अवयवों पर ऐसा असर करते हैं कि आदमी का उभरना मुशकिल हो जाता है। मज़दूर जातिकी जिनको कि तम्बाकू पीनेकी आदत रहती है बिना उसके चैन नहीं है और अगर पीने को न मिले तो उनका पेट फूल जाता है।

क्षारोदोंकी उपस्थितिके कारण उनके मूल पदार्थ क्षणिक आनन्ददायक तो होते हैं परन्तु विचार पूर्वक देखा जाय जो कितने हानिकारक हैं।

कुछ दवाईमें भी इस्तेमाल होते हैं क्योंकि यह बात प्रयोग द्वारा जानी गई है कि संखिया जो कि एक जहर है बहुत ही थोड़ी मात्रामें डाक्टर लोग खानेको देते हैं। पांशुज श्यामद भी बहुत ही थोड़ी मात्रामें हुचकीके रोगियोंको दिया जाता है उपर्युक्त बातें सिर्फ आप लोगोंको बतानेके हेतु लिखी गई हैं। कोई सज्जन प्रयोग करनेकी कोशिश न करें। क्षारोद के बारेमें और भी बहुत सी बातें हैं जो कि किसी दूसरे लेखमें बताई जायंगी।

युग्मांक—सरल रेखाओंकी लम्बाई और त्रिकोणोंका क्षेत्रफल

[ले० एक गणितज्ञ]

१५ युग्मांक—धरातलमें किसी बिन्दुकी स्थिति स्थापित करनेके लिये कई उपाय हैं। उनमेंसे एक सरल उपाय यह है कि दो अक्ष धरातलमें खींच लो। उन दोनोंके बीच में कोई कोण हो सकता है। उसी धरातलमें कोई बिन्दु लेकर उसकी दूरी उन दोनों अक्षोंके समानान्तर निकाली जा सकती है। इन दोनों दूरियोंका माप जानकर उस बिन्दुकी स्थितिका पता लगाया जा सकता है।
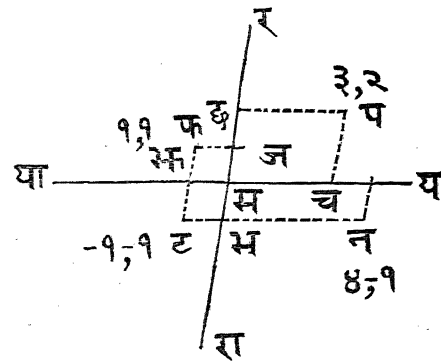
चित्र १

य या और र रा दो सरल रेखायें हैं जो म पर एक दूसरेको काटती हैं। ये दोनों स्थायी रेखायें हैं जिन्हें अक्ष कहते हैं। य या को य—अक्ष कहते हैं और र रा को र-अक्ष। म को मूलबिन्दु कहते हैं। इन दोनोंके धरातलमें कोई बिन्दु प लो। प से दोनों अक्षोंके समानान्तर प च, और प छ रेखायें खींचो। प च और प छ दूरी नापके प की स्थिति निश्चित की जा सकती है। प छ=च म, प च=छ म। म च को प बिन्दुका भुज और म छ को प बिन्दुका कोटि कहते हैं। र रा के दाहिनी ओर भुजोंमें धनात्मक चिह्न होता है और र रा के बायीं ओर ऋणात्मक भुज होते हैं। इसी प्रकार य या के ऊपरी ओर कोटि धनात्मक और नीचेकी ओर कोटि ऋणात्मक माने जाते हैं।

बिन्दु न का भुज नभ अक्ष र रा की दहिनी ओर होनेसे धनात्मक है पर कोटिमन अक्ष य या के नीचेकी ओर होनेसे ऋणात्मक है। फ बिन्दुका भुज म क्ष ऋणात्मक और कोटि फ क्ष धनात्मक है। बिन्दु ट में कोटि ट क्ष और भुज ट भ दोनों ऋणात्मक हैं।

प बिन्दुका भुज यदि तीन (इंच, शतांशमीटर सहस्रांशमीटर आदि कोई) इकाई है और कोटि २ इकाई तो प बिन्दु को (३, २) इस रूपसे सूचित करेंगे। न बिन्दुका धनात्मक भुज ४ इकाई और ऋणात्मक कोटि १ इकाई हो तो इस बिन्दुको (४,−१) रूपसे सूचित करेंगे, ट बिन्दुके भुज और कोटि दोनों ऋणात्मक −१, −१ इकाई हों तो इसे (−१,−१) रूपसे सूचित करेंगे। फ बिन्दुका ऋणात्मक भुज (−१) और कोटि १ इकाई हो तो इसे (−१, १) लिखेंगे। इसमें यह ध्यान रखना चाहिये कि भुज अङ्क सबसे पहिले लिखते हैं और कोटि-अङ्क उसके पश्चात्। दूसरी बात यह कि ऋण और धन चिह्नोंका इसमें विशेष ध्यान रखना चाहिये। तीसरी बात यह कि लम्बाई सदा अक्षोंके समानान्तर लेनी चाहिये और इकाइयोंको स्थिर रखना चाहिये।

भुज और कोटि देने पर बिन्दु अपने आप स्थिर किया जा सकता है। मान लो कि किसी बिन्दुके युग्मांक (−५, ३) हैं तो पहले यया अक्ष पर र−अक्ष के बाईं ओर ५ इकाई की लम्बाई गिनो, और फिर र रा अक्ष पर य या के ऊपर की ओर ३ इकाई गिनो। इस प्रकार एक बिन्दु य−अक्ष पर और एक र−अक्ष पर उपलब्ध हो गया। अब य−अक्ष के बिन्दुसे एक सरल रेखा र−अक्ष के समानान्तर खींचो और दूसरी एक सरल रेखा र अक्षके पूर्व निश्चित बिन्दुसे य−अक्षके समानान्तर खींची। ये दोनों रेखायें जहां पर परस्परमें मिलेंगी वहीं वह बिन्दु स्थित होगा। इसमें यह ध्यान रखना चाहिये कि लम्बाई सदा मूल बिन्दुसे ही दोनों अक्षों पर गिनी जाती हैं।

१६ अभ्यास—निम्न बिन्दुओंकी स्थिति स्थापित करो :—(५, −६); (−८, −६), (३, ५); (−४, २).

बिन्दु (५, −६) :—य−अक्ष पर र अक्ष की दाहिनी ओर मूल बिन्दुसे ५ इकाई गिनो। फिर र−अक्ष पर य अक्ष के नीचेकी ओर ६ इकाईमूल बिन्दुसे गिनो। समानान्तर रेखाओंके खींचनेसे स्थिति स्थापित हो जायगी।

बिन्दु (−८, −६):—य−अक्ष पर र−अक्ष के बायीं ओर ८ इकाई, और र अक्ष के समानान्तर क अक्ष के नीचेकी ओर ६ इकाई लेकर इस बिन्दुको मालूम करो।

बिन्दु (३, ५) :—य−अक्ष पर र−अक्ष के दाहिनो ओर ३ इकाई ओर वहांसे र−अक्ष के समानान्तर य−अक्ष के ऊपरी ओर ५ इकाई लेनी चाहिये।

बिन्दु (−४ २) :—य−अक्ष पर र−अक्ष की बायीं ओर ४ इकाई और वहांसे र−अक्ष के समानान्तर य−अक्षके ऊपरी ओर २ इकाई लेकर बिन्दुकी स्थिति ज्ञात हो सकती है।

१७ जब य अक्ष और र अक्ष के बीचका कोण ∠य म र समकोण (६०°) नहीं होता तब अक्ष तिर्यकक्ष कहलाते हैं और इसे बहुधा ∠ल से सूचित करते हैं। पर बहुधा सरलता इसीमें होती है कि अक्ष समकोण लिये जायं। इस अवस्थामें अक्ष आयताक्ष कहलाते हैं। इस पुस्तकमें अधिकतर आयताक्षोंका ही प्रयोग किया जायगा। जहां कहीं तिर्यकक्षका प्रयोग आवश्यकीय होगा वहां उसका उल्लेख कर दिया जायगा।

१८ जिन युग्मांकोंका उल्लेख अब तक किया गया है उन्हें कार्टीज युग्मांक कहते हैं क्योंकि सबसे पूर्व उनका प्रयोग डे-कार्टीज़ नामक एक प्रसिद्ध तत्ववेत्ता ने किया था। इसके अतिरिक्त बहुतसे अन्य प्रकारके युग्मांकोंका प्रयोग किया जाता है, पर कार्टीज-युग्मांक ही सबसे अधिक प्रसिद्ध और उपयोगी हैं।

१९. दो बिन्दुओंके बीचकी दूरी निकालना जिनके युग्मांक दिये हुये हैं।

चित्र २

कल्पना करो कि $ब_1$ और $ब_2$ दो बिन्दु हैं। $ब_1$ के युग्मांक ($य_1$, $र_1$) हैं और $ब_2$ के युग्मांक ($य_2$ $र_2$) हैं। $ब_1$ और $ब_2$ से दो रेखायें $ब_1$ टठ और $ब_2$ ड अक्ष र म के समानान्तर खींचो। य-अक्षसे ये ठ और ड में मिलती हैं। $ब_2$ से एक रेखा $ब_2$ट य-अक्ष के समानान्तर खींचो। यह रेखा $ब_1$ ठ से ट बिन्दु पर मिलती है। दोनों अक्षोंके बीचका कोण $<$ल है। अतः—

$$ब_2 ट = ड ठ = म ठ - म ड = य_1 - य_2$$

$$ब_1 ट = ब_1 ठ - ट ठ = र_1 - र_2$$

$$< ब_2 ट ब_1 = < म ठ ब_1 = 180^\circ - < र म ड = 180^\circ - < ल$$

त्रिकोणमितिके सिद्धान्तों द्वारा स्पष्ट है कि-

$$ब_1 ब_2^2 = ब_2 ट^2 + ब_1 ट^2 - 2\ ब_2 ट.\ ब_1 ट.\ कोज्या\ ब_2 ट ब_1$$

$$= (य_1 - य_2)^2 + (र_1 - र_2)^2 - 2(य_1 - य_2)(र_1 - र_2) कोज्या (180^\circ - ल)$$

$$= (य_1 - य_2)^2 + (र_1 - र_2)^2 - 2(य_1 - य_2)(र_1 - र_2) कोज्या\ ल \ldots (1)$$

यदि अक्ष आयताक्ष हों तो $<ल = 90^\circ$, $\therefore$ कोज्या ल $= 0$.

अतः सूत्र (१) में

$$ब_1 ब_2^2 = (य_1 - य_2)^2 + (र_1 - र_2)^2$$

अतः दो बिन्दुओं ($य_1$ $र_1$) और ($य_2$ $र_2$) के बीचकी दूरी यदि आयताक्षोंका प्रयोग हो,

$\sqrt{[(य_1 - य_2)^2 + (र_1 - र_2)^2]}$ होती है...(२)

उपसिद्धान्त—इसी प्रकार यह भी स्पष्ट है कि किसी बिन्दु ($य_1$, $र_1$) की दूरी मूल बिन्दु (०,० से $\sqrt{(य_1^2 + र_1^2)}$ होती है। उपर्युक्त परिणाममें $य_2$ और $र_2$ के स्थानमें शून्य स्थापित करनेसे यह दूरी निकाली गई है। शून्य स्थापित करनेका कारण यह है कि मूल बिन्दुके युग्मांक (०, ०) होते हैं।

२०. गत सूक्तके सूत्र निकालनेमें दोनों बिन्दुओं के युग्मांक धनात्मक थे। यदि एक बिन्दुके युग्मांक धनात्मक हों और दूसरेके ऋणात्मक, तो भी उसी प्रकार दूरी निकाली जा सकती है।

चित्र ३

$ब_1$ और $ब_2$ दो बिन्दु हैं जिनके युग्मांक क्रमानुसार ($य_1$, $र_1$) और ($-य_2$ $-र_2$) हैं। पूर्व रीत्यनुसार—

$$ब_1 ट = ब_1 ठ + ठ ट = ब_1 ठ + ब_2 ड$$

$$= (र_1 - र_2)$$

$$ब_2 ट = डम + मठ = (-य_2 + य_1)$$

$$\therefore ब_1 ब_2^2 = ब^2 ट^2 + ब_1 ट^2 + ब_1 ट.\ ब_2 ट\ कोज्याल$$

$$= (य_1 - य_2)^2 + (र_1 - र_2)^2 + 2(य_1 - य_2)(र_1 - र_2) कोज्या\ ल \ldots (1)$$

यदि आयताक्षोंका प्रयोग हो तो :—

$$ब_1 ब_2 = \sqrt{(य_1 - य^2)^2 + (र_1 - र_2)^2}. \ldots (2)$$

२१. अभ्यास—१. दो बिन्दु (४, ३) और (५, ६) के बीचकी दूरी निकालो जब आयतार्क्षों का प्रयोग किया गया हो।

$$\text{दूरी} = \sqrt{(४-५)^2+(३-६)^2} = \sqrt{(१+९)} = \sqrt{८} = २\sqrt{२}$$

२. दो बिन्दुओंके बीचमें क्या दूरी होगी यदि उनके युग्मांक (४, −५) और (−३, −६) हैं ?

$$\text{दूरी} = \sqrt{(४+३)^2+(-५+६)^2} = \sqrt{४९+१} = \sqrt{५०}.$$

३. दो बिन्दुओं (४, −६) और (३, ५) के बीचमें क्या दूरी होगी यदि अक्षोंके बीच ६०° का कोण है।

$$\text{कोज्या } ६०° = \tfrac{१}{२}$$

$$\text{दूरी} = \sqrt{(य_१-य_२)^2+(र_१-र_२)^2-२(य_१-य_२)(र_१-र_२)\text{ कोज्या } ६०}$$
$$= \sqrt{[(४-३)^2+(-६-५)^2-२(४-३)(-६-५).\tfrac{१}{२}]}$$
$$= \sqrt{[१+१२१+११]} = \sqrt{१३३}$$

२२ उस बिन्दु के युग्मांक निकालना जो दो दिये हुये बिन्दुओं ($य_१, र_१$) और ($य_२, र_२$) को जोड़ने वाली रेखा को किसी ज्ञात अनुपात ($म_१ : म_२$) में विभाजित करता है।

चित्र ४

कल्पना करो कि $ब_१$ बिन्दु ($य_१ र_१$) है और $ब_२$ बिन्दु ($य_२ र_२$) है। इनके जोड़नेवाला रेखा $ब_१ ब_२$ को ब बिन्दु ($म_१ : म_२$) अनुपात में विभाजित करता है। अतः

$ब_१ ब : ब ब_२ :: म_१ : म_२$ ।

मान लो कि ब के युग्मांक (य, र) हैं। $ब_१$, ब और $ब_२$ से $ब_१$ त, ब थ, $ब_२$ द रेखायें र अक्षके समानान्तर खींचो। अतः म त = $य_१$, म थ=य और म द=$य_२$। तथा $ब_१$ त=$र_१$, ब थ=र और $ब_२$ द=$र_२$।

$ब_१$ध और ब न य-अक्ष के समानान्तर खींचो। ये रेखायें क्रमानुसार ब थ और $ब_२$ द को ध और न पर मिलें। अतः

$ब_१$ध=त थ=म थ − म त=य − $य_१$

ब न =थ द=म द − म थ=$य_२$ − य

ब ध=ब थ − ध थ=ब थ − $ब_१$ त=र − $र_१$

$ब_२$ न=$ब_२$ द − न द=$ब_२$ द − ब थ=$र_२$ − र

तथा $ब_१$ ब ध और ब $ब_२$ न सजातीय त्रिकोण हैं। अतः—

$$\frac{म_१}{म_२} = \frac{ब_१ ब}{ब_२ ब} = \frac{ब_१ ध}{ब न} = \frac{त थ}{थ द} = \frac{य-य_१}{य_२-य}$$

$$\therefore म_१(य_२-य) = म_२(य-य_१)$$

$$\therefore म_१ य_२ - म_१ य = म_२ य - म_२ य_१$$

$$\therefore य(म_१+म_२) = म_२ य_१ + म_१ य_२$$

$$\therefore य = \frac{म_१ य_२ + म_२ य_१}{म_१ + म_२}$$

इसी प्रकार—

$$\frac{म_१}{म_२} = \frac{ब_१ ब}{ब ब_२} = \frac{ब ध}{ब_२ न} = \frac{र-र_१}{र_२-र}$$

$$\therefore म_१(र_२-र) = म_२(र-र_१)$$

$$\therefore र = \frac{म_१ र_२ + म_२ र_१}{म_१ + म_२}$$

अतः उस बिन्दुके युग्मांक जो $ब_१ ब_२$ रेखाको $म_१ : म_२$ के अनुपातमें विभाजित करता है,

$$\frac{म_१ य_२ + म_२ य_१}{म_१ + म_२},\quad \frac{म_१ र_२ + म_२ र_१}{म_१ + म_२} \text{ हैं।}$$

यदि भ बिन्दु रेखा $ब_१ ब_२$ को $म_१ : म_२$ अनुपातमें बहिर्गत विभाजित करता है तो इसके युग्मांक इसी प्रकार निकालने पर निम्न होंगे:—

$$\frac{म_१ य_२ - म_२ य_१}{म_१ - म_२}, \quad \frac{म_१ र_२ - म_२ र_१}{म_१ - म_२}$$

इसकी भी सिद्धि पूर्ववत् हो सकती है।

उपसिद्धान्त—पूर्व रेखा के मध्यबिन्दु के युग्मांक निम्न हैं :—

$$\frac{य_१ + य_२}{२}, \frac{र_१ + र_२}{२}$$

२३ अभ्यासः—सिद्ध करो कि किसी त्रिकोण चछज में $च छ^२ + च ज^२ = २ (च झ^२ + झ ज^२)$ यदि छ ज भुजा का मध्य बिन्दु झ है।
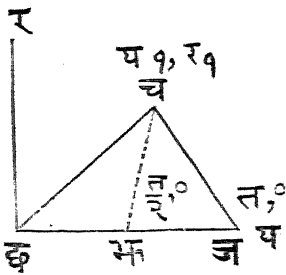
चित्र ५

छ को मूल बिन्दु मान कर छ ज को य-अक्ष मानो। छ बिन्दु से एक रेखा छ ज के लम्ब खींचो। इसे र अक्ष मानो।

कल्पना करो कि छ ज की लम्बाई त है, तो ज के युग्मांक (त, ०) हैं। मान लो कि च के युग्मांक ($य_१, र_१$) हैं। झ के युग्मांक ($\frac{त}{२}$, ०) हैं।

अतः $च झ^२ = (य_१ - \frac{त}{२})^२ + र_१^२$, तथा $झ ज^२ = (\frac{त}{२})^२$

अतः २ ($च झ^२ + झ ज^२$)

$$= २ [(य_१ - \frac{त}{२})^२ + र^२ ２ + (\frac{त}{२})^२]$$

$$= २ [य_१^२ + र_१^२ - य_१ त + \frac{त^२}{४}]$$

$$= २ य_१^२ + २ र_१^२ - २ य_१ त + त^२$$

तथा $च ज^२ = (य_१ - त)^२ + र_१^२$

और $च छ^२ = य_१^२ + र_१^२$ है।

अतः $च ज^२ + च छ^२ = २ य_१^२ + २ र_१^२ + त^२ - २ य_१ त$

$\therefore च ज^२ + च छ^२ = २ (च झ^२ + झ ज^२)$

अभ्यास २. च छ ज एक त्रिकोण है। छ ज, ज च, और च छ भुजाओंके मध्य बिन्दु त, थ, और द हैं। सिद्ध करो कि वह बिन्दु जो च त रेखाको २ : १ के अनुपातमें विभाजित करता है, छ थ और ज द रेखाओंको भी उसी अनुपातमें विभाजित करेगा। इस प्रकार सिद्ध करो कि त्रिकोणके तीनों मध्यगत एक ही बिन्दु पर मिलते हैं।
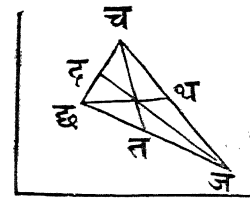
चित्र ६

कल्पना करो कि त्रिकोणके शीर्ष, च, छ, और ज के युग्मांक क्रमानुसार ($य_१, र_१$), ($य_२, र_२$) और ($य_३, र_३$) हैं। अतः त के युग्मांक $\frac{(य_२ + य_३)}{२}$, $\frac{(र_२ + र_३)}{२}$ हैं।

मान लो कि प बिन्दु च त को अन्तर्गत २ : १ अनुपातमें विभाजित करता है। प के युग्मांक (य, र) माने जा सकते हैं।

सूक्त २२ के अनुसार—

$$य = \frac{२ \times \frac{य_२ + य_३}{२} + १ \times य_१}{२ + १} = \frac{य_१ + य_२ + य_३}{३}$$

इसी प्रकार $$र = \frac{र_१ + र_२ + र_३}{३}$$

इसी प्रकार यह दिखाया जा सकता है कि छ थ और ज द को (२ : १) में विभाजित करने वाले बिन्दुके भी यही युग्मांक होंगे।

अतः वह बिन्दु जिसके युग्मांक $\frac{य_1+य_2+य_3}{३}$, $\frac{र_1+र_2+र_3}{३}$ हैं, तीनो मध्यगतों पर विद्यमान हैं। अतः तीनों मध्यगत एक ही बिन्दु पर मिलते हैं। प को त्रिकोणका गुरुत्व केन्द्र कहते हैं।

क्षेत्रफल

२४—कोण विन्दुओंके युग्मांकोंके पदोंमें त्रिकोणका क्षेत्रफल निकालना।

कल्पना करो कि त्रिकोण च छ ज के कोण विन्दुओं च, छ, ज के युग्मांक क्रमानुसार ($य_1, र_1$) ($य_2, र_2$) और ($य_3, र_3$) हैं।

चित्र ७

र—अक्ष के समानान्तर छ त, च थ और ज द रेखायें खींचो।

$$\triangle च छ ज = छ त थ च + थ च ज द - त छ ज द$$

$$छ त थ च = \triangle छ च त + \triangle त च थ$$

$$= \tfrac{1}{2} छ त. \; त थ + \tfrac{1}{2} च थ. \; त थ$$

$$= \tfrac{1}{2} त थ \, (छ त + च थ)$$

$$= \tfrac{1}{2} (य_1 - य_2)(र_2 + र_1)$$

इसी प्रकार $थ च ज द = \tfrac{1}{2}(य_3 - य_1)(र_1 + र_3)$

और $त छ ज द = \tfrac{1}{2}(य_3 - य_2)(र_2 + र_3)$

$$\therefore \triangle च छ ज = \tfrac{1}{2}\Big[(य_1 - य_2)(र_2 + र_1) + (य_3 - य_1)(र_1 + र_3) - (य_3 - य_2)(र_2 + र_3)\Big]$$

$$\therefore \triangle च छ ज = \tfrac{1}{2}\Big[य_1 र_2 + य_1 र_1 - य_2 र_2 - य_2 र_1 + य_3 र_1 + य_3 र_3 - य_1 र_1 - य_1 र_3 - य_3 र_2 - य_3 र_3 + य_2 र_2 + य_2 र_3\Big]$$

$$= \tfrac{1}{2}(य_1 र_2 - य_2 र_1 + य_3 र_1 - य_1 र_3 + य_2 र_3 - य_3 र_2)$$

$$= \tfrac{1}{2}\begin{vmatrix} य_1 & र_1 & १ \\ य_2 & र_2 & १ \\ य_3 & र_3 & १ \end{vmatrix}$$

उपसिद्धान्त—उस त्रिकोणका क्षेत्रफल जिसका एक शीर्ष मूलबिन्दु पर है और अन्य दो शीर्षों के युग्मांक ($य_1, र_1$) और ($य_2, र_2$) हैं, $\tfrac{1}{2}(य_1 र_2 - य_2 र_1)$ होगा।

२५—गत सूक्त में आयताक्षोंका उपयोग किया गया है। यदि तिर्यकक्षोंका प्रयोग किया जाय तो कोटि छ त, च थ, ज द, य—अक्ष पर लम्ब न होंगे। लम्बोंका लम्बाई ज्या ल से गुणा करके ज्ञात होगी यदि अक्षों के बीचका कोण ल है। अतः क्षेत्रफल

$$= \tfrac{1}{2} ज्या \; ल \; (य_1 र_2 - य_2 र_1 + य_3 र_1 - य_1 र_3 + य_2 र_3 - य_3 र_2)$$

$$अर्थात् = \tfrac{1}{2} ज्या \; ल \begin{vmatrix} य_1 & र_1 & १ \\ य_2 & र_2 & १ \\ य_3 & र_3 & १ \end{vmatrix}$$

२६—क्षेत्रफल सदा धनात्मक होता है। इस लिये च, छ, और ज विन्दुओंको उस क्रमसे लेना चाहिये जिससे कोई मनुष्य च बिन्दुसे चलना आरम्भ करके इस प्रकार त्रिकोणके चारों ओर घूम आवे कि त्रिकोणका क्षेत्रफल सदा उसके बायीं ओर हो; नहीं तो परिणाममें ऋणात्मक संकेत होगा।

२७—किसी चतुर्भुजका क्षेत्रफल निकालना जिसके चारो शीर्षों के युग्मांक ज्ञात हैं।

कल्पना करो कि च छ ज झ एक चतुर्भुज है जिसके शीर्षों च, छ, ज और झ के युग्मांक क्रमानुसार ($य_{१}, र_{१}$), ($य_{२}\ र_{२}$), ($य_{३}\ र_{३}$) और ($य_{४}, र_{४}$) हैं।
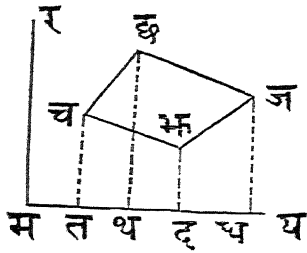
चित्र ८

र—अक्ष के समानान्तर च त, छ थ, झ द, और ज ध रेखायें खींचो।

च छ ज झ का क्षेत्रफल=त च छ थ+थ छ ज ध—त च झ द—द झ ज ध

पूर्व सूक्तकी प्रक्रियाके अनुसार—

$$त\ च\ छ\ थ=\frac{१}{२}(र_{१}+र_{२})(य_{२}-य_{१})$$

$$थ\ छ\ ज\ ध=\frac{१}{२}(र_{२}+र_{३})(य_{३}-य_{२})$$

$$त\ च\ झ\ द=\frac{१}{२}(र_{१}+र_{४})(य_{४}-य_{१})$$

$$द\ झ\ ज\ ध=\frac{१}{२}(र_{३}+र_{४})(य_{३}-य_{४})$$

$$अतः\ च\ छ\ ज\ झ=\frac{१}{२}\{(र_{१}+र_{२})(य_{२}-य_{१})+(र_{२}+र_{३})(य_{३}-य_{२})-(र_{१}+र_{४})(य_{४}-य_{१})-(र_{३}+र_{४})(य_{३}-य_{४})\}$$

जो पद कट जाते हैं उनको निकाल कर

$$=\frac{१}{२}(र_{१}य_{२}-य_{१}र_{२}+र_{२}\ य_{३}-र_{३}\ य_{२}+र_{३}य_{४}-र_{४}य_{३}+र_{४}य_{१}-र_{१}य_{४})$$

बहुभुजोंका क्षेत्रफल भी इसी प्रकार निकाला जा सकता है।

२८—चतुर्भुजका क्षेत्रफल एक और रीतिसे निकाला जा सकता है। च, छ, ज और झ शीर्षों को मूलबिन्दु म से संयुक्त कर दो। अतः
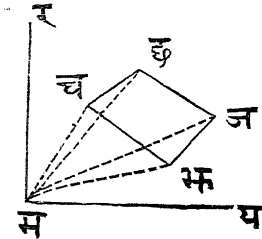
चित्र ९

$$च\ छ\ ज\ झ=\triangle म\ च\ छ+\triangle म\ छ\ ज+\triangle म\ ज\ झ-\triangle म\ च\ झ$$

$\triangle$म च छ के शीर्षों के युग्मांक (०,०), ($य_{१}, र_{१}$), ($य_{२}\ र_{२}$) हैं।

अतः इस त्रिकोणका क्षेत्रफल सूक्त २४ के उपसिद्धान्तके अनुसार—

$\frac{१}{२}(य_{२}\ र_{१}-र_{२}\ य_{१})$ है

इसी प्रकार $\triangle म\ छ\ ज=\frac{१}{२}(र_{२}\ य_{३}-र_{३}\ य_{२})$

$$\triangle म\ ज\ झ=\frac{१}{२}(र_{३}\ य_{४}-र_{४}\ य_{३})$$

और $\triangle म\ च\ झ=\frac{१}{२}(र_{१}\ य_{४}-र_{४}\ य_{१})$

$$\therefore च\ छ\ ज\ झ=\frac{१}{२}(र_{१}य_{२}-य_{१}र_{२}+र_{२}य_{३}-र_{३}\ य_{२}+र_{३}य_{४}-र_{४}\ य_{३}+य_{१}\ र_{४}-य_{४}र_{१})$$

ध्रुवीय युग्मांक

३०—धरातलमें किसी बिन्दुकी स्थिति स्थापित करनेका एक और उपाय है। म कोई मूलबिन्दु या ध्रुव स्थायी रखा जाता है और म य एक स्थित रेखा ली जाती है। धरातलमें ब कोई अन्य बिन्दु लो और उसे म से संयुक्त कर दो। ब की स्थिति स्थापित हो सकती है यदि म ब दूरी ज्ञात हो और कोण ब म य भी मालूम हो। क्योंकि कोणसे दिशा ज्ञात हो जाती है और उस दिशामें ज्ञात दूरी नापनेसे बिन्दु निश्चित हो जाता है।
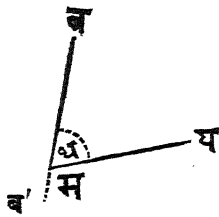
चित्र १०

कोण य म ब को नाभिश्रुति कोण कहते हैं और म ब दूरीको नाभिश्रुति त्रिज्या कहते हैं। इस कोणको हम बहुधा ∠थ से सूचित करेंगे और त्रिज्या को न से। इस प्रकार ब बिन्दुका ध्रुवीय युग्मांक (न, ∠थ) है। त्रिज्या धनात्मक होगी यदि इसे ध्रुवसे नाभिश्रुति कोणको घेरने वाली रेखाकी ओर नापा जाय। अन्यथा यह ऋणात्मक होगी। ब म त्रिज्या को यदि दूसरी ओर ब' बिन्दु तक बढ़ाया जाय तो म ब' ऋणात्मक होगा।

कोणको धनात्मक तब कहेंगे जब वह उस दिशामें नापा जायगा जो दिशा घड़ीकी सुइयोंके घूमनेके प्रतिकूल हो अर्थात् प्रतिकूल घटिकामें धनात्मक, अनुकूल घटिकामें ऋणात्मक।

३१—अभ्यास—निम्न बिन्दुओंकी स्थितिको स्थापित करोः—(−३, ६०), (४,−५०°) (−५, ८०°), (−३, −६०°), (−३, −३३०°)

(१) बिन्दु (३, ६०°)−म य एक स्थायी रेखा लो और त्रिज्या को प्रतिकूल घटिकामें ६०° घुमाकर ३ इकाईकी दूरी नाप लो। इस दूरी पर यह बिन्दु होगा।

(२) बिन्दु (४, −५०°)−५०° का अनुकूल घटिकामें एक कोण बनाकर उस कोणको घेरनेवाली, त्रिज्या में से ४ इकाईका नापकर बिन्दु स्थापित करलो।

(३) बिन्दु (−५, ८०°) प्रतिकूल घटिकामें ८०° का कोण बनाकर उस कोणको घेरने वाली त्रिज्या को ध्रुवके दूसरी ओर बढ़ा कर ५ इकाईकी दूरी पर बिन्दु स्थापित कर लो।

(४) बिन्दु (−३,—६०°)−अनुकूल घटिकामें ६०° का कोण बनाकर उस कोणको घेरने वाली त्रिज्या को ध्रुवके दूसरी ओर ३ इकाई नाप कर स्थिति ज्ञात हो सकती है।

(५) बिन्दु (−३,−३३०°)−इसको भी चौथे बिन्दुके अनुसार खींच लो।

३२—निम्न ध्रुवीय युग्मांकोंके अनुसार बिन्दु स्थापित करो—

(४, ८०°), (−४, २६०°), (४, −२८०°) और (−४, −१००°)

इनको स्थापित करने पर पता चलेगा कि सदा बिन्दुकी एक ही स्थिति रहती है। सामान्यतः यह कहा जा सकता है निम्न युग्मांक एक ही स्थितिके सूचक हैं:—

(न, थ°), (−न, १८०°+थ°), [न, −(३६०°−थ°)] और {−न, −(१८०°−थ°) }. अथवा कैन्द्रिक कोणोंमें* नाभिश्रुति कोणको नापने पर ये युग्मांक निम्न रूपमें लिखे जा सकते हैं:—

(न, थ°), (−न, π+थ°), [न—(२π−थ°)] और {−न, −(२π−थ°)}

यह भी स्पष्ट है कि थ° में ३६०° या इसका कोई गुणक जोड़ने पर बिन्दुकी स्थिति परिवर्तित नहीं होती है। उदाहरणतः निम्नयुग्मांक एक ही स्थितिके सूचक हैं:—

(न, थ), (न, थ+३६०°), (न, थ+७२०°), { न, (थ+४×३६०°)}, { न, (थ+य. ३६०). (य कोई संख्या है)

इसी प्रकार १८०° या १८०° का कोई विषम गुणक थ° में जोड़नेसे और त्रिज्याके धनात्मक संकेतको ऋणात्मकमें, और ऋणात्मकको धनात्मकमें परिवर्तित करनेसे भी स्थिति परिवर्तित नहीं होती है। उदाहरणतः (न, थ), (−न, १८०°+

* अर्द्धव्यासके बराबर चाप जो कोण वृत्त के केन्द्र पर बनाता है उसे कैन्द्रिक कोण कहते हैं। इसका विवरण त्रिकोणमितिमें मिलेगा।

थ), ($-$न, ३ $\times$ १८०$^\circ$ $+$ थ) [$-$न, थ $+$ (२ य $+$ १) १८०$^\circ$], एक ही बिन्दुके सूचक हैं।

३३—उस सरल रेखाकी लम्बाई नापना जो दो दिये हुए ध्रुवीय युग्मांकोंके बिन्दुओंको संयुक्त करती है।
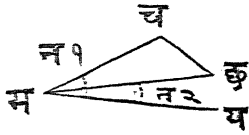
चित्र ११

कल्पना करो कि च और छ दो बिन्दु हैं जिनके ध्रुवीय युग्मांक क्रमानुसार ($न_{१}$, $थ_{१}^{\circ}$), और ($न_{२}$, $थ_{२}^{\circ}$) हैं। अतः—

च म $=$ $न_{१}$, छ म $=$ $न_{२}$, $<$च म य $=$ $थ_{१}^{\circ}$ और $<$छ म य $=$ $थ_{२}^{\circ}$

त्रिकोण मिति द्वारा स्पष्ट है—

$$च छ^{२} = म च^{२} + म छ^{२} - २ म च. म छ \text{ कोज्या } च म छ$$

$$= न_{१}^{२} + न_{२}^{२} - २ न_{१} न_{२} \text{ कोज्या } (थ_{१} - थ_{२}^{\circ})$$

३४—उस त्रिकोणका क्षेत्रफल निकालना जिसके शीर्षों के ध्रुवीय युग्मांक दिये हुए हैं।

म य स्थायी रेखा पर म ध्रुव है। च छ ज एक त्रिकोण है जिसके शीर्षों च, छ, और ज के ध्रुवीय युग्मांक क्रमानुसार ($न_{१}$, $थ_{१}^{\circ}$), ($न_{२}$, $थ_{२}^{\circ}$) और ($न_{३}$, $थ_{३}^{\circ}$) हैं।
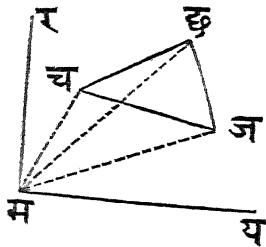
चित्र १२

$\triangle$ च छ ज $=$ $\triangle$ म च छ $+$ म छ ज $-$ म च ज

त्रिकोण मितिसे—

$$\triangle म च छ = \tfrac{१}{२} म च. म छ. \text{ ज्या } च म छ$$

$$= \tfrac{१}{२} न_{१} न_{२} \text{ ज्या } (थ_{१}^{\circ} - थ_{२}^{\circ})$$

इसी प्रकार—

$$\triangle म छ ज = \tfrac{१}{२} म छ. म ज \text{ ज्या } छ म ज = \tfrac{१}{२} न_{२} न_{३} \text{ ज्या } (थ_{२}^{\circ} - थ_{३}^{\circ})$$

और $\triangle$ म च ज $= \tfrac{१}{२}$ म च. म ज ज्या च म ज $= \tfrac{१}{२} न_{१} न_{३}$ ज्या ($थ_{१}^{\circ} - थ_{३}^{\circ}$)

अतः क्षेत्रफल $\triangle$ च छ ज $= \tfrac{१}{२}$ [$न_{१} न_{२}$ ज्या ($थ_{१}^{\circ} - थ_{२}^{\circ}$) $+$ $न_{२} न_{३}$ ज्या ($थ_{२}^{\circ} - थ_{३}^{\circ}$) $-$ $न_{१} न_{३}$ ज्या ($थ_{१}^{\circ} - थ_{३}^{\circ}$)]

$= \tfrac{१}{२}$ [$न_{१} न_{२}$ ज्या ($थ_{१}^{\circ} - थ_{१}^{\circ}$) $+$ $न_{२} न_{३}$ ज्या ($थ_{२}^{\circ} - थ_{३}^{\circ}$) $+$ $न_{१} न_{३}$ ज्या ($थ_{३}^{\circ} - थ_{१}^{\circ}$)]

३५—कार्टीज़ युग्मांकोंको ध्रुवीय युग्मांकोंमें और ध्रुवीय युग्मांकोंको कार्टीज़ युग्मांकोंमें परिवर्तित करना।

कल्पना करो कि ब बिन्दुके कार्टीज़ युग्मांक (य, र) है और इसके ध्रुवीय युग्मांक (न, थ$^\circ$) म य कार्टीज़ युग्मांकका य-अक्ष और ध्रुवीय युग्मांककी स्थिर रेखा है। म ध्रुव और मूलबिन्दु है।
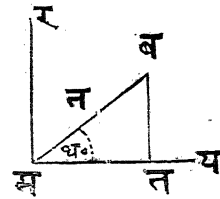
चित्र १३

ब को म से संयुक्त कर दो और ब त एक लम्ब क-अक्ष पर खींचो।

म त $=$ य, ब त $=$ र, म ब $=$ न,

तथा $<$ब म त $=$ थ$^\circ$। त्रिकोण ब त म में—

म त $=$ य $=$ म ब कोज्या ब म त

$=$ न कोज्या थ$^\circ$, ...(१)

ब त $=$ र $=$ म ब ज्या ब म त $=$ न ज्या ब म त

$=$ न ज्या थ$^\circ$ .... (२)

$$म ब = न = \sqrt{ब त^{२} + म त^{२}} = \sqrt{य^{२} + र^{२}} \quad ...(३)$$

$\text{स्पर्श थ}^\circ = \frac{\text{बत}}{\text{मत}} = \frac{\text{र}}{\text{य}} \ldots (४)$

(१) और (२) समीकरण द्वारा कार्टीज़ युग्मांक ध्रुवीय युग्मांकोंमें परिणत किये जा सकते हैं और (३) और (४) समीकरणों द्वारा ध्रुवीय युग्मांक कार्टीज़ युग्मांकोंमें परिवर्त्तित किये जा सकते हैं।

३६—अभ्यास—निम्न समीकरणोंको कार्टीज़ युग्मांकोंमें परिणत करो—

(१) न=क ज्या थ°, और

$\sqrt{\text{न}} = \sqrt{\text{क}}\ \text{कोज्या}\ \frac{\text{थ}}{२}^\circ$

(१) न=क ज्या थ°, इसे न से गुणा करने पर - $\text{न}^२ = \text{क न ज्या थ}^\circ$

सूक्त ३५ के समीकरण (३) और (२) से $\text{य}^२ + \text{र}^२ = \text{क र}$

(२) $\text{न}^{\frac{१}{२}} = \text{क}^{\frac{१}{२}}\ \text{कोज्या}\ \frac{\text{थ}}{२}^\circ$

इसका वर्ग करने पर

$\text{न} = \text{क कोज्या}^२\ \frac{\text{थ}}{२}^\circ = \frac{\text{क}}{२}(१ + \text{कोज्या थ}^\circ)$

$\therefore २\ \text{न}^२ = \text{क न, च न कोज्या थ}^\circ$

$\therefore २(\text{य}^२ + \text{र}^२) = \text{क}\sqrt{\text{य}^२ + \text{र}^२} + \text{क य}$

$\therefore (२\text{य}^२ + २\text{र}^२ - \text{क य})^२ = \text{क}^२(\text{य}^२ + \text{र}^२)$

उदाहरणमाला २.

(१) निम्न बिन्दुओंके बीचकी दूरी निकालो—
(i) (२, ३) और (८, ५); (ii) (−७, −५) और (८, −१०); (iii) (क, −क) और (−ख, क); (iv) (ख+ग, ग+क, और (ग+क, क+ख); (v) (क कोज्या त, क ज्या त;) और (क कोज्या थ, ख ज्याथ).

(२) निम्न बिन्दुओंके बीचकी दूरी निकालो जिनके ध्रुवीय युग्मांक दिये हुए हैं—
(i) (२, ३०°) और (४, १२०°); (ii) (२, ४०°) और (४, १००°); (iii) (क, $\frac{\pi}{२}$ और (३ क, π).

(३) निम्न त्रिकोणोंका क्षेत्रफल निकालो जिनके शीर्षोंके युग्मांक ये हैं—
(i), (१, ३), (७, ६), और (५−१); (ii) (२, १), (४, ३) और (२, ५) (iii) (क, ख+ग), (क, ख−ग) और (−क, ग)

(४) सिद्ध करो कि निम्न त्रिकोणोंका क्षेत्रफल शून्य है, अर्थात् तीनों दिये हुए बिन्दु एक ही सरल रेखामें विद्यमान हैं—
(i) (१, ४), (३, −२), और (−३, १६); (ii) (क, ख+ग), (ख, क+ग) और (ग, क+ख)

(५) निम्न त्रिकोणोंका क्षेत्रफल क्या है जिनके शीर्षोंके ध्रुवीय युग्मांक दिये हुए हैं:—
(i) (१, ०), (१, $\frac{\pi}{२}$), और ($\sqrt{२}$, $\frac{\pi}{४}$) (ii) (१, ३०°), (२, ६०°) और (३, ६०°)

(६) निम्न बिन्दुओंके कार्टीज़ युग्मांकोंको ध्रुवीय युग्मांकोंमें परिणत करो—
(i) ($\sqrt{३}$, १); (ii) (−१, −१); (iii) (३, −४); (iv) ($-\sqrt{३}$, १).

(७) निम्न बिन्दुओंके ध्रुवीय युग्मांकोंको कार्टीज़ युग्मांकोंमें परिणत करो—
(५, $\frac{\pi}{४}$), (−५, $\frac{\pi}{३}$), (२, $\frac{\pi}{२}$), (−४, $-\frac{\pi}{४}$)

(८) निम्न समीकरणोंको ध्रुवीय युग्मांकोंमें परिणत करो—
$\text{य}^२ + \text{र}^२ = \text{क}^२$, $\text{य}^२ + \text{र}^२ = २\ \text{क य}$,
$\text{र} = \text{क स्पर्श त}^\circ$, $(\text{य}^२ + \text{र}^२)^२ = \text{क}^२(\text{य}^२ - \text{र}^२)$

(९) निम्न समीकरणोंको कार्टीज़ युग्मांकोंमें परिणत करो—
$\text{न} = \text{क ज्या २ थ}^\circ$, $\text{न} = \text{क}$, $\text{न}^२ = \text{क}^२\ \text{कोज्या २थ}^\circ$,
$\text{न}^{\frac{१}{२}} = \text{क}^{\frac{१}{२}}\ \text{ज्या}\ \frac{\text{थ}}{२}$, $\text{न}^२\ \text{कोज्या २ थ}^\circ = \text{क}^२$

कृषि और नोषजन

[ले० श्री हीरा लाल दुबे, एम० एस० सी०]
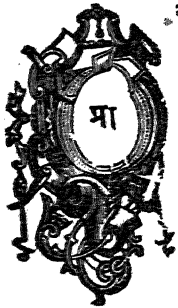
प्राणीमात्रको दो वस्तुओं की आवश्यकता होती है। ओषजन और भोजन। ओषजन तो उन्हें सीधा वायुसे मिल जाता है परन्तु भोजन इतनी सरलतासे नहीं मिलता। सर्व प्राणीमात्रकी रचनाके लिए कुछ वस्तुएं बहुत ही आवश्यक हैं जिन्हें प्रत्यमिन कहते हैं। इन्हें प्राणी स्वयम् नहीं बना सकते और उनकी प्राप्ति उन्हें वनस्पतियोंसे होती है। इन प्रत्यमिनोंमें १५—२०°/॰ तक नोषजन होता है। यह प्रयागोंसे दिखला दिया गया है कि जिन वनस्पतियोंमें नोषजन नहीं होता जैसे चीनी आदि वे जीवोंकी रक्षा नहीं कर सकतीं। इस कारण प्राणी उन वनस्पतियों पर जीवित हैं जिनमें नोषजन होता है। अब यह देखना है कि बनस्पतियोंमें नोषजन कहाँसे आता है। प्रयोगोंसे यह ज्ञात हुआ है कि पेड़ोंमें नोषजनका कुछ भाग तो छोटे २ कीटों द्वारा वायुसे आता है। परन्तु नोषजनका अधिक भाग वनस्पतियोंके विभाजन आदिसे आता है। इस उदाहरणसे आपको स्पष्ट हो जावेगा। यदि कोई प्राणी किसी बनस्पतिका भक्षण करे तो नोषजनका कुछ भाग मूत्रिया आदिके रूपमें बाहर निकलता है और यह अमोनियामें विभाजित हो जाता है। यह अमोनिया छोटे छोटे कीटाणुओं के द्वारा नोषस और नोषिकाम्लों में ओषदीकृत हो जाता है, और इन अम्लोंको बनस्पति फिरसे ग्रहण कर लेते हैं। इसी प्रकार नोषजनका यह चक्र चला करता है। यदि किसी जगह पर कुछ पौधे और ख़ास प्रकार के कीड़े बंद कर दिए जावें तो यह नोषजनका चक्र सनातनके लिए हो सकता है। परन्तु किसी भी वस्तुके प्रयोग करनेमें उसका बहुत सा भाग नष्ट हो जाता है। इसी कारण ऊपरका चक्र सनातनके लिए नहीं हो सकता। नीचेका चित्र आप को नोषजनके चक्रकी ख़ास ख़ास बातें बतलाता है।
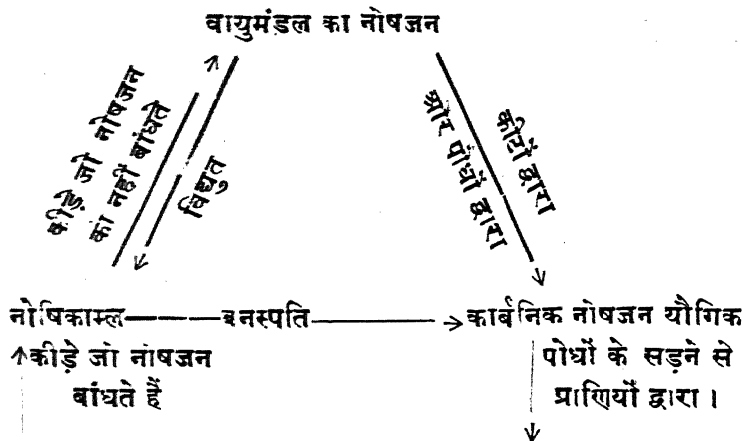
अब हमें यह देखना है कि नोषजन कहां कहां पर नष्ट होता है जिसका उपयोग प्राणी नहीं कर पाते। वनस्पति मात्रका हाथ प्राणीमात्रके जीवन पर बहुत ही अधिक है यदि पौधे आदि न होते तो हमें कुछ समयके बाद अपने जीवनको स्थित रखनेमें बड़ी कठिनता पड़ती क्योंकि जीवनका आधार ओषजन है और जब मनुष्य सांस लेता है तो वायुमंडलका ओषजन उसके फेफड़ोंमें जाता है और फिर कर्बन द्विओषिदके रूपमें बाहर निकलता है। यह कर्बनद्विओषिद गैस पौधों आदिके काममें आती है और इसके बदले वे ओषजन गैसको दे देते हैं। जिस प्रकार ओषजन प्राणियोंके लिए आवश्यक है उसी प्रकार कर्बनद्विओषिद पौधोंके लिए आवश्यक है। परन्तु प्राणियोंके लिए कुछ ही ऐसे पौधे हैं जो उनके खानेके काममें आ सकते हैं। इस कारण जो नोषजन ऐसे पेड़ोंमें होता है जो खानेके काममें नहीं आते वह बेफायदा ही जाता है। हमारे बड़े बड़े शहरोंका मल मूत्र आदि भी जिसमें नोषजनकी काफी मात्रा होती है नदियों आदिमें बहा दिया जाता है। अमोनियाके द्वारा जो नोषसाम्ल व नोषिकाम्ल बनते हैं वे भी यह नहीं कि जहां पर बने हों वहीं पर रहें, इसमें इनकी काफी मात्रा नष्ट हो जाती है और कुछ मात्रा कीटों द्वारा विभाजित होकर वायुमंडलमें मिल जाती है।

अब आपको पूर्ण रूपसे नोषजनका महत्व मालूम हो गया होगा। इस गैसका हमारी कृषि व हमारी सभ्यता पर असर है। आजकल नोषजन युक्त सस्ता पदार्थ जो कृषिमें खादके काम आता है उसकी सबसे अधिक मात्रा चिली (Chile) और पीरू (Peru) प्रदेशोंसे मिलती है। इसका अनुमान नीची लिखी हुई संख्यासे प्रतीत होगा।

सन्	टन
१८६०………………………	१,०००,०००.
१६००………………………	१,४००,०००.
१६१०………………………	२,२५४,०००.
१६१२………………………	२,५४२,०००.

कुछ वैज्ञानिकों ने हिसाब लगाया था कि कुछ समयके बाद चिली व पीरूके नोषजन पदार्थ खतम हो जावेंगे और फिर खेतोंको खादके लिए नोषजन और कहींसे लाना होगा। यह रसायनिकोंके लिए बड़ा भारी प्रश्न था कि किस प्रकार बहुत सी मात्रामें नोषजन पदार्थ बनाए जावें और साथ ही साथ उनकी कीमत भी कम हो।

महायुद्धके समय जर्मनोंको स्वाभाविक नोषजन पदार्थ जैसे चिली शोरा आदि न मिल सकते थे और इस कारण उन्हें गोला बारूद बनानेमें बड़ी कठिनता हुई। इसे दूर करनेके लिए उन्हें रसायनकी शरण लेनी पड़ी और आज कल जर्मनीमें कई बड़े बड़े कारखाने हैं जिनके द्वारा नोषजनकी वस्तुएं बनाई जाती हैं जो कृषिमें व युद्धके समय बड़ी ही आवश्यक हैं। जर्मनोंको नोषजन पानेके लिए केवल एक ही अपार भंडार था। वह है हमारा वायु मण्डल। प्रकृतिने हमारे आसपास कई खज़ाने छिपा रक्खे हैं जिन से मनुष्य बहुत लाभ उठा सकता है परन्तु यह वैज्ञानिकोंका कर्त्तव्य है कि वे ढूंढ़ निकालें और उनका सदुपयोग करें। वायुमण्डल नोषजनका ऐसा भंडार है कि चिली शोराका प्रश्न जो बड़े बड़े वैज्ञानिकोंकी आँखोंमें खटक रहा था हल हो गया। संश्लेषणके लिए नोषजनका यह भंडार सबसे सस्ता है और अब कई प्रकारसे वायुमण्डलके नोषजनसे यौगिक बनाए जाते हैं जो खादके लिए बहुत ही अच्छे हैं। इस क्रिया को नोषजनका बांधना (Fixation of nitrogen) कहते हैं। इस समय हमें कृषि और नोषजन का संबन्ध भारतवर्ष में देखना है।

भारतवर्षकी ७० °/॰ जन संख्या कृषि ही पर निर्भर है और आदि कालसे वर्त्तमान काल तक मनुष्य यही प्रयत्न करते रहे हैं कि ज़मीनकी

उत्पादक शक्तिकी वृद्धि हो और इसके लिए कई नए व लाभदायक उपाय काममें लाये गये हैं। इन उपायोंमें से सबसे उल्लेखनीय उपाय वर्तमान खाद हैं। भारतमें और दूसरे देशोंमें पशुओंका खाद व और कूड़ा करकटका महत्व फसलको बढ़ानेमें बहुत प्राचीनकालसे मालूम है। आज भी हमारे देशमें बेचारे गरीब अनपढ़ किसान पशुओंके ही मल मूत्रसे अपने खेतोंकी नोषजन आदिकी कमी पूरी करते हैं। वे गड़रियोंको कुछ मूल्य दे कर उनकी भेड़ोंको रात भर अपने खेतोंमें बैठाते हैं जिससे कि उनकी फसल खूब फलती फूलती होवे। परन्तु इतने खादमें ज़मीनकी कमी पूरी नहीं होती। वे वर्तमान खादोंसे भली भांति परिचित भी नहीं हैं और उन्हें उनका ठीक उपयोग करना भी नहीं मालूम। इसका मुख्य कारण उनकी गरीबी व अशिक्षता है। इस कारण ज़मीनकी शक्ति और फसल भी कम होती जा रही है।

वर्तमान खादोंका उपयोग करीब १९ वीं सदीके मध्यसे आरम्भ हुआ था। उस समयसे नोषजन, स्फुर और पांशुजमका महत्व भली भांति ज्ञात है और आजकलके खादोंके बनाने व काममें लानेका मुख्य कारण यही है। आधुनिक रसायनिक कला-कौशलमें कृषिके लिए खादोंका बनाना एक बड़ा भारी अंग है।

खाद दो प्रकारके होते हैं। एक तो वे जो पौधोंको ही सीधे भोजन देवें जैसे नोषजन स्फुर आदि और दूसरे वे जिनके ज़मीनमें होनेके कारण पौधोंको खाद आदि सरलतासे मिल सकती है जैसे चूना, खटिक गन्धेत, नमक आदि। इस लिए खादोंके उपयोगमें यह ध्येय है कि ज़मीनमें उन चीज़ोंकी कमी पूरी करना जो पौधोंकी बाढ़के लिए आवश्यक हैं या ज़मीनके ही खादोंको ऐसे रूपमें बदलना जिन्हें पौधे सरलतासे ग्रहण कर सकें। अच्छी फसल होनेके लिए ज़मीनमें जिस खादकी ज़रूरत हो वही देना चाहिए और उसकी मात्रा पर भी ठीक ध्यान देना चाहिए।

यदि भारत अपने किसानोंकी उन्नति करना चाहता है तो उन्हें पहले शिक्षितकरे ताकि वे खादों-की आवश्यकता व उनका उपयोग जाने और यदि उन्हें इस महा दरिद्रता व दुर्भिक्षोंसे बचाना हो तो ऐसे कारखाने खोले जावें जिनमें कि खाद इतनी मात्रामें बनाए जावें वे भारतकी मांगको पूरा कर सकें। ऐसी खादसे हमारी भूमि मालामाल हो जावेगी और जिसकी उपज शक्तिका ठिकाना न रहेगा।

सरकारके कृषि विभागसे नीचे लिखी हुई संख्या प्राप्त हुई हैं और इनसे मालूम होता है कि कौन-कौन से खाद कितनी मात्रामें व कितनी कीमतके भारतवर्षमें काममें लाए जाते हैं। नीचे लिखे हुए खाद भारतमें दूसरे देशोंसे आते हैं।

खाद	वर्ष	मात्रा जो बाहरसे आती है	मूल्य (रुपए)
सैन्धक नोषेत	१९२४ – २५	३,९७७ टन	७,६६,३-४
	१९२५ – २६	३,९६३	७,१३,६४५
	१९२६ – २७	६,०७०	१०,११,०३०
अमोनियम गन्धेत	१९२४ – २५	२०३	३८,५३८
	१९२५ – २६	४,७२४	८,८०,४४६
	१९२६ – २७	२,६८४	४,७५,८९२

पांशुज स्यूरेत	१६२४–२५	और दूसरे खादोंमें सम्मिलित हैं	
	१६२५–२६	और दूसरे खादोंमें सम्मिलित हैं	
	१६२६–२७	४,५०६	५,२८,७३२
और दूसरे खाद जैसे	१६२४–२५	८,४३७	७,२३,२८४
खटिकश्यामेमिद (क्षारगलित)	१६२५–२६	१२,६०१	११,५६,३५८
पांशुजगन्धेत, नोषेत आदि	१६२६–२७	१२,१६१	१०,४६,६५०

और दूसरे खादोंमें सैन्धक नोषेत और अमोनियम गन्धेतकी सबसे अधिक मात्रामें आवश्यकता पड़ती है। सैन्धक नोषेत तो बाहरसे आता है परन्तु अमोनियम गन्धेतकी करीब करीब सब मात्रा हिन्दोस्तान ही में बनाई जाती है।

नीचे लिखी हुई संख्या उन वस्तुओंको है जो भारतमें होती हैं और खादके काममें उपयोग की जा सकती हैं परन्तु वे दूसरे देशोंको भेज दी जाती हैं।

वस्तुएं	वर्ष	मात्रा जो बाहर भेजी जाती हैं	रुपएमें उनका मूल्य
हड्डियाँ व उनका बुरादा	१६२०	१,०७,८४३	१,१०,२०,५१०
	१६२१	८३,१००	८२,०८,७१३
पांशुज नोषेत	१६२०	२२,१३३	७५,२७.४००
	१६२१	१२,८६४	४७,६३,४७२
मछलीका खाद	१६२०	२६,८०१	४२,५३,५४०
	१६२१	६,७६२	१०,१८,६७७
अमोनियम गन्धेत	१६२०	३,८६०	८,२७,५७०
	१६२१	३,२५६	८,६४,४२२
और दूसरे खाद	१६२०	२,६४५	४,८८,३७०
	१६२१	३,६०१	३,७८,६७१

खादोंका विभाजन उनकी नोषजन, स्फुर व पांशुजकी मात्रा पर किया गया है। जिनमें नोषजन की मात्रा अधिक होती है वे चिली शोरा, ग्वानो, खटिक श्यामेमिद, पांशुज नोषेत, मछलीकी खाद सींग व खुर आदि खली, कसाई खानाका खून आदि, गोबर आदि हैं। जिनमें स्फुरकी मात्रा अधिक होता है वे स्फुरेत प्रस्तर, गलित, हड्डियाँ 'खली' मलमूत्र और गोबर आदि हैं। जिनमें पांशुजम् अधिक होता है वे 'केल' (Kel) स्टूसफोर्ड पदार्थ, पांशुजनोषेत, लकड़ीकी राख, खली, तम्बाकूकी डंठलें और गोबर आदि हैं।

ऊपर लिखे हुए खादोंको उपयोगमें लानेके पहले ज़मीनका अच्छी तरहसे इम्तहान कर लेते हैं कि वह पौधोंके भोजनके लिए किन पदार्थों में कम है और फिर वे ही खाद डाले जाते हैं जिनकी आवश्यकता होती है।

स्वाभाविक खादोंकी कमी होनेके कारण आजकल बहुतसे कारखाने खाद बनानेके लिए बनाए

गए हैं। इनमें बहुत अधिक मात्रामें खाद बनाई जाती हैं। जिन खादोंमें नोषजनकी मात्रा अधिक होती है वे नोषजनकेबांधने (Fixation of nitrogen) के कारखानोंमें सफलता पूर्वक बनाए जाते हैं। आमोनियम गन्धेत कोक बनानेकी भट्टियोंके उपपदार्थोंसे बनाया जाता है, और यही एक खाद है जो कि हिन्दुस्थानमें काफी मात्रामें बनाया जाता है। स्फुरके खाद बनानेमें बहुत ही सस्ते गन्धकाम्लकी आवश्यकता होती है। अमेरिकाके संयुक्त राज्यमें जहां पर कृषिकी बहुत वृद्धि है जितना गन्धकाम्ल बनता है उसका आधेसे ज़्यादा भाग खाद बनानेके काममें आता है। वहां परके बड़े बड़े कसाईखानोंकी हड्डियाँ और दूसरी तुच्छ वस्तुओंमें जहाँ पर कि लाखों पशु हर दिन काटे जाते हैं खाद बनानेके काममें आती हैं। संयुक्त राज्यमें करीब-करीब उतनी ही ज़मीन कृषिके काममें आती है जितनी कि भारतमें और यदि भारतकी कृषि जो उसका सबसे बड़ा धन्धा है उतनी ही उन्नति करना चाहती है जितनी कि संयुक्त राज्यकी तो भारतमें भी खादोंकी उतनी आवश्यकता पड़ेगी जितनी कि संयुक्त राज्यमें। इससे भारतमें खादके कारखानोंका महत्व व उनका भविष्य भलीभाँति ज्ञात हो गया होगा।

नीचेकी संख्याओंसे स्पष्ट रूपसे खादके कारखानोंकी बढ़ती मालूम होती है और खासकर संश्लेषित नोषजन की। संसारमें जितना नोषजन खानों आदिसे खोदा जाता है और जितना खर्च होता है नीचे टनके वजनमें दिया जाता है।

नोषजन बनाया जाता है व खानोंसे मिलता है

	१९२३—२४	१९२४—२५	१९२५—२६	१९२६—२७
उपपदार्थ – अमोनियम गन्धेत	२६४,६००	२७८,३००	२९६,७००	३०३,२००
संश्लेषित अमोनियम गन्धेत	२३१,१००	२५६,०००	२८९,२००	३००,०००
	४९५,७००	५३३,३००	५८५,९००	६०३,२००
श्यामेमिद	१०४,०००	११५,०००	१५०,०००	१८०,०००
खटिक नोषेत	१८,०००	२५,०००	३०,०००	८१,०००
अन्य संश्लेषित नोषजन	५१,०००	६६,१००	१२०,७००	१३३,४००
अन्य प्रकारसे उपलब्ध नोषजन	५०,२००	४७,४००	४७,७००	४०,३००
चिली शोरा	३३८,५००	३६७,५००	३९९,४००	११९,६००
	५६१,७२०	६२१,०००	७४७,८००	६३४,३००
पूरी पैदावारी	१,०५७,४००	१,१५४,३००	१,३३३,७००	१,२३७,५००

खर्च

	१९२३—२४	१९२४—२५	१९२५—२६	१९२६—२७
बनाए हुए नोषजन का खर्च	७१९,०००	७८६,८००	९३५,३००	१,०३७५००
चिली शोराका खर्च	३४०,०००	३६३,०००	३२४,२००	२७५,२००
पूरा खर्च	१,०५९,०००	१,१४९,८००	१,२५८,५००	१,३१२,७००
खर्च जो केवल कृषिमें होता है	९३४,०००	१,०२०,०००	१,११७,०००	१,२००,०००

ऊपरकी संख्याओंको देखने से मालूम होगा कि अमोनियम गन्धेत ही सब खादोंसे अधिक काममें लाया जाता है और नए खाद जैसे कि खटिक नोषेत, श्यामेमिद आदिकी माँग बढ़ती जा रही है। चिली शोराकी पैदावारी व खर्च कम हो रहा है।

अब हमें यह देखना है कि फसल पर खादका क्या असर होता है। पहले तो खादके कारण फसलमें बहुत बढ़ती होती है और दूसरे इसकी किस्म (Quality) में बहुत अन्तर हो जाता है। इसके कुछ उदाहरण दिए बिना यह स्पष्ट न होगा। नीचे दिए हुए प्रयोग सरकारी फार्ममें किए गए हैं।

फसल	खादकी मात्रा जो एक एकड़में दी गई है	एक एकड़में पैदावारी	खादके कारण एक एकड़में अधिक पैदावारी
		मन. सेर.	मन. सेर.
आलू	१. खाद नहीं दिया गया	९३—३०	८६—३०
	२. अंडीकी खली—२० मन	१२०—०	
	३. मिली हुई खाद अंडीकी खली १० मन विशेष स्फुरेत २०० मन सैन्धक नोषेत ३०० "	२४५—०	१५१—३०
सन	१. खादके बिना	१५—१२	
	२. सैन्धत नोषेत ३० सेर सरसों की खली६ मन	२१—२७	६—१५
	३. अंडीकी खली ६ मन	२०—०	४—२८
गन्ना	१. खादके बिना	३०—० गुड़	
	२. गोबर ५२०	६०—० गुड़	३०—०
	३. अंडीकी खली ६० मन	९०—० गुड़	६०—०
धान	१. खादके बिना	१८—६	
	२. गोबर ५० मन	३२—१८	१४—१२

इससे प्रत्यक्ष है कि खादसे फसलमें बहुत बढ़ती होती है। यदि हिसाब लगाया जावे तो इस बढ़ती से खाद आदिका सब खर्च निकल आवेगा और कुछ बच भी रहेगा।

इस कारण जो खाद भारतवर्षमें होता है उसे नष्ट न करना चाहिए और जहां तक हो सके बाहर जाने वाले खादोंको हिन्दुस्तान हीमें रख कर उनका सदुपयोग करना चाहिए। Review of Agricultural operations in India, 1926-27. से मालूम होता है कि भारतमें करीब १६००० लाख पौण्ड नोषजन केवल गोबर जलानेसे नष्ट हो जाता है। यदि यही नोषजन खादके काममें आवे तो कितना लाभ हो। इसी पत्रसे मालूम होता है कि हिन्दुस्तानके जितने तेल देने वाले बीज होते हैं उनकी खलीसे ११०० लाख पौण्ड नोषजन मिल सकता है। जितनी ज़मीन हिन्दुस्तान में खेतीके काममें आती है उसके लिए ६,४२५० लाख पौण्ड नोषजनकी आवश्यकता है। खली व गोबरको मिला कर पूरे भारतकी खेतीके लिए जितना नोषजन चाहिए उसका चौथाईसे कुछ ही अधिक इनसे मिल सकता है। अब यह प्रश्न है कि तीन चौथाई खाद कहाँ परसे आवे। यह केवल खादके कारखानोंके खुलने हीसे हो सकता है और यदि भारतकी व उसके किसानोंकी उन्नति करना हो तो खेतीकी ओर पूरा पूरा ध्यान देना चाहिए और विज्ञानकी पूरी सहायता लेनी चाहिए।

विज्ञान परिषत् का

वार्षिक अधिवेशन

मंगल बार, ११ फर्वरी १६३०, समय ३-१५ बजे सायं

प्रस्ताव

१. वार्षिक वृत्तान्त उपस्थित किया गया और स्वीकृत हुआ।

२. आगामी वर्ष (सितम्बर ३० तक) के लिये आय व्यय का आनुमानिक व्यौरा स्वीकार किया गया।

३. कार्य्यकारिणी समिति की प्रस्तावित निर्वाचन नामावली स्वीकृत हुई।

४. निश्चय हुआ कि श्री सत्यप्रकाश, एम. एस सी, विज्ञान परिषद्के आजन्म सदस्य बनाये जायें।

५. निश्चय हुआ कि डा० एच० आर० मेहरा, प्रयाग तथा डा० एस० के० मुकर्जी, लखनऊ परिषद्के सदस्य बनाये जावें।

६. निश्चय हुआ कि पं० वंशलाल पांडे द्वारा निरीक्षित आय व्यय व्यौरा (३० सितम्बर १६२६ तक का) स्वीकार किया जावे। (यह व्यौरा अलग दिया गया है)

७. निश्चय हुआ कि पं० वंशलाल पांडे ने परिषद् हिसाबके निरीक्षणमें जो सहयोग दिया है, उसके लिये परिषद् अत्यन्त आभारी है।

सालिग्राम भार्गव—
एम० एस०-सी०
मंत्री

विज्ञान परिषत् का वार्षिक वृत्तान्त

सभापति महोदयकी सेवामें

इस साल भी विज्ञान परिषद्के कार्य्य-कर्ताओंमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ। आर्थिक अवस्था (माली हालत) ज्यों की त्यों ही बनी रही सरकार (गवर्न्मैंट) से जो सहायता मिलती आई है मिलती रही, पता नहीं अगले साल भी सहायता बढ़ाई जायगी या नहीं। अब ऐसी अवस्था आती जा रही है कि विना जनता और सरकारकी अधिक सहायताके आगे चलना कठिन होता जा रहा है। कार्य-कर्ताओं और खासकर विज्ञानके सम्पादकों और उनमेंसे भी सत्यप्रकाशजी को धन्य है कि उन्होंने विज्ञानको चलाया और समय पर भी निकालते जा रहे हैं। सम्पादकोंकी कठिनाइयोंकाथोड़ा सा वर्णन मैंने पिछले साल आप लोगोंके सामने उपस्थित किया था, वे तो अवश्य ही मौजूद हैं और उनके अतिरिक्त नई-नई कठिनाइयां आती जा रही हैं। विज्ञान हर साल अथवा हर रोज बढ़ता जा रहा है, उसकी उन्नति के साथ-साथ चलना आसान काम नहीं जब कि अच्छे पुस्तकालय और अपने अपने विषयों पर लिखने वालोंका सर्वथा अभाव है। जब तक ऐसे ऐसे लेखक जो अपने अपने विषयोंके पूर्ण ज्ञाता हों न मिलें तब तक विज्ञानमें आधुनिक विषयों पर ऐसे लेखोंका निकालना जो रोचक समझे जावें कठिन ही है।

विज्ञानकी पुरानी फाइलें प्रचारके लिए गवर्न्मैंटके शिक्षा विभाग द्वारा हाई स्कूलों और इण्टर्मिजियेट कालेजमें बँटवाई गईं। विज्ञानके आमदनी-खर्चका अनुमान पत्र जो गतवर्षके खर्चके अनुसार ही है देखनेसे पता चलता है कि ४००) सालके लगभग घाटा विज्ञानके चलानेमें उठाना पड़ता है।

पिछले साल २००) की पुस्तकें बिकी थीं परन्तु इस साल ६५०) की पुस्तकें बिकी। विज्ञान प्रवेशिकाएं १ और २ भाग दोनों बिक गईं। इनके बिक जानेसे केवल आर्थिक सहायता ही न मिली परन्तु उनके संशोधन और परिवर्तन और वृद्धिका भी अवसर मिला। अब उन पुस्तकोंके दूसरे संस्करण पुराने संस्करणोंसे बढ़े चढ़े हो निकलेंगे इन संस्क

रणोंके निकलनेमें अवश्य ही देर हो रही है परन्तु आशा है कि यह संस्करण ऐसे होंगे जिनमें कुछ दिनों परिवर्तनकी जरूरत न होगी साधारण और कार्बनिक रसायनोंके निकल जानेसे रसायन सम्बन्धी पाठ्य पुस्तकें तो तैयार हो कर लोगों अथवा विद्यार्थियोंको मिल गईं। अब भौतिक शास्त्र सम्बन्धी पाठ्य पुस्तकोंके निकालनेका प्रयत्न किया जावेगा और आशा है कि यह काम यदि जल्दी नहीं तो दो तीन सालोंमें अवश्य ही पूरा हो जावेगा।

एस० सी० देव,
सालिग्राम भार्गव,
मंत्री।

निर्वाचन

प्रेसिडेण्ट—श्रीमान् महामहोपाध्याय डाक्टर गंगानाथ झा, एम० ए०, डी० लिट०, एल०, एल० डी०, वाइस चान्सलर, इलाहाबाद यूनिवर्सिटी

वाइस प्रेसिडेण्ट—श्री० डाक्टर नीलरतनधर, डी० एस-सी०, प्रोफेसर इलाहाबाद यूनिवर्सिटी

जेनरल सेक्रेटरी—श्री० राय साहब प्रोफेसर एस० सी० देव, एम० ए० इलाहाबाद यूनिवर्सिटी

जेनरल सेक्रेटरी—श्री० सालिग्राम वर्मा एम० एस-सी०, प्रोफेसर इलाहाबाद यूनीवर्सिटी

सेक्रेटरी—श्रीयुत प्रोफेसर व्रजराज जी एम० ए० बी० एस० सी० एल० एल० बी० कायस्थ पाठशाला कालेज इलाहाबाद

सेक्रेटरी—श्री० सत्यप्रकाश जी एम० एस० सी० दयानिवास प्रयाग

खजानची—श्री० श्रीरंजन एम० एस-सी० प्रोफेसर, बोटानी डिपार्टमेंट, इलाहाबाद यूनिवर्सिटी

स्थानीय काउन्सिलर—(१) श्री पं० अमरनाथ झा एम० ए०, रीडर, इङ्गलिश डिपार्टमेंट इलाहाबाद यूनिवर्सिटी

" (२) श्री० पं० कन्हैयालाल भार्गव रईस कीटगंज-प्रयाग

" (३) श्री० एस० सी० बनर्जी एम० ए०, एम० एस-सी० हेड आफ मैथमेटिक्स डिपार्ट यूनिवर्सिटी आफ इलाहाबाद

" (४) प्रोफेसर गोपालस्वरूप भार्गव, एम० एस०-सी० कायस्थ पाठशाला कालेज इलाहाबाद।

अन्य स्थान काउन्सिलर—(१) श्री० डा० एन० के० सेठी, हिन्दू यूनिवर्सिटी बनारस

" (२) श्री० महावीर प्रसाद बी० एस सी०, एल० टी० विशारद गवर्नमेंट हाई स्कूल रायबरेली

" (३) श्री प्रोफेसर रामदास गौड़ एम० ए० गुरुकुल हरद्वार

" (४) श्री० प्रो० पी०-एस० वर्मा एम० ए०, बी० एस० सी०, हिन्दू यूनिवर्सिटी बनारस

" (५) श्री० पुरुषोत्तम दास टंडन, एम० ए० एल० एल० बी०, लाहौर

अक्टूबर सन् २८ से सितम्बर सन् २९ तक

आय—

	रु०	आ०	पाई
ग्राहकोंसे चन्दा	५८३	१४	०
पुस्तकोंकी बिक्री	६४२	३	३
सभ्योंसे चन्दा	१५४	०	०
आजन्म सभ्योंसे चन्दा	२२३	२	०
विज्ञापन छपाई	४०	०	०
फुटकर	४०७	०	०
गवर्नमेंटसे मिले	१२००	०	०
ब्लाकमेकरसे वापस मिला	६	०	०
डाक महसूलके आये	०	६	०
ज्यादा जमा हुए	८	३	०
	३२६४	१२	३
दोनों तरफसे कम किये गये	८	६	०
	३२५६	३	३
बकाया पिछले सालका	१७१	६	६
	३४२७	१०	०

व्यय—

	रु०	आ०	पाई
टिकट	१३५	४	६
तनख्वाह क्लर्क	१२०	०	०
विज्ञानकी छपाई	१८४६	३	०
कागज़	५३०	१२	३
ब्लाक बनवाई	१३०	२	०
फुटकर	१२	८	३
मरम्मत	३७	४	६
हाउस टैक्स	५	७	०
पुस्तक छपाई	१६४	१४	०
जिल्द बँधाई	२१	०	०
वापस किया	८	३	०
	३०१४	१०	६
दोनों तरफसे कम किया	८	६	०
	३००६	१	६
बकाया	४२१	८	६
	३४२७	१०	०

समालोचना

अद्भुत महापुरुष

ले० श्री जगपति चतुर्वेदी, हिन्दी भूषण, विशारद। प्रकाशक, रायसाहब रामदयाल अगरवाला, प्रयाग। पृ० सं० १११, मूल्य ॥=)। कागज़, छपाई अत्युत्तम। सचित्र।

इस पुस्तकमें श्री जगपति चतुर्वेदी ने गैलिलियो, न्यूटन, स्टिफिन्सन, पास्ट्युर, मोर्स, बेल, एडिसन, मारकोनी तथा जगदीशचन्द्र वसु प्रभृत प्रसिद्ध वैज्ञानिकोंकी संक्षिप्त जीवनियाँ अत्यन्त सरल और मनोरञ्जक रूपमें लिखी हैं। यह अत्यन्त हर्षकी बात है कि जगपति जी इस प्रकारकी बालोपयोगी वैज्ञानिक मनोरञ्जक पुस्तकें लिखकर हिन्दीके एक विशेष अभावकी पूर्ति कर रहे हैं। यह पुस्तक साधारण हिन्दी जनताके लिये जो वैज्ञानिकोंके कार्यमें कुछ भी रुचि रखती हो अत्यन्त उपयोगी होगी। विद्यार्थियोंको तो इसे अवश्य अपनाना चाहिये। वैज्ञानिकोंके चित्र दे देनेके कारण पुस्तककी शोभा और भी अधिक बढ़ गई है। हमें आशा है कि हिन्दी जनता और विशेषतः स्कूलोंके विद्यार्थी तथा अध्यापक इसका उचित स्वागत करेंगे जिससे प्रोत्साहित होकर लेखक एवं प्रकाशक दोनों ही इस प्रकारकी पुस्तकोंसे भाषा भण्डारको भरनेमें और भी अधिक अग्रसर हो सकेंगे। हम लेखकको इस उत्तम पुस्तकके लिये बधाई देते हैं।

प्रारम्भिक रसायन

(प्रथम और द्वितीय भाग) ले० श्री फूलदेव सहाय वर्मा, एम० एस-सी०, ए० आई० आई० सी०,

काशी विश्वविद्यालय। प्रकाशक, नन्दकिशोर एण्ड ब्रदर्स, बनारस सिटी। पहला भाग पृ० सं० १८६, मूल्य २)। दूसरा भाग पृ० सं० १३६, मूल्य १)। दोनों सजिल्द। छपाई कागज़ उत्तम।

प्रस्तुत पुस्तकका पहला भाग प्रधानतः हाई स्कूल और आयुर्वेद विद्यालयके छात्रोंके लिये लिखा गया है और दूसरा भाग आयुर्वेद विद्यालयके छात्रोंके लिये हो। साधारणतः यह कहा जा सकता है कि दोनों पुस्तकोंके लिखनेमें लेखक ने सफलता प्राप्तकी है, और ये पुस्तकें विद्यार्थियोंके कामकी अवश्य हैं। विषयमीमांसा नियमपूर्वक सरल शब्दोंमें की गई है। पाठ्यक्रमकी सुविधाका विशेष ध्यान रखा गया है। प्रयागों और उदाहरणोंसे इस पुस्तकको उपयोगी बनानेका यथाशक्य प्रयत्न किया गया है।

रासायनिक पारिभाषिक शब्दोंमें हमारा लेखक से बहुत ही अधिक मतभेद है। अतः यदि हम वर्मा जी की प्रणाली का घोर विरोध करें तो भी अस्वाभाविक न होगा। हिन्दी भाषामें वैज्ञानिक साहित्य का कार्य्य आरम्भ किये हुए लग भग २० वर्ष हो गये। इतने समयमें बहुत कुछ किया जा सकता था पर पारस्परिक मतभेद ने यह कार्य्य अधिक आगे न बढ़ने दिया। पर विकास के लिये संघर्ष की आवश्यकता है ही अतः हमें संघर्ष-से डरना भी उचित नहीं है।

वर्मा जी, और कदाचित् उनके ही सम्प्रदायकी काशी विश्वविद्यालयकी हिन्दी-प्रेमी-मण्डली, वैज्ञानिक साहित्य को एक विचित्र साँचेमें ढालने का स्वप्न देख रही है। ईसाई मिशनरियों का सदासे ही यह प्रयत्न रहा है कि भारतवर्षमें रोमन लिपि का प्रचार हो जाय, हिन्दी, बंगाली उर्दू आदि लिपियों का स्थान अंग्रेजीकी वर्ण माला ले ले। और यह क्यों? अन्तर्जातीयताके नाम पर, सार्वभौमिकता का बहाना और क्या? हम अन्तर्जातीयताके विरोधी नहीं हैं पर उस अन्तर्जातीयताके अवश्य द्वेषी हैं जिसमें व्यक्तित्वका नाश होता हो।

अब तक तो कुछ लोगों का यही विचार था कि अंग्रेजी तत्वोंके नाम हिन्दी में ज्यों के त्यों ले लिये जायँ। पर अब वर्माजी एक पग आगे और बढ़ गये हैं और आपका सिद्धान्त यह है कि न केवल नाम ही ग्रहण किये जायँ, प्रत्युत उनके अंग्रेजी वर्णाक्षर संकेत भी ज्यों के त्यों ले लिये जायँ, फलतः रासायनिक यौगिकोंके सूत्रोंमें अंग्रेजी वर्ण-माला को स्थान दे दिया जाय। तात्पर्य यह है कि भाषाकी लिपिको दोगला बना दिया जाय। यदि रासायनिक संकेत अन्तर्जातीयता की दृष्टिसे इस प्रकार रखे जायंगे तो गणितवालों की क्या अवस्था होगी, इसपर भी विचार कर लीजिये। मान लीजिये कि आप चलनकलन, या बीजज्यामिति आदि कोई पुस्तक लिख रहे हैं। आप जानतेही हैं कि गणितमें भाषा-वाक्यों का प्रयोग बहुत ही कम होता है और केवल संकेतसूत्रों द्वारा निर्मित समीकरणोंसेही काम चलजाता है, और आप अंग्रेजीकी वर्णमाला अपनाही चुके हैं। ग्रीसके एलफा, बीटा भी आप अवश्य ही ले लेंगे क्योंकि यूनान और भारतवर्षका बहुत पुराना सम्बन्ध चला आरहा है। ऐसी अवस्थामें कदाचित् वर्माजीकी लिखी गणित की हिन्दी पुस्तक नाममें तो हिन्दीकी और रूपमें अंग्रेजीकी ही होगी। इससे हिन्दीवालों को ग्रन्थ लिखनेमें भी बहुत ही सुविधा होगी। कोई भी अंग्रेज़ी-गणितकी पुस्तक उठा लीजिये। उसके टाइटिल पेज पर हिन्दी-नाम रख दीजिये और यत्र तत्र एक दो वाक्य नागरी लिपिके जोड़ दीजिये। बस पुस्तक तैयार है!

मालूम होता है कि फूलदेव सहायजी वर्मा इस बातको मानते प्रतीत होते हैं कि जिस प्रकार भारतमें धार्मिक साहित्य के प्रेमियोंको कुछ संस्कृत अपनानीही पड़ती है, उसी प्रकार वैज्ञानिक साहित्यको अंग्रेज़ी अपनानी ही पड़ेगी। अस्तु, जिसकी जैसी भावना!

सचमुच यह बड़ा भारी भ्रम है। जिस अन्तर्जातीयताकी इतनी दुहाई दी जाती है, उसका संसारमें अधिक अस्तित्व नहीं है। यह ठीक है कि समस्त यूरोपमें एक ही प्रकारकी भाषा एवं वर्णमालाका प्रयोग होनेके कारण बहुत कुछ समानता अवश्य है, पर उसमें भी समुचित विषमता है। देखिये जर्मन और अंग्रेज़ीके कुछ तत्वोंके नाममें ही कितना अन्तर है। आप यह नहीं कह सकते कि इन शब्दोंका जर्मन पुस्तकोंमें प्रयोग नहीं होता है।

Wasserstoff	Hydrogen
Sauerstoff	Oxygen
Stickstoff	Nitrogen
Kohlenstoff	Carbon
Schwefel	Sulphur
Kiesel	Silicon
Eisen	Iron
Blei	Lead
Zinn	Tin
Kupfer	Copper

इनके अतिरिक्त जर्मनीमें पोटाशियमको केलियम् सोडियम्को नैट्रियम् कहते हैं। अच्छा होता यदि आप भी केलयम् और नैट्रियम् शब्दही अपनाते क्योंकि वैज्ञानिक साहित्यमें जर्मनवाले सबके शिरोमणि हैं और उनका साहित्य अधिक परिपूर्ण है। यौगिकोंके नाम भी अन्तर्जातीय नहीं हैं—

Ameisen saure	Formic acid
Essig saure	Acetic "
Blei Essig	Lead acetate
Bernstein saure	Succinic acid
Brenzwein saure	Glutaric acid
Zimmt	Cinnamyl
Weinstein saure	Tartaric acid

मान लीजिये कि आपने रसायनमें कुछ अन्तर्जातीयता कर भी ली, तो इतनेसे क्या होता है। गणित और ज्योतिष के शब्दोंमें तो आप भारतीय शब्दोंको त्यागनेकी धृष्टता कर ही न सकेंगे। भौतिक विज्ञानके शब्द तो यूरोपमें ही अन्तर्जातीय नहीं हैं, वहाँ आप किस सिद्धान्तका अनुसरण करेंगे? कमसे कम आप अंग्रेज़ी लिपिको अन्तर्जातीय संकेतोंके बहानेसे नागरी लिपिके अन्दर न प्रवेश कराइये, नहीं तो घोर अनाचार होनेकी सम्भावना है। आपका ध्यान मैं श्रद्धेय महावीरप्रसाद द्विवेदीके उस भाषणकी ओर दिलाना चाहता हूं जो उन्होंने कानपुरके साहित्य सम्मेलनके स्वागताध्यक्षकी हैसियतसे दिया था, और जिसमें उन्होंने रोमनलिपिके बहिष्कारके सम्बन्धमें अपने विचार प्रकट किये थे।

अस्तु, इस विषय पर हम फिर कभी लिखेंगे। आपकी पुस्तकोंके सम्बन्धमें एक बात और कह देनी है। आपने अंग्रेज़ी शब्दोंको हिन्दी लिपिमें लिखनेका प्रयत्न अवश्य किया है पर कुछ उच्चारण विचित्र हो गये हैं:—

Lavoisier को लेभोयाज़ियर—(लेवाशिये) पृ० ७२ प्र०।

Palmitic (पामिटिक) को पालमिटिक—पृ० ११७–द्वि० भाग।

Monoxide (मौनोक्साइड) को मनाक्साइड—पृ० ५१ द्वि०–कदाचित् आप बंगाली उच्चारणका आदर्श मानते हैं?

Auric (औरिक) का अवरिक्–पृ० ३८, द्वि०।

अस्तु, मतभेदोंके होते हुए भी हम श्री फूलदेव सहाय वर्माके अत्यन्त कृतज्ञ हैं। वस्तुतः यह उनका हिन्दी प्रेम ही है, जिससे प्रेरित होकर उन्होंने ये दो सुन्दर पुस्तकें प्रकाशित की हैं। हम उन्हें इसके लिये हृदयसे धन्यवाद देते हैं, और आशा करते हैं कि वे आगे और भी अच्छी पुस्तकोंसे साहित्यकी कमीको पूरा करेंगे।

—सत्यप्रकाश

मुद्रक—पूरनप्रसाद सक्सेना, हिन्दी-साहित्य प्रेस, प्रयाग

पूर्ण संख्या—१७८

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provincesfor use in School and Libraries. **Reg. No. A. 708.**

मीन संवत् १९८६

संख्या ६
No. 6.

प्रयागकी विज्ञान परिषत्‌का मुखपत्र

'VIJNANA' THE HINDI ORGAN OF THE VERNACULAR SCIENTIFIC SOCIETY, ALLAHABAD.

अवैतनिक सम्पादक

ब्रजराज

एम. ए., बी. एस-सी., एल-एल, बी.,

सत्यप्रकाश,

एम. एस-सी., एफ. आई. सी. एस.

प्रकाशक

वार्षिक मूल्य ३)]   विज्ञान-परिषत्, प्रयाग   [१ प्रतिका मूल्य ।)

विषय-सूची

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमान भूतानि जायन्ते
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५॥

भाग ३० } मीन, संवत् १९८६ { संख्या ६

वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्द (१)

[ले० सत्यप्रकाश, एम. एस-सी., एफ़. आई. सी. एस.]

हिन्दीमें वैज्ञानिक कार्य्य लगभग बीस वर्षसे हो रहा है, और लगभग इतने ही समयसे बंगालीमें भी लोगोंका ध्यान इस ओर गया है। उर्दूवाले भी हमेशा कुछ न कुछ इसके सम्बन्धमें करते ही आये हैं। बंग साहित्य परिषद, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, काशी नागरीप्रचारिणी सभा, विज्ञान परिषद् प्रयाग, अञ्जुमन तरक्की उर्दू, औरंगाबाद, तथा यथाशक्य यत्रतत्र अन्य प्रकाशकों, समितियों और सभाओंने इस ओर विशेष दिलचस्पी ली है। गुजराती और महाराष्ट्रीय भाषाओंके साहित्यने भी वैज्ञानिक साहित्य की ओर कुछ ध्यान दिया है। भारतीय भाषामें सम्भवतः वैज्ञानिक पत्रिकायें केवल तीन ही हैं। सबसे पुरानी मासिक पत्रिका 'विज्ञान' है, इसके पश्चात् द्वयमासिक वंग पत्रिका प्रकृति है और उर्दू की पत्रिका 'सायन्स' त्रैमासिक है। अन्य भाषाओंमें कदाचित् इस प्रकार की पत्रिकायें नहीं हैं। इन भाषाओंके अन्य साहित्यिक पत्र एवं पत्रिकाओंमें भी यदा कदा कुछ मनोरञ्जक लेख अवश्य निकल जाते हैं। पर इन लेखोंसे केवल इतना ही भला होता है कि साधारण जनताका कुछ ध्यान वैज्ञानिक विषयोंकी ओर हो जाता है। पर ये लेख वास्तविक वैज्ञानिक साहित्यके उत्पन्न करनेमें असमर्थ ही रहते हैं।

भारतवर्षमें वैज्ञानिक साहित्यका प्रवेश मुख्यतः तीन स्रोतोंसे हुआ है:—संस्कृत स्रोत, पाश्चात्य स्रोत और अरबी-फारसी अथवा यूनानी स्रोत। संस्कृतमें विज्ञानके अनेक अंगोंका अच्छा प्रतिपा-

दन किया गया है, जैसे वैद्यक और चिकित्सा शास्त्र, जिसके अन्तर्गत ओषधियोंसे सम्बन्ध रखनेवाले रसायनशास्त्रका भी समावेश है। इसीके अन्तर्गत शरीर-विज्ञान भी है और जड़ी बूटीकी परीक्षा की विशेषता होनेके कारण कुछ वनस्पति-विज्ञान भी इसीमें सम्मिलित है। गणित और ज्योतिषके सम्बन्धमें तो संस्कृत साहित्य बहुत ही उत्कृष्ट है जिसमें ज्यामिति, रेखागणित, अंकगणित त्रिकोणमिति, और कुछ बीजगणितके आरम्भिक सिद्धान्त भी सम्मिलित हैं। नक्षत्र विद्याके सम्बन्धमें में भारतीयों की अपूर्वता उनकी गणित सम्बन्धी उत्कृष्टताका ज्वलन्त उदाहरण है। मनोविज्ञान, अर्थ शास्त्र, शल्य शास्त्र, राजनीति विज्ञान, तथा धर्मशास्त्र, स्मार्त्त साहित्य आदि (Law and civics) का भी बहुत कुछ साहित्य हमें संस्कृतमें मिलता है।

यूनानी चिकित्सा, जर्राही, आदि की उत्कृष्टता फ़ारसी पुस्तकोंमें बहुत है। फारसी और अरबी साहित्यमें यूनानी और मिश्री सभ्यता और विज्ञान का समुचित समावेश है। युकलेदिस की गणित, अफलातून और अरस्तूके सिद्धान्तोंका विकास इन साहित्योंमें भली प्रकार हुआ है। भारतवर्षमें भी मुसलमानी राज्यके साथ-साथ यह सभ्यता आई। अरबवाले गणित और वैद्यक शास्त्रके लिये भारतीयोंसे कुछ कम प्रसिद्ध न थे। तात्पर्य यह है कि इन्होंने भी यथाशक्य इन विज्ञानों की उन्नति की और तत्सम्बन्धी साहित्य की भी अभिवृद्धि की।

पाश्चात्य विज्ञानके प्रवेशके पूर्व दोनों प्रकारके साहित्य भारतवर्षमें न केवल विद्यमान ही थे, उनका प्रचार भी कुछ कम न था। यवनराज्य की प्रधानता के कारण कचहरियों और राजसभाओंमें फ़ारसी, अर्बी क़ानूनी शब्दोंका व्यवहार किया जाता था और अदालतोंमें आजतक वे शब्द ज्योंके त्यों व्यवहृत होते आ रहे हैं। यावनिक सभ्यताकी प्रधानता के कारण महाराष्ट्र और गुजरातकी भाषामें भी फ़ारसी और अरबीके बहुत से शब्द प्रविष्ट हो गये। वस्तुतः समस्त भारतवर्षमें फारसी शब्दोंका ही व्यवहार किया जाने लगा। वास्तविक हिन्दी भाषा का इस समय जन्म भी नहीं हुआ था। हिन्दू लोग धार्मिक कृत्योंके अतिरिक्त अन्य कार्य्योंमें फारसीको ही अपनाते थे। व्रजभाषा, अवधी, बुंदेलखंडी आदि भाषायें केवल कविताकी ही भाषा रहीं। गद्यभागके अभावमें इन्हें सफल-भाषा कहना भी उपयुक्त न होगा। इन भाषाओंमें न तो गणित, चिकित्सा, वैद्यक, रसायन आदिके ही ग्रन्थ लिखे गये और न गूढ़ विषयोंकी मीमांसा ही की गई। वास्तविक हिन्दीका जन्म शिवप्रसाद—हरिश्चन्द्र—दयानन्द—कालमें हुआ। इस समय न केवल प्रौढ़ भाषा ही निर्मित हुई, प्रत्युत उसका ऐसा रूप निर्धारित कर दिया गया जिससे वह अब गम्भीरसे गम्भीर विषयोंको भी प्रकट करनेमें समर्थ हो गई।

इसी समय अंग्रेज़ी सभ्यता और साहित्यका भी भारतवर्षमें प्रवेश हुआ। आधुनिक विज्ञानका आविर्भाव मुख्यतः यूरोप और अमेरिकामें हुआ। यूरोपमें अनेक देश हैं और सभी ने इस ओर समुचित ध्यान दिया। जर्मन, फ्रैञ्च, अंग्रेजी, रूसी, इटली, नार्वेस्वेडन, डेनमार्क, हालेण्ड-बैलजियम और आस्ट्रिया देशोंमें पृथक् पृथक् भाषा ही हैं। पर उन सभी ने अपने अपने साहित्यमें यथाशक्य वृद्धि की। यूरोपके ये सब देश भारतवर्षके अनेक प्रान्तोंसे अधिक बड़े नहीं हैं। समस्त यूरोप भारतवर्षसे कुछ ही अधिक बड़ा है। भारतीयोंके रीति-रिवाज और भाषा-धर्म प्रत्येक प्रान्तमें जिस प्रकार एक दूसरेसे विभिन्न हैं, उसी प्रकार यूरोपके इन छोटे देशोंकी सभ्यता एवं भाषामें भी बड़ा भारी अन्तर है। यूरोपीय भाषाओंमें सबसे प्राचीन ग्रीक और लैटिन हैं। इन दोनों भाषाओंकी यूरोपमें वही परिस्थिति है जो संस्कृतकी हमारे देशमें है। संस्कृतके समान लेटिन भाषाको धार्मिक सम्मान भी अधिक मिला है। संस्कृत और लेटिनको आजकल मृतभाषा तो

नहीं, प्रत्युत पूज्य और समादरणीय भाषा अवश्य मानना चाहिये।

यहाँ इस बातकी चर्चा करना सर्वथा असंगत ही होगा कि यूरोपमें इतनी भाषाओंका ग्रीक और लेटिनके पश्चात् किस प्रकार विकास हुआ। इसी प्रकार भारतवर्षमें संस्कृत एवं प्राकृतके पश्चात् अपभ्रंश भाषायें–हिन्दी, बंगाली, मराठी, गुजराती, आदि, तथा मलयालम, तेलगू, तामिल, कनारीज़ आदि द्राविड़ भाषायें किस प्रकार सम्भवित हुईं। एकही वृक्षकी भिन्न भिन्न शाखायें होनेके कारण निसन्देह समस्त यूरोपीय भाषाओंमें भिन्नता होते हुए भी बहुत कुछ समानता है और समानता होते हुए भी बहुत कुछ भिन्नता है। इसी प्रकार समस्त भारतीय भाषायें परस्परमें बहुत कुछ समान हैं, और फिर भी उनका निजी व्यक्तित्व उनको एक दूसरेसे पृथक् ही किये रहता है। अन्तर्जातीय भाषा-शास्त्रके प्रेमी सम्पूर्ण भू-मण्डलमें एक मौलिक भाषाके स्वरूपका अवधान करके यूरोपीय और भारतीय भाषाओंको एकताके सूत्रमें भी बांध सकते हैं। भाषा-शास्त्रकी आदर्श दृष्टिमें इस प्रकारकी एकता चाहें कितनी भी अभिवादनीय क्यों न हो पर सामाजिक एवं नैतिक दृष्टिमें जहाँ जीवन और अपने अस्तित्व एवं व्यक्तित्वकी रक्षाके लिये प्रतियोगिता और प्रतिद्वन्दता हो रही है, वहाँ एक निर्बल जातिकी ओरसे अन्तर्जातीयताकी घोषणा करना केवल अपने को पराजित मानकर उपहासास्पद ही बनाना होगा।

इसमें किसीको सन्देह नहीं है कि भारतवासियोंने ईसाके जन्मसे सहस्रोंवर्ष पूर्व ही गणित, ज्योतिष, और चिकित्सा-शास्त्रको अपने देशकी परिस्थितिके अनुसार, पराकाष्ठा तक पहुँचा दिया था। यूरोपीय विज्ञानका जन्म यूरोपमें वस्तुतः १५वीं और १६ वीं शताब्दीमें ही समझना चाहिये। यह वह समय था जब यूरोपियनोंका प्रवेश भी भारतवर्षमें हो चुका था। धीरे-धीरे पुर्तगाल, फ्रान्स, डेन्मार्क और इंगलैण्डवाले हमारे देशमें आने आरम्भ हो गये थे। उनकी भारतवर्षकी खोज अमरीकाकी खोज नहीं थी। भारतवर्षमें उनका प्रवेश शिक्षककी भाँति नहीं प्रत्युत साधारण व्यापारी और भिक्षुओंकी भांति हुआ था। वे यह जानते थे कि तत्कालीन यूरोपकी अपेक्षा उस समय भारतीय अधिक सभ्य, शिक्षित, कलाकौशल, साहित्य, विज्ञानमें अधिक उन्नत थे। वे हमारे देशके मसाले और मलमल ही अपने देशको न ले गये प्रत्युत इतिहाससे यह सिद्ध है कि उन्हें यह भी उसी समय मालूम हो गया था कि ज्योतिषशास्त्रमें भारतीयोंकी गणित तत्कालीन यूरोपीयगणित की अपेक्षा अधिक निर्भ्रान्त है। हमारे देशके कुछ गणित और ज्योतिषके ग्रन्थ भी उन देशोंमें अवश्य पहुँचे थे। कहनेका तात्पर्य यह है कि यूरोपमें जिस समय विज्ञानका विकास हो रहा था उस समय वहाँके लोगोंको भारतीय सभ्यता और साहित्यकी उत्कृष्टताका पता न हो, यह नहीं माना जा सकता है। पर ऐसा होते हुए भी भारतीयताकी उपेक्षा की गई। वहाँके वैज्ञानिकोंने विज्ञानका विकास अपने नये ही ढंग पर किया। उन्होंने यह जानते हुए भी कि भारतीय सभ्यता यूनानी और रोम सभ्यतासे प्राचीन है, भारतीय विज्ञानकी अवहेलना की। उन्होंने वैज्ञानिक साहित्यकी भाषाकेलिये ग्रीस और रोमके शब्दोंको ही अपनाया। भारतीय ज्योतिष, रसायन, गणित और चिकित्सा-शास्त्रके शब्द अन्र्जातीयताकी ध्वनिमें अपना स्थान न पा सके। पहले तो भारतीयोंने अपना इतिहास-सिद्ध अधिकार मांगा ही नहीं और कहीं इसके लिये प्रयत्न किया भी जाता तो नक्कार खानेमें तूती की आवाज़के अतिरिक्त और कुछ न होता। यह उस समय की अवस्था थी जब भारत न आजकलके समान पराधीन तथा और यूरोपीय देश न आजकलके समान शक्तिशाली थे। परन्तु दुर्दैव ही समझना चाहिये, हमने अपनी शिथिलता और उदासीनताके कारण न केवल राजतन्त्र स्वतन्त्रता ही खो दी, प्रत्युत अग्रता या पूर्वताका

इतिहास-सिद्ध सम्मान भी खो दिया। क्या इतिहासकी दुहाई देकर यह सम्भव है कि हम आज यूरोपमें अपने पारिभाषिक गणित और ज्योतिषके शब्दोंको उनके साहित्यमें स्थापित करा सकेंगे! क्या भागीरथ प्रयत्न करने पर भी वैज्ञानिक सरिताका मुख भारतीय स्रोत की ओर हम करा सकनेमें असफल न रहेंगे? हमको चाहे पंच-राष्ट्रीय नेवेलकान्फ्रेन्समें अथवा विख्यात लीगआव नेशन्समें समान अधिकार अथवा राष्ट्रीय डोमीनियन स्टेटस भी क्यों न मिल जावे, पर हमारी प्राचीन-इतिहास-सिद्ध-संस्कृतिको इस अन्तर्जातीयताके प्रश्नमें सम्मिलित होनेकी आशा करना केवल स्वप्नाभास ही होगा।

अब प्रश्न यह है कि यदि यूरोपवासी अथवा संसारके अन्य वैज्ञानिक आपके प्राचीन शब्दोंको ग्रहण करनेके लिये तैयार नहीं हैं, तो क्या आपको भी उन शब्दोंको और उस प्राचीन साहित्यको तिलाञ्जली दे देनी उचित है? यदि संसारका समस्त वैज्ञानिक समुदाय आपके ज्या, कोज्या, त्रिज्या, घात, समीकरण, वृत्त, लघुत्तम, अक्ष, हर आदि शब्दोंको ग्रहण नहीं कर सकता तो क्या आप भी उनकी आवाज़में आवाज़ मिलाकर Sine, cosine, power, equation, circle, L. C. M axis, denominator, आदि शब्दोंका प्रयोग करने लगेंगे? यदि समस्त संसार की पाश्चात्य भाषायें आपकी क, ख, ग, घ वर्णमाला को स्वीकार नहीं करती हैं और न कर सकती हैं तो क्या आप भी अपनी वर्णमाला को छोड़कर A. B. C. D. या α. β. γ. δ. का व्यवहार करने लगेंगे? यदि स्वर्ण, सीसा, पारद, लोह, वंग, आदि भारतीय शब्दोंका व्यवहार संसारकी अन्तर्जातीय मंडली नहीं कर सकती है तो क्या आप भी Aurous या Auric, Plumbate, Hydrargyrum, ferric, या ferrous, stannous या stannic शब्दोंका व्यवहार अपनी भाषामें करना श्रेयस्कर समझेंगे? क्या जलको Aqua और दूध को Lacti मानकर दुग्धिकाम्लको Lactic acid कहना पसन्द करेंगे? प्रश्न यह है कि अन्तर्जातीयताकी वेदी पर अपने कितने व्यक्तित्वका बलिदान एवं संहार करनेके लिये आप तैयार हैं?

अन्तर्जातीयताका मिथ्या भूत

बहुतसे मननशील व्यक्तियोंके सिरपर अन्तर्जातीयताका भूत सवार है। अन्तर्जातीयताके नशे में ये अपने व्यक्तित्वका संहार करनेके लिये भी उत्सुक हैं। अन्तर्जातीयतासे हमें कोई द्वेष नहीं है। भला यह भावुकता किसे न रुचिकर होगी कि समस्त भूमण्डल पर एक ही भाषाके बोलनेवाले प्राणी हों, सबके खान पान, रीति-रिवाज, अस्त्र-शस्त्र वस्त्र, चाल-ढाल, रंग-रूप, सब एक ही प्रकारके हो जावें, पर यह भावुकता केवल भावुकता ही है। यह मानवी प्रकृतिके सर्वथा विपरीत है। इस प्रकारके ऐक्यके प्रयत्नसे अनैक्यकी मात्राही अधिक बढ़ जाती है। हमसे कहा जाता है कि हम यूरोपकी अन्तर्जातीयतामें अपनी भारतीयता भस्मसात कर-दें। हमें इसमें कोई आपत्ति भी नहीं है। हम व्यर्थ रूढ़ियोंके उपासक भी नहीं होना चाहते हैं। हमें भारतीयतासे व्यर्थ ममता भी करनी आवश्यक नहीं है। यदि उपयोगिता हो और आवश्यकता समझी जाय तो हम संसारके उत्कर्षमें बाधक भी नहीं होना चाहते हैं, प्रत्युत हम अपने अस्तित्वका अन्तिम त्याग करनेके लिये सबसे आगे रहनेको तैयार रहेंगे। पर इतना अवश्य है कि हम निरर्थक बलिदानके पक्षपाती नहीं हैं, बे मतलब अपने अस्तित्वका संहार करनेके लिये हम उद्विग्न नहीं हैं।

हमसे अन्तर्जातीयताकी अग्निमें अपनी श्रद्धाहुति भेंट करनेके लिये कहा जा रहा है। पर प्रश्न तो यह है कि जिस अन्तर्जातीयताकी हमारे समक्ष इतनी दुहाई दी जा रही है उसका संसारमें कहीं अस्तित्व भी है? कहीं ऐसा तो नहीं है कि इसका भयंकर भूत झूठमूठ ही हमारे सिर पर सवार हो

गया हो ? और यदि यह सिद्ध हो जाय तथा हमें इसका दृढ़ विश्वास हो जाय कि अन्तर्जातीयता केवल आकाशपुष्पके समान ही संभ्रम है तो फिर हमारी व्यग्रता व्यर्थ हो जायगी। हमारा यह दृढ़ विश्वास है कि जिस अन्तर्जातीयताका भय हमारे भारतीय वैज्ञानिकसाहित्यके प्रेमियोंके सिर पर सवार हो गया है वह सर्वथा निर्मूल और व्यर्थ ही है। उनके ये विचार नितान्त भ्रम-मूलक हैं। वस्तुतः जिस अन्तर्जातीयताकी उन्होंने कल्पना की है उसकी प्रधानता संसारमें है ही नहीं और न हमें इसका विचार ही करना चाहिये।

यूरोपीय भाषाओंमें तीन मुख्य भाषायें हैं, अंग्रेज़ी, जर्मन और फ्रेञ्च। इन तीनों भाषाओंमें पारस्परिक समता और विषमता दोनोंही बहुत हैं। यूरोपकी अन्य भाषायें जैसे इटली, रूस, बैलजियम, हालैण्ड, डेनमार्क, नार्वे-स्वेडन आदिकी अंग्रेज़ी भाषासे और भी अधिक विषम हैं। रूसकी भाषामें यह विषमता कदाचित् पराकाष्ठाको पहुँच गई है। अब हम यहाँ कुछ शब्दों द्वारा दिखानेका यत्न करेंगे कि जर्मन, फ्रैञ्च और अंग्रेज़ी भाषाओंके वैज्ञानिक शब्दोंमें कितनी अधिक विषमता है। पहले हम गणितके कुछ शब्द लेते हैं:—

गणित

अंग्रेज़ी	जर्मनी	फ्रैञ्च
Figure	Zahl	Chiffre
Denominator	Nenner	Denominateur
Square	Quadrat	Carre
Equilateral	Gleichseitig	Equilatere
Straight line	Gerade	Droit ligne
Circle	Kreis	Cercle
Conic section	Kegel schnitt	Coniques
Rectangle	Rechteck	Rectangle
Centre of gravity	Schwerpunkt	Pesanteur
Envelope	Umhullungs linie	Enveloppe
Friction	Reibung	Frottement

भौतिक

अंग्रेज़ी	जर्मनी	फ्रैञ्च
Rarefection	Verdunnung	Rarefaction
Elasticity	Spannkraft	Elasticite
Inertia	Tragheit	Inertia
Expansion	Ausdehnung	Expansion
Liquid	Flussigkeit	Liquide
Solution	Losung	Solution
Viscosity	Zahigkeit	Viscosite
Melting point	Schmelz punkt	Point de fusion
Humidity	Feuchtigkeit	Humidite
Image	Bild	Image

Focussing	Einstellung	Mise an point
Alternatingcurrent	Wechsel strom	Courant alternative
Short circuit	Kurz schluso	Mettre en court circuit

साधारण वस्तुयें

Sealing wax	Siegellack	Cire a' cacheter
Amber	Bernstein	Ambre
Foil	Blech	Feuille de metal
Flask	Kolben	Bouteille
Tube	Rohr	Tube
Spring balance	Feder wage	Balance a' ressort
Test tube	Probier glaschen	Eprouvette
Alloy	Legierung	Alliage
Mortar	Reibschal	Martier
Funnel	Trichter	Entonnoir, tuyau
Crucible	Schmelztiegel	Creuset

रासायनिक तत्त्व

Hydrogen	Wasserstoff	Hydrogene
Oxygen	Sauerstoff	Oxygene
Nitrogen	Stickstoff	Azote
Carbon	Kohlenstoff	Carbone
Sulphur	Schewefel	Soufre
Silicon	Kiesel	Silicium
Potassium	Kalium	Potassium
Sodium	Natrium	—
Iron	Eisen	Ferrement
Lead	Blei	Plomb
Tin	Zinn	Etain, fer blanc
Copper	Kupfer	Cuivre

रासायनिक यौगिक (अकार्बनिक)

Sulphuric acid	Schwefel saure	Sulfurique acide
Sulphurous acid	Schweflige saure	Sulfureux acide
Nitric acid	Salpeter saure	Nitrique or azotiqe acide
Nitrous acid	Salpetrige saure	Nitreaux acide

Carbonic acid	Kohlen saure	Carbonique acide
Lunar caustic	Hollenstein	Nitrate de argent
White lead	Blei weiss	—
Iron pyrites	Schwefelkies	—
Caustic soda	Natron lauge	Caustique soude
कार्बनिक यौगिक		
Formic acid	Ameisen saure	Formique acide
Acetic ,,	Essig ,,	Acetique
Succinic ,,	Bernstein ,,	अंग्रेज़ी के ही समान
Glutaric ,,	Brenzwein ,,	,,
Cinnamyl ,,	Zimmt ,,	,,
Tartaric ,,	Weinstein	,,
Citric ,,	Zitronen ,,	,,
Urea	Harnstoff	
भौतिक रसायन		
Conductivity	Leitvermogen	
Surface tension	Oberflach spannung	
Liquefaction	Verflussigung	
Supersaturated	Ubersattig	
Precipitate	Niederschlag	
Viscosity	Zahigkeit	
Density	Dichte	
Refraction	Brechung	
भूगर्भ विद्या		
Glaciation	Vergletscherung	
Rock debris	Felstrummer	
Valley	Talmulde	
Stratum	Schicht	
Deposit	Lager	
Earth's crust	Erd-rinde	
Earth quake	Erd beben	
Denudation	Entblossung	
Archaeology	Attertumskunde	
Species	Gattung	
वनस्पति		
Respiration	Atmung	

Stipular gland	Drusen zotte
Embryonic leaf	Keimblatt
Perisperm	Keimhulle
Unisexual	ein hausig
Fermentation	Garung
Lenticular	Linsen formig

जीव विज्ञान

Vertebrata	Wirbeltiere
Protozoa	Urtiere
Amoebae	Wechseltierchen
Anthropod	Gliederfuss
Ruminant	Wiederkauer
Spinal cord	Rucken mark
Cartilage	Knorpel
Intestine	Garb
Urethra	Harnrohre
Auricle	Herzohr
Palate	Gaumen

यही नहीं, जर्मनी वालों ने भौगोलिक नामोंमें भी कैसा परिवर्तन करदिया है :—

Transylvania	Sieben burgen
Tierra del Fuego	Feuerland
Red sea	Rot meer
Germany	Deutschland
Yellow sea	Gelbe meer

यूरोपीय भाषाओंमें फ्रैञ्च भाषा सबसे आसान है और विशेषतः जिन्हें अंग्रेज़ी आती है वे इस भाषाको बिना अधिक कठिनताके ही कुछ न कुछ सीख सकते हैं। फ्रैञ्च और अंग्रेज़ी भाषाकी पारस्परिक समानताके कारण ही दोनोंके वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्द भी बहुत कुछ एकसे हैं। वस्तुतः यदि वैज्ञानिक शब्दोंको निकाल भी दिया जाय तो भी अंग्रेज़ी और फ्रैञ्चके शब्द उच्चारण और स्पेलिंग भेदके साथ अधिकतर एकसे ही हैं। इसलिये फ्रैञ्च और अंग्रेज़ीकी समानताके आधार पर ही कोई अन्तर्जातीय वैज्ञानिक पदावली नहीं बनाई जा सकती है। जर्मन भाषा यूरोपीय भाषाओंसे बहुत भिन्न है अतः इसकी वैज्ञानिक शब्दावली भी बहुत कुछ भिन्न ही है।

भाषाशास्त्रका यह सिद्धान्त है कि कोई दो भाषायें परस्परमें जितनी अधिक भिन्न होती हैं, उतना ही उनके शब्दोंमें पारस्परिक विनिमय भी बहुत कम होता है। यह ठीक है कि कभी कभी अधिक भिन्नता होते हुए भी कुछ शब्दोंका ग्रहण हो जाता है पर ऐसी अवस्थामें शब्दोंका विकार भी आवश्यक हो जाता है। यह विकार उच्चारण आदिकी सुविधाके अनुसार होता है। यदि फारसी और संस्कृत दो बहुत ही भिन्न भाषायें हैं तो उनकी अधिक-भिन्नता ही पारस्परिक शब्द

विनिमयमें बाधक होती है। यदि मातृ, पितृ, भ्रातृ आदि शब्द दूसरी भाषामें प्रविष्ट भी होते हैं तो मादर, पिदर और बिरादरका रूप धारण कर लेते हैं, और इस रूपमें वे अपने मौलिक व्यक्तित्वको सर्वथा छोड़कर विजातीय ही हो जाते हैं। चाहें भाषाशास्त्र वाले बादको मादर, पिदर आदि शब्दोंका सम्बन्ध संस्कृतसे ढूँढ़ भी निकालें पर फारसीवाले तो स्वभावतः इन्हें अपना शुद्ध शब्द ही मानेंगे, न कि अपभ्रंश। यदि हिन्दीवालोंने मोटर, रेल, इंजन, लालटेन, बिसकुट शब्द अपनाये हैं तो उन्हें इन्होंने अपने अन्दर इस प्रकार हज़म कर लिया है कि अब इनको अपभ्रंश या अंग्रेज़ीके शब्द कहना व्यर्थ होगा। भाषाके हाज़िमा या पाचन शक्तिका ध्यान अवश्य रखना होगा, चाहें हम यूरोपीय शब्दोंके तत्सम, तद्भव या तद्रूपोंको ग्रहण करें, चाहे ठेठ शब्द बनावें, चाहें उन्हें हम संस्कृतके व्याकरण-सिद्ध-नियमोंसे लें। हमारे जो भी शब्द हों वे ऐसे होने चाहिये कि भाषाके उदरमें प्रविष्ट होकर पचनेके पश्चात् इस भाषाके रक्त और अस्थि ही बन जावें। ऐसा न हो कि वे कंकड़ पत्थरके समान पेटमें पड़े रहकर अपना पृथक् अस्तित्व दृढ़ रखते हुए दुःखदायी ही बने रहें। कहनेका तात्पर्य्य यह है कि हमें इस बात पर विशेष ध्यान रखना चाहिये कि हम उतने ही विदेशी शब्द अपनावें जितने हमारी भाषामें हिलमिल कर एक रहनेमें समर्थ हों। मान लीजिये कि आपने अपनी भाषामें मरक्यूरिक क्लोराइड, मरक्यूरस सल्फेट, लेडएसीटेट, औरिक क्लोराइड, फैरिक साइट्रेट आदि सैकड़ों विदेशी शब्द ग्रहण किये। अब प्रश्न यह है कि आपको क्या दृढ़ विश्वास है कि इतने शब्दोंको इस रूपमें हिन्दी भाषा कभी पचा सकेगी ? आज नहीं; तो क्या ५० वर्ष पश्चात् भी आप यह आशा रख सकते हैं कि हिन्दी भाषामें इन शब्दोंको पढ़नेवाले स्वभावतः इन्हें विदेशी या foreign matter न समझेंगे ! और यदि कहीं ऐसा ही हुआ कि इन शब्दोंको देवनागरी लिपिमें लिख देनेके पश्चात् भी आपकी भाषा बोलनेवाली जनता इन्हें विदेशी ही अनुभव करती रही तो फिर सारा प्रयत्न निष्फल, व्यर्थ और संकटमय हो जायगा। यह ध्यान रखना चाहिये कि उपर्युक्त यौगिकोंमें तो विदेशीपन कुछ है ही नहीं, वे आपके ही देशके पदार्थोंसे तैयार हो सकते हैं और होते ही हैं। पदार्थ स्वभावतः स्वदेशी ही हैं, फिर इनके विदेशी नाम रखकर केवल जनताको भ्रममें डालना नहीं तो और क्या होगा ! क्या इससे भी बढ़कर और कोई जातीय पतन हो सकेगा ! यदि हम उन शब्दोंके स्थानमें पारदिक हरिद, पारदस गन्धेत, सीस-सिरकेत, स्वर्णिक हरिद, लोहनीबूएत शब्द रख दें और पारस्परिक भेद मिट जानेके पश्चात् इनका प्रचार हो जावे तो ये शब्द हिन्दी भाषामें भली प्रकार हिलमिल कर घुल सकते हैं। इन शब्दोंके उच्चारणसे यह कभी आशंका नहीं हो सकती है कि ये भारतोपलब्ध पदार्थ नहीं है। मेरा तो यह दृढ़ विश्वास है कि यदि आपने औरिक क्लोराइड आदि शब्दोंका ग्रहण किया तो हमारी जनता सदा यह भ्रमपूर्वक समझती रहेगी कि ये नाम उस पदार्थके द्योतक हैं जो विदेशसे ही हमारे देशमें भेजे जाते हैं और यहाँ तैयार नहीं होते। मुझसे एक व्यक्तिने कहा कि तुमको इस कार्य्यके लिये मि० मैकेञ्जीके पास जाना होगा। मैंने मैकेञ्जी महोदयको कभी देखा भी न था। मार्गमें मैंने उनके स्वरूपकी कल्पनाकी। मैंने सोचा कि वे कोई विशाल गोरे वर्णके अंग्रेज़ या अमरीकन होंगे। पर जब उनके पास पहुँचा तो मैंने उन्हें अपना ही ऐसा भारतीय पाया। यह स्वाभाविक था कि विदेशी नाम सुनकर मैं उनके विदेशी रूप रंगकी ही कल्पना करता। बस, अंग्रेज़ी नामवाले यौगिकोंमें भी भारतीय ईसाइयोंके नामका सा भ्रम ही होगा ! यह भी कोई बुद्धिकी बात है कि केवल धर्म परिवर्तनके कारण लोग अपनी भाषा, भेष, और नाम सभी विदेशी बनालें। वस्तुतः हमें तो निकट भविष्यमें यह आवश्यक होगा कि जितने रासायनिक पदार्थ बाहरसे हमारे देशमें आ रहे हैं,

उन्हें तैयार करनेका प्रबन्धकरें। इस प्रकार उन पदार्थोंकी विदेशी भावनाको एक दम दूर कर दें। उनकी इस शुद्धिके पश्चात् उनका भारतीय नाम भी दे दें जिससे किसीको इन्हें विदेशी माननेका भ्रमही न हो। क्या ही आश्चर्य्यकी बात है कि जब वस्तुएँ हमारे देशकी हैं, हमारे देशके पदार्थोंसे यौगिक हमारे ही देशमें बनाये जा सकते हैं और बनते हैं, फिर भी उनके ऊपर विदेशी नामकी मुहर लगा दी जाती है। इस प्रकारकी मानसिक परतन्त्रता एवं पराधीनताकी बेड़ियोंसे मुक्त होनेका क्या कोई उपाय नहीं है?

हम यह कह चुके हैं कि अन्तर्जातीयताका प्रश्न केवल भ्रम ही है क्योंकि जब अंग्रेज़ीके वैज्ञानिक शब्दोंका सर्वथा प्रचार यूरोपमें ही नहीं है तो सात समुद्र पार हमारे देशमें उनके अपनानेकी समस्या हास्यास्पद ही तो होगी। ऐसा करना भाषा शास्त्र-के नियमोंके भी तो प्रतिकूल ही है। यह ठीक है कि आजकलकी परिस्थितिमें हम अपनी भाषाको देशकी चार दीवारीमें सीमित एवं संकुचित नहीं रखना चाहते हैं, हम उसे उदार होनेका मन्त्र भी पढ़ा सकते हैं, पर उदारताकी भी तो कोई मर्य्यादा होती है!

लिपिका प्रश्न

चीन और जापान देशवालोंके सम्मुख लिपिका प्रश्न बड़ा भयंकर था क्योंकि उनके यहाँ अक्षरोंको मिलाकर शब्द रचनेकी प्रथा न थी। लिखनेमें उन्हें प्रत्येक शब्दके लिये पृथक् संकेत रखने पड़ते थे। जबसे छापेखानेकी सभ्यताका प्रचार हुआ तबसे प्रत्येक भाषाकी लिपिको सुगम एवं सरल बनानेका प्रयत्न किया जाने लगा। यूरोपीय भाषाओंमें सबकी लिपियाँ सदा एक सी ही नहीं रही हैं। जर्मन देशमें आजकल भी गोथिक लिपिका प्रचार है। इन भाषाओंकी वर्णमालामें लगभग २६ अक्षर होते हैं, पर प्रत्येक अक्षर दो प्रकारसे लिखा जा सकता है—कैपिटल और स्माल। इन भाषाओंमें छापनेके अक्षर और होते हैं और लिखनेके और जिन्हें अंग्रेज़ी भाषामें इटेलिक्स कहते हैं। ये भी कैपिटल और स्माल दो प्रकारके हुए। इस प्रकार सम्पूर्ण अक्षरोंकी संख्या १०४ के लगभग हो गई। वैज्ञानिक कार्य्योंमें ये १०४ अक्षर तो काममें आते ही हैं, इनके अतिरिक्त ग्रीक भाषाके एलफा, बीटा, गामा आदि सब अक्षर नहीं तो कमसे कम १०-१५ का तो अधिक प्रचार है। गिनतीके अक्षर सब प्रयुक्त होते ही हैं। रोमन संख्याका भी उपयोग विशेष अवसरों पर किया जाता है। इस प्रकार सवा सौ के लगभग अक्षरों का प्रयोग हुआ। जहाँ इतनेसे भी काम नहीं चलता है वहाँ अक्षरोंके अगल बगल 'डेश' आदि लगाकर काम निका-लते हैं।

देवनागरी लिपिमें लगभग ५२ अक्षर हैं, पर कैपिटल और स्माल का झगड़ा नहीं है। फिर कुछ मात्रायें हैं, और संयुक्ताक्षरके प्रयोगोंके लिये आधे अक्षर जो कई प्रकारके होते हैं। इस प्रकार कुल मिला-कर लगभग तीनचार सौ अक्षर इस लिपिमें प्रयुक्त होते हैं। यह संख्या यूरोपीय भाषाओंकी लिपिकी संख्यासे इतनी अधिकहै कि छापेखानेकी सरलताकी दृष्टिसे नागरी लिपिकी संकीर्णता एवं दुरूहताका प्रश्न सदा उठाया जाता है। बहुतसे अग्रगण्य व्यक्ति देवनागरी लिपिके इस अभागेपन पर तरस खाया करते हैं। परन्तु तो भी भारतवर्षमें इस लिपिके छापेखानोंकी समुचित सफलता मिली है। यह इस बातका स्वयं सिद्ध प्रमाण है कि यह लिपि मुद्रण कार्य्यके लिये कुछ दुरूह तो अवश्य पर सर्वथा अनुपयुक्त नहीं है। हाँ, सुधारके लिये तो सदा ही स्थान रहता है और रहेगा।

यूरोपमें वैज्ञानिक कार्य्योंके लिये आजकल उसी लिपिका बहुधा प्रयोग करते हैं जिसे हम अंग्रेज़ी लिखते समय व्यवहारमें लाते हैं। जर्मन देशवाले इस रोमन लिपि और अपनी गोथिक लिपि दोनोंका ही उपयोग करते हैं। गोथिक और रोमन लिपियोंमें केवल उतना ही अन्तर है जितना नागरी और

बंगला या गुजराती में। एक प्रकारसे रोमन लिपि समस्त यूरोपके लिये ही नहीं, एशियाको छोड़कर सम्पूर्ण संसारके लिये अन्तर्जातीय ही हो गई है। अब प्रश्न यह है कि भारतवर्ष इस अन्तर्जातीयतामें कितना सहयोग दे सकता है। यूरोपकी सभ्यता और साहित्य अमरीका और आस्ट्रेलियामें अवश्य फैल सकता था क्योंकि वहाँ की जनताके पास न कोई विकसित भाषा ही थी, न लिपि ही और न साहित्य ही। पर भारतवर्षमें अंग्रेज़ोंका राज्य चाहे कितनी दृढ़तासे क्यों न जमा रहे, पर यह देश अंग्रेज़ोंकी कौलोनी या उपनिवेश तो नहीं कहा जा सकता है! हमारी परतन्त्रतामें भी हमारा अस्तित्व बहुत ही स्पष्ट है। सचमुच यह दुर्भाग्य ही है कि प्राचीन साहित्य एवं संस्कृतिके होते हुए भी हमारे सिर पर एक दूसरा साहित्य और संस्कृति लादी जा रही है। यदि स्वतंत्र होते तो क्या आजकलके यूरोपीय वैज्ञानिक उत्कर्षमें हम अपने ढंग पर भाग न लेते होते! क्या यदि अंग्रेज़ न आये होते तो यह देश विज्ञान विहीन ही रहता! क्या हम भी जापान वालोंके समान संसारकी सबसे प्रबल शक्तियोंमें से एक न होते? हमें यह पूर्ण विश्वास है कि यदि हम स्वतंत्र होते तो वैज्ञानिक कार्य्योंमें भी आज हम संसारकी सर्वोत्कृष्ट जातियोंमें से ही होते, और उस उत्कर्षमें हमारे अस्तित्वका स्पष्ट भारतीय चिह्न प्रत्येक कार्य्यमें प्रतिबिम्बित होता।

पर यह स्पष्ट ही है कि पराधीन होने पर भी हम मृत नहीं है और भारतवर्ष इङ्गलैण्डकी कौलोनी नहीं हो सकता है! ऐसी अवस्थामें क्या किसीको यह विश्वास हो सकता है कि भारतवर्षमें अन्तर्जातीयताकी आड़में रोमन लिपिका प्रचार हो जाय। हमारे अन्तर्जातीयतावादके प्रेमी वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दोंको ही हिन्दीमें प्रविष्ट नहीं करना चाहते हैं, वे रोमनलिपिको भी किसी न किसी रूपमें हमारे साहित्यमें देखना चाहते हैं! क्या यह भारतीयता पर भीषण अत्याचार न होगा? क्या इससे भारतवर्षका कुछ अधिक भला हो सकेगा? क्या इससे भी बढ़कर और कोई मानसिक परतन्त्रता हो सकती है?

यदि हमारी लिपि बहुत ही दूषित अथवा अयोग्य होती तो हम लिपि परिवर्त्तनका कुछ विचार भी करते। जापान वालों ने अपनी लिपि परिवर्त्तितकी। पर उन्होंने अपनी जातीयताको स्पष्टतः स्वतंत्र रखनेके लिये जिस लिपिका निर्माण किया है उसमें वे सब गुण तो हैं ही जो रोमन लिपिमें हैं, पर तब भी उनकी लिपि यूरोपीय लिपिसे इतनी भिन्न है कि अपरिचित व्यक्ति उसका एक वाक्य भी नहीं पढ़ सकता है! जापान वाले अपनी शोध संबन्धी वैज्ञानिक पत्रिकायें भी अपनी ही भाषा और अपनी ही लिपिमें निकालते हैं। यद्यपि शोध सम्बन्धी लेखोंका संसारमें प्रचार करनेके लिये उनका सारांश अंग्रेज़ी, फ्रैञ्च और जर्मन भाषाओंमें भी प्रकाशित किया जाता है।

हमें यह पूर्ण विश्वास है कि अन्तर्जातीयतावादका कोई भी प्रेमी भारतीयोंको अपनी लिपिके परित्याग करनेकी उपहासास्पद सम्मति कभी न देगा। गणित और रसायनके सम्बन्धमें कुछ व्यक्ति अवश्य इस मतके प्रतीत होते हैं कि नागरी लिपिको छोड़ा तो न जावे पर आवश्यकता पड़ने पर रोमन लिपिको भी अपना लिया जाय। रसायनमें प्रत्येक तत्त्वके लिये सुविधानुसार एक एक संकेत निश्चित कर लिया गया है। तत्त्वोंसे मिलकर जो यौगिक बने हैं उनको भी इन संकेतोंसे सूचित कर दिया जाता है। प्रक्रियाओंको समझनेमें एवं समीकरणोंके बनाने इनका विशेष उपयोग होता है। कुछ अन्तर्जातीयताके प्रेमियोंका न केवल यह कथन है कि तत्त्वोंके नाम ज्योंके त्यों ले लिये जायँ, प्रत्युत उनके अन्तर्जातीय संकेतोंको भी अपनानेके लिये समीकरणों और सूत्रोंमें रोमन लिपिका ही उपयोग किया जावे। वस्तुतः यह ठीक भी है कि रसायन शास्त्रमें संकेतों और समीकरणोंका इतना व्यवहार होता है कि यदि इनमें रोमन लिपि न प्रयुक्तकी जावे तो

तत्त्वोंके अकेले अन्तर्जातीय नाम ग्रहण करनेसे ही कोई भला नहीं हो सकता है। वस्तुतः यदि यह सिद्ध हो जाय कि रोमन लिपिका नागरी लिपिमें प्रवेश करना अत्यन्त दूषित और भयंकर होगा, तो फिर तत्त्वोंके अन्तर्जातीय नाम रखनेका प्रश्न अपने आप ही अलग हो जाता है। वस्तुतः यह बात केवल सोचनेकी है कि क्या भारतीय भाषाको यूरोपीय लिपि 'आपद्धर्म' के रूपमें यत्र तत्र अपना लेनी ही चाहिये? क्या इसका परिणाम भविष्यमें अधिक भयंकर न होगा? मेरा तो यह कहना है कि आपने लिपि भी ग्रहणकी, अन्तर्जातीय वैज्ञानिक पद भी ग्रहण किये, फिर तो केवल कुछ सर्वनाम क्रिया, और साधारण अव्ययोंका ही प्रश्न रह गया। अच्छा है, झगड़ा छूट जायगा, भारतवर्षकी अन्तर्जातीय भाषा अंग्रेज़ी ही क्यों न घोषित कर दीजिये। आप नागरी लिपिको और हिन्दी भाषाको कदाचित् बन्ध्या समझते ही हैं, इसको प्रसव शक्ति पर आपको विश्वास ही नहीं है। जाने दीजिये, अंग्रेज़ोंका ही साम्राज्य फैल जावे, इसमें हानि ही किसकी है? विश्व साहित्यमें विश्वभाषा और विश्वलिपिका प्रचार हो जाय इससे बढ़कर और क्या मंगलमय बात हो सकती है!!

गणितमें भी भाषावाक्योंका व्यवहार कम होता है, संकेताक्षरोंके समीकरणोंसे ही बड़ी बड़ी समस्यायें सिद्ध हो जाती हैं। यदि रसायनके समीकरणोंमें अंग्रेज़ी लिपिको अपनालिया गया तो कोई कारण नहीं है कि गणितमें भी इसका उपयोग क्यों न किया जाय। और यदि गणितमें इस लिपिका प्रयोग किया गया तो बस आनन्द ही आ जायगा। आप आरम्भसे अन्त तक प्रत्येक पृष्ठमें कुछ वाक्यों अथवा शब्दोंको छोड़कर रोमन लिपि ही पावेंगे, और फिर भी आप इसे हिन्दी-साहित्यकी पुस्तक ही कहना चाहेंगे। क्या इससे भी अधिक मज़ेकी कोई बात हो सकती है। समझमें यह नहीं आता है कि हमारे सहयोगी भाषाको क्या समझते हैं और क्या रूप देना चाहते हैं? हमें उनके मंगलमय उद्देश्य और पवित्र भावनाओंमें कोई सन्देह नहीं हैं, हम जानते हैं कि उनके विशाल हृदय में भाषाके प्रति शुभ कामना और शुभेच्छा विद्यमान है। पर हमें यह भी विश्वास है कि जिस भविष्यकी वे कल्पना करने जा रहे हैं वह अधिक आशामय और कल्याणकारी न होगा। वस्तुतः इससे बढ़कर कोई भयंकर भूल न होगी यदि हमने सर्वांशतः अथवा अंशतः रोमन लिपिको अपनी पुस्तकोंमें स्थान दे दिया। रोमन लिपिके प्रचारकी पहली ध्वनि ईसाई धर्म प्रचारकोंकी ओरसे उठायी गई थी। सरकारने एक ही प्रान्तमें उर्दू और हिन्दी दो लिपियोंके प्रचारकी कठिनताको दूर करनेके लिये हिन्दी भाषामें रोमन लिपिके व्यवहारकी अनुमति देनेकी असफल और व्यर्थ चेष्टा की। दो लिपियोंकी अभाग्यवश विपदा थी ही पर इसका समाधान एक तीसरी लिपिके द्वारा सम्भव समझा गया, क्या इससे भी अधिक कोई विघातक चेष्टा हो सकती थी? सौभाग्य एवं हर्षकी बात है कि रोमन लिपिका प्रचार हिन्दी तथा उर्दू लिपिके स्थानमें उस समय न हो सका। पर अब रोमन लिपिके अंशतः प्रयोग-की दूषित घोषणा वैज्ञानिक साहित्यके प्रेमियोंकी ओरसे की जा रही है। हमें विश्वास है कि अनुभवी भारतीय साहित्यक जनता इस प्रकारके षड्यन्त्रोंके प्रति समुचित सचेत है, और भारतीय लिपि किसी भी विदेशी लिपिको अपने साथ कभी स्थान नहीं दे सकती है।

हिन्दुस्तानी भाषाका आविर्भाव

दैवयोगसे भारतवर्षका वह प्रान्त जिसका नाम 'संयुक्त प्रान्त, आगरा व अवध' दिया जाता है, एक विचित्र प्रहेलिका है। यहाँकी समस्यायें अन्य प्रान्तोंकी समस्यायोंसे सर्वथा प्रतिकूल हैं। इस प्रान्तकी प्रान्तीयता भी विचित्र है। हिन्दी भाषा भी, सौभाग्यवश अथवा अभाग्य वश-जो कुछ कहिये, इस विचित्र प्रान्तकी भाषा स्वीकारकी गई है। बंगालके बंगाली, महाराष्ट्रके महाराष्ट्री, इसी

प्रकार पंजाबके पंजाबी, मद्रासके मद्रासी और बिहारके बिहारी कहे जाते हैं। पर भारतवर्षमें मध्यप्रान्त और संयुक्त प्रान्त ही दो ऐसे हैं जहाँके लोगोंका कोई पृथक् प्रान्तीय नाम नहीं है। संयुक्त प्रान्तके निवासियोंको बहुधा 'हिन्दुस्तानी' नामसे पुकारा जाता है। यदि समस्त भारतका नाम हिन्दुस्तान है तो यह बड़े गौरवकी बात है कि समस्त युक्त-प्रान्तीय व्यक्तियोंको इस विशाल नामसे पुकारे जानेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

परन्तु 'हिन्दुस्तानी' शब्द जिस रूढ़ि अर्थमें आजकल प्रयोग किया जा रहा है, उसमें राष्ट्रीयता और भारतीयताके भाव नहीं हैं। भारतीय राष्ट्रको विशाल दृष्टिसे देखकर जिसराष्ट्र भाषाका प्रचार महात्मा गान्धी प्रभृति व्यक्ति आज कर रहे हैं और जिस भावको कुछ समय पूर्व महर्षि दयानन्दने अपनाया था, जो भारतीय भाषा और नागरी लिपि इस देशको एक राष्ट्रीय सूत्रमें बांधनेके लिये आवश्यक है, उसका हम नितान्त अभाव इस 'हिन्दुस्तानी' शब्दमें पा रहे हैं। सचमुच यह आवश्यक है कि हम 'हिन्दुस्तानीपन' और "भारतीयता अथवा राष्ट्रीयता" के भेदको समझें।

अभी कुछ ही दिन हुए कि संयुक्तप्रान्तमें हिन्दुस्तानी एकेडेमी' नामकी एक विचित्र संस्थाका जन्म दिया गया है। यह संस्था क्या है? यह सभी जानते हैं कि अधिकांशतः यह नौकरशाहीकी एक विचित्र चालका फल है। इसके नामका सम्बन्ध दुर्भाग्यवश 'हिन्दुस्तानी' शब्दसे कर दिया गया है जो कि सर्वथा भ्रम मूलक है। क्या इस प्रान्तीय एकेडेमीका उद्देश्य यह है कि समस्त भारतमें एक राष्ट्रीय भाषाका निर्माण किया जाय,—कदापि नहीं क्योंकि यह समस्त भारतीय भाषा भाषियोंकी संस्था भी नहीं हैं, इसकी मर्य्यादा केवल संयुक्त प्रान्त तक ही सीमित है। इसका यह उद्देश्य कभी नहीं है कि जिस भाषाका वह निर्माण करे वह समस्त भारतकी राष्ट्रीय भाषा हो जावे। इसका एक मात्र उद्देश्य है, उर्दू और हिन्दीके पुराने झगड़ेको सुलझाना। समस्त भारतमें एक यही प्रान्त ऐसा है जहाँ दो संस्कृतियों और भाषाओंका भयंकर संघट्ट उपस्थित हो गया है। सुना जाता है कि इस संस्थाकी ओरसे हिन्दोस्तानी भाषाका निर्माणकिया जायगा, जिसका सामान्यतः उपयोग आजकलके हिन्दी और उर्दू दोनों फिरक़ेवाले करेंगे। कहा नहीं जा सकता है कि यह भाषा किस प्रकारकी होगी। कदाचित् इसका परिणाम यही होगा कि हिन्दी भाषासे बहुतसे संस्कृत शब्दोंका बहिष्कार किया जायगा और उनके स्थानमें फारसी और अर्बीके शब्दोंको व्यवहारमें लानेका आदेश दिया जावेगा। यह भी हमारे लिये कोई नई बात नहीं है। सितारे हिन्द स्वर्गीय राजा शिवप्रसादजीने भी इसी प्रकार का प्रयत्न किया था। उनकी प्रतिद्वन्दतामें भारतेन्दु हरिश्चन्द्रने उस हिन्दी भाषाका नमूना प्रस्तुत किया जिसका व्यवहार हम आज तक करते आरहे हैं। समय ने इस बातको सिद्ध कर दिया है कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्रजी द्वारा निर्दिष्ट हिन्दीका रूप बहुत ही कल्याणमय है।

भारतीय भाषाओंका सम्बन्ध संस्कृत भाषासे अधिक है। बंगाली, महाराष्ट्री, गुजराती और हिन्दी ही नहीं, कनारीज़, तामिल, तैलगू, मलायालम आदि दक्षिणीय भाषायें भी संस्कृत शब्दोंको निस्संकोच अपना रही हैं। इसका अर्थ ही यह है कि भाषासे संस्कृत शब्दोंका परित्याग हमारी राष्ट्रीयतामें बड़ा भारी विधातक होगा। वस्तुतः हम फारसी शब्दोंको जितना ही अधिक अपनाते जावेंगे, हमारी राष्ट्रीयता और भारतीयतामें उतनी बाधा पड़ती जावेगी। इस दृष्टिसे यह अनुमान किया ही जा सकता है कि हिन्दुस्तानी एकेडेमीके समान संस्थाओंके हिन्दुस्तानी भाषा सम्बन्धी विचार हमारे विशाल भारतके निर्माणमें सहायक तो नहीं, कुछ न कुछ बाधक ही होंगे। उर्दूका प्रश्न समस्त भारत का प्रश्न नहीं है, और न सब मुसलमानोंका ही प्रश्न है। यह केवल युक्त प्रांत और पंजाबके कुछ लोगों की भाषाका प्रश्न है। युक्त प्रान्तकी लगभग समस्त

हिन्दू जनता हिन्दीसे परिचित है, पंजाबमें भी हिन्दीका प्रचार बढ़ रहा है। आजकलकी परिस्थिति से यह अनुमान किया जाता है कि आगामी पचास वर्षमें ही पंजाब और युक्त प्रान्त दोनोंमें हिन्दू घरोंमें पूर्णतः हिन्दीका प्रवेश हो जावेगा और उर्दू लिखने पढ़नेवाले हिन्दू कठिनतासे ही मिलेंगे। हिन्दीको इस बातमें आशातीत सफलता मिल रही है। ऐसी अवस्थामें 'हिन्दी-उर्दू' की अस्वाभाविक खिचड़ी बनाकर 'हिन्दुस्तानी' भाषाका निर्माण करना अनावश्यक है। रही बात पंजाब और युक्त प्रान्तके उर्दू बोलने लिखनेवाले मुसलमानोंकी। तो वे अपनी परिस्थिति स्वयं सोच ही लेंगे। या तो वे अन्य प्रान्तोंके समान पंजाब और यू. पी. में भी हिन्दीको अपनाही लेंगे—ऐसा होना कोई असम्भव भी नहीं है, अथवा वे उर्दूका साहित्य और क्षेत्र स्वयं विस्तृत कर लेंगे। वस्तुतः 'हिन्दुस्तानी' भाषा जिसकी आजकल कुछ मनचले लोगों द्वारा रचना की जा रही है, उर्दूवालोंके लिये भी उतनी ही कम लाभदायक होगी जितनी हिन्दीवालोंके लिये।

इस परिस्थितिको ध्यानमें रखते हुए इस बात पर बल देनेकी कोई आवश्यकता नहीं है कि यदि भारतमें किसी राष्ट्रीय वैज्ञानिक शब्दावलीका प्रचार हो सकता है तो वही जिसका सम्बन्ध संस्कृतसे अधिक हो एवं फारसी और अरबीके शब्दोंसे कम। यदि अंजुमन तरक्की उर्दूवाले उर्दू साहित्यका विस्तार करना चाहते हैं तो खुशीसे करें, यदि वे अरबी, फारसी, और तुर्कीके नियमोंसे वैज्ञानिक शब्दोंको बनाते हैं, तो हमें इसमें कोई आपत्ति नहीं है, क्योंकि हमें उन शब्दोंका प्रयोगभी नहीं करना है। उनके प्रति तो हम इतना ही कह सकते हैं कि न तो हम आपकी शब्दावलीमें बाधक होंगे और न आपको ही हमारे वैज्ञानिक शब्दोंसे विरोध होना चाहिये। न आप हमको अपने शब्दोंके उपयोग करनेके लिये कहिये और न हम आपसे यह कहेंगे कि आप हमारे हिन्दी शब्दों को अवश्य ग्रहण ही कीजिये। वस्तुतः हिन्दी और उर्दू में न तो सहयोगकी आवश्यकता ही है और न विरोध की। यदि स्वभावतः कालान्तरमें दोनों एक हो गईं तो अच्छा है अन्यथा हानि ही क्या है। ऐसी परिस्थिति में हमें यही भय है कि हिन्दुस्तानी नाम की एक तीसरी भाषा और न घुस पड़े। कमसे कम जब तक उर्दूवाले फारसी लिपिका उपयोग करते रहेंगे तब तक दोनों भाषाओंकी एकताका स्वप्न देखनाही व्यर्थ है। यदि 'हिन्दुस्तानी एकेडेमी' में इतना साहस है और यदि वह एक भाषा बनानेके लिये उत्सुक है तो उसे यह प्रयत्न करना चाहिये कि फार्सी लिपिका प्रयोगही एक दम नष्ट कर दे। वस्तुतः हिन्दी और उर्दूकी भिन्नता फारसी और संस्कृत शब्दोंके कारण इतनी नहीं है; जितनी कि पृथक् पृथक् और सर्वथा विपरीत लिपियोंके कारण। यदि लिपि एक हो जायं तो स्वभावतः दोनों भाषायें कालान्तरमें एक हो जायंगी। अस्तु, हिन्दी वैज्ञानिक पदावलीके लिये उर्दू, अरबी और फारसीके शब्दोंका प्रश्न सर्वथा प्रसंग रहित है, क्योंकि हम समस्त आर्य्य भाषाओंमें एक वैज्ञानिक पदावलीका ही प्रचार करना चाहते हैं। और यह वैज्ञानिक पदावली संस्कृतकी संज्ञा अव्यय, उपसर्ग और प्रत्ययोंसे जहाँ तक हो सकेगा सहायता लेगी।

ठेठ शब्दोंका प्रयोग

इसमें सन्देह नहीं कि हमें अपने वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्द संस्कृत से ग्रहण करनेमें अधिक सुविधा होगी और ऐसा करना राष्ट्रीय परिस्थितिके अनुकूल भी होगा। अब प्रश्न यह है कि यदि किसी वैज्ञानिक आशयको प्रकट करनेके लिये हम ठेट भाषा का शब्द प्रयोग कर सकते हैं, और यदि वह शब्द अन्य भारतीय आर्य्य भाषाओंमें प्रयुक्त न होता हो तो क्या हमें ऐसे शब्दका उपयोग न करना चाहिये ? उदाहरणतः, यदि dissolve के लिये हमारी ठेठ भाषामें घोलना शब्द प्रयोगमें आता है जिससे हम solution के लिये घोल और इसी

प्रकार घुलनशील या घोलक आदि शब्द बना सकते हैं, तो क्या इसी युक्तिपर कि अन्य भाषाओंमें इसका प्रयोग नहीं होता है, हम इस शब्दको सर्वथा छोड़ दें और इसी प्रकार crystal को रवा न कहकर संस्कृत कोषसे किसी अन्य शब्द की ही तलाश करें? इस पर विचार करनेके पूर्व ठेठ शब्दकी मर्य्यादाका भी विचार करलेना चाहिये। प्रत्येक भाषामें कुछ न कुछ ठेठ शब्द मिलेंगे। बंगाली के बहुतसे ठेठ शब्द हिन्दी ठेठ शब्दोंसे भिन्न होंगे और हिन्दीके मराठी, गुजराती आदिसे। जो वस्तु अथवा जो आशय बहुत ही प्रचलित होता है उसके लिये ही ठेठ शब्द बन जाते हैं। इस प्रकार ये ठेठ शब्द भाषाके व्यक्तित्वको जीवित रखनेमें सहायक होते हैं। ये ठेठ शब्द भाषाके स्वरूपको निर्धारित करते हैं। अतः भारतीय राष्ट्रीयताके परिपोषक होते हुए भी हम हिन्दीको न पूर्णतः बंगाली या अन्य भाषा ही बनाना चाहते हैं और न हमारा यह अनुरोध है कि बंगाली पूर्णतः हिन्दी बन जाय। भाषाको पृथक् स्थायीरूप प्रदान करनेमें ये ठेठ शब्द बहुत ही सहायक होंगे। जैसा कहा जा चुका है कि जो भाव और पदार्थ बहुत प्रचलित होते हैं, उनके लिये ही ठेठ शब्दोंका प्रयोग किया जाता है और अति प्रचलित पदार्थोंके नामोंको Technical term कहना भी नहीं चाहिये। वस्तुतः crystal, soiution, आदि शब्द तो अति सामान्य हैं; इन्हें विशेष वैज्ञानिक technical शब्द माननेकी आवश्यकता ही क्या है। इसी प्रकार sugar, salt, iron, gold आदि सामान्य अति प्रचलित पदार्थ हैं और इनके लिये यदि शक्कर, नमक, लोहा, सोना आदि ठेठ शब्दोंका व्यवहार वैज्ञानिक साहित्यमें हो भी गया तो हानि ही क्या है? इसी प्रकार हम विद्युत् और बिजली, जल और पानी, वायु और हवा दोनों ही शब्दोंका प्रयोग कर सकते हैं। तात्पर्य यह है कि अति प्रचलित आशय को प्रकट करनेके लिये ठेठ शब्दोंके प्रयोग करनेमें कोई हानि नहीं, प्रत्युत लाभ ही है।

हमारे बहुत से ठेठ शब्द भी सार्वदेशिक हो सकते हैं। उदाहरणतः विशेष प्रकारकी कहानियों के लिये हिन्दीमें 'गल्प' शब्दका प्रयोग किया जा रहा है। यह शब्द संस्कृतके कोषका नहीं है, यह बंगालीका एक ठेठ शब्द है पर ऐसा होने पर भी हिन्दी भाषा ने इसे भली प्रकार अपना लिया है। इसी प्रकार अन्य अनेक ठेठ शब्द भी एक भाषासे दूसरी भाषामें प्रविष्ट होजाते हैं। अतः ठेठ शब्दों का सर्वथा बहिष्कार करना भी आवश्यक नहीं है।

धूम्र कला

[लेखक—"वैज्ञानिक"]

प्रातःकालका समय है। मुर्गेने अभी अपनी ध्वनिसे मनुष्योंको निद्रा देवीसे विदा माँगनेको प्रवृत्त किया है, सभी मनुष्य अब उठनेका विचार कर रहे हैं, परन्तु कुछ तो इन्हीं विचारोंकी तरंगोंमें आनन्द उठाते रह जाते हैं और कुछ अपनी देवीसे विदा मांगते मांगते फिर उसके सुख सागरमें तल्लीन हो जाते हैं। रामलाल विज्ञानी और सरलानाथ सगे भाई थे। वह ऐसी ही मनोवृत्तिके मनुष्य थे। नित्य प्रातःकालही उठते थे और उनको उठानेवाला नाद यही मुर्गेकी ध्वनि हुआ करती थी। इस ध्वनिको सुनते ही दोनों भाई जिनकी चारपाइयां निकट ही रहतीं थी, अपने-अपने विस्तार समेटने लगते और फिर लोटा लेकर, कंधे पर अँगोछा डालकर टहलने चल देते थे। टहलते समय ही दोनोंके हृदयोंमें नए नए विचारोंका विकास होता था। यहीं विज्ञानीजी अपने विज्ञानके पाठ सरलानाथको इतनी सरल बातचीतके रूपमें पढ़ाते थे कि विज्ञानका ज्ञान तक न होते हुए भी वह उसका अधिकांश जान गए थे।

नित्यकी भांति आज भी दोनों भाई अपनी प्रातः क्रियाके लिये चल दिये। शहरकी गलियोंसे निकलनेके पश्चात् वह एक धूम्रयानके मार्गके किनारे-

किनारे चल दिये। वह पृथ्वीके धरातलसे कोई दस गज़ ऊंचा था और इसके दोनों ही तट ढलवाँ नीचे के ओर जाते थे। ऊंचे मार्ग पर जाना अत्यन्त ही सुहावना मालूम होता था, वायुके झकोरे कानोंमें बड़ेही वेगसे लगते थे, उसमें शीतलताकी मात्रा कुछ थी तो अधिक परन्तु वह कष्टदाई नहीं प्रतीत होती थी। विशेषकर आजकल तो यहांकी छविका कुछ कहना ही नहीं है। दोनों ही ओर अत्यन्त ही विस्तृत हरे हरे बिछौनोंपर पीले पीले फूलोंका गद्दा लगाए हुए वसंत ऋतु अपनी पूर्ण छटा दिखला रही है। जिधर ही आंख उठ जाती है वसंतका सौन्दर्य्य एवं उसकी मुसकान मनुष्यके हृदयको वेधकर मानों आगे न चलनेका आग्रह कर रही है। इतना सब होते हुए भी विज्ञानीजी चलते चले जा रहे हैं। इन सबको वह देखते अवश्य हैं और इनका सौन्दर्य्य भी मानते हैं परन्तु अपने मनमें न जाने किन किन विचारोंको मनन करते हुए वह वसन्त ऋतुके तीरोंको उनके हृदयमें बिधकर उसकी गतिको रोकने नहीं देते। वह चलतेही चले जाते हैं; परन्तु लो अब तो वह भी स्तम्भित हो गए। सामनेसेही निकलते हुए लाल लाल वस्त्रोंसे आच्छादित सूर्य नारायणने अपने मुखसे अगणित बाण छोड़कर इनकी गतिको रोक ही दिया। सम्भव है, तिमिर विनाशकने इनको 'तिमिर' ही समझ कर इनपर इतना कोप किया हो क्योंकि यह कुछ कुछ काले अवश्य थे। बेचारे हाथ जोड़कर मूर्त्तिवत् हो गए मानो कि वह अपनी धृष्टताकी क्षमा मांग रहे हों। इनके छोटे भाई भी जो अभी तक वसन्ती मायामें फँसे फँसे भी भ्रातृ प्रेमसे खिंचे चले आते थे, अब रुक गए। गोरे वर्ण होनेके कारण अथवा अन्य किसी कारणसे सूर्यनारायणका कोप तो इनपर न हुआ परन्तु अवसर पाकर वह अपनी बसन्ती देवीका चुम्बन करनेको अत्यन्त ही उत्सुक हुए और ढलवां परसे उतरनेके लिए पैर बढ़ाया ही था कि उनकी दृष्टि अकस्मात् दूसरी ओरको उठ गई। इधर एक खेत बिलकुल बंजर पड़ा हुआ था। उसमें न तो कोई मकान था, न झोपड़ी परन्तु फिर भी उसके बीचसे कुछ कुछ धुआं निकल रहा था। यह धुआं बढ़ता ही गया और किञ्चित् समयमेंही कोई एक गज व्यासका धूम्रस्तम्भ आकाश तक पहुँच गया। सरलानाथको यह दृश्य इतना आश्चर्य्यजनक मालूम हुआ कि वह उनकी ताईं प्रतीक्षा करती हुई देवीको तो बिलकुल ही भूल गए। धुआं अब उच्चतम बिन्दु तक पहुँच चुका था और घटने लगा था। उसके घटने पर उसमें कोई मानुषिक सूरत का आभास होने लगा। शनैः शनैः वह सूरत और भी साफ़ होती गई और धुएंके दब जाने पर उसमेंसे एक हृष्ट पुष्ट साधुवेषी मनुष्य निकल कर चल दिया। वह गेरुआ वस्त्र पहिरे हुए था, कन्धे पर एक झोला पड़ा हुआ था, और देखनेमें वह अत्यन्तही सुखी और बहुत कुछ लिखा पढ़ा सा प्रतीत होता था। वह सरपर एक कनटोप लगाए हुए था और उससे सम्बन्धित एक मोटा सा फीता उसकी नाकके सामनेसे जाता था। इसी फीतेमें लगी हुई नाकके सामने एक गद्दी सी थी। दो चार पग चल करही उसने वह कन्टोप उतार लिया और अपना चिमटा फटकारते हुए वह इन्हीं की ओर चल दिया। कोई साधारण मनुष्य होता तो इसे भूत समझकर वहीं गिर पड़ता परन्तु विज्ञानी जीके साथ साथ रहते रहते वैज्ञानिक प्रवृत्ति इनके हृदयमें प्रवेश कर गई थी। वह भूत-बाधोंसे तो न घबड़ाते थे परन्तु धर्म्मकी धारणा होनेके कारण उन्होंने इन्हें कोई महान् पुरुष समझा, अथवा कोई पहुँचा हुआ साधु जो अपनी इच्छा मात्रसे ही जहां चाहे प्रगट हो सकता है और जब चाहे विलुप्त हो सकता है। वह खड़े खड़े यह देखनेकी प्रतीक्षा करते रहे कि देखें वह स्वामीजी आकर उन लोगोंसे क्या प्रश्न करते हैं। रामलालने यह कुछ न देखा। जब सूर्य्य अपनी बाल्यावस्थासे निकल कर कुछ कुछ युवावस्था धारण करने लगा और रामलाल अपने सब पापोंका प्रायश्चित् करा

चुके तो उन्होंने देखा कि उनके सामनेसे एक साधु आ रहा है। उसका चेहरा तो इन्होंने देखा परन्तु हां उसकी चालमें कुछ कुछ चुस्ती व चालाकी और उसकी शरीरकी रचनासे जीवन युद्धमें सफलता प्राप्त करनेकी योग्यता अवश्य दिखलाई दी। सूर्योदय हो चुकने पर नित्यकी भांति दोनों भाई वापिस चल दिए और जैसे ही उन्होंने अपना मुख घरकी ओर किया कि छोटे भाईने धुंएके प्रगट होने की सब कथा और स्वामीजीका हाल आद्योपान्त कह सुनाया।

यह सब सुनकर रामलालको आश्चर्य तो अवश्य मालूम हुआ परन्तु उन्होंने इस आश्चर्यको प्रकट न होने दिया। उन्होंने उसको पचानेकी चेष्टाकी। अपने समस्त विज्ञान भंडारमें खलबली मचादी और मन ही मन इस क्रियाका विधान सोचने लगे। अन्ततोगत्वा एक बात उनकी समझ में आ ही गई। वह सरलानाथसे कहने लगे कि यह तो कोई बड़ी बात नहीं थी। उस साधूको केवल कोई ऐसी विधि मालूम होगी जिससे वह धुएंमें प्रवेश कर सका हो और उसमेंसे बाहर निकल सका हो। उस बंजर खेतमें उसने कोई गर्त बना रखा होगा और उस पर एक ऐसा ढक्कन लगा दिया होगा जो साधारण भूमिसे अधिक मिले होनेके कारण मनुष्योंके चित्तसे परे रहा। वहाँ उसने कुछ धुआँ उपजाया होगा और फिर ढक्कन कुछ कुछ उठा दिया होगा जिससे धुआँ थोड़ा थोड़ा बाहर निकलने लगा होगा। धुआँ अधिक हो जाने पर उसने ढक्कन भली भांति उठाया और धुआँ अपने पूरे वेगसे बाहर निकलने लगा। इसी अवसरमें वह ढकन हटाकर बाहर निकल आया और ढक्कन ज्योंका त्यों लगा दिया। धुएंके पर्देने साधारण मनुष्योंको उसकी यह क्रिया देखने से वंचित रक्खा और जब धुआँ समाप्त हो गया तब उसमेंसे वह निकलता हुआ ही प्रतीत हुआ होगा। बात कुछ कुछ तो सरलानाथके समझमें आ गई परन्तु धुएंमेंसे होकर किस प्रकार कोई मनुष्य निकल सकता है यह वह न समझ सके, पर विज्ञानीजीने धूम्र टोपोंका हाल बतलाया। यह कंटोप ऐसे होते हैं कि उन में अन्यान्य रसायनिक प्रतिक्रियायों से ओषजन उत्पन्न होता रहता है और यही ओषजन पहिनने वालों की नाक के सामने प्रवाहित होता रहता है और नाकके अन्दर प्रवेश कर सकता है। अन्य विषैले वायव्य अथवा धुआं चाहे जितनाही उसके चारों ओर मंडलाते रहें परन्तु उसपर असर नहीं कर सकते। अब तो सरलानाथकी समझमें साधुजीकी बात अधिकांशमें आ गई परन्तु फिर भी स्वामीजीके प्रति उन्हें कुछ कुछ श्रद्धा बनीही रही। उन्होंने अनेक तर्क वितर्क किये परन्तु विज्ञानी जी ने सब बातें उन्हें भली भाँति समझा दीं। समय काफी हो गया था, आठ बजनेके करीब थे, उनका घर भी आ गया था, घर पहुँचतेही स्नान ध्यानमें लग गये और इन बातोंने साधूजीको भुला दिया।

(२)

उस दिन जो स्वामी धुयेंसे प्रगट हुये थे वह स्वामी कपटानन्द थे। यह कोई अकेले व्यक्ति नहीं थे, वास्तवमें इनकी एक भली प्रकार प्रबन्धित समिति थी। इसके सबसे बड़े स्वामी, स्वामी दुर्घटानन्द थे; जिनका आदेश अन्य सदस्य भगवान शंकर जी के नाम से करते थे। समिति के मुख्य मुख्य सदस्य अनेकानेक भाषाओंके ज्ञाता थे और आधुनिक विज्ञानसे पूर्ण परिचय रखते थे, और विशेषकर उसके उपयोगी अंग से। धूम्रकला, बिना तार का तार, गुब्बारोंमें उड़ना इत्यादि अनेक बातें ऐसी हैं जिनसे परिचित तो अनेक मनुष्य होंगे परन्तु इनका पूर्ण उपयोग इन्हीं लोगों से सीखा जा सकता है। बहुधा इनका एक एक मनुष्य ही एक एक स्थान पर रहता था और उनके रहनेका स्थान निर्जन और ऐसा होता था जहाँ मनुष्यका विचार कभी भी न पहुँच सके। पृथ्वीके गर्भमें एक गर्त बनाकर यह लोग रहते थे और उस पर

एक ढकन लगा लेते थे जो बहुधा कुछ इधर उधर के पार्श्व भाग की ही भाँति होता था। इन गर्तोंमें रश्मि कला का प्रबन्ध रहता था जिससे वह अपने जिस सदस्यको जो बात बतलाना चाहें बता सकते थे। इनके प्रगट होने अथवा विलुप्त होने की विधि बिल्कुल वैसी ही थी जैसी कि रामलालने कभी अपने भाई को बतलाई थी। अन्य भी ऐसी ही अनेक बातें थी जिन तक साधारण मनुष्योंके विचार नहीं पहुंच सकते थे और उन्हींके द्वारा यह लोग उनके हृदयोंके सम्राट एवम् उनकी धन सम्पत्तिके स्वामी बने बैठे थे।

उस दिन वहाँसे चलकर स्वामी कपटानन्द एक भंडारेमें जा रहे थे। भंडारा नगर-सेठके यहाँ था। उनके कोई सन्तान न थी और कोई एक वर्ष व्यतीत हुआ कि उन्होंने एक अखंड व्रत धारण किया था जिसमें चालीस दिन तक प्रतिदिन ११ गऊदान करके १०१ साधुओंको मालपुआ खिलाया करते थे। इसी व्रतसे स्वामी कपटानन्द ने प्रसन्न होकर इनके निमित्त शंकर जी से प्रार्थनाकी थी और शंकर जी ने यह कहा था कि "ओह इनके कर्ममें तो सन्तानका नाम भी नहीं है, परन्तु, अच्छा देखो!! यदि ब्रह्मा जी ने संतान दी तो होना संभव है। इसमें कपटानन्द ने फिर यह भी जोड़ दिया था कि—"राजन् अपनी भार्य्याको माघके महीनेमें प्रतिदिन गंगास्नानको भेजा कीजिये और शिवरात्रिके दिन वह अकेली वहाँ रहे, दिन भर व्रत रहे, रात्रि को जागरण करे और फिर दूसरे दिन दान दक्षिणा देकर लौट आवे। इतना करने पर इच्छा पूर्ण होगी और शंकर जी की कृपा हो जावेगी।"

यह सब करने पर नगर सेठके एक पुत्र उत्पन्न हुआ। यह पुत्र आज एक महीनेका हो गया है और आज उसीका भंडारा है। सब साधु लोग बैठे हुये हैं, सारा महल सजा पड़ा है। समस्त जनताको आज उसकी देखभाल कर लेनेका अवसर दिया गया है। सहस्रों मनुष्य आते हैं और देख देखकर चले जाते हैं। देखनेवालोंमें सरलानाथ तथा रामलाल विज्ञानी भी हैं। विज्ञानी जी तो आनेको अधिक उत्सुक नहीं थे परन्तु अपने भाईके कहने पर चले आये थे। यहाँ सरलानाथ ने उन्हीं स्वामी जी को पहिचान लिया। वह एक मंच पर विराजमान थे और समस्त कार्य्य उन्हींके आदेशानुसार हो रहा था मानों आज वही समस्त भूमिके राजा हों। सरलानाथ ने तो चाहा कि इस भंडारे को आद्योपान्त देखें, और देखें कि स्वामी जी क्या करते हैं। परन्तु विज्ञानी जी ने मना किया और चलनेको आग्रह किया।

अन्ततः भंडारा समाप्त हो गया, प्रत्येक साधु एक एक नया अँचला और कमंडल लेकर चला गया। अब केवल स्वामी कपटानन्द एवम् उनके चेलेही रह गये हैं। उन्हींके आदेशानुसार सब कार्य सकुशल समाप्त हो गया और वह भी अब विदा होने की आज्ञा माँगने लगे। राजा तथा रानी दोनों ही स्वामी जी को विदा करने चले, साथ में दो एक दास दासी भी हैं और देशका भावी नन्हा सम्राट भी है। कुछ ही दूर चले होंगे कि स्वामी जी सहसा भौचकसे होकर रुक गये। नगर सेठ भी बहुत घबड़ाये और कहने लगे कि "स्वामी जी कुशल तो है? समस्त कार्य समाप्त हो जाने पर यह आपत्तिकी आशंका कैसी?"

स्वामी—आपत्ति! घोर आपत्ति!! महा घोर आपत्ति!!! सुख तो तुम्हारे नक्षत्रोंमें लेश मात्र भी है ही नहीं। यदि होता तो तुम भंडारे में शंकरजीको क्यों न निमंत्रित करते। वह देखो, शंकरजी कुपित होकर अपना भाग लेने आ रहे हैं। ओफ बिलकुल धुयेंका गोला, धुआँ फैल रहा है, अब चारों ओर धुआँ ही धुआँ हो जावेगा। पृथ्वीमेंसे भी धुआँ निकलेगा। अब तो हम लोग नहीं बच सकते।

नगर सेठ—स्वामीजी आप ही मालिक हो, उबारो, आप ही जगतके स्वामी हो, भगवान शंकर जी के कोपको आप ही धारण कर सकते हो।

बचाओ, बचाओ, स्वामी जी हमारी रक्षा आप ही के हाथ है।

रानी—स्वामीजी यह क्या अन्धकार, अरे अब तो कुछ सूझ नहीं पड़ता। हाय मृत्यु निकट दीखती है। दम घुटने लगा अब तो बोला भी नहीं जाता है। मेरा बच्चा नन्हा बच्चा।

स्वामीजी—शान्त, हो इस प्रकार विलापनेसे कुछ नहीं होता। भगवान शंकर जी इससे प्रसन्न नहीं होते। उन्हींकी प्रार्थना करो, उनका भाग देने को कहो, हाथ जोड़ो। देखो मैं सब प्रबन्ध करता हूँ।

स्वर—हाय, भगवान शंकरजी, स्वामी मेरा बच्चा ऊँह! कृपा, अरे दया भगवान दया।

स्वामीजी—संभलो, सब लोग संभल जाओ। शान्त हो जाओ, धुयें का वेग घट रहा है। लो अब मैंने वायुके रूपमें भी परिवर्त्तन कर दिया है। निश्चिन्त रहो, सब ठीक हो जाओ, केवल उसी जगदीश्वरकी माया, उसीकी आराधना करो, मैं कुछ नहीं हूँ।

वायुमें कुछ संजीवनी अवश्य आ गई थी, धुआँ रहते हुए भी उसमें अब वह दम घोटनेवाला प्रभाव बहुत शिथिल हो गया था। धुआँ स्वयम् अब घट रहा था परन्तु हाँ, जब धुआँ इतना घट गया कि परस्पर देखा भाली कर सकें तो वह कहाँ? जिसके लिए यह सब रचना रची गई थी, वह कहाँ? वह नन्हा सम्राट कहाँ? दास दासी तो सब हैं परन्तु उस बालक का पता नहीं चलता।

समस्त राज परिवारमें अब कोलाहल मच गया। सब लोग रोने पीटने लगे। राज दम्पतिको तो होश ही नहीं, ऐसी विलाप रही हैं मानो पागल हो गई हो। शोक सागरमें डुबकियाँ लगाती हुई वेचारी रानीके मुँहमें शोक जल भर जानेसे आवाज भी नहीं निकलती और बिना आवाज निकाले रहा भी नहीं जाता। सब रो रहे हैं। स्वामीजी के पैरों पड़ रहे हैं।

स्वामीजी—शान्त हो! शान्त हो! मैं सब कुछ प्रबन्ध करूँगा। जो भगवान शंकरजी विधिवत् एक विल्व पत्रसे प्रसन्न हो जाते हैं, वह क्या कुपित दशामें एकादश विल्व पत्रियोंसे भी प्रसन्न नहीं होंगे। १०१ विल्वपत्र चढ़ाऊँगा, विल्वफल चढ़ाऊँगा, धतूफल चढ़ाऊँगा, धतूपुष्प चढ़ाऊँगा, शंकर जी को प्रसन्न ही करूँगा। शान्त हो, शान्त हो मुझसे तुम्हारा दुःख देखा नहीं जाता। जब तक मैं तुम्हारा दुःख न दूर कर लूँगा, भोजन ही न करूँगा। इस कोलाहलमें मैं कुछ निश्चय नहीं कर सकता, शान्त हो, मुझे विचार स्थिर कर लेने दो, चलो, आओ मैं अभी शंकरजीके पास जाऊँगा। तुम सब लोग घर चलो।

दुःखके समयमें जिसे जो कुछ सहारा मिल जाता है वह उससे हाथ धो बैठना नहीं चाहता। राजा एवम् राजदम्पतिजी घर कैसे जा सकते थे। जब तक वह अपने नन्हें बालक का मुख चुम्बन न कर लें। उन्हें कल कैसे पड़ सकती थी, वह लोग स्वामीजीके पीछे पीछे चले ही गये। उनका एक ध्येय बस स्वामीजीके पीछे उनके साथ साथ चला जाना ही मालूम पड़ता था। जहाँ स्वामीजी रहेंगे वहाँ ही वह भी रहेंगे। जहां स्वामीजी नष्ट हो जायेंगे वहां वह भी नष्ट हो जायेंगे। थोड़ी दूर चलने पर स्वामीजी उस पटरीको पार कर गये जिस पर विज्ञानीजी टहलने आया करते थे। उनके दर्शनोंसे बधे हुये अन्यजन भी पटरी पर शीघ्र ही चढ़ आये। स्वामीजी फिर दृष्टि गत हो गये परन्तु अब वह एक बंजर खेत में थे। यह लोग भी उधर ही बढ़े परन्तु सामने जिधर स्वामी जी थे उधर धुआँ ही धुआँ दिखलाई देने लगा। धुएँसे भयभीत लोग वहीं स्थित रह गये। स्वामीजी का पता नहीं धीरे धीरे उस धुएँ का भी पता नहीं रहा।

सम्भवतः प्रायः ३ घड़ीके पश्चात् उसी स्थान पर धुआँ निकलना आरम्भ हुआ और धुयेंके बढ़ जाने पर उसीमें से कन्टोप लगाये हुये स्वामीजी

प्रगट हुये। कन्टोप उतार कर अपने झोलेमें रख लिया और कहने लगे कि आहा कैसा सुन्दर शिखर, कैसा दिव्य सुख कैसा रम्य स्थान, वह शिवजीका दिग्दर्शन, हृदयने चाहा कि अभी न चलूँ परन्तु कर्त्तव्य ने कहा चलो। हृदयने आग्रह किया परन्तु कर्त्तव्य ने नहीं माना। हृदय और कर्त्तव्यकी इन्हीं झंझटोंमें इतनी देर। ओह राजन् आप यहीं हैं। हमने तो आपसे घर जानेको कहा था। खैर अब घर जाओ और आनन्द मनाओ कोई भय की बात नहीं है। मैं अभी कैलाश होकर आ रहा हूँ। शिव जी आपसे प्रसन्न हैं। केवल अपना भाग चाहते हैं। उनका भाग १०१ गायें हैं परन्तु आप इतनी गायें और उनके भोजनार्थ पृथ्वीका भाग देकर भगवान् शंकर जी की इच्छा पूरी कीजिये, कल ही आपको आपके बालकसे भेंट होगी। उसी बृहद् विल्व-वृक्षके नीचे। बस अब कुछ नहीं! आप अपने भवन जाकर आनन्द मनाइये, भोजन कीजिये।

खैर लोगोंको ढाढ़स बँधा। यदि भली भाँति आनन्दित न हुये तो शोक घट अवश्य गया। सब लोग महलको पधारे और साथ ही स्वामी जी को भी लेते गये। इनको भोजन करा चुकने पर और सबों ने भी भोजन नाम मात्रका किया। वास्तवमें उन्हें भोजन करनेकी शक्ति कहाँ, उन सबका हृदय तो शिशुमें धरा हुआ है। किसी न किसी प्रकार वह दिन समाप्त हुआ। पल पलके कटनेके पश्चात् घड़ी घड़ी होकर रात्रि भी व्यतीत हो गई। दूसरे दिनके अब आठ बजनेके समीप आ गये। चलनेकी तैयारी तो बराबर हो ही रही थी। उत्तमोत्तम १०१ गायें लाई गईं और पूजन सामग्री लेकर सब लोग उसी बृहद् विल्ववृक्षकी ओर चल दिये आगे आगे। स्वामी जी उनके पीछे राजा तथा राजदम्पति। वृक्षके निकट पहुँचते ही इनका हृदय धड़कने लगा। आनन्दकी लहरें शीघ्र-शीघ्र सीनेके अन्दर हो इतने वेगसे थपेड़े मारती थीं कि हृदय फटा जाता सा मालूम होता था। उसी वृक्षके जड़के नीचे किसी ज्ञात स्थान से, मन्दगतिसे, चक्राकारमें प्रकाश आ रहा है—इसी चक्रके अन्दर स्वर्ण जटित गुलगुले गद्दों पर लेटा हुआ बालक अपने वाम पैरका अंगूठा पान कर रहा था। इसको पाने पर सबका हृदय पुष्प खिल उठा। सब बड़े प्रसन्न हो गये। पूजाकी जानेके पश्चात् सब गउएँ वहाँ चरने छोड़ दी गईं और उपस्थित लोगोंका भोज भी वहीं आरम्भ हुआ। भोज अभी समाप्त भी न हुआ था कि कोई अज्ञात मनुष्य गउओंमें घूमता देखा गया। स्वामी जी ने इन्हींको भगवान शंकर बतलाया और कहा कि आपसे प्रसन्न होकर भगवान शंकर जी आपको दर्शन देने एवम् अपनी गउओंका निरीक्षण करने तथा उनको सँभालने आये हैं।

बातें न जाने किस तरह फैल जाया करती हैं। सम्भवतः, जिस प्रकार छूत रोगोंके रोगाणु होते हैं और वही वायुके साथ साथ उड़कर बीमारीको फैलाते हैं उसी भाँति इन बातोंके भी अणु होते हैं और उन्हींके वायुमें उड़नेसे सब बातें दूर दूर स्थानों में व्याप्त हो जाती हैं। यद्यपि कपटानन्द तथा राज्य सम्बन्धी बातोंका कुछ विज्ञापन नहीं किया गया था तथापि वह प्रत्येक व्यक्तिको ज्ञात हो गई और दूसरे ही दिवस जब कि रामलाल विज्ञानी तथा उनके भ्राता सरलानाथ टहलने गये तो उनके विचारों का विषय वही था। सरलानाथने आरम्भ किया कि कल तो स्वामी कपटानन्द जी ने राज परिवार में वह वह चमत्कार दिखलाये कि उनमें मेरा ज्ञान क्या आपका भी विज्ञान असफल प्रतीत होता है। बहुत बड़ी बड़ी बातें सुनी जाती हैं। आपने भी सुनी होंगी। मुझे उस दिन आपने वहां रहने नहीं दिया, नहीं तो सब देखता कि वह कैसे कैसे और क्या करता है। मेरा विचार है कि उसमें अवश्य ही कोई दैवी शक्ति एवम् आत्मबल का विकास है।

विज्ञानी—हाँ सुना तो है और विचार भी किया है, मुझे तो कोई ऐसा आत्मिक चमत्कार मालूम नहीं होता। यदि साहस करें तो हम लोग

भी कर सकते हैं। मेरा अभिप्राय स्वामीजी पर लाञ्छन लगानेका नहीं है, सम्भव है कि वह कोई सिद्ध पुरुष हों। मैंने तो केवल विज्ञानकी दृष्टिसे उन सब क्रियाओंकी समालोचनाकी थी और तब मेरी समझ में उनमें कोई आत्मिक बलका चमत्कार नहीं आया।

सरलानाथ—क्यों, अच्छा पुरानी ही बात सही, अपने राजासाहेबका विवाह हुए तो १५ वर्ष हो गए। कोई सन्तान थी ही नहीं, गत वर्ष पूजासे सन्तान प्राप्ति कैसे हो सकती है।

विज्ञानी—अरे वह बात जाने दो, एक तो स्वामी जीने यही कहा कि "सम्भव है कि सन्तानोत्पत्ति हो।" होती होती न होती। यह तो प्रायः देवयोग से ही हो गया। सम्भवतः बिना पूजाके भी हो जाता। फिर बात यह भी है कि राजाओं के एक स्त्री तो होती ही नहीं। अनेकानेक स्त्रियाँ एवम् वेश्याओंके साथ भोग विलास होता है और इस विलासमें नियम इत्यादिका पालन कहांसे हो। स्त्रियां भी अत्यन्त ही स्वेच्छाचारी होती हैं। चालीस दिन तक दोनों ही स्त्री पुरुष व्रतके कारणसे ब्रह्मचारी रहे और इतने दिनोंके ब्रह्मचर्य्य से सब विकार शान्त हो गए। विकार शान्त होने पर जब साक्षात् हुआ होगा तो दोनोंकी जननेन्द्रिओं में नव शक्ति आ जाने के कारण गर्भ स्थित हुआ होगा। जब गर्भ स्थित हो गया तो श्रीमती भी संयम रही होंगी क्योंकि उनकी भी तो उत्कण्ठा पुत्रोत्पादन की थी और गर्भपात न हुआ। इसके अतिरिक्त बात यह भी तो है कि रानी साहब अनेक दिनों तक गंगास्नानको भी तो अकेले गई थी और वहां कई रात्रियोंमें रही भी थीं।

सरलानाथ—अच्छा भगवान शङ्करका प्रगट होना।

विज्ञानी—हां वह भी कुछ कठिन नहीं है। अनेक पुरुष गुब्बारेसे उड़ते हैं। कपटानन्दका कोई भी साथी जो इस कार्य्यमें दक्ष होगा, गुब्बारे से उड़ता हुआ आया होगा। निकट आने पर उसने कुछ धूम्रोत्पादन कर दिया जिसमें धुएंसे आच्छादित होकर वह किसीको दिखलाई न दे। इधर कपटानन्दने भी धूम्रोत्पादन किया जिससे वह लोग भी धुएँमें फँस गए और किसीको कुछ सुध न रही। तभी कपटानन्दने उस बालकको उठा कर उस वायुगामी मनुष्यको दे दिया।

सरलानाथ—धूम्रोत्पादन क्या जभी चाहो तभी हो सकता है?

विज्ञानी—हां इसमें क्या। गुब्बारेमें तो कोई बात ही नहीं। अनेक यन्त्रोंमें एक धूम्र यन्त्र भी लगा दिया, जो जब चाहो धुआं ही धुआं पैदा कर दे। रही कपटानन्दकी सो उसके पास और उसके झोलेमें बिल्वफलोंकी कुछ अधिकता तो लोग बतलाया ही करते हैं। सम्भव है इन्हीं में वह धुआं भरा रखते हों। इन फलोंमें जहाँ पर डन्ठल लगा होता है, छिद्र बड़ी ही सरलतासे हो सकता है। छिद्र बड़ा ही सुन्दर होता है और इसमें एक रबड़की डाट लगा लेनेसे एक सुन्दर वायु बद्ध कुप्पी बन जाती है और उनमें धुआं बड़े दबावके अन्दर भरा जा सकता है। जब चाहा आँचलेके नीचे ही नीचे एक फल पृथ्वी पर गिरा दिया। सरलतासे फूट भी जाता है और किसी का चित्त भी उधर को आकर्षित नहीं होता।

सरल०—अरे विज्ञानका उन्हें इतना ज्ञान कहां। अच्छा फिर बालकका नियत समय पर नियत स्थान पर मिलना। स्वामी जी तो सबके साथ ही रहे थे।

विज्ञानी—हूँ! हूँ!! मैं समझता हूँ कि जहाँ वह लोग रहते हैं। वहाँ उन्होंने एक रश्मि यन्त्र लगा रक्खा है। उसीके द्वारा वह एक दूसरेको समाचार देते रहते हैं। कपटानन्दने उसी व्यक्ति को जो बालक ले गया था यह सूचित कर दिया होगा कि वह अमुक वृक्षके नीचे अमुक समय पर मिले। इन लोगों को रुपएकी कमी तो होती ही नहीं, वह व्यक्ति जितने सुन्दर गद्दे बाज़ारमें प्राप्त कर सका सो लाया, नियत समय पर पहुँच कर

बैठ गया जब वह लोग आते प्रतीत हुए तो बच्चे को गद्दी पर लिटा कर स्वयम् वृक्ष पर चढ़ गया। ऐसे ही लेटे हुए बच्चेको सबने देखा। घने वृक्ष पर बैठे हुए उस व्यक्तिकी ओर किसीकी भी दृष्टि न गई। सब लोग बड़े आनन्दमें मग्न थे ही। जब वह सब भोजमें लग गए। तभी दूसरी ओर वह व्यक्ति गायोंके मध्यमें कूद पड़ा और वहींसे सबको भगवान् शङ्करके रूपमें दर्शन दिए।

खाद्य पदार्थ में मिश्रित वस्तुयें तथा

उनकी जांच

[ले०—श्री एल० एस० भाटिया, एम. एस-सी.]

भोजन प्राणीमात्रकी दिनचर्य्यामें एक आवश्यक कार्य्य है चाहे कोई थोड़ा खाये या बहुत खाये, रूखा खाये या अच्छा खाये, परन्तु खाना अवश्य पड़ता है। खाद्य पदार्थोंकी शुद्धता पर अनेक बातें निर्भर हैं। पहिले तो यह कि भोजन रुचिकर मालूम होता है, दूसरे यह कि जिस पदार्थसे जो फायदा होना चाहिये सो होता है और यदि कोई खाद्य पदार्थ शुद्ध नहीं हुआ तो पहले तो अच्छा ही नहीं लगेगा और जो किसी प्रकार खाया गया तो ऐसी डकारें आवेंगी कि जी मिचलाता है।

खाद्य पदार्थ कई प्रकारसे अशुद्ध या खराब हो सकते हैं:—(१) कई दिन रखनेसे कुछ चीज़ें ख़राब हो जाती हैं, (२) पदार्थोंमें कुछ ऐसी वस्तुयें मिला देते हैं जिनका आसानीसे पता नहीं चलता है और उनके उसमें रहनेसे उस पदार्थके गुण तो चले ही जाते हैं बल्कि इसके अतिरिक्त वह चीज़ें स्वयं शरीरको हानि पहुंचाती हैं। इस हेतु इस लेखमें मैं बतलानेका प्रयत्न करूंगा कि खाद्य पदार्थोंमें किन किन वस्तुओंका मिश्रण रहता है और सज्जन उनको किस प्रकार जान सकते हैं कि अमुक पदार्थमें वह वस्तुयें मिली हैं या नहीं।

गव्योत्पादक पदार्थ

(१) दुग्ध तथा मक्खन

दूधमें पानी मिलाते हैं या उसका मक्खन निकाल लेते हैं या कुछ चीज़ें बाहरसे मिला देते हैं दूधको ज़्यादा दिनों तक ठीक रखनेके लिये उसमें पिपीलमद्यानार्द्र[1], सुहागा या विटपिकाम्ल[2] बहुत थोड़ी मात्रामें मिला देते हैं, कभी कभी दूधमें मिले हुये पानीको छिपानेके लिये और कभी उसको रंग देनेके हेतु उसमें ऐनेटो[3], केरेमल[4] या कोलतारसे तैयार किये हुये रंग मिलाते हैं, जिलेटीन[5] व नशास्ता[6] भी इस्तेमाल करते हैं, गो कि इसका उपयोग बहुत कम किया जाता है।

जैसा कि मैं ऊपर लिख चुका हूँ कि उपर्युक्त सब वस्तुयें एक साथ दूधमें नहीं मिलाई जाती हैं। इस कारण जब यह शक हो कि दूध अशुद्ध है या उसमें कुछ मिला हुआ है तो नीचे दी हुई विधियोंसे आप मालूम कर सकते हैं कि उसमें क्या मिला है। नीचे एक एक चीजोंके लिये अलग अलग बताया गया है कि उनकी जांच कैसेकी जाती है।

---

(१) पिपीलमद्यानार्द्र या फोरमेल डीहाइड—यह एक तरल पदार्थ होता है तथा इसकी महक बड़ी तेज होती है। उसकी वजह से दूध में कीटाणुओं का प्रवेश नहीं होता और जो पहुँच जाते हैं वे मर जाते हैं।

(२) सेलीसिलिक तेजाब—इतना लिखना पर्य्याप्त होगा कि उसका गुण भी वही है।

(३) एनेटो—एक रंगीन पदार्थ होता है।

(४) केरेमल—जली हुई चीनी, इसके द्वारा रंग भूरा बना देते हैं।

(५) जिलेटीन—यह पदार्थ हड्डियोंसे निकलता है।

(६) नशास्ता—पिसे हुये चावलोंके समान होता है, परन्तु पानीमें घुल जाता है।

'एनेटो'

थोड़ा दूध लेकर उसमें सैन्धक अर्धकर्बनेत मिलाइये ताकि दूध क्षारिक हो जाय उसके उपरान्त उसमें एक सोख्तेका टुकड़ा छोड़ दीजिये और १० या १२ घण्टेके बाद देखने पर जाना जा सकता है कि उपर्युक्त वस्तु दूधमें मिली है या नहीं क्योंकि यदि वह वस्तु मिली है तो सोख़्ता लाल या पीला हो जायगा।

केरेमल (जली हुई चीनी)

थोड़ा सा दूध लेकर उसमें बहुत थोड़ी मात्रामें सिरकेका तेज़ाब मिलाइये और फिर उसको उबालना शुरू कीजिये। दूध फट जायगा और फिर उस फटे हुए दूधको छानिये और पानीको अलग कर दीजिये। अब उस वस्तुको ईथर (ज्वलक) में रखिये। १० या १२ घण्टे बाद आपको यह मालूम होगा कि यदि उसमें ऐनेटो मिला है तो वह सफेद रहेगी और यदि जली हुई चीनी द्वारा रंग दिया गया है तो वह भूरे रंगकी होगी।

कोलतार रंग

थोड़ासा दूध लेकर उसमें नमकका तेज़ाब या उदहरिकाम्ल मिलाइये। दूध फट जायगा। यदि उपर्युक्त रंग मिला होगा तो फटे हुए भागका रंग गुलाबी होगा क्योंकि शुद्ध दूधके फटे हुए भागका रंग या तो सफेद या कुछ पीलापन लिये होता है।

नशास्ता

दूधको गरम करो और उसको ठण्डा होने दो। उसके उपरान्त टिंकचर आयोडीन या नैलिन् घोलकी एक बूंद डालने से नीला रंग पैदा हो जाता है।

जिलेटीन

थोड़ासा पारद शोरेके तेज़ाब (नोषिकाम्ल) में मिलाओ और उसका चौतीसगुना पानी मिलादो और दूध और इस वस्तुको बराबर मात्रामें मिलाओ व दोनोंको मिलानेके बाद खूब हिलाओ और फिर रखदो। जब स्थिरहो जाये तो छानलो। यदि जिलेटीन मौजूद है तो छाने हुये पानीमें कुछ सफेदी होगी और यदि वह स्वच्छ हो तो उसमें कुछ नहीं मिला है।

पिपीलमद्यानार्द्र या 'फोरमेल्डीहाइड'

जिस दूध में यह शकहो कि उपर्युक्त वस्तु मिली हुई है उस दूधको एक कांचके छोटेसे वर्तनमें रखिये व एक किनारेसे गंधकका तेज़ाब डालिये ताकि वह नीचे बैठ जाय। यदि उपर्युक्त पदार्थ मौजूद है तो दोनोंके संगम पर बैंजनी रंगकी लकीर पड़ जायगी।

सुहागिक तेज़ाब या टंकिकाम्ल

थोड़ासा दूध लेकर जला दो और राखमें दो चार बूंद नमक के तेज़ाबको डालो और फिर पानी में घोलदो और फिर उस घोल में ट्यूमरिक कागज़ को डुबोओ। यदि उपर्युक्त पदार्थ मौजूद है तो वह कागज़ सुखाने पर लाल हो जायगा।

विटपिकाम्ल (सेलीसिलिक तेज़ाब)

यह बहुत कम प्रयोग किया जाता है। जो जांच जिलेटीनके बारेमेंकी गई है, वही उसमें भी लागू होती है, सिर्फ फर्क इतनाही है कि आखीरमें ज्वलक द्वारा की गई क्रियाके उपरान्त उस छने हुए तरल पदार्थको लेकर यदि लोह हरिद मिलावे तो बेजनी रंग होजायगा।

मक्खन

इसमें अधिकतर रंग मिलाये जाते हैं जैसे ऐनेटो, ज़ाफ़रान, टरमरिक अर्थात् हलदीके पीले रंग, मेरी-गोल्ड (यह एक फूल होता है। यह छोटा सा होता है लेकिन इसकी पत्तियें सूरजमुखीकी तरह होती हैं, इसका रंग पीला होता है और इससे जो रंग तय्यार करते हैं उसेभी मेरी गोल्ड कहते हैं। वह पीला होता है) कोलतार से तैय्यार किये हुये रंग। एक खास तरीकेसे पुराने या खराब मक्खनको बिलकुल नया बना देते हैं और वह बिलकुल ऐसा मालूम होता है कि ताज़ा मक्खन है, बाहरी चरबी

जैसे बिनोलों (रुईमें जो बीज पाये जाते हैं) का तेल, सीसमका तेल या मारगेरीन तैलको भी मक्खनमें मिला देते हैं या उसको भी मक्खनके रूपमें बेच देते हैं।

नीचे दी हुई रीति द्वारा आप मालूम कर सकते हैं कि मक्खन इत्यादि शुद्ध है या नहीं और जिसमें शक हो कि मक्खनमें कुछ मिला है उसके लिये नीचे लिखी हुई जाँचकर सकते हैं।

(१) रंगोंकी जांच

कर्बनद्विगन्धिद व मद्यको मिलाकर खूब हिलाओ और फिर इसको थोड़े मक्खनमें मिलाओ और थोड़ी देर तक बैठने दो। कर्बन द्विगन्धिद तो नीचे बैठ जायगा और मक्खनकी जितनी ही चरबी होगी उसमें घुल जायगी, व मद्य ऊपर रहेगा और मद्य सब कोलतार रंगोंको घोल लेगा। मैं चूंकि इस जगह यह लिख चुका हूँ रंग बहुत थोड़ी मात्रामें मिलाये जाते हैं इस वास्ते ज़रा ज्यादा मक्खन इस्तेमाल करनेकी ज़रूरत है।

एनेटो

इसमें जो ऐनेटो रंग मिला रहता है उसकी जाँच दूसरे प्रकारसे की जाती है। जैसा ऊपर लिखा जा चुका है कि चरबी घुलकर नीचे बैठ जायगी व रंग सब मद्यमें घुलकर ऊपर आ जाते हैं। इस वास्ते उस मद्यका थोड़ासा भाग लेकर सुखा डालिये और फिर उसमें गंधकका तेज़ाब डालिये। यदि ऐनेटो उसमें मौजूद होगा तो आसमानी रंग पैदा हो जायगा। यह बात ध्यानमें रखनी चाहिये कि यदि गुलाबी रंग पाया जाय तो यह समझना चाहिये कि उसमें कोलतार रंग मौजूद है।

कोलतार रंग

उपर्युक्त जाँच ज्यादातर ऐनेटो नामके रंगके लिये ही लाभदायक होती है। कोलतार रंगके लिये नीचे लिखी हुई जांच अधिक उपयुक्त होगी:—

उपर्युक्त मद्यका थोड़ा सा भाग लेकर इसमें सफेद रेशम या ऊनी डोरे यदि उबाले जावें तो रंग जाँयगे लेकिन उबालनेके पहिले उसमें थोड़ा सा नमकका तेज़ाब मिला लेना चाहिये।

ज़ाफ़रान (केसर)

जब मक्खन में केसर मिली होगी तो शोरेके तेज़ाबकी दो बूंद उपर्युक्त मद्यके थोड़ेसे भागमें डालनेसे एक हरा रंग हो जाता है और यदि शोरेका तेज़ाब न मिले तो नमकका तेज़ाब भी काम दे सकता है लेकिन इस हालतमें लाल रंग होगा।

ट्यूमरिक

यदि ट्यूमरिक रंग मिला हुआ है तो उसीमद्य के एक भाग में अमोनिया डालनेसे भूरा रंग हो जाता है।

मेरीगोल्ड

यदि चांदीका शोरा (रजतनोषेत) उसमें डालने से उसका रंग काला पड़ जावे तो उसमें मेरीगोलड की मौजूदगी साबित हो गई।

यदि यह जानना चाहते हैं कि मक्खनका अमुक नमूना बिलकुल ताज़ा है या पुराना है और कुछ देर के लिये सिर्फ ताज़ा मालूम होता है तो वह मक्खन जिसमें शक हो थोड़ासा लेकर किसी कटोरी में गरम कीजिये। यदि ताज़ा मक्खन नहीं है तो झाग नहीं उठेंगे। यह बात अच्छी तरह जानी जा सकती है यदि थोड़ा सा ताज़ा मक्खनभी लेकर गरम किया जावे। यदि नया व पुराना मक्खन मिला रहेगा तो उपर्युक्त जांच सफल न होगी इसलिये निम्नलिखित जांच करनी चाहिये।

कुछ मक्खन लेकर गरम कीजिये यह ख्याल रखिये कि मक्खन उबलने न पावे, सिर्फ पिघल जाये। यदि मक्खन ताज़ा है तो पिघली हुई वस्तु बिलकुल साफ रहेगी। यदि पुराना मक्खन है तो वह कुछ सफेदी लिये रहेगी। गरम करनेके बाद उसको ठंडा होनेदो। जब मैल बैठ जाय तो ऊपरी हिस्सा थिरा कर अलग कर लो और उसके बाद उसको गीले सोखते द्वारा छानो। जो पानीकी दो चार बूंद निक-

लेंगी उन्हें एक कांचके बर्तन में लेकर उसमें सिरके का तेज़ाब मिलाओ और फिर उसे उबालो—यदि ताज़ा मक्खन है तो सिर्फ ज़रासी सफेदी आजायगी और यदि पुराना मक्खन है तो गाढ़ी २ सफेदसी वस्तु पैदा हो जायगी।

बिनौले का तैल

यदि यह वस्तु मिली हो तो निम्नलिखित जांच करनी चाहिये।

ज़रासा गंधक कर्बन द्वि गन्धिद में घोलो। फिर उसमें केलील मद्य मिलाओ। फिर इसको थोड़ासा लेकर पिघले हुये मक्खनके संग मिलाओ और फिर नमकके पानी में उबालो (नमकके पानी से यह मतलब है कि तापक्रम १००° से ऊपर होना चाहिये)। अब अगर बिनौलेका तेल होगा तो गहरालाल या गुलाबी रंग आ जायगा। यदि न आवे तो वह नहीं मिला हुआ है।

मारगेरीन तैल

पानी रहित सिरकेका तेज़ाब लेकर उसमें थोड़ा सा ज्वलक मिलाओ और थोड़ा मद्य भी मिला दो और फिर इस मिश्रणको थोड़ासा लेकर उसमें पिघला हुआ मक्खन मिलाओ और खूब हिलाओ। फिर इसको ठंडा करो यदि अच्छा मक्खन है तो वह बिलकुल साफ रहेगा और मारगेरीनका तेल रहनेसे फौरन सफेदी आ जायगी और थोड़ी देर में सफेद तलछट बैठ जायगी।

बिन्दु-पथ और इसका समीकरण

[ले०—एक गणितज्ञ]

३७. जब कोई बिन्दु किसी ज्ञात नियमके अनुसार किसी मार्गका अनुसरण करता है तो इस मार्गको बिन्दुपथ कहते हैं।

उदाहरणतः, यदि म कोई स्थिर बिन्दु हो और कोई दूसरा बिन्दु ब इस प्रकार घूम रहा हो कि उसकी दूरी म से सदैव एक ही रहे और इस दूरी की माप च हो तो निस्सन्देह यह बिन्दु सदा एक वृत्तकी परिधि पर रहेगा जिसका केन्द्र म है और अर्द्धव्यास च के बराबर है। इस वृत्तको ब विन्दुका उस समय बिन्दु पथ कहेंगे जब वह इस नियमके अनुसार घूम रहा हो कि इसकी दूरी स्थिर बिन्दु से च के बरावर ही रहे।

इसी प्रकार मान लो कि क और ख कोई दो स्थिर बिन्दु हैं, कोई तीसरा बिन्दु ब इस प्रकार घूम रहा है कि उसकी दूरी इन दोनों स्थिर बिन्दुओं से बराबर ही रहे तो, वह उस मार्गका अनुसरण करेगा जो क और ख के मध्यमें क ख रेखाके लम्ब रूप है। क और ख को संयुक्त करके क ख को दो समान विभागोंमें ग बिन्दु द्वारा विभाजित करो। ग विन्दुसे क ख के ऊपर और नीचे दोनों ओर एक लम्ब खींच दो। यह लम्ब ब बिन्दु का बिन्दु पथ है जो उपर्युक्त नियमका अनुसरण कर रहा है।

कल्पना करो कि क और ख दो स्थिर बिन्दु हैं और एक तीसरा बिन्दु ब इस प्रकार घूम रहा है कि कोण क ब ख सदा समकोण रहे। क ख को व्यास मान कर एक अर्द्धवृत्त खींचो। इस वृत्त पर कोई भी बिन्दु ब ले लो। उसे क और ख से संयुक्त कर दो। कोण क ब ख सदा एक समकोण होगा, ब बिन्दु उस अर्द्धवृत्त पर चाहें कहीं पर भी क्यों न हो। अतः इस अर्द्धवृत्तको ब बिन्दुका बिन्दुपथ कहेंगे जो उपर्युक्त नियमके अनुसार घूम रहा है।

बिन्दु पथके सहस्रों उदाहरण हैं। एक यहां और दिया जाता है। क ख और ग घ एक दूसरेको

काटती हुई दो स्थिर सरल रेखायें हैं। ब इस प्रकार घूम रहा है कि उसकी लम्ब रूप दूरी उन दोनों रेखाओंसे सदा बराबर रहे। मान लो कि दोनों रेखायें आपसमें म पर कट रही हैं। ∠कमग और ∠कमघ को समविभाजित करती हुई दो रेखायें म के चारों ओर खींच दो। इन दोनों रेखाओं के किसी बिन्दु से क ख और ग घ पर लम्ब खींचो। ये दोनों लम्ब आपस में बराबर होंगे। अतः इन दोनों कोणों को समविभाजित करने वाली रेखायें व बिन्दु का बिन्दु-पथ हैं।

३८—दो अज्ञात मात्रा य और र का कोई एक समीकरण

$$य + र = २$$

य और र का मान निश्चित नहीं कर सकता है। इस समीकरण के असंख्य हल हो सकते हैं। कुछ ये हैं—

$\left.\begin{matrix} य=० \\ र=२ \end{matrix}\right\}$ $\left.\begin{matrix} य=१ \\ र=१ \end{matrix}\right\}$ $\left.\begin{matrix} य=२ \\ र=० \end{matrix}\right\}$ $\left.\begin{matrix} य=-१ \\ र=३ \end{matrix}\right\}$ $\left.\begin{matrix} य=५ \\ र=-३ \end{matrix}\right\}$

इत्यादि

कागज़ पर इन युग्मांकों के अनुसार बिन्दु स्थापित करो। यया और ररा अक्ष खींचो। मूल बिन्दु म से २ इकाई दूरी पर एक $ब_१$ बिन्दु मर पर स्थिर करो। $ब_१$ के युग्मांक (०,२) हैं। इसी प्रकार म य पर १ इकाई दूरी नाप कर वहां से र के समानान्तर १ इकाई दूरी पर $ब_२$ बिन्दु स्थिर करो। इसके युग्मांक (१, १) हैं।
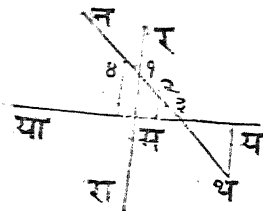
चित्र १४

इसी प्रकार (२,०), (−१,३), और (५, −३) बिन्दुओं को स्थापित करो। ये बिन्दु चित्रमें क्रमानुसार ३, ४, और थ हैं।

इन ५ बिन्दुओं को संयुक्त करती हुई एक सरल रेखा तथ खींची जा सकती है। इस रेखाका प्रत्येक बिन्दु उपर्युक्त समीकरणके नियमकी पूर्ति करेगा। य और र युग्मांकोंका बीज-योग सदा २ होगा। अतः कहा जा सकता है कि इस सरल रेखा तथ का समीकरण य + र = २ है।

३९. निम्न समीकरणकी विवेचना करो—

$$य^२ + र^२ = ९$$

इस समीकरणमें दो अज्ञात हैं, य और र। अतः इसके भी अनन्त हल हो सकते हैं जैसे—

$\left.\begin{matrix} य=० \\ र=३ \end{matrix}\right\}$ $\left.\begin{matrix} य=\sqrt{५} \\ र=२ \end{matrix}\right\}$ $\left.\begin{matrix} य=२\sqrt{२} \\ र=१ \end{matrix}\right\}$ $\left.\begin{matrix} य=+\sqrt{७} \\ र=\sqrt{२} \end{matrix}\right\}$

$\left.\begin{matrix} य=३ \\ र=० \end{matrix}\right\}$ $\left.\begin{matrix} य=२ \\ र=\sqrt{५} \end{matrix}\right\}$ $\left.\begin{matrix} य=१ \\ र=२\sqrt{२} \end{matrix}\right\}$ $\left.\begin{matrix} य=-\sqrt{७} \\ र=-\sqrt{२} \end{matrix}\right\}$

$\left.\begin{matrix} य=० \\ र=-३ \end{matrix}\right\}$ $\left.\begin{matrix} य=-२ \\ र=\sqrt{५} \end{matrix}\right\}$ $\left.\begin{matrix} य=-१ \\ र=-२\sqrt{२} \end{matrix}\right\}$

$\left.\begin{matrix} य=-\sqrt{२} \\ र=\sqrt{७} \end{matrix}\right\}$

$\left.\begin{matrix} य=-३ \\ र=० \end{matrix}\right\}$ $\left.\begin{matrix} य=-\sqrt{५} \\ र=-२ \end{matrix}\right\}$ $\left.\begin{matrix} य=-२\sqrt{२} \\ र=१ \end{matrix}\right\}$ और

$\left.\begin{matrix} य=-\sqrt{२} \\ र=-\sqrt{७} \end{matrix}\right\}$ इत्यादि

चित्र १५।

इन युग्मांकोंको खींचनेसे पता चलेगा कि सब बिन्दु एक वृत्त के ऊपर हैं जिसका अर्द्धव्यास ३ है और मूल बिन्दु म जिसका केन्द्र है।

वृत्त पर कोई बिन्दु भ लो और उससे एक भ त लम्ब य – अक्ष पर खींचो, म को भ से संयुक्त करदो। अतः

$$\text{म भ}^2 = \text{म त}^2 + \text{त भ}^2 = ९$$

$$\text{अर्थात्} = \text{य}^2 + \text{र}^2 = ९$$

इस प्रकार इस वृत्त का समीकरण $\text{य}^2 + \text{र}^2 = ९$ कहलाता है।

४० – इस समीकरण पर इसी प्रकार विचार किया जा सकता है:—

$$\text{र}^2 = ९\,\text{य}$$

इसमें यदि य को ऋणात्मक मान दिया जाय तो र का मान काल्पनिक होगा क्योंकि वास्तविक मात्रा का वर्ग ऋणात्मक नहीं हो सकता है। इससे सिद्ध है कि कोई भी बिन्दु र अक्ष के बायीं ओर नहीं हो सकता है।

यदि य को कोई धनात्मक मान दिया जाय तो प्रत्येक य के मान के लिये र के दो मान होंगे। वे दोनों आपस में बराबर होंगे, केवल ऋण और धन चिह्नों का भेद होगा। उपर्युक्त समीकरण के कुछ हल ये हो सकते हैं:—

$$\left.\begin{matrix}\text{य} = ० \\ \text{र} = ०\end{matrix}\right\} \left.\begin{matrix}\text{य} = १ \\ \text{र} = \pm ३\end{matrix}\right\} \left.\begin{matrix}\text{य} = २ \\ \text{र} = +३\sqrt{२}\ \text{और} -३\sqrt{२}\end{matrix}\right\}$$

$$\left.\begin{matrix}\text{य} = ४ \\ \text{र} = ६, -६\end{matrix}\right\} \left.\begin{matrix}\text{य} = ९ \\ \text{र} = ९, -९\end{matrix}\right\} \left.\begin{matrix}\text{य} = \infty \\ \text{र} = \infty, -\infty\end{matrix}\right\}$$

इत्यादि

इन बिन्दुओंमेंसे प्रथम विन्दु तो मूल बिन्दु ही है। यदि सब बिन्दुओंको स्थापित करें और परस्परमें संयुक्त कर दें तो एक वक्र इस प्रकार का मिलेगा जैसा चित्र १६ में दिखाया गया है। इसकी दो शाखायें हैं। एक य-अक्षके ऊपर और दूसरी य-अक्षके नीचे। ये दोनों शाखायें र-अक्षके दाहिनी ओर अनन्त दूरी तक चली गई हैं। इस वक्र पर का कोई भी बिन्दु उपर्युक्त समीकरणके नियमकी पूर्ति करता है। अतः इस वक्रका समीकरण $\text{र}^2 = ९\,\text{य}$ है। इस प्रकारके वक्रको परवलय कहते हैं जिसका विस्तृत वर्णन आगे दिया जावेगा।
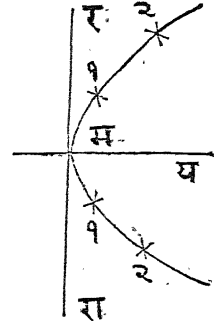
चित्र १६

४१. यदि कोई बिन्दु किसी निश्चित नियमके अनुसार परिभ्रमण करे तो यह किसी निश्चित वक्र या बिन्दु-पथ का अनुसरण करेगा। और इस पथ परके किसी बिन्दुके य युग्मांक और र युग्मांकके बीचमें एक समीकरण सदा उपलब्ध हो सकता है। अतः इस समीकरणको वक्रका समीकरण या बिन्दु-पथका समीकरण कह सकते हैं। अतः—

वक्रके समीकरणकी परिभाषा—वक्रका समीकरण वह सम्बन्ध है जो वक्रके प्रत्येक बिन्दुके युग्मांकोंमें विद्यमान रहता है और जो केवल उन्हीं बिन्दुओंमें व्यवहृत होता है जो उस वक्र पर होते हैं, अन्य में नहीं।

४२ – इसी प्रकार यह भी कहा जा सकता है कि प्रत्येक य और र के समीकरणके अनुसार सामान्यतः एक बिन्दु पथ य वक्र खींचा जा सकता है।

सूक्त ३८ में य + र = २ समीकरणका बिन्दु पथ सरल रेखा है और सूक्त ३९ में $\text{य}^2 + \text{र}^2 = ९$ समीकरणका बिन्दु पथ एक वृत्त है।

समीकरण र=२ के अर्थ हैं कि एक बिन्दु इस प्रकार घूम रहा है कि इसकी दूरी र अक्षसे सदा २ है। इस प्रकार इस समीकरणका बिन्दु पथ एक सरल रेखा है जो र अक्षके सामानान्तर दूरी पर खींची गई है। इसी प्रकार य=३ का बिन्दु पथ ३ इकाई दूरी पर य–अक्षके समानान्तर खिंची हुई रेखा है।

४२–अगले अध्यायमें यह ज्ञात हो जायगा कि एक घातके समीकरण (अर्थात् वह समीकरण जिसमें क और ख के वर्ग और अन्य उच्चघात नहीं हैं) का बिन्दु-पथ सदा एक सरल रेखा होता है। द्वितीय तथा अन्य उच्च घातोंके समीकरण बहुधा वक्र होते हैं।

४४–बिन्दु-पथके समीकरण निकालनेके कुछ उदाहरण यहां दिये जाते हैं:—

अभ्यास १—एक बिन्दु इस प्रकार परिभ्रमण कर रहा है कि दो लम्ब-अक्षोंसे इसकी दूरियोंका बीज योग सदा निश्चित मात्रा च है। इसके बिन्दु पथका समीकरण निकालो।

दो लम्ब-रेखाओंको अक्ष कल्पित करो। मानलो कि (य, र) बिन्दु दिये हुए नियमकी पूर्ति कर रहा है। अतः य+र=च। यह उपर्युक्त बिन्दु पथ का समीकरण है।

अभ्यास २—दो स्थिर बिन्दुओंसे जिनके युग्मांक (च, ०) और (–च, ०), एक परिभ्रमित बिन्दुकी दूरीके वर्गोंका योग २ ज² है। बिन्दु-पथका समीकरण क्या होगा?

कल्पना करो (य, र) बिन्दुकी एक स्थिति है जब कि वह उपर्युक्त नियमका पालन कर रहा है। अतः सूक्त १९ के अनुसार उपर्युक्त नियमके उपयोग करने पर—

$$\{(य-च)^2 + र^2\} + \{(य+च)^2 + र^2\} = २ ज^2$$

$$\therefore २ य^2 + २ च^2 + २ र^2 = २ ज^2$$

$$\therefore य^2 + र^2 = ज^2 - च^2$$

यही ऐच्छित समीकरण है।

अभ्यास ३—एक बिन्दु इस प्रकार परिभ्रमण कर रहा है कि बिन्दु (–१, ०) से नापी गई दूरी (०, २) बिन्दुसे नापी गई दूरीकी चौगुनी है। इस बिन्दु पथका समीकरण क्या होगा।

यदि उपर्युक्त नियमकी पूर्ति करने वाली (य, र) स्थिति है तोः—

$$४\sqrt{(य-०)^2 + (र-२)^2} = \sqrt{(य+१)^2 + (र-०)^2}$$

$$\therefore ४\sqrt{य^2 + र^2 - ४ र + ४} = \sqrt{य^2 + २ य + १ + र^2}$$

$$\therefore १६ य^2 + १६ र^2 - ६४ र + ६४ = य^2 + २य + १ + र^2$$

$$\therefore १५ (य^2 + र^2) - २य - ६४ र - ६३ = ०$$

चौथा अध्याय

सरल-रेखा

४५–उस सरल रेखाका समीकरण निकालना जो किसी युग्म-अक्ष के समानान्तर है।

कल्पना करो कि त थ एक सरल रेखा है जो य-अक्ष के समानान्तर है।

मानलो कि म त=ग। त थ रेखा पर कोई बिन्दु द लो जिसके युग्मांक (य, र) हैं।

चित्र १७

द चाहे कहीं भी त थ रेखा पर क्यों न ले लिया जाय द का कोटि द ध=म त=ग।

अतः र=द ध=ग

∴ र=ग ··· ··· (१)

समीकरण (१) में य नहीं है। इसी प्रकार य=ग समीकरण उस सरल रेखाका है जो र–अक्ष के समानान्तर है।

उपसिद्धान्त—य–अक्ष का समीकरण र=० है और र—अक्ष का समीकरण य=० है।

४६–उस सरल रेखाका समीकरण निकालना जो मूल बिन्दुसे संयुक्त होती हुई खींची जाती है—

मानलो कि म ब कोई सरल रेखा है जो मूल केन्द्र म से संयुक्त होकर खींची गई है। कल्पना करो कि कोण ब म य का स्पर्श= त है।
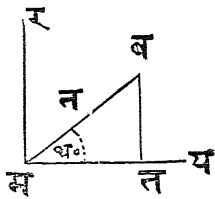
चित्र सं० १८

इस रेखा पर कोई बिन्दु ब लो जिसके युग्मांक (य, र) माने जा सकते हैं। ब से य–अक्ष पर एक लम्ब ब त खींचो।

अतः स्पर्श बमत$=\frac{\text{ब त}}{\text{म त}}=\frac{\text{र}}{\text{य}}$

परन्तु स्पर्श बमत=त

यह परिणाम प्रत्येक बिन्दु के लिये उपयुक्त है—

∴ त$=\frac{\text{र}}{\text{य}}$ अर्थात् र=त य।

अतः उस सरल रेखाका समीकरण र=त य है जो मूल बिन्दुसे संयुक्त होकर खींची जाती है।

४७–उस सरल रेखा का समीकरण निकालना जो र अक्ष में से किसी भी ज्ञात भाग को काटती है और जो य अक्ष से कोई भी ज्ञात कोण बनाती है।

चित्र १६

कल्पना कीजिये कि प ब एक सरल रेखा है जो य अक्ष को प पर और र अक्ष को भ पर काटती है। मानलो कि र अक्ष का कटा हुआ भाग म भ=ग और स्पर्श ब प य=त।

इस सरल रेखा पर कोई बिन्दु ब लीजिये जिसके युग्मांक (य, र) हैं। ब से य अक्ष पर एक लम्ब खींचिये। तथा म से एक सरल रेखा म फ, पूर्व सरल रेखा प ब के समानान्तर खींचिये। यह लम्ब को फ पर काटती है।

अतः न ब=न फ+फ ब ...(१)

∵ ∠ न म फ=∠य प ब

∴ स्पर्श न म फ=स्पर्श य प ब=त

$\frac{\text{न फ}}{\text{न म}}$=स्पर्श न म फ

∴ न फ=न म स्पर्श न म फ।

अतः समीकरण (१) में

न ब=न म स्पर्श न म फ+फ ब

परन्तु न ब=र, न म=य, तथा स्पर्श न म फ =त, तथा फ ब=म भ=ग

∴ र=त य+ग...(२)

समीकरण (२) किसी भी बिन्दु के लिये उपयुक्त है अतः किसी भी सरल रेखा का समीकरण र=त य+ग है।

यह समीकरण बड़ा उपयोगी है। आगे इसकी बड़ी आवश्यकता पड़ेगी। त और ग को भिन्न २ मान देने से भिन्न २ रेखायें खींची जा सकती हैं। यदि त का मान परिवर्तित न करें और ग को परिवर्तित करें तो समानान्तर रेखायें मिलेंगी और यदि ग को स्थिर करके त का मान परिवर्तन करें तो वे रेखायें उपलब्ध होंगी जो एक ही बिन्दु पर मिलती हैं।

स्पष्टतः समीकरण (२) एक घात की समीकरण है।

४८ – एक घातका प्रत्येक समीकरण एक सरल रेखा निर्धारित करता है—

एक घातका सामान्यतम समीकरण यह है:—

$$का\ य + खा\ र + गा = ० \cdots\cdots\cdots (१)$$

यह सिद्ध करना है कि यह समीकरण एक सरल रेखा का सूचक है। यदि यह सरल रेखा का सूचक है तो इसके किन्हीं तीन बिन्दुओंको संयुक्त कर देनेसे जो त्रिकोण बनेगा, उसका क्षेत्रफल शून्य होना चाहिये।

इस पर कोई तीन बिन्दु $(य_१, र_१)$ $(य_२, र_२)$ और $(य_३, र_३)$ लिये जा सकते हैं। अतः ये युग्मांक समीकरणके नियमकी पूर्ति करेंगे। अतः—

$$का\ य_१ + खा\ र_१ + गा = ०$$

$$का\ य_२ + खा\ र_२ + गा = ०$$

$$का\ य_३ + खा\ र_३ + गा = ०$$

सूक्त १२ के अनुसार इसमें का, खा, और गा का निराकरण करने से—

$$\begin{vmatrix} य_१ & र_१ & १ \\ य_२ & र_२ & १ \\ य_३ & र_३ & १ \end{vmatrix} = ०$$

सूक्त २४ के अनुसार त्रिकोणका क्षेत्रफल=

$$\frac{१}{२}\begin{vmatrix} य_१ & र_१ & १ \\ य_२ & र_२ & १ \\ य_३ & र_३ & १ \end{vmatrix} = ०$$

∴ क्षेत्रफल=०

इसलिये $(य_१, र_१)$, $(य_२, र_२)$ और $(य_३, र_३)$ ये तीनों बिन्दु एक ही सरल रेखा पर विद्यमान हैं; अतः का य + खा र + गा = ० सरल रेखा का सूचक है। अर्थात् एक घात का प्रत्येक समीकरण एक सरल रेखा निर्धारित करता है।

४९ – एक घात के समीकरण काय + खा र + गा=० की में तीन स्थिर मात्रायें का, खा, और गा हैं। और सूक्त ४७ में प्राप्त समीकरण में दो स्थिर मात्रायें त और ग थीं।

यदि य और र युग्मांक का य + खा र + गा=० की पूर्ति करते हैं, तो ये उस समीकरण की भी पूर्ति करेंगे जो इस समीकरण को किसी स्थिर परिमाणसे भाग देने पर प्राप्त होगा। इस समीकरणको खा से भाग देने से—

$$अथवा\quad \frac{का}{खा}य + र + \frac{गा}{खा} = ०$$

$$र = -\frac{का}{खा}य - \frac{गा}{खा}$$

सूक्त ४७ का समीकरण र=त य+ग और यह समीकरण एक ही रूपके हैं। केवल भेद इतना है कि—

त के स्थानमें (–का/खा) और ग के स्थानमें (– गा/खा) रखे गये हैं।

५० — उस सरल रेखाका समीकरण निकालना जो य अक्ष और र अक्ष में से ज्ञात भाग काटते हैं।

कल्पना करो कि त थ सरल रेखा य अक्षमेंसे भाग म थ=ख, और र अक्षमेंसे भाग म त=क, काटती है। इस रेखा पर कोई बिन्दु ब लो जिसके

युग्मांक (य, र) हैं। ब से एक सरल रेखा ब न र अक्षके समानान्तर खींचो।
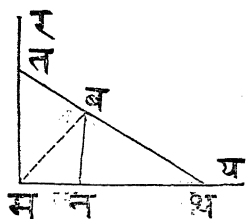
चित्र २०

थ के युग्मांक (ख, ०) और त के (०, क) हैं।

त्रिकोण म त थ और न ब थ सजातीय हैं। अतः रेखा गणितके अनुसार—

$\frac{म न}{म थ}=\frac{त ब}{त थ}$, और $\frac{न ब}{म त}=\frac{थ ब}{त थ}$

$\therefore \frac{म न}{म थ}+\frac{न ब}{म त}=\frac{त ब+थ ब}{त थ}=\frac{त थ}{त थ}=१$

परन्तु म न=य, म थ=क, न ब=र, और म त=ख

अतः $\frac{य}{क}+\frac{र}{ख}=१$

ब बिन्दु त थ पर कहीं क्यों नहो, उपर्युक्त समीकरणकी पूर्ति करेगा अतः यह ऐच्छित समीकरण है।

५१—उपर्युक्त समीकरण इस प्रकार भी उपलब्ध हो सकता है कि म को ब से संयुक्त कर दो अतः △ म ब थ + △म ब त = △त म थ

$= \frac{१}{२}$ (म ब × बन) + $\frac{१}{२}$ (म त × म न) = $\frac{१}{२}$ (त म + म थ)

$\frac{१}{२}$ (क × र) + $\frac{१}{२}$ (ख × य) = $\frac{१}{२}$ (क × ख)

∴ क र + ख य = क ख

$\therefore \frac{य}{क}+\frac{र}{ख}=१$

५२-किसी सरल रेखा का समीकरण मूल बिन्दुसे इस पर खींचे हुए लम्बके और उस कोणके पदोंमें जो लम्ब य-अक्षसे बनाता है निकालना।

त थ एक सरल रेखा है जिस पर मूल बिन्दु म से एक लम्ब मद जिसकी लम्बाई ल है, खींचा गया है। लम्ब द म और य—अक्ष के बीचका कोण द म त=थ°
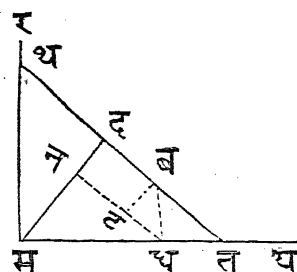
चित्र २१

इस सरल रेखा पर कोई बिन्दु ब लो जिसके युग्मांक (य, र) हैं। कोटि ब ध खींचो और ध से ध न एक सरल रेखा त थ के समानान्तर खींचो। ध न के ऊपर एक लम्ब ब ट भी खींचो।

अतः—

म न = म ध कोज्या थ ···(१)

और न द = बट = बध ज्या ट ध ब

परन्तु ∠ट ध ब=९०° − ∠ट ध म=∠न म ध=थ°

अतः न द=बध ज्या थ° ।···(२)

समीकरण (१) और (२) जोड़नेसे—

मध को ज्या थ° + बध ज्या थ°=म न + न द = मद

परन्तु म ध=य, और बध=र,

∴ य को ज्या थ° + र ज्या थ°=ल

यह एच्छित समीकरण है।

५३—इस प्रकार हमने सरल रेखाके तीन समीकरण अब तक उपलब्ध किये हैं:—

(१) र = तय + ग

(२) $\frac{य}{क} + \frac{र}{ख} = १$

(३) य कोज्या थ + र ज्या थ = ल

इन तीनोंमेंसे किसीको भी एक दूसरेसे उपलब्ध कर सकते हैं। समीकरण (२) में क और ख अक्षोंमें से काटे हुए भाग हैं। सूक्त ५२ के चित्रसे स्पष्ट है कि यदि मत=क, मथ=ख, और मद=ल

अतः क को ज्या थ=ल

और ख ज्या थ=ल

$\therefore क = \frac{ल}{को ज्या थ}$ और $ख = \frac{ल}{ज्या थ}$

समीकरण (२) $\frac{य}{क} + \frac{र}{ख} = १$ में क और ख के ये मान स्थापित करनेसे

$$\frac{य को ज्या थ}{ल} + \frac{र ज्या थ}{ल} = १$$

$\therefore$ य को ज्या थ + र ज्या थ = ल

जो समीकरण (३) ही है। अतः स्पष्ट है कि समीकरण (२) से समीकरण (३) उपलब्ध हो सकता है।

एक घातका सामान्यतम समीकरण

का य + खा र + गा = ०

भी सूक्त ४८ के अनुसार, सरलरेखाका सूचक है। इस समीकरणको $\sqrt{(का^2 + खा^2)}$ से भाग देने पर:—

$$\frac{का}{\sqrt{(का^2+खा^2)}} य + \frac{खा}{\sqrt{(का^2 खा^2)}} र + \frac{गा}{\sqrt{(का^2+खा^2)}} = ० \cdots (४)$$

परन्तु $\frac{का}{\sqrt{(का^2+खा^2)}}$ और $\frac{खा}{\sqrt{(का^2+\sqrt{I^2})}}$ एक ही कोणकी ज्या और कोज्या है क्योंकि उनके वर्गोंका योग १ है। अगर हम इस कोणको थ° कहें तो

$$\frac{का}{\sqrt{(का^2+खा^2)}} = कोज्या थ$$

और $\frac{खा}{\sqrt{(का^2+खा^2)}}$ = ज्या थ

$\therefore$ समीकरण (४) से—

$$य कोज्या थ + र ज्या थ + \frac{गा}{\sqrt{(का^2+खा^2)}} = ०$$

यदि $\frac{गा}{\sqrt{(का^2+खा^2)}}$ को −ल से सूचित किया जाय तो—

य को ज्या थ + र ज्या थ − ल = ०

अतः एक घातके सामान्यतम समीकरण का य + खा र + गा = ० से भी समीकरण (३) उपलब्ध हो सकता है।

५४—अभ्यास १—लम्ब पदमें इस समीकरणको परिवर्त्तित करोः—

य + र $\sqrt{३}$ + ७ = ० ⋯ (१)

यहाँ $\sqrt{(का^2+खा^2)} = \sqrt{(१+३)} = \sqrt{४} = २$

समीकरण (१) को २ से भाग देने सेः—

$$\frac{य}{२} + \frac{र}{२}\sqrt{३} + \frac{७}{२} = ०$$

$$अर्थात् य\left(-\frac{१}{२}\right) + र\left(-\frac{\sqrt{३}}{२}\right) - \frac{७}{२} = ०$$

अर्थात् य को ज्या २४०° + र ज्या २४०° − $\frac{७}{२}$ = ०

अभ्यास २—य + र + ९ = ० को लम्ब पदमें परिवर्त्तित करोः—

इसमें $\sqrt{(का^2+खा^2)} = \sqrt{२}$

अतः $\sqrt{२}$ से भाग देने पर—

$$\frac{य}{\sqrt{२}} + \frac{र}{\sqrt{२}} + \frac{५}{\sqrt{२}} = ०$$

$$\therefore य\left(-\frac{१}{\sqrt{२}}\right) + र\left(-\frac{१}{\sqrt{२}}\right) = \frac{५}{\sqrt{२}}$$

अर्थात् य कोज्या $\frac{५\pi}{४}$ + र ज्या $\frac{५\pi}{४} = \frac{५}{\sqrt{२}}$

५५ – समीकरण द्वारा प्रकटित किसी सरल रेखा की स्थिति निश्चित करना।

कल्पना करो कि रेखा एक घात के किसी सामान्यतम समीकरण द्वारा प्रकट की गई है। समीकरण यह है:—

$$का\ य + खा\ र + गा = ०$$

(१) यह समीकरण इस प्रकार भी लिखा जा सकता है:—

$$\frac{य}{-\frac{गा}{का}} + \frac{र}{-\frac{गा}{खा}} = १$$

सूक्त ५० के समीकरण से इसकी तुलना करने पर यह पता चलता है कि दोनों समीकरण एक रूप के हैं। वह समीकरण यह था:—

$$\frac{य}{क} + \frac{र}{ख} = १$$

इसमें क के स्थान में $-\frac{गा}{का}$ और ख के स्थान में $-\frac{गा}{खा}$ है अतः यह सामान्यतम समीकरण य अक्ष का $-\frac{गा}{का}$ भाग और र अक्ष का $-\frac{गा}{खा}$ भाग काटता है। मूल बिन्दु से इन भागों के बराबर दूरी पर य और र अक्षों पर बिन्दु स्थापित करो और उन्हें संयुक्त कर दो। यही सरल रेखा उपर्युक्त समीकरण द्वारा सूचित होती है।

सामान्यतम समीकरण में यदि गा = ० हो।

$$का\ य = -खा\ र$$

$$\therefore र = -\frac{का}{खा} य$$

यह समीकरण सूक्त ४६ में उपलब्ध समीकरण र = तय के रूप का है जिसमें $त = -\frac{का}{खा}$। अतः यह मूल बिन्दु से संयुक्त सरल रेखा का सूचक है। यह सरल रेखा स्पर्श$^{-१}\left(\frac{का}{खा}\right)$ कोण य अक्ष से बनाती है। इस कोण के जानने पर इस रेखा की स्थिति निश्चित हो जायगी।

(२) सरल रेखा की स्थिति इस प्रकार भी निश्चित की जा सकती है कि इस रेखा पर के कोई दो बिन्दु ज्ञात कर लो। इन बिन्दुओं के संयुक्त कर देने से रेखा ज्ञात हो जायगी। वे बिन्दु सरलतया इस प्रकार निकाले जाते हैं। पहले य को शून्य के बराबर करने से एक बिन्दु र–अक्ष पर मिल जायगा। फिर र–को शून्य के बराबर करने से दूसरा बिन्दु य अक्ष पर मिल जायगा।

इस समीकरण

$$का\ य + खा\ र + गा = ०$$

में यदि य = ०, तो

$$खा\ र = -गा,\ \therefore र = -\frac{गा}{खा}$$

अतः एक बिन्दु र अक्ष पर $\left(०, -\frac{गा}{खा}\right)$ है।

इसी प्रकार यदि र = ०, तो

$$का\ य = -गा$$

$$\therefore य = -\frac{गा}{का}$$

अतः दूसरा बिन्दु य अक्ष पर $\left(-\frac{गा}{का}, ०\right)$ है।

इन दोनों बिन्दुओं को संयुक्त कर देने से इष्ट रेखा मिल सकती है।

५६—प्रश्न—निम्न समीकरणों द्वारा सूचित रेखाओंको खींचो—

(१) ३ य+८ र=१२

(२) २ य−६ र=८

(३) ५ र−३ य=४

रीति—(१) ३ य+८र=१२ में यदि य=०, तो र=$\frac{३}{२}$; अतः एक बिन्दु (०, $\frac{३}{२}$) है। यदि र=० तो य=४ ; अतः दूसरा बिन्दु (४, ०)

इन दोनों बिन्दुओंको जोड़नेसे सरल रेखा मिल सकती है।

(२) २ य−६ र=८ में यदि य=०, तो र= −$\frac{४}{३}$; अतः एक बिन्दु (०, −$\frac{४}{३}$) है और यदि र=० तो य=४ है अतः दूसरा बिन्दु (४, ०) है।

इन दोनों बिन्दुओंको संयुक्त करनेसे रेखा खींची जा सकती है।

(३) ५ र−३ य=४ में यदि र=०, तो, य= −$\frac{४}{३}$, अतः एक बिन्दु (−$\frac{४}{३}$,०) है और यदि य=० तो र=$\frac{४}{५}$ है अतः दूसरा बिन्दु (०,$\frac{४}{५}$) है।

इन दोनों बिन्दुओंके ज्ञात होने पर रेखा खींची जा सकती है।

५७—अनन्तता पर सरल रेखा—यह कहा जा चुका है कि समीकरण का य+खा र+ गा=० उस सरल रेखाको सूचित करता है और जो य और र अक्षों-में से—$\frac{\text{गा}}{\text{का}}$ और—$\frac{\text{गा}}{\text{खा}}$ भाग काटती है।

यदि का=०, और गा और खा शून्य नहीं हैं जो $\frac{\text{गा}}{\text{खा}}=\infty$ अतः रेखा–य अक्षको अनन्तता पर काटेगी। अतः का को शून्यके बराबर करनेसे रेखाका समीकरण र=स्थिर मात्राके रूपका हो जाता है। अतः यदि का=०, तो यह सामान्यतम समीकरण य—अक्षके समानान्तर रेखाको सूचित करता है।

इसी प्रकार यदि खा=०, और का और गा शून्य न हों तो—$\frac{\text{गा}}{\text{का}}=\infty$ अतः रेखा र अक्षको अनन्तता पर काटेगी, अर्थात् यह रेखा र अक्षके सामानान्तर होगी क्योंकि समानान्तर रेखायें ही परस्पर में अनन्तता पर कटती हैं।

यदि का और खा दोनों शून्य हों और गा शून्य न हो तो, $\frac{\text{गा}}{\text{का}}$ और $\frac{\text{गा}}{\text{खा}}$ दोनों अनन्तता होंगे। अतः उस अवस्थामें यह रेखा दोनों अक्षोंको अनन्तता पर काटेगी। इस प्रकार ०×य+०× र+ग=० रेखा अनन्ता पर सरल रेखा बनाती है। यह रेखा पूर्णतः अनन्तता पर होगी।

५८—यदि किसी समीकरण को किसी स्थिर मात्रासे गुणा कर दें तो भी समीकरणमें कोई भेद नहीं पड़ता है। इस प्रकार

का य+खा र+गा=० और

५ का य+५ खा र+५ गा=०

ये दोनों समीकरण एक ही रेखा के सूचक हैं।

इसी प्रकार २ य+३ र+४=० और ८ य+ १२ र+१६=० ये दोनों समीकरण एक ही रेखा को निर्धारित करते हैं।

इसीके विलोममें, यदि दो समीकरण एक ही रेखाको सूचित करते हैं तो एक समीकरण दूसरे समीकरण को किसी मात्रासे गुणा कर देने पर मिल सकेगा।

उदाहरणतः, यदि $\text{क}_१$ य+$\text{ख}_१$ र+$\text{ग}_१$=० और $\text{का}_१$ य+$\text{खा}_१$ र+$\text{गा}_१$=० ये दोनों एक ही रेखा के सूचक हैं तो

$$\frac{\text{क}_१}{\text{का}_१}=\frac{\text{ख}_१}{\text{खा}_१}=\frac{\text{ग}_१}{\text{गा}_१}$$

५९—उस सरल रेखा का समीकरण निकालना जो किसी ज्ञात बिन्दु (या, रा) से संयुक्त होकर किसी ज्ञात दिशा में खींची जाती है।

सूत्र ५७ के अनुसार किसी सरल रेखा का समीकरण र=त य+ग (१) है यह रेखा य−अक्षसे स्पर्श⁻¹ त कोण बनाती है। इसमें त और ग को उपयुक्तमान प्रदान करने से यह समीकरण किसी भी सरल रेखा का सूचक हो सकता है।

यदि समीकरण (१) द्वारा सूचित रेखा (या, रा) बिन्दुसे होकर जाती है तो

रा=तया+ग

∴ ग=रा−त या (२)

ग का यह मान समीकरण (१) में उपयुक्त करने से—

र=त य+रा - त या

र−रा=त (य−या)...(३)

समीकरण (३) उस सरल रेखा का सूचक है जो (या, रा) से होकर जाती है, और य−अक्ष से स्पर्श⁻¹ त कोण बनाती है। त को कोई मान प्रदान करनेपर (या, रा) से होकर जानेवाली कोई भी रेखा खींची जा सकती है।

६० − उस सरल रेखा का समीकरण निकालना जो दो ज्ञात बिन्दुओंसे होकर जाती है।

किसी सरल रेखा का सामान्य समीकरण यह है:—

र=त य+ग......(१)

कल्पना करो कि दो ज्ञात बिन्दु (या, रा) और (यि, रि) हैं जिनसे होकर रेखा जाती है। ये दोनों बिन्दु उसी रेखा पर हैं। अतः—

रा=त या+ग ....(२)

रि=त यि+ग......(३)

समीकरण (१) में से समीकरण (२) को घटाने से

र−रा=त (य−या)......(४)

और (३) में से (१) समीकरण को घटाने में

रि−रा=त (यि−या)......(५)

समीकरण (४) को (५) से भाग देने पर

$$\frac{र-रा}{रि-रा}=\frac{य-या}{यि-या}\cdots(६)$$

$$अथवा\ र-रा=\frac{रि-रा}{यि-या}(य-या)\cdots(७)$$

समीकरण (६) और (७), ऐच्छिक सरल रेखाके सूचक हैं।

६१ अभ्यास १—उस सरल रेखाका क्या समीकरण होगा जो (४, ३) और (५, −६) बिन्दुओंसे संयुक्त होकर खींची गई है।

$$(र-३)=\frac{-६-३}{५-४}(य-४)$$

र−३= −९ (य−४)

∴ र+९ य−३९=०

२−सिद्ध करो कि ये तीनों बिन्दु (५, ३), (१०,७) और (१५,११) एक ही रेखा पर स्थित हैं।

जो रेखा (५, ३) और (१०, ७) को संयुक्त करती है उसका समीकरण यह है:—

$$(र-३)=\frac{७-३}{१०-५}(य-५)$$

५ र−१५=४ य−२०

∴ ४ य−५ र=५...... (१)

इसी प्रकार जो रेखा (१०,७) और (१५,११) को संयुक्त करती है उसका समीकरण यह है:—

$$(र-७)=\frac{११-७}{१५-१०}(य-१०)$$

$$र-७=\frac{४}{५}(य-१०)$$

∴ ४ य−५ र=५......(२)

समीकरण (१) और (२) एक ही हैं अतः जो रेखा (५, ३) और (१०, ७) बिन्दुओं से होकर जाती है वही रेखा (१०, ७) और (१५,

१०) बिन्दुओंसे होकर जाती हैं, अतः तीनों बिन्दु एक ही सरल रेखा पर हैं।

६२—कल्पना करो कि ब स एक सरल रेखा है जो य-अक्ष से थ° कोण बनाती है। मानलो कि ब और स के युग्मांक क्रमानुसार (य, र) और (या, रा) हैं। स और ब से य अक्ष पर स ध और ब न लम्ब खींचो और एक रेखा स द इसी अक्ष के समानान्तर भी खींचो।

चित्र सं० २२

अतः कोण ब स द = थ°।

और स द = स ब कोज्या ब स द = स ब कोज्या थ°

ब द = स ब ज्या ब स द = स ब ज्या थ°।
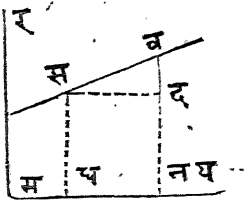
मान लो कि ब स = ज

अतः स द = ध न = म न − म ध = य − या

= ज कोज्या थ° ...(१)

और ब द = ब न − द न = ब न − स ध = र − रा

= ज ज्या थ°।...(२)

$\therefore$ (१) से $ज = \frac{य - या}{कोज्या थ}$

और (२) से $ज = \frac{र - रा}{ज्या थ}$

$\therefore \frac{य - या}{कोज्या थ} = \frac{र - रा}{ज्या थ}$

यह ब स रेखा का समीकरण है।

६३—दो सरल रेखायें जिस बिन्दु पर कटती हैं उस बिन्दुके युग्मांक निकालना।

दोनों सरल रेखाओंके सामान्य समीकरण ये हो सकते हैं:—

क य + ख र + ग = ० ..(१)

का य + खा र + गा = ० ...(२)

वह बिन्दु जिस पर दोनों रेखायें कटेंगी, दोनों रेखाओंके समीकरणकी पूर्ति करेगा। अतः (१) और (२) दोनों समीकरणोंमें निराकरण करने से:—

$$\frac{य}{खगा - गखा} = \frac{र}{गका - कगा} = \frac{१}{कखा - खका}$$

$$अतः \quad य = \frac{खगा - गखा}{कखा - खका}$$

$$और \quad र = \frac{गका - कगा}{कखा - खका}$$

अतः पच्छित बिन्दुके युग्मांक

$$\left(\frac{खगा - गखा}{कखा - खका}, \frac{गका - कगा}{कखा - खका}\right)$$

६४—उस अवस्थाको ज्ञात करना जब तीन रेखायें एक ही बिन्दु पर परस्पर कटें।

कल्पना करो कि तीनों रेखाओंके समीकरण ये हैं:—

कय + खर + ग = ० ···(१)

काय + खार + गा = ० · (२)

किय + खिर + गि = ० ···(३)

ये तीनों रेखायें एक ही बिन्दु पर तब मिलेंगी जब किन्हीं दो रेखाओंका अन्तर खण्ड बिन्दु* तीसरी रेखा पर भी विद्यमान हो। सरल रेखा (१) और (२) के अन्तरखण्ड बिन्दुके युग्मांक गत सूक्तसे

$$\frac{खगा - गखा}{कखा - खका}, \frac{गका - कगा}{कखा - खका}$$

* अन्तर खण्ड बिन्दु वह है जहां दो या अधिक रेखायें आपस में कटती हैं।

हैं। अतः यदि यह बिन्दु तीसरी रेखा पर भी विद्यमान है तो:—

$$कि\frac{खगा-गखा}{कखा-खका}+खि\frac{गका-कगा}{कखा-खका}+गि=०$$

अथवा कि (खगा – गखा) + खि (गका – कगा) + गि (कखा – खका) = ०

यह अवस्था पूर्ण होने पर तीनों रेखायें एक बिन्दु पर मिलेंगी।

उदाहरणमाला ३

१ जिन रेखाओं के समीकरण नीचे दिये गये हैं, उन्हें खींचो:—

(१) ५ य – ६ र = १०

(२) ८ य + ६ र + १२ = ०

(३) ४ य – ५ र + १० = ०

(४) ३ य – ४ र – ५ = ०

२ निम्न बिन्दुओं को संयुक्त करके सरल रेखाओं के समीकरण निकालो:—

(१) (३, – $\frac{३}{२}$) और (५, २)

(२) (३, १) और (–४, ४)

३ उनदो सरल रेखाओं के समीकरण बताओ जो (१,—१) बिन्दु से होकर जाती और य—अक्ष से क्रमानुसार १५०° और ३०° का कोण बनाती हों।

४ उनदो सरल रेखाओंके समीकरण बताओ जो—

(१) य – अक्ष में ४ इकाई भाग और र-अक्ष में – ३ इकाई भाग काटती हैं।

(२) य – अक्ष में – ५ इकाई भाग और र – अक्ष में (– ३) भाग काटती हैं।

५ उस आयतके कर्णोंके समीकरण निकालो जिसकी भुजाओंके समीकरण य = क, य = का, र = ख और र = खा हैं।

६ क्या ये तीनों रेखायें एक बिन्दु पर मिलती हैं—

(अ) (१) २ य + ३ र = २३

(२) ४ य – २ र = ६

(३) ६ य – ९ र + ३ = ०

(आ) (१) ४ य + २ र = ८

(२) ५ य – २ र = १९

(३) य + २ र + १ = ०

७ यहाँ तीन समीकरण दिये जाते हैं। तीसरे समीकरणमें क को क्या मान दिया जाय कि इन समीकरणों द्वारा सूचित तीनों रेखायें एक ही बिन्दु पर मिलें।

(१) य + २ र = ७

(२) २ य – ३ र + ७ = ०

(३) क य + ५ र = १०

ज़ीरा (Cumin)

[ले०—नन्दकिशोर शर्मा]

ऐसा कौन मनुष्य अपने देश हिन्दुस्तानमें है जो ज़ीरेको नहीं जानता है, शायदही कोई घर ऐसा हो जहां कि यह काममें न आता हो। बस इसकी उपयोगिता इसीसे साफ़ ज़ाहिर है, लेकिन इसकी काश्त बहुत कम होती है और इस लेखका मतलब सिर्फ़ यह है कि लोगोंको इसके काश्तकी वाक़फ़ियत करा दी जाय ताकि लोग फ़ायदा उठावें। हर किसान का यह मुख्य कर्त्तव्य है कि उसे ऐसी फ़सलें ज़रूर बोनी चाहिये जो थोड़े-से समयमें अधिकसे अधिक फ़ायदा देवें और उन ऐसी फ़सलोंमें ज़ीरा भी एक चीज़ है।

ज़ीरा

ज़ीरा उत्तरी पश्चिमी हिमालयमें खुदरो पाया जाता है। यह ज़िला गढ़वालमें काफ़ी तौरसे बोया जाता है, दुआबा या अन्तर्वेद या दूसरी जगह पर इसकी खेती कहीं कहीं पर ही होती है, सिवाय इसके कि अब कुछ दिनोंसे बुन्देलखण्ड प्रान्तके ज़िला जालौन व हमीरपुरमें कृषि विभाग-के उद्योगसे होने लगी है और रोज़ बरोज़ बढ़ौती पर ही हैं। अभी तीन साल हुये कि ज़िला हमीर-पुरके राठ परगनामें योंही नामके लिये एक आध खेतमें बोवाया गया था। उसकी पैदावार देख लोगों-को शौक लगा और अब इसका प्रचार काफ़ी होता जाता है और दो चार साल इसी तरहसे कोशिश होती रही तो यह राठ परगना की एक ख़ास पैदा-वार हो जायगी।

ज़ीरा दो क़िस्मका होता है एक सफ़ेद और दूसरा काला। सफ़ेद ज़ीरा यहांके मौसिम व ज़मीन के मुआफ़िक़ है और अच्छी पैदावार देता है, काला ज़ीरा यहांके लिये मौज़ूं नहीं है। यह सिर्फ़ ठंडी जगहोंमें पैदा हो सकता है, सफ़ेद ज़ीरेके मुक़ाबलेमें काले ज़ीरेकी मांग भी कम है ज़ीरा अम-बेली फेरी (Umbelliferae) वंशके पौधोंमेंसे है और अधिकतर यह दाल तरकारी अचार वग़ैरः के काममें आता है। दवाइयोंके काममें भी आता है, हाजमेको बढ़ानेवाले व भोजनको स्वादिष्ट करने वाली चीज़ है, दर्द सरको भी दूर करता है, आख़िर दवा बनाने के कारख़ाने ज़ीरा का सत भी निका-लते हैं।

बीज

इसकी काश्तमें बीज ही ख़ास चीज़ है, इसके बीजको जई कहते हैं और यह ख़ास तौरसे तैय्यार की जाती है, जो फ़सल जईसे ली जाती है वह कहीं भी अच्छी और ज़्यादा पैदावार की होती है अतः ज़ीराकी खेतीके लिये यह लाज़िमी है कि जई ही बोई जाय। तरीका जईके तैयार करनेका यह है कि माह सावनमें अच्छा ज़ीरा लिया जाता है और सूपसे फटक लिया जाता है। जो ज़ीरा सूपसे उड़ जाता है वह जई तैयार करनेके कामका नहीं होता। इस तरहसे साफ़ किये हुये ज़ीरेको एक घड़ेमें भरते हैं और उस पर तीन चार अंगुल पानी भर देते हैं और तीन दिन तक उसे इसी तौरसे रहने देते हैं चौथे दिन सुबह उसे पानीसे अच्छी तरह धोते हैं और हाथोंसे मलते भी जाते हैं—इस अमल से जो कुछ अंखुए ज़ीरेमें निकल आते हैं वह टूट जाते हैं, अच्छी तरह साफ़ हो जाने पर इसको साया में चटाई पर फैला कर सुखाते हैं और तीन दिन तक इसी तरहसे सूखने देते हैं, बादमें चौथे दिन फिर सूपसे फटकते हैं और जो कुछ हल्के पतले दाने होते हैं वह उड़ जाते हैं, और यह जईसे ख़ारिज कर दिये जाते हैं। यही अमल इसी तरह से होशियारीसे दो दफ़े और किया जाता है—याने कुल तीन दफे यह अमल होता है—और इसमें क़रीब क़रीब एक माह लग जाता है। तीन दफ़े इस तरह करनेसे जो बीज तैय्यार होता है उसका नाम जई है और यही बोनेके क़ाबिल होता है, दस सेर ज़ीरामें करीब दो सेर जई तैय्यार होती है—इस अमलको सफलतासे करनेके लिये थोड़े अभ्यासकी ज़रूरत है, इस जईका भाव आम तौरसे ६) से लेकर ७॥) फ़ी सेर तकका रहता है। ज़ीरा फ़सल रबी है याने गेहूँ चना वग़ैरः के साथ बोई जाती है, इसके बोनेके लिये ठीक समय जब होता है जब कि गर्मी कम पड़ने लगती है याने उतरते कातिक। अगर इससे पहिले बो दिया जाय तो गर्मीकी वजहसे इसके नाज़ुक अंखुए मर जाते हैं ज़मीन इसके लिये गोहांड, दुमट या हल्की दुमट या पड़वा मौज़ूं होती है और कावरमें भी अच्छा पैदावर होता है।

ज़ीरा एक नाज़ुक फ़सल है, इसके लिये खेत ताक़तवर होनेकी ज़रूरत है, साथके साथ खेतकी तैय्यारी भी बहुत अच्छी होनी चाहिये, खेतमें कम से कम १०० मन फ़ी एकड़के हिसाबसे सड़ा गला

गोबरका खाद देना बहुत ज़रूरी है और फिर कमसे कम चार या पांच अच्छी जुताई होनी चाहिये।

इस तरहसे खेतमें अच्छी तरह खाद देकर अच्छी जुताई करके तैय्यार करनेके बाद जई बोना चाहिये।

आम तौरसे ज़ीरा बाग़ीचोंमें बोया जाता है, हमारा यह लेख मामूली फस्लोंकी तरह खेतोंमें बोए जानेके लिये अधिक उपयोगी है, जब खेत तैय्यार हो जावे और गर्मी भी कम पड़ने लगे उस समय सवा सेर जईमें दस सेर राख मिला कर रख लेनी चाहिये, यह बीज एक एकड़ ज़मीनके लिये काफ़ी है, फिर एक एकड़ भूमिको दस बराबर हिस्सेमें बांट लेनी चाहिये, फिर राख मिली जईसे १८ छटांक लेकर एक दसवें एकड़में उसे ऐसी होशियारीसे छिटक देना चाहिये, कि सब जगह बराबर छिटक जाय यह अभ्यास पर निर्भर है। मतलब यह है कि ऐसा न हो कि कहीं ज्यादा कहीं कम फिके, बराबर एकसा छिटकनेसे फ़सल बराबर व एक सा अच्छी पैदावारकी होगी। सब खेतमें इस तरहसे छिटक देनेके बाद इसे बज़रिये लीवर हैरो या पंचदन्ता या पाँच नोककी खुरपी या देशी हलसे ज़मीनमें मिला देना चाहिये, ध्यान यह रहे कि अति गहराई में बीज न चला जाय और फिर बादमें हल्का सा पाटा या हैंगा इस पर चला देना चाहिये, इस कार्रवाईसे मतलब यह है कि बीज ज़मीनमें अच्छी तरहसे मिल जाय और दब जाय, जई चिड़ियों वग़ैरः को भी स्वादिष्ट होती है, अगर बीज ज़मीन मेंन मिलेगा और न दबेगा, तो बीजको चिड़ियाँ, कौए वग़ैरः चुन लेंगे और न दबनेके वजहसे जमेगा भी नहीं और पैदावार कम हो जायगी।

पाटा या हैंगा देनेके बाद खेतमें क्यारी व सेल बनाना चाहिये, बिला क्यारी व सेलके सिंचाई करनेमें आसानी नहीं होती है और ज़ीरा बिला सिंचाईके पैदावार अच्छा नहीं देता, हर दो सेलके बीचमें बरहा होना चाहिये, सेलका नाप ५ गज़ लम्बा ३ गज़ चौड़ा होना चाहिये, बरहा एक फुट चौड़ा होना चाहिये, सेल बरहा जितने चौड़े ऊपर लिखे पैमानाके मुताबिक़ होते हैं, उतनी ही सिंचाई करनेमें आसानी होती है और थोड़ा पानी लगता है, बीज बोनेके ही बाद अगर खेतमें नमी नज़र न पड़े तो हलका सा पानी दे देना चाहिये और फिर खेत पक जाने पर खुरपी या पंचदन्तासे गुड़ाई कर देनी चाहिये। बीज बोनेके ७, ८ दिन में जमने लगता है।

बीज जमनेके बाद जब पौधे क़रीब ३, ४ अंगुल के हो जावें, तब निराई करनी ज़रूरी है ताकि जो कुछ घास कूड़ा वग़ैरः जम आया है वह निकल जाय, ज़मीन नम हो जाय, नमी बनी रहे और एक ज़ीराके पौधेका दूसरे ज़ीराके पौधेसे फ़ासिला क़रीब ६ अंगुलके रह जाय, निराई कर देनेके बाद पौधों पर राख छिटक देना चाहिये।

जब ज़मीन सूखती हुई नज़र पड़े फिर पानी दे देना चाहिये, हर सिंचाई के बाद निराई होना लाजिमी है बुवाईके बाद क़रीब दो माह में ज़ीरेके पत्तोंमें खुशबू आने लगती है, फ़सल मार्च, अप्रेल याने फागुन, चैतमें तैयार हो जाती है, दौरान फ़सलमें चार सिंचाई व तीन निकाई की ज़रूरत होती है, फ़सल पक जाने पर काट ली जाती है और लकड़ी वग़ैरः से पीट कर मड़ाईकी जाती है, बादमें हवामें या सूपसे उड़ाई कर ली जाती है। दाना अलग रख लिया जाता है और भूसा अलग। जीराके भूसामें भी हाजमा का माद्दा काफ़ी होता है। पस जानवरोंको और भूसेके साथ थोड़ा थोड़ा देना बहुत अच्छा होता है, जायकेदार होता है और जानवरोंके हाजमेकी ताक़तको बढ़ाता है। औसतन पैदावार ज़ीरेकी ३॥) फ़ी एकड़ होती है और भूसा क़रीब ८) फ़ी एकड़ हो जाता है।

नीचे लिखा व्यौरा इस फ़सलके नफ़ा नुक़सान का हैः—

किराया एक एकड़ जमीन	...	५)
४ जुताई फ़ी जुताई २)	...	८)
४ निराई गुड़ाई	...	५)
४ सिंचाई मय नहर का रेट	...	८)
खाद	...	१०)
बीज ॥१=	...	७)
बुवाई सेल बरहा वगैराः	...	३)
कटाई मड़ाई	...	५)
मुतफर्रिक	...	४)
		५५)

पैदावार एक एकड़

जीरा ३॥ दर ३५) फ़ी मन	...	१२२॥)
भूसा ८ दर १) ए०	...	८)
		१३०॥)
ख़र्चा	...	५५)
नक़द मुनाफ़ा फ़ी एकड़	...	७५॥)

ऊपरके हिसाबके देखनेसे पता चलता है कि सब ख़र्च अच्छी तरह लगा लेनेसे ६५॥) फ़ी एकड़ ६ माहकी फ़सलसे मुनाफा है। ज़ीरा का भाव ३५) मन लगाया है जब कि बाज बाज साल इसका भाव ३५) मन तक पहुँच जाता है। चीज का भाव बहुत कुछ अपने पर निर्भर रहता है जब चीज़ अच्छी है तो ग्राहक बहुत आम तौरसे ज़ीरेके रोजगारी बहुत कुछ गोज़ माल करते हैं। ज़ीरोंकी मंडियोंमें देखिये सैकड़ों मन सीक का ज़ीरा व्यौपारी ख़रीदते हैं। यह क्या होता है आप सब समझ सकते हैं भोले भाले अपने देशके लोग भले ही ऐसे मालकी खरीद करें। अन्य देशके व्यौपारी कभी भी ऐसा माल विला करदा काठे नहीं खरीदते। पस अगर किसी मालके लिये मंडियां पैदा करनी हैं तो अच्छे से अच्छा माल तैयार करना चाहिये, ताकि अच्छे से अच्छा दाम मिल सके। मंडीका नाम पैदा हो वाहरके देशोंमें जहां ज़ीराका सत व तैल तैयार किया जाता है वहां अच्छे ज़ीरेकी सदा मांग रहती है अतः हर शख़्स जो ज़ीरा पैदा करता है, उसको चाहिये कि इसके लिये ख़ास ख़ास नापके छेदकी चलनी रखें ताकि ज़ीरा भी नम्बरवार होवे और जिसके जो कामका हो वह उसे ख़रीदें।

भविष्यमें क्या होगा ?

(एक वैज्ञानिक भविष्यवक्ताकी बातें)

हमारे देशमें भविष्यकी बातें बतलानेवाले वीर पंडितोंकी कमी नहीं है। वे दो पैसेमें जीवनका रहस्य खोल देते हैं, परन्तु उस रहस्यका कितना अंश सत्य रहता है? भविष्यकी बातका अनुमान करना एक बड़ा कठिन काम है। परन्तु वैज्ञानिक लोग प्रायः अपने अनुमानमें सफल ही हुआ करते हैं। इसका प्रधान कारण यह है कि वे ऊटपटाँग बातें न कहकर अपने सिद्धांतोंके आधार पर निर्णय निकालते हैं। परीक्षाएँ करते और इनके द्वारा भविष्यमें सफल होनेवाली कलोंका मानसिक चित्र देख लेते हैं।

वैज्ञानिक-संसारमें निकोलस टेसलाका स्थान बहुत ऊँचा है। यह एक संसार-प्रसिद्ध जादूगर कहलाता है। उसके विचित्र आविष्कारों और आश्चर्यमय सत्य सिद्ध होनेवाली भविष्य-वाणियोंने उसे जन-साधारणके दिमागमें एक विशेष रूपसे भयंकर स्थान दे दिया है।

तीस वर्ष पहले जब टेसलाने कहा था कि आपत्तिमें पड़े हुए जहाज़ बे तारके द्वारा, रक्षाकी प्रार्थना दूर दूर तक भेज सकेंगे। लोग इस बातको सुन आपको पागल कहने लगे, परन्तु डॉक्टर टेसलाकी बातों पर अविश्वास करनेवालोंने अपनी आँखसे देख लिया कि आरटिक समुद्रके बर्फ़में भटकनेवाले जहाज़ोंने किस तरह बेतारके द्वारा अपना संदेशा भेजा था। तीस वर्ष पहले जब आपने एक ऐसे जहाज़का नमूना बनायाथा जो बिना यात्राकी

वैज्ञानिक पुस्तकें

मुद्रक—पूरंजप्रसाद खन्ना, हिन्दी-साहित्य प्रेस, प्रयाग